TIGHT BINDING BOOK

PAGES
PROBLEM WITH
IN THE BOOK ONLY

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182284

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No H83/SG1R Accession No H 2749
Author सिंह, राधिकारमण प्रसाद
Title राम-रहीम । 1946
This book should be returned on or before the date last marked below

राम-रहीम

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, एम० ए०

श्रीराजराजेश्वरी साहित्य-मन्दिर
सुयेपुरा, शाहाबाद (बिहार)

प्राप्ति-स्थान :
अशोक प्रेस, पटना–६

मूल्य :
दस रुपए

मुद्रक :
श्री सुरेश कुमार
अशोक प्रेस, पटना–६

दो शब्द

यह किताब तो एक बात की आन पर लिखी गई। यह आन की अनी न होती, तो मुझ-जैसे आराम-तलब से इतनी बड़ी मंज़िल कभी तय न हो पाती। इधर पन्द्रह सोलह साल से चंद परिस्थितियों की वजह मेरी क़लम नज़रबन्द थी। न तबीयत में रुझान थी, न जी में अरमान। मैं हिन्दी-संसार से अलग, जाने कहाँ भटक चला था।

पार साल चन्द विलायती संस्कृति के हिमायती दोस्तों ने हिन्दी की खिल्ली उड़ानी शुरू की। मैं भी उस मजलिस में मौजूद था। हमलोग फिल्म के पर्दे पर 'थैकरे' का 'वैनिटी फेयर' देखकर लौटे थे। यही चर्चा थी। उनकी दलील था कि हिन्दी ज़बान की भित्ति पर साहित्य की कोई आली-शान इमारत कभी खड़ी नहीं हो सकती। डोस्टोवस्की और टालस्टाय, ह्यूगो और बैलज़ाक, डिकिन्स और थैकरे के आलमगीर नॉवेलों के मुकाबले हिन्दी की कृतियाँ कभी आँख सीधी कर सकती हैं? आखिर इस भाषा की बिसात ही क्या है? अभी दुधमुँही बच्ची—महज़ दो-चार हाथ फुदकने लगी है, कहीं यूरोपीय व्योमविहारी उड़ाकों के पहलू में पर मार सकती है? विश्व-साहित्य के अखाड़े में यह अबला क़दम तक रोप ही नहीं सकती, ताल ठोंकना तो दूर रहे।

मुझे यह तोताचश्मी बेहद खली। मैंने ज़ोरों का प्रतिवाद किया। साथ-साथ फौरन् क़लम आज़माने को ठान लिया। छः महीने का वक़्

माँगा। उस जोड़तोड़ की सरापा नई बानगी पेश करने की ठहरी। मैंने ज़बान काटकर रख दी।

शायद मुझे हिन्दी की प्रगति का पता रहता, तो मैं वहीं उनकी मरगमीं पी जाता, खुद पत्थर पर सर टकराने को नहीं तुलता। मैंने बीड़ा तो उठा लिया, मगर जब कलम उठाई तो दिल एक बार उठकर बैठ गया। मैंने इधर बरसों से कुछ लिखा तक नहीं, और कहाँ लरज़ती क़लम की नोक से सितारे तोड़ने बैठ गया! कहाँ चैन की ज़िन्दगी, कहाँ नींद हराम हो गई!

जिसे पसीने की रोटी खाने की आदत नहीं, उसके लिए ऐंड़ी का पसीना चोटी तक ले जाना आसान नहीं होता।

प्लॉट तो मुझे ढूँढना न पड़ा—एक मित्र के घर बात के सिलसिले में बात-की-बात में मिल गया, कल्पना के बँगूरों पर हफ्तों चक्कर काटने की ज़रूरत न पड़ी। रह गई भाषा और भाषा के वितान पर चित्रण का ताना-बाना। यही जान का जंजाल हो गया। दस दिन की झखन पर दस लाइन भी न लिख पाया। लेकिन, जमा रहा जी जाँतकर। आखिर जब मन बँधते-बँधते तार बँध गया, फिर तो वह समा बँधा कि "बादल से चले आते हैं मज़मूँ मेरे आगे!"

मैंने जो कुछ अंधाधुंध लिख डाला, वह आपके सामने है। जिस उद्देश्य से 'राम-रहीम' का अवतरण हुआ, उसका रहस्य तो पढ़ने ही पर खुलेगा।

मेरी क्षुद्र क्षमता की बिसात पर साहित्य की गोटी लाल हो सकी या नहीं, इसे तो मर्मज्ञ कलाकार ही समझें।

मैंने रोजमर्रे की एक दिलचस्प कहानी की टेक लेकर धर्म और समाज

के तमाम कच्चे चिट्ठे खोलकर रख देने की कोशिश की है। मैंने भारतवर्ष के अन्तर्गत इस युग के आचार को, इस युग के अत्याचार को, इस युग के विचार को, इस युग की पुकार को दो जीती-जागती स्त्रियों के जीवन-पट पर प्रस्फुटित करने का प्रयास किया है। यहाँ अध्यात्म के साये में शृङ्गार है, फ़ैशन का दामन थामे दर्शन है। इसीलिए वास्तविकता की सादा ज़मीन पर नैतिकता की किनारी टँकी है—यथार्थवाद के मौसम में आदर्शवाद के छींटे हैं। आजकल की टकसाली कला के पहलू में मैंने अपनी पुरानी धज भी कायम रखने की कोशिश की है।

हाँ, कहानी के प्रवाह में कहीं-कहीं मेरी निजी विचार-धारा आकर मिल गई है, पर मैंने रस के उत्स को भरसक नीरस नहीं होने दिया है।

जिन सहृदय सज्जनों ने वक्त-बेवक्त कंधे लगाकर मेरे सर का बोझ सँभाल रखा, उनका ऋण मेरे सर पर है, और वे हैं—श्रीमहावीरप्रसाद बारिस्टर (पटना-हाइकोर्ट), श्रीशिवमंगल सिंहजी (हेडमास्टर, श्रीराजराजेश्वरी-हाइस्कूल, सूर्यपुरा), श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा (हिन्दी-शिक्षक, उक्त हाइस्कूल)। सुरेशकुमार ने तमाम चिट-पुर्जों को बटोरकर सिलसिलेवार लिख डाला, और, प्रिय शिवपूजनजी देखभालकर इसे अंधकार के परदे से प्रकाश में लाये।

सूर्यपुरा, नवम्बर १९३६ —राधिकारमणप्रसाद सिंह

यह संस्करण !

'राम-रहीम' के प्रथम संस्करण के अब बीस वर्ष बीत चुके। इस लम्बी अवधि के बीच इसके कई संस्करण निकल चुके—यह इसकी सर्वप्रियता को देखते कोई आश्चर्य की बात नहीं। सच पूछिए तो जितना बड़ा इसका आकार है उतनी ही बड़ी इसकी माँग है और हमें दुःख है कि इस नये संस्करण के निकलने में उतनी ही बड़ी देर भी हो गई! हाँ हमें एक संतोष यह है कि राजासाहब के इस सर्वप्रथम उपन्यास का यह नूतन संस्करण अपने साथ-साथ उनके नवीनतम उपन्यास 'चुम्बन और चाँटा' को भी लिये आ रहा है।

अबतक राजासाहब की लगभग दो दर्जन कृतियाँ हिन्दी-संसार के सम्मुख आ चुकी हैं और एक अनूठी शैली के प्रवर्त्तक के रूप में वह सबके परिचित हो चुके हैं। उनके सर्वप्रथम उपन्यास के नवीनतम संस्करण और नवीनतम उपन्यास के सर्वप्रथम संस्करण का एक साथ अवतरण उनकी शैली के प्रेमियों के लिए एक आनन्दप्रद कौतूहल का विषय होगा और हमें विश्वास है कि पाठकों से हमने जो इतनी लम्बी प्रतीक्षा कराई, उसका दुःख वे भूल जाएँगे।

—प्रकाशक

प्रथम खण्ड

बेला

प्रथम परिच्छेद

बेला एक साधारण ब्राह्मण-गृहस्थ की लडकी है—गोरी और भोरी। बचपन की नादानियाँ अभी छुटी भी न थीं कि नई दुलहिन बनकर, लम्बे घूँघट की मर्यादा का सबक लेकर, वह ससुराल के सकीर्ण शृङ्खलाबद्ध विधि-निषेधो के दायरे मे जा पडी। शैशव के कधो पर सुहाग का हार—भार है। ज्ञान और लज्जा के प्रथम आभास से अङ्गो मे—प्राणो मे—एक नवीन सिहरन का सञ्चार शुरू ही हुआ था कि अचानक मातृत्व के सङ्कट ने आ घेरा। किशोरी, युवती होने के पहले, जननी हो गई! हाथ का गुड्डा उतरते-उतरते गोद मे एक जीवन्त गुड्डा बन गया। इस पद के दायित्वपूर्ण गौरव का अभी अन्दाज़ भी न हो पाया था कि अचानक पुत्र-वियोग के उत्कट आघात से वह चकरा गई। लड़कपन के खेल अभी भूले भी न होगे कि जान पर खेलने के दिन आ टपके।

माँ-बाप ने गौरी-प्रदान का अक्षय्य पुण्य लूटने की गरज़ से उस मासूम मेमने को विवाहोत्सव की तड़क-भड़क दिखाकर अकाल

मातृत्व की बलिवेदी पर दे पटका था। आज किसी तरह जान के बदले जान देकर जान बची।

इतने ही तक अगर खैरियत होती, तो एक बात थी। उसके सर के ऊपर विपत्ति के बादल उमड़ रहे थे। जिस साये के सहारे इस देश की नई वधू ससुराल के कुटिल भ्रू-कुञ्चन और कठिनाइयों के आगे सीना भिड़ाती है, वह सुहाग का सहारा भी डावाँडोल हो चला। छः महीने तक महेशदत्त, ज्वर और खाँसी से पीड़ित, बहरघरे की एक सकीर्ण कोठरी के कोने में, चारपाई पर पड़े-पड़े, सुबह से शाम और शाम से सुबह, दिन गिन रहे थे।

कुछ दिनों तक मुहल्ले के रामू महतो की जड़ी-बूटी की परिपाटी चली। माता ने प्रत्येक मंगल और रविवार को दो मील की पगडंडी नापकर, गर्दन में आँचल बाँधे, झड़ू कलवार की जाग्रत देवी के चौरे पर अपनी नथभरी नाक के पुट को रगड़-रगड़कर चौड़ा कर डाला; माहन मिश्र शनि और राहु के जपदान के सिलसिले में—पाँच लाख महामृत्युञ्जय की माला फेरने के एवज़ में—भरे हुए धान की कोठी का तीन हिस्सा बैलों पर लादकर अपने घर ले गये, गाँव के प्रमुख और मान्य गुनी सामू धोबी और कोला कहार ने झाल बजाकर, पचरे गाकर, नाच-कूदकर, देशी शराब की बोतलों और सैकड़ों चिलम गाँजे के ज़ोर पर, महीनों तक, आक्रमणकारी बलिष्ठ भूत-बैताल को पछाड़ने की जी-तोड़ कोशिश की; शिवशर्मा वैद्य ने मृत-सञ्जीवनी-सुरा और ज्वराङ्कुश की कितनी ही शीशियाँ, श्वासकुठार की हज़ारों वटिकाएँ, साने

और मोती के मूल्यवान् भस्म खिला-खिलाकर, और दर्जनों कुप्पे महालाक्षादि तैल की मालिशें करा-कराकर, बिचारे रोगी के धर्म-प्राण पिता के तीन बीघे डीह के उपजाऊ खेत पर मकफ़ूली तमस्सुक का माहदनामा लिखवा लिया और कुल चौदह साल की किशोरी बेला ने गोद के बच्चे की मृत्यु को भूलकर, व्रत और उपवास से शीर्ण उँगलियों से प्रतिदिन हजारों बिल्वपत्र पर चन्दन से रामनाम लिख-लिखकर, घर के पिछवाड़े के दो सघन बेल के गाछों को बिलकुल उजाड़ डाला।

किन्तु—'विधि-विधान को मेटनहारा?' उसकी माँग उजड़ ही गई। विधि का विधान अटल रहा। किसी देवता की पलकें नहीं पसीजीं।

उधर आकाश में सूरज डूब रहा था, इधर बेला का सौभाग्य-सूर्य डूब चला। उधर पति का प्राण-पखेरू अपने चिरन्तन बसेरे पर उड़ गया, इधर बेला के सीमन्त का सिन्दूर धुलकर आसमान पर फैल गया।

लावे विधवा हो गई। एक अबोध अबला की जीवन-तरी इस प्रलय-विप्लव की चपेट से अथाह संसार-भँवर में जा पड़ी। वह बिचारी पछाड़ खाकर कुल-देवता के घर की चौखट पर जा गिरी। राम-नाम की छाप लिये हुए बिल्वपत्रों की थाली भग्न-से जमीन पर गिर पड़ी।

इतने दिनों की अश्रुसिक्त प्रार्थनाएँ व्यर्थ हो गईं। पास के मन्दिर से सायंकाल की आरती की घंटा-ध्वनि वज्र-टङ्कार की तरह उसके हृदय-पञ्जरों को तोड़ती हुई हवा में विलीन हो गई।

'इस कलमुँही रॉड ने मेरे भरे घर को उजाड़ डाला'—छाती

पीट-पीटकर रोती हुई सास ने आकर उसके हाथ की चूड़ियो को पत्थर की चोट से तोड डाला, शरीर के एक-एक जेवर को उतार डाला, और साथ-साथ लहरी चुनरियो की पिटारी अपने कमरे मे उठा ले गई।

बेला के जीवन की फुलवारी मे वसत की एक हल्की लपट आते आते न जाने कहाँ रह गई थी, और इधर भगवान जाने किस अभिशाप से इस चमन का एक-एक फूल सूखकर काँटा हो गया। दसवे साल उसने भावरी भरी थी, चोदहवे तक आते-आते वह ससार के विविध सुख-दुःख की गभीर अनुभूति लेकर सयानी हो गई। बचपन मे दुलहिन बकर नये-नये भडकीले गहना और कपड़ो की चामचुम पर इठलाती फिरी, किशोरी होते-होते मातृत्व की महिमा ने उसके सार [illegible] का गला टीप दिया, और पूर्ण युवती होने के पहले ही अचानक पुत्र-वियोग और वैधव्य की भीषण यन्त्रणा से प्रातःकाल की शेफालिका की तरह धूल मे चू पड़ी।

धर्म-इन्धन से प्रज्वलित समाज के कराल कुड मे किसी निरपराध जीवन की एक और आहुति पडी।

मगर हसरत हे जवानी के उस अभिसार पर जो बहार के दिन आँखो से आँसू बनकर वह चला।

———

द्वितीय परिच्छेद

अब बँधा निदारुण अत्याचार का ताँता। रोज़ एक नई इल्लत, रोज़ एक नई शिकायत। बिचारी बेला ऊब गई। कभी चुड़ैल, कभी हरामजादी, कभी कलमुँही—यही सब विष-भरी बौछार बात-बात पर सुननी पड़ती थी। वह भागकर जाती तो कहाँ जाती! इतने बड़े ससार मे इस अबला के लिए एक बालिश्त भी निरापद स्थान कहाँ था? माँ-बाप तो गौरी-दान के पुण्य का बुकचा पीठ पर बाँधकर परलोक को निकल गये थे। भाई-भौजाई ने बेला की बला को अपने परिवार मे जगह देना मुनासिब न समझा। अब दूसर आश्रय कहाँ रहा? सास और ननद की झिड़कियो और तेवर को जी मसोसकर सह लेती थी। इसी सिन मे लहू के घूँट को शरबता के घूँट करार देकर पीना पडा। साथ-साथ, सुबह से शाम तक लहू-पानी एक किये बिना गुजर नही थी। आखिर करती क्या?

मैली साडी रहती, तो गदी रहने की लाछना; धोई धोती होती, तो विधवा के फैशन की कुत्सा, मकान के पिछवाड़े की बावली से पानी लाने गई, तो यह ताना कि आँखें मिलाने जाती है; पानी न लाई, तो यह फबती कि रानी बनी बैठी है।

किसी से उसे क्षण-भर सान्त्वना नहीं मिलती। किसी ने अपने आँचल से उसके उमड़ते आँसुओं को नहीं पोंछा। किसी ने भूल-कर भी उसके सर पर हाथ नहीं रखा। वह सिर थामकर बैठ गई। सिर पीटते-पीटते सिर नहीं फिरा, यही आश्चर्य था।

जब से वह ससुराल आई तभी से छोटी ननद गौरी से उसकी खूब पटती थी। साथ खाती-पीती, साथ हँसती-खेलती। हमजोली थी सहेली थी। लेकिन जब दैव प्रतिकूल होता है, तब इस दुःख-मय संसार में कौन किसका साथ देता है! आज बेला जब घर-भर की आँखों की किरकिरी हो गई, तब गौरी की आँखों से भी गिर गई! अब वह भी सबकी देखा-देखी फबतियाँ कसने में साथ देती, बेवजह चिढ़कर रूठ जाती भवें सिकोड़ती मुँह बनाती, बात तराशती और बाल की खाल खींचती। शायद बेला के अंग-अंग पर यौवन का निखार उसके कलेजे पर साँप-सा लोट जाता। उसके चेहरे की करुण कमनीय कान्ति गौरी की आँखों में आग की लहर-सी लगती। बेला का सीधा-सादा स्वभाव, राम-यश-कथा की ओर झुकाव, उसे एक क्षण भी नहीं भाता था। बेला उसे ज्यों-ज्यों मिलाने की कोशिश करती, त्यों-त्यों झमककर वह दूर सरक जाती।

बेला बिलकुल अकेली पड़ गई। उसकी आँखों के आँसू तक सूख चले। बिचारी बेबसी में पिस गई। क्या करती? किसे अपनी राम-कहानी सुनाती? जहाँ हाथ बढ़ाती, वहीं शून्यता, वहीं अँधेरा। तबतक एक नये कोने से सहानुभूति की एक पतली किरण-सी नजर आई। धीरे-धीरे वह स्पष्ट हो चली। बेला को

क्या मालूम कि उसके जीवनाकाश पर नया धूम्रकेतु उदित हुआ। उसने तो इसे देवता का दान समझा।

बेला ने देखा कि उसके देवर 'दिनेश' के भाव कुछ दिनों से मुलायम होने लगे हैं। पहले तो वह बिलकुल तटस्थ रहता था। अब वह कभी कभी लुक-छिपकर बेला की खोज-खबर लेने लगा। उसके व्यवहार में सौहार्द्र का आभास था—बातों में ममता की मिठास। जब दिन के काम-काज से तीसरे पहर उसे क्षण-भर छुट्टी मिलती और वह सखी रोटी लेकर नमक या गुड़ की डली के साथ चौके के एक कोने में खाने बैठती, तब दिनेश अचानक किसी जरूरत से उस घर में आ जाता और किसी पत्ते में बँधे हुए दही-बड़े या कचाल के टुकड़े हँसते-हँसते उसकी थाली में डाल देता। कभी चुपके एकाध पका आम या एकाध पका अमरूद सोई हुई बेला के सिरहाने रख जाता। बेला ने इस स्नेह के आश्रय को धन्य समझा। वह इस अयाचित करुणा की चाशनी में घुल पड़ी।

हाय री भोरी! पुरुष-जाति से निष्काम प्रेम की आशा जलते हुए शोले से शीतलता की तलाश से कुछ कम नहीं।

दिनेश अब दिन-दिन ढीठ होने लगा। वह आँखें बचा-बचाकर आँखें मिलाता। कभी कुछ लेने ही के हीले से, कभी कुछ देने ही के हीले से, उसकी उँगलियों को ठुकराकर हँस देता। बेला कभी कुछ समझती, कभी नहीं भी समझती—'भला ऐसा भी हो सकता है? हर्गिज नहीं। मेरी भूल होगी। इस सहज स्नेह रस में कभी विष नहीं इस हास कुसुम में कोई कीट नहीं।'

वह फिर रामायण उठाकर पढती। लक्ष्मण का चरित्र पढकर उसे ढाढस बँधता। फिर घर के काम-काज मे भूल जाती।

दिनेश अपनी बहन और भावज को पास के मन्दिर मे कभी राम दिखाने ले जाता। लौटते वक्त, वह घुँघरू बाँधकर नाचनेवाली गोपियो की भाव-भंगिमा पर सरस व्याख्या करता, और गोपाल की मुरली की तान पर व्रज मे सत और पत की जो कुर्बानी हुई थी उसकी एक मनचीती मीमासा देकर बेला के चेहरे के रग को गौर से देखता। बेला सर झुकाये चुपचाप चली आती।

गर्मी के मासम मे पा फटते ही पिछवाड़े की निर्जन बावली से जब बला नहा-धोकर गीले कपड़े मे जल्दी-जल्दी घर की ओर लौटती, तब क्या देखती कि पगडडी के बिलकुल निकट, बड़ के नीचे, दिनेश सहज एक लँगोट बाँधे पसीने और धूल मे लतपत, दड पेल रहा है या जोड़ियाँ फेर रहा है, और उसकी बलिष्ठ भुजाओ की पेशियाँ उभरी हुई नाच रही है। वह सरककर घर चली जाती।

देहात की होली के दिना मे जब लिहाज और विचार की सनातन ग्रथियाँ शिथिल हो जाती है, और बूढ़े भी जोश मे आकर गदे गाली-गलाज और नोक-झोक मे जवाना की नाक तराशते है, तब दिनेश उस अनुकूल वातावरण का सहारा लेकर ढीठ बन जाता। जब आँगन मे घुँघरू और तबले की धूम मची रहती, रग और अबीर की बौछार के साथ-साथ मस्ती की एक तरग उमड आती, तब वह भग और रग के नशे मे शराबोर, 'फागुन मस्त महीने की होरी' गुनगुनाता हुआ, बिचारी बिललाती बेला के गालो पर लपककर गुलाल मलने को दौडता, और इस छीना-

झपटी के दृश्य को घर के सभी बूढ़े-बच्चे देवर-भावज की सहज होली लीला समझकर चुप रह जाते।

सक्रान्ति और ग्रहण के समय गंगा-नहान का मेला गाँवों में एक उत्सव का मुहूर्त है। देहातिया के कर्ममय जीवन में यह एक विलक्षण दिन है। दिनेश भी छाजनवाली बैलगाड़ी के भीतर अपने कुल परिवार को लेकर, बेला को सरपट दौड़ाता हुआ, भार हाते-हात, चार मील दूर गंगा-तट पर जा पहुँचता और झट-पट काछा बाँधकर, कमर तक पानी में पैठ, दोनों बलिष्ठ भुजाओं से भीड़ को चीरता हुआ, एक-एक व्यक्ति को हाथ का सहारा दे-देकर, नहला देता था। जब लाज और लिहाज से सिकुड़ी हुई बेला उस प्रसन्न पुण्य-सलिला में डुबकियाँ देकर ऊपर उठती और चारों ओर की बरसती कुतूहली नजरों की गोलाबारी से परीशान होती हुई किसी निरापद स्थान को ढूँढकर बैठती बदलती, तब दिनेश ऊपर आकर गीले कपड़े से प्रस्फुटित भाभी के अङ्गों की लावण्य-लीला को एक-टक हेरता और फिर दूसरे ही क्षण, धम-से भरी गंगा में कूद, तैरने की विविध भंगिमा दिखा-दिखाकर, अपने अतुल कौशल और पराक्रम का परिचय देता था।

बेला एक क्षण इस तमाशे को देखती और फिर मुँह फेरकर ससुर की पूजा के आयोजन में हाथ बटाती थी। बेला की आँखों की पहुँच अगर देवर के दिल तक होती, तो वह समझ पाती कि दिनेश के इस जीवट के खेल के भीतर कहाँ तक उसकी अपनी निगाहों का हाथ था।

———

तृतीय परिच्छेद

यों ही कुछ दिन और कटते हैं। इसी बीच में बेला ने दो तीन काड रामायण पढ डाली। उसके धर्मप्राण ससुर बाहर ही रहकर साधु सन्तो के सग मे जीवन बसर करते थे। उनकी गर्दन से न तुलसी उतरती थी, न हाथ से सुमिरनी। जब से बडा लडका उठ गया था, तब से परिवार के साथ उन्हे महज दो मुट्ठी चावल का समर्ग था। दिन-रात मे कुल एक बार भीतर आकर देव-दर्शन कर जाते, आरती उतारते, चरणामृत लेते और बेला को रामायण की कथा सुनाते। पूजा का कुल भार बेला के सर पर था।

बेला पढने मे तेज थी, और जब वह मीठे स्वर से रामायण की चौपाइयो को गाकर सुनाती, तब बूढे मुकुन्द पडित की आँखो से मन्दाकिनी उमड आती। बेला की असाधारण प्रतिभा का परिचय पाकर वह दाँतो-तले उँगली काटते।

हाय! विधाता को जब इसके सर पर कोयला दलना मंजूर था, तब उस सर के भीतर सरस्वती का आसन क्यो प्रतिष्ठित किया?

क्या उनको 'मीरा' की तरह इसे एक तपस्विनी बनाना मज़र है ?

उस दिन सत्यनारायण की कथा थी। पौ फटते ही बेला को आस्तीन चढाकर कडाही चढा देनी पडी। पूआ पूरी पकाने का भार उस पर था। पुरोहतानी के जिम्मे पञ्चामृत और पञ्जीरी थी। सास को तो पलँग ताडने से फुरसत न थी।

रही गौरी। उसकी नसें घटे-भर की मिहनत मे ढीली हो चली। उसके तो भाभी की तरह घट्टा पडा न था। और पड़े क्यो ? बला को तो जीवन-भर पापड ही बेलना है, बेला करे वह। गौरी क्या इस बला की ओखली मे सर देती फिरे ? वह पल्ला छुड़ाकर मुहल्ल मे फुरा लने चल दी।

बला बिना मुँह-हाथ धोये, कमर मे आँचल बाँधे, बारह बजे तक डटी रही। मुहल्ले की नाइन, बारिन, दिन चढ़े चेहरा दिखाने आइ। मालकिन का मुलाहज़ा बारह बजे के बाद शुरू हुआ। बाल की खाल खींचने मे आप लाखो मे एक थीं। टीका-टिप्पणी चली। गौरी ने माता की बात-बात पर दाद दी। घी का खर्च देखकर मालकिन का तलवा चटका—"क्यो री निगोड़ी, तू ने तो घी का कुप्पा लुढका दिया ! यही शऊर है तुझे ! तमाम घी को पतीली के पूओ ने पी डाला ! तेरे बाप के घर से घी आया है ? सच है, तेरा पैर इस घर मे तबाह करने के लिए ही पडा है।"

बात-बात मे बाप की मरम्मत और माता की मलामत एक आम बात थी। बेला तो बोल सकती नहीं थी ! सास की मर्यादा

को अक्षुण्ण रखना था। और, उसकी समालोचना पर प्रत्यालोचना करे, ऐसी जुर्रत बिचारी की नसों में कहाँ थी।

इस देश में सूनी गोदवाली विधवा बहू घर में भीगी बिल्ली बनी रहती है। जो ही दुलत्ती झाड़ दे, उसे सर झुकाकर सह लेना है, मजाल नहीं कि चूँ कर सके।

बेला घूँघट काढ़े चुप खड़ी रही। फिर उसने हिम्मत बाँधकर इशारे से पूरियों से भरे थाल को दिखा दिया।

"देखती तो हूँ। तूने पूरियों ही में घी खपा डाला और यही एक पतीली पूआ नाया। अभी भर कठौत लोर घोलकर रखा है। उसे अपनी छाती के लहू से पकायेगी?"

बिचारी वर्षों से तो छाती फाड़कर कमा रही थी, उस छाती में लहू कहाँ था!

बेला सर झुकाये चुप खड़ी रही। दिल का धुआँ उठकर आँखों में आँसू हो गया।

"तुझे अन्दाज नहीं आया, तो मुझे क्यों न बुला लाई?"

बेला जानती थी कि वह बुलाने जाती तो मुँह झोंसवाकर आती, और अबतक चीजें तैयार न होतीं तो पीठ की खाल उधेड़ी जाती। उसने गौरी से सुबह ही कह दिया था कि इतने घी में तमाम चीजें तैयार करना चिड़िया से दूध तलब करना है। अगर आटे में चौरेठा फेंट देती, तो शायद किसी तरह निभ भी जाता, मगर सास की मर्जी के खिलाफ उस घर में ए पत्ता भी खरकना

गैरमुमकीन था। गौरी अपने सर पर ज़िम्मेवारी लेने को तैयार नहीं थी—बात टालकर लापता हो गई।

मालकिन दस मिनट तक झल्लाती रहीं और बेला की सात पुश्तों को वैतरणी के कछार में घसीट, कल्ला दबा-दबाकर, डुबोती गईं। आखिर तेल में पूआ पकाने का आर्डर देकर मट्ठा और गुड़ से खराई मिटाने को चम्पत हो गईं। बेला को फिर भिड़ना पड़ा, और दो बजे तक यही सिलसिला जारी रहा। दिनेश ने आकर, एक अलग कोठरी में, तमाम पकवान को ताले में बंद कर दिया।

देहातों में स्त्रियाँ तरह-तरह के पकवान तैयार करती हैं, पर खुद खाने नहीं पातीं। किसी प्रयोजन का तमाम सामान मुहय्या कर दिया, और फिर हाथ समेटकर अलग हो गईं। उनकी किस्मत में वही बाजरे की सग्वी रोटी और चने का साग। ब्राह्मण-भोजन के बाद बायन का सिलसिला है, नेगी-नेगिनों को देने का रिवाज है। कौड़ी-कौड़ी जोड़कर पूरी तैयार होती है, ताकि खर्च के वक्त कौड़ी का भी बल न पड़े। अगर इत्तफाक से कभी कुछ बच गया, तो वही बासी-बासी सबके पीछे घर की स्त्रियों को नसीब हुई। नहीं तो बिचारी घी सूँघकर रह गईं।

यह नादिरशाही आज भी सम्पन्न घरों तक प्रचलित है। और, विधवा बहू के लिए तो घी का तर माल चखना परलोक की जड़ में कुल्हाड़ी मारना है। उसकी जबान को न घी से भेंट होती है, न सर को कभी तेल से! मगर उस सर पर तमाम जमाने का ठीकरा फोड़ना हर्गिज दस्तूर के खिलाफ नहीं है। जिस छाती पर मूँग

दलना नित की बात है, वह छाती अगर पत्थर की न हुई तो बगैर फटे निभ नहीं सकती।

दिनेश ने बड़े मुलायम और मीठे स्वर से पूछा—"भाभी, तुमने अभी तक हाथ-मुँह भी नहीं धोया? आधी रात से खट रही हो। गोरी कहाँ है?"

दिनेश की ज़बान से फूल झड़ रहे थे। बेला आँचल को सर पर सरकाकर, निगाह नीची करती हुई बोली—"मुँह धोने जा रही हूँ।"

"अकेली पहाड तोड रही हो न?"

बेला चुप रही।

"घर-भर खा-पीकर खर्राटे भर रहा है, और तुम्हारी आज भी एकादशी है! इस जुल्म की भी कोई हद है? आखिर भाड का टट्टू भी तो दाना नहीं तो घास तो पाता है।"

बेला बुत बनी रही। जवाब क्या देती?

दिनेश की आँखे बेला के भरे हुए अंगो के उभार को कटाक्ष की नोक से कुरेद रही थीं। उसकी प्यासी चितवन घूँघट के छनते हुए चेहरे के मीठे पानी को होठ डुबो डुबो कर पीती।

हाय! यह सौन्दर्य-सरोवर की राजहंसी किस गाढ़ के गड्ढे मे आ पडी! यह बहार की परी कहाँ इस ऊसर मरू मे मरने आई!

"भाभी, जब तुम्हे मै देखता हूँ, सच मानो, मेरी जबान से वाह भी आह बनकर निकलता है। यह रूप और यह स्वरूप; यह

जमाल और यह हाल; यह तर्बीयत और यह किस्मत। मैं विधाता के इन्साफ पर दंग हूँ।"

बेला ने देखा, दिनेश की ज़बान का पहलू बदल रहा है। वह झट मुड़कर जाने लगी।

"ठहरो, एकाध पूआ तो लेती जाओ।"

दिनेश ने एक घी का मालपुआ उसकी ओर बढ़ाया। बेला ने सर हिलाकर इनकार किया। घी का पूआ—मालपुआ! यह तर माल का जमाल! उसे क्या कुत्ते ने काट खाया था कि वह इसे हाथ से छूने चलगा? बेला के सर पर एक बाल भी साबूत बच सकेगा?

"नहीं? क्यों? आखिर तो यह कोड़ी कोस की दौड़ ठहरी। आधी रात से खट रही हो, एक पूए पर किसको एतराज़ होगा? कुछ हवा पीकर तो जी नहीं सकतीं!"

"अभी किसी ने खाया नहीं, न कथा हुई। मैं ही सबसे पहले ·· ··"

"खैर, रख तो लो, बाद ही खाना।"

"नहीं-नहीं, अभी नहीं।"

बेला की ज़बान रुक गई और उसने कोठरी से बाहर आँगन में पाँव रखा—

कि दिनेश ने लपककर उसका आँचल थाम लिया। साड़ी का छोर सरककर दिनेश के हाथों में आ गया, और बेला का तमाम चेहरा—बादल के अवगुंठन से निकले चाँद की तरह—दिनेश के दृष्टिपथ पर चमक उठा। उस सूरत की कुदरत में आँखें रत न

होगी तो इस विश्व मे और कहाँ होगी ? एक बिजली सी चमकी. एक तीर सा लगा। एक ही क्षण मे तीनो लोक नज़र आ गया।

बेला वहीं टिटककर झुक गई। दिनेश ने आँचल के खूँट मे उस पूए को बाँध डाला, और—'भाभी, मेरा क़सूर माफ रहे'—हँसकर कहता बाहर निकल गया।

बेला तो सन्न हो गई थी। काटो तो खून नहीं। दिनेश की यह धृष्टता केवल एक आग्रह का आवेग था, या इस उन्माद के भीतर काम का आवेश भी ?— बेला चुपचाप सिर चीरती रही। वह क्या करे ?

दिनेश तो, जिस नीयत से हो, भेंट देकर चल दिया। अब बेला इस कलङ्क को कहाँ तक चुराकर रखे ? पेट मे डाल दे, और कोई खाते देख ले, तब तो मालकिन उसे छठी का दूध याद करा देगी। और, अगर वह इसे फेंक भी दे, तो कहाँ फेंके, जहाँ किसी की नजर न पड़े। अगर किसी की निगाह पड़ गई, तो बेला के सर भूत उतर जायगा।

वह आँचल मे बँधा पूआ बेला की पीठ पर जल उठा। वह उस शोले को कहाँ बाँधे ढोती फिरेगी। उसके देवता कूच कर गये।

वह डूबती-उतराती आँगन मे आई, और भीतरी दरवाजा खोलकर पिछवाड़े की बावली की ओर क़दम बढ़ा चुकी थी कि कहीं से आँधी की तरह गौरी आ पहुँची। बेला ने उस पोटली को पीठ पर से सरका लेना चाहा, पर उसके हाथ की थर्राहट ने सारी पोल खोल दी।

गौरी ने छूटते ही पूछा—"कहाँ जा रही हो भाभी ?"

"मुँह हाथ धोने। अभी फ़ुरसत हुई है।"

'यह तुम्हारे आँचल के खूँट मे क्या है ?"

"कुछ तो नहीं। अभी आती हूँ।"

बेला को बात उडाने की भी तरकीब न आई !

"देखूँ तो सही !"— कहती हुई गौरी आगे बढ़ी—चट आँचल थाम लिया—बात-की-बात मे माल बरामद कर लिया !

"मुझसे ही उड रही हो ? यह मालपुआ कहाँ बाँधे जा रही हो ?"

वह दूध का खासा सरस मालपुआ था। गरी और बादाम की छालियाँ उसकी पपडियो मे लहालोट थीं। दिनेश ने चुनकर एक काफी गुलगुला मालपुआ उसे भेंट किया था। ऐसे मालपुए तो महज दो दर्जन बने थे—खासुलखास खर्च के लिए।

गौरी की आँखो मे लहू उतर आया और मुँह मे पानी। वह तमाम घर की लाड़ली थी, पर उसे भी कभी यह रसाल—आलय नसीब न था, और उसी रस-खान को यह भीगी बिल्ली बेला लिये जा रही है !

वह टेढ़ी आँखो से बेला को देखने लगी और जरा बुलन्द आवाज़ से बोली—"भाभी, भर-सक तुम्हे चूल्हे की आँच नहीं लगती। मुझमे भी यह अक्ल रहती तो मै भी तुम्हारी तरह खटती।"

बेला बिचारी जबाब क्या दे ? अगर वह यह कहे कि दिनेश ने उसके आँचल मे ज़बरदस्ती बाँध दिया है, तो उसकी उलझनें और भी तरक्की कर जातीं। उस बदहवासी मे उसे और तो कुछ सूझा नही, वह उस पूए को गौरी को देने लगी।

"तुम्हीं रखो गौरी, तुम्हारे ही लिए · · "

"मेरे लिए ?"—गौरी बात काटकर बोली—"क्यो बात बनाती हो भाभी ? मै कब की चटोरी थी ? तुम्हीं क़सम खाकर कहो, मेरी राल कब टपकी है ? मेरी यह लत रहती तो भाई से माँग न लेती ?"

"क्या बात है गौरी ?"—बरामदे से मालकिन की आवाज़ आई। गौरी के गले की गुर्राहट पर आप ख्वाब से बेदार हो गईं और पिनपिनाती हुई आँगन मे निकल आईं।

"बात क्या है माँ, भाभी यही पूआ लिये बाहर निकली जा रही थीं"—गौरी ने उस रस-भरे पूए को दिखाकर कहा।

"पूआ ?"

"दूधवाला मालपुआ !"

"हूँ !"

एक गम्भीर हुकार आँगन मे भर गया। वह गर्जन-ध्वनि दरा-दीवार पर टकरा गई। फिर एक मिनट तक सन्नाटे का आलम रहा। मालकिन की भवें तन गईं; नथने फड़क उठे। उन्होंने तड़प-कर चूल्हे से एक चैली उठा ली और पैतरे पर पड़क कर बेला की पीठ पर पटे का हाथ मारा।

खैरियत हुई, वार ओछा पड़ा, चूंकि बेला खुले किवाड़ की आड मे दबक गई थी, और चैली की जलती हुई नोक पल्ले के अन्तराल पर रुककर उसकी पीठ तक जा न सकी। लकड़ी तड़ाक-से किवाड़ की कोर पर पड़ी और चन्न से चूड़ियाँ टूट गईं।

बेला की पीठ तो एक धमक खाकर बच गई; पर उसकी सास के हाथ की उँगलियाँ काठ की चोट से भिन्ना गईं, और कलाई के इर्द-गिर्द टूटी हुई चूड़ियो की नोकें धँस गईं।

पडितानी के मुँह से एक चीख़ निकली, और हाथ की चैली झन्न से ज़मीन पर जा पड़ी। उनका चेहरा रंज और मलाल से लाल हो

गया, और वे गुस्से के जोश में लपककर बेला को बोटी-बोटी फाड़ डालतीं—अगर बूढ़े मालिक और पुरोहित उसी वक्त हाथ में गगा-जल का मटका लिये आँगन में दाखिल न हो जाते।

पड़ितानी लहू के घूंट पीती हुई मुड़कर आँगन में चली आईं, और बेला सैयाद के पंजे से छूटकर बाहर निकल गई। वह निकल तो आई, पर जी की धुकधुकी गई नहीं। जो होना था, वह आज ही हो जाता! अब तो डर यह है कि मालकिन महीनों कौड़ी-कौड़ी सूद जोड़कर वसूल करेंगी और मर जीकर उसे चुकाना ही पड़ेगा! आखिर वह कहाँ तक लहू के आँसू पीती रहेगी!

बेला ने मन-ही-मन सीता पति राम के चरणों में, राम जाने क्या क्या, दुआएँ माँगी, और सिसकती हुई पिछवाड़े के तालाब पर चली गई। मुँह-हाथ क्या खाक धोती! उसे तो आँसुओं से मुँह धोना बदा था! उसे न भूख थी, न प्यास। सीने में सिर्फ एक आह थी, जो रह-रहकर कलेजे से उठ रही थी।

बेला दस मिनट तक सर झुकाये घाट पर बैठी रही। किसी तरह उसने दिल को समझाया। आखिर क्या करना होगा? डूबकर जान दे देना तो आसान है, पर फिर राम के भजने का जरिया भी तो हाथों से छूट जायगा! अगर वह ऊबकर डूब जाती है, तो फिर वह हर लिहाज से डूब जाती है—लुटिया ही डूब जाती है।

निस्तब्ध अपराह्न—शान्त, उदास, निर्जन। पत्थर के घाट तक झुकी हुई मौलसिरी की डालियाँ तालाब के जल में अपनी छाया देख-देखकर इतरा रही है।

बेला सीढ़ियो से उतरती हुई छाती-भर पानी मे चली गई। सर धोया, हाथ धोया, चुभकियाँ लीं, ठढे पानी मे छप-छप की। अचानक पत्ता खरकने की आवाज कानो पर पडी। पीछे मुडकर देखा। आँखें चार हो गई।

मौलसिरी की एक टूटी डाल पर पैर रखकर, हाथो से टहनियो को हटाता हुआ, दिनेश खडा-खडा उसको एक-टक देख रहा ह। आरती की जलती हुई लौ की तरह उसकी आँखो मे दीप्त कामना की शिखा जल रही ह।

बेला सन्न हो गई। अब वह भोरी न थी। दुनिया के हाव-भाव का उसे काफी अनुभव हो चुका था। शिकारियो की मचान के नीचे रस्सी से बँधा हुआ भैस का पाडा अचानक अपने सामने भूखे शेर की प्रज्वलित आँखो को देख जैसे चौंककर सूख जाता है, कुछ वैसी दशा बिचारी बेला की हुई। इतने दिनो का रहस्य-तुषार आज अचानक फट गया। पल्लवान्तराल से आँखो की इस तीव्र ज्योति ने अतीत की तमाम सशयान्छन्न घटनाओ को उद्भासित कर डाला। दिनेश की बनावटी सहानुभूति की पोल खुल गई।

बेला भीगी हुई साड़ी को सँभालती हुई, सर झुकाये मकान के भीतर चली गई। घटो सिसक-सिसक कर रोती रही। कहे तो किससे कहे—पनाह माँगे तो किससे माँगे। वह पीठ की चोट इस दिल की चोट के आगे कौड़ी के मोल की हो गई!

———

चतुर्थ परिच्छेद

दिनेश का व्याह हो चुका था। पहली स्त्री मर चुकी थी; दूसरी दूध-पीती बच्ची थी—कभी पिता के घर रहती, कभी पति के—कुल दो मील का फासला था।

बेला अशरण-शरण जगत्-पति से बार-बार याचना करती—"नाथ! मेरे इस व्यर्थ यौवन को उमा को देकर इसे सार्थक करो। मुझे अपनी शरण मे जगह दो।"

आदमी सिर चीरते-चीरते बे-सिर-पैर की बातें सोचता है। बेला पगली-सी हो गई। काम करते-करते वह अनमनी-सी हो जाती थी। तवे पर रोटी पड़ी-पड़ी जलती रहती और वह उसे उलटना भूल जाती। दूध उफान लेकर आँच मे छन्न-से गिर जाता, धुआँ उठता और वह बैठी-बैठी चींटियो की क्रीड़ा देखा करती। सास की कर्कश झिड़कियाँ जब कानो पर आकर ठोकरें देतीं, तब वह चौंक कर सामने की दुनिया मे लौट आती।

दिनेश की तो छाया से भी वह डर उठती। अब सास की बात

और लात भी इस भयकर आशका के आगे एक फूल-झरी-सी हो गई। लाख शोर-गुल मे भी दिनेश के पैरो की आहट को उसके कान झट ताड लेते; फिर हृत्स्पदन अकस्मात् रुक जाता—दुगदुगी मे दम हो जाता।

दिनेश जब आकर कभी कुछ उससे माँगता, या कभी कुछ उसे देता, तब वह एक निर्विकल्प आशङ्का से काँप उठती। न देते बनता, न लेते बनता।

बेला की साडी फटी-पुरानी थी। माता की मर्जी के खिलाफ दिनेश उसके लिए एक चौडे किनारे की साडी खरीद लाया। बेला ने उठकर उसे गौरी को दे डाला। दिनेश बहुत झुँझलाया, और उसे वापस ले लेने के लिए बेला से आग्रह किया।

बेला के लिए साल मे एक जोडी मारकीन की मोटी धोती नियत थी, और वह नियति की तरह अटल थी। पारसाल से ससुर के इसरार पर पूजा-घर के लिए एक अलग धोती मिली थी। उसके तन पर साडी क्या थी, पैवन्दो की परिपाटी थी। शायद जाब्ते की पावन्दी की वजह से पैवन्दो पर घर-भर की नजर ओछी पडती थी। आखिर विधवा को धोई धोती से मतलब। उसके लिए सफाई तो जहन्नुम की खुदाई है।

मगर सर पर सिन्दूर के सहार से सौन्दर्य का शृगार तो नहीं छूटता! मोटे मारकीन के अन्तराल से कुछ यौवन का जमाल तो नहीं रुकता! यहाँ तो सीवनो की तह से सोने का गह-गह रग फूटा पड़ता था। उस निखार पर न सास की फिटकार का असर था, न गौरी के दिल के गुबार का।

"तुम्हारी साडी पैबन्दो से भर गई है। क्या इस घर पर तुम्हारा हक नहीं है ? यहाँ क्या बेगार ढो रही हो ?"—दिनेश ने ज़रा तिनककर कहा।

"नहीं-नहीं, मेरे लिए यह किनारदार धोती नहीं है।"

"क्यो ? क्या इसपर सोने का रंग खुल नहीं सकता ?"—दिनेश ने मज़ाक छेड़ा।

"यह सोना नहीं—सूना है। यहाँ रग कैसा ?"—बेला सर झुकाकर ज़रा आहत स्वर से बोली।

"रंग कैसा ! क्या इस सुनसान मे बहार का दौर नहीं फिरा, यौवन का रग नहीं फूटा ? ज़रा इस साडी को पहनो और आइने मे जाकर रग की रॅगरली ·· ·· कहाँ जाती हो ·· ·· ?"

बेला लजा गई। वहाँ से चुपचाप टल गई।

दिनेश की यह सहृदयता उसके कलेजे मे तमञ्चे की चोट की तरह लगी, उसकी आँखो की कोमलता लोहे की तप्त शलाका हो गई। लेकिन वह कहे तो क्या कहे ! हाथ-पैर बँधे पडे थे। नीची आँखे किये सर झुकाकर आँचल को मुँह तक सरका लेने के अतिरिक्त, और बचाव ही क्या था ? और, उधर यह लजाने की चेष्टा दिनेश की आँखो पर बिजली-सी कौधती थी।

लजा-लजाकर आँखो ने कितने लाज और लिहाज़ के मोरचो को तोड डाला, इसे लज्जाशील बेला कहाँतक समझ पाती ? उसका तो यह सहज स्वभाव था। वह इसी आदर्श पर पली थी।

यदि यौवन और सौन्दर्य की चिरन्तन सहचरी लज्जा न होकर

शोखी होती, तो शायद मानव-जीवन का इतिहास इस कदर रोमान्स के छींटो से न रँगता।

शाम का वक्त है। घर मे दीये जल चुके है। आसमान पर बादल छाये है। चैत के महीने मे सावन की-सी फुही। हवा मे हल्की खुनकी।

गौरी चौके मे, चूल्हे के पास, बैठी रोटियाँ बेल रही है। बेला उन्हे उपलो की मीठी आँच पर सेक-सेंककर दिनेश की थाली मे देती जाती है। सामने मिट्टी की दीवट पर चिराग टिमटिमा रहा है। दिनेश कम्बल पर बैठा रोटियो पर हाथ साफ कर रहा है। कभी-कभी बीच-बीच मे भावज की पकाई हुई चने की कढ़ी पर कुछ सरस आलोचना भी छेड बैठता है। कभी आँखे उठाकर तपाये हुए सोने की तरह आग की लौ से लोहित बेला के मुख-मडल को देखता है।

'भाभी, आज की कढ़ी तो जबान से नहीं छूटती! तुम्हारा कमाल का अन्दाज है।"

"गौरी ने बनाई है"--बेला ने दबी जबान से कहा।

"मैने कहाँ बनाई? मै तो अखीर मे आई। सिर्फ दही डाल-कर उतार लिया।"

"जो हो, खटमीठी चटनी भी मात है। तुमने मिर्च मे मिसरी घोल दी है।"

जब भाभी के मीठे इसरार पर दसवीं रोटी थाल मे आ चुकी, तब दिनेश ने गौरी को पान और लवङ्ग की डली लाने के लिए बाहर भेजा। उधर गौरी गई, इधर वह खुद उठकर आँगन मे हाथ धोने चला।

बेला ने आँचल को सर पर सरकाया और जल का लोटा लिये अँचवाने को नज़दीक चली आई। पानी पड़ने से आँगन में फिसलन हो चली थी, या जो बात हो, दिनेश की खड़ाऊँ अचानक फिसल पड़ी और वह धड़ाम से झुकी हुई बेला पर जा पड़ा।

बिचारी बेला इस अनायास धक्के को कहाँ तक सँभालती? वही चित गिरी और उसकी छाती पर दिनेश आ धमका। दिनेश को शायद कमर में चोट लगी; क्योंकि वह उसे थामकर उठ न सका और क्यों न हो, आख़िर वह गिरा भी तो था किसी युवती के कठोर वक्षस्थल पर।

बेला को चोट कहाँ थी, यह वही जानती होगी या उसका अन्तर्यामी। जब वह साड़ी समेटकर उठ खड़ी हुई, तब उसके चेहरे का रंग सुफ़ेद था और आँखें वेदना से जल रही थीं।

इधर आवाज़ पाकर गौरी और उसकी माता दौड़ आईं।

"कल ही इस आँगन की काई साफ़ करा देना; नहीं तो पैर फिसलकर किसी का सर टूट जायगा"—यह कहता हुआ दिनेश बाहर निकल गया।

बेला सिटपिटाती हुई चौके में घुस गई।

———

पञ्चम परिच्छेद

उस दिन कहीं बिरादरी मे शादी थी। सुबह ही तैयार होकर दो मील दक्खिन जाना था। तडके उठकर घर की स्त्रियो ने जूडा बाँधा, माथे पर चटकीली टिकली दी, गोटा-पट्टा-चढे लहँगे पहने, रंगीन दुपट्टे डाले, और जेवरो के मधुर शिञ्जन से मुहल्लेवालो के दिल दिमाग को डावाँडोल करती बैलगाडी मे जा बैठीं।

बेला को साथ ले जाने का तो कोई सवाल न था। उसका शुमार तो आदमियो मे था नहीं।

सोलह साल की विधवा के दिल मे भी कुतूहल उठ सकता है, लालसा सुलग सकती है, या अरमान उमड सकता है—समाज के दायरे मे इस असम्भव कल्पना के लिए जगह नहीं है। उसके लिए तो शम-दम, जप तप, ध्यान पूजन, व्रत-उपवास आदि-आदि दिल बहलाने के हज़ारो सरञ्जाम शास्त्रो ने मुहय्या कर ही दिये है। तब उसे सधवाओ की साध की चीज़ो मे दखल देने की क्या पडी है? उसे तो अपनी साध का श्राद्ध करना है। उसका जीवन शून्य तो है नहीं, और अगर

वह उसे शून्य मानती हो, तो वह पूर्ण भी तो नहीं हो सकता। विधि ने जो कुछ ललाट में लिख दिया है, वह लेख शिलालेख है, उस पर चुना-चुनी करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यही दैव है।

जहाँ जीवन के हर पहलू में दैव का दबदबा है, वहाँ जीवट का ज़ोर कभी उठ नहीं सकता। हम सर झुकाते-झुकाते सर उठाना तक भूल जाते हैं। दैव के पाले पड़कर विवेक के लाले पड़ जाते है!

जो हो, बेला बिचारी अलग रही। इस सिंगार-पटार के सिलसिले में उसका नमूदार होना बेमौका होता। वह कुलच्छनी हाथ बढ़ाती, तो चारो ओर से फिटकार पाती। ननद के ताने का तमञ्चा चढ़ा तैयार था। बेला सामने आई नहीं, निशाना मिला नहीं, लबलबी दबी नहीं।

दिनेश ने लाकर बैलों को सानी-पानी दी, खली खिलाई, गाड़ी तैयार की, और सूरज निकलते-निकलते सबको लेकर चल दिया। रात को किसी वक्त लौटने की बात थी। बूढ़े सरकार अकेली बेला की निगरानी के लिए रह गये। उनकी गाँठ-गाँठ में दर्द था। चलने-फिरने से मजबूर भी थे। बाहर की बैठक में बने रहे, रुद्राक्ष के दाने गिनते रहे।

बेला ने नहा-धोकर धोती बदली, सीतापति की आरती उतारी, रामायण के सुन्दरकाड का पाठ पढ़ा, बताशों का प्रसाद पाया, ससुर के लिए दूध गरम किया, रात का भिगोया हुआ भात खाया, और सूना कोठरी में जाकर न जाने किस आशङ्का से कातर चुपचाप लेट रही। नींद तो आती न थी, सोती-जागती थी।

जेठ की दुपहरिया है। आसमान से शोले बरस रहे हैं। हवा

मे आग लगी है। गर्मी से बदन झुलस रहा है। आसमान से ज़मीन तक भी दुन्द बाँधती हुई आँधी है।

बेला चटाई पर आँखें बन्द किये अपने सुख-दुःख की कहानी दुहरा रही है। उसके जीवन के ताप के आगे यह जेठ का ताप क्या था! उसके हृदय के हाहाकार के आगे लू का हहास क्या था? उसे जीवनभर उसाँसो का भार ढोना है—यही प्रश्न सोते-जागते निरन्तर उसके सामने था। आज भी शायद मन-ही-मन वह इन्हीं साँसो की माला फेरती होगी।

तबतक अचानक किसी तीव्र गन्ध से उसका मस्तिष्क चकरा उठा। उसने उठकर देखा, तो सामने बरामदे मे दिनेश को बैठा पाया। उसके हाथ मे गाँजे की चिलम थी और मुँह मे धुएँ का अम्बार। आँखें गुलाला हो रही थीं। उसकी चितवन से हिंसा के शरारे बरस रहे थे! उसके चेहरे पर क्रूरता का उल्लास था।

पर-कटी कबूतरी के सामने बाज है; घेरे मे पड़ी हरिणी के सामने बाघ है—बेला के सामने दिनेश है!

दिनेश हँसता हुआ उठा और कमरे मे पैर रखा। बेला चिल्लाई और तीर की तरह भागी। बाहर आते-आते चौखट से ठोकर खा, तिलमिला कर, जमीन पर जा पड़ी। कुल्हे मे चोट पाकर वह सन्न हो गई।

दिनेश ने नज़दीक आकर उसके सर पर हाथ फेरा, कान मे झुककर न जाने क्या कहा और फिर जोर से एक क़हक़हा लगाया। वह हँसी की आवाज़ हहास बाँधती हुई आँधी के अट्टहास मे, विलीन हो गई।

दिनेश ने लापरवाह उसे हाथों से उठा लिया। जल्लाद की आँखों में करुणा की एक बूँद भी न थी, उसके दिल के पहलू में लिहाज की एक रेखा भी न थी।

दीवार खसी नहीं, जमीन धँसी नहीं। तारा टूटा नहीं, आसमान फटा नहीं। मगर हाय! एक अबला के जीवन-पारिजात का अमूल्य सौरभ लुट गया!!

अब बाकी ही क्या रहा? जब बाँध ही टूट पड़ा, तब बाढ़ के रेलने में दिक्कत ही क्या थी? वह बिचारी लाख रोती छटपटाती, हाथ जोड़ती, पैरों पड़ती, लेकिन पत्थर पसीजा नहीं—शैतान का पंजा कभी ढीला न पड़ा!

आखिर बेला दलदल में जा फँसी। उसके पैर भारी हो चले। बात फूट गई! कानों-कान किसी को खबर न हो, घरवाले परीशान हो उठे। बेला के किसी तरह कहीं खपा देना ही मुनासिब समझा गया। सबकी आँखों में वही मुजरिम थी। दूसरे की हो जाने की तो गुंजाइश थी नहीं!

दिनेश के चेहरे पर तो एक शिकन भी न थी। उसकी मूँछों की ऐंठ बराबर बनी रही।

बेला ने सब कुछ सुना, सब कुछ समझा। बिचारी करती क्या? जान देने में एक निर्दोष की जान लेनी है, इसलिए आत्मघात से खिंच गई। मानसिक वेदना की अन्तिम सीमा पर पहुँचकर उसे अपना कर्तव्य सूझ गया।

आधी रात बीतते-बीतते लापता हो गई। मुहल्लेवालो ने दो-चार दिन तक कुछ कानाफूसी की। घरवालो ने तो खुशियाँ मनाइ।

दिनेश की गाँठ मे पैसे थे। घर की कोठियो मे अनाज भरा था। फिर भला उसकी आँखे किसी के सामने क्यो झिपती ?

———

खुनते, पढते-लिखते, उसने और क्या क्या सीखा या समझा—तथा आजादी की आबोहवा मे स्वच्छन्द विचरते उसके विचार मे, उसकी चाल-चलन और रहन-सहन मे, कौन-सा अन्तर पड़ा, इसे जानने की रायसाहब को न तो फुर्सत थी, न प्रवृत्ति।

जब बिजली किरण डूबते-डूबते चाय पीकर कपड़े बदलती और मोटर पर सवार क्लब जाते हुए पिता से—"Daddy dear, won't you take me to the Cinema ?" कहकर सामने खड़ी हो जाती, तब रायसाहब अपनी बारह बरस की किशोर कन्या के मुख से अँगरेज़ी के ये अलफाज़ सुनकर पुलकित हो उठते, उनकी मानस-दृष्टि के सामने एक उज्वल भविष्य का मनोहर दृश्य फूट उठता।

विमला ने अपनी युवती कन्या के मस्त चाञ्चल्य को देखा। उसके उच्छृङ्खल हाव-भाव को, उसके स्वाधीन रग-ढंग को, देखकर सहम गई। अब, इस सिन मे, बिना किसी सरक्षण के, बाहर विचरना उसकी आँखो मे काँटो की तरह चुभता था। लेकिन कहे तो किससे कहे ? रायसाहब किसी की सुनने वाले कब थे ? और, किसके जान के लाले पड़े थे जो उनके सामने किसी अप्रिय आशका को ज़बान पर ला सके ?

हाँ-मे-हाँ मिलानेवाले सरकार के रुख के अनुकूल नुमाइशी बातें करते है—यही उनकी रोटी है। उन्हे क्या कुत्ते ने काट खाया था जो वे बाल-बच्चो की रोटी दाल को जवाल मे डालते !

जूतियाँ सीधी करनेवालो की कभी छाती सीधी नहीं होती—न चितवन हो बराबर होती है।

आखिर विमला ने हिम्मत बाँधी, और एक दिन बड़ी चालाकी से इस बात को छेड़ा।

"देखो, अब मुझे ज्यादा दिन जीना नहीं है। सूखकर काँटा हो गई हूँ। बिजली के सर पर सिन्दूर देख लेती, इसी पर जान अटकी हुई है। अब देर मत करो, उसकी शादी कर डालो।"

"क्या पागल की तरह बकती हो?—जान अटकी हुई है। अगर सचमुच उसी पर अटकी है, फिर तो बिजली की शादी में जितनी देर हो, खैरियत है। तुम्हारी ही जिन्दगी से तो सबका कल्याण है।"

पति के इस 'कल्याण'-वाले कलाम को सुनकर विमला के ओष्ठ-प्रान्त पर एक हल्की-सी हास्य-रेखा खिच गई। वह फिर जी बटोरकर बोली—"बिजली सोलह साल की हो चली। बेटी की बाढ बरसाती बाढ से कम नहीं। अबतक तो गोद में बच्चा होता।"

"बच्चा होता! अभी तो बिचारी खुद ही बच्ची है; छुटपन की नादानियाँ तक छुटी नहीं। तुम्हारा बस चलता, तो तुम बचपन ही में इसे सूली पर चढा देती और यह बारहवें में बच्चे की माँ बनकर जान से हाथ धो बैठती। और, अगर किसी तरह बच भी जाती, तो बीस तक आते-आते आधे दर्जन बच्चों की देख-रेख में बताशे सी घुल जाती। अपनी ही हालत क्या नहीं देखती?"

"तो क्या उम्र-भर पढ़ाते ही रहोगे ? कुछ उसे मास्टरी करके पेट पालना है ?"

"तुम क्या समझोगी ? यह कुछ कनकौए उडाना नहीं है ! उसकी तालीम तो देर से शुरू ही हुई। अभी तो इस साल वह मैट्रिकुलेशन में आयेगी। मेरा इरादा उसे बी० ए० तक पढाने का है। और, फिर किसी सिविलियन से शादी ·· ··"

"जो जी चाहे, करो। मुझे इतनी पढाई-लिखाई—ऐसी बेहयाई—नहीं सुहाती। बिरादरी में जो हँसी होती है, उसकी खबर तुमको ··"

"बिरादरी !"—रायसाहब तमतमा उठे—"किसी बेहूदे के हँसने के डर से मैं अपनी लडकी की कुर्बानी में शरीक होऊँ ? और बिरादरी ! जबतक हमारी मुट्ठी में मुहरों की झनकार है, तबतक यह निगोडी सर के बल नाचती रहेगी।"

"तुम्हें बिरादरी की परवा न हो, न सही, पर बेटी से तो बेपरवाह नहीं हो सकते।"—विमला ने बात का पहलू बदलकर कहा—"और नहीं तो, मुझे भी बाहर ही साथ रहने दो। कम-से-कम उस पर एक आँख तो रखूँगी।"

"आँख रखने के लिए आँख चाहिए, विमला ! तुम्हें क्या तमीज है ? मैंने चुनकर एक लाजवाब गार्जियन रख दिया है। तुम्हें झाँकने की जरूरत नहीं।"

"कौन ? वही हिन्दुस्तानी मेम ?"

"और क्या, मिस नैन्सी ! तुम उन्हें खाक समझोगी ?"

"वही बिजली को तुम्हारे घर के कायदे बता सकेगी ?"

"जिस घर मे उसे जाना है, उस घर के कायदे वे ही बता सकेंगी , तुम नहीं। और भला तुम बाहर कैसे निकलोगी ?"

"वाह ! सयानी बेटी के लिए तो परदा नहीं है, मेरे लिए है !"

"वह बेटी है, तुम बहू हो। तुम्हे इस बड़े घर के कायदे पर चलना होगा। तुम्हारे बाप ने तुम्हे रोटियाँ सेकने की तालीम दी, उसका बाप उसे ज़माने की तालीम दे रहा है। तुम्हारी तरह उसे अंडा तो सेना नहीं है !"

"बाप ने न दी, तो तुम क्यो नहीं देते ?"—विमला ने आँसू रोककर कहा।

"अब देकर क्या होगा ? आजकल बगैर अँगरेजियत की बुकनी के रंग नहीं जमता। अब तुम पर क्या ख़ाक रग चढ़ेगा ? हिन्दी भी तो नही जानती। बुढिया सुग्गी भी कहीं पोस मानती है ? तुम्हे सोसाइटी के सलीके समझाना दिमाग खाली करना है। तुम्हे न चाय पीना आता है, न ब्रिज खेलना। तुम किसीसे न आँख मिला सकती हो, न हाथ। तुम्हे न ताज़ीम की तालीम है, न अँगरेजी बोलचाल की तमीज़। आदमी की शक्ल होने ही से किसी को आदमी की अक्ल नहीं होती। तुम्हे परदे से बाहर करना तुम्हारी सज़ा होगी, मेरी भद्द होगी।"

"बच्चो को भी तो तुमने अलग ही कर दिया !"—विमला एक छन चुप रहकर बिललाती हुई बोली।

"अलग करना ज़रूरी जान पड़ा। तुमसे उनकी देख-रेख नहीं हो सकती !"

"एक-आध घडी भी तो आने नहीं पाते !"

"यहाँ आने से फायदा ? उन्हे अभी से अगरेज़ी बोलचाल की लत देनी है। मेम-नर्स की निगरानी मे पल रहे है। उन्हे साल-दो-साल मे इगलैड भेजकर 'हैरो' या 'इटन' मे भरती कराना होगा।"

"जब मै किसी लायक ही नही, तब मुझे बाप के घर भेज दो। यहाँ तो पडे-पडे कौए उडाना है।"

"बाप के घर जाकर तो जाने क्या कर लोगी ? वहाँ कुछ सोने की फसल नहीं होती जो जाकर निहाल हो जाओगी। क्यो भूल रही हो विमला ? तुम एक दिन क्या थी, और आज क्या हो ? तुम्हारे बदन पर और नहीं तो दस हज़ार के जेवर इस वक्त भी मौजूद है !"

"इन जेवरो को उतरवा लो। हाय ! मै सोने की हाट मे लुट गई !"—विमला का गला रुँध गया।

"ज्यादा चीं-चपड करोगी, तो दाना पानी भी बन्द करवा दूँगा !"—रायसाहब उबल पडे। फिर हाथ की छड़ी घुमाते चल दिये।

सोने का पिजडा भी पिजड़ा ही है। हाथी दाँत की तीलियाँ भी तीलियाँ ही हैं। सोने से अंग भरता है, मन नहीं भरता—रग खुलता है, दिल नहीं खुलता।

वह बिचारी सीकचो पर पख पीटकर थक चली थी। अब उन सीकचो की मीनाकारी मे कोई कशिश बाकी न थी।

रायसाहब खुद आबनूस का कुन्दा थे; इसलिए वे देख-भाल

कर बिरादरी की एक विलायती रगवाली लड़की मोल ले आये थे, ताकि खानदान का रग तबदील हो, उनके बच्चे नर्सों की गोद मे अँगरेज़ों के बच्चे नज़र आये और सयाने होकर कोट-बूट मे लैस अँगरेज़ों के रग मे रङ्ग मिला सकें।

विमला खानदान मे रंग भरने आई थी, रग भर चुकी। उस कुल कालिन्दी के कालापन को गोरी गगा की लहर बहा ले गई। जब तक उसमे गुलाब का रग था, तबतक उस घर मे उसका रंग जमा रहा। अब तो उसमे न रग ही रहा, न रंग भरने का ज़रूरत ही रही। आखिर रायसाहब ने रग बदला, तो उसने बड़े घर मे आने का—जमाने का—रग समझा।

जब पति ईद का चाँद हो गये और उसके बच्चे बाहर मेम के सुपुर्द हो गये, तब वह बूढ़ी गाय की तरह घर मे निकम्मी हो गई। अब तो न पति का प्यार रहा, न बच्चो पर अख्तियार और न दुनिया से सरोकार। बस, रह गई जेवरो की झनकार, और आँगन की तुलसी के गाछ के आगे फूल-चन्दन के उपचार।

वह कहलाती तो थी घर की मालकिन, मगर बन गई पिंजड़े की बन्दिनी। उस आँगन की चहार-दीवारी के बाहर जो विराट् विश्व था, उसकी उसे खबर तक न रही। उसकी मुसकान का दुनिया मर्यादा की मौज मे डूब गई। एक तो रायसाहब का बँगला अलग शहर के दामन पर था, दूसरे कभी बिरादरी से कोई आमद-रफ्त तक न थी।

कौम मे बड़ा होना भी मामूली बखेड़ा नहीं होता। हम सबके

बड़े होकर सबकी आँखो पर चढ़े रहते हैं। हम सबसे अलग रह कर सबके दिल से अलग हो जाते है।

रायसाहब को तो क्लबबाज़ी थी और दोस्त-दरबारियो की चापलूसी। विमला को सुबह की शाम करना एक आफ़त का सामना करना था। वह भरी माँग और भरी गोद लिये बड़े घर के बड़प्पन के निदारुण वायुमडल मे सूख चली। उस शीश-महल की आसाइशो की तपिश मे पल पल घुलने लगी।

सूखे होठो मे रस-भरी जलेबियाँ भी फीकी लगती है। सूनी सेज पर मखमली चादर काँटो की तरह चुभती है।

छोटी बहन गरीब के घर पडी थी, पर सुख स्वाच्छन्द्य के राज्य की रानी थी, और यह जो राजा की रानी बनने आई थी, आखिर होकर रही कैद की दीवानी। वे जरी-इन्दौर-बार्डर चढी क्रीप-डी शीन की साडिया अगो पर अट्टहास भर रही थीं। वे हेमिल्टन की बनी हीरे पन्नो मे पगी सतलरी और चूडियाँ गर्दन और हाथ की बेड़ियाँ बन गईं।

वह जेवरो की जजीरो की झङ्कार सुनती, किवाड़ पर कान देकर बाहर मचलते हुए बच्चो पर मेम-नर्स की फिटकार सुनती और वहीं कलेजा थामकर आँगन मे बैठ जाती। उसकी बाँदी आकर नौकरो से बाहर सुनी हुई रायसाहब की शानोशौकत की—उनकी महफिल-मजलिसो की—दिलफ़रेब कहानियाँ नाक-भौं मटका कर उसको सुनाती रहती और वह रेशमी साड़ी के आँचल को ऊँगलियो मे लपेटती हुई सोचती जाती कि शायद भगवान जहाँ धन

देता है, वहाँ मन नहीं देता—जहाँ मोती की खेती होती है, वहाँ नेह की हरियाली नही रहती। क्या सगमरमर की पटियो के साये मे संगदिली ही घर बनाती है? सुहाग से भरे घर मे दिल की कसक पर सिसकना भी उसके लिए गुनाह मे दाखिल था!

जब फूस की झोपडी की दुखिया रोती है, तब उसकी कराहो की चीख मुहल्ले टोलेवालो के कानो पर टकराती है—शायद कलेजे तक भी कँपा जाती है। मगर जब महल की रानी रोती है, तब जान अन्दर-ही-अन्दर घुलती रहती है, उस छिदी हुई छाती के चीत्कार को फिरिश्ते भी नहीं सुन पाते। तिनको के फॉक से कोने के कङ्काल पर किसीकी आँख पड जाना कोई कमाल नहीं, मगर अट्टालिका के कगूरे देखनेवाले—इठलाते संगमरमर के अट्टहास के अन्तराल म संचित—उसाँसो की अट्टालिका नहीं देख पाते।

भला दुनिया को क्या पड़ी है जो दौलत के दिल के दर्द को टटोले! उसकी दलील साफ़ है। जब जमाने की हसी छीनकर महल की माया हँसती है, तब फिर उसकी आँख के आँसू कौन पोछे! जिस सुनहली दीवार की गँथनी मे हजारो का लहू-पानी एक होकर लगा है, उसकी फटती दरार को कौन भरे! जिस दर पर नौबत के दमामे का रोल कितनी सिसक—कितनी फरियाद—की आवाज़ को आठो पहर पचा डालता है, भला उस घर की छाती की चीख कौन सुने—उस बेदर्द के कलेजे की पीर को कौन समझे! शायद जिसकी हँसी आकाश चूमती है, उसके आँसू पाताल मे ही पनाह पाते हैं!

हमारे होठो पर घी की चिकनाहट से कहीं ज्यादा ज़रूरी जी

की चिकनाहट है। हमारे चेहरे पर अगर आत्मा की प्रसन्नता न रही, तो फिर हीरे मोती की चन्द्रिका रही या न रही, दोनो बराबर हैं। सुहाग के फूल मे अगर प्रेम का पराग न रहा, तो वह खिला या कुम्हलाया, दोनो एक सा है।

बडा घर कोई जरूरी नहीं कि सुख का घर भी हो, बडा आदमी कोई जरूरी नहीं कि दिल का भी बडा हो। अक्सर बड़े घरो के भीतर क्षुद्रता बढी रहती है, अक्सर भरे घरो के भीतर शून्यता भरी रहती है। राजा होने से कहीं ज्यादा ज़रूरी बन्दा होना है। सर पर ताज की तलाश से कहीं ज्यादा जरूरी आदमी के लिबास की तलाश है।

मानचन्द्र के सर पर रायसाहबी की कलँगी उनकी शान के लिए जरूरी थी। पर, अगर सर पर आदमीयत की पगडी भी रहती, तो उस तुर्रे का तुर्रा होता।

आदमी की शक्ल किंवा आदमी की अक्ल होने ही से किसी की आदमी मे गिनती नहीं होती। आदमी की पहचान आदमीयत है, दूसरी नहीं। सर पर सुरखाब का पर बाँधने से कोई गरीब-परवर का नाम नहीं पाता। ऊँची टोपी से हमारी नाक ऊँची जो हो, उससे हाथ और दिल ऊँचे नहीं होते, और न गाधी-टोपी की सादगी से किसी मे गाधी की खाकसारी आती है, न गाधी की बुलन्दी। गाधी-टोपी की उमंग और है, गांधीत्व की गध और।

तृतीय परिच्छेद

उसी मुहल्ले में रायसाहब के मकान के आस-पास पेंशनयाफ्ता डिप्टी-कलक्टर मुन्शी माजिद अली की कोठी थी। मुन्शीजी ने बड़ी रंगीन तबीयत पाई थी, मिजाज में नरमी थी, जबान में मिसरी। वे लोकप्रिय भी थे और व्यवहार-चतुर भी। साहबों को हाथ में रखना कोई उनसे सीखता। खुशामद का उन्हें खास माद्दा था।

रायसाहब तो उनके हाथ में बिलकुल मोम थे। मगर मुन्शीजी इस हाथ की कठपुतली के आगे हाथ बाँधे खड़े रहते थे, ताकि मानचन्द्र की शान का पारा सातवें तबक पर बराबर ठहरा रहे। वे बात-की-बात में रायसाहब को चंग पर चढ़ा देते और फिर चंगुल में खींचकर चुटकियों पर नचाते रहते।

रायसाहब की मोटर शाम के पाँच बजते-बजते मुन्शीजी के बँगले की बरसाती में आकर खड़ी हो जाती; फिर दोनों दोस्त साथ-साथ क्लब जाते और साथ-साथ घर लौटते थे।

उन्हीं की सलाह से रायसाहब ने बिजली को मिशन-स्कूल मे भरती कराया था। उन्हीं की राय से, उस स्कूल की हेडमिस्ट्रेस मिस नैन्सी अहमद, बिजली की देख-रेख के लिए, नियुक्त हुई थीं।

मिस साहबा की उम्र लगभग चालीस की होगी। पारसी बज़ा मे रहती थी। आपके पिता मिस्टर अहमद ने चमड़े के कारबार मे एक खासी रकम पैदा की थी और विलायत की सैर मे जाकर अपनी लैड-लेडी की भतीजी के साथ, बेगमो के सौभाग्य का चकमा देकर, शादी कर ली थी। उनकी ही एक सन्तान हमारी मिस नैन्सी अहमद है।

विलायत की कर्म-कुशलता, भारत की भाव-प्रवणता—उस पार की विलास-प्रियता, इस पार की लज्जा-शीलता—वहाँ की निर्भीकता, यहाँ की कोमलता—इन दो विरोधी भावो के सघर्षण से मिस अहमद की धमनी का रक्त निरन्तर चचल रहता था। और, इस भीतरी घात-प्रतिघात का असर आपकी प्रकृति पर भी पडा था। आपमे शोखी थी, तो लज्जा भी थी। काम करने का अदम्य उत्साह भी था और कभी घटो किसी मधुर आवेश मे विभोर रहकर सुख-स्वप्न जोहने का अवकाश भी था। आपकी मिठास तो पैवन्दी की लज़्ज़त-भरी मिठास थी: भला देशी बीजू मे यह लुत्फ कहाँ तक मुमकिन था!

आपने कभी शादी की या नही—इसकी तहकीक खबर किसी को न थी। बेशर्म पब्लिक की कुतूहली प्रवृत्ति ने आपके अतीत

को कुरेद-कुरेदकर कितने ही गडे मुर्दों को उखाड डाला था; और यही वजह थी कि समाज की नाक मे आज भी उनकी दुर्गन्ध मौजूद थी।

लेकिन आपकी जबान मे, मुस्कान मे, अगो के मरोड मे तथा चितवन की कोर मे कुछ ऐसा जादू था कि सामने सर उठानेवालो के सर चढकर बोलता था। शरीफो के महलो के भीतर भी बेखटके आपका गुजर हो जाता था। एक बार अवरोध के प्राचीर को तोडकर आप अन्तःपुर मे जा पडतीं, फिर तो अपनी खुश-मिजाजी से—अपनी आजिजी से—बच्ची, युवती, सभी के दिल पर कब्जा कर लेतीं, मखमली शिकजो मे बाँधकर उँगलियो पर नचाती रहती।

छोटी-छोटी लडकियो के बाल बढाने का मसाला बराबर आपके पास था, विवाह-योग्य तरुणी के चेहरे से मुहाँसे दूर करने का मरहम आपके हैंड-बेग मे मौजूद था, प्रेम पीडिता नव-वधू के कान मे झुककर दर्दे-दिल की दवा बता देना आपकी कुशलता का द्योतक था, खुशरंग साडी से मैच करता हुआ सस्ते बॉर्डर का पता आपकी जबान पर था, नये फैशन की खुली गर्दन का जम्पर 'फिदा दर्जी' की दूकान से दो घटे मे सिला देना आप ही का काम था; और बूढी मालकिन की रीढ से दर्द को मुलायम उँगलियो की मालिश से काफूर कर देना आपके बाएँ हाथ का खेल था।

मुन्शी माजिद अली से मिस साहबा की बरसो की मुलाकात थी। मुन्शीजी की सिफारिश से रायसाहब के घर उनकी रसाई

हुई और दो ही दिनो मे मानचन्द्र पर सिक्का जम गया। बिजली उनको सौप दी गई। फिर क्या था? सोने मे सुगन्ध का मेल हुआ! नई रोशनी की तालीम का सिलसिला जारी हुआ।

पहला सबक बिजली ने फेशन मे लिया। कानो मे नई काट के मोतियो के झुमके लटके; गर्दन मे एक पतली सोने की चेन पडी रेशमी पेटी-कोट के ऊपर उसने नये ढग की साड़ी पहनी, बॉडिस के ऊपर खुश रग बॉयल के नये डिजाइन का ज़म्पर खिल उठा।

अब वह सामने की माँग को किनारे पर सरका ले गई। कलाई पर फैसी सोने की घडी जा पड़ी। हाथो मे कभी-कभी रेशमीचूडियाँ चमकतीं, गले मे स्वस्तिका-लॉकेट लटकती। छातीपर एक से एक इनेमिल-ब्रूच आये।

दूसरा सबक उसने दुनिया की अभिज्ञता का लिया। आँखें उठाकर उसने जगत् की विचित्रता देखी, उसकी समग्र चेतना चचल हो उठी। उत्तेजित कल्पना ने ससार के रङ्ग रूप मे एक नई लज्जत, एक नई चाहत, एक नवीन नन्दन, एक अनजान स्पन्दन का पता बताया। विश्व ने उसकी आँखो के सामने लावण्य और लीला की डाली ला रखी।

अब वह बेरोक-टोक स्कूल जाती, लॉन के सब्ज़ फरश पर बैठकर बोर्डिङ्ग हाउस की मिसो के साथ 'सेक्स' के सरस प्रश्नो पर घटो आलोचना करती; हिन्दी और उर्दू के रस-भरे नाविलो का अर्क़ निचोड़ कर मन-ही-मन-पीती रहती; दूकानो मे जाकर नये-

नये पैटर्न की साड़ियाँ देखती— क्रीम और सेट की शीशियाँ खरीदती। कभी मिस अहमद के साथ म्युनिसिपल पार्क में जा टेनिस और हॉकी खेलकर लौटते हुए कालिजों के लड़कों की अठखेलियाँ देखती, फिर सिनेमा के परदे पर नई रोशनी के, नायाब तरीके के साथ नाचती-गाती तस्वीरों के, प्रेमालिंगन और मस्त चुम्बन की स्पष्ट जोशीली सीनों को, आँखों में प्राण भरकर, एक टक हेरती।

कमसिनी को तबाह करनेवाले इन नजारों को देख-देखकर उसकी धमनी का रक्त-प्रवाह न जाने किस आवेग से चंचल हो चला और साथ-साथ एक-नई आकांक्षा—एक तीव्र बुभुक्षा—जग उठी।

रायसाहब ने बिजली की नई सज्जा-सज्जा को देखकर उसकी रुचि की प्रगति समझी, उसके अँगरेजी बोलचाल के दो-चार सलीकों को देखकर उसमें प्रतिभा का प्रकाश पाया।

मिस साहबा ने रायसाहब की नब्ज़ काफी पहचान ली थी। दो दिन में उनका जी भर दिया। आतिशबाजी की फुलझरियाँ बेकार न गईं। रायसाहब उस चमक के चकमे में आ गये।

अब वे बिजली को कभी-कभी पार्टियों में ले जाकर अपनी नुमायशी प्रगतिशीलता का इजहार करते और जिलाधीश की बीवी के मुँह से बिजली की निस्वत भद्रता सूचक प्रशंसा सुनकर आत्म-गरिमा से फूल उठते थे। अब बिजली के जरिये उनकी बड़े-बड़े अफसरों के घर लंच और डिनर पर रसाई हो गई। जहाँ

जहाँ वे अकेला मैदान लेने में हिचक रहे थे, वहाँ वहाँ बिजली की मदद से उन्हें काफी सुगमता मिल गई। फिर क्या था, रायसाहब ने बिजली को सर पर रखा, और उड चले।

रायसाहब आँख रखते हुए भी अपनी आँख की पुतली को नहीं देख पाते। उनको आँखों में स्नेह की चर्बी तो थी ही—शान की गर्मी भी थी। उनकी आँखों का तारा उनकी आँखों पर छा गया। वे न आठों पहर उसे आँखों पर बिठाते न यों आँखें बैठतीं।

शिक्षा का अर्थ चरित्र का गठन है, किसी भाषा का मनन नहीं। सच्ची तालीम से स्वच्छन्दता नहीं आती, आत्म निर्भरता आती है। फिर, आत्म-निर्भरता और स्वच्छन्दता में आकाश-पाताल का अन्तर है। शिक्षा नारी सुलभ लज्जा को नहीं तोडती, रवछ लज्जा की लज्जा को तोडती है। युनिवर्सिटी की डिग्रियाँ किसी की शिक्षा की सूचना नहीं देती, महज उसके मस्तिष्क की क्षमता—उसकी प्रतिभा की सूचना है।

ज्ञान और अर्थ का सञ्चय शिक्षा का विकास नहीं है। सयम और त्याग का सञ्चय सच्चा आदर्श है।

विदुषी होने ही से कोई शिक्षिता नहीं होती। बाहर की साज-सज्जा—बाहर की सफाई-चिकनाई—से किसी के अन्तर की कलुषता नहीं जाती। स्त्रियों की शिक्षा उनके अन्तर की महत्ता है; सेवा और सयम की क्षमता।

रायसाहब ने मुलम्मे को असली रंग समझ लिया, और इसी

मुखपात को दिखाकर मिस साहबा ने अपना उल्लू सीधा कर लिया।

लगाम कड़ी कर खींचने से घोड़ो के पैर उखड़ जाते है, लेकिन रास बिलकुल ढीली कर देने से ठोकरें खाकर गिरने का डर कुछ कम सकट-प्रद नहीं है। परदा तोड़ना कुछ बुरा नही। परदे के भीतर, महलो और अटारियो के अन्दर, अत्याचार और फिटकार बेशुमार है, लेकिन परदे से बाहर जाने का अजाम बेपर्दगी नहीं है। घूँघट को सर पर सरका लेने का मतलब बेहयाई नहीं है। स्वाधीनता का विकास स्वेच्छाचारिता नहीं है। स्वराज्य का मतलब अराजकता नहीं होता।

बिजली सकीर्णता के पञ्जे से छूटकर उलङ्ग विलासिता के पाले जा पड़ी। एक तो स्वभाव से ही उसे आन-बान पसन्द था, जन्म से ही उसने रगीन तबीयत पाई थी। अब सोहबत और तालीम मिजाज के अनुकूल ही मिली। वह परदे की गडी से तो बाहर आ गई, लेकिन उसकी समझ पर परदा पड़ा ही रह गया। परदे के बाहर ही परदे की निरन्तर ज़रूरत है, इस सत्य को वह नहीं समझ सकी।

स्त्रियो का परदा उनका स्वभाव है। उनकी चेष्टा है—कुछ घूँघट नहीं, किवाड़ का पट नहीं। और, यह सहज परदा तो बराबर रहना है, परदे के बाहर हो या परदे के भीतर।

बिजली कुएँ से निकलकर एकबारगी समुन्दर मे जा पड़ी।

———

प्रथम खण्ड

बिजली

प्रथम परिच्छेद

रायसाहब भानचन्द्र हमारे शहर के एक नामी-गरामी रईस है। रईस क्या, रईस-आजम हैं। गोल-मटोल, गुलथुल बदन, मयाना कद, गाढा सॉवला रग, खिचड़ी बाल, आम की फॉक-सी आँखें, आँखो पर चश्मा, चेहरे पर चेचक के दाग, मूँछें सफ़ाचट; एक खासे जेंटिलमैन।

आपको शकील करार देना खुशामद मे दाखिल है और बद-शक्ल कहना एक शरीफ़ की शिकायत है। पिता से आपको एक काफी मोटी रक़म हाथ लगी थी। बैको से सूद की खासी आमदनी थी। पचीस हजार मुनाफे की ज़मींदारी। कोई ख़ास धन्धा नहीं; मगर कभी-कभी शेयर-मारकेट की उलट-फेर मे दिलचस्पी ज़रूर थी। आपके दिमाग़ मे उपजाऊ स्कीमो की कमी न थी; मगर जमकर किसी काम मे डट जाने की न हिम्मत थी, न आदत। आप हर साल डरबी की लाटरी मे अपनी क़िस्मत की आज़माइश

करते; हर साल बड़े दिन की तातील मे कलकत्ते जाकर कप-रेस मे बाज़ी खेलते। कभी कुछ हारते, कभी कुछ जीतते।

व्यवहार मे समझौते की नरम नीति आपकी सहचरी है। मगर कभी शान के उफान मे कदमो का दायरे के बाहर भी फिसल पड़ना नामुमकिन न था। यह तय है कि आप किसी तबके की क्रान्ति को दूर ही से प्रणाम करते थे, मगर साथ-साथ लकीर के फकीर बनकर परम्परा का दामन थामे चलना भी आपको बिलकुल नापसन्द था। इसलिए आप खुद 'श्याम और कुल' दोनो को निबाहकर चलते थे।

कभी पर्व-त्योहार के दिन सुबह ही उठकर मोटर से गगा नहा आते, ललाट पर रोली और चन्दन का तिलक देते, और लौटते वक्त अपने पूर्वजो के मन्दिर मे मिसरी और मुनक्के का प्रसाद पाते; फिर शाम होते-होते रैनकीन के सिले हुए चेक-सूट पहन—दो-चार मनचले मित्रो की कम्पनी मे—क्लब मे जाकर चुरुट, चाय, पेग और ब्रिज की चकल्लसबाज़ी का भी मज़ा लूटते थे।

इधर पडितो के इसरार पर, सत्यनारायण की पूजा के दिन, पत्नी के आँचल से गाँठ बाँधे, भूखे-प्यासे रहकर, कलावती कन्या की दास्तान सुनने मे या पूजा के अनन्तर पञ्चामृत और पञ्जीरी का प्रसाद पाने मे, आपको लज्जा न थी। और, उधर हम-नेवाले हम-प्याले मुस्लिम दोस्तो के घर फरमाइशी मुर्ग-मुसल्लम, पुलाव और कोरमे की सरस उपासना मे कभी द्विधा न थी। होटलो के प्राइवेट कक्षो मे जाकर, करंटे साहबो की गोरी मिसो के साथ,

डिनर और लंच की लपेट में, विलायती बोतलों के विलास में भी कोई बाधा न थी। कभी सरकारी अफसरों को शैम्पेनपार्टी देकर साहबों और मेमों की गर्दन में बनारसी गोटे की माला डालते, कभी खद्दरधारी लीडरों के साथ, स्वदेशी नुमाइश की कार्यकारिणी कमिटी के मेम्बर बनकर, दुन्द बाँधे ढिंढोरा पीट-पीट देशी शिल्पों के आयोजन में एक हद तक सहयोग देते थे।

हमने आपको एक दिन सुबह में सङ्कीर्त्तन-सम्मेलन के सभापति की गद्दी पर बैठे-बैठे वैष्णव भक्तों के करुण कीर्त्तन पर तल्लीन होकर आँसू बहाते देखा है, तीसरे पहर आर्य-समाज के मन्दिर में, स्वामी सत्यानन्द की रोमाञ्चप्रद स्पीच पर मुग्ध होकर, शुद्धि और अछूतोद्धार के प्रस्ताव पर हाथ उठाते देखा है। फिर उसी दिन, सायकाल के बाद, लाला श्यामलाल की प्राइवेट महफिल में, तबले की थाप पर ठुमुकती हुई केसरबाई की ठुमरी—'पिया के सँदेसा लेके आई है बदरियाँ'—पर, ब्राडी का प्याला हाथ में लेकर, मस्त झूमते भी देखा है।

रायसाहब की गिनती इने-गिने लोगों में थी। गिनती अमूमन रुपये से ही होती है, और उस मद की आपको कमी न थी। मैट्रिकुलेशन तो आप ज़रूर पास थे, पर कालिज में दो बरस रहकर आपने फैशन की ही तालीम ली थी। शीन और काफ तो दुरुस्त न हुए, मगर लाम-काफ काफी आ गया, और लिफाफा बदल डाला!

'अरबी न फारसी, भैयाजी बनारसी' वाला मज़मून था। साहबों की सोहबत में साहबियत की तरक्की होती रही। अगर सर पर

कहीं डिग्री का हुर्रा रहता, तो शायद आप तमाम जमाने के सर पर क़दम रखते। आपके आचार विचार क्या थे, आपकी आस्था कहाँ थी, आपका विश्वास क्या था, आप किस धुन के धुनी थे—शायद आज तक इसका पूरा पता किसी को न चल सका। जिधर की हवा होती, उसीके अनुकूल आपकी जीवन-तरी आप-से-आप बहती रहती। दस की जबान पर आपका नाम हो, दस के आगे आपका मान हो, यही तमन्ना आपकी छाती में धक-धक जलती रहती।

आपके मिज़ाज में मक्खन भी काफी था, मगर जबतक खुशामद की मथनी न होती, तबतक नमूदार न होता। जुड़ी हुई करतालियों की आजिज़ी, झुकी हुई गर्दनों की खाकसारी और दरबारियों की शीरी ज़बान की चाशनी आपके प्राणों में अमृत उँडेल देती, और इसी कुहुक-कूजन—इसी कपोल-कीर्त्तन—में मस्त आप फूले न समाते थे।

दुनिया में खुशामद-सी नशीली कोई मदिरा नहीं है, और जिसने इसके दो घूँट भी पी लिये, उसपर और सुरूर कोई क्या होगा?

रायसाहब की सारी सार्वजनिक चेष्टाओं की यही भित्ति थी। उनके आचार-विचार, व्यवहार-व्यापार, हर बात में इसकी गंध थी।

मान और शान का परिणय, बिना चरित्र-बल के, इस जमाने में नामुमकिन है; इस सत्य को पहचानने का उनमें संस्कार न था।

मनुष्यत्व का सच्चा द्योतक चरित्र है। प्रतिभा की सतेज दीप्ति भी शील और चरित्र के सौम्य प्रकाश के सामने धुँधली है। स्पर्द्धा की

आँच तो काँच की माया-रश्मि है, जो महज़ मोह और स्वार्थ के अँधेरे में क्षण-भर चमक पाती है।

शायद रायसाहब की सार्वजनिक चहल-पहल कुछ आन्तरिक नहीं थी, वह हाथी के दिखाने के दाँत-सी थी। खाने के दाँत तो हाकिमों और अफ़सरों की खुशामद थी, और उसी खुशामद के ज़रिये स्वार्थसिद्धि या उपाधि-प्राप्ति।

हमारे रायसाहब ज़बरदस्त हुक्कामरस थे। साहबों की दिलजोई और मेमों की मुसकानजोई आपके लिए मनुष्य-तन पाने का चरम लक्ष्य थी। नीले नैन की मुसकान-भरी चितवन तो आपके जीवन की सुधा-सञ्जीवनी थी। आपके कमरे की दीवारों पर दर्जे-ब-दर्जे अफ़सरों और लेडियों के दिलफ़रेब फोटो की भरमार थी। आपके हाथी-दाँत के कलमदान में गौराङ्ग-देव-देवियों की कर-कमलाङ्कित—गुलाबी रेशमी रिबन में बँधी हुई—सैकड़ों थैंक्स की चिट्ठियाँ भरी पड़ी थीं। बड़े-बड़े अफ़सरों के घर से लंच और डिनर के नवेद की जितनी भीनी-भीनी रंगीन चिट्ठियाँ आपको मिली थीं, सब-की-सब करीने से सजाई रखी थीं। गवर्नमेंट-हाउस की मुहर लगी हुई थैंक्स की चिट्ठियाँ तो आपके वालिदमाजिद के वक़्त ही से, खानदानी तबर्रुक की तरह, दस्तावेज़ों के सन्दूक में, अलग हिफ़ाज़त से, बाक़ायदे तह लगाकर, रखी थीं और, रायसाहब, बातों के सिलसिले में, उन्हें आहिस्ते से मँगवा कर, प्रत्येक हिन्दुस्तानी और विलायती आगन्तुक के सामने, बड़े तपाक़ की आज़िज़ी से इतराते हुए, पेश किया करते थे। आपकी रायसाहबी के खिताब का फ़रमान, सुनहरे

फूलदार फ्रेम में मढा, ड्राइङ्ग-रूम की गोल मेज़ पर बराबर सुसज्जित रहता था।

आपके हृदय की आकाशचुम्बी राजभक्ति के साये में एक थोड़ी सी जगह पितृ-भक्ति के लिए भी जरूर थी। बाईं ओर की दीवार के एक कोने में, साहब-बहादुरों के फोटो की फौज की छत्रछाया में, बन्दनवार चोगे और समले में, सर झुकाये, जिन महानुभाव की तसवीर थी, वे आपके पूज्य पिताजी थे। यह कोई मामूली फख्र की बात नहीं कि एक जमाने के रेलवे के ठेकेदार लाला ईश्वरचन्द्र को, विलायती असबाब से सुशोभित इस ड्राइङ्ग-रूम की दीवार पर, बड़े-बड़े भूदेवों की पांत में खड़े होने की जगह मिल गई थी। जिन भूदेवों के सामने जीते-जी उन्होंने भूलकर भी कभी नजर तक न उठाई होगी, आज मरने के बाद उन्हीं नर-कुञ्जरों के चित्र-चक्कले में उनकी रसाई हो गई—इसे प्रारब्ध नहीं कहते, तो और किसे कहते हैं? साहबों के पद-प्रान्त पर सर झुकाते-झुकाते उनकी कमर तक भी झुक गई थी, पर इस झुकाव के जरिये जिस मोटी रकम को उन्होंने बगाल-बैंक में ठेल दिया था, उसके दबदबे के आगे आज कौन सर उठा सकता है?

यद्यपि मानचन्द्र के खून में साहबों की खुशामद का मादा बपौती देन था, तथापि आप इस मद में बाप के भी चचा निकले। यों तो, आपके यहाँ से आम के मौसिम में आम की डाली, फूलों के मौसिम में फूलों के तोहफे, परिन्दों के मौसिम में परिन्दों की नज़रें—तीतर, बटेर, टील और मुर्गाबियाँ—अफसरों के घर बराबर जाया ही करती थीं; मगर बड़े दिन और नव वर्ष

की शुभ-कामना के अवसर पर फूलदार कार्डों के साथ-साथ फूल और फलहरी, केक और पेस्टरी, मुर्ग और टरकी, शैम्पेन और शेरी की डालियाँ, जिस इन्तज़ाम के साथ बड़े-बड़े तश्तों में सजाकर, नई वर्दी पहने दरबानों के सर पर, प्रत्येक छोटे और बड़े साहब के बँगले पर पहुँचाई जाती थी, उसका बयान रायसाहब ही कर सकते हैं, दूसरे से तो कभी मुमकिन नहीं।

रायसाहब मौके-बे-मौके खर्राच भी थे। पारसाल खिताब के जल्से में विलायती बोतलों के पर्वत से आपने जो दरिया बहाया था, उसपर तारीफ के पुल बाधनेवाले आज भी शहर में घर-घर मौजूद हैं।

रायसाहब ने साहबों के सामने सर झुकाने में जो मश्शाकी हासिल की हो, पर अपने देश-भाइयों के सामने तो कभी आपके सर में बल तक न आने पाता था। उधर आज़िज़ी, इधर हेकड़ी; यही शान थी। और, उस शान की कमी आपकी जॉकनी थी।

मुहल्ले के वीरेश्वर बाबू की बड़ी लड़की जिस दिन बी० ए० की डिग्री लेकर ट्रेन से उतरी, और स्टेशन पर दस-पाँच मित्रों के साथ आपको भी अभ्यर्थना के निमित्त जाना पड़ा, और वहाँ इकट्ठे मनुष्यों के दृष्टि पथ पर आपने विदुषी कन्या के पिता के गौरव मंडित प्रसन्न मुख को देखा, उसी दिन आप के मन में यह भावना दृढ़ हो गई कि अपनी कन्या 'बिजली' को भी ग्रेजुएट बनाकर किसी सिविलियन के हाथों में अर्पित करें।

आप भला किसी से कम क्यों होंगे? इरादा हुआ कि बिरादरी

के किसी मेधावी छात्र को चुनकर अपने खर्च से विलायत भेज दे, ताकि वह एक दिन हमारी कन्या का योग्य पात्र हो सके। उसी रोज, रात को, ब्रिज की बैठक पर, आपके इने गिने-मित्रों ने, अपकी प्राइवेट गोष्ठी के दरबारियों ने, खुले दिल से, इस बात की दाद भी दी।

दूसरे दिन, सुबह मे, ग्यारह साल की किशोरी 'बिजला', मिशन स्कूल मे भरती हो गई। बिल्ली के भाग्य से छीका ही टूट पडा! बिजली भी तो यही चाह रही थी। काली क्रिश्चियन मिस्सों के झुरमुट मे बिजली बिजली-सी खुल पडी।

राय मानचन्द्र की धर्मपत्नी 'विमला' को ऐसी शिक्षा—ऐसी बे-पर्दगी—जरा भी पसन्द न थी, लेकिन मन के भाव मन की घाटी मे घूमकर रह गये—जबान तक आते-आते काफ़ूर हो गये। पति के सामने मुँह खोलकर कहने की हिम्मत न हुई।

इसका भी एक कारण है। वह जानती थी कि रायसाहब के दिल पर उसके इसरार का कोई असर होने को न था।

वह बिचारी गरीब घर की लड़की थी। कुछ पढी-लिखी न थी। रायसाहब के घर मे आकर उनके बच्चों की जननी बन सकी, यही उसके भाग्य की चरम गरिमा थी।

रानी हो गई, यही बहुत है, अब हुक्मरानी भी हो, यह असभव आकाक्षा थी! यह क्या कम सौभाग्य था कि बाध की टूटी खाट के बदले वह लेजरस की दूकान के बने स्प्रिङ्गदार पलँग पर अब करवटें बदलती थी, चना-चबेने के बदले आज दही की छालियों और करैले की कलौजियों से ज़बान की चाट मिटाती थी?

गाँव के रँगरेज़ के घर की रँगी हुई गुलेनार धोती जिसके जीवन मे भवानी की करुणा थी, वही विमला सोलहवें साल मे कीमती इन्दौर बॉर्डर-चढी क्रीप डी-शीन की भुवन-मोहनी साडी पहनकर नन्दन-चमन की दुलहिन बन गई, यह क्या नसीबो मे नसीब नहीं था ?

जबतक उसके शरीर पर वसन्त की लपट थी, तबतक तो मानचन्द्र निरन्तर सुहाग बरसाते रहे, लेकिन जब साल-ब-साल हमल के हमलो से वह पामाल हो चली और उसके गुलाबी गालो का जमाल म्लान हो गया, तब फूल के परिमल का पागल भौरा उस चमन की क्यारी मे दूर सरक गया !

विमला के रूप-रग मे अब कोई उद्दीपना बाकी न रही, और रायसहब वगैर किसी कशिश के कब टिकनेवाले थे ? अब तो महज एक कर्त्तव्य का बन्धन रहा !

दुनिया मे बिना किसी मोह या कशिश के न हृदय का मन्थन सभव है, न आवेश का स्फुरण। और, कर्त्तव्य की प्रेरणा तो अधिकतर बुद्धि से उठती है, कुछ हृदय से नहीं !

जीवन के अपराह्न-काल के समीप आते-आते जब विमला बिलकुल हड्डियो का ढाँचा रह गई, और पति-प्रेम की सजीवनी जब हाथ पसारने पर भी नसीब न थी, तब वह सुबह-शाम तुलसी के चबूतरे पर मिट्टी के छोटे-छोटे दीपको को जलाकर यही करबद्ध कामना करती कि बिजली की माँग पर सिन्दूर और गोद मे एक छोटा-सा लाड़ला देखकर वह पति के हाथ से आग पाती। बस, यही अब उसकी अन्तिम कामना थी।

रामचन्द्र जब कभी भूले-भटके भीतर आ जाते, उसकी आँखो से आँसुओ की झडी बँध जाती। कहीं वह उनके कधो पर सर रखकर उनके कीमती सूट पर आँसू के बब्बे न डाल दे, इसी आशका से कातर वे अलग ही से उसके आँचल से उसके आँसुओ को पोछ देते, और जाडे के दिनो मे सर्दी से बचने तथा गर्मी के दिनो मे तपिश से दूर रहने की ताकीद कर जाते।

बिमला दस बच्चो की जननी हो चुकी थी, लेकिन जीवित थे कुल तीन ही। बिजली सबसे बडी थी। दो लड़के बिलकुल बच्चे थे, और एक गोरी बिलायती नर्स के चार्ज मे पल रहे थे।

बिजली पहले अपनी माता की देख-रेख मे रहती थी, और हिन्दी-उर्दू की तालीम पा रही थी। लकिन जब से वह स्कूल मे भरती हो गई और उसके लिए एक अलग कमरा—कुर्सी, टेबुल, कार्पेट, पियानो, आलमारी वगैरह से सुसज्जित करके—निर्दिष्ट कर दिया गया, तब से वह बिलकुल बाहर ही रहने लगी। वह भीतर ही से बाहर न आई, काबू से भी बाहर हो चली। जो बूढ़े पडित उसे सस्कृत और हिन्दी पढा रहे थे, वे अब उसका रुख देखकर तो इस बिलायती बज्र के कमरे के बाहर ही अपना जोडा उतारते।

रायसाहब ने स्कूल के दो मैट्रन को उसे घर पर पढाने के लिए भी नियुक्त कर दिया—एक अँगरेजी बोलचाल की शिक्षा देती, दूसरी गाने-बजाने की तालीम। वह पढ़ने मे तो तेज़ थी ही, गाने-बजाने मे भी फर्द निकली। उसने चटपट गले के स्वर मे सुर भर दिया, और दो ही दिनो मे पियानो की पटरियो पर उँगलियो ने रूह फूंक दी।

बस, बारहवें साल से अँगरेजी तालीम का सिलसिला शुरू हुआ, और भीतर सोने के कमरे मे ताक पर रखी रामायण और शाहनामा की पुस्तके पडी-पडी कागज़ के कीडो की क्षुधा मिटाने लगी। मगर हिन्दी और उर्दू के रस-साहित्य की ओर जो रुझान उसकी प्रकृति के पर्दे मे बीज ले चुकी थी, वह अँगरेजियत की आबोहवा मे भी जड पकडती चली गई।

द्वितीय परिच्छेद

बिजली बाप की बेटी थी। बिजली बिजली ही थी, तेज़ और चचल। वह शहरी आबोहवा मे पनप रही थी। छरहरा बदन, साफ़ गन्दुमी रग, चेहरे पर नमक, चितवन मे ज़हर की मीठी चाशनी, कटाक्षो की तीरन्दाज़ी, लज्जा और शोखी की आँख-मिचौनी, एक-एक अङ्ग पर कमाल की स्फूर्त्ति और बेताबी, सब मिल जुलकर एक बड़ी मन-मोहिनी छटा थी।

बचपन ही से उसे चटकीली चीजो की चाट थी। वह तडक भड़क की पुतली थी, प्याले की उफनाती अगूरी-सी छलकती रहती। अपने को दिखाने का-सब पर रग जमाने का-भाव हर घड़ी मौज पर रहता। जब दस की मुग्ध विनीत चितवन उसके रूप की आरती उतारती—दस की खुशामदी गुजन की काकली उसके अन्तर मे रस बरसाती, तब अचानक उसके दिल मे एक ऐसा प्रवाह-सा उठता कि वह चरण-प्रान्त पर लुठित भक्तो को 'वरब्रूहि'

कहकर कटकित कर देती—अपने आपको लुटाकर निःस्व कर देती—और यह निखिल विश्व इस अमूल्य दान को पाकर धन्य-धन्य हो जाता। सभी की दृष्टि मे उसीकी मूर्त्ति हो—सभी की वाणी मे उसीकी स्तुति हो—यही उसकी कल्पना की धारा थी।

मखमली किनारे की साड़ी पहनकर, माथे पर रोली की एक नन्ही-सी बिन्दी लगाकर, लाल रिबन से बँधी चोटी को पीठ पर नचाकर, जब वह हँसती-खेलती स्कूल जानेवाली 'बस' मे जा बैठती, और जब साथ जानेवाली सखी-सहेलिया की—'वाह बिजली! आज तो तू फूल की तरह खिली है! यह साडी तो तुझपर कमाल की खुलती है!'—गुजन-ध्वनि उसके मन को उभारती, तब वह जामे से बाहर होकर, पाकेट मे भरी हुई लेमन-जूस और चाकलेट की गोलियाँ, गाड़ी मे बैठी लड़कियो मे, फौरन वितरण कर देती, और लाख मना करने पर भी, अपने लिए एक भी न रख छोड़ती थी।

जब वह खुश होती, तब ओसारे और आँगन मे, बाहर मैदान और लॉन मे, बे-वजह अङ्गो को तोडती हुई थिरकती फिरती, और छुटपन की दिल-फरेब नादानियो और नखरो से हर-एक छोटे-बडे के दिल को बरबस खींच लेती थी। मगर कहीं किसी बात पर रूठ जाती, तब तो बिचारी घंटो सिसकती, हाथ-पैर फेंकती, साडी की धज्जियाँ उड़ाती और जो कुछ सामने पाती उसे तोड़-मरोड़कर चकनाचूर कर डालती थी।

जिस धुन मे आती, उसीमे तूफान उठा देती—यही उसकी

प्रकृति थी। और, कब वह किस धुन मे आ जायगी, इसका अन्दाज आज तक किसी को न चला।

जब वह सयानी हो चली और यौवन ने उसके बचपन की चपलता पर वसन्त चाञ्चल्य की सजीवता—उसके शैशव के सहज सलोने रूप पर एक नये सौरभ, एक नये रग का सचार शुरू कर डाला, तब उसके प्राणो मे एक विचित्र अज्ञात मधुर वेदना की अनुभूति, एक नवीन सिहरन का हिल्लोल धीरे धीरे स्पष्ट होने लगा। उसने जमाने के हावभाव मे एक नये रस का स्वाद पाया, एक अपरूप छटा का प्रकाश देखा। उसकी दृष्टि मे अब सौन्दर्य और शृङ्गार की कीमत दूनी हो गई। विलासप्रियता के सुषुप्त अङ्कुर इस मलयस्पर्श से पल्लवित हो उठे।

अब स्कूल की सहेलियो की परिचित खुशामदी बातो से उसके जी का अरमान नहीं मिटता, उनकी विनीत वन्दना मे वह एक व्यग्य की रचना देखती। वह बे-वजह चिढ जाती और सरककर दूर चली जाती। अब वह घण्टो सँवरती, बदन तोडती, अलसाती, सहज-सुन्दर रग पर पाउडर और क्रीम की पालिश देती, चिकने काले बालो मे नई-नई पत्तियाँ काटती, दिन मे तीन बार साडी और ब्लाउज बदलती, फिर छत पर खडी होकर जन-प्रवाह को एकटक देखने लगती। गालो पर सुर्खी दौड़ गई; आँखो के कटाक्ष मे बिजली कौंध उठी।

साल-दो साल मे बिजली ने अँगरेजी मे कटर-मटर करना सीख लिया। स्कूल की किरिस्तान छोकरियो के साथ खेलते-

चतुर्थ परिच्छेद

शाम का वक्त है। आसमानी किले पर बादलों ने धावा बोल दिया है। बूंदें टपाटप पड़ रही हैं। सर्द हवा के झोंके किवाड़ से टकराते हैं। रह-रहकर बिजलियां कड़क उठती हैं। कलेजा काँप उठता है। आँखें चौंधिया जाती हैं।

रायसाहब की मोटर मुन्शी माजिद अली की कोठी में दाखिल हुई। बिजली, ड्राइवर की सीट पर, फर-कोट में सिमटी बैठी थी। दोनों हाथ 'व्हील' पर थे।

मोटर की 'हॉर्न' की आवाज पाकर मिस नैन्सी अहमद बाहर निकल आईं। बिजली मोटर पर बैठी हुई बोली—"मैं आपको तलाशती हुई यहाँ आई। चलिये, वक्त हो गया है। ठीक छः बजे तमाशा शुरू हो जाता है। ड्राइवर आना ही चाहता है। मैं चुपके-से मोटर लेकर चम्पत हो गई।"

"क्या गजब करती हो! आज कहीं बाहर जाने का दिन है?

मैं तो घंटो से यहाँ रुकी पड़ी हूँ। कमरे मे अँगीठी जल रही है। भीतर आकर हाथो को सेंकती जाओ।"

'पानी रकने मे देर नहीं। मैंने लाला से-डैडी से, इजाज़त ले ली है। सिनेमा-हॉल मे तो सर्दी का गुज़र नहीं।"

बिजली अपने पिता का बचपन से 'लाला' कहकर पुकारती चली आई; डैडी' और 'पापा' नवीन संस्करण है॥

"तुम्हारे खून मे नई गर्मी है, नई तमन्ना है। मै अब बूढ़ी हो चली। मुझे क्यो घसीटती हो? फिर किसी दिन चलूँगी। मै तो यहाँ मुन्शीजी की छोटी बच्ची रजिया को देखने आई थी। कल उसे स्कूल मे दाखिल करूँगी।"

मुन्शी माजिद अली की ग्यारह साल की रजिया, नाम सुनते ही, बाहर चली आई। वह बिजली को दीदी कहती थी। एक बार आँखें नचाकर 'कार' को देखा, फिर बिजली से पूछ बैठी—"कौन 'कार' है दीदी? नये मॉडल का फोर्ड है न?"

'नहीं, 'विलीज़ नाइट' है। चलो, मैदान मे तुम्हे एक चक्कर दिला दूँ।"

"आज नहीं, कल चलूँगी। इतनी सख्त सर्दी है, ऐसी हवा मे हवाखोरी करना न्यूमोनिया को न्योता देना है।"

"क्यो बिजली! तुमने सुना है? मुन्शीजी का भाजा सलीम भी यहीं आ गया! अब यहीं कॉलिज मे भरती होगा। क्रिकेट और टेनिस का शैम्पियन है!"—मिस साहबा ने आँखें मटका कर कहा, और ज़ोर से आवाज़ दी—"सलीम! सलीम!"

सलीम बाहर आया। लम्बा कद, कसरती गठन, चौडी छाती, गुलाब सा रग, बड़ा-बड़ी भाव-विह्वल आँखे, ऊंची नाक, प्रशस्त ललाट; वह जवानो मे भी जवान है। गर्दन मे सफेद पशमीने का मफ़लर, स्कौच ट्वीड का भूरा कोट, कमर मे बेल्ट, घुटने तक खाकी शर्ट, कोट से मैच करता हुआ होज, कानवस का जूता और हाथ मे चमडे का स्ट्रैप दिया हुआ पतला बेत—सब उसके फैशन और रुचि का इजहार कर रहे थे। उसके स्वस्थ सुन्दर सुडौल शरीर पर खूबसूरत सिले हुए कपड़े फूल की तरह खिलते थे।

बिजली ने मुड़कर देखा; आँखे चार हुई।

ठीक उसी पल सर के ऊपर कडाके की बिजली चमकी और एक प्रलयी प्रचंड हुङ्कार के साथ आसमान को चीरती हुई न जाने कहाँ विलीन हो गई। कौन कहे, किसके सर पर गिरी?

बिजली सीट के एक कोने मे सहमी हुई दुबक गई। मिस साहबा तो 'Oh! Heaven' चिल्लाकर जमीन पर जा पडी. रजिया बिचारी बरसाती का खम्भा थामकर थर-थर काँपने लगी। सलीम हाथ का बेत हिलाता हुआ निःशङ्क खडा रह गया। बिजली इस कमाल की निर्भीकता पर लुट गई।

मिस साहबा दामन झाडकर खडी हुई। अभी उनके चेहरे पर त्रास के चिह्न मौजूद थे। उनके हाथ का मखमली हैंडबैग बरामदे के नीचे जा पड़ा था। रजिया ने उसे उठाकर जब उनके हाथ मे रखा, तब उनको होश हुआ। जान मे जान पड़ी; ज़बान मे जान पड़ी।

"शुक्र है, जान बच गई, बाल-बाल बच गई। खुदा जाने कहाँ बिजली गिरी है।"

जहाँ गिरने को थी वहाँ गिर चुकी होगी, मिस साहबा को भले ही पता न हो।

आसमान जब फटता है, कहीं नोटिस देकर नहीं फटता।

"वाह, तुम यहीं खड़े हो? आओ, तुम्हें बिजली से मिला दूँ।" --मिस साहबा ने सलीम की ओर मुककर कहा।

सलीम मोटर के समीप आ गया और 'How do you do?' कहकर हाथ बढ़ा दिया।

बिजली एकबारगी लजा गई। आँखें शर्म से झिप गईं दोनों गाल गुलेनार हो गये।

क्या खूब! हजारों में जिसकी आँखें कभी झिपती न थीं, उसे आज यह झेंप कैसी? जिसे लजाना भूल-सा गया था, उसे आज यह लाज कैसी? आखिर तो नारी! बाहर का लाख आचार क्यों न हो, अन्दर का संस्कार तो छूटता नहीं!

जो हो, शायद उसके जीवन में लजाने का यह पहला अनुभव था।

बिजली ने आँखें उठाकर सलीम को देखा।

नारी ने प्रथम-प्रथम पुरुष को देखा, पुरुष ने नारी को। आँखों ने आँखों में क्या देखा, आखें जानें। आँखों ने आँखों से क्या कहा, आँखें समझें। इस देखादेखी के परदे में दिल की शिरकत कहाँ तक थी, इसका जवाब कौन दे? यह रहस्य तो जीवन का चरम रहस्य है।

शायद इन आँखों की भाषा से मिस साहबा परिचित हों, नहीं तो उनकी भाव-प्रवण चितवन के कोने में बिजली की-सी एक झलक कहाँ से झाँक गई।

वह स्वप्न दुबारा कट गया। फौरन ही बिजली सयत हो गई। उसने दाहिने हाथ को बढ़ा दिया। सलीम ने झुककर, बड़े अन्दाज से, हाथ मिलाया। एक क्षण के लिये उँगलियों में उँगलियाँ चिपक गईं!

सभ्य समाज के हैंड शेक से बिजली परिचित थी। कभी पिता के साथ पार्टियों में जाकर वह कितने परिचित किंवा अपरिचित के साथ हाथ मिला चुकी थी लेकिन आज का स्पर्श तो अज्ञात के चिर-परिचित कर-स्पर्श का सहोदर नहीं था! इस कर-स्पर्श में तो एक अज्ञात पुलक की नवीनता थी—शायद प्राण-स्पर्श की सूचना थी, नहीं तो अकस्मात् उसकी धमनी की रक्त-लहरी चञ्चल क्यों हो उठती? यह प्रथम स्पर्श—यह प्रथम सिहरन—तो जीवन का एक अनन्त मुहूर्त्त है।

"Good Heavens! your finger are cold!"—सलीम ने आँखों से मुसकराकर कहा।

"Never mind, her heart is warm!"—कहकर मिस साहबा ने हँस दिया।

बिजली बिचारी कुछ जवाब न दे सकी। उसने उँगलियों को अपने गाल पर रखा, ललाट पर रखा। वहाँ भी शायद उसे काफ़ी गर्मी न मिली, तब झट कोट के भीतर घुसेड़ दिया। वह जरा

परीशान-सी हो गई। मोटर से उतरने की कोशिश की। हैंडिल को घुमाने लगी, जोर भी लगाया, मगर घुमा न सकी—दरवाज़ा खुला नहीं। वह फिर लजा गई। उसकी पेशानी पर पसीने के कतरे निकल आये।

सलीम वहीं खड़ा था, एक झटके में दरवाज़ा खोल दिया। वह फिर उतरने को आगे झुकी। हवा के एक झोंके ने आकर उसके फरकोट का सामने से उड़ा डाला। फिरोजी साड़ी का एक झलक नजर आ गई। उसके चेहरे पर बाल बिखर पड़े—आँखों पर परफरा उठे। वह घबरा सी गई। एक हाथ से उन उद्दाम लटों को सभालती, दूसरे से कोट के बटन लगाती—लगा न सकी।

मिस साहबा ने शायद उसके चाञ्चल्य को देखा, और मोटर पर सवार होती हुई बोलीं—"नहीं-नहीं, उतरो नहीं। चलो, मुझे घर पहुँचा दो। पानी तो रुकनेवाला नजर नहीं आता, मैं कब तक यहाँ पड़ी रहूँगी?"

मिस साहबा बग्गल में जाकर बैठ गईं। बिजली ने सेल्फस्टार्टर पर हाथ रखा। मोटर सन से चल पड़ी—तीर की तरह निकली। बिजली को अचानक खयाल हो आया, वह सँभाल न सकेगी। उसने ब्रेक को जोर से दबा दिया। बाहर के फाटक से टकराते-टकराते मोटर रुक गई। उसका कलेजा धक-कर गया।

आखिर बात क्या है? बिजली और ऐसी 'नर्वस'? वह तो ढीठ थी, दिलेर थी। उसके दोनों हाथ ह्वील पर विवश हो गये, आँखें झिप पड़ीं। उसके अंगों की वह सहज सजीवता कहाँ गई?

उसकी दृष्टि की चपल तेजस्विता कहाँ रही ? अभी तो उसी दिन, जब वह अपने पिता के साथ मिस्टर बोस की पार्टी से लौट रही थी, और ड्राइवर की भूल से उसकी मोटर सड़क की पटरी से लुढ़ककर दलदल मे जा पड़ी, उसने अपने भीत पिता को तसल्ली देकर 'स्टीयरिंग व्हील' को अपने हाथो मे थामा और हँसते-हँसते किस युक्ति से—किस खूबी से—गाड़ी को सूखी जमीन पर ला रखा। अपनी कन्या की इस कुशलता को देखकर रायसाहब के कोट के बटन टूट पड़े थे ! और, आज वही खुद न समझ सकी, उसकी बेबसी क्यो है ?

उसने अपने हृदय को सुलझाने की—समझाने की—लाख कोशिशें की, लेकिन हृदय के न जाने किस निगूढ अव्यक्त अन्तस्तल से एक मोहमयी लज्जा—एक अभावनीय आकुलता—खड़ी हो गई कि उसकी इतने दिनो की सञ्चित स्फूर्ति—उसकी चेष्टा की एक-एक सतेज दीप्ति—वर्षा के प्रचड प्लावन के आगे बालू की भित्ति के समान एकबारगी विलीन हो गई। वह मिट्टी की प्रतिमा बन गई। भगवन ! आज किस पौरुष के सामने वह अबला हो गई ? ऐसी किरकिरी तो उसकी कभी न हुई थी।

सलीम पानी मे भींगता हुआ दौडकर आ गया और मोटर को खींचकर रास्ते पर लाया। बिजली ने उसकी मोटर खींचने की निपुणता देखी—उसकी भुजाओ का सतेज सञ्चालन देखा। उसके चेहरे पर, सर पर, बूँदे टपक रही थीं—उस सुन्दर बरसाती छटा को देखा। जोर लगाने से उसके उज्ज्वल मुखमडल पर जो

सुर्खी दौड़ आई थी, उस अनुपम प्रभा को देखा। हवा के झोके से उसके मफलर का एक हिस्सा उसकी पीठ पर आकर थिरक रहा था—उस संक्रीडन को देखा। फिर, सलीम का इस तरह भींगना देखकर खुद काँप उठी, और फर कोट को चारों ओर से समेट लिया।

"वाह! तुमने मोटर रोक क्यों दी?"—मिस साहबा ने जरा तपाक से पूछा।

"मैं तो इसे शहर के भीतर ले नहीं जा सकती। लाइसेंस का सवाल है।"—बिजली बोली।

खैरियत हुई ड्राइवर आ धमका। बिजली ने हाथ बढ़ाकर उसका छाता ले लिया खुद मोटर से उतर गई और हुक्म दिया—'शामसिंह! जाओ मिस साहबा को पहुंचा आओ। मैं घर वापस जाती हूँ।"

आज की आकस्मिक विवशता उसे काट की तरह चुभ रही थी। उसे लगा कि वह पीठ दिखाकर भागा जा रही है। उसके चेहरे पर पराजय की छाया थी।

"आज पढ़ोगी नहीं? खैर, रहने दो, आज पढ़ना भी नामुमकिन है। अँगीठी जलाकर घर में बन्द रहने का दिन है। वक्त क्या होगा? पाँच बजते ही होंगे। हाँ, एक बात सुनती जाओ। तुम एक टेनिस-रैकेट खरीद लेना। कल शाम से टेनिस की कसरत होगी। सलीम भी साथ देगा।"

मिस साहबा चलने को हुई।

मोटर चल दी, आँधी से ओझल हो गई।

बिजली अपने मकान की ओर लपकी। बरामदे के पास आकर, अचानक मुड़कर पीछे फिरी। सलीम अपने मामू के खानेबाग के फाटक के पास चुप खड़ा था और एक-टक उसी को देख रहा था।

सलीम के चेहरे की बुलबुली पर पानी की बूंदें मुसलसल टपक रही थीं। उसके कोट के कॉलर और कफ पानी से भींग कर सिकुड़े हुए दीख पड़ते थे। मफलर का एक छोर अभी तक हवा के इशारों पर नाच रहा था। समस्त चेहरे पर हसरत बरस रही थी।

प्रलयी तूफान के सद झोंकों को अकातर सहते हुए सलीम की प्राणमयी चितवन बिजली के एक-एक पद-विक्षेप का अनुसरण कर रही थी। सलीम के इस मोहावेश को देखकर बिजली के हृदय में एक उच्छ्वास उमड़ आया।

पुरुष की आँखों की विनीत आरती उसके प्राणों को मकरध्वज की बड़ी थी। वह जो पहले विस्मय-विमूढ़ हो गई थी, अब बिलकुल स्वस्थ-संयत हो गई। फिर क्या था, उसने फौरन् गाडीव सँभाला। चौड़े बरामदे पर टहल-टहलकर, चिकों की ओट से, उसने तीव्र तीरन्दाजी शुरू की। मुसकान पर सान दे देकर तिरछी नजरों के चुटीले तीर निशाने पर निःशङ्क बरसते थे। प्रत्यञ्चा पर एक-एक शर को उसने मर्म-भेदी रखा, एक दिल के टुकड़े करता—दूसरा जिगर के पार होता था।

रणधीर सलीम भी मैदान मे डटा रहा। उसके तरकस के तीर भी कुछ कम चोखे न थे। वह भी कमान चढाकर सामने आ गया।

बारिश की बूँदे थम चलीं, तूफान का जोर पट पड चला। प्रकृति भी निस्तब्ध होकर इन रण-बाँकुरो का युद्ध-कौशल देखने लगी।

खानेबाग की गुलाब की क्यारियो को एक छलाँग मे उचककर सलीम वहीं कचनार के पेड के साये म आ गया। उसने उँगलियो के झटके से जुल्फो की फुनगियो से टपकती हुई बूँदो को झाडा, रूमाल से जलसिक्त चेहरे को पोछ डाला, भीगे कोट को उतारकर मेहँदी की टट्टी पर रखा, कमीज की आस्तीन को मोडकर ऊपर चढा डाला, और विलायती लता-वितान के भीतर से, जवानी की तपिश मे तपी हुई तीखी कनखियो की बौछार शुरू की।

सामने ही, सडक के उस पार, बरामदे पर खडी-खडी वह चपल रणरगिणी गजब ढा रही थी। उसने किसी भी अस्त्र को उठा न रखा वह सोलहो कला से लडी। अँगडाती-अलसाती, बलखाती-बदन तोडती, मुसकाती-लजाती, चचल लटो को सुलझाती सीने से आँचल सरकाती देवदार के तख्ते पर जा बैठती, उचककर नीचे आती, ठुमककर चलती, चिकों की ओट से झमककर झाँकती, खिल-खिल हसती, आलमारी से छिप जाती, और कभी झम-से आकर आँखे मिला बिजली की तरह चमककर विलीन हो जाती।

दोनो ओर से इशारे के पैंतरे—निगाहो के दाव-पेंच—कटाक्षो के वार-काट लगातार चलते रहे।

जब धीरे-धीरे दिन की आभा म्लान हो गई और विश्व जगत पर एक करुण श्यामल यवनिका सघन हो चली, तब दोनो धनुर्धरो को विवश होकर विराम लेना पड़ा, चूँकि अन्धकार ने आकर उनके बीच मे एक विराट् व्यवधान खड़ा कर दिया। दोनो वीर घायल-बिस्मिल होकर कमरे के अन्दर चल दिये। इस युद्ध की स्मृति साथ गई और हृदय की पोर-पोर मे बिँधे हुए—टूटे हुए—तीरो की अनी एक मधुर वेदना से चुभती रही।

आखिर बिजली ने ऐसी तीरन्दाजी कहाँ सीखी? वह तो शहर के एक खानदानी रईस की लडकी थी, भद्रता की आबोहवा से पली थी। उसने इस कटाक्ष-कौशल की शिक्षा कहाँ पाई—इस नाज़ो-अन्दाज को किससे पढा? यह क्या बात है कि इस अपरिचित युवक को पाकर उसकी बोटी-बोटी फडक उठी! उसकी पोर-पोर मे कौन-सी शक्ति समा गइ? उसकी निगाहो के नखरे—उसके अगो की लीलायित अठखेलियाँ क़यामत के तमाशे दिखा गईं!

यह माया, यह चपलता तो साधारण नहीं है! ये कमाल के बारीक करिश्मे, ये चुहचुहाते चोचले तो कुछ घर मे नही पनपते। चितवन की कटारी तो बाजार मे बिकती है। चेहर पर मीनाकारी तो पेट के लिए होती है। अभिनय की निपुण भङ्गिमा तो आसमान से नहीं बरसती, वरञ्च बरसो की तालीम और तजरबे से प्रस्फुटित होती है।

बिजली तो अनुभवी अभिनेत्री की नाक तराशती है! यह जादूनज़री तो कुछ देवता का आशीर्वाद नही थी!

जो हो, सौ बात की एक बात यह है कि ये नाज़ो अन्दाज की

बारहखियाँ कुछ गणित के फारमूल नहीं हैं, जिन्हें कोई मास्टर बोर्ड पर लिखकर समझा दे—और न ये पाणिनि के सूत्र हैं, जिन्हें कोई आचार्य दस बार रटाकर गले के नीचे उतार दे। मेरी समझ में तो इस रहस्य का एक ही पता है—नारी की सहज प्रकृति और उस प्रकृति का विकास।

ज्ञान भी तो बिना संस्कार के नहीं मिलता, विद्या भी तो बिना प्रतिभा के नहीं खुलती। तालीम तो महज एक पॉलिश है, मुलम्मा है।

विश्व की रचना देखिये। प्रकृति जड है, अव्यक्त है, सूक्ष्म है, लेकिन गुणों का आलय है और उसके गर्भ के भीतर निखिल विश्व का मूल तत्त्व है। जो हो, अकेली तो वह कुछ कर नहीं सकती, लेकिन पुरुष के सामने आते ही वह अनुप्राणित होकर अपना ताना-बाना फैलाने लगती है। उसके प्राणों से रूप, रस, गन्ध के करोड़ों किरिश्मे प्रकट हो जाते हैं। फिर तो अपनी माया के मोह-पाश में वह इस खूबी से बाँध रखती है कि जीव को नजात पाना मुहाल हो जाता है।

कुछ इसी तरह नारी के अन्तर में हाव भाव के सूक्ष्म परमाणु, सतगुनी लज्जा के बराबर मेल में, साम्यावस्था में निरंतर मौजूद रहते हैं। लेकिन जिस घड़ी वह सचमुच पुरुष को देखती है, फिर तो जैसे अक्षर-अव्यक्त से निखिल लीला का प्रसार हो जाता है, वैसे ही उसके अन्तस्तल के निहित तत्त्वों से माया की मोहिनी रचना शुरू हो जाती है—और पुरुष, प्रकृति-पाश बद्ध जीव की तरह, मोह के जाल से कभी मुक्त नहीं हो पाता।

बिजली तो स्वभाव से ही चंचल और शोख थी। उसमें तो मद का माद्दा कूट कूटकर भरा था। लज्जा से कई-गुना अधिक विलासिता के परमाणु उसमें पहले ही से विशेष प्रबल थे। उसके चारों ओर का अनुकूल वातावरण उन अङ्कुरों को सजीव रखने में काफी मददगार था। फिर तो सलीम को उसकी विलास-विह्वल चितवन के सामने नमूदार होना था कि उन अङ्कुरों का पल्लवित और कुसुमित होना एक लहमे का खेल रह गया। मेगजीन में तो बारूद भरी तैयार थी, सलीम की आँखों की चिनगी ने उसे बात-की-बात में प्रज्वलित कर दिया।

पञ्चम परिच्छेद

सुबह के नौ बजे होंगे। आसमान पर कुहरा है। धूप की एक पतली रेखा खिड़की से झाँक रही है।

रायसाहब ने आँखें खोलीं, जँभाई ली, और फिर रात की ख़ुमारी से लदी आँखें झिप चलीं। नौकर ने पैर टीपा और आहिस्ते से अरज़ किया—"हुज़ूर, आजमक्कर की सक्रान्ति है।"

वे अँगड़ाई लेकर उठ बैठे और ड्रेसिंग-गाउन को लपेटकर स्लीपरों को चटकाते कमरे से निकल आये। गैरज से मोटर निकाली गई और वे चुरुट के कश लेते हुए, स्वर्गीय पिता के हमजोली पुरोहित मुरारी चौबे को साथ लेकर, गंगा नहाने चले। इधर रामू को ताकीद करते गये कि ब्रेकफास्ट तैयार रखना।

कुहरा फट चला। धूप खुल पड़ी। दो घंटे में वे लौट आये। कमर में ज़री-कोर की बारीक धोती थी और कंधे पर तूसी तूस की दोहरी चादर। ललाट पर चन्दन की छाप और रोली का तिलक था। गर्दन में गेंदों की माला।

तबतक मन्दिर के पुजारी आ पहुँचे रायसाहब ने तुलसीदल का प्रसाद पाया। आचमनी से दो बूँद चरणामृत लेकर सर छुलाया और पी गये। अन्दर से चावल, तिल, तिलवे आये। ताँबे की थाली, कटोरे आदि दान की सामग्री लाकर रखी गई। उन्होंने विधि-पूर्वक सकल्प करके दान किया और पुरोहित-पुजारी को कुछ नक़द हाथ मे देकर बिदा किया।

इस अनाचार और घोर कलिकाल की मरुभूमि मे एक अँग-रेज़ी तालीम के वंशज की यह अभावनीय आस्तिकता बिचारे गरीब ब्राह्मणो के लिए मन्दाकिनी का छींटा थी। ब्राह्मणों ने चावल और पैसे को धोती के खूँट मे बाँधा, उनकी धर्मनिष्ठा की जय-जय-ध्वनि की, उनकी सलामती की दुआएँ दीं; फिर हँसते-खेलते घर चल दिये।

उधर वे गये, इधर आपने चट तौलिये से चन्दन के टीके को पोछ, और गेदे की माला को फेंक विलायती खुशबूदार सोप से मुँह-हाथ धोया, और शर्ट-पैंट डाटकर ब्रेकफास्ट के लिए घटी बजाई। एक बार दैनिक 'स्टेट्समैन' के स्पोर्टस् कालम का मुला-हज़ा किया, फिर जैकब के विख्यात क्रीम-क्रैकर के नये डिब्बे को खोलने के लिए कतरनी तलब की। रामू ने टोस्ट और मक्खन का प्लेट मेज़ पर लाकर रखा और मामलेड का बर्त्तन सामने बढ़ा दिया। आपने पहले एक प्लेट पारिज साफ किया; फिर स्टोव जलाकर हरी धनिया, प्याज़ और पुदीने के टुकड़े देकर दो अडो का आमलेट ख़ुद ही तल लिया। साथ-साथ एकाध बिस्कुट कुतरते रहे। बिल्लौर के प्याले से चाय की सुड़क भी जारी थी।

नवतक मुंशी साजिद अली भी आ पहुँचे और कुर्सी खींचकर सामने बैठ गये। फिर तो चाय-शक्कर का नया दौर शुरू हुआ आप आमलेट के एक बाल को काँटे से उठाते हुए हँसकर बोले—"क्यों मुंशीजी, आपने कुछ राय कायम की? किस किसके बुलाना होगा? कहाँ पर लञ्च की तैयारी होगी? आज ही 'मेन्यू' ठीक करके किसी अच्छे 'फर्म' को आर्डर दे देना जरूरी है।"

'आप बिलकुल बेफिक्र रहें। आखिर मैं किस मर्ज की दवा हूँ? डाक-बँगले के बावर्ची से सब चीजें पकवा दूँगा। उसके हाथ में जादू है। मटन कटलेट भूनने में तो कमाल करता है। बीयर और क्लेरेट की बोतलें मियाँजान की दूकान से खरीद लूँगा। लञ्च में शैम्पेन.."

अचानक बिजली कमरे में फट पड़ी। लञ्च की चर्चा जबान में उलझकर रह गई। उसके स्कूल जाने का वक्त हो गया, वह तैयार आई थी। आते ही उसने एक टेनिस-रैकेट खरीदने की फरमाइश की।

"क्यों? क्या होगा?"—रायसाहब ने फरमाया।

"मैं खुद खेलूँगी?'

"तुम! आज यह नया शौक?"

बिजली हँस पड़ी। जरा तिनककर बोली—"क्या लड़कियों का टेनिस खेलना शौक में दाखिल है? शाम का वक्त यों ही गुजर जाता है। रात में खुलकर भूख नहीं लगती। नींद भी मजे की नहीं आती। पढने और सोने के सिवा और कोई काम नहीं।

यह पाँव पसारे बैठने का सिन है ? मिस साहबा का ख़याल है कि बग़ैर किसी एक्सरसाइज़ के इसी उम्र मे मरीज़……'

"लिल्लाह ! बस करो । तुम्हारे दुश्मन मरीज़ हो ।"—

मुशी माजिद अली ने फ़ौरन बात तराश दी ।

"आखिर कहाँ टेनिस खेलोगी ? यहाँ पर तो मुमकिन नहीं । मकान के सामने जो थोडी सी जमीन है, वह तो बिलकुल लबे-सडक है । मुहल्ले मे मुल्लो का हुजूम है । उनको फबतियाँ चुस्त करने का एक और मौका "

"माजल्लाह ! किस भड़वे की शामत आई है जो आप पर तुकनाचीनी करे ? उसकी मूछ का एक एक बाल न उखड़वा लूँ " – बीच ही मे मुर्शीजी बरस पड़े ।

"आप ही कहे, मै ही उनके तेवरा पर कब सहमा रहा ? वे टराते हा रह गये और मैने जिस रिफार्मपर कमर बाँधी, आपकी दुआ से, उसे कर ही डाला । फिर, जा कुछ किया, अपने बूते पर किया । नही तो, बिजली को यह आज़ादी—यह तालीम—कहाँ मिलती ? महज एक बीवी से मजबूर हूँ । मगर शुक्र है, बिचारी ज़रूरत से ज्यादा तनती नही । और, आज कोई कुछ कह ले; लेकिन कौन नही है, जो ज़रूरत के दिन मेरे दरवाजे पर सर के बल नही आता ? कभी किसी भाई-भतीजे के लिए सिफ़ारिशी चिट्ठी लेनी है, कभी किसी के ब्याह के मौके पर जलूसी चीजो की फरमाइश है ।"

मुशीजी ने मूछो पर अर्धपक्व पोच की तरल ज़र्दी को रूमाल

से साफ किया, और सर हिलाकर दाद देते हुए बोल उठे—"रायसाहब, आपकी उम्र दराज़ हो। आपने तो जहालत की धज्जियाँ उड़ा डालीं। हिन्दुस्तान की गर्दन मे मैकडो दकियानूसी रस्म-रवाज की मज़बूत बेड़ियाँ जकडी पड़ी हैं। इन जजीरो का चपकलिश से बिचारे गरीब का दम घुट रहा है; लेकिन अफसोस, सर्द आह खींचने के अलावा कुछ सँपरता नहीं। खुदा आपका इकबाल बुलन्द करे। आपने वल्लाह इस लोहे की लडी की एक भी कडी तो तोडी, यही क्या कम है? आज हमारी जाहिल पब्लिक इस अम्र को नहीं समझती, लेकिन मै दावे से कहता हूँ कि वह दिन दूर नहीं, जब उसकी आँखें खुलेंगी और फिर तो तहे-दिल से आपको शुक्रिया अदा करेगी।"

बिजली ने अपनी अर्ज़ी फिर पेश की। यह सुयोग अच्छा था। रायसाहब की शान का पारा ऊँचा उठ रहा था। बिजली तो जिस बात पर पैर रोप देती, वहाँ से फिर जुम्बिश नहीं करती। वह तो जान पर खेलकर भी टेनिस खेलना जरूर सीखेगी। रायसाहब की मर्ज़ी हो तो फिर पौ-बारह; न मर्ज़ी हो, आँखें बचा-कर खेल लेगी। मकान पर टेनिस-कोर्ट की गुजाइश नहीं है, तो दूसरी जगह इन्तज़ाम कर लेगी—लेकिन वह खेलकर रहेगी।

"तो फिर कहाँ खेलोगी?"—रायसाहब ने पूछा।

"क्यो, स्कूल के बोर्डिङ्ग-हाउस का कोर्ट है। वहाँ अगर गुजाइश हो गई तो ठीक ही है; नहीं तो मिस साहबा के घर पर कोर्ट बनवा लूँगी।"

"हाँ, यह इन्तजाम मुमकिन है।"—मुशीजी ने मदद दी।

"ठीक है, यही सही। रामा की दूकान से एक रैकेट और उसका प्रेस खरीद लेना, वह मुझे जानता है। तो फिर शाम को तुम्हें वापस लाने के लिए सवारी की कब जरूरत पड़ेगी?"

"आप बेफिक्र रहें, मैं सब ठीक कर लूँगी।"

षष्ठ परिच्छेद

अब बिजली के दैनिक रूटीन मे कुछ और परिवर्त्तन हुआ। टेनिस के लिए दो घटे वक्त देना जरूरी था। पहले वह चार बजते 'बस' पर स्कूल से वापस आती, फिर बाहर जाना न जाना उसके मन की मौज पर रहता। किसी दिन शाम को मिस साहबा के साथ मोटर मे सैर करने पार्क जाती या बाजार। सडक के किनारे मोटर रोककर लॉन मे टहलती और कॉलिज के लडको के खेल-कूद—चक ह्रस—देखती। फुट-बॉल-मैच देखने का उसे खास शौक था। शाम की चाय-बिस्कुट की उपासना छूट जाय तो छूट जाय, लेकिन कोई मशहूर मैच छूट जाना नामुमकिन था। वह आध घटा पहले आकर डट जाती। मिस साहबा को घसीटकर साथ लाती।

उसके मन की गति विचित्र थी। प्रतिद्वन्द्वी टीमो के किसी प्लेयर को वह पहचानती न थी, लेकिन मैदान मे कदम रखते ही एक एक करके कुल प्लेयरो को सर से पैर तक मुलाहज़ा कर जाती। उनमे जो उसकी नज़रो मे सुन्दर सुडौल जँचता, उसी जवान को वह

अपनी सहानुभूति का लक्ष्य बनाती; और जिस टीम मे वह खेलता उस टीम की हार जीत उसकी अपनी हार-जीत बन उठती। उस लड़के ने अगर कोई मार्के का किक् किया, या किसी युक्ति से अपने प्रतिद्वन्द्वी से गेंद छीन लिया, या गूँथे हुए प्लेयरो के झुरमुट को चीरकर एक दिलफरेब पास दिया, तो बिजली जामे से बाहर होकर जोर की करतालियाँ देती, और मिस साहबा को उसकी कुशलता दिखा-दिखाकर दाद माँगती। यदि उसने कहीं गोल दे दिया, तब तो वह खुशी से उछल पडती—दस के सामने उसकी तारीफ के पुल बाँध देती। और, यदि कहीं उससे कोई भूल हो गई और रेफरी ने खिलाफ 'पेनल्टी' दे दी, तो वह बेवजह जोश मे उबल पडती और दर्शको को सुना-सुनाकर 'रेफरी' की अयोग्यता किंवा उसकी पक्षपात-प्रवणता की आलोचना करने से बाज न आती। फिर, अगर ऐसा हुआ कि दोनो टीमो के किसी भी खिलाडी का रग-रूप उसकी आँखो मे न जँचा और कोई भी उसकी कृपा का पात्र न बन सका, तो वह अनमनी-सी होकर अचानक वापस चली आती थी, या अगर रुकी रहती तो उसकी हमदर्दी की धारा अनायास उस ओर झुकती, जिस टीम की 'जर्सी' उसे खुशरग और भडकीली नज़र आती।

जाँच के काँटे उसके अपने थे। लोक-प्रचलित काँटे को वह मानती न थी। जिस शख्स को वह तौलती, उसको अपने लोचनो की तुला पर तौलती। दुनिया की आँखो की परखने की कसौटी कुछ भी हो, उससे बहस नहीं।

वह आधी आँख से पलक झपक-झपकते किसी जवान की जाँच खत्म कर देती थी। लम्बा, गोरा और लचीला—बिलकुल दुबला-पतला नहीं—होना तो जरूरी था, मगर ये बातें तो महज़ बाहरी रेखा थीं। ऊँची नाक हो, चिपटी नहीं। आम की फाँक की तरह लम्बी आँखें हो—बेढब बड़ी, गोली या छोटी नहीं। अगर उन पर चश्मा हो, तो सोने मे सुगन्ध! सर के बाल घुँघराले, घने और लम्बे हो, छोटे और छँटे नहीं। अगर रेखे भिनती हो, तो कोई मुज़ायका नहीं, लेकिन मूँछे हरगिज नुमायाँ न हो—गाल और होठो के ऊपर बालो की कमरत उसे किसी रूप मे गवारा न थी, तराश या तरतीब विलायती हो, या देशी—कटी और छोटी हो, तो एक हद तक वह बर्दाश्त भी कर लेती; लेकिन लम्बी और घनी मूँछें उसकी आँखो मे काँटो की तरह चुभती थीं।

उसकी रुचि और प्रवृत्ति भी विचित्र थी, उसके विचार और अन्दाज भी निराले थे। मुसलमान होने से उसकी आँखो मे कोई नीचा न होता, न ब्राह्मण होने से कोई ऊँचा। मुसलमान के बधने के पानी से वह उतनी ही भिन्नाती, जितना देव-मदिर के अरघे के जल की आचमनी से नाक सिकोड़ती थी। बुज़ुर्गों के मज़ार पर नेयाज़ देना और ताज़िये के दिन पायक बनकर छाती पीटना उसे वैसा ही सिड़ीपन जँचता था, जैसा ग्रहण के दिन गगा नहाना किवा घड़े या पत्ते के ऊपर गोबर के गौरी-गनेस पर फूल-चन्दन चढाकर सर झुकाना। उसका वश चलता तो वह न पडितो के मस्तक पर चुन्दी रहने देती, न मुल्लों के चेहरे पर दाढी। अँगरेज़ो के घी और मसाले से वञ्चित उबाले सादे खाने से उसको वैसी ही नफरत

थी, जैसी उनके बाग-बगीचे तथा कोठी कमरे की साज सज्जा और सफाई से मुहब्बत। मेमो के गाउन और हैट पर हज़ार फैशन की बहार क्यो न हो, कमखाब के लहँगे और घाँघरे पर लाख ज़र का काम क्यो न हो, पंजाबिनो की कमीज़ और शलवार पर सलमे-सितारे बेशुमार क्यो न हो—ये सभी परिच्छद उसकी आँखो मे कौडी के तीन थे। रग में फिरोज़ी, फूल मे 'पैसी', खशबू मे कस्तूरी, खाने मे कश्मीरी, मर्दाना लिबास मे मिलिटरी और ज़नाना लिबास मे पारसी साड़ी--उसको विशेष प्रिय थी।

वह जिसको चाहती उसको दिल से चाहती, और जिसको न चाहती उसको बात-की बात मे दिल से—आँखो से—उतार देती। नौकरो और बाँदियो मे ऐसे दो चार ही थे, जिन पर उसकी नज़र-इनायत बराबर बनी रहती। जब वह किसी पर दिल से खुश रहती, तब दिल खोलकर देती--पिता की आँखे बचाकर कीमती कपड़े या गहने भी देने से बाज़ न आती। यही वजह थी कि उसकी तुनक-मिज़ाजी की शोखियाँ सब पीठ ओडकर सह लेते थे। मगर जब कभी वह खफा हो जाती, बिलकुल नगी तलवार बन जाती—गर्दन के लहू चाटने के लिए दाँत तक गडा देती थी।

जो देखने मे अच्छा खासा हो, साफ-सुथरा हो, तर्ज़े-सखुन जिसका दिलफरेब हो, जिसे सारी बातो की तमीज़ हो, उसी मुलाज़िम से वह काम लेती थी। उसकी भूल-चूक पर भी वह पनाह देने से न हिचकती थी। अगर सूरत नहीं है, तो महज़ सीरत की कीमत कुछ भी नहीं। खुशरंग चीजें, खुशगवार बातें, चेहरे की खूबसूरती

और ख़ुशामद की आजिज़ी उसके दिल के मुलायम पहलू पर जादू का असर डालती। इसमे कोई शक नहीं कि पार्क और पार्टियो मे आते-जाते, मंच और तमाशो का रस लेते, उसको कभी-न-कभी ऐसे युवक ज़रूर मिल जाते, जिनके दरम-परस से उसको घटे दो-घटे खुशी से वक्त गुजारने मे मदद मिलती—जो छन-भर उसके प्राणो मे एक हल्का-सा पुलक पैदा कर देने मे कामयाब होते। लेकिन, कभी भी वह पुलक मृदनोत्सव मे परिणत नहीं हुआ, कोई मनचला जवान उसके मन पर अपना रग न जमा सका।

जिस दिन सलीम को उसने आँखो के जीने से अपने दिल मे उतार दिया, उस दिन उसके मानस-राज्य मे आदर्श का अनुसन्धान समाप्त हो गया, वह मजिल पर पहुँच गई।

बिजली ने सलीम के ठाट-बाट को—उसके रग-रूप को—उसके मुलायम मीठे अन्दाज को अपनी आँखो के काँटे पर तौल लिया। अब और कुछ देखने या परखने का बाकी ही क्या रहा? सलीम कौन है, कहाँ का है, उसका चरित्र कैसा है, उसका धर्म—उसके विचार—उसकी शिक्षा क्या है, इसे जानने की जरूरत ही क्या थी? जब उसकी आँखो ने—उसके हृदय ने—उस अज्ञात-कुल-शील युवक को कबूल कर लिया, तब बुद्धि भी उनकी सहचरी होगी या नहीं—यह ढूँढने मे उसकी न रुचि थी, न प्रवृत्ति।

जब आँखो ने आँखें मूँदकर, हृदय का पासपोर्ट देकर, बिजली के अन्तर्जीवन मे सलीम का प्रवेश करा दिया, तब किसी जाँच-पड़ताल की गुजाइश कहाँ रही? बुद्धि ने तो पासपोर्ट पर अपना

हस्ताक्षर नहीं किया—इस भूल को जब दिल महसूस कर लेता, तभी न उस अजनबी को वापस लौटाने की कोई कार्रवाई हो सकती थी ? जिस क्षेत्र में दिल की सल्तनत पर दृष्टि की हुकूमत चल गई। जिस कारिन्दे का सनातन दरजा बुद्धि और मन के अधीन रहना है—उनकी फरमाबरदारी है, वही नायब नाज़िर एकबारगी भरे दरबार में सबका अफसर बन बैठा और बुद्धि को पदच्युत कर मन की बागडोर को अपने हाथों में थाम लिया, फिर उस राज्य में अराजकता न फैलेगी तो कहाँ फैलेगी ? इधर बुद्धि तख्त से उतारकर नजरबन्द कर दी गई, उधर तमाम सात्विक वृत्तियाँ एक एक कर जलावतन कर दी गईं। फिर तो मैदान खाली पाकर मायाविनी वासना अपनी लवाजमात लेकर आ धमकी, और अन्तर का कोना-कोना उसकी लीला-तरङ्गों की लावण्य-लहरी से लबालब भर गया।

बिजली ने दो दिनों में टेनिस-कोर्ट बनवा डाला। मिस साहबा के बँगले की प्रशस्त लॉन में एक कच्चा कोर्ट तैयार करा लिया गया। दो दिनों तक कुली-मजदूरों ने सर्दी से थर-थर काँपते, दूनी मजदूरी की लालच पर, गैस जलाकर रात-रात भर काम किया। बिजली इतनी उतावली हो गई थी कि दो दिनों के अड़तालीस घंटों का एक-एक लहमा उसको एक एक मन्वन्तर प्रतीत होता था। उसे अचानक यह खब्त सवार हो गया कि किसी व्यायाम के अभाव के कारण उसका स्वस्थ-सुन्दर शरीर थुल-थुल कमजोर हो चला है—और, यह दिमागी मर्ज यहाँ तक बढ़ा कि रात का खाना भूख की गैरहाज़िरी से हराम हो गया था।

स्नेह-प्रवण पिता ने घर का तमाम काम बन्द कर कुल कारिन्दो को इसी काम पर तैनात कर दिया। टेनिस के जरिये सलीम से भेंट होगी—उसके साथ खेल कूद कर उसे वह अपनी क्षमता का परिचय दे सकेगी—उसके दिल पर अपने हाव-भाव का रग जमा सकेगी—यह प्रदीप्त कामना उसके अन्तस्तल में जरूर थी, वना व्यायाम का अभाव तो आज कोई नया अभाव न था, फिर उस अभाव का भी इतना बडा तकाजा कभी मुमकिन न था कि घर का और सारा काम, टेनिस कोर्ट की तैयारी के लिए, स्थगित कर दिया जाय।

लेकिन वाह री नारी! दुनिया तुम्हारे दर्दे-सर को भले ही देख ले, तुम्हारे दर्दे दिल को नहीं देख पाती। आखिर पुरुष की बुद्धि का प्रकाश कहाँ तक छिटकेगा? तुम्हारी माया का रहस्य-तुषार बडा ही निविड है। पुरुषों के लोचन ऐसे गुप्तचर नहीं होते कि नारी के मन के चोर का—नारी की नाड़ी का—पता पा सकें।

सप्तम परिच्छेद

अब तो बिजली को पल भर की फुरसत न थी। सुबह उठकर नहा-धोकर निबटते स्कूल का वक्त हो जाता। आठ बजते-बजते वह पानी से लबालब लम्बे हौज में जा बैठती। उसे बचपन से तैरने का शौक था, इसीलिए उसने घर पर भी एक खासा हम्माम बनवा रखा था। दस मिनट तक उसी हौज में किलोलें करती, तैरती-डूबती, उतराती-उछलती, साबुन मलती, मन-ही-मन मुसकराती और गुन-गुन गाती रहती। फिर तौलिया लपेटे ड्रेसिंग-रूम में आदम-कद आइने के सामने खड़ी हो जाती, अपने चंचल लटों का सँवारती—फुसलाती—चूमती और थपकियाँ दे-देकर कानों पर चढाती। आध घंटे तक इस तालीम का सिलसिला चलता। सामने की कुन्तल-लता का वितान जब कानों को आच्छन्न कर लेता, तब वह प्रसन्न होकर साड़ी बदलती और आँचल को क्लिप देकर सर के बालों में अँटका देती। फिर हैजलिन-स्नो की पॉलिश होती। मुख की गोराई पर क्रीम की मलाई चिकनाई

लाती। इतना सघन प्रलेप होता कि महीने मे दर्जनो हैजलिन के डिब्बे सफाचट हो जाते। लौट कॉलर का जैकेट हो या खुली गर्दन का ब्लाउज, अगर रग खुशरंग रहा तो किसी एक को वह खुशी-खुशी पहन लेती थी। पूरी आस्तीन के ब्लाउज को तो वह फूटी आँखो भी न देख पाती थी। शर्माज का प्रसार उसके अगो पर एक असहनीय भार था।

तबतक स्कूल की 'बस' आकर सर पर सवार हो जाती। वह जल्दी जल्दी दो तीन चुपड़ी चपातियाँ निगलकर तैयार हो जाती। सलीम उधर से घटी बजाता साइकिल पर आता और साथ-साथ स्कूल के फाटक तक जाता, फिर मुड़कर कॉलिज की राह लेता। वह 'बस' मे बैठी सहेलियो का छेड़ती, खिल-खिल हँसती, गालो पर उड़नेवाली बिखरी लटो को उँगलियो से कान पर सरकाती रहती और आँखे बचाकर कनखियो से सलीम को घूरती जाती। इधर सलीम की एक आँख बिजली पर तनी रहती, दूसरी सामने की जनता पर।

यह करीब-करीब रोजमर्रे का तमाशा था, लेकिन इस अन्दाज से अजाम होता कि किसी को ख्वाब मे भी कुछ पता न चलता।

बिजली को तो मश्शाकी थी। सलीम के साइकिल की घटी की आवाज से उसके कान कुछ ऐसे परिचित थे कि नगाड़ो के तुमुल रोल मे भी वे उसे आसानी से ताड़ लेते। स्कूल की 'बस' का ड्राइवर फाटक पर बार-बार 'हॉर्न' देता और वह 'आती हूँ, ठहरे रहो' कहकर कभी किसी कॉपी को

तलाशती—किसी किताब को ढूँढती, कभी टेबुल के दराज़ों को टटोलती, छुरी उठाकर जल्दी जल्दी पेंसिल बनाती, फ़ौंटेन-पेन में नई स्याही भरती और कभी नौकर को बाज़ार से लेमनेड लाने को दौड़ाती। आँखें सामने की घड़ी पर टँगी रहतीं और कान किसी वंशी-ध्वनि की टोह में खड़े रहते। तबतक टुन-टुन की एक बारीक आवाज़ उसके कानों में पैठती, और वह धड़-फड़ दौड़ती हुई 'बस' में जा बैठती—कानों से उछलकर प्राण आँखों में आ जमते।

कान तो कुछ सुनते नहीं — सुनता है मन, आँखें खुद तो कुछ देखतीं नहीं—देखता है मन। मन साथ न हो, तो आँखें देखेंगी क्या—कान सुनेंगे क्या। इसलिए शहर के हुल्लड़ और शोर-गुल में साइकिल की घंटी की एक क्षीण आवाज़ अपने-अपने धन्धों में व्यस्त मनुष्यों के कानों तक कभी पहुँचती न थी। इस ध्वनि से और बिजली के अकारण उद्वेग से कुछ सम्बन्ध है, यह राज़ तो किसी पर प्रकट होना सम्भव नहीं था, न सलीम का बस के साथ साइकिल दौड़ाये जाना किसी को असाधारण खटकता।

चार बजते-बजते बिजली स्कूल से वापस आती। आते ही कपड़े उतार कर नहाने जाती, टब में बाथ-सॉल्ट के टुकड़े छोड़ती और उसी सुरभित जल में तैरती, छपछपाती, छप-छप नहाती। नहा-धोकर टेनिस के लिए तैयार होती। सर का आँचल अब कन्धे को चूमता—ब्रूच के बन्धन में कसा रहता। ढीले जम्पर की जगह पापलिन का चुस्त जैकेट पहनती। मुँह पर दुबारा कोल्ड-क्रीम की मालिश होती। उसपर पाउडर की हल्की फुहियाँ और गालों

पर बिलकुल बारीक गुलाबी लालिमा। इस प्रसाधन में उसे कमाल की मशशाकी हासिल थी। रंग में रंग मिला देती। कहीं भी कृत्रिमता की झलक न रह पाती। वह सजधज कर रैकेट घुमाती मोटर पर जा बैठती और उसके अंगों से—उसके कपड़ों से—एक भीनी-भीनी मीठी महँक हवा में किलोल करती, मानो चमन के फूलों के परिमल से लदी हुई बसन्ती हवा की लपट हो।

घंटे-दो-घंटे टेनिस का खेल होता। मिस साहबा, बिजली और सलीम तो प्रतिदिन रहते। चौथे के लिए तलाश रहती। कभी बोर्डिङ्गहाउस की तितलियाँ आ जुटतीं, कभी रज़िया खेलती, कभी मिस साहबा का छोटा भाई 'पॉल' खेलता।

सलीम टेनिस का अद्वितीय वीर था। उसके हाथ कमाल के सुबुक थे। आधे कोर्ट में खड़ा होकर वह 'स्मैश' और 'वॉलीज़' की करामात दिखलाता। उसका ज़ारदार सर्विस में बिजली का कड़क थी।

बिजली आँखें गड़ाकर इस रस को पीती और खेलते-खेलते खेलना भूल जाती। गेंद जाल पर जाकर रुक जाता या कोर्ट के बाहर पोस्ट पर टकराता। वह विचलित-सी हो जाती, और फिर सुलझाने की कोशिश में और भी उलझती जाती।

सलीम इस परिस्थिति को खूबी से सँभाल लेता और मौका देखकर दाद देता। सलीम के मुँह से हाथ की सफ़ाई की तारीफ़ सुनकर वह जोश में आ जाती और एक-एक ड्राइव में वह कमाल दिखलाती कि देखनेवाले दंग रह जाते। 'फ़ॉर्टी स्टार्ट' कहकर

वह तनकर खडी होती और फिर बात-की-बात मे 'फोर्टी-ऑल' बनाकर तो दम लेती। 'Well shot ! Well played !' की गुञ्जन-ध्वनि उसके कानो मे मिसरी की डली होती। सलीम को छनभर मुकाबले का मजा आ जाता।

जब सूरज की अन्तिम लालिमा विलीन हो जाती, तब टेनिस का खेल बन्द कर देना पड़ता। सलीम गर्दन मे मफलर लपेटता, चमकीले ब्लेजर का कोट पहनता, फिर रूमाल से पेशानी के पशीने को पोछता। बिजली खडी होकर उसके मफलर और ब्लेजर की शोभा देखती और रूमाल की रगड से प्रस्फुटित उसके चेहरे की सुषमा पर आँख गडाती। मिस साहबा तो क्लान्त होकर आराम-कुर्सी पर लेट जातीं। जबतक एक छोटा पेग या कॉक-टेल न होता, उनके दम मे दम न पडता।

बिजली, सलीम, रज़िया और पॉल थोडी देर लॉन मे टहलते।

लॉन क्या थी—मखमली फर्श थी, हरी दूबो का कालीन। दोनो आर क्यारियो मे पैन्सी और पॉपी के खुशरग फूल खिले थे। बीच-बीच मे केवड़ा और कैना के पौदे। कैना के फूलो की विचित्र शोभा थी—गुलनार, गुलाबी और तरबूज़ी। लॉन के चारो तरफ सुर्खी की पतली सड़क हरी ज़मीन की साड़ी पर अबीरी बॉर्डर की बहार लाती। किनारो पर पाम और क्रीटन के गमले थे। फाटक से मकान तक गुलदाउदी की कतार थी।

बिजली के अङ्गराग की खुशबू फूले हुए फूलो के सौरभ से मिलकर एक विचित्र मादकता पैदा करती। घुल-मिलकर बाते

होतीं। पॉल के तुतलाने पर कहकहे पड़ते। छेड़खानियाँ होतीं। पॉल चिढ़कर दूर सरक जाता। बिजली एक खिली हुई पैन्सी को तोड़कर सलीम को हँसते हँसते नज़र करती। सलीम उसे सूँघता, होठों के निकट लाता और फिर कोट के बटन-होल मे डाल देता। बिजली कभी खुद ही पिन्हा देती। दोनों की आँखों मे एक नई चमक आ जाती: दोनों क्षण-भर चुप हो जाते। फिर किसी मैच की चर्चा छिड़ती। आँखे बचा-बचाकर आँखे मिलतीं। रजिया और पॉल देखते और सुनते रहते, लेकिन उतनी ही देखते और सुनते जितनी उनकी आँखों और कानों की दौड़ थी। बिजली और सलीम की चितवन और कलाम के परदे के भीतर जिस मर्मस्पर्शी रहस्य की चर्चा चल रही थी, उसे देखने और सुनने की क्षमता उनकी आँखों और कानों मे कहाँ थी?

यों ही हर्षी खुशी मे घंटे लम्हों मे गुजर जाते। चुपके दबे पाँव रात चली आती। अँधेरा छा जाता। रजिया घर जाने को उतावली हो उठती। सलीम धड़धड़ दौड़कर टेनिस का रैकेट लाता और मिस साहबा को 'गुड-नाइट' कहकर रजिया को ताँगे पर बैठाकर घर का रास्ता लेता। बिजली खड़ी देखती रहती। उसके सामने सड़क पर पानवाले की दूकान मे जलती हुई बिजली की बत्तियाँ चकमक करतीं और ताँगे के घोड़े की टाप की आवाज उसके कलेजे पर ठक-ठक बजती। वह धीरे-धीरे, गर्दन झुकाये, मकान की ओर, मिस साहबा के कमरे मे चली आती। उसके लिए वह दिन उसी वक्त निरानन्द निस्सार हो जाता—रात द्रौपदी की साड़ी बन जाती।

इसी समय बिजली मिस साहबा से पढ़ती। अब वह स्कूल की अन्तिम कक्षा मे थी। पार साल वह मैट्रिकुलेशन के इम्तिहान में भी बैठी थी; लेकिन हिसाब के परचे के दिन अचानक पेट में भयङ्कर पीड़ा शुरू हो गई और वह बिचारी स्नेहप्रवण पिता के अनुरोध पर हाथ मलकर रह गई। मैट्रिकुलेशन तक तो वह एक एक सीढी मजे मे चढ आई थी। अपनी क्षमता के ज़ोर पर चढी हो या मिस साहबा की कृपाकोर पर चढी हो—इस बात का पता नहीं। स्कूल मे कानाफूसी और टीका-टिप्पणी तो बहुत कुछ थी, लेकिन एक तो वह धनी-मानी की लडकी थी और दूसरे स्कूल की एक प्रमुख अध्यापिका की स्नेहदृष्टि की छाया मे रहती थी, उसे दो-चार जली-कटी छात्राओं की जिह्वा की कटुता कहाँ तक छू सकती। वह हिसाब मे जो कच्ची हो, पर अँगरेजी-साहित्य मे वह काफी तेज थी। हिन्दी-उर्दू ज़बान मे तो वह स्कूल मे लासानी थी।

वह कमरे मे आकर लैम्प के सामने किताब खोलकर बैठ जाती। मिस साहबा पास ही आरामकुर्सी पर लेटी रहतीं। दृष्टि-पथ पर कॉक-टेल-जनित वाष्प की एक हल्की गुलाबी घटा सामने आती—छन-भर छाती, फिर विलीन हो जाती। तबीयत मे फरहत रहती—आँखो मे मसर्रत।

"बिजली, आज क्या पढ़ाओगी?"

"जो कहिये।"

मिस साहबा अलजबरे के फारमूले समझातीं। हिसाब की

कॉपी से एक वरक़ फाड़तीं और उसी पर पेन्सिल से किसी प्रॉब्लेम को बनाकर बिजली के सामने फेंक देतीं—"देखो, बनाने के तरीक़े समझो।" बिजली उसे उठाकर देखती। मगर देखती खाक? उसकी आँखों के सामने तो सलीम के ब्लेज़र के बटन-होल की पैन्सी थी!

मिस साहबा फिर अरिथमेटिक उठातीं—"लिखो, देहली की दरी ढाई फीट चौड़ी, ढाई रुपये गज़ की है और दस बरस चलती है; मेरठ की दरी तीन फीट चौड़ी, डेढ़ रुपये गज़ की है और छः बरस चलती है; मुरादाबाद की दरी चार फीट चौड़ी, सवा रुपये गज़ की है और तीन बरस चलती है। बताओ, कौन-सी दरी सबसे सस्ती और कौन-सी दरी सबसे महँगी है?—फौरन बनाकर दिखाओ—कल मैं समझा चुकी हूँ।"

बिजली स्लेट लेकर बनाने की कोशिश करती। मन को खींचती, हिसाब के दायरे में लाती, फिर पेंसिल को होठों पर रखकर सोचती। बनाने के कायदे की एक कड़ी सूझ जाती; फौरन उसे टॉक लेती। फिर सोचती; दूसरी लड़ी तक जाती। फिर दिमाग कुरेदती; कुरेदने में अचानक सलीम की आँखें निकल आतीं। अब क्या हो? वह उसी में डूब जाती। अनमनी-सी आध घंटे तक कागज़ रँगती। मिस साहबा झल्ला उठतीं—"कल ही तुम्हें समझा दिया था, आज भूल गईं! तुम्हारे दिमाग में भूसा भरा है।"

भूसा तो भरा नहीं था, भरा था कुछ और।

जब आँख में आँख पड़ती है, तब दिमाग की आँख मुश्किल से खुलती है !

"लिखो, मैं बोलती हूँ। मुझे डर है, हिसाब मे तुम कच्ची रह जाओगी। युनिवर्सिटी की डिग्रियाँ तो सिफ़ारिशी चिट्ठी से नहीं मिलतीं। महज़ स्लेट पर लिखने से काम न चलेगा, दिमाग के स्लेट पर लिखो—आया ख़याले-शरीफ मे ?"

मानस-पट पर तो एक टेनिस-प्रवर वीर की तसवीर अङ्कित थी। बिचारी हिसाब के आँक को किस पट पर टाँकती।

"मैं सच कहती हूँ, तुम मुझे भी बदनाम करोगी। रायसाहब ने तुमको मुझे सुपुर्द कर अपना हाथ काट दिया। मैंने तुम्हे आज़ादी के गुलशन की बहार दिखाई। नहीं तो, परदे मे पड़ी-पड़ी सड़ा करतीं। पास न करोगी, तो कहीं तुम्हारा गुज़र होगा ? मैं तो रायसाहब के सामने आँख तक न उठा सकूँगी। जो जी चाहे, करो। लेकिन लिल्लाह ! इम्तिहान पास कर जाओ। मिहनत करो—दिल लगाओ, बग़ैर दिल लगाये यह बेड़ा पार नहीं होने का।"

दिल तो बिचारी एक दिलफ़रेब चुलबुले से लगा चुकी थी; अब अङ्कों के कङ्काल से लगाने को एक अलग दिल कहाँ से लाती ?

तबतक फाटक से मोटर के आने की आवाज़ आती। मिस साहबा का लेक्चर और भी ज़ोर पकड़ता। रायसाहब बरामदे मे एक छन खडे होकर इस पुर-जोश स्पीच का सुनते और चुपके से कमरे मे दाखिल हो जाते। दोनों—छात्रा और अध्यापिका—

पढने और पढाने मे इस कदर गर्क रहतीं कि विलायती बूट की सहज मचमच-ध्वनि भी उस तल्लीनता को तोड़ने मे सर्वथा असमर्थ रहती। मिस साहबा की आँखें जब ज्योमेट्री के प्रॉब्लेम से ऊपर उठतीं, तब अचानक रायसाहब पर दृष्टि पडती। फिर आप फौरन उठ खडी होतीं और—"हल्लो! आप कब से खड़े है?" कहकर हाथ बढ़ा देतीं। बिजली अपनी किताबो को समेटती और रायसाहब के साथ मोटर मे जा बैठती।

यह करीब-करीब रोज़ का सिलसिला था। रायसाहब क्लब से लौटते वक्त बिजली को साथ लिये जाते और अगर कहीं 'जानी-वाकर' का दोबारा-सेबारा दौर चल गया और ब्रिज की पार्टी जम खुदा गई, तब तो आप बिजली के लिए मोटर भेज देते और खुद जाने कब लौटते।

अष्टम परिच्छेद

सलीम से मिलत बढती गई, टेनिस की दिलचस्पी बढती गई। सुबह होते ही शाम का इन्तज़ार होता और शाम आते ही आवेश का संचार होता। जब वह हाथ मे रैकेट लेकर मोटर पर सवार होती, तब उसका कलेजा धक्-से कर जाता--'कहीं ऐसा न हो कि सलीम किसी कॉलिज-मैच मे अँटका रहे और टेनिस मे शरीक न हो सके।' रास्ते मे यह छटपटी दुगुनी हो जाती। अगर सचमुच सलीम कहीं न आ सका, तब तो बिचारी अधमरी सी हो जाती और इसदिल के मसोस पर परदा डालने की गरज़ से उसे अपने चेहरे पर जिस कपट-प्रफुल्लता का व्यर्थ प्रयास करना पड़ता, वह उसके लिए बिकट सङ्कट की परीक्षा हो जाता। उसके हृदय के गम्भीर प्रदेश से जो श्मशान-शून्यता उठ खड़ी होती, वह धीरे-धीरे टेनिस-कोर्ट पर--चमन के फूल-फूल पर--हर ज़र्रे पर--सघन होने लगती, और अब एक छन भी वहाँ टिकना उसके लिए हज़ार मुश्किल हो जाता।

"मिस साहबा, सलीम तो आये नहीं। आज खेलना फ़िजूल है। जबतक मुकाबला ज़ोरदार नहीं, तबतक खेल मे कोई लुत्फ नहीं रहता। चलिये, पार्क मे हवाख़ोरी रहे। मुमकिन है, कोई दिलचस्प मैच देखने को मिल जाय।"

मिस साहबा ख़ुशी से सहमत हो जातीं।

बिजली की बेकली तरक्की करती रही। सलीम से मिलने के लिए वह घटो मन मे छल-छन्द रचती, आवृत्ति करती; लेकिन मिलने के वक्त न जाने कैसी आकुलता कहाँ से टूट पड़ती कि आँखें बचाकर आँखें मिलाने के सिवा तो और कुछ करते नहीं बनता। इस मिलने से तो दिल नहीं भरता, वरञ्च एक वेदना उठ खड़ी होती। मगर इस अतृप्ति मे न जाने कितनी तृप्ति थी, इस तृप्ति मे न जाने कितनी अतृप्ति थी! इस वेदना मे न जाने कितनी माधुरी थी, इस माधुरी में न जाने कितनी वेदना थी!!

यो ही कुछ दिनों तक यह बेकली चली।

मानव-मन की विचित्र गति है। धीरे-धीरे यह चटपटी बेकली भी फीकी पड़ने लगी। रोज़मर्रे के इस्तेमाल से मुतंजन का मज़ा भी कमज़ोर हो जाता है—सोने का पानी भी म्लान हो जाता है।

टेनिस-लॉन पर घंटे-दो-घटे साथ-साथ कूद-फाँद करना, हँसी-मज़ाक करना, हाथ मिलाना किंवा आँखें मिलाना—उसे धीरे-धीरे फीका, बेमज़ा, रोज़मर्रे-सा मसरफी पुराना जँचने लगा। इस ओस चाटने से होंठों पर महज़ एक नमी होती, कुछ प्यास तो बुझती न थी। वही टेनिस, वही उछल-कूद, वही टेनिस खेलकर टहलना,

वही इधर-उधर की व्यर्थ चर्चा, वही दिल्लगी, वही बटन-होल मे पैंसी, वही आँखों की चोरी; इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक दिन ये सब अपने ढंग के निराले थे और अब भी अभाव में मुँह मीठा करने के लिए सरस थे—इतने दिनों की मधुर स्मृति भी इनसे जड़ित थी; लेकिन इस परिचित आमोद मे तो अब नवीनता की लज्जत न थी, न दिल को तड़पानेवाली बेकली रह गई थी।

बिजली की उत्कण्ठा तीव्र होती गई। वासना की आग उसके यौवन के उन्माद को कुरेदने लगी। भद्रता के काँटे पर तुले हुए दरस-परस से तो उस तीव्र क्षुधा की शान्ति कभी मुमकिन न थी फ़क़त दीदार की हल्की मयनोशी कुछ दिनो मे शरबत-सी मीठी हो गई। उसका गुलाबी नशा भी धीरे-धीरे काफ़ूर हो चला। अब वह प्रेमी के अधरो की फेनिल शीराज़ी को—गाढ़ालिङ्गन की उग्र ब्रांडी को—पगली होकर तलाशने लगी। इतनी बात वह ज़रूर समझती थी कि अवैध निविड़ परिचय की जिस तीव्र मदिरा के लिए उसके शरीर का एक-एक अंग विक्षिप्त-सा हो रहा था, वह भद्रता की मुहर लगी हुई बोतलों मे नहीं आती, और उसे समाज के लाइसेंस-प्राप्त प्राङ्गण मे बैठकर वह नहीं पी सकती थी। नई रोशनी के प्रगतिशील दायरे के साये मे जितने घूँट वह निःशङ्क पी सकती थी, उतनी वह पी चुकी; मगर इस चुल्लू-भर पीने की उल्फ़त ने ख़ुम-पर-ख़ुम उँड़ेल डालने की ललक दुगुनी कर दी। नशेबाज़ी की यह चाट उसे पैमाने की मिक़दार को दुगुना-चौगुना करने के लिए उभाड़ने लगी, और यह विषम प्रश्न अब अहर्निश

उसके दिमाग में खौलने लगा। दस क़दम आगे बढ़ने पर, रास्ता पथरीला ही क्यों न हो, अगर नन्दन-चमन के उद्दाम उत्सव में शरीक होने की संभावना है, तो फिर रोज़मर्रे की महफ़िल की परिचित घुघरू की आवाज़ कहाँतक दिल लुभा सकती है?

मगर सवाल यह था कि वह आगे कदम बढ़ावे तो किस बूते पर? उसकी मज्जागत नारी-सुलभ लज्जा का फ़ौलादी पंजा अभी तक लालसा की गर्दन चाँपे हुए था, और यद्यपि चाँपनेवाली उँगलियों का बल धीरे-धीरे शिथिल हो चला था तथापि पूरी गर्दन उस शिकंजे से छूटती न थी। इधर उसकी धमनी के भीतर उसके पूर्वजों का रक्त-प्रहरी, मर्यादा का अङ्कुश लेकर, उसके उन्माद की गति को रोकने से बाज़ नहीं आता, और उधर माँ-बाप के स्नेह का लङ्गर, प्रलयी कामना के तूफ़ान की चपेटों से तिलमिलाती हुई उसकी जीवन-तरी को अतल तल में बहकर डूब जाने से बचाता हुआ, भयङ्कर झोंकों को सहकर भी, अभी उखड़ा नहीं था। इस आन्तरिक घात-प्रतिघात के कारण उसके कदम आगे बढ़ने से सहम जाते थे।

सलीम भी तो अपनी जगह से हिलता न था। आगे कदम रखना तो उसके लिए ज़ेबा था। वह क्यों रुका था? उसकी उमंग पर तो लज्जा का कशाघात नहीं था! उसके प्रेम-प्रसून में तो मान-मर्यादा का कंटक नहीं था! उसके रास्ते में तो समाज का पर्वत नहीं खड़ा था! तो क्या उसके दिल में यह लगन नहीं थी? उसकी नस-नस में खड्ग-हस्त लालसा का प्रलयी तांडव नहीं था?

मुमकिन नहीं कि न हो। क्या बिजली की रूप-माधुरी मे उस ज़ालिम के मन के पंख नहीं फँसे थे ?

बिजली को अपनी अनुभूति का भरोसा था। सलीम की चितवन मे तो कामना की लपट साफ थी—उसकी चेष्टा से प्रेम-याचना चुई पड़ती थी। बिजली तो प्रतिदिन इस तड़पने के तमाशे को देखती और खुश होती थी। सलीम मे तो हिम्मत की कमी नहीं है ? वह तो चालाक और चुस्त, दिलेर और दबग है, वह तो कायर और दब्बू नहीं ? फिर वह सकोच क्या विवेक का ब्रेक है—संयम का अभिषेक है ?

मगर पौरुष का भूषण तो सयम नहीं। एक नारी जीवन के साथ खेलना तो टेनिस का खेल नहीं! अगर उसे दिल मिलाना मंज़ूर न था, तो आँखें मिलाने से मतलब ?

बिजली इन चिन्ता-लहरियो की तह तक डूबने को ज़ोर मारती और उसकी घायल कामना कराह उठती, भवे तन जातीं और उसका स्त्री-सहज अभिमान दिमाग की दुनिया मे मुनादी कर जाता—'इस दिल की लगी से उसका एक-एक जर्रा जलकर खाक हो जाय, कबूल है; लेकिन कगालिन बनकर वह हाथ पसारनेवाली नहीं—हरगिज़ नहीं।'

बिजली रात को पलँग पर पड़ी-पड़ी घंटो डूबती-उतराती; मगर किनारा न पाती; किसी निश्चय का सहारा न मिलता।

स्प्रिङ्गदार पलँग, गुदगुदे बिछौने; सन्नाटे का आलम, जाड़े की रात, जवानी का नशा, अरमानो का हुजूम। फिर बेकली क्यों न हो ?

इस ठंढ मे भी मखमली लिहाफ की गर्मी वह बरदाश्त नहीं कर सकती थी। वह एकाएक उठ बैठती, पानी पीती, पियानो छेड़ती, दो-चार लड़ी गाती; फिर सोती, करवटें बदलती, और आँखों मे रात काट देती थी।

कभी-कभी एकबारगी तकिये को छाती मे समेटकर वह एक तूफानी जोश मे काँप उठती और मुलायम गद्दे मे कसकर दाँत गड़ा देती थी! जो भी हो, दुनिया बसे या उजड़े, वह सलीम को इसी तरह भुजाओं के पाश मे बाँधकर अपने दाँतो के क्षत से घायल कर देगी।

लेकिन, आधी रात के अँधेरे के बलबले सुबह की रोशनी मे पिलपिले पड जाते, और सलीम के सामने आने पर पानी के बुलबुले बनकर विलीन हो जाते थे।

नवम परिच्छेद

रायसाहब रेलवे की ठेकेदारी में भी कुछ रुपये लगा चुके थे। ऊपर की पॉलिसी और निगरानी की बागडोर उनके हाथ में थी, मगर रोज़मर्रे के काम को कारिन्दों पर छोड़ रखा था। खासी आमदनी थी; साथ-साथ सैकड़ों की परवरिश भी। मुंशी माजिद अली की भी थोड़ी-बहुत शिरकत ज़रूर थी।

रायसाहब ज़माने के रविश से परिचित थे। रेलवे के बड़े-बड़े अफ़सरों को नज़र-नयाज़ से खुश रखते। बटेरों के दिन में बटेर की डाली, बड़े दिन को बड़ी-सी चरबी-भरी टरकी, मशहूर फर्मों के केक और पेस्ट्री, कश्मीरी सेब और माल्टे की नारंगी; ये सब तो ज़रूरी नज़राने थे। इनके अलावा साल में एक बार अपने इलाके पर ज़िले के कुल अँगरेज़ अफ़सरों और उनकी बीबियों को शिकार के विहार के लिए निमन्त्रित करते। यही उनके जीवन में सबसे बड़ा सालाना जलसा था।

तम्बू और खेमे, डेरे और कनात के जरिये एक छोटा-सा कस्बा खडा होता। आराईश और आराम के कुल सरजाम मुहय्या किये जाते। दोनो वक्त, छिडकाव, दोनो वक्त सफाई। गर्दगुबार का नाम न रहता। बडी चहल-पहल होती। रायसाहब और उनके मुलाज़िम एक पैर पर खडे रहते। उनकी पलका के पॉवडे बिछते। बिलायती बूटो की रज को सीमन्त पर रखकर गाँव की मिट्टी सुहागिन बनती। गमलो और फूलो से गुलशन की बहार होती। शैम्पेन और ह्विस्की की सरिता बहती। चुरुट और पाइप की गन्ध से वायुमडल आमोदित हो उठता। रायसाहब के पैर जमीन न छूते। मोटरो की दौड लगी रहती। रास्ट और कटलेट मे सिद्ध-हस्त 'रजा' बावर्ची मुज्जैयक डिशो की भरमार से साहबो की परान्न-वासिनी क्षुधा को प्रदीप्त करता—उनकी जठराग्नि की हाज़मे की क्षमता को दोनो वक्त दुगुनी कसरत पर बाध्य करता। सैकडो तीतर और बटेरें इस धरती-तल के जाग्रत गोरक्ष देव और देवियो की उदर-गङ्गा मे शरण लेकर—उनके रसनामृत का प्रसाद पाकर—अपनी निकृष्ट योनि से मुक्ति पातीं।

दो दिनो तक शिकार की धूम रहती। गाँव के किनारे लम्बी झील थी। झील के भीतर, झील के बाहर, तरह-तरह के लाखो पक्षी विचरते रहते। छोटी-छोटी डोंगियों पर सवार साहब और मेमे सुबह ही शिकार खेलने निकल पड़तीं। बन्दूको की आवाज़ से गाँव थर्रा उठता। झील के किनारे लक्ष्य का इन्तज़ाम रहता। शाम होते-होते घायल, बिस्मिल और मृत पक्षियो का अम्बार खड़ा हो जाता।

रायसाहब, साहबों और मेमों की प्रसन्न दृष्टि की किरणों से, कमल के फूल की भाँति खिले रहते। यों ही हरसाल झील की हज़ारों मुर्गाबियाँ, बतों और टीलों के रक्त से सिञ्चित उनकी राज-भक्ति की गौरव-लता लहलहाती रहती वह हरी-भरी फूलती-फलती। और, इधर हर ख़ासोआम की आँखों में उनकी आन-बान की महिमा तरक्क़ी करती जाती थी।

बसन्त-पञ्चमी का दिन है। सुबह आठ बजे होंगे। सालाना जल्से का दिन क़रीब है। रायसाहब चाय पीकर इलाक़े पर जाने के लिए तैयार हो रहे हैं। महज सात-आठ मील का फ़ासला। इन्तज़ाम देखकर खाने के वक़्त तक वापस चले आते। शहर से कारिन्दा का कारवाँ जा चुका था। भिश्ती, फ़राश और मेहतरों का काफ़िला जाने को तैयार था। कुर्सी, मेज़, पलंग, दरी, कमोड वग़ैरह बैलगाड़ियों पर लद चुके थे। रसद और डेरे मालख़ाने से निकाले जा रहे थे।

रायसाहब कमरे में बैठे चाय सुड़क रहे हैं। मुंशी माजिद अली वहीं सामने स्टोव पर आमलेट तल रहे हैं, साथ-साथ गरम-गरम मक्खन-आलूद टोस्ट कुर-कुर कुतरते जाते हैं कि हाँफता हुआ एक ठिगना अधेड़ मुलाज़िम सामने आया, और झुककर सलाम किया।

'क्या मोहनलाल? तुम यहाँ कैसे?"—रायसाहब ने आँखें फाड़कर पूछा।

"हज़ूर, अभी इलाक़े से आ रहा हूँ।"

'क्या! ख़ैरियत तो है?"

"जी हाँ! हुज़ूर का इक़बाल बुलन्द हो, सब ख़ैरियत है। मगर एक बे-मौके अड़चन आ पड़ी है। झील के उत्तर जानिब बाबा सुन्दरदास का जो मठ है, उसके नये महन्त गिरिधारी लालजी फ़साद पर आमादा हैं। उनका फ़रमाना है कि झील की चिड़ियों की ख़ूरेज़ी कभी हो ही नहीं सकती। साहबो को शिकार खेलना हो, तो कहीं दूसरी जगह इन्तज़ाम हो, वरना खून की नदी बह चलेगी; बन्दूको के छर्रे साधुओ की छाती पर पड़ेंगे। आदमी टर्री है बन्दानेवाज़।"

'झील को तो मठ से कोई तअल्लुक नहीं।"—रायसाहब चाय के प्याले को टेबुल पर रखते हुए बोले।

"नहीं हुज़ूर, नज़दीक होने से जो लगाव हो; वरना कब्ज़ा और अख्तियार कैसा! यह गैर-कानूनी हरकत है। महन्तजी गाँववालों को बटोर करके अहिंसा का लेक्चर झाड़ते हैं। यह कोई गो-कुशी थोड़े ही है जो हिन्दू-गोहार हो।"

"तो फिर करना क्या होगा? मैंने तो साहबो को नवेद दे दिया है। दूर-दूर से हुक्काम आ रहे हैं। कहीं कोई बखेडा हुआ तो फिर बड़ी किरकिरी होगी।"

"हुज़ूर, कोई अन्देशा नहीं। मेरा इत्तला दे देना तो ज़रूरी था, काश कोई दंगा हो जाय। मगर आखिर वह महन्त किस खेत की मूली है? साहबो के सामने नानी न मरी, तो मेरा नाम मोहनलाल नहीं! फौरन हथकड़ी लग जायगी हुज़ूर।"

रायसाहब को यह लग्गी से घास टालनेवाली राय कतई न जँची। कुछ सोचकर पूछा—

"आख़िर यह महन्त है कौन? कोई वैष्णवी फटाकावाला साधु है?"

"जी हाँ, गरीब-परवर! मुझे तो अव्वल दरजे का ढोगी नज़र आता है। मगर है बड़ा चलता-पुर्ज़ा। मठ से दो मील पर उसका घर है। वहाँ शायद बीबी-बच्चे भी हैं। कान फूँकने का रोज़गार है। उससे ख़ासी आमदनी है। घर आता-जाता है। आजकल तो इसी मठ पर डटा हुआ है। पुराने महत तो गुज़श्ता साल क़ज़ा कर गये। उनकी तो हुज़ूर को याद होगी। बड़े सीधे-सादे फ़िरिश्ता-सूरत थे। उनका वक़्त तो पूजा-पाठ मे गुज़रता था। दुनियवी मामलो से हमेशा अलग रहते थे।"

"हाँ, मुझे ख़ूब याद है; और मुझे ख़याल है कि मठ के लिए इलाके से कुछ बँधा भी था।"

"जी हुज़ूर! फसल के वक़्त चावल और गेहूँ का बँधेज था; और जब कभी महंतजी सरकार से मिलते, तब रुख़सताना भी पाते थे। मगर नये महत के वक़्त से कोई मरासिम नहीं रहे।"

"क्यो, जारी करने मे हर्ज ही क्या है? मुमकिन है, यही फसाद की जड़ हो।"

"हुज़ूर आली! मैंने इसे भी आज़मा कर देख लिया। यह महंत तो टस-से-मस नहीं होता। मुझे तो अभी पता नहीं चलता, किधर की हवा है। अभी कुछ साफ खुलता नहीं। आज-कल तो यही धूम है कि चिड़ियो का शिकार इस मठ वाली झील पर हरगिज़ न होगा। मगर साहबों के सामने यह गीदड़भबकी —"

"अच्छा, चलो, मैं अभी मोटर से चल रहा हूँ।"

मुंशी माजिद अली ने रायसाहब के कान में झुककर कुछ कहा, फिर दोनों खिल-खिलाकर हँस पड़े। "चाँदी के जूते से फ़िरिश्ते भी सर होते हैं, आदमी की कौन पूछे।"—माजिद अली ने हँसते-हँसते कहा और जेब से सिगार निकालकर एक रायसाहब को नजर किया और दूसरा खुद जलाया।

"आप तो इलाके पर चले और आज शाम को आपने मिस्टर स्मिथ को क्लब में पार्टी पर बुलाया है। इसको भी महेनजर रखना जरूरी है।"

"जरूर। मैं तो दो घंटे में वापस आता हूँ। आप तबतक यहीं ठहरें। तमाम इन्तजाम पड़ा है।"

"जी हाँ, आप बेफ़िक्र रहें। मैं सब कर लूँगा। चाकलेट केक मँगवा लेता हूँ। टमाटो और ककम्बर के सैंडविच तो यहीं तैयार करा लूँगा। चाय, मक्खन, रोटी मौजूद ही है। होटल से दो-चार चुनिन्दा पैस्ट्रियाँ चली आयँगी। रह गईं शराब की बोतलें। मगर टी-पार्टी में तो बिलफ़ेल उनकी जरूरत नहीं। खैर, देखा जायगा। हाँ, आखिर पार्टी में बिजली तो जायगी न?"

'जरूर। उसे अभी बुलाकर कहे देता हूँ।—कोई है?"

रामू खानसामा तुरत हाजिर हुआ और हाथ में सुबह का अखबार लेता आया।

"बिजली पढ़ रही होगी, उसे जरा जाकर बुला तो लाओ।"—कहकर रायसाहब ने 'स्टेट्समैन' खोलकर एक सरसरी निगाह

डाली। बिजली के कमरे बिलकुल अलग थे। पाँच मिनट मे लौट लौट आया, और बिजली बच्ची गुसलखाने मे जा चुकी है, इसकी खबर दे दी।

"खैर, कुछ हर्ज नहीं। मै अभी वापस आता हूँ।"—कहकर रायसाहब जाने के लिए तैयार होने लगे। पट उतारा, धोती पहनी। कधे पर एक गरम लोई ली। बाहर आते ही चौबेजी मिल गये। रायसाहब ने हँसकर प्रणाम किया। चौबेजी ने ललाट पर गुलाल का टीका लगा दिया और आम की मजरी की एक नन्ही-सी डला सामने पेश की—यह नव वसन्त का सगुन है। रायसाहब ने बड़ी आजिज़ी से उसे सर पर रखा और चौबेजी के साथ चलने के लिए अनुरोध किया। मोटर खडी थी। रायसाहब सवार हो गये और जाते-जाते मुशीजी को शाम की पार्टी के तमाम इन्तज़ाम सुपुर्द कर गये। मुशीजी ने वही बँधा हुआ जुमला—'आप बेफिक्र रहे'—कहकर बुझे हुए सिगार को ताज़ा करने के लिए दियासलाइ जेब से निकाली।

मोटर सीधे मठ तक चली आई। महतजी उस वक्त चौके मे बैठकर वसन्त-पचमी का प्रसाद तैयार करा रहे थे।

दो-तीन मज़बूत चेले लँगोट बाँधे आटा गूँध रहे थे। एक बादाम और पिस्ते की छालियाँ तराश रहा था। हडो मे घी और चीनी का अम्बार था। गरम तर माल की खुशबू हवा मे फैल रही थी। चिरौंजी और मुनक्के के कतरे थालो मे भरे रखे थे। कड़ाहो पर मानो दूध का खोवा तैयार हो चला था।

मोटर की आवाज़ पाते ही महतजी ने खिड़की से उचक कर

बाहर देखा और चुपके-से पूजावाले कमरे में जा घुसे। आप फौरन पद्मासन लगाकर कुशासन पर बैठ गये और दाहिना हाथ जप-मालिका में घुसेड़कर ब्रह्म-चिन्तन में निमग्न हो गये। आँखें ऊपर टँग गईं। गदन पर रामनामी की चादर खिड़की से आती हुई हवा के ताल पर थिरक रही थी। चेहरे पर सफेद और काले बाल मिल-जुलकर गङ्गा और यमुना के सङ्गम की छटा दिखा रहे थे।

सामने ही सीता राम की युगल मूर्त्ति थी। एक दोने में कुछ मिसरी के टुकड़े थे। केले के पत्ते पर गेंदे के फूलों की माला रखी थी। कोने में बासी फूलों का ढेर था। घृतदान से घृत की मीठी गंध छोटे से कमरे में छा रही थी।

रायसाहब और चौबेजी मोटर से उतरकर बेरोक-टोक भीतर चले आये। रायसाहब ने जेब से एक गिन्नी निकालकर भगवान के चरण-प्रान्त पर रखी और बड़े तपाक से सर झुकाया। चौबेजी ने साथ साथ भगवान की स्तुति शुरू की। गिन्नी की मीठी झनकार मठाधीश के कानों में गुदगुदी पहुँचाती हुई कलेजे तक पहुँची और आपके अर्द्ध-निमीलित लोचनों का एक कोना ज़रा-सा खुल कर फिर बन्द हो गया। कलेजे के कोने से उठी हुई प्रसन्नता की एक झलक आपके वदन मण्डल की नुमाइशी गंभीरता को ठेलकर ऊपर आने के लिए भिड़ गई।

दिल और दिमाग के परदे की लड़ाई चेहरे के आइने से कहाँ छिपती?

रायसाहब सामने आये, महन्तजी को झुककर प्रणाम किया

और एक गिन्नी की अञ्जलि उनके चरणों में भी दी। विजयिनी प्रसन्नता महतजी के चेहरे पर फूट पड़ी। गंभीरता के पैर बिलकुल उखड़ गये—मैदान से भाग गई।

"कहिये रायसाहब, सब कुशल है? कैसे पधारे?" —महतजी ने फरमाया।

"जिन्दा हूँ, यही कुशल है। मैं तो यहाँ कुछ काम से इलाके पर आया था। आज वसन्त पञ्चमी का शुभ दिन है इसलिए चला आया, आपका दर्शन करता जाऊँ। आप इस प्रान्त के पूज्य ठहरे। दो क्षण भी तो शान्ति मिले, यही बहुत है। हमलोगों को तो दम मारने की भी फुरसत नहीं। रोज एक न एक झंझट। अंगरेजी राज्य है, अंगरेजों की हुकूमत है। उनका नाज उठाइये, तो मुश्किल, न उठाइये, तो हजार मुश्किल। आज-कल हमारे जिले का कलक्टर एक बड़ा ही जोरदार अंगरेज है। सारा इलाका थरा उठा है। किसी की हिम्मत नहीं, उसकी मर्जी के खिलाफ चूँ कर। बड़े-बड़े लीडरों के नातके बन्द हैं, हमलोगों की क्या गिनती? अब आप अगले हफ्ते में अपने दो-चार मित्रों के साथ यहाँ झील पर बत्तख वगैरह का शिकार खेलने तशरीफ ला रहे हैं।"

"रायसाहब, इन निरपराध पक्षियों की हत्या—"

"जी हाँ, यही तो मुझे भी खटक है। लेकिन क्या करूँ—चारा क्या है? अगर कुछ रोक-थाम करूँ, तो जान के लाले पड़ जायें। उसके तेवरों का तमंचा चढ़ा ही रहता है। कोई हो—साधु हो, पत्रकार हो, राजा हो, जमींदार हो—किसी की दाल उसके सामने नहीं गलती। शिकार में छेड़छाड़ करना खुद उसके तेवर का

शिकार होना है—नाहक सर पर एक आफ़त मोल लेना है। एकाध दिन में चारो तरफ पुलिस का पहरा बैठ जायगा। मजाल है कि कोई खाँस भी सके ?"

"तो फिर ?"

"तो फिर यही देखना है कि भरसक मुजरिम पिटे और निर्दोष बिचारे बच जाँय। आखिर पक्षियों में भी तो हर तरह के पक्षी हैं। इसी झील में बहुतेरे ऐसे पक्षी हैं, जो छोटी-छोटी मछलियों का शिकार करते हैं। यही उनकी खुराक है। एक कौड़ाही कम-से-कम पचासों मछलियों को मारकर खा डालती है। अब आप ही कहें, मछलियों का जीवन भी तो जीवन है ? उनके कलेवर में भी तो जान है ? अगर ऐसे जालिम पक्षियों का शिकार न हो, तब तो बिचारी मछलियाँ बिलकुल बेशरण हो जायँगी। आखिर उनकी रक्षा कैसे होगी ? यही तो सृष्टि का इन्तजाम है। कीड़े-मकोड़े, चींटे-घोंघे वगैरह अगर किसी की खुराक न हों, तो फिर दुनिया में कहीं खड़े होने का भी एक बालिश्त जगह बचेगी ? और, फिर जो उनका उदरस्थ करता है, उसको दूसरे जीव जन्तु हड़प जाते हैं। यही सिलासिला जारी है।"

"जी हाँ ! शास्त्र भी कहता है—'जीवो जीवस्य जीवनम्'।"

"अब आप ही समझें, इस थल में, जल में, वायु में, आकाश में न जाने कितने बेशुमार जीव पैदा हो रहे हैं और नष्ट हो रहे हैं। शिकार की यह सनातन प्रथा तो एक निमित्त मात्र है। पाप तो हमारी नीयत पर है, कुछ कर्म पर नहीं।"

"अवश्य। लेकिन, जिह्वा के स्वाद के लिए हत्या.....!"

"महाराज! स्वार्थ के लिए तो मनुष्य मनुष्य के खून का प्यासा है, पक्षियों का कौन जिक्र! भगवान श्रीकृष्ण ने तो अर्जुन के हाथों से करोड़ों निरपराध व्यक्तियों की खूरेज़ी करा डाली और वक़ील उनके वे निलिप्त के निलिप्त बने रहे। राजा राजा लड़े और लाखों गरीब कुर्बान हो गये—उनके घर उजड़े महाराज! शास्त्रों में भी तो आखेट मना नहीं है? इस शिकार-धारा का गोमुख तो सनातन की चोटियों में छिपा है! हमारे मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र भी तो जङ्गल में जाकर मृगों का शिकार खेलते थे, और गौर कीजिये, हिरन बिचारे इन पक्षियों से भी निर्दोष हैं! उनकी खुराक तो कभी कोई जीव नहीं है—महज़ घास-पात है। राजाओं के लिए तो यह शिकार की तफरीह बराबर से चली आ रही है। आज तो यहाँ के राजा अंग्रेज ही हैं। आखिर अहिंसा की मर्यादा भी एक हद तक ही जेबा है। अगर यही हवा चल जाय, तो फिर तमाम मुल्क खूँख्वार से भर जाय। मर्द को छाती में दया का दूध उतारने से कहीं ज्यादा जरूरी बन्दूक छतियाना है। हम मरने और मारने से डरते हैं, तो जीते जी हमें मर-मरकर जीना होगा। सृष्टि को कायम रखने के लिए संहार का दरजा कुछ भरण-पोषण से कम नहीं है। खैर अब इजाजत हो। मैंने बहुत-कुछ आपका समय नष्ट किया। फिर दर्शन करूँगा।"

रायसाहब उठ खड़े हुए। महतजी से जवाब पाने के लिए वे तैयार नहीं थे। सवाल-जवाब से बात बढ़ती जाती और तूल देने की उनकी मन्शा नहीं थी।

"अच्छा, प्रसाद तो लेते जाइये"—कहकर महतजी उठे और

एक पत्ते के दोने में कुछ मेवे और मिसरी रखकर रायसाहब के हाथों में छोड दिया। गले में गेंदे की एक माला डाल दी।

रायसाहब ने फिर झुककर प्रणाम किया, और महन्तजी के साथ-साथ बाहर चले आये। ड्राइवर ने हैंडिल घुमाकर मोटर स्टार्ट किया और उस भर-भर की आवाज़ से चकित लालमर का एक दल झील से उठकर काँव-काँव करता हुआ सर पर से निकल गया।

रायसाहब दस बजते-बजते घर लौट आये।

बिजली सामने खड़ी-खड़ी मुन्शी माजिद अली से बातें कर रही थी। रायसाहब ने मोटर से उतरते ही आवाज़ दी—'बाज़ी मार ली! मेरे सामने तो हजरत चूँ नहीं कर सके। सहज एक गिन्नी की चपत में ढेर हो गये। ज़बान तालू में सट गई मैं तो तैयार होकर गया था कि मेरे रुबरू अगर कुछ चीं-चपड़ करते, तो चुटकियों में महन्ती की मुस्सियाँ उड़वाकर छोड़ता। मगर खैर, जाते ही बच्चू ने एक ही वार में ज़मीन पकड़ ली।"

मुन्शी माजिद अली ने हँसते-हँसते फ़रमाया—'वाह! आप जायँ और फतह न हो? आखिर उस महन्त की हकीक़त क्या थी?"

उधर महन्तजी भी बाँसों उछल रहे थे। रायसाहब की मोटर अहाते से निकली और आपने झुककर अपने अन्तरङ्ग अनुयायियों से फ़रमाया—"देखा, दो दिन की झड़प पर रायसाहबी की कलई ढीली पड़ गई। सर के बल आये और गिन्नियाँ नज़र कर गये। यों ये झाँकनेवाले थे? आज तक तो इन दीवारों के भीतर इनकी छाया भी न पड़ी थी—'बिनु भय होइ न प्रीत'।"

दशम परिच्छेद

रायसाहब मोटर से उतरकर कमरे की ओर बढ़े। बिजली सामने थी। 'बस' आती ही होगी, ... — आज कहाँ रुकी है। ... सलीम आता ही होगा... ...'—उसके चेहरे पर प्रतीक्षा की उत्सुकता थी। मन टँगा था। आँखें टँगी थीं। उसकी चोटी का लाल रिबन प्रभात की किरन पर गुलाब का फूल बन रहा था।

"बिजली! आज शाम को पार्टी में चलना है, याद रखना।"—रायसाहब ने मुड़कर कहा।

बिजली गिरी! बिजली का स्वप्न तड़ से टूट गया—"क्यों? मुझे तो फ़ुरसत नहीं।"

"फ़ुरसत नहीं? आख़िर कौन तुम्हें ज़रूरत है?"

"मैं उस वक्त टेनिस खेलती हूँ। फिर मिस साहबा से पढती हूँ।"

"वहीं क्लब मे टेनिस खेल लेना। पढ़ने के वक्त तक छुट्टी हो जायगी।"

अब बिजली कौन दलील पेश करे? उसकी आँखो मे नैराश्य की छाया खिच गई।

"नहीं, मुझसे किसी नए कोर्ट पर खेलना नहीं बनता। माफी चाहती हूँ।"

बिजली के शब्दो मे दृढता का आभास था। रायसाहब सकते मे आ गये।

अँगरेज़ अफसरो की पार्टी मे बिजली की हाजिरी से उनके दिल को तसल्ली रहती थी। मेजबानी की कला को वह इस अदा से अदा करती कि तबीयत लोट-पोट हो जाती। केतली से चाय को वह इस तपाक से टालती, केक के प्लेट का—चाय के प्याले को—वह इस अन्दाज से बढाती, चम्मच से चीनी वह इस खूबी से देती कि जी चाहता हाथ चूम ले। साहबा की आँखो की मुहब्बत दुगुनी हो जाती, उनकी लौकिक भद्रता के रङ्ग पर एक विशेष शीलता की पॉलिश आ जाती। सबकी चितवन पर बिजली की छटा होती, सबकी ज़बान पर बिजली की चर्चा होती।

रायसाहब अपनी कन्या की इस विचक्षण प्रतिभा से परिचित थे और यही वजह थी कि उसको ऐसे मौके पर साथ रखना अनिवार्य समझते थे। इसके अतिरिक्त बिजली ने कभी पितृ-

आदेश की अवहेलना नहीं की थी। बचपन ही से वह ज़िद्दी थी ज़रूर, घटो वह रूठती-फूलती रही, घर-भर को परीशान भी कर डालती, लेकिन रायसाहब की बात पर जवाब देने की न लत थी, न हिम्मत।

रायसाहब फिर तमक कर बोले—"होश मे आकर बातें करो! तुम्हे चलना होगा।"—इतना कहकर वे कमरे मे घुस गये फिर इनकार सुनने को तैयार नहीं थे।

बिजली का चेहरा सुर्ख हो गया। 'हरगिज़ नहीं'—उसकी ज़बान पर आया ही था कि चिल्लाती हुई 'बस' आ पडी और गली से निकलते हुए सलीम की साइकिल टकराते टकराते बच गइ। आज उसके कानो पर घटी की आवाज नही पडी, चूँकि पिता के पार्टीवाले प्रश्न से उसका मन अचानक विक्षिप्त हो उठा था। सलीम साइकिल से उतर गया। बिजली को देख ठिठका-सा रह गया। बिजली जल्दी-जल्दी सीढियो से नीचे उतरी। भवें खिची हुई थीं, होठो का कोना सिकुडा हुआ था।

"बिजली, आज तो मुझे टेनिस से माफी देनी होगी। मै तो तीन हो बजे कॉलिज से सीधे क्लब चला जाऊँगा। तुम्हारे वालिद ने मिस्टर स्मिथ का पार्टी दी है। मुझे भी जाकर इन्तज़ाम मे शरीक होना है। माम की सख्त ताक़ीद है!"

बिजली को खुशी और रज एक साथ हुआ। रज इस बात पर कि सलीम ने भी पार्टी मे जाने से इनकार क्यो नहीकर दिया। वह तो सलीम ही से मिलने के लिए पिता के अनुरोध को भी अमान्य कर बैठी थी, और सलीम की मुहब्बत मे इतनी जुर्रत न थी

कि दूसरे की पार्टी का भार अपने सर पर लेने से साफ इनकार कर दे? सचमुच स्त्री का दिल कुछ और है, पुरुष का दिल कुछ और। हाँ, खुश होने की तो काफी वजह थी। पार्टीवाली उलझन अनायास सुलझ गई। बिजली फौरन पलट गई। बस के ड्राइवर को--'अभी आती हूँ--रोके रहो'—कहकर सीढ़ियों से ऊपर दौड़ गई।

रायसाहब मौन-गम्भीर हो कमरे में टहल रहे थे। उनके चेहरे पर बदली छाई हुई थी। मोटर से उतरते वक्त उनके वदन-मडल पर जो रोशनी थी, वह मेघ के नीचे दब गई थी। मुंशी माजिद अली इस आकस्मिक अन्धकार को देखकर सहमे-से खड़े थे। खुदा जाने, यह बादल किधर बरसेगा—कुछ दहशत-सी बनी थी। खड़े-खड़े बेवजह सिगार की राख झाड़ रहे थे।

बिजली दौड़ती हुई सामने आई।

"लाला! मदन की दूकान का एक रुक्का लिख दो। मैं एक नई साड़ी लेती आऊँगी। आखिर पार्टी में यों ही तो न जाऊँगी? मेरे पास तो कोई नई साड़ी रही नहीं।"

एक ही झोंके में बादल फट गये। रायसाहब ने खुश होकर फौरन रुक्का लिख दिया।

"मैंने तो समझा था, तुम्हें जाने से इनकार है। अब तुम सयानी हुई, जिद करोगी तो सजा पाओगी!"

"माफ करो! मैं पगली हो गई थी। मैं मिस साहबा को भी साथ लेती आऊँगी। स्कूल में मोटर भिजवा देना। पार्टी के बाद मैं सिनेमा चली जाऊँगी।"

"तुम जा सकती हो, कोई उज्र नहीं।"—रायसाहब इस वक्त

प्रसन्न थे। जो कुछ वह माँगती, ज़रूर पाती। पिता के मिज़ाज की मौज से वह परिचित थी।

वह लौट चली। मुंशी माजिद अली ने छेड़ते हुए कहा—"बिजली! मसूद की दूकान पर भी देख लेना। सुना है, बॉम्बे से नये पैटर्न की साड़ियाँ मँगवाई हैं। तुम्हारी चच्ची ने कल एक खरीद की थी।"

पार्टी में वह फूल-सी खिली, फूलों में भी गुलाब का फूल—गुलाबों में भी बसरे का गुलाब। वह जिधर निकल जाती, उधर नजरों की नजरें गुज़रतीं—अव्यक्त अरमानों की अर्ज़ियाँ पेश होतीं। बूढ़े भी कलेजा थाम लेते। झुकी हुई गर्दनों की घटा में वह बिजली-सी चमकती थी। उसकी एक-एक अदा को लूटने को चितवनों का हुजूम टूटता था। नज़र से नज़र छिलती थी, हसरत पर हसरत पिलती थी। रूप तो था ही, उस पर फैशन का शृङ्गार, शृङ्गार पर तमीज और अन्दाज की बहार। मुसकान में बिजली की चमक, आँखों में मस्ती की झलक।

बारीक फ्रेंच जार्जेट की उन्नाबी साड़ी, किनारे पर कश्मीरी चनार की ज़रदोज़ी क्यारी, रेशमी ब्लाउज के ऊपर सुनहले ज़री कमखाब की चुस्त नीमास्तीन, कानों में हीरे के झुमके, हाथों में मोतियों के मुन्तशे; गर्दन में उज्ज्वल पर्ल की पतली लरी, बाज़ पर इनेमेल सोने की तितली, माथे पर रोली की बिन्दी, चेहरे पर पाउडर और पेंट की हल्की मीनाकारी; अंग-अंग से हुस्नहिना की मीठी खुशबू; और सबके ऊपर उसकी निगाहों के करश्मे थे—

उसकी मीठी ज़बान की काकली थी ! उसने अपने सामने शहीदों के हुजूम को देखा और उसके अन्तर का कोना-कोना चारो ओर से बरसती हुई स्तुतियो की गुंजन से झकृत हो उठा।

रायसाहब ने पार्टी की बागडोर उसके हाथो मे दे दी। साहबो की आँखो ने भी उस रूप की आरती उतारी; उसकी रुचि और तमीज की तारीफें कीं। मेमो की दृष्टि मे विस्मय की रेखा थी, उनके चेहरे पर सफेदी फिर रही थी। बिजली प्याले मे चाय देती, दूध देती और चीनी से भरा चम्मच कप की कोर पर रखकर निगाहो के इशारे से इजाजत माँगती। वह चाय मे चीनी मिलाते-मिलाते चाह की चीनी भी मिला देती। कभी सैंडविच की तश्तरी पेश करती, कभी क्रीमरोल बढाती और कभी चाकलेट-केक को छुरी से टुकड़ो से बाँट एफ-एक काश को प्लेट पर रखकर साहबो और मेमो से चखने का आग्रह करती। वह मुसकाती, हँसती, लचती, कानो पर बाल सुहलाती, सर पर आँचल सम्हालती, मिस्टर स्मिथ की बच्ची के गालो को चूमती, बेले के गजरे साहबो की गर्दन मे डालती—सुनहले तारा की माला मेमो के गले मे डालती, और आँखें बचाकर—कनखियो से—दूर कोने मे खड़े सलीम को भी देख लेती।

आज वह खास तरह से बन-ठनकर आई थी—"पा-पोश मे लगाई किरन आफताब की।" आज वह सलीम को जता देना चाहती थी कि दुनिया की निगाहो मे उसकी किस दरजे की कीमत थी और उसके रूप-रङ्ग मे—उसके हाव-भाव मे—किस हद तक

मोहिनी सत्ता भरी थी ! आज भी तो सलीम समझे कि बिजली की आबदार आँखो से बिहिश्त झाँक सकता है। उसके होठों के रस मे कौसर का खज़ाना उमड़ सकता है। अब भी तो वह उस सुषुमा की एक छटा के लिए तरसे। आज नहीं, तो फिर नहीं। ऐसा सुयोग फिर नहीं आ सकता। उसके रूप और कला की मनोहारिणी शक्ति किस सीमा तक जा सकती है—उसे सलीम की आँखो मे उँगलियाँ देकट दिखा देना था।

वह अपनी किस्मत की आज़माइश के लिए तैयार होकर आई थी, और उसने दाँव पर अपना सर्वस्व रख छोड़ा था। वह सलीम से मिली तक नहीं; चम से कतराकर अलग निकल गई। सलीम की आँखो के सामने उसने पास की झाड़ी से एक अबीरी गुलाब को तोड़कर टेनिस के एक शोख खिलाड़ी पहिचित पारसी जवान के बटन होल मे पिन्हा डाला। बिचारा इस अकारण कृपा कटाक्ष से भौचक-सा हो गया और इधर सलीम की आँखो मे ईर्ष्या की आग भडक उठी। बिजली ने सलीम को मुड़कर देखा तक नहीं !

जादू चल गया। इस हमले से सलीम के हृदय-कपाट के कब्जे एकबारगी उखड़ गये। उसे बिजली की बिजली छू गई। प्रहरी बुद्धि की मुश्कें बँध गईं। अब वह जान पर खेलने के लिए तैयार हो गया। बिजली के दिल के भीतर उस टेनिस-प्रतिद्वन्द्वी युवक की रसाई किस हद तक है, यह जानने के लिए वह धड़फड़ा उठा। उसने आँखें गड़ा-गड़ाकर बिजली की एक-एक अदा को तौलना शुरू किया। बिजली तितली-सी

इधर-उधर उड़ रही थी। उस युवक से बार-बार मिलती और हँस-हँसकर बातें करती। सलीम की जासूसी आँखें पीछे लगी रहीं, पर दिल चीरकर भीतर न जा सकीं। साथ-साथ बिजली के लासानी साज शृङ्गार का जादू उसके सर पर सवार था।

छः बजते-बजते पार्टी खत्म हुई। मेहमानों से भरी महफिल सूनी हो चली। रायसाहब दो-चार मित्रों के साथ क्लब के कमरे में जा डटे। पेग और ब्रिज की सान्ध्य आराधना शुरू हो गया गई। उधर बिजली मिस साहबा को लेकर सिनेमा देखने चली। रज़िया और सलीम भी साथ हो गये। बिजली ने सलीम को साथ चलने के लिए तो नहीं कहा, लेकिन जब उसने आकर अपनी अर्जी खुद पेश की, तब तो वह हँसकर फौरन सहमत हो गई। सलीम की आँखों की एक नई चमक देखकर बिजली समझ गई कि यह दिल की किसी लौ का प्रतिबिम्ब है।

सिनेमा-हॉल ठसाठस भरा था। लोग टिड्डियों की तरह पिले पड़ते थे। नीचे कोई सीट खाली नहीं थी। बिजली ने जाकर ऊपर का एक बॉक्स लिया। चार कुर्सियाँ थीं। सामने की दो सीटों पर मिस साहबा और रजिया बैठीं, पीछेवाली सीटों पर सलीम और बिजली। आखिरी घंटी बज चुकी थी। रोशनी गुल हुई। परदा उठ चला।

एक दिलफ़रेब और दर्दनाक तमाशा था। प्रेम का सरस अभिनय। नायिका एक धनी की लड़की थी 'लूसी'। इशरत में पली; लोक में प्रतिष्ठा थी; कुल की मर्यादा थी। बिचारी एक अपरिचित युवक में प्रेम में जा पड़ी। 'जेम्स' सिपाही था। उसका ज़माना उतार पर

था, लेकिन था वह शेर-दिल। उसके हाथ मे तलवार बिजली-सी खेलती थी। उसकी मजबूत रानो की गिरफ्त मे मुँहजार घोड़ो के दम उखड जाते थे। वह माउंटेड ब्रिटिश बटालियन का मेजर-जनरल था। दोनो प्रेम मे गुँथ गये थे। उस युगल जीवन मे धूप और छाया की आँख मिचानी अन्त तक जारी रही। नायिका ने कुल को छोडा, माँ बाप के प्यार से मुँह मोड़ा, दौलत पर लात मारी, हजारो मुसीबतो को खुशी-खुशी गले लगाया, मगर वह प्रेम-पथ से जरा भी न बिचली। उसने कलङ्क को सीमन्त का तिलक समझा। काँटो का ताज फूल का सेहरा बन गया।

बिजली और सलीम के घायल दिल पर इस तमाशे का भयङ्कर असर पडा। प्रेमियो के जीवन के उतार-चढ़ाव पर वे खुद उतरते और चढते रहे। उस सुख-दुख की स्पष्ट लीला मे वे इस कदर लीन हो गये कि बिजली 'लूसी' बन गई और सलीम 'जेम्स' बन गया। रजिया तो कुर्सी पर बैठी ऊँघ रही थी। मिस साहबा के स्मृति पट पर कुछ ऐसे ही मनोहर अतीत के बादल धीरे-धीरे उमड़ने लगे और वे उसी भाव-लहरी मे डूब गईं।

बिजली और सलीम तो अपनी स्थिति भी भूल बैठे। जिस क्षण परदे के ऊपर विकट सङ्कट के शिकञ्जो मे प्रेमियो का अकस्मात् मिलन हुआ, उसी मुहूर्त्त दोनो की नस-नस मे कुछ ऐसी तरंग उठी कि उनके हाथ एक दूसरे से अनायास चिपक गये। यह करालिङ्गन धीरे धीरे निबिड़ होता गया और उनकी पोर-पोर मे बिजलियाँ दौड़ पड़ीं। बिजली की नर्म हथेली सलीम के मज़बूत

पंजे मे विवश पड़ी रही। सिर से सिर, गाल से गाल, कधे से कधे मिलते रहे। यह मधुर आवेश तमाशे के अन्त तक निरन्तर बना रहा। सुबह से ही जिस मुराद की बन्दिश थी, वह पूरी हो गई। आजतक जो बात हिजाब के परदे मे थी, वह अब साफ सामने आ गई। प्रवाह का ज़ोर ज़ोरदार पड़ा। लाज और लिहाज़ के मोरचे टूट पड़े। नारी-जीवन की एकमात्र भित्ति बालू की दीवार बन गई। जो लहर दिल के भीतर थी, वह जिस्म की पोर-पोर से फूट पड़ी।

बिजली ने मिस साहबा को उनके बगले पर उतार दिया और सलीम के कधे पर रखकर बन्द मोटर मे बैठी घर आई। राजिया सो गई थी, यही खैरियत थी।

बिजली मोटर से उतरकर सीधे कमरे मे चली गई और टूल खींचकर प्यानो बजाने बैठी। एक गज़ल की धुन छेड़ी। उँगलियाँ पटरियो पर थिरक उठीं। उसने दिल खोलकर गाना शुरू किया—

"तुझे देखता हूँ, तेरी जुस्तजू है;
निराली तमन्ना, नई आरज़ू है!
पड़ी आँख मे हैं दो आँखें किसी की,
जिधर देखता हूँ, सनम रू-बरू है!"

वह गाने की धुन मे इस कदर तल्लीन थी कि रायसाहब की मोटर की आवाज़ उसके कानो तक बाहर ही रह गई! रायसाहब के कानों में सब बिजली के गले की मस्ती 'सनम रू-बरू है' की ध्वनि थिरकती हुई आ पड़ी, तब वे ज़रा चौंके; मुमकिन है, ज़रा सहमे

भी। वे इस शोखी की सुरीली तान की बुनियाद देखने की गरज़ से पिनपिनाते हुए बिजली के कमरे की ओर मुड़े। ज्योंही वे कमरे के सामने आये, बिजली की आधी नज़र उनके तमतमाये हुए चेहरे पर पड़ी, मगर वह ज़रा भी सकुची नहीं, उसी मदमस्ती से झूमती हुई गाती चली गई—

"मिलीं दिल को आँखें जभी मारफत की,
जिधर देखता हूँ, सनम रू-बरू है।"

रायसाहब एक क्षण दरवाज़े पर ठमके सुनते रहे, फिर दबे पाँव वापस चले गये। बिजली ने मुँह पर रूमाल दिया और खिल-खिलाकर हँस पड़ी। वह लहराती हुई उठी और पलँग पर उछल-कर लेट गई। पलंग पर पड़ी-पड़ी वह अपने हाथों को चूमती रही और सोचती रही—'अब क्या है। अब तो खुलकर बातें होंगी।'

सिनेमा के तमाशे ने तो उसके भविष्य के पथ का दिग्दर्शन करा ही दिया। समाज जहन्नुम-रसीद हो, धर्म पर लानत बरसे; प्रेम के आगे सब झूठ है। लूसी और जेम्स का आदर्श उसके लिए अँधेरे में सितारा हो गया। वह अब अपने लक्ष्य से हिल नहीं सकती।

बिजली अपनी उमगों के ताल पर थिरक उठी। कामना का घुँघरू बजता रहा। उसके अन्तर का उत्स उसके एक-एक अंग के तोड़ से फटा पड़ता था। आज पार्टी और सिनेमा दोनों की मदद देवता की मदद हो गई। किस्मत की चित्ती कमाल की पड़ी। वासना की बिसात पर पहली गोटी लाल हो गई।

एकादश परिच्छेद

आज टेनिस टूर्नामेंट का फाइनल मैच है।

यह क्लब का एक सालाना जलसा-सा है। बाहर से भी कितने वीर आकर शरीक हुए थे। मेम्बरों ने खासा चन्दा उठा लिया था और क्लब के सभापति रायसाहब ने तो पूरी दिलचस्पी ली थी।

शहर में इस टूर्नामेंट की धूम थी। पढ़ी-लिखी पब्लिक की ज़बान पर यही चर्चा। पारसाल के विजयी शैम्पियन हमारे परिचित पारसी युवक हैं। आपका नाम 'मिस्टर मेहता' है। तीन साल से लगातार आप ही 'कप' ले रहे हैं।

दस दिनों तक टेनिस का बाज़ार गरम रहा। क्लब में बड़ी चहल-पहल रही। कुर्सियों पर टिकट लग गये। बाँसों के घेरे बाँधे गये। सामने की कुर्सियाँ साहबों और भद्र महिलाओं के लिए रिज़र्व

कर दी गईं। सफेदपोशों की अच्छी भीड थी। बाहर के आये हुए टेनिसबॉकुरों ने अपनी-अपनी करामात दिखाई, मगर किसी की एक न चली। अखीर तक सब छँट गये। रह गये सलीम और मेहता।

सनीचर का दिन है। सुबह से ही क्लब में फाइनल मैच की तैयारी। टिकट ड्योढ़े कर दिये गये, फिर भी माँग काफी रही। वकीलों की अर्जी हाकिमों ने मान ली। लञ्च के बाद ही कचहरियों के काम स्थगित कर दिये गये। तीन बजते-बजते भीड़ जम गई। और क्यों न जमे, टेनिस का तमाशा और शाम का नाश्ता! तिस पर रायसाहब 'एट होम'।

एक ओर मेज पर ह्विस्की और वर्मूत की बोतलें, दूसरी मेज़ पर कुल्हडों में जीरे का जल। इधर सोडा, लेमनेड और जिंजर की पेटियाँ उधर अनार और सतरे के शरबत। एक ओर भिट्ठी की रकाबियों में बर्फियाँ और पेडे दालमोट और समासे, पापड और भुने चने, सजे रखे हैं, दूसरी ओर चुहचुहाते प्लेटों में क्रीम और चीज की चीजें, केक और पेस्ट्री की मौज! चुक्कडों में चाय, कपों में 'टी'।

आजकल पार्टियों का अजब दस्तूर है। एक पार्टी के भीतर अलग पार्टियाँ चलती हैं। जहाँ एक घर में दो चौका होना जायज़ है, वहाँ एक पार्टी में दो जमात होनी कोई बात नहीं। जात-पाँत माननेवाले, जात जाने के डर से, कुजातों के साथ नहीं बैठते, मगर उन्हीं कुजातों की महफिल में कोई धनी-मानी जाति-भाई हो,

तो उसके घर लड़कियाँ देने मे किसी को कभी उज्र नहीं। शायद बेचारो की जाति भी बेचारी होती है; धनी की तो पाँचो उँगलियाँ घी मे रहती है। साहबो के दल मे जो नाक कटाकर शामिल हो गये, उनकी नाक ऊँची रहनी जरूरी है, दिल ऊँचा हो या न हो। केक और पेस्ट्री के मुकाबले इमरती और बरफी लाख मीठी क्यो न हो, मगर जबतक वे मिट्टी की रकाबियो से उचककर प्लेटो पर नहीं जातीं, तबतक सफेदपोशो मे उनकी गिनती नहीं होती। जबतक केलनर की केतली से चाय नहीं चलती, तबतक वह साहबो को और साहबो के मुसाहबो को मीठी नहीं जँचती। रस नीरस भी हो, तो चन्दा हर्ज नहीं, पर रूप रसीला होना जरूरी है। विलायती बोल सीखकर देशी मुर्गी भी रग लाती है, पर पर बदलकर पार्टी मे वह जो थिरके, आखिर तो पर-कटी, परिन्दो की पाँत मे वह कहाँ तक पर मार सकेगी?

पार्टी मे हर तबके के लोग थे। कहीं हारमन के सिले हुए सर्ज और ट्वीड सूटो की तडक-भड़क थी, कहीं खादी-भडार के पट्टू-पशमीने के कोट और शेरवानी की सजावट थी। पैंट और बूटों के मुकाबले धोती और नागरे भी नजर आते थे। मेमो के विचित्र और रगीन गाउनो से बनारसी साड़ियाँ लोहा ले रही थीं। चेस्टरो की चुनौती पर चादरो की चुहलें थीं। हैटो की हेकड़ी पर गाधी-टोपी की चुटकियाँ।

बिजली का अबतक पता न था। उसे मैच मे आने की हिम्मत न थी। स्कूल से वह टिफिन की छुट्टी के कबल ही घर

लौट आई थी। वहाँ किसी हँसी-खेल मे उसकी तबीयत न रमी। 'आज मैच मे सलीम की क्या गति होगी ? अगर कहीं दैव प्रतिकूल हुआ, तो उसके दिल पर बड़ी गहरी चोट पड़ेगी। फिर तो शर्म से कहीं रूपोश न हो जाय····'—वह आगे सोच न सकी। वह जानती थी कि कहा-सुनी, तनातनी मे मामला इतना खिंच गया है कि सलीम का बनना-बिगना इसी मैच पर निर्भर है। दो दिन से सलीम ने भर-मुँह बात तक नहीं की है।

मोटर से उतरकर वह अन्दर महल मे अपनी माता के निकट चली गई। विमला के तो विस्मय की सीमा न रही। बिजली कभी भूली-भटकी भीतर आती। आज क्या है ? बिजली सोई हुई पीड़िता माता के पैताने जाकर बैठी। दवा देने का वक्त था। विमला ने इशारा किया। बिजली ने गुनगुने पानी से कुल्ला कराया और एक खूराक दवा अपने हाथ से ढालकर पिला दी। विमला ने धीमी आवाज़ से पूछा—"आज इस वक्त कैसे चली आई हो ?"

"यो ही, तुम्हे देखने।"—कहकर वह चुप हो गई।

"कुछ खाओगी ? श्यामा ने कुछ ताज़ी पिस्ते की गिलौरियाँ भेज दी हैं !"

"नहीं, मुझे भूख नहीं है।"—कहकर वह उठ खड़ी हुई और ताक पर रखी हुई रामायण की फटी-पुरानी पोथी को उठा लिया। उसने उसे पलँग की पाटी पर दो बार हल्के हाथ से पटका, गर्द उड़ी और कीड़े जा पड़े। वह खोलकर पढने लगी—

"लोचन जल रह लोचन कोना।
जैसे परम कृपन कर सोना॥"

आगे पढ न सकी। आज उसकी भी ठीक वही दशा है। वह फिर डूब गई—"भगवान जाने, क्या होगा! मेहता भी तो बड़े जन्नाटे का सविस करता है। उसके हाथ भी तो कमाल के सुबुक है। उसके पैतरे भी मुकाबले के होंगे। मगर नहीं, सलीम कहीं हुशियार है। वह अपनी पासिंग से बाज़ी मार लेगा। वह शेर-दिल है। उससे और हार से क्या सरोकार? फिर भी चांस को कौन कह सकता है? बड़े-बड़े खिलाड़ी भी नवसिखों से पिट जाते हैं। कहीं सलीम हार गया तब तो — — !"

बिजली रुक गई। उसके हृदय का स्पन्दन सवेग हो गया। वह बाहर अपने कमरे मे चली आई। साबुन मलकर मुँह-हाथ धोया। साड़ी बदली—फीकी अंगूरी। सादा-सा एक जम्पर पहना। चेहरे पर क्रीम की वार्निश दी। आइने के सामने खड़ी होकर अपने हठीले बालो को पिनो के पाश मे बाँधा।

बरसाती मे मोटर खड़ी है। ड्राइवर हॉर्न पर हॉर्न दे रहा है। रामू खानसामा चिल्ला उठा। रायसाहब ने उसे लाने के लिए क्लब से मोटर भेज दी थी।

"आ रही हूँ!"—कहकर बिजली ने आलमारी के दराज से रेशमी रूमाल निकाला और व्यग्रता से चञ्चल सेंट से भरी शीशी उस पर उँडेल दी। कार्पेट का एक हिस्सा जैसमिन के कतरों से तर हो गया।

अचानक उसकी दृष्टि दीवार पर टँगी घड़ी पर पड़ी—"सवा चार ! उफ ! देर हो गई । खेल शुरू हो गया होगा !" वह उतावली-सी होकर आगे बढ़ी। अचानक दरवाजे पर ठिठककर खड़ी हो गई।

सामने सड़क पर एक औरत हाथ में पीतल का घड़ा लिये नल पर पानी भरने जा रही है। बिजली को अचानक ख्याल हो आया—बचपन में उसने माता के मुख से सुना था कि यात्रा पर खाली घड़ा देखना शुभ सगुन नहीं होता। वह खड़ी देखती रही। उस औरत ने हाथ-मुँह धोया। पाइप के मुँह पर अंजली टेककर जल पिया। आँचल से मुँह पोंछा। ललाट से टिकली सरक गई थी, उसे अपनी जगह पर वापस किया। फिर घड़े के मुँह में हाथ देकर पुआल के लूँड से उसे माँजना शुरू किया।

नल के दाहिनी जानिब, सड़क के किनारे, एक जरा-सा गढ़ा होकर कुछ पानी इकट्ठा हो गया था। उस चुल्लू-भर पानी में एक पालतू कबूतर मटक मटककर किलोल कर रहा है। वह पानी में डैनों को फटफटाता, सर धुनता, अँगड़ाइयाँ लेता, छप-छप करता और चोंच डुबो-डुबोकर जल छींटता, फिर उचककर पास ही खड़ी हुई एक कबूतरी के कानों में कुछ गुटरगूँ कह आता।

अकस्मात बिजली को खयाल हो आया कि कल शाम को खेलकर लौटते वक्त सलीम ने झुककर उसके कानों में कहा था—"बिजली ! मैच में आओगी न ? तुम्हारी मौजूदगी से मेरी दुगनी हिम्मत हो जायगी। चुटकियों में 'लव सेट' दे दूँगा !"

वह तड़ से बाहर आ गई। मोटर के पास जरा-सा ठमकी। आँखें घड़े पर पड़ीं, घड़ा भर रहा था—आधा से ज्यादा भर

चुका था। पाइप के मुँह से पानी ज़ोरदार जा रहा था। भरा घड़ा जब सामने से गुजरने लगे, तब ठीक उसी वक्त वह मोटर पर सवार होगी। उसने मोटर स्टार्ट करने का इशारा किया। घड़ा भरकर पानी छलकने लगा। उस औरत ने पाइप के हैंडिल से हाथ हटा लिया और घड़ा उठाकर सामने आने लगी।

बिजली टप-से मोटर मे जा बैठी। वह अञ्जनि-नन्दिनी हवा हो गई।

बिजली के आते ही एक हल्की सी सनसनी फैली। दर्शको ने रास्ता दिया। वह सामने चली आई। पिता की कुर्सी के निकट आकर खड़ी हो गई। "इतनी देर क्यो की ?"—रायसाहब ने तमककर पूछा।

"सर मे दर्द है !"—बिजली ने इस हिसाब से कहा कि पास खडे हुए लोग भी सुन लें, नहीं तो बिचारी अपने चेहरे की परीशानी की क्या सफ़ाई देती ? वह सयत होने की ज़रूर कोशिश करती, चेहरे पर प्रफुल्लता लाने के लिए मन पर चाबुक लगाती सलज्ज नेत्रों से मुस्कुराकर मित्रो के अभिवादन को स्वीकार करती; लेकिन उसकी पोर-पोर मे न वह मलय-चाञ्चल्य था, न आँखो मे विद्युत-कटाक्ष।

जो हो, उसके रूप की सहज शोभा कुछ कम मोहिनी नहीं थी। दर्शको की एक आँख उस पर थी, दूसरी टेनिस पर। बिजली की दोनो आँखें सलीम पर थीं। दोनो का कौन जिक्र ? उसका तो रोआँ-रोआँ आँख बना था—एक-एक साँस दुआ बनी थी।

उसने झुककर, दबी जबान से, मिस साहबा से पूछा—"कहाँ तक .... ?" फिर वहीं रुक गई।

"सलीम तो पहला सेट हार गया—दो गेम से !"

बिजली सन्न हो गई। उसने कुर्सी के बाजू को थाम लिया। गालो की लाली पर सफेदी दौड गई।

"तो क्या .. ... ,,

"नहीं, जरूर सम्हाल लेगा। तमाशा तो देखो !"

बिजली खिसककर सामने आ गई। सलीम ने बिजली को देखा। आँखो से आँखें मिलीं। मिलते ही बिजली पैदा हो गई—सलीम की नस-नस मे दौड़ गई। वह जोश मे आ गया। चार लपेट मे उसने सर्विस गेम ले लिया। तालियाँ पिटीं। खेल मे मजा आ गया। गजब के पैतरे शुरू हुए। सलीम ने बॉलियो की झड़ी बाँध दी। तहलका-सा मच गया। देखते-ही-देखते सलीम ने सेट ले लिया।

रेफरी ने 'वन ऑल' पुकारकर रूमाल से मुंह पोछा। तीसरा और अन्तिम सेट शुरू हुआ। मेहता ने भी कमर बाँधी। लम्बे ड्राइव मे कमाल की कुशलता दिखाई। पहला गेम ले लिया। दूसरे को भी ले लिया।

बिजली कुर्सी छोडकर उठी और तिलमिलाती हुई रेफरी के पास आकर खडी हो गई। उसकी आँखो का पानी आँखो मे ही सूख गया। उसके चेहरे पर एक रंग आ रहा था, दूसरा रग जा रहा था। उसने कलेजे पर हाथ रखकर सलीम को अपनी बेकली जताई।

सलीम ने फिर ज़ोर बाँधा। बराबर कर दिया। तीसरा गेम भी ले लिया। चौथे में सलीम के रैकेट से छूटकर गेंद कोर्ट की अंतिम रेखा से बिलकुल मिला हुआ गिरा।

'How is it ?'—सलीम ने पुकारा।

रेफरी ने उसे 'आउट' कहकर खिलाफ राय दी।

बिजली उबल पड़ी। "साफ़ चूना उड़ा है। गेंद लाइन पर गिरा है।"—उसने तिनककर कहा।

रेफरी ने कोई जवाब नहीं दिया, अपने निश्चय पर डटा रहा।

बिजली की इस धृष्टता पर मिस साहबा सहम गईं। ज़रा खीजकर बोलीं—'चुप रहो, तुम्हें क्या पड़ी है ?"

बिजली बड़बड़ाकर चुप हो गई।

चार-चार बराबर हो गये। पाँचवाँ शुरू हुआ। बिजली की बेकली फूट पड़ी। काटो तो खून नहीं। प्राण चितवन पर टँग गये। अब तो चरम मुहूर्त्त आ गया, इस पार या उस पार—जीवन या मरण! सलीम ने पाँचवाँ गेम ले लिया। छठा चला।

बिजली को अचानक अपने घर की देवी याद आ गई—वही, जिनके चरणों पर वह बचपन में अपनी माता के साथ सर झुकाती थी—वही, जिनके प्राङ्गण में उसने दो बरस से कभी झाँका तक न था। आज मँझधार में डूबते वक्त मन का काँटा अनायास उधर झुक पड़ा। आँखें डबडबा गईं। उसने धीरे से अपनी गरदन में आँचल लपेटा और मन-ही-मन मिन्नतें माँगीं।

शायद कुछ ऐसे ही आवेग से एक दिन झरोखे से झाँकती हुई

सीता ने गिरिराज-किशोरी के हुजूर मे चाप की गरुआई हरने के लिए अपनी विनीत अर्ज़ी पेश की थी।

बिजली की दुआ कबूल हुई। सलीम ने सेट जीत लिया। करतालियो की तुमुल ध्वनि उसके कानो मे बडी मीठी पडी। और क्यो न हो, मन ही के अधीन तो इन्द्रियो की सत्ता है। अगर सलीम हारता, तो यही ध्वनि कितनी विकट हो जाती?

रामचन्द्र के धनुष तोडने की आवाज प्रचण्ड वज्र-टङ्कार से भी कहीं भयकर थी—पृथ्वी तक काप उठी थी, मगर वही युगान्त हुँकार सुकुमारी जानकी के कानो मे क्या पीयूष की वर्षा होकर नही पडी? उसके लिये तो वह शहनाई की सुरीली तान से भी मधुर थी।

सलीम हँसता हुआ सामने आया। जबान तो बन्द थी, लेकिन हृदय की प्रतिनिधि आँखो ने सरकार का सन्देश सुना दिया। चितवन की कार मे कृतज्ञता की झलक थी।

रायसाहब ने फौरन आकर उसके दोनो हाथो को अपने हाथो मे ले लिया। 'शाबाश'—कहकर मुँशी माजिद अली ने पीठ पर एक स्नेह का थप्पड लगा दिया।

बिजली बिजली-सी चमक उठी। सर-दर्द हिरन हो गया। सलीम ने देखा कि उसकी चितवन की चेष्टा मे मिसरी की पगी चाशनी है, उसके अग-अग के मरोड मे नवीन उल्लास की स्फूर्त्ति।

इधर बिजली खडी-खडी सलीम को देखती रही। सलीम की कमीज पसीने से तर हो रही थी। जगह-जगह भीगकर चिपक जाने से

उसके शरीर की स्वस्थ सुन्दर गठन—कधे, गरदन और छाती की प्रशस्त सुषमा—साफ़ नज़र आ रही थी। उसके लम्बे-लम्बे काले बाल आँखो तक लटक आये थे और बायें हाथ से उन्हे ऊपर उठा देता था। बगल मे रैकेट था और दाहिने हाथ मे लेमनेड से भरा गिलास।

सलीम ने गरदन मे मफलर लपेटा। स्वेटर पहनकर ब्लेज़र का कोट कधे पर रख लिया। हमजोलियो ने मुबारकबादियाँ दीं। फिर मुहब्बत की लपट-झपट हुई। कहकहे लगे। चाय-नाश्ता का सिलसिला शुरू हुआ। यारो ने तश्तरियाँ चाट डालीं। जेंटिलमैनो ने प्लेटो की खबर ली। जाम चला, कुल्हड़ भी चला। सिगार का धुआँ भी उठा, गिलौरियो की होली भी मची।

रायसाहब ने अँगरेज अफसरो से उसका परिचय कराया। मिजाजपुर्सी हुइ। दो-चार भद्रता की बातें चलीं। मेमों ने चन्द चुने हुए अलफाज़ मे शाबाशी दी; सलीम ने शर्म और आजिज़ी से सर झुका दिया।

रायसाहब ने एक छोटी सी स्पीच दी। मिसेज स्मिथ ने सलीम को कप नज़र किया। तालियाँ पिटीं। भीड़ छँटी।

———

द्वादश परिच्छेद

दस मिनट बाद बिजली मिस साहबा के साथ मोटरगश्ती को निकली। आध घटा इधर-उधर घूमती रही। मैदान की हवा, नदी-किनारे की हवा, पार्क की हवा, जन सकुल बाज़ार की हवा, गन्दी गलियो की हवा—आज हर कोने-अँतरे की हवा नन्दन कानन की हवा-सी सुखप्रद है। और क्यो न हो, नन्दन-कानन तो उसके मन का प्राङ्गण बना है, और यह हवा उसी खुली हुई दरीची से निकल-कर विश्व-चराचर पर फैल रही है। यह तो मन की हवा है, वन की हवा तो थी नहीं। और, जब मन पर वसन्त की लपट है, तब फिर चारो ओर समीर मे मकरन्द का रस क्यो न होता?

बिजली ने एक-एक जर्रे पर नया रङ्ग देखा। फूल पर, पत्तियो पर, मिट्टी के ढेलो पर, फूस की झोपड़ियो पर, पक्की हवेलियो पर, ईंट पर, घास पर, पत्थर पर—हर जगह एक मनोहर रंग की

छलक। और क्यो न हो, यह छलक भी तो उस रंगीन मन की छाप है! धरती पर आसमान से तो कोई नया रग बरसा न था। जो रग चू रहा था वह उसीके मन के रग का प्रतिरग था।

सहसा मोटर एक ठेले मे जा लड़ी। ठेले पर बिसाती की छोटी-मोटी दूकान थी। कघी, फीते, आइने, कचकडे के खिलौने, झुनझुने, रेशम के गोले, कच्चे मोती के झुमके धक्के खाकर सडक की नाली मे जा पडे। बिचारा बूढा बिसाती डबडबा गया। उसने गिडगिड़ाकर ड्राइवर से कहा—"बाबूजी, तुमने तो मेरी लुटिया डुबो दी! ये सिगार की चीजे है, नाली मे गिरकर बरबाद हो गई। अब तो ये आधी कीमत पर भी न बिकेगी। मेरे बच्चे कलप कलपकर ..."

श्यामसिंह कोई टक्के या ताँगे का डाइवर तो था नहीं: यानो मे राजयान का सारथी था। उसने डपटकर कहा—"क्या बकता है! तेरी दो कौडी की चीजो की क्या बिसात? सरासर तेरी भूल है। तूने ठेले को किनारे पर क्या न रखा? देखता नहीं, मोटर का मडगार्ड टेढा हो गया?"

'भाई, तुम्हारी तो यह शोक की चीज है और ये सब"—बूढ़े ने उन बिखरी हुई चीजो को दिखलाकर कहा—"मेरे तमाम घर की रोटी है।"

बिजली पहले तो बहुत झल्लाई, क्योकि अचानक धक्के खाकर उसकी मानस दृष्टि मे उसका माया-लोक लुप्त हो गया, वह स्वप्न-साध चकनाचूर हो गया, वह न जाने किस मधुर आवेश मे बिभोर

बैठी थी। और दिन रहता, तो शायद वह उसे पुलिस के सुपुर्द करने का हुक्म देती, लेकिन आज उसके मन के भाव कुछ और थे। वह फौरन उतर पड़ी। कीचड़ में सनी कुल चीजों को उसने पूरी कीमत पर खरीद लिया और फिर उन्हें उसके बच्चों के खेलने के लिए उपहार दे दिया।

मिस साहबा तो बिजली की इस दरियादिली पर मुग्ध हो गईं। उसके दिल के इस पहलू का उनको पता न था। बूढ़ा बिसाती तो इस विशाल हृदय का परिचय पाकर उसके पैरों पर लोट गया।

बूढ़े का गला रुंध गया, और कुछ इसके कि उसके भाव आशीर्वाद में परिणत होकर जबान के दायरे में आ सके, बिजली की मोटर हवा हो गई और मिस साहबा के बंगले के अहाते में जा पड़ी।

मिस साहबा मोटर से उतरकर बिजली की ओर मुड़ीं—"क्या पढ़ोगी? किताबें लाई हो?"

"आज तो छुट्टी ....—"

"नहीं-नहीं, इम्तहान सर पर आ गया है। मेरी जिम्मेवारी भी तो समझो। हिसाब में तुम बिलकुल कच्ची रह गई। मैं गुसल में जाती हूँ, तबतक तुम कमरे में बैठकर हिसाब बनाओ। मैं दिये देती हूँ।.... गफूर—गफूर!"

"जी हुजूर"—उधर से आवाज आई।

"गुसल का पानी तैयार है?"

"जी हाँ, टब मे पानी भर दिया है।"

"पॉल कहाँ है ?"

"कहीं बाहर गये हैं। खाने के वक्त तक वापस होंगे।"

मिस साहबा भीतर चली गईं। बिजली कमरे मे न जाकर बरसाती के बाहर लॉन मे टहलने लगी। आज उसके माथे मे एक उथल-पुथल की लीला चल रही थी, वहाँ अक जोड़ने की न फुरसत थी, न गु जाइश।

लॉन के कोने मे दो-तीन बेत की कुर्सियाँ पड़ी थीं। गुलाब की क्यारियो से एक मीठी खुशबू उड रही थी। बिजली को आज तक कभी ऐसी मीठी सुरभि नहीं मिली थी—

कि हठात् साइकिल की घटी की परिचित आवाज उसके कानो पर आई। वह चौक पडी। आवाज निकट आई। देखते-देखते सलीम आ पहुँचा। उसने टेनिस के खम्भे के सहारे साइकिल खड़ी कर दी, और 'आखिर तुम्हे ढूँढ निकाला'—कहता हुआ बिजली की ओर लपका। उसके हाथ मे आज का वह विजय-चिह्न—'कप'—था।

बिजली पत्थर की प्रतिमा की तरह चुप रही।

रात हो चली थी। सन्नाटे का आलम। आकाश पर सितारो की झिकमिक। हवा पर हुस्न-हिना की लपट। रजत-रश्मियो की मीठी मुस्कान से हरी दूबो की लॉन आसमान पर थी।

वह अकेली थी, और सामने था सलीम। जिस मुहूर्त्त की तलाश मे उसके प्राणो की एक-एक सत्ता सचेत रहती थी, वही

सुयोग जब अचानक इतना सन्निकट आ गया, तब न जाने किस अव्यक्त आतङ्क से वह ज़रा-सी सहम उठी।

सलीम ने झुककर उस विजय-कप को बिजली के कदमों पर रखा और घुटने टेककर बड़े मुलायम स्वर मे कहा—"बिजली, आज तुम न आती तो मेरे सर पर फतह का सेहरा न बँधता। तुम्हारे कदमों की बरकत है; उनकी मदद है जो मुझे यह कप मिला। तुम्हारी दी हुई चीज़ तुम्हीं को नज़र है।"

"मैंने तो कोई मदद नहीं की। मैं तो चुप खड़ी होकर मैच देख रही थी।"

'बिजली, तुम इसे झूठ समझती हो? मैं सच कहता हूँ, अगर तुम न आती, तो मैं हार चुका था। तुम्हे क्या मालूम, तुम्हारे आते ही मेरी नस-नस मे कहाँ की बिजली समा गई। उसी लहमे से तो मैच की धारा पलट गई। तुम्हारी आँखो से तुम्हारी रूह टपक रही थी। मेरे लिए वह गैबी मदद से कम न थी। मेरी हिम्मत की आन दुगनी हो गई। मै खुद ज़ेर हो जाता, तो कुछ परवा न थी, लेकिन जीते-जी मैं तुम्हे तो हरा नहीं सकता था। मुझसे ज्यादा तुम्हीं को हारने का मलाल होता। मै तो फिर तुम्हारे सामने मुँह तक न दिखाता।"

भगवान् जाने, बिजली की मौजूदगी से सलीम को मदद मिली या नहीं, और अगर मिली भी तो किस कमाश की, किस हद तक मिली। यह कोरी चापलूसी थी या सचमुच उसके अन्तर की धारणा, यह राज़ तो उसके अन्तर्यामी के सिवा किसी दूसरे पर खुला नहीं।

शायद सलीम बिजली की ख़ुशामद-पसन्द तबीयत से परिचित था। पूजा की ज़बानी श्रद्धाञ्जलि पाकर वह सर्वस्व लुटाने पर भी तैयार हो जाती।

जो हो, वह तीर निशाने पर पड़ा और जिगर से पार हो गया।

बिजली मोम हो गई और घुलकर ढुलक पड़ी। सलीम ने उसको भुजाओं में कसकर छाती से लिपटा लिया और उसके होठों पर होठों को जमाकर एक प्रगाढ प्रमत्त चुम्बन अङ्कित किया। बिजली के कलेजे ने मुँह पर उचककर इस अमृत के अर्घ्य को लोक लिया। रस का सागर सागर में आ गया। यौवन की प्यास ने कौसर को लूट लिया।

यौवन का यह प्रथम चुम्बन इस मर्त्य-जीवन का एक अनन्त मुहूर्त्त है, जिसे समय-प्रवाह कभी विलीन नहीं कर सकता। यह चुम्बन नहीं, हृदय का मन्थन है, पीयूष का प्लावन है। दुनिया की निखिल न्यामतें इस रस के आगे फीकी हैं। विश्व का समग्र ऐश्वर्य इस एक बूँद पर निछावर है। यह ससार का सार है—जीवन का जीवन है।

बिजली रस के हौज में डूब गई। शरीर का एक-एक ज़र्रा अवश हो गया। आँखें बन्द थीं—चूर थीं। अलसाई पलकें मुँदी हुई शतदल की पाँखुरी थीं। सर का आँचल सरककर कमर पर जा पड़ा। गले की चेन सीने पर उखड़ गई। लटें चेहरे पर छा गईं। कानों के झुमके चोटी में उलझ गये। अग-अग में जड़ता और चितवन में अलसता।

मिनटों तक यह स्थिति बनी रही। अचानक किसी के पैरो की आहट पाकर सलीम अलग हट गया। बिजली सामने की कुर्सी पर गिरती-पडती बैठ गई।

"बिजली !"

"सलीम !"

"आज तो मैने कौसर का मज़ा चख लिया। तुम्हारे हाठो की कोपलो मे इतनी लज्जत ?"

"सलीम, यहाँ रहकर हम-तुम दोनो एक नहीं हो सकते। चलो कहीं दूर चले। आखिर यह चोरी कबतक चलेगी ?"

"जब तक चले !"—सलीम ने ज़रा हँसकर कहा।

"नहीं, इन छींटो से तसल्ली नहीं होती। आस चाटने से प्यास नहीं बुझती !"

बिजली की चाट दुगुनी हो चली थी। उसकी चितवन से चाह की चिनगिरयाँ बरस रही थीं।

"लेकिन बिजली ! दुनिया क्या कहेगी ?"

"यह दुनिया तो साथ जायगी नहीं। फिर नेकनामी और बदनामी का सवाल ही कहाँ रहा !"

"तो कब तक तुम्हारे इरादे ..... "

"फौरन्। बिजली जिस बात पर कमर बाँधती है, बगैर उसे सर किये फिर कमर नहीं खोलती !"

"तुम्हारा इम्तिहान तो बिलकुल करीब है !"

"जान के बाद इम्तिहान है !"—बिजली की आवाज कुछ तीखी

थी—"हमारे सामने इस वक्त दूसरा इम्तिहान है। उसी पर जान है—जहान है। ऐंड़ी-चोटी का ज़ोर लगाना है। युनिवर्सिटी की डिग्री के बदले बदनामी की डिग्री लेनी है, और यही डिग्री मेरे सर की कलँगी होगी।"—बिजली ने मुस्कराती हुई आँखों से देखकर कहा।

"बिजली, मैं तो तुम्हारे कदमों मे बिक चुका हूँ। मुझे क्या डर है? और ख़सूसन, जब मुझे बहिश्त की सल्तनत मिलने जा रही है! मुझे जो कुछ फिक्र है, महज़ तुम्हारे लिए; चूँकि तुम्हारी रुसवाई होगी—तुम्हारी गरदन मे काँटो का हार होगा।"

"वही काँटो का हार मेरा कोहनूर का हार है। मैं उसी हार पर हरी-भरी रहूँगी। तुम बेफिक्र रहो।"

"मेरे लिए तुम दुनिया की ऐशो-इशरत, माँ-बाप की मुहब्बत, घर का रुतबा, मज़हब का तवक्क़ा—सब कुछ तर्क करने जा रही हो..... और मैं किस कदर नाचीज़ और कमज़ोर हूँ। मैं तुमको देखकर जब अपने को देखता हूँ, मेरी आँखें शर्म से गड़ जाती हैं!"

"सलीम, मुहब्बत के गुहर के सामने दुनिया की और न्यामतें काँच के टुकड़े हैं! तुम मुसलमान हो या ईसाई, मुझको तो इससे बहस नहीं। परवाना तो आग की लौ पर जाता है। वह लौ उसको देशी फानूस के भीतर मिले या विलायती लैम्प की चिमनी मे, मिट्टी के चिराग पर मिले या सोने के शमादान पर—इससे तो उसको बहस नहीं! मैं जानती हूँ कि आदमी से आदमी को अलग करने के लिए जितनी दीवारें दुनिया मे खड़ी हैं, उनमे

मज़हब की दीवार लोहे की तीलियों से बनी है। लेकिन, इतिहास के पन्ने उलटकर देख लो, मुहब्बत के ज़लज़ले के सामने इसकी कीलें पलक झिपते उखड़ गईं और कोई भी रुकावट कामयाब न हो सकी। सलीम, मेरे लिए जो राम है, वही रहीम है; जो गीता है, वही कुरान की सुरा है। मेरे दिल पर न समाज का डर है, न मज़हब का असर है। धर्म के भ्रम मे मैं पड़नेवाली नहीं, चूँकि मैं उसका मर्म समझती हूँ। रह गई माँ-बाप की मुहब्बत। सो, उससे तो अलग होना लड़की के लिए हर हालत में आम बात है।"

"बिजली, तो क्या तुम मेरी होकर रहोगी? क्या तुम सचमुच मुझे दिल से चाहती हो?"—सलीम ने ज़रा ज़बान दबाकर कहा।

"सलीम, यह 'होकर रहने' के मानी मैं नहीं समझती! मैं कोई गुलामी का दमामी पट्टा लिखकर हाथ काटने नहीं जा रही हूँ। मैं तुम्हारे साथ रहूँगी। क्या अब भी तुम्हे मेरे दिल का पता नहीं चला? मैं तो तुम्हारे साथ मँझधार मे जाने को तैयार हूँ। मैं तो अपनी नाव पर पाल चढ़ा चुकी और यह ज्वार के ज़ोर पर बह चली। अब यह दुनिया के समुन्दर मे जहाँ ले जाय, मैं जाने पर तैयार हूँ।"

"बिजली, इस नाव की पतवार तो मुझे लेनी पड़ेगी। मैं इसी हैसबैस मे हूँ कि मेरी कमज़ोर उँगलियाँ उसे कहाँ तक उठा सकेंगी?"

"तुम्हे लेना नहीं है। मैं खुद सम्हाल लूँगी। खैर,.....।"

बिजली इतने ही पर रुक गई।

"तुम जानती हो, मुझे तो कोई रोज़गार-धन्धा है नहीं। अभी तो मैं कॉलिज मे पढ़ता हूँ। हमलोगो को कहीं दूर निकल जाना होगा, जहाँ अपना कोई न हो। अब वहाँ विदेश मे गुज़र कैसे होगा ?"

"सुनो सलीम! तुम्हारे पास जो कुछ है तुम साथ ले लो और मैं भी अपना जो कुछ है— —"

"मगर बिजली! याद रखो, निकल जाने के लिए तो सड़कें हर चहार तरफ़ खुली हैं; लेकिन पलटने का रास्ता एक भी नहीं है! आगे जाकर फिर तुम पलट नहीं सकती!"

"सलीम, पलटने का सवाल तो दर-किनार रहे, यहाँ पीछे मुड़कर फिर देखना भी नहीं है! मैं जानती हूँ, यह मरने का मज़मून है और इसी मरने पर मेरी ज़िन्दगी का सेहरा है।"

सलीम वहीं हरी-हरी घास पर बैठ गया। बिजली की साड़ी उसकी नेकटाई से उलझ रही थी—उसके कंधे को चूम रही थी। बँगले की बरसाती पर चढी हुई हुस्नहिना के झोप से एक तीव्र खुशबू लखलखा बनकर उनके उन्माद के नशे को प्रदीप्त कर रही थी; और सड़क के उस सिरे से हवा पर थिरकती आती हुई श्यामकल्याण की रागिणी उनके प्राणो मे जादू जगा रही थी।

आध घटे तक घुलघुल कर बातें होती रहीं। प्लैन रचकर तैयार हो गया और होठों के 'सील' की मुहर पडकर पास भी हो गया।

त्रयोदश परिच्छेद

मिस साहबा के कमरे से सोडा बोतल के टूटने की आवाज़ आते ही दोनों चौंक पड़े और एक साथ उठकर सहमे हुए उस ओर देखने लगे। कमरे में रोशनी जल रही थी और दरीची की झिलमिली से मिस साहबा की फलसई साड़ी की एक ज़रा-सी झलक नज़र आती थी।

सलीम ने साइकिल को उठाया, और चुपके से घास की लॉन को पार कर बाहर निकल गया।

बिजली ने आँचल सम्हाला, साडी की सिकुडन को सीट कर ठीक किया, बिखरी लटों को अपनी जगह पर ला रखा, और धीरे-धीरे कमरे की ओर बढ़ी।

मिस साहबा ने मुस्कुराती हुई आँखों से उसको एक नज़र देखा और फिर मेज़ पर रखे हुए फेनिल गिलास को उठाकर होठों से लगाया। भगवान जाने, उस मुस्कान में किसी मर्म की झनक थी या महज़ ह्विस्की के गर्भ से पैदा हुई मसर्रत की पहली झलक।

बिजली कमरे मे क़दम रखते ही बोली—"मिस साहबा, आपसे तो कोई परदा नहीं है। मगर फिर भी आप परदा देने की ज़बान दें, तो आपसे एक दिल की बात अर्ज़ करूँ।"

मिस साहबा की आँखो मे अगूरी सुरा का सुरूर शुरू ही हुआ था, फौरन् उतर गया। आप तनकर बैठ गई। आँखें खिल उठीं। उन्हे रहस्य की गन्ध से शायद खास दिलचस्पी थी।

"कहो, मुझसे इतमीनान रखो। तुम जानती हो, मै ज़बान को मुँह मे रखती हूँ।"

"बिजली मरने जाती है, मिस साहबा! अब बगैर सर पर कफन बाँधे वह जी नहीं सकती।"

"मरने जाती है! मरे तुम्हारे दुश्मन! बात क्या है?"

"क्या कहूँ, दुनिया की समझ मे तो यह जहन्नम का मरना है।"

"जहन्नम! अजी जहन्नम भेजो इसे! तुम भी क्या बकती हो?"—मिस साहबा ने हँसकर कहा।

"नहीं, इसी जहन्नम के ज़ीने से मुझे जन्नत की बज़्म मे जाना है! इसी मरने पर शायद ज़िन्दगी की लज़्ज़त है।"

"तुम भूलती हो, बिजली! जन्नत के रास्ते मे जहन्नम का कूचा नहीं मिलता।"

"आप बजा फरमाती हैं। मेरी आँखो मे तो वह जहन्नम नहीं! यह समाज की नज़रो का फेर है। बात असल यह है कि मैं सलीम को चाहती हूँ और दिल से चाहती हूँ।"

"क्या कहा, सलीम को?"—मिस साहबा आरामकुर्सी पर उठ

बैठीं और आँखें फाड़-फाड़कर बिजली को एक-टक देखने लगीं।

"जी हाँ, सलीम को!"—बिजली ज़रा चितवन चुराती हुई बोली।

"वल्लाह! तो फिर?"

"और सलीम मुझे चाहता है!"

"आसमान फट पड़ेगा, बिजली! यह क्या कहती हो?"

"मिस साहबा, आसमान फटने से मेरे दिल का फटना ज्यादा खतरनाक है!"

"दुर पगली! कहीं दिल भी फटता है?"

"बन्दानेवाज़, कहीं आसमान भी फटता है?"

"फटता नहीं, पर पत्थर तो बरसाता है!"

"और वह पत्थर गलकर पानी हो जाता है!"

"मगर नये पनपते हुए बीज को मिटाकर तबाह कर देने के लिए काफी है!"

"मिस साहबा, इस दिल के अङ्कुर कुछ ऐसे कमज़ोर नहीं हैं कि किसी पाले से पीले पड़ जायँ!"

"सच! अभी नया जोश है, बिजली! तुम इसे क्या समझोगी? मैंने भी तुम्हारे सिन मे लहू की गरमी को ज़िन्दगी की गरमी समझा था। मगर जवानी का लहू जिस जोश से दिल और दिमाग पर उबल कर चढ़ता है, उसी तेज़ी से एकाएक ठंढा भी पड़ जाता है। दुनिया मे कोई ऐसी दिल की लौ नहीं है, जो ज़माने की आँधी मे गुल नहीं हो जाती।"

"जब होगी, तब होगी। इस वक़्त तो मैं इस लौ से जली जाती हूँ!"

"इस लौ पर परवाने का पर जलेगा—सलीम जलकर खाक होगा; तुम क्यों जलोगी ?"

"उधर परवाना जलता है, इधर चिराग भी जलता है !"

"जरूर ! मगर सैकडो परवानो को जलाकर ! यह बिजली की जलन है, कुछ खेल नहीं है !"

"जो हो, मैं तो समझती हूँ, जलन दोनो ओर होती है और बराबर होती है !"

मिस साहबा आँखे बन्द कर दो मिनट तक कुछ सोचती रहीं, फिर जरा रूखी होकर बोलीं—"रायसाहब सुनेंगे, तो तुम्हे जिन्दा रहने देंगे !"

"और मैं सलीम को नहीं पाती हूँ, तो जिंदा रह सकूँगी ? पहले, लाला तो इलाके पर जानेवाले है। उनके कानो तक बात उठने के पहले बिजली लापता हो जायगी !"

"आज नहीं, बाद तो सुनेंगे।"

"सुना करें। बिजली इस डर से पाँव नहीं पलटती। मै कुछ दुधमुँही बच्ची तो रही नहीं !"

"और तुम्हारा मैट्रिकुलेशन का इम्तिहान ?"

"इम्तिहान तो मै पास कर चुकी। आजकल मुझे ज्यामेट्री सूझती है—अलबरे के फारमूले हल कर रही हूँ। मुझे पास करने की उम्मीद रहती, तो दस दिन और ठहर जाती !"

"तो मेरी क्या गत होगी, बिजली ? रायसाहब के सामने तो मुँह तक न दिखा सकूँगी !"

"इसीलिए न बेहतर है कि मैं इम्तिहान के पहले हिरन हो जाऊँ ! आप पर भी कोई आँच न आ सकेगी।"

"तुम तो बिलकुल हवा के घोड़े पर सवार हो। मगर सलीम के साथ तुम्हारे भागने की ज़िम्मेवारी तो मेरी बनी रहेगी। मेरे ही सर पर ठीकरा फोडा जायगा।"

"यही तरकीब न निकालनी है ! साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे ! इसी छान-बीन मे तो आपकी मदद माँगती हूँ। मिस साहबा, आप सैकड़ो मैदान ले चुकी हैं। आज मुझे भी उस तजरबे की एक बूँद ---"

"तुम्हारी नसो मे बिजलियाँ कूट-कूटकर भरी हैं। ख़राद पर चढीं नहीं कि चमकीं। मगर तुम्हे खबर है, रायसाहब ने तुम्हारी शादी के लिए बिरादरी का एक लडका चुन रखा है ?"

"कौन ?"

"मोहनलाल का भाजा ललितचन्द। इस साल बी० ए० का इम्तिहान देगा।"

"उस कलूटे से मैं जीते जी शादी करूँगी ? उसे दम है, न खम। एक चपत पर ज़मीन थाम ले।"

"मगर वह बडा ज़हीन और तेज़ है। रायसाहब उसे विलायत भेजकर सिविल-सर्विस के लिए ..... "

"वह कलूटा लाट क्यो न हो—उसे दुनिया की तख्तनशीनी ही क्यो न नसीब हो, बिजली उसे नसीब न होगी"।

"मगर, बिजली ! तुम्हे ज़माने की हवा देखकर दिल का दाँव खेलना था..... "—मिस साहबा ज़रा गम्भीर स्वर मे बोलीं।

"मुझे तो नई सोसाइटी की हवा लगी है, मिस साहबा! पुरानी हवा तो कभी पलट गई।"

"अभी कहाँ पलटी है, बिजली? ज़माना लगेगा।"

"आख़िर यों ही न पलटेगी! अब इधर की हवा धीरे-धीरे चल निकली।"

"ज़रा यह तो सोचो, रायसाहब के दिल पर कैसी सख्त चोट पड़ेगी! आखिर उनके मुँह में कालिख पोतकर जाओगी?"

"भर-सक तो उनकी आन में बट्टा न आने दूँगी। इसी उधेड़-बन में तो पड़ी हूँ।"

"मगर, कहीं बात फूट गई तो?"

"तो बला से! बिजली इस डर से बाग नहीं मोड़ती।"

मिस साहबा ने हर पहलू से आज़मा कर देख लिया। बिजली टस-से-मस होनेवाली न थी। उसके पैर रिकाब में जा चुके थे, और अब एक छलाँग में वह कामना के ज़ीन पर सवार हो जायगी अब जिसे गरदन में हाथ लेना हो, वह उसे थामने के लिए हाथ बढ़ाये।

मिस साहबा इतराती हुई उठीं और बिजली की गरदन में हाथ डालकर दरवाज़े की ओर मुड़ीं।

"खैर, बाहर चलो। दीवार के भी कान होते हैं। तुम तो जन्नत की सैर करोगी, मुझे इसी शहर में रहना है।"

———

चतुर्थ परिच्छेद

वसन्त का आकाश राग और रंग से भरा है। शीत का अन्त और बहार की आमद। हवा मे मीठी खुनकी। रसाल की डाली पर कोयल की नई काकली। पेडो पर नई कोपलें थी—चिड़ियो की चचल हलचल।

रायसाहब बँगले के सामने गुलाब की क्यारियो मे टहल रहे है। काशी-सिल्क के खालतेदार पाजामे पर काशी-सिल्क का ढीलाढाला कोट है। अभी तन पर पलँगवाला लिबास मौजूद है। ऊपर से एक मुलायम कश्मीरी शाल का ड्रेसिंग गाउन है। होठो के पुट मे कोरोना सिगार की बहार।

अभी आप ब्रेकफ़ास्ट करके बाग मे उतरे हैं। सिगार का धुआँ आपकी बुझी हुई जठराग्नि का पता देता है। फूले हुए

गुलाब के झुरमुट मे हैवेना की पत्तियो की सुरभि देशी वायु-मडल मे विलायती बू की कणा बिखेर रही है।

होली का ज़माना करीब है, इसलिए सुबह ही एक पेग ढल चुका है। वसन्त के मौसिम मे आप पीने-पिलानेवाले मजमून मे सूर्यास्त का इन्तजार फिजूल समझते थे। ह्विस्की के रस, पर सिगार का कश ज़रूरी था।

आप किसी चलती होली की एक लडी गुनगुना रहे थे और मन-ही-मन फागुन की मस्ती मे शराबोर थे। मुँह मे धुआँ तो था विदेशी, पर धुन थी स्वदेशी। पेट मे पेग था विलायती पर नशा था बासन्ती। अँगरेज़ी ठाट-बाट पर होली का डाट भरपूर था।

हम लाख तन को यूरोपीय रग मे रङ्ग डालें, पर मन पर विदेशी रङ्ग जमना आसान नहीं। लिफाफ़ा बदलना है, पर दिल का तकाजा नहीं बदलता। हम हज़ार कोट-बूट डाटकर आमलेट और पारिज़ के प्लेट-के प्लेट साफ़ कर जायँ, मगर इस कचराकूट के बाद कहीं जो डकार लेनी पड़ी, तो विलायती एटिकेट से डकारने मे दम घुटने लगेगा, फिर 'फिगर बाउल' के कुल्ले के मज़ाक से मुँह मे पचपचाहट भर आयेगी। हम अँगरेजी ज़बान मे सैकड़ो वरक रङ्ग डालें, किंवा प्लैटफार्म पर खड़े होकर अँगरेज़ी स्पीच जो झाड़ दें, मगर जब दिल खोलकर गाना और राना पड़ा; तब तमाम विलायती क़लई ढीली हो जाती है,

दिल के पहलू पर से विलायती बादल आप-से-आप फट जाता है।

रायसाहब भी कुछ साहब नहीं थे। उनकी विलायती वज़ेदारी के भीतर देशी दिल था। उनकी विदेशी डिशों में तजपत्ते का बघार मौजूद था। उनकी अँगरेज़ियत के परदे में हिन्दुस्तानियत की बू भरपूर थी। उनकी कोठी में ड्राइंग-रूम भी विलायती था और बाथ-रूम भी विलायती; मगर लेज़रस के गुद गुदे सोफे पर अँगरेज़ी डाट से अकड़ने पर, पाँव पसारकर कमर सीधी किये बग़ैर, चैन मिलना मुहाल था। डाइनिंग-रूम में टोस्ट और रोस्ट पर काँटे छुरी के इस्तेमाल के बाद फुलके को उँगलियों से तोड़-तोड़कर शोरवे में तर किये बग़ैर, या पके रस-भरे आम पर बेख-टके दाँत गड़ाये बग़ैर, जी भरना दुश्वार था। और, बाथ-रूम के मैहोगनी-कमोड पर टाँग की छलाँग विलायती तरीके से भरने पर छोटी हर्रे के भूरे के बग़ैर जी हरा होना हराम था।

रायसाहब खाने-बाग की बेंच पर बैठकर सॉसी में गुन गुना रहे थे और पीठ के तख्ते पर उँगलियों से भड़कतिल्ले की थाप दे रहे थे। तबतक सामने फाटक से छड़ी हिलाते मुंशी माजिद अली तशरीफ लाये। आपकी फ्रेंच कट उजली दाढ़ी पर पान की पीक की लकीर थी।

"क्यों भाईजान! आप पर भी होली का रंग सवार है क्या? आज उठने में बड़ी देर की आपने! खूब! सफेद दाढ़ी पर गुलाल के छींटे!"

"तौबा—तौबा ! पान है !"—मुंशी माजिद अली ने जेब से रूमाल निकालकर दाढ़ी साफ़ कर डाली ।

"आज आप ब्रेकफास्ट पर आये नहीं ! सुबह की नमाज़ भी कज़ा कर गई ?"

"जी नहीं, आज सुबह ही एकाएक सलीम बॉथ छानकर घर चल दिया !"

"घर क्यो ? इम्तिहान नहीं देगा ?"

"करीना तो नहीं है। वह घर होता हुआ शायद कश्मीर चला जायगा। वहाँ उसे किसी मुलाज़मत की उम्मीद है।"

"अभी तो वह ग्रेजुएट भी नहीं हुआ ?"

"नहीं, मगर वहाँ डिगरी की कैद नहीं है। मुझे तो कुछ पता नहीं है। वहाँ किसी दोस्त के ज़रिये कोई ख़ासी जगह मिलने की उम्मीद है। मेरी तो राय थी कि वह बी० ए० पास कर लेता; इसीलिए मैंने उसे यहाँ बुलाकर रखा भी था। मगर वह बरज़िद हो गया। मैंने भी सुकूत अख्तियार करना मुनासिब समझा। आखिर वह सयाना है। मेरी हमशीरा भी पारसाल कज़ा कर गई। अपना नफा-नुकसान वह काफी समझ सकता है। टेनिस के ज़रिये हर जगह उसकी रसाई मुमकिन है। साहबो की निगाह पर टेनिस का जादू बेहद असर रखता है।"

बिजली उस वक्त सामने बरामदे से गुज़र रही थी। शायद उसने मुशी माजिद अली के कलाम सुन लिये थे, वर्मा उसके होठो की पपड़ियो पर एक टेढ़ी मुसकान की रेखा कहाँ से नज़र आती। रायसाहब की नज़र बिजली पर पड़ी और चट बोल उठे—"बिजली!

ज़रा इधर तो सुनती जाओ।"

बिजली मुड़कर चली आई और निगाह नीची किये खड़ी हो गई।

"क्यो बिजली! तुमने सुना है न, सलीम कश्मीर चल दिया?"

'सच? मैंने तो कुछ सुना नहीं। कब गये?"

"आज ही—तड़के" मुंशी माजिद अली ने फरमाया।

"वे तो पाबरिकाब थे ही। अक्सर कहा करते थे—'यहाँ मामू के घर रोटियाँ तोड़ रहा हूँ। जहाँ कोई जरिया मिला, कोई काम उठा लूँगा।' मगर कम-से कम बी० ए० का इम्तिहान तो दे डालते!"

"जिसके लिए डिग्री लेनी है, वही मिल गई, तो फिर इस तुर्रे मे सुरखाब का पर लगा है?.....खैर, तुम तो इम्तिहान के लिए तैयार हो रही हो?"—रायसाहब ने बिजली की ओर मुड़कर कहा।

"जी हाँ, तैयार हूँ।"—बिजली ने छूटते ही जवाब दिया।

"बिलकुल?"

"बिलकुल।" बिजली की दृढ़ता बनी रही।

"रायसाहब, यह युनिवर्सिटी मे जगह लेगी, आप देखते रहे! इसके क्लास की कोई लड़की तो इसके दामन का छोर भी नहीं छू सकती।"—मुंशी माजिद अली ने बड़े तपाक से फरमाया।

"मगर कल मिस साहबा कहती थीं कि तुम स्कूल मे जाकर घटो नदी मे तैरती फिरती हो, कभी डोंगी पर अकेली फुरैरी लेती

हो; यह तो तुम्हारे लिये ज़ेबा नहीं है।"

"महज़ टिफिन की छुट्टी मे तैर लेती हूँ। और वह भी अकेली नहीं, दो-चार लडकियाँ और भी साथ तैरती है। कहीं दूर तो जाना नहीं है, स्कूल तो लबे-दरिया है। उस वक्त सन्नाटा भी काफी रहता है—चिडिया का पूत तक नहीं .. ...."

"लिल्लाह! यह गुल कतरना बन्द करो! इम्तिहान करीब है।"—मुशी माजिद अली ने सिगार जलाते हुए कहा।

"इसीलिए मैने डोरी ढीली छोड़ी? आखिर तुम्हे पर जम गये। कहीं कुछ हो गया, तो फिर..."—रायसाहब कहते-कहते रुक गये।

"लाला, आप बेवजह फिक्र न करें। मै दो-चार हाथ से आगे नहीं बढ़ती। मिस साहबा तो पानी देखकर थर्रा जाती हैं।"

"खैर, मेरे! कान तक फिर कोई शिकायत न उठे। मैं आठ-दस दिन के लिए इलाके पर जा रहा हूँ। तुम सम्हलकर रहना।"

बिजली लौट गई। रायसाहब ने मुशी माजिद अली से भी साथ चलने के लिए इसरार किया। दोनो दोस्तो मे देहातो की दिल्लगी की दास्तान छिड़ी।

बिजली ने अब चुने-चुने गहने-कपड़े घर-भर की आखें बचाकर मिस साहबा के घर ढोना शुरू किया। उसने कुछ नकद भी जरूर हटा दिया होगा, मगर पता नहीं। वह इस हिसाब से चुराकर ले जाती कि फिरिश्ते को भी खबर न हो।

रायसाहब सोमवार को इलाक़े पर गये। तीसरे दिन शाम को एकाएक हल्ला हुआ कि बिजली लापता हो गई। नदी मे तैरते डूब गई या डोंगी से उलटकर पानी मे जा पड़ी, दोनो मे से कोई एक बात ज़रूर थी। उसके हाथ का रूमाल, जूते और मोज़े, स्कूल-कम्पाउण्ट के बाहर, थोडी दूर पर, नदी के किनारे पाये गये। स्कूलवाली छोटी डोंगी एक मील दूर रेती पर उलटी पड़ी मिली। मिस साहबा ने पार साल इसी रेती पर एक घडियाल का शिकार किया था। मिस साहबा की बाँदी ने बिजली को तैरते देखा था और मिस साहबा ने खुद बिजली को डोंगी खेते देखा था। दोपहर तक वह स्कूल मे ज़रूर थी। स्कूल की एक लड़की ने उसे 'पनसेना' के पेड़ के सामने दरिया की ओर मुड़ते देखा था। बस, और किसी ने कुछ नहीं देखा।

तमाम शहर मे तहलका मच गया। कुँओ मे बाँस डाले गये, नदी मे जाल डाला गया। कोई पता नहीं। कहीं बहककर दूर तो नहीं चली गई; कहीं-कहीं नदी का प्रवाह ज़ोरदार ज़रूर था। हर जगह जाल ठहरना दुश्वार था। मिस साहबा ने दो दिनो तक हँकासे-पियासे दौड़-धूप की, छान-बीन की; मगर सब फ़िजूल। एक लाश कुछ दूर पर मिली भी, मगर इस कदर तबाह हालत मे थी कि पहचान न हो सकी। आगे चलकर घड़ियालो की भी कसरत थी। कहीं किसी मूज़ी घड़ियाल ने तो नहीं धर दबोचा। मिस साहबा की ज़बान से तो यही शुबहा टपकता था।

रायसाहब इलाके से मोटर पर लादकर लाये गये। अगर मुंशी

माजिद अली साथ न रहते, तो बिचारे तड़पकर जान दे डालते।

विमला ने तो आँगन के दरवाज़े के किवाड़ो पर सर पीटकर लहू लुहान कर डाला। मिस साहबा का हालत भी काबिले-रहम थी। वे तो ढूँढ़-खोजकर जो पलँग पर जाकर बदहवास पड़ीं तो ऐसा मालूम हुआ कि दिल के साथ-साथ कमर तक टूट गई। खुदा उनकी वफादार बाँदी को बरकत बख्शे, जो एक पैर पर खड़ी रहकर उनकी शुश्रूषा मे खटती रही; एकशॉ और कॉकटेल के निरन्तर प्रयोग से उनके दम मे दम रखा।

मिस साहबा दो दिनो के बाद जब रायसाहब के घर मातम-पुरसी के लिए गईं, तब भी उनकी चाटी मे न कबी थी, न पैर मे चट्टी। आपने छलकती हुई आँखो पर रूमाल देकर कहा—"मैने पहले ही आगाजी से अर्ज किया था कि आग के साथ खेलने से पानी के साथ खेलना कुछ कम खतरनाक नही, मगर मेरी गिनती तो बुजदिलो म रहा।"

"खैर, अब बस करो—" मुशी माजिद अली ने एक सर्द आह खींचकर फरमाया—"कटे पर नमक छिड़ककर क्या होगा? राय-साहब यो खुद हाथ मल रहे है। बात बिगड़ जाने की बात है, वर्ना बिजली एक दिन आसमान से सितारे तोड़ती।"

यहाँ तो यह किस्सा था, उधर सनीचर को आधी रात को मुगलसराय-स्टेशन पर सरापा बुरके में घिरी हुई एक औरत लख-नऊ जानेवाली गाड़ी की ओर लपकी जा रही थी। वह सेकेंड-क्लास के एक रिज़र्व डब्बे मे दाखिल हो गई और कुलियो ने आकर दो-

चार सूट-केस बर्थ के नीचे लगा दिये। उसी वक्त ओवर-कोट और मफलर लपेटे, हाथ मे बैग लिये, एक शख्स और चटपट घुस गया और भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया। बुरकावाली औरत ने फौरन मुडकर बुरका उतार डाला और हँसती हुई बोली—"आप कश्मीर की सैर कर आये ?"

"जी हाँ, आसमान से उडता आ रहा हूँ !"

"खब ! आप भी उडने लगे !"

"क्यो नहीं ! इस कूचे मे आकर तो पर जमना जरूरी है !"—सलीम ने कोट उतारते हुए मुस्कुराकर कहा।

'आप खाक उड़ते, अगर मै न उडा लाती ! वहीं फिस-फिसाकर बैठ जाते। मेरी करामात देखिये, मै तो जमीन की तह से कफन फाड़कर निकली आ रही हूँ। नदी मे डूबकर जिन्दा निकल आई !"

'मगर, बिजली ! बिल्लाह, अभी कुछ दिनो तक इस बुरक़े को बरकरार रखो !"

'खब ! मै आजाद रहने आई हूँ या परदे मे कैद ?"

"तो क्या परदाफाश करोगी ?"

"मै तो डरती नहीं। आपकी रूह क्यो फना हो रही है ? अभी तो जिन्दगी मे सैकड़ो मोरचे लेने पडेंगे !"

"मै तो तुम्हारे ही खयाल से ···"

"माफ कीजिये। बिजली जब घर मे आग लगा आई, तब फिर उसे घर मे डालना कुछ बायें हाथ का खेल नहीं है। खैर, कोई देख

न ले, मै रोशनी गुल किये देती हूँ।"

गाडी चल पडी। प्लैटफॉर्म छूट गया। बिजली ने स्विच दबाकर कमरा अँधेरा कर दिया। सलीम की जान मे जान आ गई। बिजली उचककर सलीम के वक्ष पर चली गई।

जब स्त्री अपनी लज्जा को लज्जा मानती है, तब वह उलझता मे पुरुषो की भी नाक तराशती है।

गाड़ी तेज़ हो गई। उसके पहियो की घर्राहट की ध्वनि मे शहनाई का सुर खेलने लगा, और वही सुर सलीम और बिजली के हृदय के तारो पर झंकृत हो उठा।

———

द्वितीय खंड

बेला

पहला परिच्छेद

"तो क्या यह छोकरी यहीं रोटियाँ तोड़ती रहेगी ?"

"क्यों, हर्ज क्या है ?"

"हर्ज क्या है ! तुम्हारी मति तो नहीं मारी गई ? इस कुलटा को घर मे जगह देकर तुम अपने घर को तबाह करोगे ? कुछ ठिकाना है, यह कितने घाट का पानी पी चुकी ? अब आई है हमारे घाट का जल गन्दा करने !"

"बेला बिचारी तो खुद ही अलग रहती है। तुम्हारे चौके मे नहीं जाती, तुम्हारे जल को नहीं छूती। ऐसी बुरी तरह सताई गई है कि कलेजा दहल उठता है। किसी घाट का पानी इसने अपनी खुशी से नहीं पिया। तुम किसी को उठाकर पानी

मे बोर दो और कहो कि मुँह, नाक, कान की राह पानी न जाय, तो फिर यह कभी मुमकिन है ? और, फिर इस अबला का क्या दोष है ? देवर के जुल्म से जान लेकर भागी, तो पुलिस के शिकजे मे जा पड़ी। आधी रात का वक्त। किसी से जान न पहचान। गाँव के परदे मे पली। बाहर की दुनिया से दरस-परस नहीं। ऐसी भोली थी कि दुनिया की चाल को समझती तक न थी। कहाँ भागकर जाती—किधर का रास्ता है, यह भी पता न था। दो-चार मील जाते चौकीदारो ने पकड लिया और इसे नया तोहफा समझकर थाने को नजर किया। वहाँ इसकी जो दुर्गति लिखी थी, सो हुई। जल्लादो ने अधमरी करके अस्पताल मे भेज दिया। खैरियत थी, इसको गुरु-घराने का पता मालूम था। नहीं तो, बिचारी की क्या गति होती ? बे मौत की मौत ·· ··"

"क्या गति होती ? अब बाकी क्या रही ? नई गङ्गा बहाने चले हो। अपना मुँह तो देखो ! तुम्हारे फूँके यह तरेगी ? झाड़ू मारो इस सात सिधोरेवाली को। तुम उस घर के गुरु ठहरे, आखिर वे सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?"

"तुम्हीं कहो रमा ! अगर मै इसे शरण न दूँ, तब तो यह बाजार का सौदा बनकर बिकेगी ! और तो कोई ठिकाना न रहा। मैं भी इसे मँझधार मे डूबने को छोड़ दूँ, मुझसे यह जुल्म न होगा।"

"तुम्हारी बुद्धि को बलिहारी है ! सब समझकर भी नासमझ बन

रहे हो। अब यह दाग धुल सकता है जो तुम धोने चले हो? यह तो कब की डूब चुकी। मुझे यह डर है कि कहीं मेरी भरी नाव को न डुबो दे। तुम इस नागिन को दूध पिलाकर पाल रहे हो। इसका नतीजा देख लेना। एक दिन यह सबको डँसेगी, तब तुम्हें मेरी चेतावनी याद आयेगी। तुम्हारा जवान भतीजा है, हजारों चेले-चाटी है, महती है, तुम्हारा धरम-करम है, भगवान की सेवा है—सब कुछ तुम भूल गये। मेरी दाहिनी आँख फर-फर उड़ रही है। यह सबको एक दिन पाँक में गाड़ देगी। इस कलङ्क को घर से दूर करो। नहीं तो एक दिन यहीं दूकान खुलेगी और सौदा चलेगा। या भगवान! यह पाप की वैतरनी मेरे घर में बहेगी?"

"चुप रहो! दुखिया पर दया करना सीखो। यह पाप में कभी शामिल नहीं हुई। जब यह अपने मन से शरीक नहीं थी, तब कुत्तों के दाँत महज़ चमड़े पर गड़कर रह गये। इस अत्याचार से कुछ इसके अन्तर की पवित्रता नहीं गई। तुम कटे पर नमक मत छिड़को, बल्कि स्नेह का मरहम लपेटकर जख्म को शीतल करो। जले को जलाकर क्या होगा? इस बिचारी की छाती में तो खुद ही भट्ठी जल रही है और यह उसी ताप से फूँकी जा रही है। इसके आँसुओं को प्रेम के आँचल से पोंछ दो; यही तुम्हारा धर्म है।"

"माफ करो! मैं अपना धरम समझती हूँ, तुम अपना नेम देखो। आजतक तुम धरम के पापड़ बेलते रहे; अब इस राँड़ का अँचार डालो—बड़ी चटपटी चटनी होगी। तुम्हारे चेलों की जीभ

से पानी बहकर''''''

परिपाटी प्रचलित थी, तो इससे आपके परोपकार-प्रवण मङ्गल-व्रत-महत्त्व की महिमा कुछ क्षीण नहीं होती। राम का मन्त्र हो या शिव का मन्त्र, दुर्गा का मन्त्र हो या विष्णु का मन्त्र—जिस इष्टदेव के दरबार में दाखिल होने का कोई आवेदन पेश करे, हरेक क्षेत्र का पासपोर्ट आपकी जेब में था। कोई आपके श्रीचरणों में अपने तन-मन-धन की अनन्य भक्ति की वकालियत तामील करे, रजत-मुद्राञ्जलि का नजराना अर्पित करे, फिर तो भावी गोलोक का दमामी पट्टा दीक्षामन्त्र की मुहर देकर विश्वास के ऑफिस में रजिस्टरी कर देने में आपको इनकार नहीं, प्रत्युत यह आपकी सज्जनता का ज्वलन्त दृष्टान्त है। आप अपने पुण्य और परमार्थ के अगाध ऐश्वर्य को, विनत शिष्य समाज के पारलौकिक दैन्य को दूर करने के लिए, दोनों हाथों से, निर्भीक होकर लुटाते रहते और दीक्षा की चोटी से छूटी हुई आपकी करुणा की मन्दाकिनी सैकड़ों नर-नारियों की कलुष कालिमा का प्रक्षालन करती हुई निरन्तर—बहती रहती 'परोपकाराय सतां विभूतयः"।

आपके मन्त्र की फूँक पर प्रबल प्रेत की बाधा भी अनायास दूर हो जाती और आपके तन्त्र के अमोघ प्रयोग पर खूनी के हाथों से हथकड़ियाँ भी छूट जातीं। आप जब रोगी के सिरहाने अखण्ड दीप जलाते और मृत्युञ्जय के मन्त्र का सम्पुट देकर चण्डी का पाठ शुरू करते, तब फिर क्या मजाल कि यम के दूत उस मकान के प्राङ्गण तक फटक सकें। महाविद्या के षोडशदल-चक्र की सिद्धि की आपकी कुछ ऐसी प्रतिपत्ति थी कि पाश्चात्य सभ्यता के रंग में

मे शराबोर धनी-मानी भी,किसी दुर्दिन की ठोकर पर, अपनी मनःकामना की पूर्त्ति के लिए, चुपके आकर आपके चरणो पर लुठित होते।

इस प्रान्त मे शायद ही कोई हिन्दू का परिवार होगा, जिसके बच्चो की गरदन मे आपके हाथ के लिखे हुए यत्र न पडे हों और जिसके सयानो के मस्तक पर, विजयादशमी के दिन आपके घर मे आमन्त्रित मङ्गला अम्बिका की कलश-जयन्ती न चढ़ी हो।

जब राधावल्लभ के मन्दिर के सामनेवाले पुराने वट-वृक्ष के नीचे मञ्च पर बैठकर आप भागवत की कथा सुनाते—बैरिन वशी की अचानक टेर पर तवे की जलती रोटियो को छोड़ दौड़ती हुई गोपियो के स्खलित अंचल और आलुलायित कुन्तल का समाँ बाँधते—तथा व्रजचन्द के विरह मे विभोर बरसाने की बनिताओ के मसले हुए दिल के फफोले दिखाते, तब कौन ऐसा पत्थर का कलेजा होता, जो मोम की तरह पिघलकर आँखो से नहीं फूट पड़ता ? फिर, पूर्णाहुति के दिन आरती की थाली को रजत चित्तियो के भार से झुक जाना तो कुछ असम्भव नहीं।

आपके धार्मिक विचारोके पुटमे किसी तरह की साम्प्रदायिकता की गंध न थी। आप पशुपति के वैसे ही सुहृद् थे, जैसे राम के प्रिय थे। 'कुँअर कन्हाई' के तो सखा होने का दावा रखते और बालगोपाल के मुख से उगली हुई मिट्टी को सर पर रखकर कालिन्दी-जल-प्लावित व्रज-विपिन के तमाल-निकुञ्जों की छाया मे अपने जीवन की गोधूली के दिन बिताने का सतत स्वप्न

देखते थे। शक्ति-उपासना के तो आप ऐसे मर्मज्ञ थे कि कामाख्या के धुरन्धर शाक्तो के भी दाँत खट्टे कर देते और नवरात्र के अवसर पर कुमारी-पूजन के अनन्तर जब परमात्मा-रूपा महाशक्ति का आह्वान करके आप—"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"—दुर्गास्तोत्र को ललित स्वर से गद्‌गद् होकर पढते तब उस प्रकाड ब्राह्मण के ज़र्रे ज़र्रे पर—प्रत्येक अन्तर के रेशा-रेशे पर—शान्त रस की एक हिल्लोल लहरी खेल उठती।

जिस दिन से सूर्य दक्षिणायन होते, उसी दिन से शिष्यो के घर-घर गुरुदेव की गश्ती शुरू हो जाती। जहाँ जाते, वहाँ समारोह से जाते। पालकी पर खुद सवार रहते और दस-पाँच हाली-मुहाली घोड़े और बैलगाड़ियो से जाते। दस-पाँच छात्र अवश्य साथ रहते। पालकी के चारो कोन पर चाँदी के कलस थे और डडो के छोर पर नक्काशी का काम। कहारो के तन पर वर्दी रहती; पडितो के सर पर पगड़ी। पालकी मे एक ओर शालिग्राम की बिल्लौरी मूर्त्ति रहती, चाँदी के सिहासन पर सोने का कटकी छत्र रहता। गाँव मे उनके आने की धूम होती। घर-घर कदली के तोरण खड़े होते, दरवाजो पर बन्दनवार लटकाये जाते।

आप जिस मडली मे जाते, उसी मे रग लाते। बूटी छाननेवाले शैव शिष्यो के घर आप गाल बजा-बजाकर धतूरे के एक फूल पर चारो फल देनेवाले औढर के गुण गाते, भंग की महफिल मे भक्ति का रग उठाते और बलिदान के बकरे की बोटी को ज्वलन्त ठर्रे के घूंट के सहारे गटागट निगलनेवाले, चित्रगुप्त वशजो

के बैठकखाने में भुजगमेखला तारा की उपासना की विभूतियों को समझाकर कायस्थ की खोपड़ी में तूफान बरपा कर देते।

आपने अपने चमत्कारों के विज्ञापन के जरिये बाप दादे की शिष्यवृत्ति की दूकान को दुगनी कर रखा था, और यह विज्ञापन-कला की करामात थी कि चोखे माल की लाजवाब पर नये खरीदारों का मेला निरन्तर तरक्की पर रहता। इस प्रान्त में यह एक आम बात है कि शंकर के अनन्य अनुचर भैरव का किसी विशेष पुरश्चरण के बल पर इष्ट करके आपने इस चकले के अत्याचारी भूतों और प्रेतों की मुश्कें बँधवाकर उन्हें निरस्त्र कर डाला। अभी पार साल चैत में जब हैजे के प्रकोप से गाँव उजड़ा जाता था, तब नवरात्र की अष्टमी के निशाथ में स्वयं रक्ताम्बरा जगदम्बिका प्रकट होकर आपको महामारी से त्राण पाने के अनुष्ठान की विधि की दीक्षा दे गई थीं।

यह आपके रोजगार की किस्मत की कमाल की जानकारी थी कि आय की तरक्की के साथ साथ मौके पर खर्च करने में भी आप खुले दिल से हाथ ऊँचा रखते। चैत्र की रामनवमी हो या आश्विन की नवरात्रि, भादों की अष्टमी या फाल्गुनी की शिवरात्रि—इन सभी त्योहारों पर आपके यहाँ वृहत आयोजन और उत्सव का इन्तजाम सगठित होता और दूर-दूर से सैकड़ों प्रतिष्ठित गृहस्थ, मोटे काश्तकार और सेठ-साहूकार, आपके प्रसाद—पेड़े-लड्डू, चुरमे-हलवे एवं मालपुए—का लपक पर सर के बल आते और आपकी मीठी जबान की चाशनी में घुल कर पक्व

फटफटा कर गुलाम हो जाते थे।

मगर यह सब होते हुए भी यहाँ चिराग-तले अँधेरेका मजमून था। अपने पति की सिद्धियो मे श्रीमतीजी की आस्था नहीं थी। चैत और क्वार मे—जब बाहर आँगन मे मडप बाँधकर जगदीश्वरी का आवाहन होता और नौ दिनो तक पूजा और प्रसाद, भोग और राग की धूम मची रहती—श्रीमतीजी अपनी सखी सहेलियों के झुरमुट मे, बाजे-गाजे और छोकरे के नाच के साथ-साथ, भरी-भरी थालियो मे पुए गुलगुले, बूँदिये और बताशे सर पर रखकर, गाती-बजाती हुई, चिराग जलते-जलते, 'लाखो' चमाइन की देवी के चबूतरे पर मन्नते उतारने जातीं। घर की देवी के सामने पति के साथ गाँठ-बाँधकर मस्तक तो जरूर नवा लेतीं, लेकिन 'लाखा' चमाइन की जागती देवी के चौरे पर वे अपनी अरज सुनातीं, नाक रगड़तीं, चुनरी चढातीं और कनस्तरो घी का हवन कराती थीं।

जब कभी आपकी कन्या बच्चा जनने ससुराल से आती और चारो ओर के बतास-बयार से—खसूसन मुहल्ले की दुबाइनजा के घर की उपद्रवी चुड़ैल की चुहलो से—गर्भिणी की रक्षा करने की हाजत होती, तब पति के बजरङ्गबली इष्ट भैरव महाराज अपने आह्वान की प्रतीक्षा मे डडो मे तेल मलते बैठे रह जाते, और इधर 'रामू' धोबी के घर की भभूत तथा 'नेता' कहार के हाथ का लवँग 'कमला' के पहरे के लिए नियुक्त हो जाते और नित्य- नियमित गाँजे और तपावन के बल पर डटे रहते थे।

पार साल जब 'कमला' की गोद का बच्चा 'मोहन' नाना के

घर आकर कई दिनों तक ज्वर से तड़पता रहा, तब फिर मत पूछिये, घर में एक तहलका-सा मच गया। ग्रहों का जप-दान हो या न हो; दुर्गासप्तशती का पाठ हो या न हो; पर झाड़ फूँक और झाल-मँजीरे वाले पचासों की आठों पहर झंकार सारा मकान थर्रा उठा!

मिश्रजी अपनी धर्मपत्नी को इन पाखंडों से अलग रहने के लिए लाख समझाते—अपनी कुल-मर्यादा की क्षति दिखाते, अपने रोजगार में विश्वास उठ जाने से घटी होने का डर सुनाते, देवताओं में श्रद्धा का गुण गाते, पर मिश्रानीजी अपने प्रोग्राम और विचार पर अटल रहतीं। अगर मिश्रजी ने कुछ झल्लाने की कोशिश की, यों भवें सिकोड़ीं तो फिर चीं चपड़ के जवाब में गम्भीर गर्जन तथा भू-कुञ्चन के जवाब में नाक, होठ, भौंह और गरदन सब तनकर खिंच जाते, और बेचारे मिश्रजी को परास्त होकर सर लटका लेना पड़ता था! अगर वे अपने तन्त्र-मन्त्र तथा भजन-पूजन की सिद्धियों का चमत्कार जताने की कोशिश करते, तो श्रीमतीजी और भी भिन्ना उठतीं और बेतोड़ जवाब दे बैठतीं—"बस, बातें न बनाओ। अपने चेलों को गुन दिखाकर ठगो। तुम्हारी करामात मैं दख चुकी हूँ। तुम अपना तन्तर-मन्तर साधते ही रह गये और मेरे दो-दो लाल दुनिया से गुजर गये। मैं तो सौरी में पड़ी लाचार थी, नहीं तो मैं देख लेती कि तुम कैसे 'नेता' गुनी को दरवाजे से उठवा देते! उसी का नतीजा मैं आजतक भोग रही हूँ। कहाँ रही तुम्हारी करतूत! तुम दूसरे को बेटा और धन देते चलते हो, मुझे तो एक दो! पहले

अपने घर मे चिराग जलाओ, तो दूसरे के घर मे जलाते फिरना। तुम्हारे देवता सच हैं, तो तुम्हे क्यो नहीं फले ? तुम तो दिन-रात उनका तलवा धो-धोकर पीते चले आये ! आज 'नेता भगत' न रहते, तो मोहन भी हाथ से जा ही चुका था !"

मिश्रजी के उस गाँव के आधिपत्य मे एक धूम्रकेतु 'नेता' गुनी था। नेता उस चकले मे उनका भयङ्कर रकीब था। मिश्रजी शास्त्र के गुनी थे, नेता गुन का गुनी था। उनको 'भैरव' सिद्ध थे, उसको 'सोखा' सिद्ध थे। वे कुश लेकर झाडते, वह लवँग देकर झाड़ता। वे शिवमंत्र पढ़कर गाल बजाते, वह पचरा गाकर झाल बजाता। वे आग मे घी डालते, वह आग मे धूना डालता। वे बम बोलकर दैवी बल का दम भरते वह भूत-भय का भय दिखाता। उनका दब-दबा बाहर सदर मे था, उसका दबदबा भीतर महल मे।

'नेता' देखने मे तो था काला-कलूटा ठिगना; पर उसके गुन के आगे बड़े-बडे प्रतिष्ठित भी उँगली काटते थे। वह गुरुवर गिरि-धारीलाल को भी धता बताने से बाज़ नहीं आता, साफ़-साफ़ सुनाकर कहता—"देवता से ज़ोरदार भूत है ! देवता देवता हैं, भूत बजरगबली हैं। इनका उपचार न होगा, तो देवता के आगे सर पटककर क्या होगा ? भूत के आगे देवता की एक नहीं चलती ! मिश्रजी आकर ज़ोर आज़मा लें !"

भगवान् जाने, देवता सच है या भूत। भगवान् जाने, हमारे सुख-दुख मे देवताओ का, ग्रहो का, किंवा भूतों का कहाँ तक हाथ है; मगर इन भूतो, ग्रहो और देवताओ के सर पर इस आर्य-

भूमि में जो लाखों का रोजगार गरम है, वह तो सर्वथा सत्य है।

नेता का कहना था कि मिश्रजी की देवसिद्धि और मन्त्रसिद्धि बिलकुल झावली है; और मिश्रजी का कहना था कि नेता दिन-दहाड़े विश्वास का घर लूटता है, कहीं नीच के तन पर देवी आती हैं? यह सरासर दमबाजी—ठगी—का रोजगार है।

कौन कहे किसका रोजगार सच है, किसका रोजगार झूठ; कहाँ ठगी है, कहाँ सद्गति? भगवान जाने देव-देवी भी ब्राह्मण और कहार में विभेद करती है या नहीं। वे पंडित के घर आती हैं या चमार के चौरे पर आती हैं, वे संस्कृत के मन्त्र के वश होती हैं या पचरे के झाल पर प्रकट होती है। अथवा, दोनों में कहीं नहीं आतीं; जो सुमिरे वहीं आती हैं—जाति कुछ हो, विधि कुछ हो, जबान कुछ हो।

खैर, जो हो, मगर एक दिन जब मिश्रजी पेट के खोंचे से खाट पर चित तड़प रहे थे, तब नेता ने उनके सिरहाने बैठकर झाल जरूर बजाया था, और जब नेता की पत्नी महामारी से जी-जीकर मर रही थी, तब उसने गुरुवर के पैरों पर गिरकर शनि की शान्ति का उपाय जरूर दरियाफ्त किया था।

मिश्रजी अपनी मूर्खा स्त्री के अभियोग का क्या जवाब देते? वे तो सन्तान के अभाव से स्वयं ही दुःखी रहते थे। फर्क इतना ही था कि वे इस दर्द को अपना जन्त के खूँट में बाँध रखते थे। उन्होंने बेटे के लिये बड़े-बड़े पुरश्चरण किये, हरिवंश सुना, तीर्थों की खाक छानी, जप-तप सब किया, और बेटे का बाप बनने के

गौरव का भी अनुभव किया, लेकिन दोनों बच्चे दो छन उनके दिल में एक अननुभूत गुदगुदी पैदा कर जहाँ से आये थे फिर वहीं वापस हो गये। पिता तड़प-तड़पकर रह गये कि उन्होंने उन जिगर के टुकड़ों के चेहरे को भी नहीं देखा। माता तड़पकर रह गई कि नेता भगत के 'देवघर' की भभत नहीं पहुँची और मिश्रजी ने चौखट पर से झाड़फूँक का सिलसिला उठवा दिया।

रमा देवी इसी गदले वातावरण मे पनपकर पली थीं। बिचारी अपने विचारो के व्यभिचार से मजबूर थीं, इसीलिए मिश्रजी उनके आक्रोश को हँसकर सह लेते। जिस सिद्धि की कला पर दूसरो की दैविक और भौतिक बलाएँ सैकडो बार कट चुकीं वही साधक के लिए भोथरी बनी हो, यह विधि-विडम्बना भी क्या अजब है!

उनकी यह चिन्ता सदा जाग्रत रहती कि उनके बाद उनके सर की पगड़ी किस पर बँधेगी। बेटी को एक बेटा जरूर था, लेकिन वह खुद ही एक बड़ी जमीन्दारी का उत्तराधिकारी था, उसे नाना की जायदाद की भूख नहीं थी। और, वह शौकीन जमीन्दार का लाड़ला था; नजाकत मे पल रहा था। भला वह धर्म की टोकरी सर पर रखकर कुँजड़े की तरह शिष्यो के घर-घर परलोक के फल को बेचता फिरेगा? उसके साथ तो पेट का सवाल नहीं था कि वह अपने परलोक के सञ्चय मे सैकड़ो को शरीकदार करे। और सच पूछिये तो उसको सञ्चय की जरूरत भी नहीं थी। एक चोले के लिए तो दोनो जून की सन्ध्या क्या कम है? फिर वह जप-तप के झमेलों मे

किवा श्रीयन्त्र की सिद्धि की कठिन उपासना के चक्कर मे पड़ने ही क्यो जायगा ? उसके पिता उसे नाना के नाना जगालो मे जाने ही क्यो देंगे ? सैकड़ो शिष्यो की मुँहज़ोर प्रवृत्ति की गति की बागडोर को हाथ मे रखकर रास्ते पर ले चलना कुछ साधारण प्रयास नहीं है। मोहन की नाज़ुक उँगलियाँ तो इसे थाम नहीं सकेंगी। तब, उपाय क्या था ?

कमला को तो दूसरा लड़का था नहीं, थी एक बच्ची मुन्नी। मिश्रजी ने अपने वश के एक प्रतिभावान युवक पर निगाह डाली और उसे अपने काँटो पर तौला तो वज़न और भाव मे ठीक पाया। श्रीधर देखने सुनने, पढने-लिखने, हर बात मे होनहार था। मिश्रजी को इतनी समझ ज़रूर थी कि अब उनका बेटे के हाथ से आग और पानी पाने का स्वप्न देखना उनकी नासमझी होगी। श्रीधर ही के कन्धो पर कुल का भार देना उचित होगा।

रमा देवी पचास पार कर पचपन के पडोस मे आ पड़ी थीं और अपने पति के सिन से कम-से-कम आठ बरस बड़ी थीं! मिश्रजी के पिता ने बचपन मे ही अपने इकलौते बेटे को दान-दहेज की मोहिनी माया मे पडकर एक पूर्ण युवती के दामन मे बाँध डाला था। माता के दूध से मीठे मुँह मे यौवन के फेनिल प्याले को उड़ेलकर आप पितृधर्म के दायित्व से मुक्त हो गये; और इधर मिश्रजी की कमज़ोर कमर इस बोझ के भार से मड़-मडाकर झुक गई। परिणाम यह हुआ कि जब मिश्रजी पचीसवें साल मे पिता की मृत्यु के अनन्तर, शहर के सस्कृत टोल से साहित्य और अलङ्कार के पूर्ण विद्वान होकर, शकुन्तला और

मेघदूत की सरस पंक्तियों को दुहराते हुए, घर पर आये—जब मन के कोने-कोने में अरमानों की उमड़ी हुई उर्म्मियों से उन्मुख विलास-कुञ्ज की तलाश में अपने निर्दिष्ट चमन में पैर रखा, तब पहाँ खिज़ाँ झाड़ू फेर चुकी थी। फूलों पर न बसन्त का कुलेल था, न यौवन का परिमल; न रङ्ग, न गंध; वरञ्च क्यारियों में 'अपत कटीली डालों' की भरमार।

यह तो मुमकिन न था कि गुलशन की तलाश में वे कहीं और निगाह डालते। घर की चीज़ में स्वाद मिले या न मिले, बाज़ार की ओर मुँह मोड़ना उनके लिए मुश्किल था—चीजें लाख चटपटी क्यों न हों। वे अपने कुल और पद की मर्यादा को धूमिल कर नहीं सकते थे।

गिरिधारीलालजी इस प्रान्त के सनातनधर्म के मानदण्ड थे। उनके हाथों में सैकड़ों सम्भ्रान्त शिष्यों की सद्गति की बागडोर थी। वे उस कठिन आदर्श से जौ-भर-भी हिलते—'हलने की अगर गन्ध भी उठती तो फिर उनके घर का—उनके चेहरे का—पानी उतर जाता। फिर वे किसी के सामने आँखें सीधी नहीं कर सकते थे। कल ही उनके महल्ले के मुरारी चौबे नमक-मिर्च लगा-कर उनकी खिल्लियाँ उड़ाते और मिश्र-वंश के यश को मलिन करके अपना उल्लू सीधा करने से बाज़ न आते।

मिश्रजी ने अपनी क्षुधित कामना की लहर को अविवेक का कूल छूने नहीं दिया। बाज़ार के मज़ेदार तर माल से उन्होंने घर की रोटी-दाल पर क़नायत करना उचित समझा। हाथ पसारने के

बदले भूखे रह जाने की तकलीफ उन्हें गवारा थी। वे दिल मसोस कर रह गये, लेकिन बाज़ार की चाम-चूम पर नहीं गये। कभी-कभी उनको सख्त तकलीफ होने लगी। रमा में न तो सूरत की रविश थी, न सीरत की मिठास, न मिज़ाज में नर्मी थी, न ज़बान में मिसरी; न नज़ाकत की लज्जत थी और न चितवन में बिजुन। फिर भी, जो कुछ हो, वह उनकी सहधर्मिणी तो थी।

जब कभी उनके मुहल्ले के समवयस्क और दरिद्र सहपाठी मङ्गल दूबे की पत्नी उनके घर के आँगन में दो-चार सेर चने-चबेने के हथफेर के लिए श्रीमतीजी के हजूर में सकपकाती हुई आँचल पसारने आती और मिश्रजी खुले हुए पूजा के कमरे में बैठे उसके पैरों की आहट पाते ही रुद्राध्यायी के पाठ से आँखें उठाकर उस फटे हुए कपड़ों से फूटती लावण्य की जलती शिखा पर रखते, तब उनके जीवन की विराट् व्यर्थता कङ्काल बनकर उनके सामने खड़ी हो जाती और आँख का कोना किसी वेदना की आँच से तप्त हो उठता।

उस वक्त खाट पर बैठकर गुड़गुड़ी पीती हुई अधेड़ पत्नी की चुन्धी आँखें, पिचके गाल, पोपला मुँह तथा नथ-भरी चिपटी नाक उनको फण फैलाकर काटने दौड़ती। उनके जी में न जाने कहाँ से एक उन्माद-सा उठता कि सामने रखी हुई शालिग्राम की मूर्ति को तथा बेठनों में बंधी हुई पत्रा-पोथी को उठाकर गंगा के अतल तल में फेंक दें और इस नीरस निरानन्द धर्म और कर्त्तव्य के बन्धन की धज्जियाँ उड़ाकर घूरे पर बिखेर दें।

हाय ! उनको भी अगर ऐसी लवग-लता मिली रहती, तो दारिद्र्य कौन पूछे, मरण को भी वरण करने मे उन्हे आपत्ति न होती। उस रूप की माधुरी मे, उस कठ की काकली मे, उनकी चेतना की एक-एक कणा लवलीन रहती, और जबतक यह आँखो के सामने से ओझल नहीं होती, तबतक उनके उन्माद का नशा ठढा नहीं पडता। मगर, जहाँ वह सामने से हटी कि उसी क्षण उनके पूर्वजो का रक्त उनकी ब्रह्मनाडी मे खौल उठता।

मिश्रजी बद्धाञ्जलि होकर सिहासन पर बैठे चन्द्रमौलि की चरणचौकी के सामने बार-बार अपराध भंजन-स्तोत्रो को पढते और अपनी क्षणिक दुर्बलता के लिए क्षमा की याचना तथा बल की प्रार्थना करते थे।

मिश्रानीजी पतिपरायणा हो या न हो, अलङ्कारपरायणा तो अवश्य थीं। ज्यो-ज्यो उनकी उम्र बढ़ती गई, त्यो-त्यो उनपर नई-नई सोने की कड़ी चढती गई। उनके जीवन के दो ही पते थे—सोने के गहनो का दर और गाँव भर के भूतो का डर। उनके शरीर की गाँठो मे निरन्तर पीड़ा रहती और वैद्यजी के महालाक्षादि तैल की मालिश और भी तरक्की करती जाती थी। इस पीड़ा के निवारण के दो तरीके थे, गाँठ पर गहनो का बन्धन और प्रत्येक सोम-सनीचर को भूतो का तपावन। परिणाम यह हुआ कि 'मूँगा सोनार' और 'नेता कहार' के लिए उनके महल का द्वार हमेशा खुला रहता और ये दोनो उनके सखा-सहचर बनकर उनकी हरएक राय मे हाथ बटाते थे।

यह मत समझिये कि वे अपने पति-धर्म में एक तिल भी किसी से कम थीं। भर माँग सिन्दूर और भर हाथ चूड़ी के लिए उनका, भाद्र-तीज के व्रत पर, दिन और रात, बिना अन्न-जल के, बिना पान-तम्बाकू के, तड़प-तड़पकर रह जाना, या सोमवारी अमावस्या को, वट-सावित्री के पूजन के अवसर पर, निर्जला रहकर, बड के पेड़ के चारो ओर घूम-घूमकर एक सौ आठ फेरी देना, उनकी आँखो मे पति-सेवा की चरम तपस्या थी। और, उसीका प्रताप था कि मिश्रजी के भाग्य का सितारा ओज पर था। अगर उसके एवज़ मे उन्होंने साल मे दो-चार गहने पिटवा दिये, तो इससे क्या ?

जो हो, मिश्रानीजी की इस पातिव्रत्य-पद्धति से उनके पति के प्राणो की कामना की चिंता तो बुझती नहीं थी। वे तो अपनी पत्नी को पशु से आदमी बनाने की कोशिश करके हार चुके थे। बूढी सुग्गी तो पोस मानती नहीं !

जिस वक्त उनकी शादी हुई थी, उस वक्त रमा की जवानी खिल रही थी, और उनके दूध के दाँत महज़ टूट चुके थे। कई बरस बाद जब उनकी मसें ज़रा-ज़रा भींगने लगीं और उनका गौना हुआ, तब वे शहर के संस्कृत-टोल मे दाखिल हो चुके थे। छठे-छमाहे किसी छुट्टी मे घर आते। उस वक्त माता-पिता की प्रियतमा की छाया भी माया-मरीचिका बनी थी। आधी रात के बाद, महरी उन्हे हाँककर कबूतरी के दरबे मे ठेल देती, और नाक की चौड़ी झुलनी पौ फटते-फटते जहाँ होठों पर

ठढ़ी पड़ती कि उनकी लजीली दुलहिन किवाड़ की किल्ली को खोलकर उन्हें कमरे से बाहर निकाल देती थी। दीवट के चिराग की धुँधली रोशनी मे भर-आँख प्रिया को देखना भी नामुमकिन था। आये दिन अँधेरे मे खाट को टटोलते वक्त सर जाकर दीवार से टकराता; कभी-कभी प्रियतमा की नाक की झुलनी उनके होठो के पुट मे चली आती थी! ऐसी परिस्थिति मे उसे मनोऽनुकूल तालीम देना तो आकाश-कुसुम लोढ़ना था।

जब छब्बीसवें साल वे मालिक होकर घर लौटे, तब रमा की जवानी उतार पर थी और कन्या 'कमला' माता की गोद से उतर चुकी थी। रमा के दिल और दिमाग पर भूतो और अवधूतो का कब्जा हो चुका था और उसके विचार और विश्वास—उसके फेल और अमाल—दृढ़ता के कूल पर पहुँच चुके थे। अब वे करते तो क्या करते? सिखाते तो क्या सिखाते? अब न वह रीझ सकती थी, न रिझा सकती थी; न नाच सकती थी, न नचा सकती थी; न यौवन की चपलता था, न विलास की प्रवणता। वह एक बोदी और गन्दी मिट्टी की प्रतिमा बनी थी। गहनों से जितनी लदती जाती, उतनी भद्दी होती जाती।

मिश्रजी ने उसके यौवन के बुझते दीपक को स्नेह देकर ताजा करना चाहा, लेकिन वहाँ तो टेम ही जल चुका था, तेल देकर प्रकाश क्या खाक होता?

कुछ दिनो तक रमा ने अपने पति की दिलजोई जरूर की। वह साफ़-सुथरी रहती, नाइन को बुलाकर सरसो का उबटन

लगाती, शाम को नहा-धोकर जूड़ा बाँधती—उस पर जूही का गजरा लपेटती, मखमली किनारे की पिस्तई साड़ी बदलती, सर पर बिन्दी साटती, पान की केसरिया चोली कसती, कान में फाहे और हाथ में मेहदी देती, पैरों पर महावर चढ़ाती और तश्तरी में पान की गिलौरियाँ रखकर पलँग के नीचे कालीन पर बैठी सरौते से छालियाँ तराशती थी।

गिरधारीलालजी आकर उसे शकुन्तला और दमयन्ती का परिचय कराते, अलङ्कार और रस की क्यारियाँ दिखाते, नायक-नायिका की उलझनों को समझाते तथा प्रेम-पिचकी के पीयूष-सिञ्चन से उसके अन्तर को शराबोर करने की व्यर्थ कोशिश करते थे।

मिश्रानी के जीवन के सहज रङ्ग पर काव्य-कुसुमके नये रङ्ग की कलई, दो दिन के हवा-पानी के फेर पर, धुलकर बह जाती; और मिश्रजी फिर रङ्ग की डोलची में हाथ मलते रह जाते थे।

साल जाते-जाते एक नई बला नाज़िल हुई। जो घटा सूखते मनोरथ पर उमड़ कर मेह बरसाने आई थी, वह अचानक ओले बरसा गई। इतनी मन्नतों पर तो फाल्गुन की पूर्णिमा को दो बच्चों का एक साथ आविर्भाव हुआ और दो घंटे बाद साथ ही साथ दोनों का महाप्रस्थान भी हो गया। सोहर की बधाई का गीत दरवाज़े पर उठते-उठते आँगन में अचानक चीत्कार भर गया।

इस भयंकर वज्रपात से गिरिधारीलाल का रङ्गीन स्वप्न-सौध टूटकर चकनाचूर होगया। पति और पत्नी के बीच में जिस

व्यवधान का सूत्रपात हुआ, वह दिन-दिन नदी की दरार की तरह फटता चला गया। इस तूफ़ान का झटका रमा के स्वास्थ्य और मिज़ाज पर पडा। बिचारी टूट गई। गाँठ-गाँठमे दर्द ने घर बनाया। बाल और दाँत धीरे-धीरे पतझड़ के पत्तो की तरह झरने लगे। भूत और भभूत का सिलसिला, जो अबतक परदे के अन्तराल मे चलता था, अब रोजमर्रे का व्यापार हो गया।

पडितजी का शून्य जीवन श्मशान हो गया। वे तड़पकर रह गये। कामना तो बढी हुई नहीं, कामिनी उनकी बूढी हो गई। इधर हृदय का कोना-कोना साहित्य के सौरभ से आप्लुत था, और उधर प्रेम-प्रमाद का लीलाभूमि मरु-शून्यता से भर गई। शृगार-काव्य की सहचरी कामना उनके सयम के कपाट पर सर पीटती थी और उनकी अन्तर्वृत्तियाँ इन घात-प्रतिघात की चोटो से ऐंठ गई। सड़क पर जाती हुई किसी तरुणी की आम की फाँक-सी आँखें, कुएँ की जगत पर खडी होकर भरे घडे को ऊपर खींचती हुई किसी गोपबाला की कसदार निटोल भुजाओ की चपल लीला, किसी लज्जाशीला ग्रामवधू की—चितवन को फेरकर—आँचल सरकाने की भगिमा, शिष्यो के घर मे युवतियो की सुकुमार विनीत चेष्टा, परदे की आड से किसी मुलायम कलाई की चूडियो की रुनझुन, घूँघट की आंट से किसी की आधी कनखी और गोलमटोल गाल की झलक तथा आँगन मे दौडती हुई किसी किशोरी की पाजेब की काकली उनकी निखिल चेतना को चञ्चल कर देती और वे बातें करते-करते अन्यमनस्क होकर बातो की लड़ी भूल बैठते थे।

इतनी समझ उनको जरूर थी कि घर के बाहर 'रोमांस' की तलाश उनके जैसे शील-प्रवण मिजाज के लिए नामुमकिन थी, और न उनके रुतबे के लिए वह जेबा थी। बाहर की गन्ध, झलक और स्वर आकर उनकी तबीयत को लाख मौजूँ करे, उनके भाव-विह्वल हृदय मे हजार दर्द पैदा करे, लेकिन चेष्टा के छोर को छूने के पहले विवेक का व्यवधान अवश्य खडा मिलता था।

उनके चित्त की विक्षिप्त दशा दुगनी हो चली। वे कुछ दिनों के लिए अपने गुरु के पास काशी चले गये। वहाँ जाकर उन्होने धर्मशास्त्र की बारीकियो की आलोचना की। विश्वनाथ-मन्दिर की सान्ध्य आरती की छटा के सहारे अपने मन के ढीले पुर्जों को कसने का प्रयत्न किया। कचौड़ी-गली की कचौड़ी के स्वाद ने उनके घर की सूखी रोटी के त्रास को कुछ दिनो तक भुला रखा। धीरे-धीरे उन्होने तान्त्रिक उपासना की परिपाटियाँ सीखीं, भजन-पूजन की पद्धतियाँ समझीं। घर पर लौटकर उन्होने अपने पिता-पितामह की पगड़ी सर पर रखी और पूरे पंडित बन गये। पीताम्बर और रामनामे की चादर, गरदन मे रुद्राक्ष और तुलसी की माला, ललाट पर चन्दन और रोरी का तिलक, शिखा मे विल्वपत्र का बन्धन—सब कुछ उनके रोजगार के अनुकूल नमूदार हो गये।

वे पेटी कसकर गुरुपद के कर्त्तव्य पर डट गये। व्यवहार में भी वे चतुर निकले। बहस-मुबाहसे मे भी जोरावर निकले। उनकी ख्याति फैली, उनकी प्रतिपत्ति बढ़ी; प्रान्त मे नाम हुआ, अर्थ का

आगम हुआ। कामिनी की जगह को काञ्चन ने ले लिया।

कामिनी न सही काञ्चन तो है! मन को घुँघरू बाँधकर नाचना जरूरी है—वह कामिनी की आँख पर नाचे, काञ्चन की आँच पर नाचे या मान की तान पर नाचे। पर मुश्किल तो यह है कि कामिनी आकर काञ्चन को तलाशती है और काञ्चन आकर कामिनी का तकाज़ा करता है। इधर पेट में अन्न पड़ा, उधर मन की गोद में मनोज तड़पा।

खैर, उन्होंने यश के हाथों से यौवन के रस के प्याले को पीकर निःशेष कर देना चाहा। धीरे-धीरे धन-मान की मोहिनी मदिरा—यशगौरव की तीव्र आकाक्षा, उनके यौवन की रस-पिपासा पर—उनके सिन के सहज तकाज़े पर, एक बादल बनकर छा गई और उन्होंने जवानी के कई साल इस चक्कर में पड़कर काट डाले। मगर शान्ति न मिली। न यौवन की क्षुधा ही मिटी, न काम की कनैठी छूटी। अब क्या हो?

उन्होंने अपने जीवन के अपराह्नकाल में वेदान्त की शरण ली। पत्नी के भूतों के उत्पात से तंग आकर उनकी तबीयत पस्त हो गई थी, और ज्यों-ज्यों मिश्रानी की ढीला लटकती छाती पर सालोंसाल सोने की नई-नई लड़ियाँ चढ़ती गईं, त्यों-त्यों उनके मन के पटल पर वैराग्य के छींटे रंग लाते गये। श्रौत-स्मार्त्त कर्मकाण्ड की उलझनों से तबीयत ऊब चली। यज्ञ-याग की आग से अब मन में जलन पैदा होने लगी। व्यक्तोपासना से उनका चित्त डिगने लगा, लेकिन यह समझकर कि जन साधारण के लिए

भक्तिमार्ग ही सुलभ है, उन्होंने लोक कल्याण के खयाल से इस परम्परा को जारी रखा।

गुरुपद की मर्यादा की रक्षा कोरे ब्रह्मज्ञान से नहीं होगी। आखिर स्वामी रामकृष्ण जैसे परमहंस भी शक्ति के उपासक थे। उनकी-जैसी परिस्थिति में मनुष्य को ज्ञान के साथ-साथ मृत्यु-पर्यन्त स्वधर्म-विहित कर्म करना जरूरी है। गीता में भगवान ने भक्ति, ज्ञान और कर्म का मेल कराकर इस समस्या को हल कर दिया है। हां, इतना वे अवश्य समझ गये कि आत्मज्ञान के बगैर मानव जीवन की सफलता नहीं हो सकती।

अब तो दिन-रात द्वैत और अद्वैत, प्रवृत्ति और निवृत्ति, सत् और असत्, व्यक्त और अव्यक्त, क्षर और अक्षर, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के मसले हल होने लगे। साथ-साथ मन के अनुशासन के लिए योगासना की धुन सवार हुई।

वे घंटों पद्मासन पर बैठकर प्राणायाम साधते, और षट्-चक्रभेदन की सारी प्रक्रियाओं का अध्ययन करके कुँडलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिये प्रयत्नवान् हुए। उनके प्रिय साहित्य की चर्चा भी कम हो गई। वेदान्त और उपनिषद से घर भर गया। जहाँ शकुन्तला और दुष्यन्त की—दमयन्ती और नल की विलास-लीला चलती थी, वहाँ अब प्रकृति और पुरुष की चर्चा छिड़ी। राधा और माधव की जगह को माया और ब्रह्म ने घेर लिया। अब मोहन की मुरली दिलगीर न रही, गोपियों की दर्द-भरी आह में तासीर न रही।

किसी के जीवन पर वैराग्य का रंग कुछ आसमान से नहीं बरसता। बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। जब घर की आबो-हवा से दम घुटता है, तभी विराग-वन की हवा सुहावनी लगती है। अगर प्रियतमा पत्नी की फिटकार तुलसीदास के मर्मस्थल में न चुभती, तो आज हिन्दू-संसार 'रामायण' के अमूल्य कौस्तुभ को न पाता, न 'विनयपत्रिका' का कल्याण-चिन्तामणि मिलता। यदि स्त्री का सहवास अभिशाप न होता, तो आज भर्तृहरि के 'वैराग्य-शतक' के छींटे जगत् के ताप को शीतल न करते। बुद्ध और शंकर-क्राइस्ट और शुकदेव—का ज़िक्र नहीं है। उनके सर पर वैराग्य छप्पर फाड़कर जो बरसा हो, हमारे-आपके पास वह बे-वजह घर बैठे नहीं पहुँच आता। माता के गर्भ ही में आँख और कान अकस्मात् खुल पड़े, ऐसे ख़ुशकिस्मत इस युग में नहीं पैदा होते

आजकल तो पीर हो या फकीर, सन्त हो या महन्त, प्रत्येक के जीवन के किसी निभृत कोने में लालसा का कङ्काल ज़रूर छिपा होगा। धन हो या मान, काम हो या अधिकार, एक न-एक मोह की कील मन में अवश्य गड़ी मिलेगी। आजकल कोपीन भी रंगीन ही बाँधने का दस्तूर है, जोगिया रंग भी रंगों में शौकीन रंग है। आज रुद्राक्ष की माला में भी मूँगे पिरोने का रिवाज है। बस, हम जटा तो बाँधते हैं, मन नहीं बाँध पाते; नदियों में डुबकियाँ तो लेते हैं, वृत्तियों की तह में नहीं डूब पाते। आत्मवाणी की प्रेरणा पर सुहाग के मोतियों के मुकुट को उतारकर कामना की चिता-भस्म को सर पर रखना, पाषाण से पुष्प की तलाश से

कम नहीं है। ऐसा आदमी लाख मे एक होगा, जिसके दिल के पहलू तक न सोने की रसाई है न गोरे चेहरे की।

जब इन्द्रियों की सत्ता शिथिल होने लगती है, तभी इन्द्रियों की निरंकुशता की चर्चा छिड़ती है और इन्द्रिय-दमन का प्रश्न उठता है। जबतक हाजमे के दायरे मे पिस्ते की बरफियाँ खपती रहेगी, तबतक सागू और पपीते की उपयोगिता कहाँ सूझती है! जबतक किसी रोड़े से अचानक ठोकर न लगे या चलते-चलते थकान न आ जाय, तबतक मुसाफिर को मञ्जिल की तलाश नहीं होती। अगर आशा की एक भटकी किरण भी हमारे मन के कोने मे झाँकती होगी, तो हमें संसार के रस से विराग न होगा। और जब तक रस की एक बूँद भी चाटने की शक्ति रहेगी, तबतक रस की चाट कभी जी से मिट नहीं सकती।

शायद, अगर मिश्रानीजी के पोपले मुँह के गाल की खाल लटकी न होती, किंवा उनके मिज़ाज और कलाम मे शरबत की एक बूँद भी घुली रहती, तो गिरिधारीलाल धर्मशास्त्र और काव्य की क्यारियों को छोड़कर इसी सिन मे आत्मज्ञान और वैराग्य की उलझनों मे न पड़ते, और बे-वजह अपने शरीर को हठयोग के आसनों की मरोड़ मे न तोड़ते।

सच पूछिये तो यह घर की निरानन्दता तथा पत्नी की प्रतिकूलता उनके लिए दैवी मदद हो गई, नहीं तो कान फूँकते और लकीर पीटते उनकी ज़िन्दगी बसर हो जाती--कभी अमृत तत्त्व की तलाश की उत्कंठा न होती।

अमूमन नैराश्य ही की भित्ति पर तो सन्यास की इमारत खड़ी होती है। मुमकिन है, यह इमारत कमजोर हो, तीव्र तूफान के चपेटों को न सह सके, लेकिन, अगर आँधी जोरदार न पड़ी और कड़े की जोड़ाई मजबूत रही, तो टिक जाने मे भी सन्देह नहीं है। किसी क्षणिक क्षोभ मे पडकर जो चादर को जोगिया रंग मे रँगता है, उसके मन से रंगीन रंग की तलाश जल्द नहीं मिटती।

कौन कह सकता है कि जीवन की मुसीबत किस घड़ी किस उद्देश्य को लेकर आती है ? कोई जरूरी नहीं कि आसमान फटने पर सर भी फट पड़े। कभी-कभी आपद के कधों पर कल्याण की सवारी आती है। काँटो मे भी फूल होते हैं और फूलो मे भी काँटे। आसमान पर मँड़राते हुए बादलों के गर्भ मे जीवनप्रद जल भी है और सर्वनाशी उपल भी, हमारी किस्मत से जो बरस जाय।

यह सच है कि सभी के जीवन मे कामिनी के विष भरे ताने की अनी दिल चीरकर नहीं चुभती और राम को भक्ति का सोता उस फाँक से फूटकर नहीं उठता। यह भी सच है कि चाडाल के घर मे गुलामी की जिल्लत पर सभी किसी को पुष्पक पर बैठे देव-दुर्लभ लोक की सैर नहीं मिलती। पर, साथ साथ यह भी सच है कि राम के सर पर यदि आफतो का आघात न टूटता, तो पुलस्त्य-परिवार के उत्पात से ऋषियो को नजात न मिलता। और, यदि बीच सभा में आततायी के हाथो से प्रियतमा पत्नी के कलेवर से साड़ी न खीची जाती, तो न अर्जुन को दिव्य दृष्टि मिलती और न विश्व को 'गीता' की अमर वाणी।

द्वितीय परिच्छेद

बेला को यहाँ आये एक महीना हो गया । अभी तक उसकी आँख के आँसू सूखे न थे, अभी तक उसकी छाती की धधकती चिता ठंडी नहीं पड़ी थी। घर का अत्याचार, परिवार का अत्याचार, समाज का अत्याचार, सरकार का अत्याचार। हर ओर से उसे नाउमीदी हो गई थी। घर के शिकजों से छूटकर वह पुलिस के पंजे में पड़ी और वहाँ सरकार के प्रतिनिधियों ने—जान-माल के पाखंडी रखवालों ने—सहानुभूति का सब्ज़ बाग दिखाकर उसे चुटकियों में फूल की तरह मसल डाला था। वह बिचारी क्या जानती थी कि इस घर में भी वफ़ा की ओट में जफ़ा की चोट चलती है, और न्याय की आस्तीन में जल्लाद की छुरी छिपी रहती है! उसका एक-एक रोआँ कभी भूलता न था कि दारोग़ा ने पहले क्या कहा था और पीछे क्या किया, पहले कितनी हमदर्दी दिखाई थी और पीछे कितनी बेदर्दी पर कमर बाँधी।

जो अत्याचार के वार के लिये ढाल है, वही हाथ जब ख़ुद

ज़ुल्म करने पर तुल जाता है, तब वह जल्लाद के ख़ूनी खंजर से भी कहीं ख़तरनाक होता है। विश्वासी के हाथ की चोट जिस्म के भीतर घुसकर कलेजे को कतर डालती है। खाकी वर्दी की म्यान में स्वार्थ की तलवार की धार कभी जग नहीं पकड़ती। मन्दिर की बलिवेदी पर मासूम मेमने की हत्या कसाईखाने की खूँरेजी को भी मात करती है।

पुरुष की तो सूरत से उसे नफ़रत हो गई थी, चूँकि प्रत्येक की आँखों मे वही एक परिचित चमक थी। वह जिसके आगे दाँत दिखाकर दया के लिये आँचल पसारती थी, वह पहले उसकी सूरत को आँखें गड़ा गड़ाकर घूरता और सर से पैर तक मुलाहज़ा करता। फिर उस पुरुष की चितवन की कोर मे एक ऐसी झलक उठती--उसके होठो के प्रान्त पर एक ऐसी रेखा खिंचती कि बेला उस तर्जे हमदर्दी को देखकर बीच ही मे अपनी दास्तान भूल बैठती और लाख मुलायमियत से पुचकारने पर भी वह जान लेकर भागती और फिर पीछे मुड़कर नहीं देखती। चौकीदार ने, जमादार ने, थानेदार ने, थानेदार के यार ज़मीदार ने, आबकारी के सरदार ने, अस्पताल के कर्मचारियों ने--सभी ने उसको उसी हिंसा-भरी निगाह से देखा था। पहले सभी ने चिकनी-चुपड़ी बनावटी बातों के घेरे मे उसे डाला था। और, जिसने उसे पकड़ पाया, उसने हाय !.....

वह आगे सोच नहीं सकती थी। उसके स्मृति-पट पर एक-एक घटना आग के शरारे की तरह जल रही थी। उसके पेट का

बच्चा गया, उसकी आबरू गई·····! वह जानती थी, किसी एक उत्पात के लिए वह जौ-भर भी ज़िम्मेवार नहीं थी, एक छन के लिए भी उसका मन नहीं डिगा था। उसकी आँखो मे एक एक पुरुष—चाहे वह सरकारी वर्दी मे हो या गाढे की मिर्जई मे—शैतान था, और समाज शैतानी का लीलास्थल। धीरे-धीरे उसके हृदय के एक निभृत कोने मे कुछ विद्रोह के मेघ जमा हो चले थे, पर उसका निरीह स्वभाव उन्हें दिल मे घर बनाने से रोकता चला आया था।

जो हाहाकार सताई हुई विधवा के हृदय मे तह तह पर जमा होता जाता है, वह किसी उत्तेजना से प्रबल होकर अगर फट पड़ेगा, तो शायद विद्रोह की चिनगियाँ बनकर तमाम समाज को तहोबाला कर देगा।

पुरुषो की निगाह मे स्त्रियों को अधिकार न हो, स्वातन्त्र्य न हो, पर इस दृष्टिकोण का यह आशय कैसे निकला कि उनमें प्राण भी नहीं है—मन भी नहीं है—लहू भी नही है, वे महज़ कचकड़े की गुड़ियाँ है, जब जी चाहा, दो घड़ी की तफरीह रही, नहीं तो तोड़-मरोड़कर पिटारे में फेंक डाला!

जब अस्पताल के ज़नाना वार्ड मे खाट पर पड़ी-पड़ी पीड़ा के प्राबल्य से बेला बेसुध होने लगती, तब वह अपने मानस-पट पर खिची हुई जानकीवल्लभ की मूर्त्ति का ध्यान करके कर जोड़ प्रार्थना करती—"नाथ! जहाँ तुमने मेरे गर्भ के कलंक को अपने घर मे शरण दी, वहीं एक ओर इस कलंकिनी को भी जगह दो। अब

इन आदमियो की दुनिया में मुझे जीता न छोडो। मैं शर्म के मारे मरी जा रही हूँ, मुझे मृत्यु का आशीर्वाद देकर जिन्दा करो।"

उसकी किस्मत में तो न जाने किस जन्म का जमा हुआ पुरुषो का ऋण चुकाना लिखा था! उससे छुटकारा मिलता तो क्योकर मिलता? वह मौत के घाट पहुँचकर फिर मरने के लिए जी गई। वह स्वस्थ हो चली।

जब मेम डाक्टर ने पूछा कि वह कहाँ जायगी, तब वह घटो मौन-मेख मे पड़ी रही—'कहाँ जाऊँ? कौन वह ऐसी जगह होगी, जहाँ मर्द नहीं? कोई भी दया करके मुझे उस नगर की लीक धरा दे!"

पिंजड़े की पली समझकर उसपर बाज़ो की ऐसी झपट हुई थी कि अधमरी होकर अगर वह अस्पताल की गोद मे न जाती, तो शायद उसके शरीर के रोगटे तक न बचते। यही वजह थी कि फिर उन बाज़ो की दुनिया मे लौटने का उसके कलेजे में दम न था।

फिर, आखिर वह करती क्या? संकीर्ण देहात के एक संकीर्णतम परिवार-कूप मे वह पली थी, परदे की गन्दी और बेदर्द आबोहवा मे वह पनपी थी, गाँव के जघन्य समाज और पाखंड की बलिवेदी पर वह भोथरी छुरी से हलाल हो चुकी थी; पिता और पति, देवर और ससुर, सभी के स्वार्थ का वह शिकार बन चुकी थी। उसे तो न दुनिया को समझने का अवकाश मिला था, न दुनिया के आघात से बचने के पैंतरे मालूम थे।

घर से बाहर आकर चद दिनो मे उसको जो दुनिया की अनुभूति हुई, उससे तो उसकी जान के लाले पड़ गये थे। ऐसी परिस्थिति में अगर आदमियों के साये से—मर्दों की गन्ध से—उसके मन मे मतली आने लगे, तो इसमे किसी विस्मय की गुजाइश कहाँ थी ?

मर्दों की तरकीबे तो उसके कलेजे पर खुदी थी ! चौकीदार ने उसे 'चाँद की रोशनी' कहकर घर के अँधेरे को रौशन करने के लिए हाथ जोडे थे, कल्ल खाँ जमादार ने उसे 'जन्नत की परी' कहकर आँखें बिछाने की इजाज़त माँगी थी, राजालाल थानेदार उसे 'सुर की सुन्दरी' कहकर सिर पर सँवार रखने को तैयार थे, उनके मन चले मित्र वैष्णवी फटाकावाले अधेड़ ज़मींदार ने उसे 'देवी की मूरत' कहकर मन्दिर को पवित्र करने के लिए पाँव पर सिर रखा था। इसके अलावा पानवाले ने, खोञ्चवाले ने, इक्कवाले ने, दूकानदार ने, दलाल ने—सबने थानेदार की बोली मे जोड़ी मिलाई थी।

बेला आज एक-एक शब्द को याद कर काँप उठती है। कलाम मे इतनी मिसरी और व्यवहार में विष की छुरी ! तीतर और बटेर के मुलायम गोश्त की बिरियानी को सभी कोई चख चखकर और सराह-सराहकर खाते हैं। इसी अनुभव के कारण वह समझती है कि सभी पुरुष एक ही थैले के चट्टे-बट्टे हैं और युवती को देखकर सभी के मुँह में एक-सा पानी भर आता है; फ़र्क़ इसी क़दर है कि ज़बान पर रहा या होठों तक आया या दामन पर चू गया !

मेम डॉक्टर के सवाल को वह कबतक टाल ले जाती ? एक दिन वह रूखे स्वर से पूछ ही बैठी--"तू कहाँ जायगी ? जाती क्यों नहीं ? दूध और केले पर यहाँ कबतक पड़ी रहेगी ?"

"कहाँ जाऊँ ?"

"मैं क्या जानूँ, कहाँ जायगी !"

"मेरा तो इस दुनिया मे कोई अपना नही है !"

"तो इसके लिये मैं ज़िम्मेवार हूँ ? अस्पताल तो कोई यतीम-ख़ाना या आश्रम नहीं है। अगर तू ख़ुद यहाँ से न निकलेगी, तो मैं आज शाम को धक्के देकर निकलवा दूँगी !"

"क्यो, मैंने क्या कसूर "

"कसूर का सवाल नहीं है। मुझे इस 'बेड' पर दूसरी मरीज़ को जगह देनी है। आज ही वह आता होगी। तू तो अब बिलकुल चंगी हो गई।"

"तो आप अपने यहाँ मुझे अपनी नौकरानी बनाकर रख ले। मैं झाड़ू-बुहारू करूगी, बर्तन साफ़ करूँगी। मेरे लिए एक जून सूखी रोटी काफी होगी।"

"माफ करो, मैं बाज़ आई !"—मेम साहबा ने ज़रा मुस्कुरा-कर कहा—"तुझे अपने घर पर ले जाकर रखूँ और मेरी चौखट पर रँगीलो का फ़ैन्सी मेला हो ! ना, मुझे कबूल नहीं !"

"तब और किसी शरीफ के घर में··· ···· ··"

"क्या टें-टें करती है ? मैं दवा देती हूँ, रोज़ी नहीं देती।"

"अस्पताल मे दाई का काम नहीं मिल सकता ?"

"बिना तनख्वाह के ?'

"जो कुछ आप दे !"

"तू तो सिर हो रही है !"—मेम साहबा झल्ला उठीं—"यहाँ जगह नहीं है। तेरे लिए तो बाजार खुला है ! वहाँ तो खासी आमदनी होगी !"

बेला इस इशारे को पूरी तरह समझ न सकी। इसीलिए महज़ 'कैसे ?' कहकर चुप हो गई।

"कैसे ? तेरा चाँद सा चेहरा है, भरी जवानी है, तुझे किस बात की खपन है ? मेरे सामने बनती है ? मैं क्या नन्ही बच्ची हूँ, कुछ समझती नहीं ?"

बेला की आँखों में आँसू उपटने लगे। वह निगाह नीची किये बड़ी धीमी आवाज से बोली—"मुझसे यह काम न होगा।"

मेम साहबा खिलखिला पड़ीं—"क्या ख़ूब ! आजतक कैसे हुआ कि अब न होगा ?"

बेला पानी-पानी हो गई। उसका सर सीने पर लटक गया। वह रुकते-रुकते बोली—'कैसे हुआ, आप इस दुखिया की कथा ...'"

"मैं सब सुन चुकी हूँ। यहाँ तुझ-जैसी सैकड़ों आ चुकी है। यहीं देखते-सुनते इस अस्पताल में मेरे पचीस वर्ष कट गये। अभी कल की बात है, तू दर्द से इसी खाट पर चीख रही थी, आज सती सावित्री बनती है ! दो दिनों बाद जब दर्द की याद जाती रहेगी, तब फिर मटकती फिरेगी। तेरे रूप की हाट में अशर्फियों से सौदा होगा। ऐ, रोती क्यों है ?"

बेला की आँखों के आँसू ज़ब्त के बाँध को ठेलकर उमड़ पड़े। वह क्या कहे और किससे कहे ? अगर कलेजा भी निकाल कर सामने रख दे, तो भी इस जगत् में किसे एतबार होगा ? भगवान् ने जब उसके बॉट में यही शर्म दे रखी थी, तब साथ साथ पत्थर का कलेजा भी क्यों न दिया ? उनको जब दुनिया के सामने यही लज्जा देनी थी, तब फिर उसके दिल के पहलू में इतनी लज्जा क्यों दी ? उसके कंधे तो इस लाज के पहाड़ को उठा नहीं सकते थे !

अब वह कहाँ जाय—किस दर पर जाकर अपना आँचल पसारे ? इस आकाश की अनन्त नीलिमा के नीचे खड़ी होनेभर को एक चौवा भी निरापद जगह उसके लिए कहाँ है ? किसी अमीर के घर—किसी शरीफ के घर ? सभी की तो एक ही माँग होगी—वह मर्दों की मुराद पूरी करे और फिर सुबह में, रात के बासी फूल की तरह, कूड़े पर जा पड़े ! यदि स्त्रियों की शरण ले तो फिर तानों और तेवरों का निशाना बने, और दूसरे दिन किसी दूसरे कूचे की खाक छाने !

वह बिचारी फूट पड़ी। गर्म आँसुओं की तेज़ रफ्तार देखकर शायद मेम साहबा का दिल भीग गया। वे आकर चारपाई पर बैठ गईं और उसके कंधे पर हाथ रखकर बड़ी मुलायम आवाज़ से बोलीं—"सुनो बेला, मैंने कुछ धूप में बाल नहीं पकाये हैं। तुम्हीं लोगों के साथ मेरी जवानी कटी। अब उस पार जाने के दिन करीब आ गये। मैं तुम्हें गुमराह नहीं कर सकती। मुझे दुनिया

के हर क़िते की परख है। तुम रो-पीटकर क्या करोगी ? जो होना था, सो हो गया। अब दामन झाड़कर खड़ी हो जाओ। धरम-करम सब सुभीते की बात है। सरग और नरक कुल बनावटी तरकीबे है। किसी ने वापस आकर कुछ ऑखो-देखी नहीं कही। ये सारी बाते पीरो और पडितों ने पेट पालने के लिए पैदा की हैं। तुम अभी नादान हो। सच मानो, इस दुनिया मे कभी किसी पर भरोसा नहीं, न कोई किसी का सहारा है। तुम्हें अपने बूते पर भिड़ना है। तुम मे अभी रूप है, रग है, जवानी का जमाल है ! इस पर टिड्डियो की तरह लोग पिले पड़ेगे, नहीं तो जब गाल की पॅखड़ियाँ लटक पड़ेगी, फिर बुलबुल का कहीं पता न मिलेगा। अगर बदला लेने की नीयत हो, तो यही मौका है। तुम इन बेदर्द मर्दों के कलेजो को पैरो तले मसल डालो !"

मेम साहबा चुप हो गईं और झुककर बेला के चेहरे को गौर से देखने लगीं। अभी तो उन्होंने तरकस से एक मामूली तीर छोड़ा था। ब्रह्मास्त्र तो अभी आस्तीन के पुट मे पड़ा था।

बेला चुप बैठी आँचल के छोर को अँगूठे में लपेट रही थी। भगवान जाने, वह क्या सोच रही है ! उसका चेहरा दूध के झाग की तरह सफेद है। उस चेहरे पर न कोई शिकन है, न ऑखो मे कोई जलन।

मेम साहबा ने समझा तीर निशाने पर नहीं पड़ा। वह नादान होकर भी टेढ़ी खीर थी। उन्होंने प्रत्यञ्चा पर फिर दूसरा तीर रखा--"तुम इतना समझ लो कि अब शरीफ़ो में तुम्हारा गुजर

न होगा। तुम्हारी नाक कट चुकी, अब नाकवालों के साथ तुम्हारे मरासिम कभी मुमकिन नहीं। तुम्हें नकटों ही के कूचे में अपना आशियाना बनाना होगा। मैं फिर कहे देती हूँ, कि तुम नकली नाक लगाकर नाकवालों की महफ़िल में नहीं मिल सकतीं। इस खामख्याली को दिल से उठा दो। जो होने का नहीं, उसके लिए तड़पकर क्या होगा?'

"या भगवन्! मेरी क्या गति होगी?"—बेला ने आप ही-आप सिसककर कहा।

"वही, जो हिन्दुस्तान में हजारों की होती है! तुम अकेली नहीं हो। तुम-जैसी लाखों इस देश में पापड़ बेल रही हैं। देहातों से हजारों सताई हिन्दू बेवाएँ बाहर आकर शहरों की आबादी बढ़ाती हैं। वे फिर वापस नहीं जा सकतीं, किसी शरीफ हिन्दू के घर की लक्ष्मी नहीं हो सकतीं। तुम्हारे समाज में तो उनको फिर से पनपकर फूलने-फलने का मौका नहीं दिया जाता। जो गिरी सो गिरी, उठ नहीं सकती।"

"जो ख़ुद गिरती होगी, उसके लिए यह सजा होगी।"—बेला ने जरा तिनककर कहा।

"नहीं-नहीं, तुम ख़ुद गिरो, अचक्के गिरो, धक्के खाकर गिरो या ज़बरदस्ती पकड़कर बोर दी जाओ—ख़ता एक है, सजा एक है! मर्द तो कभी सज़ावार हो ही नहीं सकता। उसको तो तुम्हारे राम के दरबार से दमामी माफ़ी की सनद मिल चुकी है! वह तो आज़ाद है! अगर शायद कुछ बात भी बढ़ी, तो उसके लिए

तरकीबों की कमी नहीं। गंगा में डुबकियाँ लगाईं, गोबर-मिट्टी मली, पूजा-पाठ हुआ, दस भाई-बिरादर को खिला दिया, दस पंडे पंडितों को मालपुए चखाये, फिर पाँत में शामिल हो गया। तुम्हारे लिए तो गंगा बहती नहीं। तुम लाख नहाओ, हज़ार पूजा करो, बरसों माला फेरो, महीनों तीर्थों की ख़ाक छानो, तुम्हारी तो रसाई किसी शरीफ में होगी नहीं। तुम्हारे समाज में कोई ऐसी त्रिवेणी नहीं, जो इस दामन के दाग को धो सके।"

"तो फिर डूब मरने के अलावा कोई चारा नहीं?"

'क्यों नहीं? क्या दुनिया खाली है? ऐसी ख़ब्त तो किसी पगली पर सवार होगी। तुम्हारे समाज में यह नासमझी है, डूब मरो या बाज़ार में जाकर रूपे के दर पर रूप बेचो। तुम्हारी क़िस्मत में दही की मही रहेगी और दलाल सुड़केंगे दही की छाली। जबतक जवानी का मुलम्मा है, तबतक तुम घी में चावल पकाओ या दूध में। दो दिन बाद तो बासी भात के भी लाले पड़ेंगे। जब खिज़ाँ आएगी तब सूखे पत्ते की तरह उड़ती फिरोगी। सच मानो, तुम्हारी शराफत की फटी चादर को रफ़ू करने की मशीन हिन्दू के घर में नहीं मिलेगी। तुम्हें रफ़ू कराना है, तो हमारे घर पर आओ। वह रफ़ू होगा कि सूत से सूत मिल जायँ। फिर तुम इसे सर पर ओढ़कर शरीफ़ों की महफ़िल में बेखटके मौज करोगी।"

बेला ने दृष्टि ऊपर की और मेम साहबा के चेहरे पर रखी।

"क्या देखती हो? मुझको? मैं भी एक दिन वही थी, जो

आज तुम हो। मैं कोई विलायत की मेम नहीं हूँ। गाउन पहनने से मत समझो। रंग भी वही देशी है। तुम्हारा रंग तो बटर सोने का है, मुझसे भी कहीं खुलता है। फर्क यही है कि तुम पामाल हो, और मै खुशहाल हूँ। दो दिन 'सोप' मलकर नहा-धो लो, फिर देख लेना, तुम्हारे कंचन-रंग के सामने विलायती मेमों के भी रंग फीके पड़ जायँगे।"

"तो आप यहाँ कैसे आईं?"—बेला ने दबी जबान से पूछा।

"जैसे तुम आई हो! मै भी इसी जवार के एक गरीब ब्राह्मण की बेटी हूँ। बाप ने मुझे 'झुरियों की झूलती खाल' की गाँठ में बाँध दिया था। साल जाते-जाते मौत ने आकर उस बेजोड़ गाँठ को तोड़ डाला और मै फिर मायके वापस चली आई। माँ तो थी नही, कुछ महीनो बाद बाबा भी चल बसे। मैं सबके कंधो पर सिल हो गई—सब की आँखों की किरकिरी हो गई। फिर तो चचा ने मुझे तबाह करने की गरज से मेरे साथ ऐसी भलाई की कि मैं यहाँ पहुँच सकी, और मेरी ज़िन्दगी पलट गई। उनकी नजर-मिहरबानी के ज़रिये ठोकरे खाती मै यहाँ न आती, तो उसी अँधेरी खन्दक मे पड़ी-पड़ी गल-पच गई रहती। बरसो बाद जब चचा के दिन बिगड़े और वे दाने-दाने का मुहताज हो गये, तब यहाँ आकर पैरो पर गिरे और मैने यहीं पर ऑफिस मे उन्हें पंखा-कुली की जगह दिलवा दी। भूख की आँधी मे धरम का मशाल कहाँ तक टिक सकता है? ज़माने की हवा भी हवा हो जाती है। वे तो अब रहे नहीं, लेकिन उनका बेटा 'शेखर' अब

भी यहीं अस्पताल मे दरवानी करता है और बाज़ार से लोफ और अंडे रोजमर्रे मेरे घर पर पहुँचाता है।"

"मगर आप डॉक्टरी ....."

"डॉक्टरी ? डॉक्टरी यहीं रहकर सीखी। मैं भी एक दिन तुम्हारी तरह इसी अस्पताल मे मौत की राह ढूँढ़ रही थी। मैं उस सामनेवाले"—मेम साहबा ने ऊँगली के इशारे से दिखाकर कहा—"कमरे मे थी। तब तक यह नया 'वार्ड' नहीं तैयार हुआ था। लगातार पाँच दिनो तक चारपाई पर तड़प तड़पकर चीखती रही। बूढ़ी मेम-डॉक्टर ने मुझे मौत के पजे से बचाया और जब मैं चगी हो गई, तब मुझे और मेरे नन्हें बच्चे को अपने स्नेह के साये मे जगह दी। अगर वे फिरश्त-सूरत मुझे जगह न देतीं, तो यह दामन का छोर नाबदान मे तर रहता। मै ईसाइ हो गइ और इसी मिशन-अस्पताल के डॉक्टर के साथ मेरी शादी हो गई। मेरे शोहर आज-कल मसूरी मे है। मै वहाँ बराबर आती-जाती रहती हूँ। मैन डॉक्टरी सीखी और यहीं मुलाज़िम हो गई। इस वक्त मेरे दो लड़के और एक लड़की है। लड़की कलकत्ते मे इजिनियर से व्याही है। बड़ा लड़का यहीं डॉक्टर है और छोटा लड़का अपने बाप की निगरानी मे मसूरी में पढ़ता है। बेला! मेरे चचा की बदनीयती मेरी खुशकिस्मती हो गई! हिन्दू-समाज में ज़िल्लत, मेरी इज़्ज़त—मेरी मुक्ति हो गई। अगर हिन्दू-धर्म का दायरा इतना तग न होता, उस समाज के कुएँ मे भंग न पड़ी रहती और मेरी निर्दोषता के इनाम मे मुझे सज़ा न मिलती, तो तुम्हीं

कहो, मुझे ईशू की विशाल आत्मा का परिचय क्योंकर मिलता ? कलक का टीका मेरे सर पर सुहाग का तिलक कहाँ बनता ? मैं तो यही दुआ करती हूँ कि तुम्हें भी उसकी शरण नसीब हो—तुम्हारा पतन भी तुम्हारे उत्थान की नींव हो। बेला ! तुम्हीं समझो, खुद तो मै कभी गिरी नहीं, बल्कि गर्दन दबोचकर बोरी गई थी। मगर फर्ज कर लो, मै खुद ही फिसलकर गिर पड़ी, तो यह कौन कायदा है कि मुझे दामन झाड़कर उठने का मौका न दिया जाय, उलटे दुलत्तियाँ झाड़कर गहरे खड्ड मे फेंक दिया जाय, ताकि मेरी लाश की बोटियाँ गीधों की खूराक हो ? यही इन्साफ है ? अगर है, तो मर्द और औरत के लिए बराबर क्यों नहीं ? क्या वजह है कि मर्द सैकडा का गला घोटकर भी मूँछे कड़ी किये मोज कर रहे है और बेचारी अबलाएँ घर से निकाली जाकर सडको के किनारे सिरकी तानकर पेट पाल रही हैं ? यही वजह है कि हिन्दू-समाज की नाक आधी कट चुकी ! मगर अपनी सूरत तो अपनी आँखो से नजर नहीं आती, इसीलिए शायद उसे अपनी बदसूरती की खबर नहीं। अगर गैर की आँखो से वह उस शक्ल को देखता या दुनिया के आइने मे अपना चेहरा देखने की उसे समझ होती, तो मुझे यकीन है कि लाख जलील होकर भी चूल्लू-भर पानी मे डूब जाता।"

बेला चुप साधे सुनती रही। मेम साहबा की बात को वह तसलीम करे या उसका जबाब दे ? उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम थी।

"बेला, तुम्हीं कहो, आज मै ईशू की शरण मे न आती, तो

मेरी क्या गति होती ? मैं आज शरीफों मे शरीक हूँ। हमारे धर्म की गंगा मे नहाकर तुम-जैसी कितनी ही दुखिया तर चुकीं और रोज तर रही है। तुम्हारी गंगा तो परलोक मे तारने का दावा करती है, पर आजतक किसी ने वापस आकर उस दावे की सचाई का सबूत न दिया, और हमारे यहाँ तो खड़े-खड़े 'इस हाथ दे उस हाथ ले' का मजमून है ! बेला ! तुम मन्दिर की चौखट पर अछूत को झाँकने मत दो, कुएँ से एक चुल्लू जल न लेने दो, उसे कुत्ते की तरह नापाक समझकर मकान के बाहर दुत्कार दो, तुम जवान विधवा के सर को लीप-पातकर पूजा की वेदी बनाओ, उसे मोटी फटी धोती और एक जून भुने चने पर चने की तरह पीस डालो और खुद उसे दलदल मे ढकेलकर दुलत्तियाँ झाड़ो, मगर वही अछूत और वही विधवा जब पंचों के दरवाजे पर सर पीटकर रोती-कलपती गिरजे और मस्जिद के दायरे मे आती है, तब वहाँ उन्हें गले लगाकर बराबरी के दरजे मिलते हैं और उनके दिल के फफोलों पर स्नेह का मरहम देकर उन्हें आदमी बना दिया जाता है। तुम्ही कहो, खुदा का घर तो जालिम अमीरों का दरबार नहीं है ! जहाँ दीन-दुखिया का गुज़र न हो, वह खुदा का घर है या शैतान का ? ईशू ने तो क्षमा और प्रेम के मन्तर पर पत्थर को भी गला डाला, गुनाहों के पर्वतों की भुस्सियाँ उड़ा डालीं। अब भी समझो, तुम कहाँ भटकती फिरोगी ? याद रखो, जबतक तुम हिन्दू रहोगी, तबतक हर शरीफ का दरवाजा 'किसी अभागे का भाग' बना रहेगा, न वह

खुलेगा, न तुम्हारी रसाई होगी। इधर देखो, वह जो उस कमरे मे उस बिचारे मरीज़ की नब्ज पर हाथ रखे कुर्सी पर बैठा है, वही मेरा पहला लड़का है, जिसके कारण मेरी कायापलट हुई। आज वह हिन्दू रहता, तो धोबी का गधा बना रहता—न घर का, न घाट का! यह ईशू का इकबाल है कि आज वह शरीफों की नाक का बाल है। किसकी मजाल है जो मेरे 'पॉल' पर उँगली उठा सके! आज वह डॉक्टर बनकर खासी रकम पैदा करता है। कहो तो"—मेम साहबा ने कानो मे झुककर कहा—"मैं उसीसे तुम्हारी शादी ठीक करा दूँ! जब से मैंने तुम्हें देखा है, सच कहती हूँ, तुम पर मुझे बड़ी दया आती है। मै 'पॉल' को समझा-बुझाकर राजी कर लूँगी। ···सर मत हिलाओ! मैं जो कहती हूँ, उसपर गौर करो, मेरे घर की बहू होकर तुम एक दिन मेरी जगह लोगी। मैंने तुम्हें नई जिन्दगी दी है, तुम्हें मौत के दाँतों के दाब से खींचा है। तुम मेरी धरम की बेटी हो। ·· नहीं-नहीं, मै आज ही जवाब नहीं माँगती। तुम अपना रास्ता चुन लो। एक तुम्हें दुनिया के दायरे मे दोजख की सजा देगा, दूसरा तुम्हें दुनिया के भीतर बहिश्त का मजा देगा!"

बेला सर हिलाकर चुप हो गई। एक बार आँखे उठाकर उसने सामने के कमरे मे बैठे हुए डॉक्टर को देखा। वह कनखियों से बार-बार इसी तरफ़ देख रहा था। उसकी कड़ी कड़ी मूँछों की नोक सोने के चश्मे के फ्रेम को छू रही थी और उसका सन्दली टाई, क्लिप के पंजे से छूटकर, शरबती शर्ट की सतह पर थिरक रहा था।

बेला ने ताड़ लिया—यह वही शख्स है, जिसकी चितवनों की चाँदनी मेरी खाट पर निरन्तर तनी रहती थी, और जिसके जूते की मचमच मेरे कानों पर बेवजह गूँजती रहती थी।

बेला ने निगाह नीची कर ली, अपने आँचल को सर पर सरका लिया, और भर्राई हुई आवाज में बोली—"मेम साहबा! आपकी दया की भीख से तो मेरा रोआँ-रोआँ भरा है। आपके चरण की धूली मेरे लिए बृज की मिट्टी है। मै सब छोड़ सकती हूँ, पर अपने धरम को नहीं छोड़ सकती। मै पलने से जिस मूरति पर वारी हूँ, उसी के हाथ मे मेरे मन की डोरी है। वह जिधर चलाता है, मै जाती हूँ। सब तो जा ही चुका, उसे भी छोड़ दूँ तो फिर किसकी होकर रहूँगी! अगर मै उसकी न रही, तो किसी की नहीं रह सकती। मेरे रोम रोम मे राम रमा है, मै उसे निकाल भी तो नहीं सकती। उसके निकालने मे तो कलेजा निकल जायगा। अब आप ही कहें, मै क्या करूँ? वही तो आज मेरा सम्बल है। पतिता का रखवार कौन है? डूबती का सहारा और कौन है?"

'क्यों, ईशू है! वही तुझे..."

"नहीं नहीं, तुम्हारा ईशू तुम्हारा है, हमारा राम हमारा है। मैं तो ज्यादा जानती नहीं, मगर इतना जरूर जानती हूँ कि राम ने केवट को गले लगाया, सेवरी के जूठे बेर खाये और गनिका को तारा। फिर, मेरे हाड़ को भी वही पार करेगा। आज भी मेरे माथे की बिन्दी वही है। देखिये, आज भी मेरा साथी वही

है।" बेला के सिरहाने के तकिये के नीचे से रामायण की एक पोथी निकालकर दिखाई—"इसीके सहारे मैं दुनिया की ठोकरों को सहती हूँ।"

मेम साहबा चारपाई से उठ खड़ी हुई और खुले हुए जूते के फीते को झुककर बाँधती हुई बोलीं—"खैर, मैं जाती हूँ। मुझे और भी काम है! आज तुम समझती नहीं, लेकिन जिस दिन बाज़ार की गलियो मे बैठकर दलालो की चिलम भरोगी, उस वक्त हमारी बात साँप बनकर कलेजे पर लोटेगी। मै फिर भी कहती हूँ, तुम्हारे दरद की दवा हिन्दू समाज के दवाखाने मे नहीं है। वह दरद देता है, दवा नहीं देता। तुम्हें इलाज मजूर है, तो लाज छोड़कर ईशु के दामन मे पनाह लो। इस दुनिया मे दुखिया के दुख से ऐसा दुखी होनेवाला दूसरा नहीं है।"

बेला सर झुकाये चुप बैठी रही, कोई जवाब न दिया। मेम साहबा ने छन भर दम लेकर फिर कहा—"तुम्हें पता है, इस ज़िद का क्या नतीजा है?"

बेला ने मेम साहबा पर प्रश्न-भरी दृष्टि रखकर पूछा—"क्या नतीजा है, मेम साहबा?"

"यही कि मै शरीफ़ नहीं होऊँगी, चूँकि हिन्दू रहकर तो तुम कभी शरीफ़ नहीं रह सकती!"

"जब सती न रही, तब शरीफ़ क्या खाक होऊँगी?"—बेला ने दर्द-भरी आवाज़ से कहा।

"कोई सीने पर सवार होकर तुम्हारा सतीत्व छीन लेगा और

दुनिया उसी जालिम की तरफदारी करेगी। फिर भी तुम उस दुनिया की—उस समाज की—ठोकरो से खबर न लोगी। बेकसूर इस ज़िल्लत को सर पर ढोती रहोगी—हिन्दू कहाने के लिए कुलटा कहाओगी! राम का नाम लेने के लिए पतिताओ मे नाम लिखाओगी! इस बीभत्स मज़हब के लिए नारीत्व की न्यामत से महरूम रहोगी। हिन्दूत्व बड़ा है या नारीत्व? ईशू की शरण लेती हो, तो राम भी मिलता है और आराम भी। न सही हिन्दू, नारी तो रहोगी, न भजा राम को, शरीफ तो रहोगी?"

बेला चुप थी। वह जान रहते क्रिस्तान होगी? अब तक उसके शरीर ही पर वार था, उसके शरीर की वेदी पर कामियो ने अपनी कामना का यज्ञ रचा—अपने रक्त की क्षुधा मिटाई। आज यह वार तो उसके प्राणो के प्राण पर था। शरीर पर जो बीता, सो बीता, उसका सर्वस्व—नारीत्व—लुट ही चुका। अब क्या उसके जीवन का शेष सम्बल भी लुटना चाहता है?

अब तक तो जो कुछ हुआ, उसके साथ वह कभी मन से शरीक नहीं थी। शरीर जो आततायी के कब्जे मे हो, पर मन तो उसके साथ था—वह तो अलग रहकर उसकी आन्तरिक पवित्रता की रक्षा करता आया—वह तो कभी मेम साहबा की सम्मति को स्वीकार न करेगा। तो फिर, बेला स्वार्थ के चकमे में आकर उसकी हत्या करेगी? ना, वह ऐसी क़साई नहीं हो सकती! वह हर्गिज ईसाई नहीं हो सकती!

उसकी धमनी मे रक्त खौल उठा। उसकी नस-नस मे विद्रोह की बिजली दौडने लगी। वह बोल उठी—"मैं राम के नाम को नहीं छोड़ सकती! वह मेरे साथ है, तो मैं बाजार में भी बैठ सकूँगी, मगर उसको छोड़कर मैं स्वर्ग भी नहीं चाहती!"

"जाओ, जहन्नुम मे जाओ!"—बड़बडाती हुई मेम साहबा कमरे से बाहर निकल गईं और डॉक्टर पॉल रोगी के मुँह में संलग्न थरमामिटर छोड़कर लपकते हुए अपनी माता की ओर झुके।

बेला ने देखा कि उसके चेहरे पर उत्सुकता की रेखा स्पष्ट थी।

"नहीं, वह मानती नहीं। उसके सर पर शैतान सवार है!"—झल्लाकर चिल्लाती हुई मेम साहबा दृष्टि से ओझल हो गईं, और मिस्टर पॉल मुहर्रमी मुँह लटकाये न जाने किधर निकल गये।

बेला चारपाई पर सुस्त लेट गई। परीक्षा पर परीक्षा—सङ्कट पर सङ्कट--वार पर वार! हाय! इस घड़ी अगर मृत्यु आकर उसे अमृत पिलाती, तो वह ससार से उठकर जी जाती! यह मरण आज देवता का निर्माल्य होता। वह तो उस पार के अभिसार के लिए तैयार थी; कभी की घुँघरू बाँधकर बाट जोहती थी, पर मुरली की टेर तो आती न थी।

बेला तड़प तड़पकर रोने लगी। अब तो एक क्षण भी यहाँ ठहरना निरापद न था।

वही नारी जो घंटे भर पहले माता की कल्याण-मूर्त्ति बन कर उसकी आँखों के सामने प्रज्वलित थी, अब पिशाचिनी-सी डरावनी मालूम होने लगी। उसे भय होता था कि कहीं वह मेम-डॉक्टर सीने पर सवार होकर उसके मुँहमे बल पूर्वक कुछ अभक्ष्य देकर उसे धर्मच्युत न कर दे। कहीं बल-पूर्वक वह मिशन के गिरजे मे ठूंस दी गई और उसके धर्म की हत्या हुई, तो वह अबला बिचारी क्या कर सकेगी? उसने वहाँ की दवा और दूध पीकर भी बड़ी भूल की। इतनी खैरियत जरूर थी कि उसने वहाँ का अन्न नहीं ग्रहण किया, केवल दूध और फल ही खाये।

बचपन से जिस विधि-निषेध की लपेट मे वह पली थी, उसका असर तो निरन्तर उसके प्राणों के साथ था।

गाँव की सकीर्ण गोष्ठी मे छूत और भूत का प्रभुत्व अब भी प्रबल है और प्रत्येक हिन्दू परिवार विवेक का 'कर' देकर इस राज्य के अधीन है। छूत के साये मे पनपे हुए विभेद के विषाक्त कीटाणुओं ने समाज के स्वास्थ्य को चूसकर कङ्काल बना डाला है, और यही छूत आज हिन्दूत्व का मेरुदड है। जिस धमरथ के चक्र की धुरी छूत है, उसकी गति यदि अवनति के कीचड़ मे नहीं फँसती तो क्या उन्नति के पथ पर बढ़ती? वह 'रेस' में दूसरे प्रतिद्वन्द्वी रथो के मुकाबले मे कहाँ तक ठहरेगा? यह छूत का शनिश्चर भारत के सर पर सवार न होता, तो हिन्दूत्व की सत्ता घटकर इतनी क्षीण न हो पाती, आज हमारा अपना परिवार टुकड़ों में बँटकर छिन्न न होता और

हमारे अपने भाई हमसे अलग होकर हमारी पत्ता का बँटवारा नहीं कराते !

बेला ने समझा कि जहाँ उसने मिशन का अन्न-ग्रहण किया कि वह अनायास मेम साहबा के जाल में जा पड़ी। फिर तो उसे निकलने का कोई रास्ता ही न मिलेगा। और, जब वह बात पर राजी न हुई, तब जरूर वह मक्कार औरत किसी झावली से उसे कुछ खिलाकर उसके हाथ का हथियार रखवा लेगी।

कल्पना ने उसकी एक एक आशङ्का को आतङ्क बना डाला और उस निस्तब्ध कमरे की दीवारों पर उसे किसी अव्यक्त भय की छाया नाचती प्रतीत होने लगी।

तबतक किसी के पैरों की आहट पाकर बेला चौंक उठी।

सामने देखा—नौकरानी सागू और केले लाई है। बेला ने सागू के कटोरे को गौर से मुलाहजा किया। सागू के दाने उसे चावल के दाने नज़र आये। वह काँप उठी। सागू नहीं, खीर है ! ज़रूर उसी मेम डॉक्टर का षडयंत्र होगा। ईसाई के घर का चावल ! लोक और परलोक दोनों का अवसान !

भात का भूत उसके सर पर अभी तक सवार था। इतनी दुर्गति होने पर भी उसकी रुवारी ढीली नहीं पड़ी थी। उसने सागू खाने से इनकार कर दिया। केले भी न खा सकी।

दाई, चीज़ों को रखकर, आगे बढ़ गई।

बेला ने केले को छीलकर दो टुकड़े किये और बाहर बरामदे पर फेंक दिये। सामने के नीबू के पेड़ से दो गिलहरियाँ उतरीं

और उन्हें कुतरने लगीं। बेला खड़ी-खड़ी एकटक देखती रही··· हाय! यदि वह गिलहरी होती, तो मनुष्यो की गन्ध से कितनी दूर रहती! अलग पेड पर अपना घर बनाती और हंसते खेलते विचरती फिरती!

आदमी को जब आदमी के संसर्ग से आदमियत की बिजली नहीं मिलती, तब वह छन-भर असम्भव कल्पना की छाया मे अपने विक्षिप्त चित्त को शान्त करता है। वह किसी गैबी मदद--किसी अदृश्य शक्ति—का सहारा ढूँढ़ता है, और समझता है कि उसकी आह की सत्ता निर्मम प्रकृति के अटल नियम को तोड़कर कुछ तिलस्मी करश्मे दिखा सकेगी। जब इस लोक का सहारा टूटता है, तब मनुष्य छन-भर किसी माया लोक का सहारा ढूँढ़ता है। यह आशा दुराशा जो हो, पर यह कितनी करुण—कितनी मधुर—है!

अब चमत्कार के दिन तो रहे नहीं। अब तो पृथ्वी तरस खाकर किसी को गोद मे शरण नहीं देती, न देवता आकाश से पुष्पक पर आकर फूल बरसाते हैं! अब किस पीड़िता की लज्जा की रक्षा के लिए गोलोक मे खलबली मचती है—किस सती की आँखो की चिनगियाँ आततायी के कलेवर को जलाकर खाक कर सकती हैं? शायद अब सती में न सत्शक्ति रही, न मानवो के सुख-दुख मे अमरो की दिलचस्पी। नहीं तो, भारत की लाखो विधवाओ के जीवन का सञ्चित हाहाकार अब तक किस देवता के आसन को हिलाकर उखाड़ न देता?

सहसा किसी के कराहने की आवाज़ उसके कानों में पड़ी और वह पीछे मुड़ी। उस लम्बे-चौड़े कमरे के एक कोने में एक बुढिया थरथर काँप रही थी। वह महीनों से इस अस्पताल में भुगत रही थी—न जीती थी, न मरती थी।

बेला नज़दीक चली गई। बुढ़िया पानी माँग रही थी। उसकी आँखों के डोरे सुर्ख हो रहे थे। उसके चेहरे पर वेदना के भाव स्पष्ट थे।

चारपाई के नीचे पानी से भरा लोटा रखा था। बेला ने लोटे को उठाने के लिये हाथ बढाया। बुढिया ने उंगली के इशारे से मना किया।

बेला वहीं ठमककर खड़ी हो गई। वह समझ गई कि बुढ़िया उसे किस दृष्टि से देखती है। समाज का यह निष्ठुर नियन्त्रण उसको बहुत अखरा। उसका कौन अपराध था? और बिना कसूर पग-पग पर यह सजा कैसी? जल्लाद के बेरहम पंजे ने बल-पूर्वक उसकी गरदन से लज्जा की कठी उतार ली, तो इसलिए उसकी गरदन मे कोई हाथ क्यो देगा? समाज-सभा के द्वारपालों ने अगर उसकी पत की चादर को चाक कर डाला, तो इस फटी चादर की ज़िम्मेवारी कुछ उसके सर नहीं गिरती!

मगर यहाँ इस दलील को सुनता ही कौन है?

बेला दिल मसोसकर रह गई। बुढ़िया की आँखें भतीजी को ढूँढ़ रही थी, जो उसकी सेवा शुश्रूषा के लिए कई दिनो से अस्पताल मे ठहरी थी। बेला उसकी तलाश करती बाहर निकल आई।

'मँगरो' एक गूलर के पेड़ के साये मे बैठी पीतल की थाली में सत्तू घोल रही है और सामने खड़े अस्पताल के छोकरे ड्रेसर के साथ हँसकर कुछ रस की बाते भी छेड़ रही है। उनके चेहरे पर शोख़ी की एक झलक है—आँखो मे चाव की एक चमक।

बेला को देखकर वह ज़रा भी सकपकाई नहीं, और भी हँसकर उडने लगी। बेला ने आते ही कहा—"बूढ़ी पानी माँगती है न—तुम यहाँ बैठी"—

"तनिक तुम्ही दे दोगी तो"—मगरी ने मुँह बनाकर पूछा।

"नहीं, तुम्हीं को बुलाती है।"

"मै दिन-भर की भूखी हूँ, खा तो लूँ, बूढ़ी तो जान खाये लेती है। सुबह से रात तक खटती हूँ, फिर भा जान नहीं छोड़ती। अभी तो सत्तू घोलने बाहर आई, और फिर तलबी पहुँची। आने दो उनको, बाज़ारस नमक और प्याज़ लाने गये है, वही जाकर पानी देंगे। आज पानी दे या कल पानी द, उन्हीं को पानी देना है न!"

बेला इस ढीठ छोकरी के इस कठोर इगित को सुनकर सहम उठी। कहती ही क्या?

"अरे वे बुखार से तड़प रही हैं और तुम यहाँ इतमीनान से सत्तू घोल रही हो? उठो, चलो ज़रा उनकी सुपलियाँ सहला दो; कंठ मे दो बूँद पानी दे दो। उठो, डॉक्टर को भी तो ख़बर कर दो।"

"तुम्हारे कलेजे में इतनी माया है, तो तुम्हीं क्यों नहीं खबर करती?"

मँगरी का दुलहा अँगोछे में प्याज और नमक बाँधे पहुँचा और बड़ी आजिजी से उसके सामने खोलकर रख दिया—"तुम खा लो, तो मै उसी में बचा-खुचा खा लूँगा। आज मुझे वैसी भूख नहीं है।"

इधर ड्रेसर की निगाह बेला की ओर फिरी और वह काला-कलूटा आँखें फाड़कर एकटक उसे देखने लगा। मँगरी ने झल्ला कर उससे कहा—'खड़े क्या हो? जाकर डॉक्टर को खबर दो। चच्ची को फिर जड़ैया चढ़ी है।'

ड्रेसर वहाँ से चलता बना और मँगरी का पति कुरते की जेब से चाकू निकालकर थाली की ओर झुका—"लाओ, प्याज कतर दूँ। पुदीने की चटनी लोगी?"

"नहीं-नहीं, जाओ, देखो, बुढ़िया जड़ैया खेला रही है!"

उस पत्नी-भक्त ने प्याज के कतरों को मँगरी की थाली मे रखा, और बेला के पीछे-पीछे अस्पताल में चला। आते ही उसने चच्ची को थोड़ा जल पिलाया और सिरहाने बैठकर उसका माथा टीपने लगा।

'सुनो कालू, तुम इसी घड़ी गोविन्दपुर चले जाओ और गुरुजी का चरणामृत लाओ। अब मै बचूँगी नहीं!"

बेला खड़ी-खड़ी सुन रही थी गोविन्दपुर और गुरुजी का चरणामृत! उसे तत्क्षण अपना गुरु घराना याद आ गया और गुरुवर गिरिधारीलाल की सौम्य मूर्त्ति उसकी आर्द्र बरौनियो के अन्तराल मे खिंच गई। उससे अब रहा नहीं गया।

वह फौरन् पूछ बैठी—'यहाँ से कितनी दूर है गोविन्दपुर ?'

"बस, कोस-डेढ़-कोस होगा, और क्या ? मैं किरन डूबते-डूबते लौट आऊँगा।"

बेला की जान मे जान आ गई। डूबते को तिनके का सहारा भी काफी है। मेम-डॉक्टर के पजे से नजात हुई, ईसाइयो की बदिशो से जान बची। खड़े होने की जगह तो मिली। गुरु के चरणो की शरण मे यदि शान्ति न मिलेगी, तो फिर कहाँ मिलेगी ?

बेला ने देखा, वह ड्रेसर उसी डॉक्टर को लिये लपका हुआ इधर ही आ रहा है। वह तड़प उठी। उस डॉक्टर की सूरत ने उसकी नस नस मे साहस भर दिया। कोई सामान तो उसके पास था नही, वह तड़ से फाटक पर चली आई।

"कहाँ उड़ी जा रही हो ? जरा एक नजर इधर भी हो !"—फाटक के बाहर बेला दो ही कदम गई होगी कि किसी के हसने की आवाज़ सुनकर एकबारगी चौक उठी। मुड़कर देखा, तो दरवान कडो की मीठी आँच पर रोटियाँ सेक रहा था। वह हँस रहा था और हशरतभरी निगाहो से घूर रहा था। उसकी चितवन की चिमनी से वही शिखा जल रही थी, जो उसकी देह में चिनगी फूँक देती थी।

बेला उबल पड़ी—"कहाँ जा रही हूँ ! तुम्हें गरज़ ?"

"वाह ! क्या कहती हो ? तुमसे ओर ग़रज़ नहीं ? मरने-वाले को अमृत से ·· ··"

"क्यों, यहाँ ईशू की शरण में तुम्हें अमृत नहीं मिलता ?"—बेला बीच ही में बोल उठी।

"मुझे ? मुझे क्यो मिलने गया ? पेट का सवाल न होता, तो मैं यहाँ आता ? मै तो समझता था, तुम भी इसी अमृत का घूँट पीकर मस्त रहोगी !"

"तुम्हारी बहन ने इसे पीकर नई जिन्दगी पा ली, इसीसे समझते हो कि सभी को वही प्यास है ?"

"बहन ? बहन कैसी ?"-शेखर ने ज़रा तेवर बदलकर पूछा।

"वही मेम-डॉक्टर ! मुझसे ही उड़ रहे हो ?"

अब तो शेखर बुत हो गया। काटो तो ख़ून नहीं ! सारी फुर्ती काफ़ूर हो गई।

"क्या टे-टे करती है ! ज़बान सँभालकर बाते कर !"

"बनो मत, मुझसे परदा नही है !"

"देखो बेला !"—शेखर ने नज़दीक आकर बड़ी नर्मी से कहा—'मुझ पर दया करो, इसे ज़बान पर भी न लाना, नहीं तो मेरी आबरू उतर जायगी। जातवाले हुक्का-पानी बन्द कर देगे, मुन्नी-बिटिया की शादी रुक जायगी। अगर खेत बन्धक न पड़ता, तो मै यहाँ आकर ईसाइयो की जूतियाँ सिर पर रखता ? उन्हें जूती की नोक पर न उछालता ? पर क्या करूँ ? जिस मुसीबत से दिन काटता हूँ, मै ही जानता हूँ। जो न करने को, वही करना पड़ता है। पेट की आग न होती, तो जीती मक्खी न निगलता !"

"क्यो, तुम पर तो मेम-डॉक्टर की नज़र ·"

"उस नज़र के एवज़ मे मुझे जो नज़र करना पड़ता है, तुम सुनकर क्या करोगी ? किसी तरह धरम बचा रहे तो बहुत समझो। यहाँ तो रोज एक-न-एक नया उल्लू फँसता है। दलालो से टोलियाँ भरी है। हिन्दुओ के ही घरो से ता इनका रोज़गार चलता है। वहीं से तो माल की आमदनी होती है। आज भी एक चमार जोरू-बच्चो के साथ ईसाई बना है। बिचारा हाल ही शहर से गाँव मे आया था। कुए की जगत पर खडा हाकर पाना भर रहा था। मुहल्ले के ब्राह्मणो ने मिलकर उसे पाना पिला-पिलाकर मारा भी ओर इदारे के उड़ाह के खर्च के लिए उस गरीब की औरत के जाबर उतरवाने लगे। बिचारा कल दन का वादा करके बीबी-बच्चा लिए भाग खड़ा हुआ ओर यारो ने कान भरकर उसे यहाँ पहुँचाया। वही अब ईसाई बनकर साँड़ की तरह हँकड़ रहा है ! किसी बाबाजी का कलेजा नहीं कि सामने आकर उससे नज़र भी मिला सके। मै तो समझता था कि तुम भी एक नया शिकार फसी ! तो अब जा क्यो रही हो ? यहाँ पैर पर पैर रखकर तर माल चखोगी ! ऐसे बाज़ार की गलियाँ नापनी होंगी !"

"तुम भी जिसकी नमक खाते हो, उसी का गाते हो ! चुल्लू-भर पानी मे डूब न मरो ! जनेऊ उतारकर ताँत क्यो नहीं पहनते ?"

"उधर न जाओगी, न सही, चलो इस गरीब की कुटिया

को रौशन करो।"—शेखर ने जीभ चटका कर और हाथ मटका कर एक अजीब अन्दाज से हँसकर फ़रमाया।

बेला के सर से पैर तक आग लग गई। उसका चेहरा तमतमा उठा और वह जलती हुई आँखो से शोले उगलकर आगे बढ गई। व्यग्य बाणो की कड़ी चोटे सहते सहते उसके हृदय-पटल पर घट्टे पड़ गये थे ज़रूर, फिर भी इस नीच की यह बीभत्स चेष्टा उसके कलेजे पर गहरी पड़ी।

———

तृतीय परिच्छेद

जब बेला गुरु घराने के दर पर पहुँची, तब उसका अपनी थकान का पता चला। वह एक साँस मे लुढकती चली आई थी। दोडते दौड़ते दोंतो पसीना आ गया था। रात होने के पहले उसे ठिकान पकड़ लेना ज़रूरी था। बीमारी की मारी देह, सर पर किरणो के शरारे, खेतो की ऊबड़-खाबड़ पगडडी, भूख और प्यास की तपिश, जलती हुई सुपलियाँ, उस पर देहातियो की कुतूहली जहरीली चितवन—इन तमाम उत्पातो को सहती हुई जब वह मंजिल पर पहुँची, तब रास्ता तय करके पहुँच जाने की मानसिक प्रसन्नता के साथ-साथ नये अपरिचित स्थान मे आने का एक अनिश्चित आतङ्क भी उस पर सवार हुआ। घर पूछती हुई पहुँच तो गई, पर अब भीतर कदम उठते नहीं थे। कमर टूट रही थी, मन टूट रहा था। हिम्मत ने ऐन वक्त पर जवाब दे दिया। वह दीवार के साये मे ठमककर खड़ी हो गई। ड्योढ़ी की चौखट पर उसके पैरों के दम उखड़ गये।

सन्ध्या का झुटपुटा है। गिरिधारीलालजी ग्रामीण साहित्य-परिषद् के वार्षिक अधिवेशन की योजना मे पौ फटते फटते झील-वाले मठ पर चले गये थे। श्रीमतीजी मुहल्ले की दो चार हम-जोलियो को लेकर, बाजे-गाजे के साथ, लड्डू खुरमे फूल-बताशे से भरे दौरे नाइन-बारिनों के सर पर रखे, नेता भगत की देवी के चौरे पर मन्नतें-उतारने भू-परी गई थीं।

अकेला श्रीधर घर पर है। जब कभी चचा बाहर जाते, घर का भार उसी के सर पर रहता। गुरुजी ने उसको इस योग्य बना भी रखा था और भावी उत्तराधिकारी होने के कारण उसका रोब दाब यथेष्ट था। वह वैदिक पूजन पद्धति से परिचित था। रुद्राभिषेक के वक्त जब वह ललित स्वर से स्तोत्रों का सस्वर पाठ करत तब प्रत्येक दर्शक के अन्तर मे भक्ति का सोता उमड़ उठता—सुर की मूर्च्छना वायु-प्रवाह के ताल पर थिरक उठती थी।

बेला चौखट पर पड़ी-पड़ी अपने मन की तरङ्गों पर झूल रही थी।

कि हठात् किसी के कठ के उत्तरोत्तर प्रगतिशील संगीत-हिल्लोल ने उसके विक्षुब्ध कल्पना-लोक को प्लावित करते हुए उसे चारो ओर से घेर लिया। बेला कान देकर सुनने लगी—

'करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वलद्धनञ्जयाधरी—
कृतप्रचण्डपञ्चसायके। धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्र—
चित्रपत्रकप्रकल्पनैकशिल्पिनी त्रिलोचने मतिर्मम॥'

किसी मायालोक के नेपथ्य से यह अशरीरी ध्वनि गूँजती

चली आ रही है !—इतनी मधुर ! इतनी भावमय !

बेला इस रस की चाशनी मे घुल चली।

यह न जाने किस अरूप रूप—किस अनन्त—की मृत्युजयी वाणी है, जो आज देवता का आशीर्वाद बनकर बेला के कल्याण के लिए आकाश से उतर रही है ! कैसा बँधा हुआ स्वर—निषाद से पञ्चम और पञ्चम से निषाद ! जिसके कठ की काकली मे यह अमृत का उत्स भरा है, उसके अन्तर के अन्तस्तल मे कितनी दिव्य पावत्रता होगी ! ताल और लय का कैसा मगल मिलन ! यह गान है या सीमा के साये मे असीम का आह्वान ! कहीं सौन्दर्य तो नहीं मुखरित हो उठा है ? कहीं माधुर्य मे जान तो नहीं पड़ गई ?

बेला के मन की सञ्चित ग्लानि—उसकी सारी आशङ्का—इस स्वरमन्दाकनी की धारा मे धुल गई। उसने सोचा, यह अवश्य एक निरापद स्थान होगा—पृथ्वीतल पर देवलोक का जवाब !

बेला तत्क्षण सयत हो गई। उसने बिथुरी लटो को सहलाकर बाँध डाला और स्खलित आँचल को सर पर ला रखा। खल म शोख लड़को द्वारा मार खाई हुई भोली बच्ची की तरह उस शान्ति-दायिनी ध्वनि की उगली पकड़े उसने धड़कते दिल से गुरुजी के घर मे पैर रखा। आँगन मे आने पर उसे पता चला कि आवाज़ ऊपर से आ रही है। वह ऊपर चढ़ गई।

नवमी का चाँद आकाश पर उठ चुका है। श्रीधर चन्द्रमौलि की चरण-चौकी के सामने खड़ा होकर, हाथों मे पुष्पाञ्जलि लिये, उच्च कंठ से स्तुति कर रहा है। उसके सौम्य मुख पर एकान्त

निष्ठा की छटा है।

बेला किवाड़ के पास खड़ी होकर एक टक ब्राह्मण-कुमार को देखने लगी। सामने सिंहासन पर चन्द्रमौलीश्वर का स्फटिक लिङ्ग है। चारों ओर बिल्वपत्र और मन्दार के पुष्प भरे सजे हैं। केसर और चन्दन के छींटे फूलों के परिमल से लोहा ले रहे हैं। गन्ध-धूप की सुरभि से कमरा आमोदित है। गङ्गा यमुनी पञ्च-पात्र धप-धप चमक रहे हैं। थालों मे भोग की सामग्रियाँ—मेवे-मिसरी, पेड़े और बर्फियाँ—सजी रखी हैं। दध्यन्नत के साथ-साथ पञ्चामृत भी है। दो ब्राह्मण किशोर सरोद और मृदङ्ग लेकर उस स्तुति गान मे जान डाल रहे हैं। श्रीधर की अधखुली आँखो पर एक दिव्य ज्योति प्रस्फुटित है। इकहरा बदन, भीगती हुई मसें, चौडा सीना, ऊँची उठान, प्रशस्त ललाट, जुटी हुई भवे, लम्बी आँखें, सुडौल गरदन, गन्दुमी रग—सभी उसके सुगठित सुन्दर शरीर के साक्षी है। चाँद की किरणे उसके चरणप्रान्त पर मूच्छित पड़ी हैं।

वह दूध की बौछार बेला के शरीर पर जा पड़ी और उस चाँदनी मे उसके चेहरे की चांदनी और भी चौगुनी हो गई।

जब श्रीधर की निगाहें उसकी ओर फिरीं, तब उसके स्तव-गान की स्वर लहरी अकस्मात् उथल-पुथल हो गई और उसने स्तुति की गति को तेज़ करके शीघ्र समाप्त कर डाला।

बेला रास्ते के गर्द-गुबार से भरी दुबली-पतली कमजोर तो जरूर थी, पर उसके मुखमण्डल पर एक करुण सुकोमल दीप्ति

थी—सती की पवित्र लज्जा-सी एक अनूठी आभा।

श्रीधर ने विस्मयाभिभूत होकर बेला की सलज्ज शान्त सौम्य मूर्त्ति को देखा, फिर फौरन् चितवन को फेर भगवान् के सिंहासन के सामने भूमि पर साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

बेला बुत की तरह चुप खड़ी रही।

जब चरणामृत और प्रसाद लेकर श्रीधर इस ओर झुका, तब न जाने किस आशङ्का से वह बिचारी फिर काँप उठी। उसने प्रसाद के दोने को आँचल पसारकर ले लिया, फिर चुल्लू मे चरणामृत की बूँदे लीं और सर से छुलाकर पी गई। श्रीधर के सान्निध्य से वह इतनी चञ्चल हो उठी कि प्रसाद के कुछ दाने ज़मीन पर गिर गये। वह और भी घबरा-सी गई और झुककर उन्हे चुनन लगी।

"मै जान सकता हूँ, तुम कौन हो—यहाँ तुम कैसे आई ?"—श्रीधर ने सर झुकाकर बड़ी नम्रता से पूछा।

'क्या कहूँ, कौन हूँ !" उसने रुँधे कठ से कहा—"मै एक सताई हुई अबला हूँ। गुरु महाराज के चरणो मे शरण ढूढ़ती हूँ।"

"गुरु महाराज तो इस समय यहाँ मौजूद नहीं हैं। वे अभी-तक वापस नहीं आये; अब आते ही होगे। तुम्हारा घर-द्वार—तुम्हारा नाम ?"

"महाराज ! मेरा इस संसार मे अब कोई भी अपना न रहा। यहाँ तक कि यह देह भी अब अपनी न रही। इसे भी जल्लादों ने मेरा गला टीपकर मुझसे छीन लिया। पानी उतर जाने से यह

किसी काम की न रही। मगर जाने किस अभिशाप से मैं इस चाम के चोले को ढोती फिर रही हूँ। मेरा नाम 'बेला' है।"

"बेला! तुम्हारी देह न सही, तुम्हारा मन तो तुम्हारा अपना है? जब मन तुम्हारे अधीन है, तो सब कुछ है। देह तो आती-जाती रहती है, रग बदलती है, मैली होती है, साफ़ होती है। यह तो महज एक परिवर्त्तनशील आवरण-मात्र है। अगर किसी ने अपनी लालसा के कटार से तुम्हारे जिस्म को पाश-पाश कर डाला, तो इससे तुम्हारा सत्यानाश नहीं हुआ। यह देह कोई अक्षय्य सम्पत्ति नहीं जो परलोक तक साथ दे। यह तो महज़ एक नाम और रूप देने के लिये चन्द दिनों को तुम्हारी सगिनी है। इसके नष्ट होने से तुम्हारा परलोक नष्ट नहीं होता। मोती तो मन है, यह तो केवल सीप है। इसके लिये दुःख करना तुम्हारी भूल है।"

'मगर महाराज!"—बेला ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—'इसी शरीर की उलझन के कारण तो मैं सबकी आँखों में खोटी हो गई हूँ। मन तो मेरा तब भी अलग था। शैतानों ने तो शरीर को लूटकर मेरा पत-पानी हरण कर लिया। आप ही कहें, बाकी क्या छोड़ा? आज दीन और दुनिया—दोनों मुझसे दूर हो गये।"

बेला का सर झुक गया। उसकी दोनों आँखों से आँसू की दो बड़ी-बड़ी बूंदें उछलकर बरौनियों में उलझ गईं।

"तुम भ्रम में हो, बेला! दुनिया दूर हो गई तो क्या हुआ-

दीन तो तुम्हारे साथ है ? शैतानों की कामना की कमन्द तुम्हारे ईमान के बाम को न छू सकी; जिसे तुम पत समझती हो वह तो दुनिया की फानी छत है। दुनिया आखिर तो दुनिया ही है। यह किसकी है और किसकी रहेगी ? पाँच समझदार तुम्हारे दर्द को समझेंगे और पञ्चानवे उसकी खिल्ली उड़ाएँगे। उनको न समय है, न गरज कि वे तुम्हारे दर्द-सर को अपने सर लें। समाज तो प्रत्येक की सुख-सुविधा को देखता नहीं। अर्वाचीन या प्राचीन, ससार मे कोई ऐसा समाज नहीं, जिसके दामन मे कहीं शिकार न हो—जो सबके लिए बराबर एक सा हो। हमारा समाज जिस आदर्श की भित्ति पर रचा गया, वह आदर्श अब इस युग मे सम्भव नहीं रहा। इसीलिए इसके साये मे आज इतनी बेरहमी नजर आती है। यह बात नहीं है कि समझनेवाले इसे समझते नहीं। वे समझते है ज़रूर, लेकिन समाज के निदारुण नियमो से मोर्चा लेते समय—उनकी कौन चलावे—अभी बड़े-बड़े लीडरों की धोती ढीली हो जाती है। भारत की गर्दन मे जितनी बेड़ियाँ धर्म का कुल्फ़ देकर जकड़ी पड़ी है, उनमे परम्परा की बेड़ी कुछ ऐसी कठोर है कि पसलियाँ तक पिस चलीं, पर आज भी वह नहीं टूटती—टूटना तो अलग रहा, टेढी भी नहीं हुई। सच कहता हूँ, बेला ! समाज की हृदयहीनता देखकर मेरी आँखें तर हो जाती हैं, पर मैं कर क्या सकता हूँ ? मेरे भाव उमड़कर होठों पर आते हैं, मगर शब्द बनकर फूट नहीं पड़ते। मैं भी अपनी प्रतिकूल परिस्थिति से घिरा पड़ा हूँ।"

"महाराज ! मेरे लिए तो घर मे--समाज मे--कहीं जौ-भर भी जगह न रही। मैं अब कहाँ जाऊँ ? मेरा रास्ता क्या है ? मेरा क़सूर हो, तो मैं खुशी से सर रोपकर सजा लूँगी। लेकिन, अगर मै पुरुषो के अत्याचार का शिकार हूँ, तो आप मुझे उद्धार का मन्त्र दे। जिस दुरात्मा ने मेरे दामन को नापाक किया, वह तो बेदाग बेपरवाह विचर रहा है और मैं इस कलङ्कित शरार के भार से पिसी जा रही हूँ !"

"बेला, तुम्हारे अन्तर में तो पारिजात का परिमल है। तुम्हारे ललाट पर जो नारीत्व की दीप्ति है, वह सीमन्तिनी के सुहाग सिन्दूर की ज्योति से कम नहीं। मै ता तुम्हें देवता के निर्माल्य की तरह पवित्र मानता हूँ। मेरी निगाह में तो कलङ्क की रसाई तुम्हारे शरीर तक हो नहीं सकती, दुनिया की निगाह मे तुम जो कुछ रहो, मुझे उससे बहस नहीं। मै तो समझता हूँ कि तुम्हारे मन की ग्लानि भगवद्भक्ति के छींटो से जाती रहेगी, तुम इस प्रेमी के पथ पर आगे बढ़ो इस अधिकार से तुम्हें कोई वञ्चित नहीं कर सकता · लेकिन, नहीं, तुम ठहरो। गुरु महराज को आने दो। वे जो कहें, वही तुम्हारा पथ होगा। मैं तो उनके अधीन हूँ। उनका हृदय नवनीत की भाँति कोमल है, तुम्हारे दर्द की आँच से वह जरूर पिघल पड़ेगा। उनके आने का वक्त हो गया, वे आते ही होंगे।"

बेला की दृष्टि श्रीधर के चरणो पर झुकी रही। उसका हृदय मान गया कि श्रीधर के मुख के वचनो पर सहानुभूति की सच्ची

मुहर है। इस गले की काकली मे मिसरी की कटारी नहीं हो सकती। उसके मन मे ढाढ़स बँधा। श्रीधर ने उसे पवित्र कहकर उसके शरीर की अस्वति दूर कर दी। आशा की एक हल्की झलक उसके मन के अँधेरे मे झाँक गई। छाती की जलती भट्टी ठढी होने लगी।

उसको अपने ऊपर बड़ा आक्रोश हुआ कि वह एक दिन सभी पुरुषो को एक ही दर पर तौलती थी। संसार मे भले बुरे दोनों है, समुन्दर मे मोती भी है और पत्थर भी। उसकी बदकिस्मती से अब तक उसे मोती नहीं मिले।

आज श्रीधर की सान्त्वना-भरी सहानुभूति उसके हृदय की लज्जा के क्षोभ को पी गई और वह सयत चित्त से बाहर छत पर आकर प्रसाद के दोने से मेवे और बरफा लेकर बड़े चाव से खाने लगी।

आध घंटे मे गिरिधारीलालजी वापस आ गये। आते ही कुछ देर तक वे अपनी नित्यक्रिया मे बझे रहे। जब भगवान की शयनारती के अनन्तर उनको फुरसत हुई तब बेला सामने आकर हाथ जोड़े खड़ी हुई। उसके मुख का ऊपरी हिस्सा घूँघट के पट से घिरा था। कमरे की रोशनी केवल उसके होठ और ठुड्डी को छू सकी थी।

गुरु महाराज तख्ते पर कम्बल बिछाकर चुप बैठे हुए हैं। बायीं ओर शमादान जल रहा है। सामने कठोपनिषद् की पुस्तक खुली है। वे यम और नचिकेता का संवाद पढ़कर उसके निहित

तत्त्वो पर गौर कर रहे हैं। द्वितीया बल्ली से पराविद्या की व्याख्या चली है। इच्छा, ममता और आसक्ति पर विजय पाने के शम-दमादि षट् साधनो के चिन्तन मे उनकी भवें कुञ्चित होने लगी हैं।

बेला ने आकर उनके चिन्ता-सूत्र को विच्छिन्न कर दिया।

कमरे मे कोई दूसरा नहीं था। बेला ने अपने दिल की लगी को आँसुओ में भिगोकर गुरुवर को भेट किया। वह रो-रोकर बीती बाते बता गई। उसने अपने हृदय की संकुचित पपड़ियो को खोलकर उनके सामने रख दिया।

गिरिधारीलाल सहृदय व्यक्ति थे। दुखिया की आहो से उनका दिल पसीज उठता था। इतना वे अवश्य समझ गये कि यह किसी पैसे माँगनेवाली की बनावटी दुख-कथा नहीं है।

बेला की सयत चेष्टा की सादी ज़मीन पर किसी मायिकता की बेल नही उगी थी। उसके शरीर के किसी अश मे ऐसी कोई भी बात न थी, जिसमे किसी शिल्पी की कला की झलक हो। उसकी करुण सलज्ज चेष्टा, उसका व्यर्थ विकच यौवन, उसका अनादृत अपरूप लावण्य, उसका व्यथित पवित्र अन्तःकरण, उसका निदारुण अतीत, उसका कठोर भविष्य किस सहृदय के दिल पर असर नहीं लाते?

"बेला! तुम्हारी डोंगी तूफान के चपेटो से जर्जर होकर जिस बन्दर को ढूढ़ती है, वह बन्दर तो ईश्वर की शरण है। और किसी ओर तो मुझे किनारा नज़र नहीं आता। तुम्हारे मन की

कील अगर आँधी के उत्पात से ढीली नहीं पड़ी है, तो फिर प्रेम की पतवार तुम्हारी जीवन तरी को भव पार ले जाने के लिए अवश्य मददगार होगी।"—गिरिधारीलाल द्रवित होकर बोले।

"महाराज! मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि जो आँधी आई, वह केवल इस शरीर को उथल-पुथल करके निकल गई। मेरे मन के पुरजे तो कभी ढीले नहीं पड़े।"

"तुम्हारा अन्तर का किला अगर टूटा नहीं, तो महज़ बाहरी दीवार पर धमक आने से तो तुम्हारी पराजय नहीं हुई। विवेक का व्यूह—मन की मोर्चाबन्दी— जब कायम है तब सच मानो, दुश्मनों ने हमला करके अपना ही मुँह काला किया।"

"मगर, महाराज! समाज में उस कलूटे का मुँह तो उजला ही है। काले मुहवाले का बोलबाला है और मैं ही सब के सामने कलमुँही बनी हूँ।"

"कौन कहता है, तुम कलमुँही हो? तुम्हारे मुख पर तो पवित्रता का नूर बरस रहा है। इन्द्र ने अहल्या का तो कुछ बिगाड़ नहीं पाया। बिगाड़ा अपना, रोओं रोओं फूट पड़ा। बेला! अत्याचार के कमान से निकला हुआ तीर निशाना चूक जाय तो चूक जाय मगर पीड़ित की आँख से निकला हुआ आँसू न चूकता है—न वापस आता है।"

"महाराज! यहाँ देवताओं के समाज का ज़िक्र नहीं है; मनुष्य के समाज का ज़िक्र है।"

"बेला! समाज को तो पुरुषों ने अपने स्वार्थ की भित्ति पर

खड़ा किया है, और यही वजह है कि उसके दायरे में अबला के दर्द-दिल की अनुभूति कहीं जगह नहीं पाती। मैं जानता हूँ, समाज के घर मे तुम्हारे लिए तिल-भर भी जगह न रही; पर भगवान् के घर से तो तुम्हारी जगह कभी गई नहीं। वहाँ तक तो किसी आततायी की पहुँच नहीं। जब मनुष्य को दुनिया मे खड़े होने के लिए एक तिल भी जगह नहीं मिलती, तभी उसको दुनिया की बाहरवाली मंजिल की तलाश होती है, नहीं तो नहीं। ईश्वर की शरण की तलाश उलटी साँस चलते वक्त की सजीवनी की तलाश है। फिर, कहीं यह लगन लग गई, तभी वह समझता है कि समुद्र के तूफानो की तडीबाज़ी उसकी जीवन-तरी को भ्रान्ति के भँवर मे न फेंककर शान्ति के बन्दर मे बहा लाई है। बेला! कौन कहे, तुम्हारे दुःखो का अन्त कहाँ होगा? सम्भव है, यह विपत्ति तुम्हारे दर्द-दिल के लिए जर्राह का नश्तर हो। आपदो का अंजाम हमेशा बुरा ही नहीं होता। कभी-कभी ललाट पर कलङ्क के छोटे चन्दन के तिलक बन जाते हैं। मैं दिल से आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारे दुखो का दंशन तुम्हारे कल्याण का साधन हो! तुम्हारे हलाहल के प्याले में अमृत की बूँद हो! तुम दुनिया से तंग आकर दुनिया से खिंच जाओ! समाज की अवहेलना तुम्हारे अन्तर की मंगलमयी प्रेरणा हो! देखो, बेला! लोक और परलोक दोनों का लुत्फ़ बराबर बना रहे, यह शायद ही किसी को नसीब हो। जबतक इस चमन के फूल काँटे नहीं बनते, तबतक हरिचन्दन के पल्लवो की छाया की उम्मीद नहीं

बँधती। तुम्हें यहाँ पर दिल के दागो की सैर मजूर हो, तो तुम्हें आगे चलकर मन्दार का मञ्जर मिलेगा। अगर यहाँ गुलशन की सैर ढूँढ़ती रह गई, ता फिर नन्दन-चमन की निराली सैर से हाथ धोना पड़ेगा। बेला! अगर समाज ने तुम्हारे लिए भद्र जीवन के तमाम रास्ते बन्द कर डाले है, तो कुछ परवा नहीं, तुम्हारा परलोक का पुनीत पथ तो आज भी खुला है। हाँ, उस पथ का दिग्दर्शन कराना मेरा काम है। आज से विश्वपति की चरणरज तुम्हारे शून्य सीमन्त पर सिन्दूर हो। तुम सुनसान जीवन के निर्जन निशीथ मे उसी पुनीत अभिसार के लिए तैयार हो जाओ, तुम्हारे मन-मन्दिर की दीवारें प्रेम की बाँसुरी की तान से ध्वनित हो उठेगी। कहो, बेला! तुम्हारे आपदो का लग्न-मडप. .."

गुरु महाराज सहसा रुक गये। उनको यह ठनका कि वे बेवजह जोश मे आकर कुछ ज्यादा अलङ्कार छाँट गये। बेला तो कुछ शिष्यो की मडली नहीं है, और उनकी उपदेश की शैली मञ्च पर की स्पीच हुई जाती है। पर वे करते क्या? उनकी तो यही बँधी शैली है! अपनी आदत से मजबूर है! यही वजह थी कि उनकी जबान से फूलो की झड़ी बँधती थी।

डूबती बेला को सहारा मिल गया। उसने गुरुवर के एक-एक वचन को कलेजे से लगाया और सर पर रखा।

"महाराज! आपके वचन मेरे सर पर हैं। मुझे तो संसार में चारों ओर भय ही भय नज़र आता है। मैं हर वक्त डरी

रहती हूँ। मुझे छन-भर भी न स्वस्ति मिलती है न शान्ति। मुझे कहीं भी निर्भय . .. "

"बेला, 'विष्णो पदं निर्भयम्'! तुम्हें जरा भी डरने की ज़रूरत नहीं। समाज के भवों के तरेर को दिल मे एक पल के लिये भी जगह मत दो। जिस इकबाल के बल पर अङ्गद ने विरोध की भरी सभा मे पैर रोप दिया था और कोई भी महाबली उस पद को तिल भर न हिला सका, उसी प्रताप के सहारे तुम समाज के सीने पर अपना ध्येय निश्चित करके डट जाओ। किसी की हिम्मत नहीं कि वह भगवत् के शरणागत का एक बाल भी बाँका कर सके। सबकी टेक वही पूरी करता है। तुम्हारी टेक भी वही पूरी करेगा। तुम अपने अन्तर के सूने मन्दिर मे फिर से पुष्पशय्या रचो। अपना तमाम अरमान-अभिमान—अपना सुहाग अनुराग—उसी के चरणो मे अर्पित करो। तुम्हारी आँखो के आँसू कभी व्यर्थ न होंगे। तुम एक-एक कण को गूँथकर उसके गले मे डाल दो। नारी के जीवन का जीवन प्रेम है। यही प्रकृति का शाश्वत दान है। वही प्रेम-पीयूष जगत् के क्षणभगुर नातेरिश्ते की मोहरी मे बहकर व्यर्थ हो जाता है। तुम्हारी खुशक़िस्मती है कि तुम्हारे साथ सांसारिक रिश्तों की शृङ्खला एक भी नहीं, तुम स्वतंत्र हो। तुम इस जीवन का निखिल संचय उसके चरणों में लुटाकर निःस्व हो जाओ। याद रखो, यही दान तुम्हारे जीवन का श्रेष्ठ संचय होगा। बेला! इस विश्व में कोई भी अन्त तक साथ नहीं देता—यहाँ तक कि यह शरीर भी चिता

की राख होकर राख में मिल जाता है। वही एक तुम्हारी परकाल की टेक है। वही तो मनुष्य के जीवन-पथ का चिरन्तन पाथेय है।"

"गुरुवर! तो क्या मै इन आपदो को अपना सौभाग्य समझूँ?"

'जरूर! इन आपदो ने तुम्हे चारो ओर से घेरकर तुमको अशरणशरण के चरणो पर गिरने के लिए वाध्य कर डाला। दूसरी कोई गति नही रखी—दूसरी कोई रति नहीं रखी। इसीलिए मै समझता हूँ, ये आपद के बादल तुम्हार कल्याण का सन्देश लेकर तुम्हारे जीवन के आकाश पर छाये हुए हैं। बेला, अगर 'ध्रुव' अत्याचार के धक्के खाकर निराधार न हो जाते, तो कभी उनको नारायण की तलाश होती? अगर 'प्रह्लाद' की मुश्क बंधवाकर जुल्म के कोड़ों से पीठ न फाड़ा जाता, तो कब सम्भव था कि प्रभु स्वय प्रकट होकर उन्हे गले लगाते?"

"मगर, महाराज! मेरी भी यह किस्मत होगी? मेरे दिल मे वैसी भाव-भक्ति होगी? सुनती हूँ, कलियुग मे किसी को "

"कौन कहता है"—गुरु महाराज ने बात काटकर कहा—"कि कलि मे धर्म नहीं पनपता—भक्ति नहीं फलती? भाव तो हो, लगन तो हो! सूर और तुलसी कब हुए थे? तुम्हारी रोजमर्रे की स्वार्थ-भरी मिन्नते उस बाम तक भले ही न पहुँच सकें; पर तुम्हारी श्रद्धा की दृढ़ता तुम्हारे राम के धाम को भी हिलाकर तहोबाला कर देगी।"

बेला की आँखो मे श्रद्धा के आँसू छलक पड़े और वह गुरुवर के सामने कटे पेड़ की तरह जमीन पर ढेर हो गई। उसका ललाट गच पर जाकर ठक से बजा। जूड़े के पास से छूटकर उसका केश-वैभव सर के इर्दगिर्द छितरा गया। ऑचल सरक जाने से उसकी गरदन की एक महीन काञ्चन-रेखा बिथुरे बाल का बादल फाड़कर चमक उठी।

बेला धडफड उठ गई। उसके मुख पर का आँचल आप-ही-आप ऊपर सरक गया, भरभराये बाल कंधो पर बिखर गये। उसने किसी तरह उन्हें पीठ पर फेका और बाय हाथ से आँचल को मुख पर सँभाल लिया।

गिरिधारीलाल की आँखो मे बिजली कौध गई। उसी मुहूर्त्त मे लैम्प की रोशनी मे प्रज्वलित बेला का अपरूप रग-रूप आँखो पर उतर गया। आम की फाँक-सी आँख, ऊँची नाक, उन्नत ललाट, अधखिले फूल-से होठ, और कच्चे सोने की तरह दमकता हुआ रंग!

गिरिधारीलाल उस कुन्तल-वितान को देखकर, उस वितान के भीतर रूप की मुस्कान को देखकर, सन्न हो गये! उनकी भक्ति की प्रवाह-धारा काली बिथुरी लटो के जाल मे पड़कर गुम हो गई। गुरुवर आदमी थे--न देवता, न शैतान। उनको चोट-सी लगी, दिल मे एक लहर-सी उठी—भगवन्! ऐसी भाग्य की कंगालिनी को इस सौन्दर्य की सम्पद देकर तुमने कौन-सा उद्देश्य सिद्ध किया?

रात का सन्नाटा है। बाहर आँगन में फूले हुए अगस्त की लपट कमरे मे बिखर रही है। ताक पर रखी हुई घड़ी की टिक-टिक टिटकारी भर रही है। सामने खुली हुई उपनिषत् के काले अक्षर टेढ़े-मेढ़े चमक रहे हैं।

गिरिधारीलाल के मानस-पट पर लोक और परलोक की आँखमिचौनी चल रही है। एक ओर उपनिषत् का ज्ञान है, दूसरी आर विधवा के प्राण। इधर अमृत तत्त्व का अन्वेषण, उधर दुखिया का क्रन्दन। भगवन्! मैं किधर जाऊँ—इधर या उधर? टूटे हुए जी को जोड़ना, किसी के जीवन की सूखती फ़सल पर पानी देना, किसी आत्त के ज़ख्मो पर मरहम लगाना, किसी के लड़खड़ाते पैरो को सहारा देना मेरा फ़र्ज़ है—या दुनिया के सुख दुख से अलग होकर एकान्त आत्मचिन्तन? मेरा कौन पथ है? घटो पद्मासन पर बैठकर दम साधना—कुडलिनी को जगाना, या पीड़ित दलित के जीवन के कोढ़ पर पट्टी बाँधना? सच कहो, मेरा कहाँ श्रेय है? प्रतिदिन शतसहस्र हरिनाम का जप, गङ्गा-स्नान, व्रत, उपवास,तप,शम,दम,ध्यान, ज्ञान, मन्दिरों और तीर्थो का भ्रमण—किवा समाज की निदारुण हृदयहीनता के कारण निराश-निरुपाय, विवश पेट के लिए सर्वस्व बेचने पर बाध्य हुई पतिता के उद्धार का प्रयत्न? यह मसला कैसे हल होगा? कुछ समझ मे नहीं आता!

गिरिधारीलाल कमरे में इधर से उधर टहलते जाते थे और सोचते जाते थे। सहसा उनके कानों पर किसी के गाने की-सी

आवाज़ पड़ी। नीचे आँगन में कोई गद्‌गद् कंठ से पढ़ रहा है—

"अव्यक्त रेखामिव चन्द्रलेखां, पाशुप्रदिग्धामिव हेमरेखा;
क्षतप्ररूढामिव वाणरेखा, वायुप्रभग्नामिव मेघरेखाम्।"

गिरिधारीलाल ज़रा चौंक से पड़े और फ़ौरन् पुकार उठे—"श्रीधर! क्या पढ़ रहे हो?"

"चचाजी! आज कार्त्तिक शुक्लपक्ष की नवमी है। वाल्मीकि-सुन्दरकांड का पाठ कर रहा हूँ।"

वे चुप हो गये। उन्हें भी यह श्लोक आज विशेष प्रिय मालूम हुआ और उन्होंने मन-ही-मन 'वाल्मीकि' की प्रतिभा की तारीफ़ की।

ख़ैर, वे बेला की ओर फिर मुड़े—"बेला! तुम तो जरूर कुछ पढी लिखी होगी।"—गिरिधारीलाल ने काम की बातें शुरू कीं—"देखो, इस कमरे मे सस्कृत और हिन्दी की किताबें भरी पड़ी हैं, तुम रामायण, महाभारत, सुख-सागर, गीता वगैरह ले जाकर पढ़ सकती हो।"

"महाराज! मैंने तुलसीदास की रामायण पढ़ी है, और भी दो-चार धर्म की किताबें देखी हैं। जब मै विधवा हो गई, तब कभी-कभी मेरे बूढ़े श्वसुर कुछ पढ़ा दिया करते थे। मुझे घर के धंधों से समय कहाँ था! मगर जब कभी फ़ुरसत रहती थी, तब यही किताबें मेरी सखी-सहेली थीं। मुझे अफ़सोस यही है कि रामायण भी सिलसिलेवार पढ़ न सकी।"

"ख़ैर, कुछ चिन्ता नहीं; मैं तुम्हें सब कुछ पढ़ा दूँगा। मुझे

भी तो फ़ुरसत कम है। फिर भी, कुछ वक्त दूँगा। तुम उसी सामने वाली कोठरी मे जाकर रहो। घर के धंधो से तो मै अलग ही रहता हूँ। आखिर तुम्हें मालकिन से भेंट हुई या नहीं? अभी तो तुम मिली नहीं होगी? अब आती ही होगी। उनको जरा—समझती हो न?—मिलाकर चलना। संसार मे वही मनुष्य निभता है, जो दूसरो के लिये दया रखता है और अपने लिए दंड। उनका मिज़ाज जरा कुछ वैसा है। बीमार रहते-रहते बेज़ार रहती है। मन भी चिड़चिडा सा हो गया है। उनकी दो बात तुम्हे भी सह लेना उचित होगा। मै तो समझता हूँ, तुम्हें वे घर के झंझटो मे नहीं खींचेगी, मगर जब आखिर घर ही में रहना है, तब उनसे कहाँ तक अलग रहोगी?"

गिरिधारीलाल चुप हो गये। फिर एक क्षण कुछ सोचकर बोले—"मै तुम्हें भजन-पूजन की सारी पद्धति समझा दूँगा। अभी तो तुम आज आई हो। धीरे-धीरे सब समझ जाओगी। कपड़े-लत्ते के लिए तुम्हें किसी के सामने हाथ पसारना नहीं होगा। मैं सब ठीक करा दूँगा। तुम भात रोटी, जो जी चाहे, खुद बना लिया करो।"

"महाराज! मैं तो एक जून खाती हूँ। अकेला चोला है, कोई झंझट नहीं। मुझे आप अपने चरणो मे शरण देते हैं, यही मुझे कुबेर की संपद मिल गई। मैं गृहस्थ की लड़की हूँ, कूटना-पीसना सब जानती हूँ। मुझे घर का जो काम मिले मैं दसों नख जोड़े तैयार हूँ।"

बेला धीरे धीरे कमरे के बाहर चली गई। गुरु महाराज ने उपनिषत् की पुस्तक को बन्द किया। ताक़ पर से गीता को उठाया और खोलकर लैम्प के आगे रखा। नीचे ऑगन का एक हिस्सा आँखो के सामने साफ़ नज़र आता था। वहीं बेला को खड़ा पाया। आँखे गीता पर तो पड़ीं नहीं, पड़ीं जाकर बेला पर! वह शायद ठमककर मकान का मुआयना कर रही थी। पूरबी बयार उसके ऑचल से उलझ रही थी और चाँद उसके चेहरे पर किरने उझल रहा था।

—कि आकाश से एक तारा टूटा और चमककर न जाने कहाँ विलीन हो गया। बेला चौक पड़ी और ऑखो से ओझल हो गई।

गिरिधारीलाल चुप सोचने लगे—"आखिर दूसरे को उपदेश देना कितना आसान है! मैंने जबान की फ़ैयाज़ी मे तो कुछ कमी नहीं रखी। बेला को परलोक के पथ के लिए जिस पाथेय को बटोरने का मैंने उपदेश दिया है, वह कठिन साधना उस भोरी अबला से कहाँ तक हो सकेगी? क्या यह सचमुच उसकी ख़ुशकिस्मती है कि उसके जीवन की बिसात पर उसके मनोरथों की एक भी गोटी लाल न हो सकी? क्या वह इस सिन में सच्चे मन से सन्यास का वरण कर सकेगी? मैं तो बरसो ब्रह्मसूत्र और उपनिषत् का अध्ययन करता रहा; फिर भी क्या इस जीवन की प्यास को पी सका? दिल का टाट उलटना खेल है? इस कमसिनी में बेला के मन की चाट मिट सकेगी? ..तो फिर? इसी

भगवद्भक्ति का दम भरते मेरे बाल सफेद हो चले और अभी तक मुझ पर रंग न चढ़ा, और यह बिचारी तो बिलकुल नादान है !...तो क्या मैंने कुछ इसे ग़लत रास्ता दिखाया है ? नहीं-नहीं, आख़िर और क्या कहता ? उसके लिए तो कोई दूसरी गति रही नही ! समाज के कुएँ मे भाँग पड़ी हो या जो हो, वहाँ तो उसका अब गुजर नहीं है ! उसकी लुटी हुई सम्पत्ति तो उसके पास लौट नहीं सकती। मैं उसे यहाँ से निकाल दूँ, तो फिर बाज़ार की आबादी बढ़ेगी, किसी घर की नही। पर, यह तो कल्पना के अतीत बात है। चन्द्रमौलि के घर मे किसी को अर्द्ध-चन्द्र देना कभी उचित नहीं। मगर गाँव घर मे ऐसी कितनी दुखिया पड़ी हैं, क्या वजह है कि मै बेला के दर्द मे इतनी दिल-चस्पी ले रहा हूँ ? क्या यह उसके रंग-रूप—उसके यौवन के निखार—का असर है, या एक सताई हुई निरपराध विधवा के आँसू की लहर है ? आख़िर यह रूप की डाली लेकर.. "

गिरिधारीलाल मन को एक झटके से दायरे पर लाये, और रोशनी के आगे खुली हुई गीता पर निगाह डाली। आँखो के सामने पहले पड़ा—

"यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चित।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मन ॥"

———

चतुर्थ परिच्छेद

कुछ दिनों तक तो बेला के दिन बड़े मजे से कटे। पाँचों उँगलियाँ घी में रहीं। गुरुवर की कृपादृष्टि भरपूर थी। उनकी कन्या 'कमला' तो घी-खिचड़ी-सी हो गई थी। बेला उसकी छोटी कन्या को स्लेट पर 'क ख ग' लिखवाती, राम की कथा सुनाती, रामायण से चुनी-चुनी चौपाइयाँ याद कराती, मुन्नी की गुड़िया की नाक बनाती, आँखें काढ़ती, पोत के गहने पिन्हाती, बच्चे जनाती और सोहर गाकर छठी की बधाई सुनाती। मुन्नी जब रोती-पीटती, तब बेला की थपकियों से गोद में जाकर सो जाती।

जब-जब कमला का दुल्हा दो-चार दिन के लिए ससुराल आता और मुन्नी बिचारी को माता की गोद में सोना मुहाल हो जाता तब वह नानी के पास न जाकर बेला की खाट पर सोती। बेला रात-भर उसको छाती से चिपकाये रखती; उसका क्षुधित हृदय एक गंभीर रस का स्वाद लेता। उसके व्यर्थ जीवन की तमाम ममता अन्तस्तल के न जाने किस कोने से उठकर उसे

दुनिया के दायरे मे खींच लाती। रात-भर उसे नीद तो आती नहीं, एक गंभीर तृप्ति-सी मिलती। वह निबिड रस की अनुभूति मे डूबी रहती थी।

फिर वह सोचती, मै यह किस बन्धन मे जा रही हूँ? दो दिन बाद जब मुन्नी अपने पिता के घर चली जायगी, तब मै दूसरी मुन्नी कहाँ से पैदा करूगी? जो अपना था, वह तो अपना न रहा, फिर इस सपने को लेकर मेरी कौन-सी साध मिटेगी?

वह कलपती, तड़पती और फिर मुन्नी को छाती मे समेट कर एक निविड भाव मे विभोर हो जाती थी। उसे खिलाती, पिलाती, नहलाती, चोटी गूँथकर कपडे पिन्हाती और कधे पर बिठाकर आगन मे दौड लगाती थी।

मुन्नी की नानी को बेला की इतनी प्यार-भरी पशेमानी फूटी आँखो भी न सुहाती, और कभी-कभी तो अचानक ज़बान से ऐसा उग्र ज़हर उगल देती कि बिचारी बेला दिल मसोसकर बैठ जाती थी।

तीती बात कुछ तीती चटनी नहीं है। वह तो ऐसी कड़वी होती है कि कलेजा तक झल्ला उठता है। जब बेदाँतवाली बूढ़ी ज़बान से काटती है, तब दाँत गड़ाकर काटती है।

बला की पीठ छिल भी जाती, पर यह लत नहीं छूटती। ख़ैरियत इतनी ही थी कि कमला उस घर मे मौजूद थी, और 'जाने दो माँ! बड़ी दुखिया है'--कहकर कटे पर मरहम लगा देती थी।

घर के किसी काम में बेला की पेशानी पर बल नहीं पड़ता

था। वह कूटती-पीसती, छाँटती-फटकती, घर मे झाड़ू देती, बरतन माँजती, धोतियाँ कचारती और आँगन के कुएँ से नहाने-धोने के लिए दर्जनो घड़े पानी खींचती। पानी तो वह भरती, मगर मिश्रानी का घड़ा छूती नहीं! घटो वह कटोरे और थाली, परात और पतीली, डोलची और कठेली, लूड़े से रगड़ रगड़कर साफ करती, लेकिन मजाल नहीं कि चौके के भीतर उनकी छाया मे भी जा सके! किस हद तक वह जा सकती है, इतनी खबर उसका रोआँ-रोआँ भी रखता था।

कमला तो इन निषेधो का नहीं मानती थी, लेकिन रमा देवी के सामने किसी की दाल गलती नहीं थी!

गिरिधारीलाल के मन के भाव जो हो, पर पत्नी की अमलदारी मे चुनाचुनी करने का न उनका मिज़ाज था, न कलेजा। मुमकिन है, वेदान्त के अनुशीलन से उनको विवेक-दृष्टि का पारसर प्रशस्त हो गया हो, पर गुरुपद की मर्यादा की रक्षा तो विधि-निषेधो की प्रतिष्ठा पर निर्भर है! मन के भीतर ही-भीतर वे लाख उदार हो, पर बाहर से वे कट्टर परहेज़गार थे। हाथी के दात खाने के और होते है, दिखाने के और!

जब दोपहर मे घर के धधा से फ़ुरसत पाकर गुरुवर के कमरे मे वह रामायण लेकर जाती और वहाँ उनके झोला-झक्कड़, पोथी पतरे, कपड़े-लत्ते मे स्वच्छन्द विचरती, तब कौन कह सकता था कि घर में रहकर वह घर से अलग किसी अछूत की शक्ल थी? वह मोटी मोटी पोथियो को झाड़कर अलमारियों मे

सजाती ,पूजा के बरतनो को माँजकर चम-चम झलका देती, धोती कचार कर धूप में फैलाती, धुले हुए कपड़ो मे तह लगाकर दराजों में रखती और पछवा के झोको से भरे हुए गर्दगुबार [को आहिस्ते-आहिस्ते हौले हाथों से झाड़-बुहारकर साफ कर देती थी।

उसके निपुण हाथो की सेवा जड़ से लेकर चेतन तक असर करती क्योंकि ज्यों-ज्यों कमरे के भीतर स्वच्छता आती, त्यो-त्यो गिरिधारीलाल के चेहरे पर भी प्रसन्नता झलकती थी। वे प्रतिदिन एक घटा उसे कुछ न-कुछ पढाते या कोई हृदय-ग्राहिणी कथा सुनाते। इस पढ़ाने-सुनाने में कुछ ऐसी मिठास भर देते कि मिश्रानी की कटीली जबान की खुरच से छिले हुए दिल के फफोले सूखकर ठंढे पड जाते और बेला का मन हल्का हो जाता था। इन्हीं तीती और मीठी बातो की लपेट मे सुबह से शाम होती और शाम से सुबह ।

"मैं यहाँ कबतक बैठी रोटियाँ तोडती रहूँगी ?"—बेला को रह-रहकर यह खटका होता। उसके साथ तो महज़ रोटी के एक टुकड़े का प्रश्न था, और तो कोई सवाल न था, न होगा। एक जून बाजरे की रोटी और नमक! यहाँ तो उसे दाल और साग दोनो जून नसीब थे, और इसी से वह डरती रहती थी कि ये सुख के दिन न जाने किस दुःख के अग्रदूत होंगे। दुःख सहते-सहते उसके मन के भाव कुछ ऐसे खिच गये थे कि सुख के एक क्षणिक आभास से भी वह चौंक उठती थी; उसे दूर ही से सलाम करके अलग रहने में कल्याण समझती थी। यही वजह

है कि किसी के मीठे वचन पर—किसी की मीठी चितवन पर—किसी के मीठे व्यवहार पर वह आँखें फाड़ती और कान खड़े करती थी।

खैर, यहाँ की बात कुछ और थी। यहाँ गुरुवर के स्नेह की शरण थी; धर्म की कल्याण प्रद छाया थी। श्रीधर भी इसी पुनीत वातावरण का फूलता-फलता पौधा था। उसके हृदय का समतल गङ्गा के प्रवाह की तरह प्रसन्न था। यहाँ भी यदि वह निरापद नहीं है, तो लोक क्या, परलोक मे भी वह निरापद नहीं होगी।

कमला तो कमला की मूर्त्ति थी। रह गईं मिश्रानी। वे अपने मिज़ाज से मजबूर थीं। वे प्रतिदिन किसी-न किसी बात पर मरम्मत करने से बाज न आतीं, पर बेला उनकी झिड़कियो को पीठ रोपकर सह लेती थी। आखिर घर पर उसकी सास और ननद की चुटकियाँ कुछ कम जहरीली न थीं। फिर, मिश्रानी भवे तानती थीं, तो कभी मानती भी थीं। जब कभी घर में फुलौरियाँ और पकौडियाँ पकतीं, तब दो-चार किसी हीले से बेला की थाली में भी जरूर चली आतीं। मारकीन की मोटी धोती के बदले महीन किनारदार साड़ियाँ भी मिलीं। मौकें मौके पर तिलौरी और दनौरी की भेंट भी पाती।

मिश्रानी की जानिब से उसे गालियाँ मिलतीं, तो फूल सी खिली बढ़ियाँ भी मिलतीं। करैले सी तीती झिडकियाँ भी खाती और करैले की मीठी कलौंजियाँ भी। इसीसे झिड़कियो की ठोकर पर न वह नीचे गिरी, न कलौजियों के ज़ोर पर वह ऊपर चढ़ी।

पकौड़ियो पर न उसका दिल उठता था, न गालियो से उसका दिल बैठता था। वह अपनी खिदमात से न उन्हें कभी अपना सकी, न उनके दाँत पोसकर काटने दौडने पर बेदिल होकर भाग सकी। वह अपना काम किये जाती थी और जो कुछ उसके भाग से उसके सामने आता, वही लेकर वह सब्र कर जाती थी। जिन दुखो को झेलकर वह यहाँ आई थी, उनके लिहाज़ से तो वह सुख से थी और वह खुद भी इस अम्र का महसूस करता था।

घर के झझटो से बेला को फ़ुरसत कहाँ थी कि वह भगवद्भक्ति के प्रवाह मे बह सके। जिस दिन घटे-भर भी वह गुरुवर से कुछ पढ़ लेती, उसी का वह बहुत समझती। मिश्रानी का दिलजाइ, कमला की नाज़बरदारी, मुन्नी के मचले—एक-न-एक तक़ाज़ा सर पर खड़ा रहता। जब निशाथ के सुनसान मे वह दिन-भर की जाँफ़िशानी और सरकन्दना के बाद इतमीनान का साँस लेती, तब शरीर मे यह सत्ता नहीं रह जाती कि वह भगवद्भजन की गगा मे एक डुबकी लगा सके।

फिर भी वह घटे-आध घटे 'रामायण' या 'भक्तमाल' पढ़ती और राम का नाम लेती। पर, अमृत की इन दो चार बूदो से न तो उसकी प्यास मिटती, न उसकी छाती की भट्टी ठढी होती। जिस पुनीत पुचारे से उसके मनो-महल की दीवारे रगीन बनतीं, उस रंग की तैयारी का यहाँ अवकाश ही कहाँ था? जिस अभिसार के लिए गुरुवर ने उसे प्रेम के मोतियो से सीमन्त भरने को कहा था, वह अंजाम इन झंझटो मे क्योंकर सम्भव था? वह अपने

भाग्य के सर पर पड़े हुए पत्थर पर सर पीटती और उस लक्ष्य को—उस सूत्र को—ढूँढ़ती, जिसके सहारे उसकी ज़िन्दगी की घडियाँ बेकार नहीं कटतीं।

गुरुवर के वचनों से आशा की एक धुँधली किरण उसके मन में पड़ी जरूर थी, पर प्रतिदिन के उपद्रवों से उसे शान्ति कहाँ थी कि वह उस पथ पर चलने के लिए पाथेय सग्रह कर सके? फिर यहाँ गुरुवर के साये में उसे अवकाश नहीं मिलेगा, तो और कहीं मिलना तो कभी मुमकिन न था। जिस आश्रय को पहले उसने तपोवन समझा था, उसे दो दिन में चिरपरिचित संसार का कोना पाया। जो हो, यहाँ पाँव फैलाने को चटाई भर भी जगह तो थी! शैतानों की बन्दिशों से तो नजात थी! यही क्या कम था?

———

पञ्चम परिच्छेद

एक तरह से वह खुश थी। उसे इतमीनान था। उसके दिल में अगर तसल्ली न होती, तो कभी मुमकिन न था कि उसके शरीर की सफेदी पर सोने का पानी चढता, गाल और आँखो की ज़र्दी पर गुलेनार डोरे नमूदार होते और कृशित अंगो की शून्यता पर यौवन का वैभव बरसता। ज्यो-ज्यो इस स्नेह के साये में उसके मुरझाए हुए मन की पपड़ियाँ धीरे-धीरे उभरने लगीं, त्यों त्यो महीन धोती के भीतर से उसके अगो के उतार-चढ़ाव का परिपुष्ट सौष्ठव निखरकर आँखो में जादू फूकता और कपड़ो से छनी हुई नई रगत की छटा छन भर चकाचौंध मचा देती।

बेला अब फूली हुई बेला-सी खिल उठी। उसके यौवन की रंगीन उषा की लालिमा एक विचित्र पुलक के साथ नखशिख से फूट पड़ी। पर यह वसन्त का मधुर स्पन्दन कुछ उसका आँखों पर सुरूर न ला सका, न उसकी छाती के अञ्चल को चञ्चल सका। इस फाल्गुन पूर्णिमा में भी किसी मलय-समीर का सिहरन

उसके हृदय किसलय पर मुमकिन न था, न किसी मधुर वंशी की सुरीली तान उसके मन की बीथियों मे झंकार भर सकती थी। उसके तन पर यह यौवन का उभार उसके लिए लाख बेकार हो, पर दूसरों के लिये तो वह बेअसर न था।

कमला की सहज सुशील आँखे भी ईर्ष्या से जल उठती और मिश्रानी की नाक का नथ कभी-कभी खीस के उद्‌गार से बेतरह नाच उठता। श्रीधर की जिह्वा पर कभी-कभी स्तोत्रों की लडी अचानक टूट जाती और भगवान के सामने कपूर की आरती की थाली उंगलियों पर बे-वजह काँपने लगती। गुरुवर के ललाट पर भस्म की जगह लाल कुमकुम का तिलक चमक उठा और पुरानी आलमारियों के कोनों से निकलकर कालिदास और अमरु लैम्प की किरणों के सामने आ गये।

मिश्रजी के परिवार मे दो गाये थीं—'गंगा' और 'जमुना'। गगा दूध की धोई सफेद गऊ, और जमुना सर से पैर तक कृष्णा। एक लम्बी पूँछवाली सुलच्छनी, दूसरी मखमली खालवाली मैनी। दोनों के दो छोटी बछिया थीं।

जब बेला ने आकर इस परिवार मे शरण ली, तब गुरुवर ने हँसते-हँसते कहा—"बेला बिचारी भी गऊ है। अबतक गगा और जमुना थीं, आज से तीसरी बेला हुई!"

बेला ने कहा—"महाराज! मैं भी गंगा और जमुना के साथ ही रहूँगी, मुझे वहीं जगह मिले।"

बेला के रहने की कोठरी आँगन के अन्तिम छोर पर मिली।

वहीं गंगा और जमुना बँधी रहती थीं। सामने इँदारा था, और एक ओर दीवार से लगी दो नादें थीं।

बेला ने आते ही दोनो से सखित्व स्थापित कर लिया और उनकी सेवा मे उसे एक निविड रस की अनुभूति मिली। पौ फटते ही वह उनकी सेवा मे लग जाती। नाँद मे मसुरी और भूसे की सानी देती, खली मिलाती, सत्तू और पानी डँडेलती, रात की बची खुची पूरियाँ खिलाती और अपने हाथो से सत्तू की पिंडुलियाँ बनाकर उनके मुँह मे डालती।

जब गनेस उन्हें खोलकर बाहर चराने ले जाता, तब बेला थान को बुहार-सुहारकर साफ कर देती--लीप-पोतकर चौरस करती। गोबर के ढेर मे दो मुट्ठी भुस्सी डालकर कंडे पाथती। दिन भर जूठ-कूँठ और माँड़-भात जुगाकर रखती और इधर-उधर से जब कभी उसे दाल-भरी पूरियाँ, खाजे और खजुलियाँ मिल जातीं, तब दोनो सखियो का हिस्सा निकालकर तो वह खुद खाती।

जब किरन डूबते-डूबते गंगा और जमुना थथान पर लौटतीं, तब बेला सानी-पानी के अलावा कुछ फल फलहरी या केराव-कबिली की हरिअरी भी डालती। उन्हें आँचल से झाड़-पोछकर साफ करती, पीठ सहलाती, गरदन थपथपाती, ललाट चूमती और पीठ से लिपटकर झूलती रहती। एक जबान की पुचकार पर वह मजे से पीतल की डोलची में दूध दूह लेती। जब कभी वह 'गंगा जमुना' कहकर पुकारती तब गंगा की पुकार पर गंगा और जमुना की पुकार पर जमुना बेखटके दौड़ी चली आतीं, और

उसकी उँगलियों के इशारे पर उनकी सारी उछल-कूद एक क्षण में बन्द हो जाती थी।

जब दिनभर के झमेलों के बाद रात को बेला कमर सीधी करने की फ़ुरसत पाती तब गंगा और यमुना पास खड़ी होकर हाथ और कंधे चाटती। उस स्नेह के उद्धत उच्छ्वास में बिचारी विधवा को जिस अभाषिक आत्म-निवेदन का आभास मिलता, वह उसके शून्य जीवन में एक गभीर तृप्ति का आस्वाद भर देता था। जिस रस की एक बूंद भी उसे मनुष्य के सहवास में कभी भूलकर भीन मिली, वह प्रकृति का अलौकिक दान उसे दो बेजबान पशुओं के ससर्ग में मिल सका। इसे उसने देवता का आशीर्वाद समझा।

रात के सन्नाटे में उसके हृदय की मूक वाणी उन दो पूँछ हिलाते हुए गूंगे जानवरों के सामने नि सकोच खुल पड़ती और फिर न जाने आपस में वे क्या कहतीं-सुनतीं और कहाँ तक एक दूसरे के निकट चली जाती थीं।

कौन कह सकता है कि पशु के शरीर में हृदय नहीं है? नहीं है, तो फिर इतनी हृदयग्राहिता उनमें कहाँ से आई?

———

षष्ठ परिच्छेद

मिश्रानीजी के ऊपर सर पर बाल उगते नहीं थे। एक तो बिचारी कभी की बाल का धनी नही थी, और इधर तो सर पर आफत ही आ पड़ी। उनके सर के बाल को देखा या जेठ के दिनो में रहर के खूँटी भरे खेत को देखा, एक ही नज़ारा है। पतझड़ के सूखे पत्ते की तरह बाल झर रहे थे।

केशरञ्जन और जवाकुसुम जब सूने सर को भर न सके, नेता और बुद्धू के मोतवातिर तपावन पर भी उनके सर पर से भूतो का डेरा न टूटा, तब उन्होने मजबूर होकर मुहल्ले के मोहन वैद्य के ऑवले के तेल की मालिश शुरू की।

बेला प्रतिदिन सुबह और शाम उनके सर पर तेल की शीशी उँड़ेलती और जैसे पानी के फुहारे दे-देकर थापी से गच पीटा जाता है, वैसे ही तलहत्थी से तेल के पुचारे के साथ उनका सर थपथपाती थी।

इसके अलावा नहाने के पहले आँवले का सघन प्रलेप उनके सर पर थोपना पड़ता, और जिस वक्त वे इस चर्चा के अनन्तर आँगन में आकर माँचे पर बैठतीं और पोपले मुँह से आँखे मटका-मटकाकर, नथ हिला-हिलाकर, हुक्का गुड़गुड़ाती हुई, अपने पंडित पति की सैकड़ों त्रुटियों पर वीभत्स टिप्पणी करतीं, तब ऊपर बालारेज पर बैठे गिरिधारीलाल के मुहर्रमी चेहरे के सामने बेला-जैसी दुखिया के आँसू भी बे असर हो जाते थे।

तीन महीने से इस नये इलाज का सिलसिला जारी था, और रोज़मर्रे तेल-मालिश के वक्त, बेला को मालकिन के सर की उपज की जाँच की रिपोर्ट पेश करनी पड़ती, और जहाँ उसकी दबी ज़बान से—'अभी तो कुछ खास फायदा नहीं दिखाता'—नि सृत होता, उसी वक्त मिश्रानी के मिजाज के मैगज़िन मे पलीता छू जाता और लगातार कर्णभेदी गलीज़ गालियों के अजस्र बमगोले फ़ायर होकर मोहन मिश्र वैद्य के दिवंगत पूर्वजों पर बेमाखा छूटते और तमाम दालान इस वलीग गोलाबारी से दलदला उठता। खैरियत यही थी कि मोहन वैद्य वहाँ बजात खद हाज़िर नहीं रहते, वरना खीस से खौलती हुई मिश्रानीजी दाँतो के बदले मसूड़े गड़ा गड़ाकर उन्हे कच्चे निगल जातीं।

उस दिन न जाने कहाँ से डुगरती हुई मोहन मिश्र की माता आ टपकी, और जिस वक्त ऊपर कोठे पर गिरिधारीलाल से अपने नाती के कल्याणार्थ किसी अनुष्ठान की योजना के लिए आग्रह कर रही थीं, उसी वक्त इधर मिश्रानीजी वैद्यजी के पुरखों की

लाश को अपनी गालियो की गलाज़त में घसीटकर खसोट रही थीं।

भनक कान मे पड़ी और वैद्य जननी के कान खड़े हुए। फिर तो आँगन मे नीम के पेड़ के नीचे मैदान लेकर दोनो ओर से दोनो रणरागिणियो ने तरकस से चुन-चुनकर विषाक्त तीरो की ऐसी धुआँधार तीरन्दाजी शुरू की कि इस महाभारत के तमाशे को देखन के लिए अगर अमरावती से देवता भी उतर आये हो, तो कोई तअज्जुब नही।

बेला इस रण क्षेत्र से पहले हा कान पूँछ दबाकर सटक-सीताराम हुइ, पर जब उसका नजर काठे पर झोंकते हुए गिरि-धारालाल क वेदना-पीड़ित चेहर पर पड़ी, तब उसने अचानक आग बढ़कर दोनो रणबाँकुरा के दरमियान सन्धि का प्रस्ताव पेश किया।

नतीजा यह हुआ कि मिश्रानी इस दस्तन्दाजी से और भी गाज फकती हुइ भूखी शेरनी की तरह उलटकर बेला पर टूट पड़ी, और कोने मे सटके हुए नेता भगत को ललकारकर इस हरामजादी का झोटा पकड़ घर से बाहर निकाल देने का जरनैली ऑर्डर दिया।

वैद्यजी की माता तो वाण बरसाती हुई बाहर निकल गईं, लेकिन मिश्रानी का निर्लिखत आक्रोश न जाने किस युद्ध-धर्म की नीति के अनुकूल बिचारी बेला के सर पर टूट पड़ा।

नेता भगत ने मुँहमाँगा इनाम पाया और बेला पर हाथ साफ़

करने का एक अच्छा मौक़ा समझा। बेला हमेशा इस गुमानी गुनी की छाया से कटी-कटी फिरती थी। पर ज्यों-ज्यो वह कन्नी कटाती त्यो त्यो नेता की चुन्धी चितवन उसके एक-एक कदम के इर्द-गिर्द चक्कर काटती थी। इतनी मजाल तो थी नहीं कि उस घर के भीतर वह कुछ बेहूदा इंगित कर सके, और बेला कभी घर के बाहर जाती नहीं थी। मिश्रानी, श्रीधर तथा कमला की मौजूदगी मे नेता को नेता बनने की हिम्मत नहीं थी। इतना ज़रूर था कि मिश्रानी की जानिब से उसे खुलम-खुल्ला मदद न मिले; पर अव्यक्त सहानुभूति ज़रूर थी, नहीं तो अकेले श्रीधर उसकी आँखों मे उँगलियाँ देकर पुतलियाँ निकाल लेने को काफी था।

मनोविज्ञान के बड़े-बड़े धुरन्धर भी स्त्रियों के स्वभाव-सागर की थाह लेने मे डुबकियाँ लेते रह जाते हैं। नारी के मन के भीतर पैठकर एक एक तरग की छान-बीन कर समझ लेना पुरुषो क्या—देवताओ की बुद्धि के भी परे है।

शायद बेला के स्वभाव और गुण की चर्चा कमला, श्रीधर और गुरुवर के मुख से सुन सुनकर मिश्रानी को बेवजह ईर्ष्या होती थी। किस तरह उनकी आँखो के सामने बेला के मुख का पानी उतरे, यह उनकी दिली तमन्ना थी। मुमकिन है, यही वजह हो कि नेता मिश्रानी की ओर से निःशङ्क था और उनके सामने भी औरो की आँख बचाकर आँखें मटकाने का कलेजा रखता था।

मिश्रानी के विश्वास-ऑफिस का नायब अफसर मूँगा सुनार था और नेता मुनीम। मूँगा विचारा भला आदमी था और

एकाध लुकी-छिपी निगाह के अतिरिक्त बेला के मामले में वह बिलकुल उदासीन था। वह मकान की पिछवाड़ेवाली कोठरी मे बैठकर हुक्के की निगाली को मुँह मे लगाये सुबह से शाम तक सोने के पत्तो मे पत्तियाँ काटता और नये पैटर्न के गहनो की फिहरिस्ते दिखा-दिखाकर मिश्रानी के अलङ्कार-प्रवण प्राणो की बुभुक्षा को सदा जाग्रत रखता था। उसे नेता भगत की चिलम भरने मे कभी आपत्ति नहीं थी जब वह यह देखता था कि मिश्रानी की आत्मा की बागडोर उसके हाथो मे है। यही वजह थी कि मूगा ने पिछले साल नेता के सात साल के बेटे के व्याह मे चाँदी के झाबिये और जोशन अपनी ओर से भेट दिये थे। आज भी नेता बहू की तमाम फरमाइशों को बिना मजूरी लिये खुशी से पूरा करता था। जब कभी मिश्रानी के मन चमन मे शीतल मन्द समीर चलता और उनके चेहरे पर मुस्कान की अनाखी छटा नजर आती, तभी मूँगा की हिम्मत बँधती कि मालकिन के सुर मे निरन्तर ताल देने के अलावा कुछ अपना अरज गरज भी नजर कर सके। पर, अपनी कथा उठाने के पहले नेता के अद्भुत चमत्कारों के गुणगान की भूमिका देनी जरूरी थी, क्योंकि उसका रोआँ-रोआँ इतना अवश्य समझता था कि इस दरबार मे उसकी सुर्खरुई उसी दम तक है, जब तक की वह नेता के सरोद का तबलची है। इसीलिए जब नेता ने आकर मिश्रानी की मर्जी सुनाई और बेला को इस महल से निकालकर अपने खंड में ले जाकर रखने के लिए मदद माँगी, तब मूँगा लहू के घूँट की तरह अपने गुस्से

को पी गया, और एक आधी सेकेंड तक दाँत पीसकर नुमाइशी .खुशी के दाँत दिखा दिये।

"मूँगा भाई, बिल्ली के भाग से छीका टूटा ! चलो, इस मुनिया को उड़ा ले चलें।"

"भाई, मिश्रजी तो घर पर हैं ?"

"हुआ कर ! मिश्रानी के आगे उनकी नानी मरी रहती है !"

"और कमला बच्चा ?"

'कहीं बाहर गई है। उठो, देर न करो।"

मूँगा को ऐसी चाल हर्गिज़ पसन्द न थी, पर बिचारा करता क्या ? नेता का साथ न देता, तो अपनी रोटी पर जवाल लाता।

बेला अपनी कोठरी मे जाकर बुत की तरह खड़ी है। उसकी आँखो के सामने ज़लज़ले का तमाशा चल रहा है। ज़मीन थर-थराती है, दीवारें हिलती-सी नज़र आतीं और आसमान चक्कर काट रहा है। वह सोचने लगी—"भगवन् ! अब आगे क्या होगा ? क्या अभी तक मेरी सज़ा पूरी नहीं हुई ? कर्म का भोग अभी बाकी है ? कमला मुहल्ले मे न्योते पर गई है, मिश्रजी कोठे से उतरकर कहाँ तक पत्नी के वार की ढाल होंगे ? और श्रीधर ? श्रीधर चचानी के सामने मैदान ले सकेगा ? गङ्गा और यमुना भी बाहर चरने गई है। वे भी यहाँ रहतीं, तो दम मे दम पड़ता।'

वह आगे सोच न सकी। किवाड़ के पास नेता और मूँगा भा धमके। नेता की आँखें गुर्राती हुई बिल्ली की आँखो की तरह चमक रही थीं। मूँगा पुछल्ला बना पीछे खड़ा था। मिश्रानी

लोल लटकाये बेला के पहलाम का तमाशा देखने के लिए आँगन मे खड़ी थीं। मिश्रजी कोठे से उतरकर दखल देने के लिए कमर कस रहे थे, पर मिश्रानी उनको सुना-सुनाकर धमकी दे रही थीं कि अगर उन्होने अपनी उँगली भी हिलाई, तो दूसरे दक्षयज्ञ की रचना इसी आँगन मे होगी। इसी गीदड़भवकी की वजह उनके कदम सीढ़ियो पर रुक-रुककर पड रहे थे।

नेता और मूँगा मिश्राना की ललकार पर कमरे मे दाखिल ही हुए थे कि कमला को लिए हुए श्रीधर आ टपका! श्रीधर की अड़तीस इंचवाली गठीली छाती पर नजर पड़ते ही नेता का तमाम ताव हिरन हो गया। कमला की चेष्टा और चितवन से कुछ ऐसी रुखाई टपक रही थी कि नेता भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाये बाहर निकल गया। मूँगा भी हटुए बटेरवाली चाल से फुदककर दरबे मे घुस गया। वह तो खुश था कि नेता के सर की पगड़ी धूल में जा गिरी, पर जमाने की रविश देख कर चुप था। किसी को न कुछ कहना पड़ा, न करना पड़ा। सारा सीन जादूगर की फूँक पर आप-ही-आप बदल गया।

श्रीधर ने एक बार बेला को भर-आँख देखा और बेला ने आखें मिलाकर अपनी कृतज्ञता जताई। कमला से उसने दबी जबान से कहा—"बहन! आज तुम न आती, तो मैं लुट गई रहती!"

मिश्रानी के गले की ऊँची टीप धीमी पड़ गई और उन्होने कमला से जरा हँसकर पूछा—"क्यों कमली! मुन्नी को कहाँ छोड़ आई?"

"उसे रामू बहू कल्लू बिसाती की दूकान पर ले गई है। आती ही होगी।"

"मैं तो समझती थी कि तुम ज्योनार के बाद आओगी!"

कमला ने इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। श्रीधर दौड़ा जाकर उसे बुला लाया था—यह खबर देना वह सगत नहीं समझती थी।

"बेला! ज़रा इधर तो आ! सर का तेल चू रहा है, इसे मिला दे।"—मिश्रानी ज़रा पुचकारती आवज से बोलीं।

बेला धीरे-धीरे नज़दीक चली गई और तेल मिलाने लगी। करती क्या? मार भी खाती, दुत्कार भी पाती और पुचकार पर दुम भी हिलाती। हिन्दू विधवा थी न!

जो तूफ़ान दस मिनट पहले इस आँगन मे प्रलय-हुकार से बह गया था, उसका नामोनिशान भी कहीं आँखों के सामने बाकी न था। जो कुछ चिह्न रह गया, वह विचारी बेला के कलेजे पर था और वहीं टभक रहा था।

———

सप्तम परिच्छेद

जब दोपहर को बेला भक्तमाल की पुस्तक हाथ में लेकर दैनिक रूटीन की पाबन्दी के लिहाज से ऊपर दुतल्ले पर गई, तब गुरुवर ने देखा कि उसका चेहरा बिलकुल जर्द है, और भवें बेतरह खिंची हैं। उस पर एक करुण कमनीय कान्ति बिखरी हुई है। वह कुछ देर तक चुप बैठी रही। फिर भर्राई हुई आवाज में बोली—'महाराज! मेरे मन में रह-रहकर उठता है कि किसी तरह यह देह छूट जाती... .'

"शिव! शिव!"—गिरिधारीलाल ने बात तराशकर कहा—"इसे जबान पर भी न लाना। दुनिया में सबसे बड़ी न्यामत मनुष्य-देह है। इसी देह से हम विदेह होते हैं। इसी सीमा के सहारे हम असीम को पाते हैं। जब तक हम इस बन्धन में नहीं आते, तबतक हमें मुक्ति मिलता नहीं। यद्यपि आत्मा सर्वत्र एक है, तो भी माया या नाम-रूप का आवरण कहीं सघन और कहीं विरल होकर इस सृष्टि में सचेतन और अचेतन दो भेद हो गये हैं।

इस सचेतन की पाँति में मनुष्य की जो सत्ता है, वह पशु की नहीं। पशु ने सब कुछ पाया—इन्द्रियों की दौड़ ऊसे पूरी मिली, पर बुद्धि और मन के विकाश से वह वञ्चित ही रहा। यही विकाश तो मनुष्य-योनि का मुकुट-मणि है। इसी कारण तो मनुष्य-यानि दुर्लभ योनि है। इन्द्रियाँ तो महज़ नाम रूप तक जाती है, आगे उनका गुज़र नहीं। पर इन नाम रूपों का जो आधार-भूत है, वही सत् अव्यक्त और अचिन्त्य है। उसी का सम्यक् ज्ञान जीव का चरम कल्याण है और उस ज्ञान की प्राप्ति हमारा बुद्धि और मन के विकाश पर ही निर्भर है, अन्यथा एकान्त असम्भव है। बुद्धि और मन इसी मानव-शरीर के अनुगत है। इसीलिए बेला! शरीर का रक्षा हमारा सबसे पहला और सबसे महत् धर्म है। इसी काश के भीतर तो निखिल विश्व का रहस्य छिपा है और यही अचला उस अनन्त का सोपान है। इसी शरीर पर सब कुछ निभर है। जब यह कायम है, तभी हमारा लोक परलोक सुलभ हो सकता है, नहीं तो नहीं। देखो, जिसके जीवन-पथ पर किसी मधुर अतीत की छाया नहीं, जिसके हृदय की गोद में किसी सुकोमल मनोरथ का चुलबुलाहट नहीं, जिसका मानस-दृष्टि के आगे किसी रंगीन आशा का मधुरिमा नहीं, वह भी अगर पेट के लिए जीता है, तो इससे बढ़कर और दूसरी विडम्बना क्या होगी? पर नहीं, उसे भी जीना ज़रूरी है; क्योंकि अगर शरीर क़ायम है तो वह एक-न-एक दिन तख्ता उलट सकता है!"

गिरिधारीलाल एक क्षण रुक गये। दो पान की गिलौरियाँ मुँह मे रखीं और फिर शुरू किया—"बेला! नीति का वचन है--'आत्मान सतत रक्षेत् दारैरपि धनैरपि।' यदि ब्राह्मण को शरीर की रक्षा के लिए अभक्ष्य भी खाना पड़े, तो जायज़ है। वह कुल से या परिवार से--जाति से या समाज से--च्युत हो जाय, तो हो जाय, पर शरीर से च्युत कदापि न हो। यदि स्त्री को रूप की हाट मे बैठकर पत भी बेचना पड़े, तो वह पातक शरीरपात के पातक के आगे कौड़ी का तीन है। फिर पेट पालने के लिए वेश्यावृत्ति ता कोई पातक नहीं!"

"क्यो महाराज, वेश्यावृत्ति से बढकर तो कोई दूसरा पाप नही? वह तो साक्षात् नरक का द्वार है।"

"कदापि नही! पाप बुद्धि मे है, कुछ कर्म मे नहीं। जिसकी यह वृत्ति महज़ गन्दी प्रवृत्ति नहीं—जीविका है, तो वह उसके सर का सिरमोर है। जिस दिन तुमने अपनी प्रकृति की मर्ज़ी से या मजबूरी से इस धधे को स्वीकार किया, उसी दिन वह व्यवसाय तुम्हारा धर्म हो गवा। 'स्वभावनियतं कर्म्म कुर्वन्नाप्नोषि किल्विषम्!" कोई भी रोज़गार लो, उसमें कहीं-न कहीं छिद्र अवश्य दीख पड़ेगा। 'सिपाही पेट के लिए अपना बल बेचता है—वकील अपनी बुद्धि बेचता है—डॉक्टर अपना कौशल और अनुभव बेचता है--गुरु अपनी विद्या बेचता है—कलाकार और कवि अपनी प्रतिभा बेचते हैं--वेश्या अपना रूप बेचती है, और सच पूछो तो धर्मगुरु भी अपना पुण्य बेचता है! तुम

महाभारत के ब्राह्मण व्याध संवाद को पढ़ो, तो तुम इस तत्त्व को आसानी से समझोगी। जीव हत्या करके, पेट के लिए, मास बेचनेवाला व्याध शरीर बेचनेवाली वेश्वा से, सामाजिक दृष्टि से, कुछ कम नीच नहीं। पर तुम जब इस कथा को पढ़ोगी, तब तुम्हें खुद ही खुलेगा कि सामाजिक दृष्टिकोण का परिसर किस कदर सकुचित है। मै यह नहीं कहता कि वेश्या वृत्ति निन्द्य नहीं, लेकिन मनुष्य को नीच या ऊँच महज उसके रोजगार पर ठहराना कदापि सङ्गत नहीं। जिस बुद्धि से वह अपना कर्म करता है, वही बुद्धि उसके भले या बुरे होने की कसौटी है। अगर वकील गाँव के गँवार मवक्किल को मुकदमेबाजी के चक्कर मे फसाकर उसकी जायदाद हड़प लेता है, या डॉक्टर फीस के लालच पर मर्ज को टटोलता हुआ बिल चुकाने के लिए मरीज की बीबी के जेवर बन्धक रखवाता है, किंवा पुरोहित यजमान को ग्रहों की शान्ति के फेर मे डालकर उसके तरी के खेत पर मकफूली दावा लिखवा लेता है, तो वह वकील, वह डॉक्टर, वह पुरोहित उतना ही सजावार है, जितना वह वेश्या, जो अपना फीस पर सब्र न कर अपने नखरे-तिल्ले के जाल मे मद को उल्लू फसाकर उसकी जेब कतरती है। कोई भी वृत्ति कभी निन्द्य नहीं। जिस वृत्ति मे जैसी तुम्हारी प्रवृत्ति होगी, वैसा ही तुम्हें फल मिलेगा। कसाई हो, व्यापारी हो, पेट के लिए रूप बेचनेवाली रंडी हो, माला तिलकधारी पुरोहित हो सबका दरजा बराबर है। यदि कर्म मे बुद्धि निष्काम हो, तो प्रत्येक परलोक का अधिकारी है। इसलिए तुम किसी को उसके कर्मों के

कारण कभी नीच मत समझना। तुम्हें पारखी बनना है, तो तुम यह देखो कि वह उस कर्म को किस भाव से करता है। उसकी हरकतों को नहीं, उसकी नीयत को देखो। यही जौहर है; यही किल्ली है। वेश्या करुणा की पात्र जो हो, घृणा की पात्र कदापि नहीं। आज समाज की निगाहों में यह रोजगार लाख निन्द्य और निकृष्ट हो, पर मैं तो समझता हूँ कि उस समाज में भी अच्छे और बुरे वैसे ही हैं, जैसे हर जगह हैं, उनके लिए भी परलोक उतना ही सुगम या दुर्गम है, जितना हमारे लिए।"

बेला थोड़ी देर चुप सोचती रही। फिर बोली—"महाराज! मैं कभी कभी सोचती हूँ कि किसी तीर्थ में मुझे शरण मिल सकती है या नहीं!"

"बेला! आज के भीषण काड के बाद तुम्हारे मन में विराग होना जरूरी है, पर मैं सच कहता हूँ, भारत में कोई भी तीर्थ आज निरापद नहीं है। मुझे डर है कि तुम तवे से गिरकर आग में जा पड़ोगी। आज भी पचवटी में माया मृग चौकड़ियाँ भरते हैं। आज भी साधु के वेश में रावण की पैयारी देखने में आती है। राम तो जल्द नजर नहीं आते, पर छद्मवेशी रावण तीर्थों के कन्दरे में भरे पड़े हैं। पहले तपोवन के निशाचर तपस्वियों के खून के प्यासे थे, पर इन दिनों के सफेदपोश निशाचर भोरी स्त्रियों के सर्वस्व के भूखे हैं। तुम भूलकर भी कभी तीर्थ का नाम न लेना। तुम्हारे लिए वहाँ राम का नाम लेना हजार मुश्किल है।"

"महाराज! किसी तरह वह प्रेम का रस मेरे रोम रोम में

भिनता ! वह नन्हीं-सी प्रेम की चिनगारी भभक उठती, मेरे दिल की तमाम जलन को जलाकर फूँक देती ! मुझे दशरथ के पुत्र राम की झाँकी ....."

"बेला ! राम कुछ दशरथ के बेटे नहीं हैं, न लक्ष्मण के भाई हैं। वे न लव के पिता हैं, न सीता के पति हैं। यह सब तो उनकी लीला है; रूप के दायरे मे छन-भर खुल खेलना है। उन्हें महज़ लव के पिता नहीं, जगत् के पिता समझो, सीता के पति नहीं, विश्व के पति समझो। 'गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवास' शरणं सुहृत्।' उनका न रूप है, न वे रूप के श्यामल है, उनके न कान हैं, न कानो मे कुडल हैं, उनके न हाथ है, न हाथों में सायक हैं, उनके न सर है, न सर पर मुकुट है। वे तो 'बिनु पग चलै सुनै बिनु काना, बिनु कर कर्म करै विधि नाना' हैं। उस अनाम को तुम 'राम' कहो या 'श्याम', यह रूप का आकार तो तुम्हारे मन के लिए एक आधार है, और कुछ नहीं। इसे तख्ती की मश्शाको समझो। जो मन यों ही नही ठहरता—सदा चचल है, वह शून्य पर कहाँतक ठहरेगा ? इसीलिये उसे एक खली धरा देना है। जिस रूप पर तुम्हारा मन ठहरे, वही अनूप रूप है—वही सनम है—वही राम है—वही कृष्ण है—वही शिव है--वही सब कुछ है। यद्यपि जब रूप है, तो प्रत्येक रूप वही रूप है, जब रस है, तो प्रत्येक रस वही रस है, जब गन्ध है, तो प्रत्येक गन्ध वही गन्ध है, जब शब्द है, तो प्रत्येक शब्द वही शब्द है; पर याद रखो, रूप के जरिये तुम्हें अरूप में जाना है। इसी सोपान पर

चढ़कर तुम्हें ज्ञान के बाम पर जाना है; सीमा के सहारे असीम से मिलना है। सौ बात की एक बात, रूप चाहे जितने हों, स्वरूप तो बस एक है। बेला! तुम समझी? तुम्हें उस अमृतत्व को पाने के लिये रूप के सहारे अरूप पर जाना है, उधर भगवान् को भी तुम्हें उठाने के लिये अरूप से उतरकर रूप में आना है।"

"महाराज! मैं नहीं समझी।"

"बेला! इन्द्रियाँ अपने विषयों में स्वभाव ही से रमण करती हैं। इसीलिये रूप पर रीझना स्वभाव है, रूप से खिचकर अरूप में रुझान स्वभाव का पराभव है। यहाँ दिल का लगन है, वहाँ दिल को लगाना है। इधर तबायत का रवाना है, उधर वृत्तियों को गोशमाली है। यह प्रवाह पर बहना है, वह गंगा की धारा को उलटना है। यही वजह है कि मान्दरों में भी रूप और रस का, गन्ध और गान का आयाजन जरूरी है—यहाँ तक कि भगवन् को भी उस इन्द्रियातीत अरूप की दुर्गम मंजिल से किसी अपरूप रूप के सुगम तबक में उतरना पड़ता है, नहीं तो जीव की प्रकृत प्रवृत्ति उस अमृतत्व की ओर क्योंकर होगी? भव ताप को मिटाने के लिये उस भव-भंजन कुनैन की जरूरत निरन्तर है, मगर जबतक हम कुनैन पर चीनी का पाग नहीं देते, तबतक अबोध के गले उतार देना मुमकिन नहीं। तुलसीदास ने एक ही चौपाई में भक्ति और ज्ञान दोनों का तत्त्व समझा दिया है—'सो जानै जेहि देहु जनाई, जानत तुमहि तुमहि ह्वै जाई।'—'जबतक तुम्हारा आशीर्वाद नहीं होता, तबतक जीव तुम्हें जानता नहीं।'

यही भक्ति है। और, 'जब जान गया, तब फिर तुममें और उसमें कुछ अन्तर नहीं रहा।' यही ज्ञान है।"

"महाराज! तब तो जीव के कल्याण के लिये भक्ति और ज्ञान दोनों जरूरी है!"

"जरूर! दोनों जरूरी हैं। ज्ञान विवेक है, भक्ति भाव है। ज्ञान कस है, भक्ति रस है। ज्ञान बुद्धि है, भक्ति हृदय है। ज्ञान वीर्य्य है, भक्ति माधुर्य्य। ज्ञान तत्त्व है, भक्ति सत्त्व। ज्ञान नेम है, भक्ति क्षेम। ज्ञान सिंह है, भक्ति गऊ। ज्ञान चैतन्य है, भक्ति प्राण। ज्ञान सत्य की रोशनी है, भक्ति प्रेम की चाँदनी। ज्ञान प्रकाश है, भक्ति उच्छ्वास। ज्ञान सारथि कृष्ण का शङ्ख-निनाद है, भक्ति मुरली-मनोहर की मुरली-ध्वनि। तुम्हारे हृदय में प्रेम की मुरली हो, तुम्हारे मानस-पट पर ज्ञान की तजल्ली भी। भक्ति के बिना ज्ञान वीरान है, ज्ञान के बिना भक्ति बोदी। दोनों का सङ्गम मानव-जीवन का आनन्द-तीर्थ है।"

"महाराज! मैं पूरा समझी नहीं!"

"समझी नहीं? बेला! ज्ञान सुर है, भक्ति लय है। ज्ञान बल है, भक्ति शील। ज्ञान तेज है, भक्ति लावण्य। बल और शील दोनों जरूरी है, तेज और लावण्य दोनों जरूरी हैं। एक विजय है, दूसरी विनय है। देखो—

'अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्॥'

यही ज्ञान है, यही विजय है। फिर—

'पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः ।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्व्वपापहरो हरि. ॥'

यही भक्ति है, यही विनय है ।"

"महाराज ! मैं तो राम के रूप की दीवानी हूँ, जानकी के चरणो की चेरी हूँ, मेरा दुखिया मन उस युगलमूर्ति की झाँकी ढूँढता है--एक श्यामल, एक गौर ! मै रूप चाहती हूँ, अरूप नहीं । मैं राम चाहती हूँ, ब्रह्म नहीं । मुझे ध्यान चाहिए, ज्ञान नहीं । मै भक्ति की भिखारिनी हूँ, मुक्ति की नहीं । राम मेरा राजा है, सीता मेरी रानी है । मैं उनसे मिलकर एक होना नहीं चाहती । मैं तो उनको 'मीरा' की तरह नाच गाकर निरन्तर रिझाना चाहती हूँ । मैं तरस-तरस कर तड़प रही हूँ । मेरी तरस मिटती नहीं । दुनिया के आँधी-पानी ने मेरे मन के चिराग को गुल कर दिया है । वह रोशनी न जल पाती है, न मैं उस छबि को देख पाती हूँ । आज तो मेरी भीतरी आँखो पर अँधेरा है, और इस अँधेरे मे मुझे रास्ता नहीं सूझता । न राम का पता मिलता है, न इस लोक मे कहीं सुख मिलता है । आप ही कहें, मेरे मन का यह दुख कैसे मिटेगा ?"

"बेला ! जब सुख की तलाश बन्द होगी, तभी तुम्हारी गर्दन से दुख की फाँस छूट सकेगी । जब तक तुम सुख ढूँढ़ती हो, तबतक तुम दुःख झेलती हो । जीवन के रङ्गमञ्च पर जब सुख सामने आता है, तब दुःख नेपथ्य मे रहता है; और जब दुःख आगे है, तब सुख पीछे है । ये दोनों अभिनेता बारी-बारी

से इस जीवन-अभिनय में साथ-साथ खेलते रहते हैं। शायद दुःख का पार्ट हमेशा बड़ा होता है और सुख का पार्ट हमेशा छोटा। पर यह मुमकिन नहीं कि कोई एक भी अकेला रहे। एक दूसरे का अभिन्न सहचर है। कहीं भी ज़मीन इस पृथ्वीतल पर समतल नहीं है। अगर समतल रहती, तो फिर किसी को ऊँच-नीच का ज्ञान ही न होता। दुःख ही से न सुख का ज्ञान है। तुम हँसना चाहती हो, तो तुम्हें रोना भी पड़ेगा। यह कभी सम्भव नहीं कि तुम केवल हँसो और रोओ नहीं, या केवल रोओ और कभी हँसो नहीं। जब तुम बिलखकर रोओगी, तो कभी खिलखिलाकर हँसोगी भी। इन्हीं द्वन्दों के छन्द-बन्द मे इस जीव का नातका बन्द है। यह सुख-दुःख तो जीवन-नद के ज्वार और उतार हैं। जब वेग मन के अनुकूल है, तो सुख। अनुकूल नहीं, तो दुख। ये दोनों हमारी तृष्णा की सन्तान हैं। जबतक मन में रस का संचार जारी रहेगा, तबतक सुख और दुःख मन की घाटियो में झाड़पात की तरह पनपते रहेंगे। मगर जहाँ वैराग्य की लू से यह रस का सोता सूख जाता है, फिर इन द्वन्द्वों की उपज आप ही-आप बन्द हो जाती है। सच मानो, हमारी आत्मा के लिए जिस कदर एक घातक है, उतना ही दूसरा भी। जो निःस्पृह है, वह इन दोनो वेदना-तरंगों के अतीत है और वह उस पद पर पहुँचा है, जहाँ न दुःख है, न सुख है। उस दिव्य धाम पर जाने के लिए दुःखों का ज़रिया सहज है और सुखो का मार्ग मुश्किल। तुम्हारे दुःखों का अन्त तभी होगा, जब तुम्हें दुःखों

के आलिङ्गन मे भी वही रस मिले, जो सुख की पुष्पशय्या पर मिलता है। यानी दुःखो का अन्त वहीं है, जहाँ न दु.ख है, न सुख है। दु'खो के जरिये दु खो के अन्त की तलाश की प्रेरणा होती है, और सुखो के मोह मे पड़कर कभी कोई सुख के अन्त को नहीं ढूँढता। मनमोदको से मन का खट्टा हो जाना मुमकिन नहीं, मीठा ही होना स्वाभाविक है। इसीलिए दु खो का दंशन हमारे कल्याण का साधन हो सकता है और सुखो का प्लावन हमारे पतन का वाहन।"

गिरधारी लाल ज़रा रुक कर बोले—

"ईश्वर करे, तुम्हारे जीवन के अपमान तुम्हारी गति को उस स्थिति की ओर माड़ द, जहाँ न मान है, न अपमान। मान की शान के भीतर उस पद की तलाश तो देवता का आशीर्वाद समझा, एस ता कना सम्भव नहा। यहा द्वन्द्व ता मनुष्य के जीवन का छन्दमय बना सकता है। और, बला ! जबतक तुम्हारा मन निद्वन्द्व नहा हाता, तबतक तुम्हार क्षोभ के छिद्र कभा बन्द नहीं हा सकत। जब तक ममता जाता नहीं, तबतक समता आती नहीं, और जब तक समता नहीं आती, तबतक न आत्मा की महत्ता आती है, न अन्तर की प्रसन्नता। इस मोर-तोर के मरोड़ म पड़कर हमने अपनी आत्मा की सत्ता को बोर दिया है। सुख की तलाश ता मरीचिका की तलाश है। तुम्हे ढूढ़नी है शान्ति—प्रसन्नता। बेला ! वह दिन करीब है, जब इन दुखो के निर्माल्य के लिए तुम भगवान् के सामने ऋणी होगी और उसी

क्षण तुम्हारे नव जीवन के अभिसार के मार्ग पर असीम की मंगल रागिनी ध्वनित हो उठेगी।"

ज़रा पुरुषों के इन्साफ़ का मुलाहिजा हो। अपने लिए तो सफेदी में भी नित्य नवीन रस का सिञ्चन और युवती विधवा के लिए आत्मज्ञान और वैराग्य का परिशीलन! सुख-दुःख के जिन सूक्ष्म तत्त्वों का अन्वीक्षण बड़े-बड़े ज्ञानियों के दिमाग में भी नहीं धँसता, उन्हें गाँव की एक अबोध बालिका हृदयङ्गम कर सके, यह कहाँ-तक सम्भव है?

गिरिधारीलाल खुद इन पर कहाँतक अमल करते थे, इसे वे ही समझे! उनकी जबान से जो सुरभित पारिजात झड़ रहे थे, वे उनकी आत्मा की बोध-वाटिका के फूल थे या काव्य के छींटों से पनपे हुए उनकी प्रतिभा की क्यारियों के सुमन थे, भगवान् जाने!

क्या इस विडम्बना को वे स्वयं नहीं समझते? समझते थे जरूर, मगर उनकी दलील यह थी कि समाज की जैसी परिस्थिति है, उसमे बेला के लिए दूसरा पथ और है ही कौन? वे संसार के सुख दुःख की निस्सारता की व्याख्या देकर उसके दिल के शोले को शीतल नहीं करते, तो फिर उसे और क्या समझाते?

पडितजी कभी ज्ञान छाँटते, कभी भक्ति की लन्तरानियो का पुल बाँधते। कभी गोपाल तापनी छिड़ती, कभी पञ्चदशी चलती। महाभारत की चर्चा होती, उपनिषत् की वार्त्ता होती। भक्तमाल भी पढ़ाते, गीता भी समझाते। कभी नवधा भक्ति—श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवे-

उन-के गुण गाते; कभी पञ्च भावों—दास्य, शान्त, सख्य, वात्सल्य, मधुर—की व्याख्या करते। कभी योग के आठ अंगों की—उसके नौ चक्रों की—हामी भरते, कभी अगोचरी, भूचरी और चाचरी के चक्कर में डालकर चमत्कृत करते, ईडा, पिंगला और सुषुम्ना के करश्मे सुनाते; और कभी अणिमा, लघिमा, महिमा की महा-सिद्धियों की विभूतियों का वर्णन कर बेला के दिल और दिमाग़ को तहोबाला कर देते थे। वे जो कुछ समझाते, उसे बड़े चाव से समझाते। इधर वे कुछ दिनों से 'गीतगोविन्द' के दो-चार सरस छन्द भी याद कराते और काव्य की क्यारियों की भी सैर कराते थे।

'महाराज!"—बेला ने ऑचल को सर पर सरकाकर कहा—"आपके वचन मेरे सर पर हैं, मगर मैंने तो दुःखों के बादल के साये में कभी सुख की एक हल्की झलक तक न देखी! मेरे लिये तो दुःख अकेला ही आया, अपने सहचर को साथ नहीं लाया। और, जब एक बार आ गया, तो फिर घर बनाकर बैठ गया। मेरे निर्मम भाग्य की ठोकरों ने इस सुख-दुःख के दौर के अटल नियम को भी तोड़ डाला। पति का सुख गया, सन्तान का प्यार गया, नारी की आबरू गई, घर की शरण छूटी—बाक़ी क्या रहा? एक मन है, कबतक ठहरा रहेगा?"

बेला आगे न बढ़ सकी। उसका गला रुँध आया। वह चुप हो गई।

"सुनो, बेला!"—गुरु महाराज ने बड़े तपाक से फरमाया—

"दुनिया की बिसात पर तुम्हारी कश्ती और फर्जी पिट गई, तो महज़ इसी क्षति से तुम्हारी बाज़ी जिच नहीं होगी; न गर्दिशों के हाथ से तुम मात होगी। मीर तो मन है। अगर वह किसी घेरे मे नहीं पड़ा, तो तुम आगे चलकर ज़रूर बाज़ी मार लोगी। पति और पुत्र, घर और परिवार, शरीर और सौन्दर्य, दौलत और इज्ज़त सब दो दिन की चकमकी चाँदनी हैं। यदि तुम्हारी प्यासी मनोवृत्ति इसी माया-मरीचिका पर दौड़ती रह गई, तो फिर शान्ति की मन्दाकिनी तुम्हें कहाँ मिलेगी? तुम्हारे जीवन का ज्वार इसी सीमा पर टकराकर रह गया, तो फिर उस मृत्युञ्जयी असीम का पता कहाँ पाओगी? और तुम्हारी आत्मा को मुक्ति क्योंकर मिलेगी? बेला! भक्ति हो या मुक्ति, मन में सांसारिक सुख की वासना दोनो के लिए समान कतरनी है। मन की मैल बिना आत्मगगा मे डुबकी दिये कभी धुल नहीं सकती।"

तब तक मिश्रानीजी के कर्कश स्वरो की कड़क, बिजली की कड़कड़ाहट की तरह, कानो मे पड़ी, और महतर्जी की विचारधारा अचानक टूट गई। घर का बच्चा-बच्चा भी जान गया कि चंडी महारानी ख्वाब-ग़फलत से बेदार हो गईं और उनकी तीसरे पहर की नींद की अवधि पूरी हो गई। अब इस वक्त से लेकर ग्यारह बजे रात तक उनके रेंकने की रागिनी—उस रागिनी की प्रतिध्वनि—मकान की तमाम दीवारो पर टकराती रहेगी।

"बेला, तुमको यहाँ आये महीनो गुज़र गये। अब तुम समझ गई होगी कि मेरी स्त्री मेरे जीवन का अभिशाप है। सूरत

ही बिगड़कर रह जाती, तो खैर थी, मैं किसी तरह सर ठोककर सह लेता। यहाँ तो जबान भी बिगड़ी है और तबीयत भी। आजतक मैंने नहीं समझा कि उनके मिजाज की सूरत क्या है—स्याह या सफेद! एक रस रहता, तो पता भी चलता। किस बात पर कब उनकी रंजिश होगी, इसकी खबर उनके फिरिश्तों को भी नहीं। आज जिस बात पर वे खिलकर हँसती हैं, कल उसी पर लाल-पीली होकर खसोट सकती हैं। मत पूछो, उनका मिज़ाज बिलकुल बरसाती आसमान है। कब घटा घिर जायगी, कब साफ होगा, कब फट पड़ेगा, कब बिजली कड़केगी—किसी को पता नहीं चलता। सुबह को पछवा है, तो दोपहर को पुरवा; शाम को कोनी है, तो रात को दक्खिनी। शायद स्त्री का स्वभाव ही विचित्र है। यह ब्रह्म की तरह अचिन्त्य, अज्ञेय और अपरिमेय है। तुम महाभारत में वह कथा पढ़ चुकी होगी, जहाँ ग्राह ने अपने सवालों का जवाब न पाकर जब चारों पाडवों को निगल डाला, तब युधिष्ठिर ने सम्यक् उत्तर देकर उन्हें पाशविक जठराग्नि के सन्ताप से बचाया था। अगर मैं उस वक्त मौजूद रहता और काश वह ग्राह मुझसे सवाल करता—'किमाश्चर्यं' आश्चर्य क्या है, तो सच मानो, मैं मुँहतोड़ जवाब देता—'नारी प्रकृति'!"

तबतक उन्हें ख्याल हो आया कि सामने बेला भी नारी है और पत्नी के प्रति उनके पुञ्जीभूत विद्वेष ने उन्हें सीमा के बाहर फेंक दिया। इसलिए चट से उन्होंने मसविदे की तरमीम कर दी—"मगर बेला, जब मैं तुम्हें देखता हूँ, तो मुझे नारी की

प्रकृति में प्रतीति हो जाती है। मैं समझता हूँ कि स्त्री का स्वभाव गंगा के निर्मल जल की तरह सरल और स्वच्छ भी हो सकता है। अगर तुम न आती, तो शायद मुझे नारी की कल्याण-मूर्ति—उसकी सुकोमल प्रकृति—देखने का कभी अवसर न आता।"

बेला शर्म से काँप उठी। उसका चेहरा लाल हो गया। वह पूछ बैठी—"महाराज! आप कमला दीदी को क्यों भूल रहे हैं?"

"ख़ैर, उसका ज़िक्र छोड़ो। वह तो मेरी कन्या है। सच कहता हूँ बेला, तुम्हारी मालकिन की जबान नीम से भी कड़वी है, पर सुगन्धि नीम की नहीं। नीम की डली जब फूलती है, तब उसकी भीनी खुशबू गुलाब की गन्ध से कुछ कम मनभावनी नहीं होती। जब कभी वह गहनों से लदकर फूली नहीं समाती, मुहल्ले की दो-चार मुँहलगी औरतों के साथ नेता या कुल्लू के देवघर गाती-बजाती जाती है, तब उस वक्त मेरे सर पर हज़ारों घडे पानी पड़ जाता है और मैं चुल्लू भर पानी मे डूब मरने की जगह ढूँढता हूँ। तुम खुद देखती होगी, भगवान् के मन्दिर में कभी वह झाँकती तक नहीं। वह बदज़ात नेता उसकी आत्मा की जड़ मे कीट है, उसने उसे बिलकुल खोखला कर डाला, धर्म का एक कतरा रस तक नहीं रखा। रात-दिन भूत और प्रेत, जिन और कीचिन! कमर मे दर्द हो, तो भूत; मुन्नी को दाँत-उठी का दस्त हो, तो भूत। ये भूत तो सर पर सवार हैं ही, साथ साथ गहनो का भूत भी सवार है। मुँह मे एक दाँत नहीं; पर काटने के ज़हरीले दाँत मौजूद हैं। शायद मुँह मे जब दाँत

नहीं रहते, तब ज़बान के दाँत बड़े चोखे हो जाते हैं! आधे से ज्यादा सर के बाल गिर गये, खाल भी लटक गई; पर ज़ेवरों की लकदक की चाट दुगनी हो गई है। लाश पर कमख़ाब का कफन! न सूरत है, न सीरत; पर हसरतो की यह कसरत! बेला! अगर गरदन सुराहीदार न हुई, तो फिर सतलरी नक्काशीदार होकर क्या करेगी? जब होठो के भीतर मोती के दाने नहीं रहे, तो फिर उनके बाहर मोती-भरी झुलनी झूलकर क्या रंग लायेगी? लटकी हुई खाल पर जेवरो के कुन्दन की दमक, साँप की आँख की चमक-सी डरावनी होती है। सफेद बाल पर हीरे का टीका फीका नजर आता है। बाल से सूने सर पर मोतियों की फैयाज़ी कुछ माँग नहीं भरती। देखो विधि की विडम्बना, तुम्हारे सोने जैसे गात पर मारकीन को मोटी धोती और उस खब्बीस भूतनी के बदन पर सैकड़ो बटर सोने की बरबादी! जिस मुख की सहज आभा के आगे कौस्तुभ की ज्योति भी फीकी नजर आती है, उसी कमलानन पर विषाद का सनातन निकेतन होना प्रजापति का कितना कठोर फरमान है! बेला, जब मैं तुम्हें देखता हूँ. "

उसी दम बेला ने आँखे उठाईं और गुरुवर की नज़र को अपने चेहरे पर मूर्च्छित पाया! वह ज़रा-सी सहमी, आँचल में सिमटी और फौरन आँखो को ज़मीन पर झुका दिया। वह मन-ही-मन सोचने लगी—"आज पडितजी कहाँ से कहाँ आ गये? मेरे मुख की इतनी सरस आलोचना की ज़रूरत क्या

थी ? मेरे सामने पत्नी के ऊपर ऐसी फबतियाँ क्यों चुस्त कीं ? क्या आज सुबह के—मिश्रानी के ख़ूनी नाख़न से—खुरचे हुए मेरे दिल के फफोलो पर मरहम देने की यह विचित्र चेष्टा है ?"

गिरिधारीलाल ने उसी क्षण बेला के चेहरे पर उठते हुए संशय के प्रतिबिम्ब को ताड़ लिया और बात को पलट देना चाहा, पर बेला उसी तरह सर झुकाये बोली—"महाराज ! मालकिन मेरी बाट जोहती होगी, देर होने से फिर "

"ठहरो"—मिश्रजी ने जरा जोर देकर कहा। बेला उठती-उठती बैठ गई।

"हाँ, मै क्या कह रहा था ? बेला ! जब मैं तुम्हें देखता हूँ"—उन्होने इस जुमले को दुहराकर शुरू किया, ताकि यह न झलके कि बात पलटी है—"और फिर निगाह फेरकर अपने-आपको देखता हूँ, तो मेरे जीवन का चिरन्तन लक्ष्य मुझे धूमिल नजर आता है। मेरे विश्वास की भित्ति मसकी जाती है; मेरा धर्म का सोता बालू की रेती मे सूखता नजर आता है। बेला, मैंने अपने जीवन मे सैकड़ो मन्दिरो की स्थापना कराई—राम मन्दिर, शिव-मन्दिर, दुर्गा-मन्दिर, कृष्ण-मन्दिर और न जाने कितने छोटे-बड़े देवालय ! मेरी शिष्य-मडली मे कितने ऐसे धर्म-प्राण धनकुबेर हैं, जिन्होंने मन्दिरो के भीतरी प्राङ्गण मे मोहरो और मणियो का गच पिटवा डाला। उन मन्दिरों के साये मे अशर्फियो का बघार देकर तरह-तरह के तर माल तैयार होते हैं और इस षट्रस प्रसाद को पाकर कितने पुजारियो और आचारियो के तन पर मोटी

चर्बियाँ चढ़ गईं। और, इतना ही नहीं; यह समझकर कि यज्ञ-द्वारा देवतागण तृप्त होकर मानव-जीवन को आनन्दमय करते हैं, मैंने इन्हीं हाथों से कितने यज्ञ-याग—सोम और रुद्र, शिव और शक्ति, शतचंडी और गायत्री महायज्ञ—करा डाले। और, एक-एक अनुष्ठान के आयोजन में--एक एक पुरश्चरण के हवन मे--सोने और चाँदी की, साकल और मनो घी की, वर्षा करा डाली है।"

"महाराज!.. .."

"ठहरो—मुझे कह लेने दो.. हाँ, मेरे शिष्यो के घर जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, नवरात्रि, सरस्वतीपूजा, लक्ष्मी-पूजा, गणपति-पूजा, सूर्य-पूजा आदि मुख्य मुख्य पर्व और पार्व्वण पर, तर्पण और पूजन पर, उपनयन और ध्वजारोपण पर, तालाब इंदारा और वाटिका के विवाह सम्करण पर जो शहाना खर्च और धूमधाम होती है, उसे तुम देखती, तो दग रह जाती! मैं अबतक अपने शिष्यो को निरन्तर उपदेश देता रहा कि यही विधि-विधान और उनके जीवन का पथ--उनके कल्याण का सोपान है, पर आज मेरे गुरुपद का सिंहासन एक बालिका की आहो से पीपल की पत्ती की तरह हिल रहा है, मेरे सर पर मेरे धर्म-गौरव के छत्र और चमर शायद मेरी खिल्लियाँ उड़ा रहे हैं! आज मैं समझता हूँ कि यदि मैं शिष्यो को शास्त्रविहित पार-लौकिक पुण्य-चयन की ओर न ले जाकर दुनिया की गलियों की ओर ले जाता और उन्हें अत्याचार की फ़ौजो से लोहा लेने को

ललकारता--उन्हें स्वर्ग का सब्जबाग़ न दिखाकर दुनिया के दर्द की तसवीर दिखाता--उन्हें धर्मात्मा न बनाकर इन्सान बनाता-कर्मकांडी न बनाकर कर्मनिष्ठ बनाता—यज्ञ याग एवं पर्व-पार्वण के साये में न बिठाकर उन्हें सेवा और त्याग की तपिश में तपाता—उनसे मन्दिर न उठवाकर समाज-हित के बीड़े उठ-वाता--उनके दिमाग में शास्त्रीय विधि-निषेधों की रूढ़ियाँ न ठूँस-कर उनकी हड्डियों में दधीचि की फौलादी शक्ति भरता—और खुद मैं हिन्दू-धर्म की ठीकेदारी न कर हिन्दू समाज की पहरेदारी करता, तो बहुत मुमकिन है कि जीवन की इस गोधूली में आकर मुझे आत्म-दर्शन का सन्ताप न उठाना पड़ता, और मेरे शिष्यों की शक्ति और सामर्थ्य का सुन्दर सदुपयोग तो होता ही, उनकी आत्मा का सच्चा उत्कर्ष भी होता।"

"महाराज ! तो अभी बिगड़ा ही क्या है ? आपकी मेधा और बुद्धि, तेज और तर्जा, दोनों कायम है। दीन और दुनिया दोनों का बराबर अनुशीलन सोने में सुगन्ध है। फिर इन दोनों का मेल तो कुछ नामुमकिन नहीं। आप लोक और परलोक दोनों की···"

"नहीं बेला ! लोक के साथ परलोक का परिशीलन ज़मीन पर क़दम रखे आसमान से सितारे तोड़ना है। तुम लोक के आवर्त्त में रहकर परलोक की सेवा पूरी नहीं कर सकती। परलोक के चिन्तन में डूबकर दुनिया के ज़ालिमों के सर पर पैर रख यश-जटित तख्त पर बैठना मुमकिन नहीं। जबतक तुम्हारे सर पर छत्र और चमर का बितान है, तबतक कोपीन और कमंडल को महत्ता

तुम्हारे हृदय में कदापि नहीं धँसती। दोनों को बराबर सँभाल-कर चलनेवाला विरला ही कोई कर्मयोगी होगा। बल्कल को चादर पर कमख़ाब की पट्टी नहीं पड़ती, न कोपीन की कोर पर कलाबत्तू का काम मुमकिन है। लोक से परलोक सधता है या नहीं, भगवान् जाने; पर परलोक के साथ लोक को साधना टेढ़ी खीर है। जनक का ज़िक्र छोड़ो—वे तो देह रहते विदेह थे। यहाँ तो हमारा तुम्हारा सवाल है। किसी को एक साथ दो लगन नहीं होती। मन की गति ही ऐसी है। दो-तरफ़ी खिचाव मे पड़-कर यह किसी का नहीं रहता। वह एक रस है, एकबग्गा है—'एको देव: केशवो वा शिवो वा, एका नारी सुन्दरी वा दरी वा।' इसीलिये बेला! आज मैं मंजिल के किनारे आकर जब पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो तुम्हारे चेहरे की करुण कोमल कान्ति मेरे जीवन के धूमिल आकाश को उद्भासित कर देती है, और मेरी तमाम परलोक की कमाई कानी चित्ती के बराबर नजर आती है। सच कहता हूँ, मेरी इतने दिनों की सींची हुई खेती बेकार हो गई। आज जब फसल काटने का दिन आया, तो कोई मेरी आँखों में उँगली देकर कह रहा है-'देखते नहीं, तुम्हारी फूली-फली फलियों मे दाने तो बैठे नहीं और अब डाँठ बटोरकर क्या करोगे? आज अरमानों का जनाज़ा.....'

"नहीं, आप ऐसा न कहें, आपकी खेती कभी व्यर्थ न होगी। इसी ढेरी के दाने से तो बहुतो का गुज़र होता है।"—बेला ने बात काटकर आँखों को तर करते हुए कहा!

"बेला ! मैं क्या कहूँ ? यह कहने की बात है ? जब रस की ओर हाथ बढ़ाता हूँ, तब जीवन में यश नहीं मिलता; और जब यश की ओर बढ़ाता हूँ, तब जीवन में रस नहीं मिलता। मैं जानता हूँ, यश मृत्युञ्जयी है और रस चार दिन की चाँदनी; मगर जब यश मिलने का नहीं, तब रस भी क्यों छोड़ दूँ ? सच कहता हूँ, वैद्य होकर भी रोगी के आगे आज मैं अपने छुपे मर्ज़ का इज़हार कर रहा हूँ। शायद तुम न आतीं, तो मुझे इस तड़प का पता न चलता। मेरी पत्नी के जहरीले दाँत मेरी नस-नस मे चुभे न रहते, तो शायद मेरी धमनी का रक्त न आज इतना चंचल होता, न गरम। पर, अब तो यह दर्द कलेजे से उठकर ज़ब्त के बाँध को—मेरी मर्यादा की किल्ली को—हिलाने लगा। अब तुम्हीं कहो, इस मर्ज़ की दवा कहाँ मिलेगी ? मुझ पर तरस खाकर···"

गिरिधारीलाल की आवाज़ इतनी कमज़ोर पड़ गई, मानो कलेजे से उठकर दर्द ने उनकी ज़बान ऐंठ दी।

बेला ज़रा-सी घबराई, कुछ सहमी और आँखे उठाती हुई दुबारा उठ खड़ी हुई। गिरिधारीलाल की अधखुली अपलक आँखें, सिकुड़ी हुई भवें और उनका विचित्र विकृत मुख उसकी समझ के परे के सिगनल थे। उसके मन मे एक अनिश्चित आशङ्का-सी छा गई। वह एक क्षण चुप सी खड़ी रही। फिर आँचल सँभालती हुई दाहिनी ओर मुड़ी कि खुले हुए किवाड़ के पल्ले से झटका खाकर उसके आँचल का एक छोर सामने से सरक गया।

मिश्रजी ने इसी क्षणिक उलझन में जिस रहस्यमय स्वप्न-सुमेरु

की बुलन्दी की झलक देख ली, वह दृष्टिपथ से होती हुई कलेजे तक उतर गई। एक अभूतपूर्व पुलक, एक मीठी वेदना, एक उग्र उल्लास, एक अस्पष्ट आतङ्क—एक साथ उनके हृदय मे आलोड़ित होकर एक विचित्र रस—कमाम—बन गये। चारो का खमीर उठकर उनकी चेतना पर छा गया। वे खुश हुए, मुस्कुराये, पर उसी क्षण इस खुशी के आविर्भाव से सन्न हुए और सोच मे डूब गये—"भगवन्! आज यह कैसी प्रेरणा है कि अचानक मेरी अन्त शीला भाव-लहरी इस अबोध बालिका के आगे उबल पड़ी? मेरे हृदय की निहित वेदना—मेरे विप्लवी विचार क्योंकर आज परदे से बाहर आ गये? क्या सचमुच मेरे मन पर इस चितवन का जादू चल गया? यह वसन्त स्पन्दन—यह मलय सिहरन—कहाँ से आया? साथ साथ, यह आकुलता कहाँ से आई? शिव! शिव!! मै पागल तो नहीं हो रहा हूँ?"

पाडतजा फारन् उठ खड़ हुए आर आलमारो का खोलकर 'तेजा विन्दुपनिपत्' का निकाला, कुशासन पर आकर बठ गय आर चूण-कुन्तल का तरह बिखरे हुए मन का समेटन का काशश करन लगे।

रसाल-मुकुलो के सारभ से लदा हुई अपराह्न-वायु खुली हुई खिड़कियो से आकर उनकी गर्दन की चादर के छोर स उलझ रही थी। ऑगन मे फूले हुए नीम का मर्मर, मुन्नी की मचलो की आवाज़ से मिलकर, तीसरे पहर की निरानन्द निस्तब्धता को चीर रहा था।

पंडितजी ने न जाने किस उत्तेजना पर विजय पाने की ग़रज़ से गरज-गरजकर पढ़ना शुरू किया—

"न मे दोषा न मे लिङ्गं न मे चक्षुर्न मे मनः।
न मे श्रोत्रं न मे नासा न मे जिह्वा न मे करः॥
न मे कालो न मे देशो न मे वस्तुर्न मे मतिः।
न मे स्नानं न मे सन्ध्या न मे दैवं न मे स्थलम्॥
न मे तीर्थं न मे सेवा न मे ज्ञान न मे पदम्।
न मे पुण्यं न मे पाप न मे कार्य्यं न मे शुभम्॥
न मे ज्ञाता न मे ज्ञान न मे ज्ञेयं न मे स्वयम्।
न मे तुभ्यं न मे मह्य न मे त्व च न मे त्वहम्॥"

———

अष्टम परिच्छेद

उपनिषत् के पन्ने चाटने से किसी की रस की चाट नहीं जाती, ब्रह्म-सूत्रो के पठन-पाठन से किसी के मन का मनन नहीं होता। प्रतिभा का विकास और है, आत्मज्ञान का प्रकाश और, तत्त्व जानना और है, ममत्व छूटना और, उँगली पर मिज़राब चढ़ाना और है, तारो से सुर उठाना और। दर्शन की छान-बीन होकर क्या हुई, जब मन की छान-बीन नहीं हुई? उधर शास्त्र-वासना से तर्क बढ़ता है, इधर तमाम वासना को तर्क करना है! मञ्च पर बैठकर गीता के पदो पर बाल की खाल खींचनेवाले कुछ उसके तत्त्वा पर चलनेवाले नहीं होते। मन से मन को तोड़ना घी से आग बुझाने के बराबर कठिन है। उत्तर-मीमासा की विद्वत्ता से किसी को समता नहीं आती, न ममता जाती है। कर्त्तृत्व का अभिमान किवा भीतर-बाहर का व्यवधान मिटाना दर्शन के इम्तहान मे स्वर्णपदक का इनाम लेना नहीं है। विद्या-

वारिधि की उपाधि पाने से कुछ उस परा विद्याकी उपलब्धि नहीं होती।

मगर इससे यह न समझना चाहिये कि वेदान्त और उपनिषत् का अनुशीलन निरर्थक है। जिज्ञासा आती है, विचार पनपता है। पीतल और सोने की पहचान आती है। मुमकिन है, मन मे ज्ञान की सत्ता अङ्कुर दे उठे, पर जबतक वैराग्य और अभ्यास का सिञ्चन अहर्निश नहीं चलता--सत्सङ्ग का अनुकूल वायुमडल नहीं रहता, तबतक वह अकुर कभी पल्लवित नहीं हो सकता, और एक ज़रा-सी वासना का आँधा मे उखड़कर लापता हो सकता है।

गिरधारीलाल के मन की हाँड़ी मे अभी चावल फूट ही रहे थे—कुछ मिल नही थे, चूकि वैराग्य की आँच बड़ी पतली लगती थी। यही बात थी कि ज्योंही बेला के आँचल की हवा से वह आँच ठढा हो चली, त्योंही उन्होने हाँड़ी का उठाकर टटोला, तो कुल चावल अधपके या कच्चे निकले! उनके मन मे तो वैराग्य लहरा नहीं था, महज़ धुआँ दे रहा था, इसीसे रस पका नहीं—कच्चा ही रह गया!

काम के कीटाणु कुछ ऐसे कठजीव हैं कि सन्यास के हज़ार इजेक्शन देने पर भी जल्द नेस्तनाबूद नहीं होते। वे हमारे रक्त के परदो में इस तरह छिप जाते हैं कि ऊपर से पता नहीं चलता; पर जहाँ ज़रा-सी अनुकूल हवा चली कि धमनी के भीतर इनके पनपने मे देर नहीं लगती और मनकी सत्ता पर कब्ज़ा कर लेना इनके बायें हाथ का खेल हो जाता है। अक्सर देखा गया है कि

गीता और गायत्री के जप पर भगाया हुआ जवानी का भूत बुढापे मे लौटकर गरदन टीपता है !

गिरधारीलाल ने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा था। उन्होने एक-एक उपनिषत् को घोख डाला था, प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गों के धर्मग्रन्थो पर आँखो को फोड़ डाला था, गीता के अठारहों अध्यायो को कंठस्थ कर रखा था, और तमाम मीमासा और पञ्चदशी उनकी जबान पर थी। उन्हें अभ्यास का भी काफी तजरबा था। वे पद्मासन पर बैठकर ठुड्डी को कंठकूप में डालते, प्रणव का ध्यान करते, त्रिकुटी पर दृष्टि की कुटी बाँधते, तथा त्राटक के काँटों पर लोट भी चुके थे। उन्होने कुछ दिनो तक खेचरी-मुद्रा से प्राणवायु को ब्रह्मरन्ध्र मे रोकने की दीक्षा भी ली, पर इस अवरोध से न तो बोध हुआ, न समाधि मे चित्त का निरोध हुआ। जमाने तक वे 'शिवस्वरोदय' की बारीकियो को हल करते रहे, पर वह वाछित ज्ञानोदय कहाँ हो सका ? विषयो के पाश से वृत्ति की निवृत्ति टेढ़ी खीर निकली।

पंडितजी तो मन के तबके से कभी ऊपर उठ न सके थे, उनकी साधना कभी मन की साध का श्राद्ध करके शुद्ध न हो सकी थी, फिर उस पारस-मणि का स्पर्श मिलता तो कहाँ मिलता ! हाँ, इतना अवश्य हुआ कि मन मे ठहराव—एक मंज़िल—का पता चला। कर्मकांड की उलझनो से तबीयत ऊब चली। दुनिया का रंग जरा फीका पड़ा; पर नीरस नहीं हुआ। दुनिया की हवा ज़रा तबदील होने लगी, कुछ रुकी नहीं।

पर, आज बेला ने अचानक आकर हवा भी पलट दी, रगत भी भर दी। चमन के फूलो से फिर खुशबू मिलने लगी। 'गीत-गोविन्द' के छन्दो से फिर रस टपक पड़े। मन के कोने में कामना फिर कुनमुनाई, कालिदास की क्यारियो मे कोयल की कूक फिर सुन पड़ी। यौवन के जिस ज्वर को उन्होने वेदान्त की कुनैन देकर दबा दिया था, उसे फागुन की हल्की बयार ने फिर उभार दिया और कलेजा इस अचानक उत्ताप से दहल उठा। तकिये के नीचे वह परिचित ज्वराङ्कुश की वटी मौजूद थी, लेकिन उसे पुर-असर करने के लिये उनकी प्रकृति की ओर से कुछ मदद नहीं थी।

वे बार-बार सोचते—आखिर गीता तो इसी मर्ज़ की दवा थी, फिर कारगर क्यो नहीं होती? गीता न सही, पञ्चदशी है। पञ्चदशी न सही, उपनिषत् हैं। विवेक-चूड़ामणि है, वेदान्त-सार है—ब्रह्मसूत्र हैं। किसी में असर न रहा?

बिचारे गिरिधारीलाल सब समझकर भी भूल रहे थे। संस्कार तो था नहीं, वैराग्य तो फूँकता नहीं था, फिर किताब किस मर्ज़ की दवा होती?

बादाम और घी की तासीर तभी खुलती है, जब उन्हें पचाने की शरीर मे सत्ता होती है। अमावरी हाथी कीपीठ पर बँधती है, कुछ बकरी की पीठ पर नहीं। शास्त्र-वासना भी एक वासना है; तर्क की प्रवृत्ति भी एक प्रवृत्ति है। हमारी मानसिक प्रतिभा की दीप्ति हमारे मोह के अन्धकार को चीरती नहीं, वरञ्च उस तिमिर

के तूमार में चार चाँद लगा देती है।

वे घबरा उठे—'अब क्या करूँ? मन को कैसे मना लूँ?' वे कमरे की खिड़कियों को बन्द करके दीवार पर टँगी हुई श्री-कृष्ण की तसवीर के सामने खड़े होकर गद्‌गद् कंठ से पुकारते—

"चंचलं हि मन कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥"

और उसी वक्त उनके कानों मे आवाज आती—

"असशयं महावाहो मनो दुर्निग्रह चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥"

वे उठकर खिड़कियों को खोल देते और सिद्धासन पर बैठकर मन को लय करने का अभ्यास करते या चित्त को संयत करके गायत्री के मत्र जपते। तब तक अचानक उनकी आँखे नीचे आँगन पर फिरतीं और कुएँ पर पानी खींचती हुई बेला के परिपुष्ट अङ्गों की चापल्य-लीला—उसकी सुगौर सुडौल भुजाओं की संचालन-भंगिमा—उनकी चितवन को थाम लेती, और फिर चित्त निरोध का सारा प्रयास फिस हो जाता!

वे आँखे गड़ाकर देखते कि बेला की गोद के गागर से रस छलक रहा है और छाती के रसकलश पर आँचल की कोर भींग-भींगकर इठला रही है। उस कसरत से बेला का चेहरा तमतमा उठा है और पसीने की नन्ही-नन्ही बूँदे उग आने से वह नीहार-हाराछित यूथिका की तरह खिल रही है।

ज्योंही सुबह को उनकी आँखे खुलतीं और 'नारायण-नारायण'

कहते वे चारपाई से उठते, तो क्या देखते कि नीचे आँगन मे नीम के पेड़ के साये में खड़ी वह बाँस की लग्गी के सहारे दाँतून के लिये नीम की टहनियाँ तोड़ रही है, और ज्यो-ज्यो वह हाथो को ऊपर उठाकर झटके देती है, त्यों-त्यो उसका आँचल माथे से खिसककर कमर पर सरक आता है और उसके उभरे हुए उत्तुङ्ग उरोज के शतदल पर बालार्क की गुलाबी किरणो का वितान बर्फानी चोटियो पर उषा की मुस्कान का मजा दे रहा है। दोनो हाथ उठाकर डालियों को थामती हुई वह तसवीर आँखों में खुब जाती, फिर वह प्रातः रूटीन की रटन—"शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि सनातनोऽसि, सत्योऽसि मुक्तोऽसि निरञ्जनोऽसि"—तालू के तले लापता हो जाती, और दिल की दुआ 'बिहारी' के दोहे के रूप मे जबान पर बरजस्ता ऊठ आती—'नीके है छींके छुए, ऐसी ही रहु नारि'!

उठते-बैठते, सोते-टहलते—हर वक्त वह सूरत उनकी बरौनियों के अन्तराल मे चक्कर काटती और उनके मनोयोग की तमाम चेष्टाओ को व्यर्थ कर देती थी। कभी-कभी वे तंग आकर झीलवाले मठ पर चले जाते और मठ की पाठशाला मे जाकर छात्रो को पढ़ाने बैठ जाते। लेकिन, जहाँ कालिदास और श्रीहर्ष के सरस श्लोकों की व्याख्या शुरू होती कि उनका मन उनके हाथो से निकलकर सरपट घर पर वापस दौड़ जाता और वे शकुन्तला और दमयन्ती के चित्र खींचते वक्त बेला का चित्र देखने लगते थे।

एक दिन मन की इस कमज़ोरी पर वे बेतरह झल्ला उठे और शिष्यों के सामने बेवजह तैश मे आकर उन्होंने कालिदास, श्रीहर्ष, अमरु इत्यादि की शृंगारपूर्ण रचनाओ को ब्रह्मचारियों के लिए पढ़ना नितान्त निन्दनीय ठहराया। उन्होंने घोषणा की कि 'जिन लोगो ने दंडधारी छात्रो के लिए ऐसे कुरुचिपूर्ण ग्रन्थों का चुनाव किया है, उनकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई है' और नैषध को उठाकर कमरे के बाहर फेक दिया! ऐसे ग्रन्थो को बन्द कर देने का आदेश देकर उन्होने शङ्कराचार्य-कृत 'प्रश्नोत्तरी-मणिरत्नमाला' उठाई और बड़े चाव से पढ़ना आरम्भ किया, और—

"द्वारं किमेकं नरकस्य नारी,"
"सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री,"
"कि तद्विष भाति सुधोपमं स्त्री,"
"किमत्र हेयं कनकं च कान्ता"—

आदि कई पदो की घटो व्याख्या की। फिर, कामिनी को जगत् के तमाम अनर्थों का मूल बताया, और अचानक उठकर कमरे से बाहर निकल गये।

शिष्य समाज मे एक अजीब सनसनी-सी फैल गई। एक मजाक़पसन्द अध्यापक ने अपने सहयोगी के कानों मे झुककर कहा—"आज महंतजी औरतों से बेहद बेज़ार नजर आते है! बात क्या है? वह पुरानी हवा हवा हो गई! ज़रूर मिश्रानी ने जनाब को हल्दी-गुड़ पिलाया होगा! नहीं तो, आज नारी के नाम पर इस क़दर लाल-पीले न होते!"

जब वे घर से मठ पर आते, तब कम-से कम हफ्ते या पखवारे का प्रोग्राम बनाकर आते। श्रीधर को वे अब साथ लेकर आते, ताकि उसके पाठ मे कोई क्षति न हो। घर पर भगवान् की सेवा पूजा के लिए मुहल्ले के बूढ़े जयदेव मिश्र की नियुक्ति हुई। नियमपूर्वक वे श्रीधर को पञ्चदशी पढ़ाते थे। कभी-कभी भगवद्गीता भी हो जाया करती थी। यद्यपि श्रीधर के चित्त की स्वाभाविक प्रवणता साहित्य और काव्य की अनुचरी थी, तथापि वेदान्त के सिद्धान्तों के परिशीलन मे उसने काफी दिलचस्पी दिखाई। वह गाने-बजाने मे भी निपुण था। जब वह हारमोनियम पर 'ललित-लवङ्ग-लता-परिशीलन कोमल-मलय-समीरे'—जैसे छन्दों को ललित स्वर से गाता, तब सुननेवालो की आँखों मे भक्ति छलछला उठती। उसके मुख से 'गीत-गोविन्द की' सरस पंक्तियाँ माधुर्य की निर्झरिणी बनकर कानो मे पीयूष ढालती थीं। उठते-बैठते वह सदा कुछ-न-कुछ गुनगुनाया करता था और एक-एक पद पर उसके मुख से फूल झड़ते थे।

श्रीधर के चेहरे पर प्रतिभा की निसर्ग ज्योति थी। उसके शरीर की कान्ति पर प्रतिभा की यह दीप्ति एक विचित्र आभा लाती। वह आधे घंटे तक शीर्षासन पर खड़ा हो सकता था। जोड़ियों के फेरने में उसमें खास निपुणता थी। उसका बदन पाहन था, तो मन मक्खन। शरीर में प्राण था, रक्त में तूफान। भुजाओं में इस्पात था, छाती में हृदय। उसके विचार कुछ आधुनिक ढाँचे पर ढले थे। समाज और राष्ट्र के प्रश्नो पर तर्क

करना उसे विशेष प्रिय था। बेला के दुख-दरद पर उसका कलेजा पसीज उठता। कभी-कभी तो वह अपने चचा से भी इन भावो को प्रकट कर देता था। यद्यपि यह हमदर्दी तरल थी, तो भी गिरिधारीलाल के मन मे यह आशङ्का झाँकने लगी थी कि बेला की चितवन मे गर्म होकर यह गाढ़ी हो सकती है। इसलिये उस पर एक आँख रखना और बाहर जाते समय उसे साथ ले जाना उन्होंने जरूरी समझ रखा था।

इस बार मठ पर आकर उनका पखवारे का प्रोग्राम अचानक उथल-पुथल हो गया और दो-चार दिनो मे ही वे वापस जाने को तैयार हो गये। किसी ने नहीं समझा कि इस अचानक उदासी का सबब क्या है। एक दिन उन्हें पिनक आई, तो खिचड़ी मूँछो का भी सफाया करा डाला और यह आवेग भी खलल-दिमागी का मजाक होकर रह गया। चौर से निवृत्त होकर वे घंटो किसी सोच मे पड़े रहे और उनकी आँखो से आँसू बह चले। शायद इस कारगुजारी से उनको बड़ी ग्लानि हुई और खीस का असर उन्होने पान की गिलौरियो के सर पर उतारा। बे बान के वे पचीसो बीड़े पान चट कर गये। जिस मन को मुट्ठी में करने के लिये वे इतनी बन्दिशे करते, वही मन उनके रुख को कब किधर मोड़ देगा, इसका ठीक पता उन्हे खुद भी नहीं चलता और काठ के पुतले की तरह वे उसकी उँगलियो पर नाचते रहते।

अपनी दुर्बलता पर उनको बड़ा मलाल हुआ और मन की इस निरंकुशता पर वे मन-ही-मन बहुत नादिम हुए। वे कमरा

बन्द करके भगवान् के चरणो मे जा गिरे, और रुँधे गले से आत्मबल की भीख माँगी—"भगवन् ! क्या सचमुच मेरा पतन ही तुम्हारा ध्येय है ? क्या तुम्हारी इतने दिनो की सेवा बे-असर हो गई ? सच कहो, मुझ पर किसी ग्रह का फेर है या मेरे सर पर शैतान सवार हो गया है ? आखिर मेरा अंजाम क्या है ? अब इस सफेदी मे मुझे स्याही लगेगी—सर पर चन्दन के बदले चूने का टीका होगा ? प्रभो ! क्या वासना का तन्दूर कभी ठंढा नहीं होता ? यह मेरे अपराधो की सजा है या मेरे क्षुधित प्राणों का तकाजा ? यह कैसी विडम्बना है, नाथ ! मैं अपने हाथो अपनी नाक तराशने चला हूँ—अपना पतन अपनी आँखो से देख रहा हूँ, फिर भी न जाने किस प्रेरणा पर उसी खन्दक मे खिंचा जा रहा हूँ। 'केनापि-देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।' नही-नहीं, यह मेरे मन का चोर है। मुझे इस दूध की मक्खी को निकालकर फेंक देना होगा। मै अपने भविष्य को नष्ट नहीं कर सकता। मैं हरगिज़ नारी की चितवन का शिकार नहीं बनूँगा। बेला को कहीं दूर भेज दूँगा। इस मकान मे रखना हरगिज़ निरापद नहीं है। अपना तो कशम-कश है ही, मिश्रानी से रोजमर्रे की खच खच भी है। श्रीधर पर भी चौकसी रखना जरूरी हो गया है। मै इस बला को अपने सर क्यो ढोने लगा ? आखिर नारी की जाति है। मेरी सरकन्दनी क्यो हो ? और मैं उसके दर्द की दवा ही क्या करूँगा ? जिसने दर्द दिया है, उसी को दवा भी देना है।"

पंडितजी का चित्त शान्त हो गया और वे देर तक खड़े-खड़े भगवान् की प्रार्थना मे मसरूफ रहे। आज बड़े प्रेम से उन्होने पूजन किया। अपने हाथो से पञ्चामृत-स्नान कराया, शुद्धोदक-स्नान कराया, विल्वपत्र चढ़ाया, मन्दार की माला डाली, चन्दन छिड़का, केसर और कुमकुम रखा, आरती उतारी, भोग लगाया और अपराध-भजन-स्तोत्रों को चाव से पढ़ा। फिर श्रीधर ने हारमोनियम पर सरस भजन छेड़ा। कमरे के ज़र्रे-ज़र्रे पर संगीत का सुर थिरकने लगा। श्रीधर के सुर मे कुछ ऐसा दर्द था—गले मे कुछ ऐसा लोच कि सुननेवाले बरबस कलेजा थाम लेते थे।

बाहर चौखट के पास कमला और बेला भगवान् का पुण्य प्रसाद पाने को कभी से खड़ी थीं। बेला की गोद में मुन्नी चुन-मुन कर रही थी, फिर भी बेला ध्वनिमुग्ध मृगी-सी उस ब्राह्मण-कुमार को—हारमोनियम के दूध-से होठों पर नाचती हुई उसकी सुन्दर उँगलियो को—एक टक देखने लगी। उसकी आँखों में एक विचित्र आभा थी—उसके चेहरे पर एक विचित्र सुषमा!

रात हो आई। यामिनी के जूड़े पर सप्तर्षियो की सतलरी चमक उठी। गाना बन्द हुआ। श्रीधर ने एक लम्बी साँस ली और उठकर प्रसाद बाँटा। बेला के पास जरा ठमककर मुन्नी को प्यार किया और गोद मे लेने को हाथ बढ़ाया। मुन्नी ने तिनककर बेला की गर्दन पकड़ ली। श्रीधर ने पजीरी और मिसरी दिखाई। मुन्नी ने गोद से उचककर हाथो को बढ़ा दिया। बेला हँस पड़ी, श्रीधर ने भी मुस्कुरा दिया। कुशासन पर बैठे-

बैठे पडितजी की तेज़ नज़र जो इधर पड़ी, तो उनके हृदय के भाव एकबारगी खौलकर जबान पर आ गये। उन्होने ज़रा तीखे स्वर से पुकारा--"बेला ! ज़रा सुनती जाना।"

पंडितजी के कंठ में दृढ़ता का आभास है। आवाज़ कोड़े के सपाटे की तरह कानो मे पड़ी। सभी सकते में आ गये।

बेला ने झट मुन्नी को कमला की गोद मे दे दिया और ज़रा सकपकाती हुई सामने आकर खड़ी हो गई।

पंडितजी ने निगाह उठाकर बेला के चेहरे पर रखा, और गभीर आवाज़ से बोले--"सुनो बेला ! मैंने तुम्हारे भविष्य के बारे मे बहुत-कुछ सोचा है। यहाँ की उलझन मे रहकर तुम्हें भजन-पूजन की कभी फ़ुरसत नहीं होगी। तुम सुबह से शाम तक खटती रहोगी और इस बेकाम के काम में तुम्हारी मिट्टी पलीद होगी। मै घर से मजबूर हूँ। जो कुछ सोच-समझकर मैंने तुम्हें यहाँ रखा, वह तो फला नहीं।"

"तो महाराज ! मुझे क्या आदेश है ?" बेला ने उन्हें चकित दृष्टि से देखा और सर झुकाकर पूछा।

"तुम कुछ दिन जाकर तीर्थ मे रहो। मैं तो समझता हूँ कि तुम्हें जयदेव मिश्र के साथ अयोध्या भेज दूँ। वहाँ आठों पहर हरिकथा का सोत उमड़ा रहता है और उसी में डुबकियाँ लेकर तुम्हें शान्ति मिलेगी। तुम्हारे सर पर तीर्थ की रज . . ."

"महाराज ! आपके चरणों की धूलि ही मेरे लिए तीर्थ-रज है। इस मकान के बाहर जाने मे भी मेरा कलेजा काँप उठता है !"

"चचाजी !"—श्रीधर ने बात काटकर कहा-"अकेली अबला के लिए कोई भी तीर्थ निरापद नहीं है। वहाँ पुजारियो और पंडों के रूप मे बहुरूपियो की टोलियाँ हैं--भेड़ के भेष मे भेड़िये भरे हैं। मेरा तो ख्याल है कि बेला का यह आश्रय-केन्द्र अगर छूटा ·· "

"मैंने तुम्हारी राय नहीं तलब की है श्रीधर !"—पडितजी ने कुछ चिढ़कर कहा--"यहाँ तुम्हारी चची की जबान चाबुक की चोट रखती है—शान चढ़ी कैंची हो रही है, बिचारी बेला की पीठ पर सैकड़ो साटें उखड़ गई होंगी। आज यह कलमुँही होती है,कल जलमुँही होती है। इस लोलालोली मे यह कबतक पड़ी रहेगी ? यहाँ खाक धर्म की चर्चा होगी ?"

'महाराज ! सच कहती हूँ, मुझे मालकिन की झिड़किया क जरा भी मलाल नहीं है। सैकड़ो झझट मे भी मुझे जो यहाँ शान्ति है, वह दुनिया के किसी कोने मे मुझे मिलने की नहीं।"

"चचाजी ! यह बिलकुल अनाथ हो जायगी। चची की जबान लाख कड़ी हो, पर तबीयत कड़ी नहीं। उनकी रसन में रस न हो सही, हृदय तो रस से आप्लुत है !"—श्रीधर ने बड़ी आजिजी से कहा।

"तुम्हे दखल देने की जरूरत नहीं ! मैं तुम्हारी चची को तुमसे ज्यादा समझता हूँ। उनके अन्तर में जो रस है, उसे मेरा रोआँ-रोआँ जानता है !"—पडितजी ने जरा रुख बदलकर बात कही।

श्रीधर को चोट-सी लगी। आज तक चचा की जानिब से उसे ऐसी रुखाई कभी न मिली थी। वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गया और किवाड़ की आड़ मे ठमककर खड़ा हो गया। वह चचा की बात का प्रतिवाद नहीं कर सकता था, और बेला के निकाले जाने के सवाल से उसका कलेजा निकल रहा था। वह सोचने लगा—'बेला के सर पर तो चचा की सहृदयता की छाया निरन्तर रहती थी, आज वह कृपा-दृष्टि उचटती क्यो नज़र आती है? तीर्थवास की सज़ा तो सूली की सज़ा होगी। यह घर की परकटी कबूतरी बाज़ो के चंगुल से कबतक बचेगी?—भेड़िया के घेरे में बकरी कबतक ख़ैर मनाएगी?"

"सुनो बेला!" पंडितजी ने एक ही बार चार बीड़े मुँह मे ठेलते-ठेलते कहा। फिर उनकी ज़बान कद हो गई। वे अचानक रुक गये और उनकी आँखे बन्द हो गईं। कुछ कहा जाता न था, और बिना कहे चैन न था। इस हैस-बैस मे उनकी पेशानी पर शिकन पड़ गई, भवें सिकुड़ गईं। उनके चेहरे पर एक रग आ रहा था, दूसरा रंग जा रहा था।

"तुम्हें कल पौ-फटते यहाँ से यात्रा कर देनी ज़रूरी है। तुम्हें खर्च-वर्च की कोई दिक्कत न होगी। मिश्रजी तुम्हें अयोध्या पहुँचा देगे और किसी निरापद स्थान मे तुम्हारी सुख-सुविधा का तमाम इन्तजाम करा देगे।"—काँपती ज़बान से किसी तरह इतना फेंक-कर लड़खड़ाते पैरो से वे फौरन् बाहर निकल गये—इस खयाल से कि बेला के सूखे होठो की करुण कातर चेष्टा—मानसिक वेदना के

भार से झुकी हुई उसकी आँखो के बेबस आँसू--उनकी सुकुमार मनोवृत्तियो को कहीं पराभूत न कर दें, वे एक क्षण भी उस कमरे मे ठहर न सके।

बेला कुछ देर तक चुप खड़ी रही। फिर धीरे-धीरे बाहर निकल गई। किवाड़ के पास आकर वह फिर मुड़ी और गरदन में आँचल बाँधकर भगवान् शकर के चरणों पर गिरी—टूटा हुआ दिल दिखलाया—सिसकियो में समेटकर प्रार्थनाएँ कीं, और लौट पड़ी।

कि हठात् पीछे से किसी के हाथ का सुकोमल स्पर्श उसके दाहिने कधे पर पडा। वह चौंक पड़ी—इतना कोमल और ऐसा मर्मस्पर्शी! कानों मे एक धीमी आवाज—"बेला! जरा भी उदास न होना। तुम जहाँ रहोगी, तुम्हारे इर्द-गिर्द इन भुजाओ की छाँह तनी रहेगी।"

बेला ने मुड़कर देखा, तो श्रीधर के कधे की चादर उसकी पीठ को सहलाती हुई आँखो से ओझल हो गई। उसकी आँखो के कोनो पर ठमके हुए आँसू न जाने किस आवेग से उछल कर उसके गालो के किसलय पर चू पड़े, और कलेजा न जाने किस अव्यक्त आशङ्का से धक्-से कर गया।

जब वह आँगन मे आई, उसने कमला को खड़ी पाया। वह अपने को जब्त न कर सकी—"बहन, मै तो अब चली! कल पौ-फटते यह सब सपना हो जायगा!"—कहती बेला आँगन मे आई।

कमला मुन्नी की नन्ही उँगलियाँ पकडे प्यार कर रही थी। बेला ने मुन्नी को गोद मे उठा लिया, मुन्नी उसकी गर्दन मे हार बन गई।

"मुन्नी! तू भी चलेगी मेरे साथ? तुझे राम की झाँकी दिखाऊँगी!" बेला ने मुन्नी के होठ चूमे और उसकी हरी-हरी आँखो मे आँख डालकर पूछा। उसका घायल दिल मानो उस दूध-पीती बच्ची से भी हमदर्दी की भीख माँग रहा हो!

"क्यो री कमली? आँगन मे खडी-खडी क्यो शीत खाती है? भीतर चली आ!"—दालान से मिश्रानी की आवाज़ गूँजती हुई आई।

'आती हूँ। चलो बेला! माँ से तो मिल लो।"

"बेला तो कल जा रही है, माँ!"—कमला ने जरा रुँधे गले से माँ से कहा।

"कहाँ?"—मिश्रानी ने लिहाफ से सर निकालकर पूछा।

"अयोध्या!"

"अयोध्या? क्यो? मुझे तो खबर नही!"—मिश्रानीजी खाट पर उठ बैठी।

"बाबूजी ने कहा है कि यहाँ रहकर क्या करोगी? तीरथ मे तो धरम-करम बनेगा!"

"कब कहा है—आज? ठीक, तो "

"बेला ने तो जब से सुना है, सूख गई है। यहाँ मज़दूरनी-सी खटती थी ज़रूर, पर कम-से-कम छाँह मे तो थी! और,

तीरथों में अकेली कहाँ मारी फिरेगी ? मुझे दस-पन्द्रह दिन और यहाँ रहना है, कम-से-कम तबतक तो रह जाती ! यों तो बड़ा सूना मालूम होगा ! तुम्हीं कहोगी तो बाबूजी फिर सकते हैं। तुम्हें भी तो तकलीफ होगी ? घर के कितने काम सभाले हुए थी। चौका-बरतन, सानी-पानी "

"मुझे कोई तकलीफ नहीं। जब यह नहीं थी, तब क्या यहाँ सब शीत पीकर रहते थे ? ऐसा सिर मत चढ़ा दो। मैं ही जानती हूँ, इस छिनाल के कारण मेरी कैसी किरकिरी होती है ! अपने तो यह दस घाट का पानी पीकर आई है और मुझे दस के सामने पानी-पानी होना पड़ता है। तुम्हारे लिहाज में मैं चुप रही हूँ, नहीं तो यह देवी-देवता का घर है ! कभी झाड़ू मारकर " "

"अच्छा, माँ ! झाड़ू न मारो—बस करो—जाने दो। अब तो बिचारी कल जा ही रही है। बाबूजी से तुम न कहोगी, तो न कहो। मैं तो एक बार कहकर देख लूँगी—माने या न माने। तीरथ की भगतिन से घर की मजदूरनी कहीं अच्छी है।"

"तुम्हें पड़ी है, तुम कहो। मैं कुछ रोड़े तो नहीं अटकाती। बेला, जरा पैर तो टीप दे ! आज शाम से फिर पिरा रहा है।" —श्रीमतीजी लिहाफ खींचकर लेट रहीं, और बेला ने पैर टीपने का आदेश भी स्नेह का आशीर्वाद समझा।

इधर पंडितानी का पैर पिरा रहा था और उधर पंडितजी का सर ! जब कमला पिता के लिए खीर और पूरी थाल में

सज कर दबे पाँव उनके सोने के कमरे में घुसी, तब उन्हें सर पर हाथ रखे और आँखें बन्द किये पाया। उनके चेहरे पर किसी गंभीर चिन्ता की छाया थी। सामने रोशनी में 'मुडकोप-निषद्' की पुस्तक खुली पड़ी थी। जब वह बिलकुल नजदीक आ गई, तब उसके पैरों की आवाज पर उन्होंने चौंककर आँखें खोल दीं।

"कौन—कमला ? मैंने तो समझा "—वे सहसा रुक गये।

"आपका चेहरा ऐसा खिंचा क्यों है ? मुझे तो देखकर डर मालूम हुआ !"—कमला ने बड़े स्नेह से पूछा।

"शाम ही से सर टीस रहा है। इसलिए कुछ पढ़ भी न सका।"

"तो मैं टीप दूँ ?"—कहकर कमला ने थाल को चौकी पर रख दिया, और पिता के सर के दोनों पुटपुरों को मुलायम उँगलियों से टीपने लगी।

पंडितजी ने दो-एक बार उफ भी की, और कराहते हुए बोले—"आज बिलकुल भूख नहीं, थाल उठा ले जाओ !"

"नहीं-नहीं, दो फुलकियाँ भी तो खा लीजिये ! खाली पेट से तो और पित्त चढ़ जाता है।"

"क्यों सिर हो रही हो, कमली ? सिर उड़ा जा रहा है !"

पंडितजी थोड़ी देर तक सर लटकाये बैठे रहे। फिर एक गहरी साँस ली, और ज़रा आँखें मींजकर बोले—"अच्छा लाओ, मुँह मीठा कर लूँ। क्यों कमली, बेला उदास है ?"

"उदास ? उस बिचारी का आँचल तर हो गया। चौधारे आँसू बहा रही है।"

"सच ?—क्यों ? मैंने तो कुछ उसे कहा नहीं !"

"वह आपका आश्रय छोड़कर और कहीं जाना नहीं चाहती। उसे दुनिया मे कोई दूसरा सहारा भी तो रहा नहीं।"

"सुनो, कमली ! मुझे बराबर एक खटक है। तुम किसी और पर जाहिर मत करना। जरा गौर करो—यह जवान छोकरी है और तुम्हारे घर मे श्रीधर है या और "

"नहीं-नहीं"—कमला ने बात काटकर कहा—"बेला वैसी छुच्छुम नहीं। मुझसे कुछ परदा नहीं है। वह बिचारी किसी पर आधी नजर भी नहीं डालती, खुद अलग सिमटी रहती है, और न श्रीधर ही इस चाल का है।"

"सच कहती हो। मैंने भी बेला मे कोई चुलबुलापन नहीं पाया। उसकी किस्मत जो बुरी हो, कुछ चाल बुरी नहीं है।"

कमला बाप की बेटी थी। बात पर कुन्दन करना जानती थी। उसे किसी तरह बेला को कुछ दिन रोक रखना जरूरी था। घर मे और कोई दूसरा नहीं था जो मुन्नी के मचलने पर उसे सँभालता। साथ-साथ उसका हृदय भी नरम था, ज़रा-सी आँच पर पिघल पड़ता। वह बेला को खुलकर चाहती थी और उसकी दिली तमन्ना थी कि वह इसी घर मे रोटी-दाल से खुश

रहे, पर इतनी समझ कमला को जरूर थी कि पति के घर उसे साथ ले जाना कदापि निरापद न था।

"बाबूजी! वह दिन-रात आपका गुन गाती रहती है। आपके स्नेह के साये में वह फिर पनप चली, नहीं तो, कभी सूखकर झर गई होती। वह अक्सर अपना दुखड़ा रोकर कहती है कि आपके चरणों को छोड़कर न उसे किसी का भरोसा है, न सहारा। आप उसे आजमा कर देख लें। आप उसे कुएँ में भी झोंक दें, तो भी वह खुशी से घड़ा बाँधकर कूद जायगी।"

"क्या बकती हो!"—पंडितजी ने खीर के कटोरे को पोंछते हुए कहा।

"भगवान जाने, मैं सच कहती हूँ, ऐसी श्रद्धा और भक्ति आज कलिकाल में मुहाल है।"

"अच्छा, थाल ले जाओ।"

पंडितजी उठे और हाथ-मुँह धोने के लिए बाहर बरामदे की ओर बढ़े।

"तो कल जाने के बारे में बिचारी अधमरी-सी हो गई है!"—कमला ने हिम्मत बाँधकर लड़खड़ाती जबान में असल मंशा को पेश किया।

"जाओ, तंग मत करो। मैं इसी उधेड़-बुन में हूँ।"

कमला ने थाल उठाया, और चल दी। उसे कुछ समझ में न आया कि हवा किधर की है। आशा भी बँधती और निराशा भी झोंकती।

पंडितजी मुँह-हाथ धोकर कम्बल पर जा बैठे, और पनडब्बे से पान के बीड़े लगा-लगाकर चबाना शुरू किया।

हमारी चिन्ता के लहमों में पान और तम्बाकू दो कैसे प्राण-स्पर्शी सहचर हैं! हमारे तरद्दुद के दिनों में जब अपना भी बेगाना हो जाता है, नींद भी पलकों को सपना हो जाती है, तब हमारी तप्त कराहों की राह में पान के पत्तों की छाया कैसी शीतल होती है—तम्बाकू की सुरभि कैसी मीठी लगती है!

पंडितजी की आँखों में नींद तो थी नहीं। यह मायाविनी किसी फ़िक्रमन्दी की बेचैन घड़ियों में कहाँ साथ देती है? प्राण एक विचित्र उलझन में पड़े थे। एक ओर उनकी संस्कृति, दूसरी ओर प्रवृत्ति। इधर विवेक का तमंचा, उधर भावविह्वल हृदय का तक़ाज़ा; इधर मन की टेक, उधर विचार का ब्रेक; इधर तमतमाती हुई मर्यादा, उधर लहराती हुई लालसा; इधर देव, उधर दानव! बस, 'बचाऊँ किधर की चोट, उठाऊँ किधर की चोट' वाला मज़मून था!

उनके कानों में कमला की मर्मस्पर्शिनी वाणी गूँज रही थी—"ऐसी श्रद्धा और भक्ति आज कलिकाल में मुहाल है!" वे सोचने लगे—"तो क्या मैं इस श्रद्धाञ्जलि के अर्घ्य को ठुकरा दूँ? क्यों—किस लिए? सिर्फ इसलिए कि इस पुष्पांजलि के परदे में तक्षक का वास है, जो मेरे यश-जीवन को विषमय कर देगा? तो मैं अपने बचाव के लिए उसे तीर्थ के भूखे कुत्तों के मुँह में झोंक दूँ? उसे भठ दूँ, चूँकि मेरा मनमतंग मतवाला

झूम रहा है, विवेक का गज-बाग नहीं सुनता ? नहीं-नहीं, मैं इस उन्मत्त मन के कदमों में लोहे की जंजीर डालकर थान पर बाँध रखूँगा, उसे छूटने ही न दूँगा कि किसी की श्रद्धा के चमन को तबाह कर सके। तो क्या मैं बेला को जाने न दूँ, रोक दूँ ? ठीक है, अभी उठकर कह दूँ—"बेला ! तुझे जाने की जरूरत नहीं, तू यहीं रहकर देव और गुरु की लगन में मगन रह।"

गिरिधारीलाल हाथ टेककर उठे, पर पूरे उठे भी न थे कि फिर बैठ गये। उनकी दिमागी दुनिया में फिर तूफान उठा—"उफ ! मैं यह क्या करने जा रहा हूँ ? अभी भगवान के मन्दिर में मुझे प्रेरणा हुई थी कि इस माया-मोहिनी को दूर ही करने में कुशल है। माया-मोहिनी ? नहीं-नहीं, वह देवी की प्रतिमा है। जो हो, मुझे तो हुकुम बजा लाना जरूरी है, मैं इतना जल्द इस संकल्प को भूल गया ! तो आखिर क्या करूँ—जाने दूँ या न जाने दूँ ? भगवन ! तुम्हीं कहो। निर्णय करने की मेरी शक्ति जाती रही। किससे सलाह लूँ ? —दिल से या दिमाग से—मन से या बुद्धि से ? नहीं-नहीं, हरि-इच्छा बलवती। जो भगवान की मरजी होगी, वही होगी। पर मुझे मालूम कैसे होगा कि मरजी क्या है ? अब आकाशवाणी तो होती नहीं हाँ, एक सूरत है। भगवद्गीता तो भगवान् की वाणी है। आँखे बन्द कर उसी को देखूँ। जो श्लोक सामने नजर आए, उसी पर अमल

करूँ। देखूँ तो सही, इस तरकीब से कोई रास्ता मिलता है या नहीं।"

गिरिधारीलाल का उद्विग्न मन इसी साधन पर आकर ठहर गया। उन्होंने गीता को ढूँढकर निकाला, रोशनी के सामने लाकर रखा, आँखें बन्द करके सजल-जलद-स्निग्धकान्त गोपीवल्लभ का ध्यान किया, गीता की पुस्तक पर छन-भर मस्तक रखा और फिर 'जय-जय हरि' कहकर ग्रन्थ को झटका देकर खोल दिया। उनकी आँखों के सामने पड़े—

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्त्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥

फिर सोचने लगे—"तो इसमें क्या आशय निकला? उसे जाने दूँ या नहीं? मेरी प्रकृति फिर भुकेगी? अबतक मैंने जो कुछ किया है, अपनी प्रकृति के अनुकूल ही किया होगा। और, आगे भी उसी के हाथ में मेरे मन की डोरी रहेगी। चलो, कल सुबह तक मेरी प्रकृति का भी पता चल जायगा, फिर खींच ले जाती है। फिर आधी रात तक इस माथा-पच्ची से फायदा?

पंडितजी ने पान के बीड़े को मुँह से थूक डाला, गडुए के पानी से कुल्ला किया और चौकी पर चादर तानकर लेट रहे। कभी आँखें झिपतीं, कभी खुलतीं। रात के पिछले पहर में उन्हें

नींद आ गई। घंटे-दो-घंटे मानसिक विप्लव के चपेटों से छुटकारा मिला।

अकस्मात् मकान के पीछे बैलगाड़ी की खड़-खड़ पर उनकी आँखें खुल गईं। पौ फट चुकी थी। आकाश के पूर्वी छोर पर उषा की लाली खिल रही थी। नीचे मैदान में पैरों की आहट उनके उतावले कानों पर पड़ी। उन्हें खटके से खटका—"कहीं बेला चली तो नहीं गई? जयदेवजी उसे बैलगाड़ी पर बिठाकर चल तो नहीं दिये? मैंने शाम को उन्हें कह दिया था, दुबारा कहने की जरूरत न थी। तो वह चली गई! मैदान खाली—घर सूना ।"

वे आगे कुछ सोच न सके। लूक की तरह नीचे टूटे।

बेला के बायें हाथ में कपड़े की एक छोटी-सी गठरी है और दाहिने से वह मुन्नी को मुनक्के खिला रही है। गङ्गा और यमुना दोनों बगल खड़ी हैं। वह झुककर उनकी पीठ सहला देती। रात-भर वह गङ्गा और यमुना से लिपट कर रोती रही है। उसके चेहरे पर गंभीर वेदना की छाया है और चितवन के कोने में शायद किसी प्रतीक्षा की रेखा।

पंडितजी गिरते-पड़ते जीने से नीचे उतरे। सामने बेला पर नजर पड़ी, तो मुँह से बेसाख्ता निकल पड़ा—"न जाओ, बेला! जरूरत नहीं जाने की!"

बेला और कमला उनका मुँह ताकने लगीं। उधर बाहर जयदेव और श्रीधर ने भी इस आदेश को सुना, तो चौंक पड़े।

पंडितजी सर लटकाये बाहरी ड्योढी से निकले, तो उनका चेहरा सफेद था, मानो विचारों के बोझ से वह नीचे गिरा जा रहा हो। आँखें चढी हुई हैं और शरीर के जर्रे-जर्रे पर एक निविड जडता-सी छा रही है।

'हरि-इच्छा बलवती' कहकर उन्होंने एक लम्बी साँस ली और चौडे बरामदे की चौकी पर गुम-सुम बैठ गये।

और उसी वक्त सडक के उस पार कोई हारमोनियम पर भैरवी छेडे हुए है—एक दर्द-भरी आवाज से झूम-झूमकर गा रहा है—

"हम हुए तुम हुए या मीर हुए,
इन्हीं ज़ुल्फ़ों के सब असीर हुए हम हुए०।"

नवम परिच्छेद

कितना निदारुण सत्य है—'तृष्णा न जीर्णा, वयमेव जीर्णा"! जब चिराग गुल होने पर आता है तब उसकी लौ की दमक दुगनी हो उठती है। शायद जबतक जवानी का नशा आँखों पर रहता है, तबतक मनुष्य सात समुन्दर फाँदकर निर्दय दैत्य के पंजे से कल्पना-कानन की अपरूप सुन्दरी को छुडा लाने का गुर्दा रखता है और अपने खयालों में मस्त बडे-बडे मनसूबे बाँधता है, लेकिन सात समुन्दर पार जाते-जाते जब वह चालीस के उस पार हो जाता है और वह स्वप्न-तुषार फट कर माया-निकुञ्ज की काकली को मूक कर देता है, तब तो जीवन के तमाम अरमानों को व्यर्थ होते देख सामने की किसी हाड-मास की हरी-भरी प्रतिमा पर वह बेतरह चिपक जाता है—दामन पकडकर हिलाने पर भी नहीं हिलता!

मानव-प्रकृति का यह उलट-फेर कितना करुण है! और, क्यों न हो? जब यौवन के मद का उतार आता है और भाव-प्रवण हृदय पर जीवन के धूमिल सत्य साफ हो-होकर टकराते हैं, तो अक्सर जीवन प्राणों की पुञ्जीभूत आकांक्षा अवसर पाते ही विवेक के मोर्चों को तोड़कर खौल उठती है, और यही वजह है कि चालीस का सिन कभी-कभी भयङ्कर परीक्षा का दिन है।

तरुणी के रूप-रंग की बिल्लौरी चिकनाई पर मन का फिसलना एक साधारण बात है। फर्क यही है कि जवान फिसल कर गिरता भी है, तो दामन झाड़कर खड़ा हो सकता है और अधेड़ गिरता है, तो कमर टूट जाती है। चितवन का चोखा तीर, अक्सर जवान के सीने पर मुड़कर टूटते और अधेड़ के जिगर को पार करते देखा जाता है। और, यदि कोई यौवन की किसी उद्दाम उत्तेजना के अंकुश पर कमर में कसकर कोपीन बाँधता है, तो अक्सर पाया जाता है कि चालीस के पार जाकर वह कोपीन का बन्धन शिथिल हो जाता है और अतीत की निखिल तपश्चर्या खाक में मिल जाती है।

क्या बात है कि जवानी का परहेजगार पचास के पड़ोस में आकर एक घूँट तलछट के लिए सुराही का पेंदा चाटता है। काले बाल पर भस्म चढ़ाकर जिसने उसे सफेद रखा, वही जब सफेदी में खिजाब के लिए सिर धुनता है, तो इससे भयङ्कर प्रकृति का प्रतिशोध और क्या होगा?

क्या बात है कि जवान की नई बीवी ग़ुलामी करती है और अधेड़ की नई बीवी हुक्मरानी ! जवान बीवी के कदमों की सलीमशाही की सलामती गंगा-जमुनी या चाँदी की चाँद पर ही चलती है, काले काकुल पर नहीं।

अक्सर जवानी की एड़ी-चोटी के पसीने की कमाई मोकब्बी और मोब्बही की दूकानों में खपती है, चूँकि चालीस के बाद एक ओर कीमिये और कुश्ते की तलाश होती है, दूसरी ओर कलाबाज कबूतरी की।

काश पंडितानी सिन में इस क़दर बड़ी न रहती, उनके मिजाज में कदाचित् शोले की भड़क न होती, उनकी जबान का नेजा बेवजह इतना चोखा न चलता, उनके हृदय के रस का सोत उनकी प्रकृति की रेती में सूख न जाता, दाँत और बाल पर बेवक्त, नजला नाजिल न होता—गरज यह कि गिरधारी-लाल की जवानी में उनकी पत्नी प्रेतनी न बनी रहती, तो बहुत मुमकिन था कि बिचारे को प्राणों के अवरोध के लिए सहस्र-दल कमल की तलाश न होती, उनके दिमाग में न ब्रह्मसूत्र के मसले हल होते, न बेला की चितवन की कोर में किसी नन्दन का मञ्जर नज़र आता, और न उनके अन्तर के अखाड़े में देव और दानव का दंगल ही छिड़ता।

गिरिधारीलाल विद्वान ही नहीं, बुद्धिमान् भी थे। उन्हें दीन-दुनिया की पहचान थी, सुयश की तलाश थी, भले-बुरे की तमीज़ थी। वह आदमी दिलदार थे जरूर, पर होशियार भी

ऐसे थे कि कहीं किसी आवेश पर छाती में दिल ने छलाँग भरा तो चट उसे मुट्ठी में थाम लिया। वे माया और राम दोनों को मिलाकर चलते, और गर्चे वे धर्म के मुरब्बी की हैसियत से स्नान, शौच, सन्ध्या, वन्दना आदि में अपनी धुन के पक्के थे, तो भी विचारशील शिष्यों की मंडली में इन बहिरंग साधनों की अपेक्षा अन्तरंग साधनों पर वे ज्यादा जोर देते रहे। उन्होंने खुद भी अन्त शौच के लिए किसी तरकीब को उठा नहीं रखा था। यहाँ तक कि हथेली पर जान रखकर इसी मरकत-मणि की तलाश में उन्होंने सुषुम्ना और कुंडलिनी के बिल में भी हाथ डाला—यद्यपि वे जानते थे कि प्राण-अपान को लेकर खेलना विषैले नाग के फन के साथ खेलना है।

यह सब होते हुए भी बचपन ही से उनके हृदय में मधुर रस का सोत गतिशील था, जो शृङ्गार-काव्य के अनुशीलन से और भी प्रखर हो गया था, लेकिन जब शुष्क वेदान्त ने आकर उस फौव्वारे के स्फुरण का मुँह घेर लिया, तब वह अन्त सलिला चेतन से उतरकर अवचेतन की तह में भर गई।

उनकी छाती में कलाकार की आत्मा थी। वे सौन्दर्य के उपासक थे। उनके प्राणों में कला की अनुभूति थी।

उषा के आँचल का गुलेनार गोट, सन्ध्या-सुन्दरी का सीमन्त-सिन्दूर, आकाश-गंगा पर सप्तर्षियों का दीप-दान, नववसन्त के अभिसार में प्रकृति-वधू की मनोहारिणी फूल-शय्या, प्रकृति के ज़र्रे-ज़र्रे पर फाल्गुन का वसन्त-स्पन्दन, फूलों

से लदी लोनी लताओं के साथ मलयानिल की छेड़खानियाँ, पूर्णिमा की रात में जल-तरंग पर रजत-रश्मियों की रँगरलियाँ, निचाट निशीथ का रहस्यमय पल्लव-मर्मर, किसी लज्जाशीला वधू की विलास-चञ्चल अङ्ग-भङ्गिमा, किसी सरल चितवन की प्रसन्न जिज्ञासा, उनके सुकोमल मन-पटल पर आप-से-आप खिच जाती और उनका वेदना-प्रवण हृदय इस रूप-रस-गंध-भरी पृथ्वी में किसी एक निविड रस—एक अपरूप रूप—की कल्पना में डूब जाता था।

अब ऐसे कला-परायण रसिक-राज का चुलबुला दिल रमा-देवी के आँचल के खूँट में कहाँ तक बँधता? वह चोंच में गुल लिये न जाने किस परी की तलाश में कल्पना के कंगूरों पर मँडराने लगा था और उसकी चटुल चहक से उनका समग्र अन्तर झंकृत हो उठता। माया-पुरी की जिस परी की तलाश थी, वह तो कभी मिली नहीं, लेकिन जीवन के कठोर सत्यों ने उस स्वप्न-सौध के गुम्बजों को जरूर तोड डाला। नतीजा यह हुआ कि शून्य जीवन की व्यर्थता की करुण अनुभूति और भी सूक्ष्म और तीव्र हो उठी।

विवेक ने उनकी कल्पना की दौड को परिधि में रखना चाहा—उनके मन की वृत्तियों को लगाम देकर संयत करना चाहा, और वह बहुत-कुछ इस साधु प्रयत्न में सफल भी हुआ, पर इस रोक-थाम की सीन पर बेला के आकस्मिक आविर्भाव और प्रतिदिन के घनिष्ट मिलन ने इस समस्या को एकबारगी

जटिल कर दिया। जिस अभाव की अनुभूति क्षीण हो चली थी, वह फिर तीव्र हो गई। रमादेवी की कुरूपता अब और भी खलने लगी। जो क्षुधा मिट चली थी, वह अचानक दुगनी हो गई।

हाँ, अगर रमा के मुँह में दाँत बरकरार रहते, तो बहुत सम्भव था कि बेला के दाँत उज्ज्वल मोती के दाने बनकर न चमक उठते—उनके सर के बाल बेवक्त झर न गये होते, तो शायद बेला की लटों की वेणी काली नागिन बनकर कलेजे पर न लोटती—सिरगिटान की टाँग की तरह उनकी टाँगें सूख न गई होतीं, तो बेला की पतली कमर के पहलू से उभरे हुए नितंब की मंडल-रेखा काव्यकुञ्ज के कदली का तोरण बनकर दिमाग को न चकराती तथा गरदन की सतलरी समतल सीने पर झूलती हुई कटकी करधनी को न चूमती, तो बहुत मुमकिन था कि उस विधवा के आँचल की धूमिल कुज्झटिका के भीतर किसी कैलास की कल्पना जगह न पाती।

जो प्रतिदिन पुलाव और कलिया चखता है, वह पुलाव और जर्दे की अर्मालयत को खूब समझता है, पर मॉड-भात और नमक पर जिन्दगी बसर करनेवाले की नाक में पतीलियों से उडती हुई जाफरानी पकवान की वू किसी बहिश्ती पारिजात की सुगन्धि से कम नहीं होती।

बेला का आसमान से गुरुवर के घर उतरना, उसके मुलायम हाथों की प्रवीण सेवा, उसकी आन्तरिक श्रद्धा और शुश्रूषा,

रोजमर्रे की खिल्वत का बातचीत, उसके शरीर पर धीरे-धीरे रूप-रंग का निखार, उसके लज्जा रक्तिम चेहरे की करुण-कोमल कान्ति, वेदान्त के नितान्त शुष्क ज्ञान से उनके भाव-विह्वल हृदय पर कहीं ज्यादा पुरअसर निकली। विवेक ने संयम के जिस कवच-कुंडल को उनके मन की रक्षा के लिए अर्पित किया था, उसे बेला की चितवन ने दो दिन में उतरवा लिया।

मन की वृत्ति जब हिल गई, फिर इन्द्रियों की प्रवृत्ति कबतक रुकी रहेगी! इन्द्रियों के व्यापार कुछ अपने पैदा किये नहीं हैं, वे स्वभाव-सिद्ध हैं। हमारे ऊपर कारचोबी के शाहनशीं का साया हो या तपोवन की पंचवटी की छाया—हमारे सर पर छत्र और चँवर हो या शरीर पर कोपीन और वल्कल, हमारी इन्द्रियों के स्वभावसिद्ध व्यापार कभी छूटते नहीं।

वैराग्य की आग लाख उग्र क्यों न हो, पर काम के कीटाणु कभी खाक नहीं होते। हमारे रक्त में कोई कालकूट का प्रयोग क्यों न करे, ये कठजीव कभी बरबाद होने के नहीं। और, जहाँ इर्द-गिर्द की हवा में नमी आई, फिर तो बरसाती बीरबहूटी की तरह न जाने कहाँ से हमारी धमनी के स्रोत में ये पनप उठते हैं। शास्त्र और सत्सङ्ग से एक पॉलिश चढ़ती है जरूर—रंग बदलता है सही, पर जड़ नहीं कटती, चोरी छूटती है, तुम्बाफेरी नहीं छूटती।

तो क्या प्रकृति कभी कटती नहीं? जरूर कटती है। मनुष्य तो आसमान से सितारे तोड़ सकता है, पर खयाल रहे, प्रकृति

के पाश से छूटना तो ईश्वरता पर आरूढ होना है। आदमी और ईश्वर के दरमियान यही प्रकृति का अन्तराल है, और यह परदा हटा, तो दोनों एक हो गये।

गिरिधारीलाल अपनी परिस्थिति को खूब समझते। एक ओर उनका काव्य-जीवन—उनके हृदय का रस-स्फुरण, दूसरी ओर उनका क्षुधित यौवन, उनका निरानन्द भवन। इधर गुरु-पद की मर्यादा की चेतावनी, उधर लावण्यलीलामयी वेला की मोहिनी। उनके अन्तर में जो जंग छिड़ी थी, उसकी धमक से उनका दिमाग दहल रहा था। वे दिन-रात इसी मीन-मेष में पड़े रहते कि किसी तरह दैव बीच में पड़कर इस झगड़े को सुलह करा देता। किसी एक दल की हार-जीत के वे कायल नहीं थे। वे इस क्षेत्र में भी समझौते की नीति का दम भर रहे थे। विवेक का पहलू भी रहे, दिल की आरजू भी रहे।

इधर एक 'काम' था, उधर खड्गहस्त भय, लज्जा, मान, मर्यादा, धर्म और विचार एक-से-एक महारथी थे, पर वह अकेला फूलों का बाण ताने मैदान लेकर इतने रणबाँकुरों के दाँत खट्टे कर रहा था!

क्या वजह थी कि पंडितजी उसे तीर्थ जाने का आदेश दे सहज जबान जूठी करके रह गये? उन्होंने सोचा—और कुछ नहीं, तो वेला की समीपता में दिल की तमन्ना तो होगी! दो घड़ी की तफरीह ही सही। उसके इर्द-गिर्द एक हल्के 'रोमांस' का लुत्फ तो था! उनके रूखे-सूखे जीवन में यही क्या कम

है ? सूखे तत्त्वज्ञान का काढ़ा पीते-पीते जी ऊब चला था, अब दो घूँट शरबत तो चखने को मिला।

इतनी समझ उनको जरूर थी कि आत्मा के स्वास्थ्य के लिए यह कड़वा होकर भी हितकर है और शरबते-दीदार मजेदार होकर भी मुजिर है। पर, आखिर कोई तमाम जिन्दगी काढ़ा ही पीता रहेगा ? रसा स्वास्थ्य रहा या न रहा, दोनों बराबर है।

इसमें कोई शक नहीं कि बरसों के मोतवातिर इस्तेमाल से इस काढ़े के कड़वापन को उनकी जबान करीब-करीब भूल चली थी और अगर बेला न आती, तो कुछ दिनों में यही काढ़ा शरबत का मजा देता, मगर अब तो इसकी तिताई चिरैते-सी खलने लगी। अब तो निरा तत्त्वज्ञान जान का जंजाल हो गया।

हमारे शरीर की मज्जा-मज्जा में जिस कदर पशुत्व का माद्दा है, उतना ही अगर देवत्व का अंश रहता, तो फिर दुनिया पान की सीठी की तरह नीरस हो जाती और फिर किस दिल से यह तमन्ना उठती कि 'जन्नत में भी दुनिया के मजे याद करेंगे !'

आखिर सोचते-सोचते पंडितजी ने यह निश्चित कर लिया कि बेला तीर्थ न जाकर यहीं रहे, और उसी क्षण उनकी समझौतेवाली बुद्धि ने यह भी तय कर लिया कि दो घड़ी की महज़ दिलबस्तगी के फाजिल बेला को कहीं और गुजर देने

की जरूरत नहीं। दुनिया का मज़ा भी किरकिरा न हो और तत्त्वज्ञान का अनुशीलन भी चलता रहे। वेला जहाँ तक आ चुकी है, उसी हद तक वह रहेगी। उसके आगे उसे एक कदम भी जगह नहीं दी जायगी।

गिरिधारीलाल ने अपने दिल के चारों ओर एक दीवार खींच दी, और उसी चक्र की परिधि पर मान, धर्म और मर्यादा का त्रिशूल हाथ में देकर विवेक का पहरा बैठा दिया। उसी दायरे के अन्त प्राङ्गण में चुलबुले दिल को जितनी अठखेलियाँ कबूल हों, उसे मुबारक रहे। इसी शर्त्त पर उन्होंने प्रेय और श्रेय के दरमियान सुलह करा दी, और यह सुलह-नामा तामील कराकर वे निश्चिन्त हो गये।

वेला दिन में जब चाहे उनके कमरे में आकर पुस्तकों की झाड-पोंछ करे, उलटे-पलटे, आलमारी चौकी वगैरह को साफ-सुथरा करे, उनके आसन के चारों ओर प्रदक्षिणा करे, दुपहरी में दो घंटे धर्म की चर्चा करे, या मौके-बे-मौके काव्य के मसले हल करे, और फिर चुपचाप चार बजते-बजते वापस चली जाय। रात-भर अकेले मन का मनन होगा, वेदान्त और ब्रह्मज्ञान का परिशीलन होगा।

पंडितजी सोच-समझकर इस निदान पर आये कि वेला की दो मीठी बातें, दो-एक स्निग्ध सलज्ज चितवन, एक-आध आँचक की अनावृत अङ्ग-झलक, उसके आँचल सँभालने की मधुर भङ्गिमा, कभी-कभी अँगड़ाई की दिलफरेब तरकीब उनके

दिल के ताप के ऊपर काफी शीतल प्रलेप होगी, और अब इसमें विशेष किसी निविड रस की तलाश किसी हालत में हितकर न होगी। वेला भी सोलहो आने उनके कब्जे में रहेगी और वेखटके धर्म की चर्चा कर सकेगी। इस इन्तज़ाम में लोक और परलोक, माया और ब्रह्म, दोनों मज़े से निभ सकेंगे, और उनमें आपस की छीना-झपटी की नौबत न आयेगी।

पंडितजी इस तरीके से झगड़े को मिटाकर वाग-वाग हो गये। दोनों पहलू को सँभाल लिया। खुश थे कि दिल का दिमाग से, संसार का संन्यास से, काम का विवेक से, राग का विराग से समझौता कराकर उन्होंने चिरन्तन फूट की जड़ ही काट डाली, पर इस तमाशे को देखकर भगवान भले ही चुप हों, शैतान तो मुँह पर रूमाल रखकर हँस पड़ा!

देव और दानव के जिस अनादि विद्रोह को विश्वपति भी न सुलझा पाये, उसे कलिकाल का एक ब्राह्मण अपनी नैतिक दृढ़ता के बल पर साध्य करने का जीवट रखता है—यही क्या कम है?

पर प्रश्न यह है कि यह जीवट—यह दृढ़ता उनमें थी? साँप से अपनी उँगली को कटवाना, फिर जड़ी देकर या मंत्र पढ़कर उस विष को उतार देना—किसी ने कभी किसी सँपेरे को साध्य करते देखा है? दो-चार जाम शराब पीकर फिर घड़ों पानी से सर धोकर सुस्थ हो जाना कहाँ तक मुमकिन है?

राजा जनक ने सुलभा से कहा था कि हमारे एक हाथ में

यदि चन्दन लगाओ और दूसरे को छील डालो, तो भी दोनों सुख-दुख मेरे लिए बराबर है। पंडितजी को शायद इसी साम्यबुद्धि का भरोसा था। वे तमाम प्रिय और अप्रिय में समान भाव से बरतनेवाले कर्मयोगी बने थे। कई बरसों तक ब्रह्मज्ञान के निरन्तर मन्थन से वैराग्य की जो पतली किरण उनके अन्तर में झाँक जाती थी, उसी की सुनहरी आभा में उन्होंने अपनी आत्मा को अलिप्त देखा था। इस आन्तरिक निःसङ्गता का उनको नाज न होता, तो कभी मुमकिन न था कि वे एक ओर मायावी रूप की आग से खेलते और दूसरी ओर अरूप की तलाश का हामी भरते। उनको सचमुच विश्वास हो आया कि वे निष्काम बुद्धि से दोनों को चलाकर कर्मयोग के पथ पर अटल रहेंगे। उन्होंने घंटों रात में जगकर मन को इसी समता के स्तम्भ से बाँधा और कुछ दिनों तक इस संकल्प को दृढ़ता के साथ निबाहा भी, पर विष और अमृत के कर्मास का परिसेवन कुछ आसान काम नहीं है। कहीं कालकूट मानव-कंठ का आभूषण बन सका है?

दोनों प्रतिद्वन्द्वी पार्टियाँ चन्द हफ्तों तक तो अहदनामे की शर्त्त पर कायम रहीं। इधर दिलचस्पी भी रही, उधर विवेक की चौकसी भी। कामिनी भी रही, कुंडलिनी भी रही। काव्य की लहरी भी चली, तत्त्वज्ञान की मन्दाकिनी भी बही।

पर 'काम' की नीयत तो कभी साफ थी नहीं। वह घाघ अपने घात पर बैठा छिद्र ढूँढ़ रहा था। जब उसने पहला

मोरचा दखल करके अपना दबदबा कायम कर लिया, तब धीरे-धीरे उसने विवेक की किलेबन्दी पर गोलेबारी शुरू की।

अब तो पंडितजी की पिलही चमकी! बेला तो चार बजते-बजते वापस चली जाती, पर उसकी रूह उनकी आत्मा की परिधि की प्रदक्षिणा करने लगी। जिधर निगाह डालते, उसी की छाया नाचती नजर आती!

यह तो अनधिकार चर्चा—शर्त्त के खिलाफ बात थी। राग की अवधि तो चार तक थी, चार के बाद तो विराग का प्रोग्राम था। यहाँ पर उसे मुखिल होने का कोई हक न था। पर विवेक की फरियाद को सुनता कौन?

ध्यान में, पूजन में, भजन में, हवन में, तर्पण में, पठन में—हर जगह बेला की रूह उनका पीछा करने लगी। अब श्वेतकेतु और तत्त्वमसि की वाणी, अश्वपति और उद्दालक की वार्त्ता, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी की कथा बे-असर हो चली। अब गीता की पीयूष-वाणी पर प्यास बुझती न थी। रेचक और पूरक का क्रम अचानक टूट जाता। जप-मालिका में रुद्राक्ष के मनके पर उँगलियाँ छलाँगें भरती।

जब शाम को चन्द्रमौलि के सिंहासन के सामने पुष्पाञ्जलि लेकर वे महिम्न-स्तोत्रों का गान करते और उनकी आँखों से प्रेम के आँसू का तरारा चलता, तब उस पुनीत प्रवाह की साफ़ सतह पर काली लटों से घिरी किसी के मुख की चाँदनी तैरने लगती और उनके चेहरे की चेष्टा इस कुहुक-रश्मि के अचानक

फूट पडने से घबराकर ऐसी भीत और विकृत हो जाती कि दूर से मालूम पडता—इबादत के बदले वे मर्सिया-ख्वानी मे मसरूफ है !

जब कभी वे गोधूली की नीरवता मे दुतल्ले की खुली छत पर बैठते और वृत्तियो को बटोरकर नादानुसन्धान मे प्रयत्नशील होते, तब अचानक नीचे आँगन से हवा पर थिरकती आती हुई एक मीठे गले की सुरीली आवाज—'अभी आई, दीदी ! मुन्नी को सुला रही हूँ न'—उनके कानो के परदो को चीरती प्राणो मे पैठ जाती, और वह अन्तर्गत नाद की सूक्ष्म ध्वनि एक मधुर कंठ की सुर-लहरी के भँवर मे डूबकर न जाने कहाँ विलीन हो जाती। फिर तो धीरे-धीरे तेज होती हुई उस मधुर कंठ की काकली—'आ जा निंदिया आ जा, मुन्नी को गोद सुला जा'—और साथ-साथ सुलायम हाथो की थपकियो की ध्वनि, उस सान्ध्य विजनता के तले, उनके प्राणो के पहलू मे कुछ ऐसे सुर और लय की रचना करती कि पंडितजी इस धुनि मे शराबोर होकर दीन-दुनिया की सारी सुध-बुध भूल जाते।

उनके चारो ओर बिखरी हुई उपनिषत् और गीता, आरण्यक और संहिता की पुस्तके टक बाँधे खडी रह जाती, उनकी इतने दिनो की मशक्कत पर सुलझी हुई भ्रामरी और प्लावनी की विभूतियाँ मनोयोग के अभाव मे विफल हो चली, और उधर छज्जे से सूखी धोती समेटते हुए दो निपुण सुडौल

हाथों की गति-लीला, कमर में आँचल लपेटे दर्जनों बाल्टी पानी उडेल-उडेलकर आँगन धोती हुई बेला के सुगठित सलोने अङ्गों की एकाध उडती झलक, तथा आधी नींद में मचलती हुई मुन्नी को बहलाने की गरज से गुनगुनाती हुई जवान की मीठी लोरियाँ—उनकी कल्पना की तमाम क्यारियों में एक विचित्र मधुर रस का प्लावन उठाये आच्छन्न हो गईं।

एक दिन दोपहर को उन्हें जरा-सी झपकी आई और उसी तन्द्रा के आवेश में स्वर्गीय गुरु के अवज्ञापूर्ण लाल-लाल नेत्र नजर आये। आँखों से आग के शरारे बरस रहे थे और वे तर्जनी उठाकर फटकार रहे थे—

"गिरिधारी! जिस चितवन के कटार की नोक तुम्हारे दिल में चुभी है, वह मिसरी की पगी नहीं, विष की पगी है। याद रखो, इस विष का काटा आजतक लौटा नहीं!"

सहसा आँखें खुल गईं। सामने बेला के दो निष्पलक लोचनों का देखा। वह आँचल सरकाये देख ही रही थी कि पंडितजी सोये हैं या जगे कि उनकी नींद उचटी और आँखों ने आँखों में देखा।

बेला का चेहरा शान्त था। उसकी आँखों की किरण प्रसन्न थी। इस चितवन में विष नहीं, पीयूष है, यह डँसती नहीं जीवन देती है। दिन का सपना महज उद्विग्न मस्तिष्क का स्फुरण है—बिलकुल तथ्यहीन!

उन्होंने उस वक्त दिल को समझा तो दिया, पर हसब-

बदस्तूर बेला को पढाया नहीं, उसे बैरॅग वापस कर दिया—"आज सर मे दर्द है, बेला !"

बेला चली गई, तब वे घंटों बुत की तरह चुप पड़े रहे—चिन्ता के स्रोत मे डूबते-उतराते। दिल पर सिल रखकर बेला को निकाल देना उनके लिये मुहाल था, साथ-साथ किसी उत्तेजना की चोट पर एक क्षण के लिए भी दिल के चाञ्चल्य का प्रकट हो जाना उनका मरण था।

अब एक ही उपाय था—मन की दृढता, आत्मा की निःसंगता। काम उलटा टॅग जाय, तो टॅग जाय, पर कभी मुमकिन नहीं कि भगवान चन्द्रमौलि के चरणों का सेवक प्रभु की प्रतीति की हत्या करे।

उन्होंने कलमदान मे एक तेज छुरी निकाली। जी कडा करके छाती के ऊपर एक चीरा दे डाला। खून का फव्वारा फूट पडा। हिम्मत को हद करके वे रक्तचन्दन की छोटी कटोरी जख्म के मुँह पर टेके रहे। जब कटोरी खून से लबरेज हो गई, तब उसी शोणित मे कलम भिगोकर पान के एक बड़े पत्ते पर उन्होंने लिखना शुरू किया—"नाथ ! सच मानो, तुम्हारे साथ कभी विश्वास-घात नहीं कर सकता, तुम्हारे आसन को कभी अपवित्र नहीं करूँगा। अगर कदाचित ऐसा करूँ, तो फिर आजीवन तुम्हारे स्नेह की शरण से वञ्चित रहूँ। इस कठोर दंड के आगे मरण की यातना भी फीकी है।"

वे हृदय के रक्त से इस शपथ को लिखकर मन्दिर मे गये

और उसी वक्त उसे बिल्वपत्रों के पुट के भीतर डालकर उन्होंने भगवान के चरणों में समर्पित किया। घंटों खड़े-खड़े अपराध-भंजन-स्तोत्रों को पढ़ा। धीरे-धीरे उनके चित्त की ग्लानि दूर हो गई।

पंडितजी को तरकस से ब्रह्मास्त्र भी खींचना पड़ा—यह उस विकट संग्राम का चरम मुहूर्त्त है। आखिर परलोक का तमाम पुण्य-संचय उनको दाँव पर रख देना पड़ा। किस्मत की चिट्ठी किधर पड़ेगी, कुछ खबर नहीं, पर उन्हें विश्वास था कि भगवत की सेवा कभी व्यर्थ न होगी। उसी के बल पर वे सङ्कटों की भीड़ चीरकर बे-दाग निकल सकेंगे।

मगर हाय रे ढुलमुल यकीन और हाय रे तेरा डाँवाडोल मन! यहाँ किसी देवता की मदद का तो सवाल न था, सवाल था आत्मबल की दृढ़ता का।

हम हजार ज्ञान छाँटें, जब लटपटे दिनों में हमारी लट दबती है, तब देव और दैव के बगैर दम में दम नहीं पड़ता। जब जीवन के किसी आकस्मिक उतार-चढ़ाव पर चित्त विक्षिप्त हो उठता है, तब ब्रह्मज्ञानी भी दुआ-तावीज की गैबी मदद का सहारा ढूँढ़ता है।

मनुष्य की इसी कमजोरी पर—इसी प्रकृति-गत कमजोरी पर—तो तमाम देवताओं की स्थिति है, हमारे तमाम धर्म की भित्ति भी। इसीलिए जब आत्मिक बल नहीं है, तब एक ऐसी बलवती दैवी शक्ति रहनी जरूरी है, जिसे दुःख में

हम अपना सके और जिससे सुख मे हम डर सके। उसी के डर से किसी हद तक हमारी प्रवृत्ति भी काँपती है और उसी की रहमत की उम्मीद पर हमारी मुसीबत भी हँसते-हँसते कटती है।

इधर उनके हृदय मे प्रलय-विप्लव का जलजला था, उधर विचारी बेला बिलकुल बेखबर थी। वह क्या जानती थी कि उसकी सरल-सीधी चितवन की कोर मे कुछ गर्मी बिजली है, जो उसके पितातुल्य धर्मगुरु के हृदय पर वज्र बनकर टूटती है!

विचारी मृगी को कब पता रहता है कि उसके जिस्म के परदे मे कस्तूरी छिपी है और वह कस्तूरी उसके गले की छुरी है!

दशम परिच्छेद

लोक मे परलोक की धाक देखनी हो, तो भारत के ग्राम्य-जीवन को आकर देखिये। परलोक का दबदबा घर-घर है—घर के भीतर प्रत्येक दिल पर है। बचपन ही से दैव का आवाहन और तर्पण जो चला, उसकी पूर्णाहुति जाकर चिता की वेदी पर ही होती है।

गर्चे देहातियों के जीवन मे विधि और निषेध, छूत और अछूत, हलाल और हराम के मसले कदम-कदम पर है, तो भी सब मसलों का चचा दैव का मसला है। देव और देवी, भूत और भूतनी, हर जगह, हर बात मे, टाँग अडाये खड़ी है! घर-घर इनकी चर्चा है, घर-घर इनकी पूजा। मर्दों के सर पर देव है, औरतों के सर पर भूत।

यदि चमाइन की दकियानूसी छुरी से नाल न कटा और बच्चे के होठों से माता का स्तन छूट गया, तो यम ने छू दिया!

अगर सरदी की शिद्दत से पलई चली, तो भूत का दौरा हुआ। अगर न सहने की वजह से बच्चे को टीका न दिया गया—चेचक निकल आई, तो महारानी की मर्जी हुई। अगर गाँव में दूषित पानी के कारण हैजे की बीमारी आई, तो देवी की सवारी आई! रोग हुआ, तो दैव, रोगी मरा, तो दैव! सन्तान नहीं, तो दैव, फसल गई, तो दैव! गेहूँ पर हरदा गिरा, तो दैव, कीड़े चाट गये, तो दैव! अनाज का भाव पलटा, तो दैव, भाव आया, तो दैव!—गरज यह कि सुख-दुःख सब दैव के अधीन है या ग्रह का फेर है!

पुरोहित के जन्तर-मन्तर से यदि दैव पसीजा या ग्रह फिरा, तो खैरियत, नहीं तो, माथा ठोककर सब्र करना है। गुनी के पचरे और तपावन पर भूत भागा तो भागा, नहीं तो ब्रह्म के चौरे पर जाकर 'खेलना' पड़ा या मुहल्ले के किसी धोबी या चमार के घर की जागती देवी के चबूतरे पर खस्सी कटा।

यहाँ जीवन का प्रत्येक उलट-फेर—बीमारी हो, गिरानी हो, मुकदमेबाजी हो, या किसी तरह की परीशानी हो—दैव का तेवर है। जप-जाप होगा, कथा-पुरान होगा, मन्दिरों में महादेव का अरघा दूध से भरा जायगा, देवघरों में मन्नतें होंगी—गरज यह कि दैवी बल का आवाहन हर-एक तबके में अलग-अलग अन्दाज से जरूर होगा।

आज दुनिया के किसी हिस्से में सुहाग की सलामती के लिए न इतने दैवी उपचार हैं, न इतने व्रत-जप-तप के तूमार हैं,

मगर क्या बात है कि किसी देश मे उतनी विधवाएँ नही, जितनी यहाँ भरी पड़ी हैं ? किसी मुल्क मे बच्चो की जिन्दगी के लिए न इस कदर जन्तर-तन्तर का हुजूम है, न दुआ-तावीज के रसूम हैं, मगर क्या बात है कि किसी देश मे बच्चो की मृत्यु की तादाद वैसी भयङ्कर नही, जैसी यहाँ है ? इस आर्यभूमि मे जितनी धार्मिकता और पारलौकिकता की चर्चा है, उतनी और कही नही, मगर क्या बात है कि इस देश के बाशिन्दे से बढ़कर न कोई अभागा है, न दरिद्र ?

क्या पराधीन का आश्रय परलोक है ?—गुलाम का भरोसा राम है ? क्या आठो पहर भजन-पूजन की लपेट मे पड़ कर हम अपनी आत्मा का वजन भूल जाते हैं—दैव का सहारा लेते-लेते विवेक का सहारा खो बैठते हैं ?

दैव के उपचार से कही ज्यादा जरूरी हमारे जीवन में विचार का आधार है, इसे गँवार विचारे कहाँ तक समझेगे ? जीवन की तमाम संभावनाओ को कोरी भावनाओं के स्रोत में डुबोकर वे हाथ बाँधे चुप बैठे हैं।

यहाँ गाँव मे प्रत्येक मनुष्य की यह मज्जागत धारणा है कि वह प्रारब्ध के हाथ मे मोम है, और उसे किसी भी क्षेत्र मे आत्म-स्वातन्त्र्य नही। वह अनादि कर्म-प्रवाह पर तिनके की तरह बह रहा है और हाथ फैलाने पर उसे तिनके का सहारा भी नही मिल सकता। जब बिचारी बहू की मांगलिक चुनरी की मनोरी पत्तियाँ बिकती है और चूहे घर मे दंड पेलते

हैं, तब वह हाथ रखकर गुजश्ता जमाने के घी के बघार और दूध के पूए की चर्चा करता है, और प्रतिकूल दैव के सर पर तमाम इलजाम मढ़कर किस्मत पलटने का इन्तजार करता है। उसे शायद यह जानकारी भी नहीं होती कि और जगह मनुष्य की बुद्धि और कारगुजारी ने परलोक के दायरे को कितना संकीर्ण कर दिया है और दरिद्र्य, रोग, खेती की उपज आदि क्षेत्रों से दैव के दबदबे को कहाँ तक उठा दिया है!

उसे कहाँ पता है कि 'कमाल' ने दैव के धुर्रे उड़ाकर टर्की का तख्ता उलट दिया! उसके फ़िरिश्तों को भी खबर नहीं कि जापान ने विवेक और अध्यवसाय के ज़ोर पर 'दैवी' ज़लज़लों की गरदन टीप कर जापानियों की काया और किस्मत पलट डाली—और विज्ञान का पिनाक लेकर प्राकृतिक ज़लज़लों का भी नातका बन्द कर रहा है! उसने शायद सुना भी नहीं है कि रूस निखिल सभ्य संसार के सीने पर सवार राजा और रंक, ऊँच और नीच, बड़े और छोटे के भेद भूत को छू-मन्तर करने का प्रयत्न उठाकर कर्मवाद का एक-एक दाँत किस हिम्मत से तोड़ रहा है—एक चोले के क़ब्जे में करोड़, और करोड़ों पेट के लिए एक जून रोटी की मुहताजगी—इस सनातनी ईश्वरता की जड़ हिल चली है।

उसे न तो अनुभूति है, न विभूति, न इच्छा है, न इच्छा-शक्ति। उसे न मुँह में ज़बान है, न छाती में आन। और,

उसी गरीब के सर पर सभी होली खेलते हैं—लट्ठधारी जमींदार, दंडधारी सरकार, खद्दरधारी लीडर, त्रिपुंडधारी पंडित, कलमधारी वकील और थैलीधारी मुगल। एक मालिक का रोब गाँठता है, दूसरा हाकिम की आँख दिखाता है, एक दोस्त बनने का दम भरता है, दूसरा परलोक का भर्रा देता है, एक दलील का जाल फेंकता है और दूसरा मृत का जाल फैलाता है।

पर इन सबसे कहीं जोरदार दैव का जाल है और इसी जाल का तमाम जंजाल है। यह उसकी सारी आत्मशक्ति को जड़ में कीट है। यह परलोक का मालखोलिया उसके दिमागी दिवालियापन का सबूत है। यही वजह है कि उसके मन की वृत्तियाँ वैराग्य और संन्यास की ओर झुकती हैं। तभी देहातों से साधुओं और वैरागियों की आमदनी आज इतनी कसीर है। जब और कुछ नहीं बनता, तब ललाट रँगकर माला फेरना या खाक चढ़ाकर धूनी रमाना चलता प्रोग्राम है। जब हाथ से हल छूटता है, तब कमंडल उठता है, धोती नहीं, कोपीन सही।

क्या अकर्मण्यता और पारलौकिकता सहोदर हैं? कर्मवाद और नैराश्यवाद यमज हैं?

अक्सर जब वह विज्ञान के चमत्कारों को—मानव-शक्ति के करश्मों को देखता है, तब वह दाँतों उँगली काटकर माथा

खुजलाता है। उसके लिए तो ये दिल्ली के लड्डू है। जभी तो वह इन्हे जानने को सर भी नहीं खपाता।

जो आज भी चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण को राहु का आक्रमण समझ कर पचासों मील गंगा मे डुबकी लगाने के लिए दौडता है, वही जब आकाश पर हन्-हन् करते हुए वायु-यान को आँखे फाडकर देखता है, तब उसका माथा ठनकता है कि व्योम-विहारी देवता के पुष्पक-विमान पर इन हाड-मांस के पुतलो का गुजर कैसे हो गया! गाँव का पंडित या गुनी कलिकाल की लीला या म्लेच्छ की माया कहकर इस रहस्य—इस कुतूहल—को हल करता है। और कोई दलील तो सूझती नही!

आज सैकडो बरस हिमालय के कन्दरे मे हवा पीकर समाधि लगाये बिना भी मनुष्य दस हजार मील की दूरी से बाते कर सकता है, इसकी कौन-सी दैवी व्याख्या या शास्त्रीय प्रमाण गाँव के पंडितो ने आविष्कृत किया है, पता नही!

पंडितजी ने तो बेला को यह समझा दिया था कि उसके जीवन के जलजले दैव की मार नही, कल्याण के उपहार है। इस निर्माल्य को आँखो से लगाकर वह सर पर रखे, चूँकि यही एक दिन उसे परलोक का राज्य देगा। यह पारलौकिकता की पराकाष्ठा नही तो क्या है?

जिसे दुनिया मे खड़े होने के लिए भी एक बालिश्त ज़मीन नही, उसके लिये दुनिया के उस पार साकेत की गद्दी-नशीनी

धरी रखी है, यह कल्पना कितनी मनोहारिणी है !

पंडितजी ज़बान के उस्ताद थे, और बात भी बड़े पते की थी, दुखिया के दिल में बड़ी आसानी से जगह कर सकती थी। ऐसे ही चकमे देकर साधु-संन्यासी गाँवों में विपद् के मारे निराधार गँवारों को चेला मूँड़ते हैं। इसी तरह अकर्मण्यता और आध्यात्मिकता की फेंटी हुई फुलौरियाँ ग्राम्य-जीवन के कड़ाह में छनती हैं।

बेला के लिए तो यही फुलौरियाँ हलाल हैं—दुनिया की बाकी तमाम न्यामतें हराम ! इसे पंडितजी अच्छी तरह समझते थे। उन्होंने परलोक का सब्जबाग दिखाया उसके चेहरे पर ताजगी लाने के लिए। और किस उमीद पर उसकी आँखों के आँसू रुकते ?

कोई चीज दुनिया में न निरी अच्छी है, न बरी। दैव का भरोसा हमें सिडी आलसी जो बनाता हो, पर अक्सर उसका नशा इतना तेज़ होता है कि दुनिया की मुसीबतों पर बादल बनकर छा जाता है।

पंडितजी का वश चलता, तो बेला बत्ती का टेम भी न झाड़ती, मजे से पाँव पर पाँव धरे चैन की बंशी बजाती और धर्म की तसबीह फेरा करती। पर मिश्रानी अपने आँगन में किसी साधुनी को टिकाने के खिलाफ थी। वे दोनों जून की रोटियों की कीमत कौड़ी-कौड़ी वसूल लेती थीं, और इसीलिए बेला को सुबह से शाम तक कोल्हू का बैल बनना पड़ता था।

सुबह का वक्त है। बेला बैठी जाँता पीस रही है। सामने खाट पर गेहूँ पसारा हुआ है। तड़के ही बेला ने धो-धाकर पसार दिया था। एक गिलहरी खाट की पाटी पर बैठकर दो-एक दाने कुतर रही है। बेला चुप देख रही है। वह रुक्खी पहले तो कुछ सहमी-सी थी, पर बेला की जानिब से हरकत न पाकर इतमीनान से दाने तोड़ने लगी। तबतक गनेस बहू आँगन में ठुमुकती हुई आ पहुची और हाथ बँटाने के लिए जाँते के पास बैठ गई।

गनेस का खपरैल का घर पंडितजी के पिछवाड़ेवाले खंड में है। वह जात का नाई और पंडितजी के घर का नेगी है।

वह गोबर-गनेस ही था, पर उसकी बहू मुहल्ले का 'नारद-मुनि' थी। घर-घर उसका गुज़र था और चड्डमुड लड़ाने के फन में विशारद थी। वह आसमान में भी पैबन्द लगा देती और बिना मेघ के भी बिजली गिरा सकती थी। उसके होठों के ऊपर पतली लोम-राजि उसके कॉइयॉपन की निशानी थी। मर्दानी सूरत, मर्दानी आवाज, कद्दो-कयामत भी काले देव की नाक काटती—लम्बी, मोटी, चौड़ी और कलूटी! वह मर्दों से भी पंजा लड़ाती और अनाज से भरा हुआ बोरा पीठ पर लादकर मिश्रानी के भंडार में पहुँचा देती।

गनेस बिचारा दुबला-पतला, मेंगना और कमजोर है। यह मुहल्ले-भर का मजाक था कि गनेस बहू की मामूल जाँघ की धमक से बिचारे की छाती की पञ्जरियाँ भी मड़मड़ा

जायेगी ! उसकी चुटिया बहू के कानों का झुमका चूमती । पर, दोनों का आपस का बनी-बनाव मजे का था । खेती-बारी तो कुछ थी नहीं, महज थोड़ी-सी जमीन उसी खंड में थी, जिसमें सागसब्जी होती, कद्दू और तरोई, घुइयाँ और भिंडी । दो-चार कट्ठे आलू की खेती । बहू खेत कोड़ती, घास छीलती, लट्ठे से पानी देती, गनेस सुबह-शाम तरकारी तोड़ लाता, काटता, छीलता और छौंकता । बहू इधर-उधर से सूखी टहनियाँ तोड़ लाती, गनेस चूल्हा फूँकता । बहू बाजार करती, गनेस रोटियाँ सेंकता । बहू इंदारे से घड़ों पानी भरती, गनेस घर लीपता और बरतन माँजता ।

बिचारों के कोई सन्तान न थी । जमाना हुआ, एक हुई भी थी, तो उसे सौरी में यम ने छू दिया ! इतना बूता न था कि हरवंश सुन सके । इसलिए दैव का भरोसा था ! पंडितजी ने जड़ी-ताबीज दी, नेता गुनी ने लवंग-भभूत खिलाई, देवघरों में बरसों चहलकदमी भी हुई, पर नतीजा कुछ न निकला !

गनेस बहू परसों मायके से लौटी और आज मिश्रानी के दरबार में हाजिरी देने आई । वह कुछ घर की महरी नहीं थी, पर परब-तिहवार पर आकर दस का काम अकेली कर जाती । वह जब आती, मिश्रानी के भर-माँग सिन्दूर की सलामती मनाती, लाग-लपेट की बातें बनाती और एक फाँड चना-चबेना लेकर वापस चली जाती ।

इस घर में बेला की अमलदारी उसे फूटी आँखों भी न

सुहाती। लेकिन, चूँकि कमला की करुणा की छत्रच्छाया उस पर आठों पहर तनी रहती थी, इसलिए वह अपने गुस्से को जी जॉत कर पी जाती थी। वह समझती थी कि बेला बडी घाघ है और नदी मे डूबकर पानी पीती है, यह भजन-पूजन का रंग महज रंग जमाने की तरकीब है।

बेला का रूप मर्दों की आँख मे गुलाब का फूल जो हो, औरतों की आँख मे वह गुलाब का काँटा था।

"कहो बेला! कमली दीदी ससुराल कब जाती है?"—उसने बैठते ही एक झिझक से पूछा।

"अबतक तो वे गई रहती, मगर मुन्नी की आँख उठ आने से रुकी है।"—बेला ने सर झुकाकर जवाब दिया।

"यहाँ मालकिन को नहीं देखती?"

"वाह! वह क्या दालान मे नेता भगत के साथ बैठी हैं।"—बेला ने उँगली उठाकर दिखाया—"रात ही से कमर मे बिथा उठी है।"

"और कमली दीदी?"

"मन्दिर मे होंगी। खबर नहीं।"

"तुम तो घी की पूरियाँ तोड रही हो न! चक्की भी नहीं चलती। पसीने से तुम्हारी लटे भीग गईं। लाओ, मै चार फेरे मे गेहूँ पीस दूँ, कबतक खटती रहोगी?"—गनेस बहू ने जरा आँखे मटकाकर कहा।

"पीस लूँगी!"—बेला सिटपिटाती हुई धीरे से बोली।

पर गनेस बहू ने हाथ लगा ही दिया, और देखते-देखते चक्की के चारों ओर आटे का अम्बार खडा हो गया।

जब गनेस बहू कपड़े झाडकर उठी, तब अचानक उसकी आँखे ऊपर कोठे पर पडी, और वहाँ खिडकी के डंडों की फाँक मे गुरुवर गिरिधारीलाल के आवेग-मंडित चेहरे को देखा, आँखों की पुतलियाँ न जाने किस आवेश से काँप रही है और ललाट की रेखाएँ तनकर त्रिपुड बन गई है। मुमकिन है कि वे कोठे मे उतरते वक्त, इधर झुक पडे हों, और चक्की चलाने की मिहनत से बेला के बदन के सुनहले रग पर जो लालिमा दौड रही थी—उसके अनावृत ललाट पर जो हीरे की कनियाँ चमक रही थी, उस शिशर-सिक्त प्रभात-कमल की सुषमा ने छन-भर उनकी चितवन का दामन थाम लिया हो।

गनेस बहू ने फौरन् मुडकर बेला को देखा। शायद उसने समझा कि पंडितजी की इस आकुल चेष्टा का रहस्य बेला के मुखमंडल पर खुलेगा। पर बेला के चेहरे पर तो एक टेढ़ी-मेढी रेखा तक न थी। वह तो सर झुकाए आटे को बोरने मे मसरूफ थी—अंजलियों मे उठा-उठाकर दौरे मे रख रही थी। उसे क्या खबर थी कि किसी की प्यासी चितवन उसके चेहरे के पानी को पी रही है। उसे क्या खबर थी कि हाथ बटानेवाली गनेस बहू के दिमाग मे उसके प्रति उस क्षण कैसी ईर्ष्या-प्रज्वलित शरारत की बिजली खेल रही है!

गनेस बहू ने बेला के चेहरे पर कोई मनोनुकूल इंगित न

पाया, तो वह जरा हताश-सी हुई, क्योंकि पंडितजी की निगाह के निखार में उसे वासना का सञ्चार ही नजर क्यों न आया हो, उस नाइन के सात पुश्त का भी गुर्दा न था कि उनकी शान में चूँ भी कर सके, पर बेला के मान-मर्दन के लिए उसे काफी मसाला मिल गया। अब धूल में रस्सी बटना कोई उससे सीखे!

उसकी कल्पना के घोड़े पर शैतान सवार हो गया! बेला को, उसके रंग-रूप के अक्षम्य अपराध के लिए, सजा देने की तरकीब उसकी बुद्धि के परदे में खेल गई, वह फौरन मिश्रानी के निकट पहुंची।

मिश्रानीजी, लिहाफ में लिपटी हुई, कमर की व्यथा से कराह रही थीं। नेता वहीं खाट के पास बैठकर, कुछ बुद-बुदाता हुआ, टकनी की आग में धूना डाल रहा था। वह रह-रहकर बदन तोड़ता, झिझकता, भवें तानता, दाँत पीसता, मुट्ठी बाँधकर शून्य पर वार करता और एकबारगी ऐसा तड़प-कर हाथ चलाता, मानो किसी का गला घोंटना चाहता हो।

जब मिश्रानीजी की कमर से टीस उठती और 'मरी-मरी!' पुकार वे चमककर चीख उठतीं तब नेता मिश्रानी के मुँह पर तर्जनी दिखाकर—'बोल, कौन है? नहीं तो, जलाकर खाक कर दूँगा!'—इतने जोरों से कड़ककर डाँटता कि खम्भे की आड़ में पतीली में रखी हुई रात की बासी खीर-पूरी को चाटती हुई बिल्ली सहमकर दूर भाग जाती!

ऐसी डपट पर करिहैयाँ की पीरा भी डरकर दब जाती

और फिर जहाँ उठती, वहीं डॉट खाती। इस डॉट-डपट और तड़प-झड़प के ज़न्नाटे पर मिश्रानीजी के मन से पीड़ा का सूत्र आप-से-आप छिन्न हो जाता। खयाल पलटने से पहली अनुभूति जो शिथिल हो जाती, तो वे समझती कि नेता ने अपनी पटुता से भूत को मार भगाया!

हमारे शरीर की कितनी ही व्याधियाँ हमारे मन की कमजोरी पर पनपती हैं, और जिस प्रयोग से श्रद्धा उठकर मन को उसके निहित तेज का पता दे सके, वही प्रयोग चिकित्सा का प्राण है। जिस मन की आन्तरिक सत्ता का सञ्चार झाड़-फूँक या कॉम्स-कराही की माया पर निर्भर है, उसे रसायन की बटी किस मर्ज की दवा होगी?

गनेस बहू ने मिश्रानी की कमर को टीपना शुरू किया और मौका देखकर मनचीती बात छेड़ी—"क्या कहूँ, मालकिन! यह देखने में तो गाय है, पर है थुथुरमुँहा साँप।"

"कौन?"—पंडितानी ने कान खड़े किये।

"यही, बेला!"

"क्यों?"

"यह ढिठाई तो देखो।"—गनेस बहू 'नेता' की गरदन की दाद की तलाश में उस ओर झुकी—"जिस पत्तल में खाना, उसी में छेद करना।"

"बात क्या है, साफ क्यों नहीं कहती?"—पंडितानी ने ज़रा झिझककर पूछा। दरद अब हिरन हो गया! वे हाथ टेककर उठ बैठीं।

कुत्सा का लखलखा किस दिमाग को तरोताज़ा नहीं करता?

कुत्सा की मीठी गन्ध मिश्रानी की नाक में पड़ी और दिमाग में ताजगी आ गई। नेता भी सरककर नजदीक आ गया।

गनेस बहू ने आवाज और भी धीमी की, गरदन कुछ और टेढ़ी की, चितवन में एक और भी मटकी भरी, और साँसी में बोली—"कहूँ क्या, कुछ कहने की बात है? वह छोकरी अपने को इन्दर की परी समझती है। इधर चक्की पीसती थी, उधर कोठे पर निगाह टकराती थी। तुम्हीं कहो नेता! यह नैन का टोना महाराज पर डालना और सती-सावित्री का दिमाग रखना!"

स्त्री की ईर्ष्या—अकारण ईर्ष्या—कितनी कठोर, कितनी निर्मम है! जब यह उठती है, तब लूक बनकर उठती है, और जब फटती है, तब प्रलय बनकर बरसती है। इस जगत् में न ऐसा कोई निर्विड नाता है, न ऐसी स्नेह की शृङ्खला, जिसे चकनाचूर कर यह भुस्सियाँ नहीं बना देती। इसकी संहारिणी सत्ता तमाम सांसारिक बन्धनों की धज्जियाँ उड़ाकर वर्त्तमान और भविष्य का तख्ता उलट सकती है।

अगर राम के तिलकोत्सव की खुशी में कौसल्या की धवाई हुई दाई का आनन्द-चञ्चल नथ कैकेयी की महरी की आँखों में चिनगी न फूँकता, तो बहुत सम्भव था कि न राजा दशरथ का मरण होता, न युवराज का वन-गमन, न सीता का हरण

होता, न लङ्का का दहन, और न पौलस्त्य-परिवारका दलन।

मन्थरा की ईर्ष्या कौसल्या की महरी मे थी, कुछ राम से या राम की माता मे नहीं। ईर्ष्या बराबरी मे होती है, बडे या छोटे से नहीं। उस ईर्ष्या की शिखा देखने मे एक नन्हीं-सी लुत्ती जो हो, पर भभककर दावानल मे भी प्रबल हो गई और सरयू से सागर तक हहास बाँधे फैल गई! उस विस्फोट के दायरे मे निखिल भुवन खिचकर आ गया। एक-से-एक धुरन्धर महारथी और ज्ञानी, जिनकी भुजाओं के तेज के आगे गन्धर्व और देवताओं के भी होश ठढे हो जाते थे, महज दो पैसे-वाली दाई की ईर्ष्या के शिकार हो गये!

बाहर मैदान लेकर चक्रव्यूह के एक-एक मोर्चे को आसानी से कोई भले ही तोड सके, लेकिन अगर वह घर के एक फाँक से—आँगन की दीवार के एक सराख से—लापरवाह रहता है, तो विश्वविजयी होने पर भी उसे घर की चौखट पर मुँह की ही खानी पडती है।

झन-झन रात मे हमारे पलँग की मसहरी के भीतर, कभी आँख के खारे जल के साथ, कभी होठों के मीठे रस के साथ, जो-जो विष-मंत्र हमारे कान मे फूके जाते है, वे तान्त्रिक के मारण और उच्चाटन-मंत्रों से भी कहीं भयङ्कर होते है।

अब तो पंडितानी का चेहरा तमतमा उठा। मारे गुस्से के दाँत पीसनेवाली रगड पर जबड़ो के भीतर से गाज निकल पड़ा। खैरियत थी कि बेला सामने मौजूद न थी, वरना भगवान्

जाने, उसपर क्या बीतती ! मिश्रानी उसे मुअल्लक कच्चे निगल जाती या बोटी-बोटी काटकर रख देती !

"उस निगोड़ी को कुत्तों से न नुचवा दूँ, तो कहना !"—मिश्रानीजी काली नागिन की तरह फुङ्कारकर बोलीं।

गनेस बहू ने आग लगाकर अब पानी डालना शुरू किया। यह उसकी हरगिज नीयत न थी कि मिश्रानी सामने से वार करे और गिरिधारीलाल या कमला के कानों तक यह बात उठे। उसे डर था कि बात अगर बढ़ी और छान-बीन चली, तो यह बला पलटकर उसीके सर पर आ धमकेगी और लेने के देने पड़ जायँगे।

मिश्रानी का रुख देखकर वह डरी कि कहीं जामे से बाहर होकर वे हंगामा न बरपा कर दें और आखिर उसे सब के सामने सबूत पेश करना पड़े। इस पैंतरे में तो वह पीठ खा जायगी और बेला सुर्खरू बनी रहेगी।

तबतक मशवरे में मूँगा भी आकर शामिल हो गया। मिश्रानी ने साँस लेकर फिर शुरू किया—"मैं तो पहले ही से जानती थी कि वह हरामजादी मुझे तबाह करने आई है। 'मुँह में राम, बगल में छुरी' ! कमली नहीं समझती, सर पर बिठाये रखती है। उस टोनही ने सारे घर पर जादू डाल रखा है। जिससे कहो, वही उसका गुन गाता है। अकेली मैं ही बागी बनी हूँ। मैं मुँह न झौंसवा दूँ तो बाप की बेटी नहीं !

मेरी ही रोटी के टुकड़े पर पेट पालना और मेरे ही घर में सेंध देना !"

"मगर मालकिन !"—मूँगा ने दबी जबान से भूत उतारने की कोशिश की—"सेंध डालकर वह कलमुँही करेगी क्या ? कुछ मिट्टी की दीवार तो है नहीं कि डर है। यह ईंडट्टी कहाँ तक पत्थर तोड़ सकेगी ? गुरु महाराज पर निगाह उठाएगी, तो खुद ही जलकर खाक हो जायगी। वे खालिस सोना हैं, कुछ काँसा-पीतल तो हैं नहीं कि चोरी का डर हो।"

"सो तो ठीक है मूँगा ! लेकिन पुरुष-जाति का मन बड़ा तुनुक होता है। कोई मुझे तो निगाह डाल के हिला ले, आँखें निकलवा लूँ !"

मिश्रानी शायद आईने में अपना मुँह देखतीं, तो यह बेतुकी बात जबान पर न लातीं ! उनके यौवन पर अगर आँखें गरम होतीं या जुड़ातीं, तो मिश्रजी को इसी सिन में अलख जगाने की हाजत न होती !

"सूत की रगड़ से भी एक दिन पत्थर घिस जाता है। काम का घुन उनके सब धरम-करम को खोखला कर देगा !"—मिश्रानी ने फिर अपना मन्तव्य पेश किया।

"नहीं मालकिन ! पत्थर में घुन नहीं धरता। और, हमारे सरकार का न वह सिन है, न कभी की ऐसी धुन है। एक नहीं, सैकड़ों बेला आकर रूप का मेला हजार खड़ा करे। यह तो रोज़ जाकर घंटों रामायण पढ़ती है, इससे क्या होगा ? उनके दिल पर भला बल आने को है ?"

"सत्तर चूहे खाकर बिल्ली चली हज करने !"—मिश्रानी ने फिर फुङ्कारकर कहा।

रामायण का जिक्र होते ही पंडितानी के मिजाज का पारा ऊपर खिच गया। बेला पढ-लिख सकती है—रामायण पढ़ती-समझती है, यह सत्य उनके कलेजे में काँटे की तरह चुभा करता। पंडितजी की इतनी वलीग कोशिश पर भी वह खुद तो महज 'क-ख-ग' के आगे न बढ सकी थी, और यह दो दिन की छोकरी मोटी-मोटी किताबों को मथ डालने का दिमाग रखती है, यह बात उनका जामे के दायरे के बाहर फेंक देती। यही वजह थी कि वे बेला को कभी दम लेने की फुरसत नहीं देती और रात में चिराग के तेल के खर्च की जाँच पर कड़ी निगाह भी रखती।

बेला बिचारी जो कुछ पढती, मिश्रानी से नजर चुराकर। उसका रूप—रूप पर रंग, उसका यौवन—यौवन का निखार, उसका शील—शील का बरताव, उसकी तालीम—तालीम की तारीफ, एक-एक रमादेवी के कलेजे में आग लगाने के लिए काफी होती—अगर बेला के मुँह का उतरा हुआ पानी उस शोले की भडक को ठंढा न रखता। खैरियत यही थी कि वह पतिता की उपाधि से भूषित थी। नहीं तो, रूप-रंग और शील-स्वभाव के 'दुर्गुन' रहते उसे मिश्रानी के घर में एक क्षण भी टिकने की इजाजत मिलती ? उसके तमाम अवगुणों का जवाब थी उसके सर के कलंक की छाप !

बेला के मुँह पर सोने का पानी क्यों न हो, पर आबरू का पानी तो रहा नहीं। वह अरबी-फारसी की शान पर लाख इतराती फिरे, भजन-पूजन और नेम-नियम की लाख माया-रचना करे, पर ये तमाम कोशिशें और तरकीबें जब उसके दामन के दाग को नहीं धो सकतीं, तब मजाल नहीं कि वह किसी कुलवाली के रू-ब-रू आँखें बराबर कर सके!

दिल में यही तसल्ली रखकर मिश्रानीजी थाली की गरम-गरम खीर-पूरी को उँगलियों से मीसकर इतमीनान से निगल जातीं। अगर उनके दिल में इस दिमाग की जगह न रहती, तो मुमकिन न था कि एक लुकमा भी हलक के नीचे उतर पाता। उन्होंने कभी ख्वाब में भी न समझा था कि बेला की चितवन का जादू पंडित-प्रवर के सर पर भी सवार हो सकता है। एक हल्की-सी आशङ्का मन के कोने में कभी झाँकती भी, तो पंडितजी के खिचड़ी बाल, उनकी गर्दन में रुद्राक्ष के दाने, भगवान् चन्द्रमौलि के पद-प्रान्त पर झुके हुए उनके ललाट की भस्मरेखा, उनकी उठती हुई बेकली की जड़ काट डालती। फिर, उनकी निगाहों में बेला के रंग-रूप में कोई ऐसी खास बाबत नहीं थी कि किसी आशङ्का की जगह हो!

अव्वल तो किसी की गरदन पर दो सर नहीं थे कि वह बेला के रूप-गुण का बखान उनके सामने जबान पर ला सके, क्योंकि एक तो दुनिया की किसी हाड-माँस-चामवाली स्त्री का कौन जिक्र—इन्द्रसभा की उर्वशी की मोहिनी सूरत का भी वे

कायल नहीं थी, और दूसरे, घर के सभी बूढ़े-बच्चे इस अम्र से वाकिफ थे कि मिश्रानी के दरबार में ऐसा तजकिरा कुफ्र की चर्चा की तरह मकरूह था।

जब इन सरगर्म बातों की आवाज कमला के कानों में पड़ती, तब उसका जी मानो रो उठता। वह अपनी माँ के मिजाज के इस अन्दाज से परिचित थी, लेकिन जब कभी वह किसी बात पर खिझी रहती, तो बेवजह उनकी कनपटी के नजदीक छेड़ बैठती— 'आह! भगवान का इन्साफ तो देखो! बेला को रूप तो दिया ऐसा लहालोट और भाग दिया ऐसा खोटा। यही करना था, तो यह सोने की पुतली बनाने को क्या पड़ी थी?"

यह बात क्या थी, बर्रे के छत्ते में छड़ी घुमेड़नी थी। मिश्रानीजी फौरन जामे से बाहर हो जातीं—"क्या बकती हो कमली? जवानी में कूबड़ी भी किन्नरी बन जाती है—दुमकटी कुतिया भी किलोल करती फिरती है। उस कलमुँही को रूप! तुम भी सपना देखती हो? गाल क्या है, तेल के गुलगुले है, फूलकर कुप्पे बने है, मानो बर्रे ने काट खाया हो! ऊँट की-सी लम्बी गरदन, हाथी के सूँड की तरह रान, बड़ी-बड़ी डरावनी आँखे! इसे भी तुम रूप में शुमार करोगी? मेरे भी कभी दिन थे। मै भी दस में एक थी! तुम्हारे नाना जब नवरातरे में कुमारी-पूजन कराते, तब मै ही चंडिका बनती! जानती हो, देवी की प्रतिमा की तरह मेरे रूप की छटा थी और फूल-माला पिन्हा कर मेरी आरती उतारी जाती थी!

कमला चुपचाप सुनती, होठों में मुस्कुराती और मन-ही-मन खुश भी होती। वह खुद तीस के पड़ोस में आ चुकी थी; और यद्यपि उसे हुस्न का दिमाग न था, मिजाज भी बिलकुल सीधा-सादा था, सिन्दूर से भरी माँग और बच्चों से भरी गोद होने के कारण वेला से खबर खाने की कोई वजह भी न थी, फिर भी वह स्त्री थी और सब कुछ होने पर भी आखिर अपनी माँ की बेटी थी!

कब कोई स्त्री दूसरी स्त्री के रूप-गुण की बड़ाई पर मन से मुग्ध हो सकती है? ऐसा स्तुति-गुंजन कब उसके कानों में पीयूष का कतरा हो सकता है?

आपको इस कलाम पर यकीन न हो, तो आप अपनी प्रेयसी के रू-ब-रू मुहल्ले की किसी चन्द्रमुखी या नहीं तो अपनी साली या सलहज ही की लावण्यलहरी की चर्चा छेड़िये, और फिर जरा आड़ी आँखों से उनके चेहरे के रंग के उतार-चढ़ाव को—उनकी चितवन के कोने की झलक को—उनके होठों के प्रान्त की रेखा को—गौर से मुलाहज़ा कीजिये।

अगर श्रीमतीजी ने आपकी नीयत को भाँप लिया, या यह समझ लिया कि यह तर्ज़े-सख़न उनको बनाने की या उनके दिल को टटोलने की तरकीब है, तब तो कुछ रंग खुलेगा नहीं और वे हँसकर बात टाल देंगी, नहीं तो आप कुछ मजेदार टीका-टिप्पणी सुनेंगे—"हाँ, रंग तो चटक है, मगर चेहरे पर काफी नमक नहीं! ·· उससे तो निर्मला दीदी की बेटी रमा

कहीं खुलती है। रंग उतना साफ न हो, मगर कैसा सलोना चेहरा है! अलबत्ता दाँत उनके बिलकुल अनार के दाने की तरह गुँथे है, मगर जरा होठों पर बेतरह लटक आये है! आँखे जरूर हिरन की-सी बडी और रस से भरी है, मगर पेशानी न होने से रंग नहीं लाती! बाल तो ऐसे लम्बे और काले मैंने देखे नहीं, पर अगर घने भी होते, तो बे-मिसाल होते!"

और, कहीं वेश-भूषा पर चर्चा छिडी, तो फिर आप उनकी नपी-तुली जाँच की रिपोर्ट सुनिये—"साडी तो सुआपंखी लहालोट थी, मगर कहीं खसखसी रहती, तो और खुलती। ब्लाउज का पैटर्न तो बिलकुल नया था, मगर इस कदर खुली गरदन थी कि मै तो शर्म के मारे चौखट से बाहर न होती! मीरा की सन्दली साडी थी तो बारीक, पर उनके जिस्म के रंग के साथ चलती नहीं थी! अगर मैच करती हुई बेल रहती, तो सच मानिये, आज पार्टी मे श्यामा की मासी साडी लाख मे एक होती। जूली के जैकेट की काट तो चटक थी, मगर भई! आस्तीन पर बेवजह झालरी लेस चढाकर उसे भद्दा कर डाला।"

नेता के शिकम के चूहे उछल रहे थे। वह अबतक इसी घात पर टक लगाये बैठा था कि मछली किनारे पर आती है या नहीं। मिश्रानी के मिज़ाज का उभरा हुआ बादल महज गरज-तडपकर खुल जायगा या किसी ओर बरसेगा भी! अगर

बरसना है, तो मेरी बारी पर आकर बरसता कि सूखी लालसा की लता लहलहा उठती।

उस दिन तो कमन्द बाम तक पहुँचकर टूट गई थी। वह असफलता उसे आज भी खल रही थी।

मिश्रानी भीतर-ही-भीतर फूल रही थी और गुमसुम बैठी थी। तीनों दरबारी एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे। ऐसी ऊमस हो गई कि पता न चलता, किधर की हवा है।

नेता का दिमाग खौल रहा था। वह गनेस बहू को कनखियों से इशारा देता रहा। भगवान् जाने, यह तमाम बन्दिश दोनों की बुद्धि की सम्मिलित उपज थी या महज गनेस बहू के जरखेज़ दिमाग की फसल थी। जो हो, गनेस बहू ने बड़ी खूबी से घाट चरा दिया था, अब नेता को डोरी डालकर शिकार निकाल लेना था।

मिश्रानी की जानिब से आखिर बेला की किस्मत का फैसला क्या होता है? कुत्तों से नुचवा देना या मुँह झौसवा देना तो इस ज़माने मे न मुमकिन है, न मुनासिब।

नेता हरगिज इस नादिरशाही का पक्षपाती नहीं था। वह तो चाहता था कि किसी तरकीब से, बगैर शोर-गुल के, बेला के कदम इस मकान से उठ जायँ, फिर तो उसे उड़ा ले जाना बाएँ हाथ का खेल था।

इसीलिए जब उसने देखा कि ऊँट किसी करवट नहीं बैठता है तब नकेल थामकर उसे अपनी ओर बैठाना ही होगा। उसने

जरा गला साफ किया और अपनी राय पेश की—"बहूजी! मुँगा भाई ने जो कहा, सो ठीक ही कहा। सरकार पर चितवन का वार चलाने के लिए बेला को नया जनम लेना पड़ेगा। सो, डर नहीं है। लेकिन इस ढिठाई की सजा देनी जरूरी है। वार ऐसा हो कि साँप भी मरे, लाठी भी न टूटे। किसी तरह की हलचल होने से हमारी ही बदनामी होगी सरकार को भी नागवार होगा। बेला को चालाकी से खपा देना ठीक होगा—किसी को कानों-कान खबर तक न हो।"

गनेस बहू की जान में जान आ गई। उसने तड-से इस राय की तसलीम की—"हाँ, बहूजी! नेता गुनी की बात सौ में एक बात है। मैं इसे पीर मियाँ के मेले में लिवा जाती हूँ। और, नेता काका! तुम वहाँ से टरका देना!"

नेता का कलेजा बाँसों उछल गया, पर उसने उस उछाह के रंग को चेहरे के आइने तक आने नहीं दिया—"वाह बेटी! यह तो पते की बात बताई! तुम दोनों शीरीनी का चढ़ावा लेकर चलो, वहाँ से फिर फुर्र!"

"नेता भाई! तुमने तो गोटी लाल कर दी! पौ-बारह का हाथ है यार!"—नेता के तानपुरे के तबलची मुँगा ने फौरन् थाप दी।

"ठीक तो, नेता!"—मिश्रानीजी की जबान खुली—"जब से वह सबुजपैरी मेरे घर पर आई, मुझे चैन नहीं। अब किसी तरह तुम इस बला को दूर करो!"

फिर तो चारो आध घंटे तक फुस-फुस बाते करते रहे। प्लैन की रचना पूरी हुई। फूल-माला पिन्हाकर उसे पीर मियाँ के मज़ार की बलिवेदी पर ले जाने का नक्शा बैठ गया। गनेस बहू और नेता ने वहाँ से उडा ले जाने का बीडा उठाया।

मिश्रानी ने गिरगिटान की तरह सिर हिलाकर स्वीकृति दी। उनका मेघाच्छन्न मन फिर साफ हो चला, और बादल फटते ही प्रसन्नता की किरणे चेहरे पर खेलने लगी।

एकादश परिच्छेद

इधर तो बेला के सत्यानाश का प्लैन तैयार हो रहा था, उधर वह बिचारी गङ्गा और यमुना की गरदन मे माला डाल कर आरती उतार रही थी। जब कभी वह फूल और कपूर पा लेती, गङ्गा और यमुना पर चढा देती थी। जब गनेस उन्हे बाहर चरागाह पर ले जाने के लिए पहुँचा, तब उसकी आँखो के सामने आरती-शिखा की क्षीण ज्योति से उद्भासित बेला का मुखमंडल दीख पडा, और वह ठमककर खडा हो गया।

जो आँखे सदा एक दानवी के भूधराकार स्वरूप के अभ्यस्त थी, वे आज किसी देवबाला की दिव्य दीप्ति के दुर्लभ दर्शन पाकर क्यो न निष्पलक हो जाती ?

वह बेला को प्रतिदिन देखता सही, पर आज उसी बेला की काया मे जो रूप का निखार उसने देखा, उसे उसने अपनी आँखो की .खुशकिस्मती समझी। वह इस तरह आँखे फाड़कर

देखने लगा, मानो वह बेला को खड़े-खड़े उनमें रख लेना चाहता हो। वह ख़ुद की बेख़दी में इस कदर डूबकर गुम हो गया कि उसके दिमाग में यह ख़याल बिलकुल जाता रहा कि बेला की भी आँख है और उसकी आँखों की यह चोरी की लत कहीं पकड़ ली तो!

जब बेला की निगाह उस ओर फिरी और उसने गनेस को इस स्थिति में पाया, तब वह न जाने किस आवेग से हँस पड़ी—"क्यों गनेसी! क्या देखते हो? तुम्हें भी आँख हो गई क्या?"

गनेस ऐसा लजाया, मानो भाई के घर में सेंध देते पकड़ा गया हो, मुँह से आवाज नहीं निकली, जैसे जबान तालू में सट गई हो। वह झुककर भूसे का खाँचा उठाने लगा।

"यह क्या कर रहे हो? पगहा इधर है! गायों को खोल ले जाओ। देखते नहीं, कितना दिन चढ़ गया!"

गनेस इस चेतावनी पर सँभल गया और खूँटे की ओर मुड़ा।

जब दो घंटे बाद श्रीधर खाने के लिए आँगन में आया, तब कमला ने चौके में आसनी डालते हुए कहा—"आज तो भाई, माँ ने बेला को नई रंगीन साड़ी दी है और गनेस बहू ने सर पर तेल देकर पाटी सँवार दी है। मुन्नी तो आज उसकी गोद से उतरती ही न थी।"

श्रीधर हाथ-मुँह धोकर कम्बल पर बैठ गया। कमला ने

थाली लाकर सामने रखी। श्रीधर ने रोटियाँ तोड़कर दाल में भिगोई, और मुन्नी को गोद मे लेकर खिलाने लगा। उसके चेहरे से प्रसन्नता चुई पडती है।

"सच ! बेला ने आज रंगीन साड़ी पहन ली ?"

"न पहन लेती, तो करती क्या ? माँ के सामने किसी की एक चलती है ? वह भी मखमली किनारे की हल्की पियाज़ी साडी !"

"तुम भी वहीं थी ?"

"मै तो तडके मोहन मिश्र के घर मुन्नी को लेकर गई थी। जब दिन चढ़े लौटी, तो देखा कि बेला सिटपिटाती हुई कोने मे खडी है, और गनेस बहू सूखे बिखरे बाल पर तेल उँडेल रही है। मैने तो आकर नेता और मुँगा को टरकाया और बेला को अपनी कोठरी मे ले जाकर चोटियाँ गूँथ दीं। जानते नहीं, आज वह चढावा लेकर मेले जा रही है।"

"मेले जा रही है ? कौन-सा मेला ?"

"वहीं, पीर मियाँ का मेला !"

"राम ! राम !! वहाँ कोई शरीफ भी जाता है ? और बेला वहाँ क्यों जाने लगी ?"

गाँव से थोड़ी दूर उत्तर जानिब पीर मियाँ का मजार है। वहाँ जुमे के दिन रमज़ान के दिनों मे ख़ासा मेला उमड आता। दूर-दूर से औरतें नियाज़ की शीरीनी लेकर आतीं और अपना अर्ज़-गर्ज़ लगाती। पुजारी एक लफंगा डफाली है। जब मुरादें

पूरी होती, तब मुर्गियाँ कटती। मुसलमान औरतों का तो हुजूम लग जाता, मगर सैकड़ों हिन्दू औरतें भी शामिल होती। बड़े-बड़े घर की औरतें भी लुक-छिपकर आतीं और मनचीती दुआएँ माँगती। कितनी परदानशीं अपनी प्रकृति के तकाज़े के वश मेले के बहाने दो घड़ी की तफरीह ढूँढ़ती।

परदे की बद्ध वायु के भीतर अक्सर बेपर्दगी के अंकुर पनपते हैं, व्रतपरस्ती के सङ्कीर्ण निर्मम प्राङ्गण में अक्सर बदकिस्मत की आत्मा शरीर पाती है, आचार की कठोरता के परदे में व्यभिचार की सत्ता सर उठाती है, पूँजीपतियों के मखमली गाव-तकियों की तह में साम्यवाद के कीटाणु अंडे देते हैं।

देहातियों के जीवन में न सिनेमा है, न थिएटर, न क्लब है, न रेस। उनके लिए तो देवघर और स्नान का मेला है, मेले की छोटी-मोटी दूकानें हैं, दूकानों की कंघी, चोटी, बिन्दी, टिकुली है, बिन्दी-टिकुली में लहालोट पाटी-गुँथी औरतें हैं, औरतों की चोंडी-चिपटी झुलनियाँ हैं, और सब पर बाला थिरकती हुई झुलनियों की बहार है!

पीर मियाँ के मेले में हर तबके की औरतें इकट्ठी होतीं। बूढ़ी आकर बेटी के लिए बेटे माँगती, जवान आकर जवानी का भूत उतारती, बच्ची आकर पेट की तिल्ली कटवाती। घूँघटवाली आतीं, दिल-फेंक निगाहवाली भी आतीं। कोई मन की खाज, कोई देह की खाज मिटाने आती। कितने छैल-

छबीले, लुच्चे-लफंगे, लुंगी और काछा बाँधे, पान चबाते, बीड़ी फूँकते, सोने की चिड़ियों की तलाश मे, मँडराते फिरते। गाँव के बाँके-तिरछे बाबू-भैया, टेढ़ी टोपी सर पर तानकर, कुँअर-कन्हैया बने, डंडो मे त ल देकर इतेराते रहते।

कमला ख़ द जानती थी कि यह मेला भले आदमी के जाने की जगह नहीं। पिता की मरज़ी के खिलाफ़ बात थी। पर मिश्रानीजी की आस्था तो देवघर और मजार मे थी। यद्यपि वे इधर ख़ द नहीं जाती थीं, पर गाँव के जागते देवता 'पीर मियाँ' की दिलजोई के लिए चढावा भेजना तो जरूरी था।

जब श्रीधर ने दरियाफ्त किया कि मेले मे बेला क्यों जा रही है, तब कमला ने सर झुका लिया। जवाब क्या देती? वह तो ख श थी कि बेला की किस्मत खुल गई और माँ ने आज उसे अपने हाथ से धराऊ साडी पहनाई और गुलफुल उसके दोनों गाल चूम लिये।

ऐसी ख़ शनसीबी के वक्त बेला अगर जाने से इनकार कर देती, तो बहुत मुमकिन था कि बनी-बनाई बात बिगड जाती और मिश्रानी की दिलशिकनी होती। आखिर घंटे-भर के लिए जाने मे हर्ज ही क्या है? कोई उसे खा तो जायगा नहीं। और, वह कौन ऐसे बाप की बेटी है या रूप की रानी है जो दस कदम चलने से कुम्हला जायगी? इसीलिए कमला ने बेला को समझा-बुझाकर जाने पर राज़ी किया था।

"जाने मे हर्ज ही क्या है ? माँ का मन रख लेगी, तो यहाँ चैन से दिन काटेगी।"—कमला बोली।

"वहाँ मेले मे इर्द-गिर्द के सैकडो आवारे इकट्ठे होते है और बुरी तरह की बेपर्दगी चलती है।"

"अकेली तो जाती भी नही, गनेस बहू भी साथ जाती है। चिराग जलने के पहले दोनो वापस चली आयँगी।"

इसी वक्त बेला, गङ्गा और यमुना के लिए जूठ का बरतन उठाए, सामने चौके से गुजरी। श्रीधर ने देखा, प्याजी साड़ी के आवेश मे बेला के शरीर की पोर-पोर से लावण्य की किरणे छन रही है, और सुलझे-सुथरे बाल के बादल से चमकता हुआ मुखडा क्या है, चाँद का टुकडा है!

बेला ने आँखे उठाकर श्रीधर को देखा, और फिर आँखे झुकाकर निकल गई। इस देखादेखी मे तो कोई बात नही, पर आज अचानक बेला चौका उठने के पहले बरतन तलाशती इधर क्यो आई ? यह कुछ सधी-बँधी बात थी या मन की उडती मौज थी ? क्या वह नई रंगीन साडी के भीतर से रूप का निखार दिखा गई—वही नारी की शाश्वत प्रकृति ? पर, वह तो कभी की विलास-चंचला नही थी! अभी तक तो उसके दिल मे चुहलो का चाञ्चल्य कभी पाया नही गया! यह इंगित भी उसके साथ अन्याय हो सकता है। भगवान् जाने, कौन ऐसी प्रेरणा थी, जिसे वह शायद खुद भी नही जानती थी।

द्वादश परिच्छेद

"अरे यार ! यह सोने की चिड़िया कौन उड़ा लाया ?"

"पता नहीं। आखिर है यह किस डाल की बुलबुल ?"

"म्याँ ! बस, दूर से आँखे सेक लो ! यह कुछ इस चमन की चाँदनी· · ·"

"भई ! इस खटमीठी चटनी का मज़ा · · ·"

"क्यों बे उल्लू ! तुम्हारी ज़बान भी तर होने लगी क्या ?"

"और क्यों न हो ?—'मुझको ख़ुदा जो सब्र दे, उस-सा हसी बनाये क्यों' ?"

"क्यों लाला ! तो क्या यह मेले से बैरंग वापस चली जायगी ? किसी की छाती मे कलेजा नहीं रहा क्या यार !"

"अरे कलेजा न सही, दिल तो है !"

"यहाँ कलेजे का काम है बच्चू ! दिलवाले तो दिल थामे खड़े है ! किसी को गुरदा हो, तो इस माल पर हाथ डाले। नहीं तो—टुकुर-टुकुर दीदम, दम न कशीदम !"

"जाने मन ! आधी नज़र इधर भी हो !"

इन चौतरफी बेतुकी आवाज़ों की भनक बेला के कानों में भी पड़ी। वह गनेस बहू के पीछे सिमटी जा रही थी। वह हजार लुकती, हजार सिमटती, हजार सिकुड़ती, पर यहाँ हजार-हजार कुतूहली लोचनों की दूरबीनें तनी थीं। छिपने-छिपाने से वह कहाँ तक बच पाती ! एक ओर चुराती, तो दूसरी ओर उघरती, एक से बचती, तो दूसरे से टकराती। आँखों पर लम्बा घूँघट खींचती, तो मुँह के बल पड़ जाती, अगर घूँघट सरकाती, तो मुलायम गालों पर चितवनों की अनी गड़ती। वह ज्यों-त्यों लजीली वधू की तरह अपने-आपको चुराने की कोशिश करती, त्यों-त्यों वह देखनेवालों के लोचनों को ललचाती।

वह बिचारी अकेली थी और चारों ओर से गुलछर्रे के छर्रे तथा चितवनों के चोखे तीर बरस रहे थे। वह बिंधी जा रही थी। वह प्याजी साड़ी जान की आफत हो गई। बेनी का फुलना सर्पिणी की फणा बन गया। ज़मीन फटती न थी, आसमान फटता न था !

नेता एक दूकान पर बैठा गाँजे का दम लगा रहा था। उसकी आँखों के डोरे सुर्ख हो रहे थे। उसकी पेशानी की नसें तनी थीं। वह बेला को बेशर्मी से घूर रहा था और झुक-झुक कर मूँगा के कानों में शोखी भर रहा था।

जब नियाज की रस्म तामील करके गनेस बहू की विशाल

काया के साये मे सिमटी हुई बेला वापस जाने के लिए उतावली हो रही थी, तब नेता ने आकर मीठा मुँह करने के लिए दोनो को निमंत्रित किया—"गनेसी बहू ! चलो, ज़रा ठंढा तो हो लो, मुँह तो मीठा कर लो। क्या खाओगी ? गुलाब-रच्योडियाँ—मोतीचूर—पन्तुए ? जो कहो।"

गनेस बहू मुडकर बेला के कानो मे फुसफुसाई—"जल्दी क्या है ? इतने दिनो पर तो मकान के बाहर पैर रखा है। मेला तो देखती चलो ! हाँ, कुछ चख भी लो !—जिलेबी या रच्योडी ?"

बेला ने सर हिलाकर इनकार कर दिया। तबतक मूँगा वहाँ आ टपका।

"न सही मीठा, नमकीन तो कुछ चखो ! ताजी फुलौरी, गरम-गरम घुघनी, दही-बडे, कचालू-समोसे—जो जी चाहे सब तैयार है।"

"नही, भूख नही। घर चलो, हाथ जोडती हूँ, देर न करो। मुझे डर ' '।"—बेला अपने को ज्यादा जब्त न कर सकी।

"यह लो ! यहाँ डर किसका ? मजाल है कि कोई चूँ भी करे ?"—नेता ने जमीन पर लाठी पटकते अकडकर कहा और मूँछो पर ताव दिया।

गनेस बहू आगे बढ़ी और तमककर बोली—"तुम न खाओगी, मत खाओ। मै तो बगैर जलखई किये लौटती नही !"

वह एक मिठाई की दूकान पर ठमककर खड़ी हो गई।

नेता ने बढ़कर हलवाई से कहा—"दो सेर गुलाबजामुन तौल दो, ज़रा देखकर।"

हलवाई ने डंडी उठाई और मिठाई तौल दी। गनेस बहू ने आँचल के खूँट मे मिठाई बाँध ली।

"घर जाकर खाऊँगी। यहाँ बडी भीड है"—कहती हुई वह जरा आगे बढ गई। बगल मे ही सटी बेला खडी थी। तबतक एक धक्का आया और वह जरा दूर पड गई। मेले का रेला और बीच मे पडी बेला! किसी ढीठ ने झटके देकर उसका घूँघट उलट दिया और बेला का अनावृत मुखमंडल निगाहों के सामने उभर गया।

"अरे, सोने का चाँद है यार!"—कहते हुए एक रँगीले ने बेला के कंधे पर हाथ रखा ही था कि मूँगा ने आकर एक धौल जमाई।

लडखड़ाती बेला सँभल गई। गनेस बहू ने आकर उसे अपनी गोद मे खींच लिया, और आगे बढ़ी। उसके साये मे बेला बादल मे बिजली की तरह चमक रही थी। मसखरो ने फबतियाँ कसी, भूतनी और परी की उपमा दी, और गनेस बहू दाँत पीसकर .खून पी गई।

जब वे मेले के दायरे से बाहर निकल आये, तब नेता ने गनेस बहू को कनखियों से इशारा किया और फिर मुड़कर मूँगा से कहा—"भाई, किसी एक्केवाले को हाँक दो। अभी दो

मील बस्ती है। पाँव-पियादे रास्ता नापना मुमकिन नहीं। बेला बिचारी थक गई होगी।"

पार्टी ठमककर खड़ी हो गई। अबतक तो प्लैन मजे से निभ आया। अब इसे उड़ा ले जाने की आखिरी गोटी थी। मूँगा के पाँव उठते नहीं थे, लेकिन शामिल न होता तो कहाँ का रहता! उसके साथ तो नेता की नाचेदारी रोटी का सवाल था।

जो परान्नजीवी है, उसकी छाती में लाख हृदय हो, उसकी आत्मा में न ओज है, न भुजाओं में तेज। यदि दुर्योधन का अन्न भीष्म और द्रोण का तेज-हरण न करता, तो कभी मुमकिन था कि उनकी आँखों के सामने आततायी के हाथों से राजकुलवधू की साड़ी भरी सभा में खींची जाती?

फिर मूँगा की क्या बिसात? वह किस खेत की मूली है? गनेस बहू रास्ते में अँगड़ाई लेने लगी। गाँव का सीवान आ चुका।

शाम का झुटपुटा। दरख्तों पर पक्षियों का कलरव शुरू है। आम की बौर हवा में उलझ रही है। मेला टूट चला है। औरतें झूमर गाती हुई लौट रही हैं। उनके गात की चुनरी, उनकी नाक की झुलनी, उनके हाथ की चूड़ियाँ देखनेवालों की आँखों पर तरावट डालती। चलती बैल-गाड़ियों पर औरतें और बच्चे ठसाठस भरे हैं। बालू में बैलों के कंधे लच रहे हैं। एक बिसाती पीठ पर बुक़चा बाँधे गुनगुनाता हुआ लौट रहा है। खोंचेवाले गरम-गरम चने की आवाज़ भर रहे हैं।

इस हलचल और चहल-पहल मे बेला काठ की पुतली-सी खडी है। गोधूली की तमाम आभा खिचकर उसके चेहरे मे समा चली। गालो की लालिमा झीने पट से छन रही है। उसने गनेस बहू से झुककर कहा—"यही सामने तो गाँव है, एक्के की जरूरत नही।"

नेता ने भडककर कहा—"नही-नही, एक्के पर चढ लो! अभी काफी दूर जाना है!"

तबतक मूँगा एक एक्के पर दनदनाता हुआ आ पहुँचा। गनेस बहू वगैर किसी दुविधा के एक्के पर जा बैठी और बेला को बैठने का इशारा किया। पर बेला अब दूध-पीती बच्ची नही थी। उसने गनेस बहू के आकुल चाञ्चल्य को देखा, नेता के चेहरे की चमक को समझा, और एक आसन्न विपत्ति की आशङ्का से काँप उठी। उसके कदम उठते नही थे। वह बत बनी चुप खडी थी।

"सवार क्यो नही होती? खडी क्यो हो?"—नेता ने जरा तुर्श होकर कहा।

"आओ बेला! देर न करो!"—गनेस बहू ने दाद दी।

"चढ़ती हो या उठाकर रख दूँ?"—नेता की आवाज मे दृढता का आभास था।

एक्केवाला एक्के से उतरकर नेता के कान मे कुछ फुसफुसा रहा था। बेला ने दोनो के चेहरे के कॉइयॉपन को देखा। वह समझ गई कि एक्के पर चढ़ने से चिता पर चढ़ना उसके लिए

कहीं आसान होगा। लेकिन, अगर वह इनकार करती है, तो नेता उसके सीने पर सवार होकर उसे एक्के पर सवार करा देगा। अब तो जान को हथेली पर रखकर खेल जाना है। अगर झुकी, तो गई!

उसने आँचल को जूड़े पर खींच लिया और आँखे उठाकर इधर-उधर देखने लगी—किसी जानिब से मदद मिल सकती है या नहीं?

"क्या देखती हो? आती क्यों नहीं?"—गनेस बहू ने वज्र-गंभीर स्वर मे झिझककर कहा—"न मानोगी तो झोंटा पकडकर घसीटी जाओगी! हुँह! बड़ी सतवाली बनी है!"

"मूँगा! आओ तो, इसे टाँगकर पहिये मे बाँध दूँ।"—कहते हुए नेता ने आगे बढ़कर बेला के कंधों पर दोनों हाथ रख दिये। बेला झपटकर दूर सरक गई और कड़ककर बोली—"ठहरो! अलग रहो!"

पर कड़ककर वह करती क्या? भागती तो कहाँ भागती—और कहाँ तक भाग सकती? वह अकेली थी, इधर चार थे, और, चारो तैयार!

सहसा बेला की निगाह सड़क के किनारे चरागाह से लौटती हुई गायों के झुरमुट पर पड़ी। उसने गंगा और यमुना को देखा और तत्क्षण वेदना-भरी ऊँची आवाज से पुकारा। पलक मारते, शब्दभेदी बाण की तरह टूटकर, दोनों गाये उसकी कमर से आ लिपटीं।

आदमी से मदद न मिली, पशु से मिली ! द्रौपदी को भी ऐसे ही सङ्कट मे चीर से मदद मिली थी, किसी वीर से नहीं।

बेला दोनों के बीच मे आ गई और आगे बढी। नेता ने गङ्गा और यमुना के चोखे सींग को और उनकी पली हुई दोहरी देह को देखा, फिर उलटकर गनेस बहू के चेहरे पर निगाह डाली, तो फक ! एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। दोनों का चेहरा स्याह हो गया।

मूँगा ने मौका अच्छा देखकर भर्राई हुई आवाज मे कहा —"नेता भाई ! आगे न बढ़ना। कहीं जो उसने ललकार दिया, तो दोनों सिलौंधी गाये आँत उलट देगी। मेरी तो धोती ढीली हो गई !"

शिकार पंजे से छूटता देख जैसे भूखी शेरनी तडपती है, वैसे ही गनेस बहू एक्के से कूदकर नेता के पास चली आई और दोनों हाथों से उसके कंधे को झकझोरकर बोली—"देखते क्या हो ? चुल्लू-भर पानी मे डूब नहीं मरते ? मूँगा तो जनम का जनखा है ! तुम्हे भी कलेजा नहीं ? हो गई धोती ढीली ? टायँ-टायँ फिस ! पट्टा बनते हो ! देखते नहीं, कहाँ निकल गई ? एक्के पर आओ, दौडाकर पकड ले ! मै साथ दूँगी, मूँगा को छोडो। गाय मे भी कहीं दम होता है ? कसकर दो डंडे जमा देना, आप भाग चलेगी !"

गनेस बहू की ललकार पर नेता की नसों मे जान आ गई। वह एक छलाँग मे एक्के पर जा बैठा। गनेस बहू भी

उचक कर सवार हो गई। घोड़े की पीठ पर चाबुक चटका। घोड़ा हिरन हुआ।

बेला दौडती हुई दूर निकल गई थी। गङ्गा और यमुना के बीच मे सरस्वती की धारा आजतक किसी ने देखी नहीं, पर एक ओर कृष्णा और दूसरी ओर दूध मे नहाई गङ्गा के बीच मे खुली हुई लटे और खुले हुए आँचल मे खिलती बेला के रक्त-चंचल कपोलो की लालिमा किसी अलौकिक लावण्य-लीला की छटा दिखा रही थी। राह के चलनेवाले ठमककर उसे आँख-भर देखते और दुबारे-सेबारे देखने के लिए तरसकर रह जाते।

इधर पीछे से एक्का पहुँचा और उधर सामने के पेडो की आड से श्रीधर की उडती हुई साइकिल नजर आई।

"लो गनेसी बहू! सारा खेल किरकिरा हुआ! यह बिल्ल-खोपडा कहाँ से फट पड़ा! मै तो मिश्रानी से इसको अटका कर रखने को कह आया था, न जाने कैसे निकल भागा! बस, लौट चलो। मिश्रानी को तो खबर करनी ज़रूरी है! जाल मे आई हुई मछली फिर तड़पकर पानी मे चली गई!"

ऐन मौके पर कमन्द टूट गई! नेता की तमाम कमनीय कल्पनाओं पर पानी फिर गया। गनेस बहू तो खीस पी रही थी, दाँत पीस रही थी। पर अब पीकर और पीसकर करती क्या? गाज फेककर रह गई। श्रीधर ने आकर सारा गुड गोबर कर दिया।

श्रीधर नजदीक आकर साइकिल से उतर पडा। बेला खडी-खडी हाँफ रही थी। उसकी जान मे जान आ गई। वह लजा गई।

श्रीधर ने वह लजाने की भंगी देखी, उसकी पेशानी पर हीरे की कनी देखी, तरबूज की लाल फाँक की तरह उसके होंठ देखे, गालों पर खेलती हुई उसकी चंचल लटों को देखा, गर्दन पर तनी हुई नसों के उभार को देखा, खुले हुए आँचल के साये मे स्वास्थ्य के संचार को देखा, और देख-देखकर सलज्ज निगाह झुका दी।

बेला फौरन संयत हो गई, और आँचल को सर पर खींच लिया। चाँद बादल मे डूब गया। श्रीधर की आँखों पर अँधेरा छा गया।

"कौन, बेला ? क्यों, ऐसी हाँफती क्यों हो ?"

" "

"तुम अकेली क्यों हो गई ? नेता और गनेस बहू कहाँ है ?"

"कहाँ बताऊँ ! आज गंगा और यमुना न रहती, तो भगवान जाने, मेरी कौन-सी गति होती !"—बेला दोनों गायों की पीठ सहलाती हुई बोली—"क्या कहूँ, कुछ कहने की बात है ?"

"तुम कहोगी क्या, मै समझता नहीं ? वे दोनों छँटे है। गनेस बहू तो जो बाहर है, वही भीतर है, बल्कि चेहरे की

उचक कर सवार हो गई। घोड़े की पीठ पर चाबुक चटका। घोडा हिरन हुआ।

बेला दौडती हुई दूर निकल गई थी। गङ्गा और यमुना के बीच मे सरस्वती की धारा आजतक किसी ने देखी नहीं, पर एक ओर कृष्णा और दूसरी ओर दूध मे नहाई गङ्गा के बीच मे खुली हुई लटे और खुले हुए आँचल मे खिलती बेला के रक्त-चंचल कपोलो की लालिमा किसी अलौकिक लावण्य-लीला की छटा दिखा रही थी। राह के चलनेवाले ठमककर उसे आँख-भर देखते और दुबारे-सेबारे देखने के लिए तरसकर रह जाते।

इधर पीछे से एक्का पहुँचा और उधर सामने के पेडो की आड से श्रीधर की उडती हुई साइकिल नजर आई!

"लो गनेसी बहू! सारा खेल किरकिरा हुआ! यह बिल्ल-खोपडा कहाँ से फट पडा! मै तो मिश्रानी से इसको अटका कर रखने को कह आया था, न जाने कैसे निकल भागा! बस, लौट चलो। मिश्रानी को तो खबर करनी ज़रूरी है! जाल मे आई हुई मछली फिर तड़पकर पानी मे चली गई!"

ऐन मौके पर कमन्द टूट गई! नेता की तमाम कमनीय कल्पनाओं पर पानी फिर गया। गनेस बहू तो खीस पी रही थी, दाँत पीस रही थी। पर अब पीकर और पीसकर करती क्या? गाज फेककर रह गई। श्रीधर ने आकर सारा गुड गोबर कर दिया।

श्रीधर नज़दीक आकर साइकिल से उतर पडा। बेला खडी-खडी हाँफ रही थी। उसकी जान मे जान आ गई। वह लजा गई।

श्रीधर ने वह लजाने की भंगी देखी, उसकी पेशानी पर हीरे की कनी देखी, तरबूज की लाल फाँक की तरह उसके होंठ देखे, गालों पर खेलती हुई उसकी चंचल लटों को देखा, गर्दन पर तनी हुई नसों के उभार को देखा, खुले हुए आँचल के साये मे स्वास्थ्य के संचार को देखा, और देख-देखकर सलज्ज निगाह झुका दी।

बेला फौरन संयत हो गई, और आँचल को सर पर खींच लिया। चाँद बादल मे डूब गया। श्रीधर की आँखों पर अँधेरा छा गया।

"कौन, बेला ? क्यों, ऐसी हाँफती क्यों हो ?"

" "

"तुम अकेली क्यों हो गई ? नेता और गनेस बहू कहाँ है ?"

"कहाँ बताऊँ ! आज गंगा और यमुना न रहतीं, तो भगवान जाने, मेरी कौन-सी गति होती !"—बेला दोनों गायों की पीठ सहलाती हुई बोली—"क्या कहूँ, कुछ कहने की बात है ?"

"तुम कहोगी क्या, मै समझता नहीं ? वे दोनों छँटे है। गनेस बहू तो जो बाहर है, वही भीतर है, बल्कि चेहरे की

स्याही से सीने की स्याही कहीं शोख है। चच्ची मुझे चचा के पास झीलवाले मठ पर न भेज देती, तो मै एक क्षण भी यहाँ से अलग रहता ? इतनी दूर साईकिल से सरपट दौडा आ रहा हूँ।"

"महाराज घर पर वापस आ गये ?"

"नहीं, आज चचाजी घर पर नहीं लौटते। वहाँ शिवदास के घर किसी अनुष्ठान की पूर्णाहुति है। उसी मे फँसे है।"

इतना कहकर श्रीधर चुप हो गया।

गोधूली के धूमिल दुकूल पर रजनी की नीली ओढनी धीरे-धीरे जा पडी। ठौर-ठौर पर आम की बारियाँ अँधेरे मे डूब गईं। तपस्विनी सन्ध्या की समाधि लग गई। हर जर्रे—हर पत्ते—पर एक भावमय निविड निस्तब्धता छा गई।

दोनो चुप है। आगे बेला, बाये गङ्गा, दाहिने यमुना, एक ओर श्रीधर। बेला कुछ सोच रही है, श्रीधर भी कुछ सोच रहा है। वह 'कुछ' क्या है, कौन जाने ! यही रहस्य तो तारो की मौन निर्निमेष झिलमिल मे है। यही रहस्य तो आकाश की मूक वाणी मे, सन्ध्या की समाधि मे तथा चाँद की चहचहाती चाँदनी मे छिपा है ! यही रहस्य तो शायद हृदय की तह का चरम रहस्य है !

आध घंटे तक दोनो चुप। अचानक श्रीधर ने कहा—"बेला ! देखकर चलना, आगे झाडी है।"

"हूँ !"

"बेला! आसमान पर तारे छिटक आये।"

"हूँ!"

"सुनती हो, बेला? आम की डाल पर कोयल कूक रही है—कितनी मीठी, कितनी तीखी!"

"हूँ!"

"जानती हो, बेला! मैं भी दुनिया में तुम्हारी ही तरह अकेला हूँ—बिलकुल अकेला!"

"हूँ!"

भगवान् जाने, श्रीधर की इन बेतुकी बातों का आशय क्या है! बेला ने क्या समझा, इसे वही जानती होगी!

त्रयोदश परिच्छेद

मेले से लौटकर श्रीधर ने भगवान की सन्ध्यारती उतारी। महिम्न का मस्वर पाठ किया। पुष्पाञ्जलि भेट की। भोग लगाया। प्रसाद बाँटा। कमला को थोडी देर शिवपुराण की कथा सुनाई। मुन्नी का गोद मे लेकर थपकियाँ दी, लाचीदाने चखाये।

जब मुन्नी ऊँघने लगी, कमला उसे सुलाने ले गई।

श्रीधर अलसाया हुआ कुशासन पर बैठ गया। वह बार-बार जीने पर निगाह डालता। ज़रा-सी आहट पाकर चौक उठता, मानो किसी की बाट जोहता हो। उसने कटोरी के सूखे चन्दन को पानी देकर पतला किया। दो-चार बेल के पत्ते पडे थे, उन्हे चादर से साफ किया। फिर अनार की डंटी उठाई और चन्दन की कटोरी मे डुबो-डुबो कर बिल्वपत्रो पर दो अक्षर न जाने क्या लिखा। एक पर लिखा, दूसरे पर लिखा, तीसरे पर लिखा। कुछ ठिठका, कुछ झिझका। फिर एक को

मिटाया, दूसरे को मिटाया, तीसरे को मिटाया। थोड़ी देर तक बुत बना बैठा रहा। फिर चम-से उठा, भगवान् के चरणों में सर झुकाया और खिड़की पर आकर खड़ा हो गया।

आँगन में फैले हुए अन्धकार पर कब्जा करने को कोने में पड़ी हुई लालटेन की धुँधली रोशनी छटपट कर रही है। सहसा बेला के आँचल का एक छोर सामने सरक आया। दोनों हाथ की कलाई शून्य है— एक चूड़ी तक नहीं। एक में एक काला धागा-सा कुछ बँधा है। गोरी कलाई पर वह कितना भला खुलता है! हाथ में पानी की डोलची है। शायद गायों को कुछ खिला-पिला रही थी। देखते-देखते ओझल हो गई।

श्रीधर ने दूसरी ओर निगाह डाली। मिश्रानी दालान के माँचे पर बैठी गनेस बहू से कुछ फुस-फुस बातें कर रही है। नेता खड़ा सर हिला रहा है! आज यह बेवक्त की शहनाई कैसी! उसे खटका हुआ। नेता का मनहूस चेहरा देखकर उसकी कनपट्टी गरम हो गई। पुटपुरों की नसें उभर आईं। उसका दिल तड़प उठा—काश मेरे हाथ में तमंचा होता, तो यहीं से इस शैतान की खोपड़ी उड़ा देता! दूसरी गोली कलूटी गनेस बहू की मैल-भरी छाती में दागता। बला से फाँसी पड़ता या डामल जाता। दो दोजखी कुत्तों से तो दुनिया को नजात मिलती!

उसने दाहिने हाथ का तमंचा बनाकर नेता के सर पर निशाना ताना। तर्जनी की लबलबी बनाई। सहसा उसे खयाल

हो आया कि भगवान् के रू-ब-रू खड़ा होकर वह यह कहाँ का खयाली पुलाव पका रहा है! वह अपनी मानसिक उत्तेजना पर लज्जित हुआ और फौरन् नीचे उतर आया।

बाहर आकर वह जलपान करने लगा। लेकिन आज कचौरियों और इमरतियों में वह स्वाद—वह रस—उसे न मिला। जैसे-तैसे निगलकर पानी पी लिया, और चौकी पर लेट रहा। उसे बाहरी दालान में आये अभी कुछ घंटे भी न हुए होंगे कि दीवारों को तोड़ती हुई किसी की चीख की तेज आवाज उसके कानों में पड़ी। वह घबराया-सा उठा और लूक की तरह भीतर दौड़ा।

आँगन में सामने ही कमला मिली—फक, डरी-सी, चकराई-सी! श्रीधर ने छूटते ही पूछा—"क्या बात है, दीदी? यह आवाज कैसी?"

"आवाज़ बेला की है! वह ज़रूर कुएँ में जा पड़ी है, दौड़ो—बचाओ! मैं तो अभी सोई भी न थी, भरम ही रही थी कि उसकी चीख और कुएँ में धडाम से गिरने की आवाज़ साफ सुन पड़ी। भगवान् जाने, वह कूद पड़ी है, या उसके पैर फिसल गये है, या किसी कमीने ने "

श्रीधर सन्न हो गया। पाँव-तले से ज़मीन सरक गई। क्या करे? किससे मदद ले? जान हथेली पर रखकर वह कुएँ में कूदने को तैयार हो गया। उसने चारों ओर निगाह डाली। गंभीर रजनी। मौन भवन। निस्तब्ध आकाश। निश्चल पवन।

नेता खम्भे की आड मे छिपा खडा है। महज़ कुरते का दामन किसी कदर दीख रहा है। लालटेन की रोशनी मे उसके पैरो की थरथरी की हिलती हुई छाया साफ नज़र आती है।

गनेस बहू आँगन से भीगी बिल्ली की तरह निकली जा रही है, श्रीधर को रास्ते पर देखकर कोने मे सटककर खड़ी हो गई। अँधेरे मे मुजस्सिम भूतनी बनी है! उसके चेहरे पर की उठती गर्राहट ज्यों ही लीन हुई, उसी क्षण वह आबनूस का टुकड़ा और भी मनहूस दीखने लगा। मुख की स्याही पर मन की स्याही की झलक आकर उस रू-सियाह की स्याही को और भी घनी कर रही है।

खाट पर मिश्रानी चादर ताने चुप लेटी है, मानो कुछ हुआ ही नहीं! जब श्रीधर और कमला की आवाज कानों मे पडी, तब ज़रा ऊँची टीप से उन्होंने पुकारा—"क्यों रे नेता? यह क्या हल्ला है?"

श्रीधर ने मिश्रानी मे निस्पन्द निश्चेष्टता की चरम सीमा देखी—एक निरपराध जीवन की हत्या हो रही है और चेहरे पर एक शिकन तक नहीं! जो कुछ छटपटी उसे नज़र आई, वह गंगा और यमुना की गति मे थी। वे एक अदम्य बलप्रयोग से खूँटे तोड़कर कुएँ की जगत पर टूट पड़ी है। उनके रँभाने की आवाज़ दीवारो से प्रतिध्वनित हो रही है। जैसी आकुलता उन पर थी, वैसी बेला की प्रिय सहचरी कमला पर भी न थी। उसे तो शायद काठ मार गया था। जो हो,

गङ्गा और यमुना की बेकली तमाम मकान मे अकेली थी।

क्या यह सच है कि जानवर के जिगर मे जितनी आदमीयत है, उतनी आदमी मे भी नहीं, और मनुष्य के अन्तर मे जितनी पशुता है, उतनी पशु मे भी नहीं? यहाँ कौन मनुष्य है, कौन पशु?—कौन इन्सान है, कौन हैवान?—किधर ममता है, किधर निर्ममता? किधर चेतना है, किधर जडता?

गनेस बहू इन्सान है या गङ्गा? मिश्रानी हैवान है या यमुना? किसकी छाती मे हृदय है, किसकी छाती मे पत्थर? यमुना की मति मे इतनी ममता और मिश्रानी के मर्म मे इतनी निर्ममता!

हैवान के मन मे इतनी समवेदना—ऐसी अनुभूति—ऐसी चेतना, और मनुष्य के मानस मे इतनी पिशुनता—ऐसी पशुता! क्या आदमी इन्सान नहीं हो सकता, तो उसे हैवान होना भी मयस्सर नहीं?

जब श्रीधर ने हैवान के कलेजे मे इस इन्सानियत के स्फुरण को देखा, तब उसकी हिम्मत दुगनी हो गई! वह कुएँ की जगत पर लपककर चढ़ गया। अगर उसके आने मे एक क्षण भी देर हो जाती, तो मुमकिन है, गङ्गा और यमुना तडपकर इँदारे मे जा गिरती और बेला के साथ ही डूबकर जान दे देती।

श्रीधर ने कड़ककर पुकारा—"क्यों रे नेता? तू वहाँ खडा-खडा तमाशा देख रहा है? तुझसे और कुछ नहीं बनता,

तो गङ्गा और यमुना को तो खूँटे मे दोहरी रस्सी देकर बाँध दे ! ये बिचारी छटपटाकर जान दे देगी।"

नेता ने आकर रस्सी थाम ली और काँपते हाथों से उन्हे बाँधने की कोशिश की। कमला ने भी आकर हाथ बँटाया और गनेस वहू को डाँटा—"खडी क्या है, कलमुँही ? बाहर से जयदेव चाचा को बुला ला ! बाबा के साथ मठ गये हो, तो गनेस को भेज !"

गनेस वहू के चेहरे का रंग उड रहा था, मानो हत्या सवार हो ! श्रीधर सीकड पकडकर कुएँ मे उतर गया, और डूबती-उतराती बेला की लम्बी बिखरी लटो को मूठ मे थाम लिया। उसका शिथिल शरीर श्रीधर के कन्धे पर अवश पड गया।

कुएँ के ऊपर से रस्सी लटकाई गई और बेला की अचेतन देह खीच ली गई। श्रीधर ने ऊपर आकर उसे हाथों पर उठा लिया, और फौरन बाहर अपने कमरे मे शुश्रूषा के लिए ले गया।

कमला ने बेला की इस दुर्गति को देखा, तो वह पछाड खाकर गिर पडी। उसका दिल बहुत कमज़ोर था। उसके मर्म का किसलय इतना नाज़ुक था कि जरा-सा ताप पर पीला पड जाता। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति उसकी इस कातरता से परिचित था। गनेस सहारा देकर उसे उसके कमरे मे ले गया और बार-बार उसे दिलासा देता रहा कि बेला सुबह

होते-होते चंगी हो जायगी। वह पलँग पर लेट गई।

इसी सुयोग मे गनेस बहू और नेता आँगन से चम्पत हो गये। मिश्रानी खाट पर पडी जैसे पहले मुलुक रही थी, वैसे अब भी मुलुक रही है। भगवान जाने, उनकी जबान तालू मे क्यो सटी है और आँख की पुतलियाँ कोने मे क्यो पडी है!

नारी का हृदय जब पिघलता है, तब नवनीत को भी नरमी मे मात करता है, लेकिन जब ठिठुरता है, तब बर्फ की चट्टानो से भी कही कठोर हो जाता है। जब वह कोमल है, तब रसाल-किसलय से भी कही सुकुमार, और जब निदारुण है, तब वज्र-टङ्कार से भी कर्कश—"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि!" बात ही वह ऐसी है, जो रंग है, वह गाढ़ा है। बर्फ है या आग। आकाश है या पाताल। देवता है या पशु। पीयूष है या विष। जब प्रेम है, तब त्याग की चरम चूडा है, जब द्वेष है, तब शेष की सहस्र फणा है।

श्रीधर ने बेला के संज्ञाशून्य शरीर को खाट पर लिटा दिया। उसकी प्याजी साडी भीगकर जिस्म पर चिपकी हुई है। पानी मे शराबोर काली-काली लटे चेहरे पर, कन्धे पर, पीठ पर और सीने पर छिटकी पडी है। न उसके मुख पर घूँघट है, न छाती पर आँचल। हाँ, जलसिक्त केशो का वितान अवगुंठन बनकर परदे का काम जरूर कर रहा है। वह कुन्तल-जाल-विजडित मुखमंडल, मृणाल-मेखला कमलिनी की तरह, कितना कमनीय है!

श्रीधर की प्राण-विह्वल चितवन छनभर उस शिशिर-सिक्त सुषमा पर अटकी रही।

श्रीधर ने उसकी उलझी हुई भीगी साडी को जगह-जगह पर सीटसाटकर ठीक कर दिया। उसकी आतङ्क-चञ्चल उँगलियाँ काँप रही है, और उसके हृदय का एक-एक स्पन्दन घड़ी की टिक-टिक आवाज बनकर उसके कानों पर स्पष्ट गूँजती है।

"बेला! बेला!! बोलो, मुँह खोलो! बेला! मै हूँ—श्रीधर। कहो, कहाँ चोट है?" श्रीधर ने बेला के कानों मे पुकारा।

बेला ज्यों की त्यों।

निचाट आधी रात—जड़-चेतन सभी अचेत! वह करे तो क्या करे?

पल भर वह भौंचक-सा आँखे फाडकर बेला का मुँह निहारता रहा। आखिर उसकी अक्ल ने मदद की! वह झम-से उठा और आलमारी खोलकर मृतसंजीवनी की शीशी निकाली। एक पूरी खुराक बेला के मुँह मे उँड़ेल दी। कभी वह उसे बिठाता, कभी लिटाता, कभी उसके हाथों को समेट कर छाती के पास लाता और धीरे-धीरे दबाता, ताकि किसी तरह निःश्वास जारी हो। कभी उसकी कलाई हाथ मे लेकर नब्ज़ का अन्दाज करता, उसकी नाक पर हाथ रखकर साँस देखता। कभी तलवों को सहलाता, कभी हाथों पर झटका देता। कभी उसकी धड़कन की जाँच के

लिए घबड़ाकर उसकी छाती की ओर हाथ बढ़ाता और आँचल को छूकर हाथ समेट लेता। उसके चेहरे का रंग सफेद हो चला है। पेशानी पर पसीना निकल आया है और सैकड़ों अशुभ चिन्ताएँ फन फैलाए मन की दरारों से झाँक रही है।

तीन बजते-बजते वह जिन्दा लाश सगबगाई। उसके चेहरे पर प्राणों की गति स्पष्ट होने लगी। श्रीधर की जान में जान आई। उसने बेला के सर्द हाथों को उठाकर अपने गरम हाथों में रखा। उँगलियों को उँगलियों से दबाया, तलहथी को तलहथी में समेट लिया। मुँह पर के बिखरे बाल को पीछे सरका दिया। चादर से मुँह पोंछ डाला।

उधर बेला के शरीर में गरमी आने लगी, इधर श्रीधर की वाणी में। जो जबान बन्द थी, वह खुल पड़ी। वह बेला की सेवा में तत्पर रहा और साथ-साथ आप-ही-आप गुनगुनाता रहा—"तव स्पर्शेऽपर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो—"

वह स्पर्श की बिजली उसके शरीर में चली गई। उसका रोआँ-रोआँ सिहर उठा। उसने बेला की उँगलियों को मुँह पर रखा, आँखों पर रखा और सर पर रखा। एक तीव्र कम्पन के साथ बेला की आँखें खुल गईं। देखा—श्रीधर की आँखें टप-टप बरस रही हैं!

"बेला!"—श्रीधर रुँधे कंठ से बोला।

बेला की आँखें बन्द हो गईं।

"बेला!"—श्रीधर ने इस बार बेला के मुँह तक झुककर

कहा, और दोनों आँखों के दाहने कोनों से दो धाराएँ कानों तक दौड़ गईं।

"तुम्हें कहीं चोट है ?"

"नहीं।"

"थोड़ा गरम दूध पी लो।"

"भूख नहीं।"—बेला ने सर हिलाया।

थोड़ी देर बाद श्रीधर ने एक खुराक मृतसंजीवनी फिर पिलाई। बड़े इतमीनान से वह पी गई, और आँचल को चारों ओर से समेट लिया।

"बेला ! तुम कुएँ में कैसे जा पड़ी ?"—श्रीधर ने झुककर बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"क्या बताऊँ, कैसे जा पड़ी ! अँधेरे में कुछ दीखता भी तो नहीं था ?"

"फिर भी··· ?"

"मैं तो झुककर घड़ा खींच रही थी। जाने कैसे झटका लगा। बस, पैर उखड़ गये !"

"सच कहो, किसी ने तुमको धक्का दिया क्या ?"

"भगवान् जाने ! मैं किसे · ?"

"नेता था ?"

" · "

"गनेस बहू थी ?"

"·····"

"तुमने किसी को देखा नहीं ?"

"नहीं !"

"तो फिर ?"—

"बस, मेरे बॉट में जो पड़ी है, वही विपत्ति हमारी सब-कुछ है। यही मेरी पीड़ा का सुहाग बना रहे।"

× × × ×

बेला की आँखें फिर डूबने लगीं। श्रीधर सिरहाने बैठ गहरे सोच में डूब गया। विपत्ति के चरणों में बेला की यह रति देखकर उस पीड़िता के मन की गति का अन्दाज़ उसे मिल गया। ओफ ! समाज ने नारी को यहाँ तक मसलकर चूर कर दिया है न ! सहते-सहते वह लगी है विपत्ति को अङ्क भरने।

मिनट पर मिनट बीतने लगा। श्रीधर की छाती में लगा तूफान उठने—

"ओफ ! जिस समाज में नारी की गुलामी की बन्धन-शृंखला उसके सुहाग की मेखला है, जहाँ नारी के सौभाग्य की चूड़ा उसके हाथों की चूड़ी है, जहाँ उसके निखिल ऐश्वर्य की किल्ली उसके सीमन्त की धूल है, जहाँ सर का सिन्दूर धुल जाने और हाथ की चूड़ियाँ चूर हो जाने पर उसे चिता की ज्वाला या तपस्या की पर्णशाला के अतिरिक्त कोई दूसरा चारा नहीं, वही समाज इस विराट् हाहाकार को हृदय में रखकर कुतुब-मीनार की तरह आज भी खड़ा है—और, आज भी वह निरपराध जीवन-मुकुलों के प्राण-रक्त से अभिषिक्त अपने

गैरिक वसन की महत्ता की घोषणा करने से बाज़ नहीं आता —यही आश्चर्य है।

जभी तो आज नारी का अपना न कोई व्यक्तित्व है, न स्वातंत्र्य। वह पुरुष के कामनाकुंड का ईन्धन है या एक कुल-परम्परा चलाने की मशीन! उसे न शिक्षा है, न दीक्षा। जो तालीम मिलती है वह केवल पुरुष की ज़बान की चाट के लिए लड्डू और मालपूए की बारीकियों पर खत्म है, और जो दीक्षा मिलती है, वह लम्पट और अत्याचारी पति की आयुवृद्धि के लिए निर्जला रहकर वटवृक्ष के सैकडों फेरे देने पर सीमित। बस, वाह रे शास्त्र और वाह रे धर्म का आदेश!

और पुरुष, जो जी चाहे, करे! वह सैकडों नारियों के सत को लेकर दो घडी की तफरीह रखे और फिर उसे रात के बासी फूल की तरह तोड-मरोडकर गली के कूडे पर फेंक दे, इससे न उसका मुँह काला होगा, न उसका बाल बाँका। स्त्री की मिट्टी-पलीद ही हुई तो क्या हुई! क्या पिद्दी, क्या पिद्दी का शोरबा!

और क्यों न हो, नारी तो नरक का द्वार है न—वह पुरुष की आत्मा के उत्कर्ष की कतरनी ठहरी। वह पिशाच है, विष है, शृंखला है—वह क्या नहीं है? पुरुष के लिए तो वह विष ठहरी, पर नारी के लिए पुरुष है—देवता-स्वरूप—सर्वस्व! वह तो न विष हो सकता है, न पशु।

हमारे कतिपय शास्त्रकार पुरुष थे—मनुष्य नहीं। उन्होंने

जो कुछ लिखा है, पुरुषों के स्वार्थ की ओर दृष्टि रखकर लिखा है। नारी को भी स्वार्थ होना सम्भव है, उसको भी आत्मा हो सकती है, उसके मन-चमन में भी अरमानों के मुकुल पनप सकते हैं, इस ओर उनकी दृष्टि कभी फिरी नहीं। क्या नारियों के जीवन की सार्थकता उनकी आशा-आकाँक्षा की हत्या पर, उनकी वासना की चिता पर, निर्भर है?

'जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहि नारी'—ठीक है, विश्व की आज़ादी पुरुषों का मौरूसी पट्टा है—और स्त्रियों की कलङ्क-रेखा! मर्द के हिस्से में नवाबी, औरतों के हिस्से में ग़ुलामी! यही सनातन दृष्टिकोण है! यही न्याय का विधान—

'सुत-बनितादि जानि स्वारथ-रत, न करु नेह इनही ते'—सच है, वे स्नेह के पात्र नहीं हैं, पुरुषों को यह चेतावनी देनी ज़रूरी है। पर, मेरी निगाह में इन्साफ की दृष्टि तो तभी होती, जब नारी को भी साथ-साथ चेतावनी मिलती—'सुत-पति आदि जानि स्वारथ-रत, न करु नेह इनही ते।' लेकिन, यह कहना तो कुफ्र की चर्चा होगा। और कहे कौन? स्त्रियाँ तो शिक्षा देकर आँखफोर बनाई नहीं गईं। वे तो आज भी ग़ुलामी की साँकलों को नारीत्व का एक ज़ेवर समझती हैं!

मगर हाँ, वह दिन करीब है, जब नारी के अन्तर की रुद्ध यातनाएँ—उनकी कराहों के गर्भ में पुंजीभूत चिनगियाँ—ज्वालामुखी-विस्फोट की तरह अचानक फट पड़ेंगी और समाज के कील-काँटों की धज्जियाँ उड़ाकर दम लेंगी।"

सोचते-सोचते श्रीधर का जोश दून पर उठ आया। वह चाहता है कि कुछ करके दिखा दे, कुछ तोड़-फोड़ कर धर दे। मगर क्या और कैसे, कुछ तय न कर पाता।

जो बात इतने दिन से चुपचाप उसके हृदय के निभृत कोने में पूँजीभूत थी, आज बेला के आँसुओं ने उसे ठेलकर ऊपर कर दिया। उसका शरीर न जाने किस आवेग से काँप उठा। काश वह इस बेदर्द समाज की चूल-चूल हिला कर धर देता!

वह एकबारगी मुट्ठी कसकर उठ पड़ा। खड़ा-खड़ा पल भर जाने क्या सोचता रहा। फिर कटे पेड़ की तरह धम-से बैठ गया। हठात् बेला की नब्ज़ पर हाथ रखा।

बेला आँखें बन्द किये चुपचाप पड़ी थी। उसकी उँगलियों के स्पर्श से वह चौंक पड़ी और धीरे से बोली—"गुरु महाराज ने तो कहा है दुःख ही को वरण करो··· यही तुम्हारे परलोक का सहारा।"

"बेला! गुरु महाराज अगर परलोक की चर्चा न करते, तो दूसरी तसल्ली तुम्हें क्या देते? उनके खयाल से तुम्हारे मर्ज़ की दवा तो दूसरी रही नहीं! उन्होंने कलाकार के निपुण हाथों से परलोक की दिलफरेब तसवीर खींचकर तुम्हारी सन्तप्त मानस-दृष्टि के सामने उद्घाटित कर रखी है; पर और कोई जाने या न जाने, मैं तो जानता हूँ कि यह महज़ उनके रोज़गार का प्रचलित चक़मा है, यह माया-मंडित मरीचिका के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। जीते-जी जिसके जीवन पर

मलय-हिल्लोल का सिहरन नहीं पडा, मरने के बाद किसी मंत्र की फूँक पर उसकी खाक के ज़र्रे हरिचन्दन की क्यारियों में जा पड़ेंगे—ऐसी तो कुछ सम्भावना नहीं। पर गुरु महाराज को मैं इलज़ाम नहीं देता। तुम्हारे दुःखों के ताप को शीतल करने के लिए उनके व्यवसाय की झोली में दूसरी कोई बटी है ही नहीं! परलोक के करुणा-चन्दन का प्रलेप ही उनके पास एक मरहम है।

सच पूछो, तो यह परलोक का कीट हमारे उद्यम की जड को खोखला कर रहा है। अध्यात्मवाद के इस विष ने हमारी धमनी के रक्त के चाञ्चल्य को शिथिल कर डाला है। हमलोग बे-वजह हर बात में—यहाँ तक कि प्राकृतिक घटनाओं में भी—परलोक का पचडा घुसेडते हैं। दैव के मारे तो नाकों दम है।"

"मगर यह भाग्य तो बराबर साथ है।"

"बेला! तुम्हारा यह समझना कि निर्मम भाग्य ने तुम्हारे जीवन के निखिल परिमल को लूट लिया है, और अब इस सूखी बारी में कभी जीते-जी हरियाली नहीं पलट सकती, तुम्हारी सरासर भूल है। तुम्हारे मन की हवा बदलने की देर है, फिर तो तुम्हारे अन्तर के कोने-कोने में वसन्त की लपटें कुलेल करेंगी। तुम जिस कुसंस्कारों से परिपूर्ण निर्दय वातावरण में पली हो, उसी का यह विषाक्त फुत्कार है कि तुम्हारी यह दुर्गति होती चली आई।

"बचपन में तुम्हारे माता-पिता तुम्हें एक अधेड़ रोगी के

हाथों में न सौपते, तो कभी मुमकिन न था कि तुम्हारी गोद का बच्चा उठता और तुम्हारे सुहाग का सिन्दूर धुलता। तुम्हारे सास-ससुर अगर कुशिक्षा और सनातन के शिकार न रहते, और जघन्य परदे के संकीर्ण वायुमंडल में तुम्हारी आत्मा की सत्ता पिस न जाती, तो कभी सम्भव न था कि तुम्हारे शरीर पर तुम्हारे देवर का कोई वार होता और आगे चलकर पुलिस का अत्याचार होने पाता। तुम्हीं कहो, इसमें दैव का सवाल कहाँ है ?

"बेला ! तुम अकेली नहीं हो। तुम-जैसी कितनी ही अबलाएँ दकियानूसी विधि-निषेधों की तिकठी पर लटक रही हैं और माता-पिता, भाई-बन्धु, गुरु-पुरोहित को न कोस कर निरंतर अपने भाग्य को ही कोस रही हैं। अगर आज भी कोई दिल-दिमागवाला पैदा होकर इन सामाजिक कुरीतियों की धज्जियाँ उड़ा देता, घर-घर स्वास्थ्य-विज्ञान और शिक्षा का प्रचार होता, तो तुम देखती कि दैव का दायरा सुई की नोक के बराबर आकर रह जाता, और नारियों के भाग्य के कपाट की अर्गला आप-से-आप खुल जाती।

"इसीलिए मैं फिर भी कहता हूँ कि जो हो चुका, वह हो चुका; अब तुम परलोक के हवाई किले के कुहुक में न पडकर इस लोक की छाती से रस लूटो।"

"और लोक और परलोक दोनों से हाथ धो बैठूँ ?"

"बेला ! जो लोक को जीतता है, वही परलोक को भोगता

है। भगवान् की मदद उसी को मिलती है, जिसे देव की मदद का भरोसा नहीं। तुलसी की माला फेरनेवाले से हक़ पर तलवार उठानेवाला कहीं ज़्यादा भगवान् का कृपापात्र है। जो हाथ-पैर तोडकर देवता की ओर नज़र रखता है, वह ख़ुशामदी टट्टू का दरजा पाता है—कुछ देवता का कृपा-कटाक्ष नहीं। कर्मनिष्ठ की दुआ मे जादू का असर है, और अकर्मण्य की दुआ-गिरी बेकार की दिलबरतगी है। राजा का गुण गानेवाला भाट दरबार मे कुर्सी का हकदार नहीं होता। जो हृदय मे राज-भक्ति रखकर दुनिया के मैदान मे लोहा लेता है, वही दरबार मे उच्च पद का अधिकारी होता है। जो ईश्वर मे आस्था रखकर अपने हाथ के गांडीव का भरोसा रखता है, वही लोक और परलोक का विजयी वीर है, दूसरा नहीं। परमार्थ—पुरुषार्थ का ही फल है। भगवान् भी बलवान् पर मेहरबान है।

"तुम आज दामन झाड़कर खड़ी हो जाओ, और समाज के कुटिल कटाक्ष मे अपनी तर्जनी घुसेड़कर ला-परवाह बनी रहो। मैं दावे से कहता हूँ, तुम्हारा खोया हुआ वैभव तुम्हे वापस लौट आयेगा। तुम्हारी झुलसी हुई खेती फिर हरी-भरी "

"महाराज !"—बेला ने बात काटकर कहा—"इस लोक मे तो हरी होने की नहीं। और, परलोक मे भी हरी होगी या नहीं, भगवान् जाने !"

"इसी लोक मे हरी होगी और हज़ारो मे हरी होगी। मैं

अपने अन्तर का निखिल रस उँड़ेलकर तुम्हें सींचकर लहालोट कर दूँगा। प्रेम वह मृतसंजीवनी है, जो दो दिन में तुम्हारे झंझर अन्तर को जवान कर देगी—तुम्हारी काया पलट देगी।"

बेला ने आँखें उठाकर श्रीधर को देखा। उसका तेज से भरा चेहरा कितना भाव-विह्वल है! उसकी मुहब्बत से भरी चितवन कितनी भावमयी है!

श्रीधर ने आँखें उठाकर बेला को देखा। उसका शर्म से भरा चेहरा कितना रहस्य-मधुर है! उसकी प्राण से भरी चितवन कितनी प्राण-सर्पिणी है!

आकाश में चाँद ने उठकर दोनों के आवेग-मंडित मुख को देखा। उसकी सुधा से भरी किरणें कितनी पुलकमयी हैं!

"यह कह क्या रहे हैं आप? मुझसे प्रेम की बात?"—बेला भर्राई हुई आवाज़ में बोली।

"बेला, तुमने जीवन में कभी प्रेम नहीं पाया। तुमने आज-तक पुरुष का काम देखा, उसका प्रेम नहीं देखा। काम विष है, प्रेम पीयूष। काम तोड़ता है, प्रेम जोड़ता है। काम आग है, प्रेम त्याग। काम शैतान का अट्टहास है, प्रेम देवता का निर्माल्य। काम में अनुकम्पा नहीं होती, प्रेम में वासना नहीं होती। काम चंचल है, प्रेम अचल। काम क्रान्ति है, प्रेम शान्ति। काम कलुष है, प्रेम निर्मल। बेला! प्रेम प्रकृति का अनुपम दान है। मैं इसी मृत्युञ्जयी प्रेम के सहारे तुम्हारे जीवन में नवीन जीवन, तुम्हारे प्राणों में नवीन प्राण, तुम्हारे

यौवन मे अभिनव यौवन भर दूँगा। मेरा मन पवित्र है, मेरी वाणी पवित्र है, मेरे कर्म भी पवित्र होंगे।"

"मानती हूँ, आपका प्रेम पवित्र है। पर मै तो पवित्र नही! यह प्रेम का दान नाबदान मे देकर क्या होगा? यह पीयूषधारा पनाले मे बहकर क्या करेगी? इस शरीर की गन्दगी तो मिटने की नही!"

"बेला, देवता के अरघे को अपवित्र समझना तुम्हारी भूल है। जिसका अन्तर पवित्र है, उसके शरीर का ज़र्रा-ज़र्रा पारिजात की पाँखुरी है। मेरी प्रेम-पुष्पाञ्जलि का सौरभ कभी उड़नेवाला नही।"

"नही-नही; मैं प्रेम का अर्घ्य लेकर क्या करूँगी? मेरे सर पर तो अब सिन्दूर की शोभा नही होगी—मेरे शून्य हाथों मे तो अब सुहाग की चूड़ियाँ नही आ सकती।"

"कौन कहता है, नही आ सकती?"

"समाज!"

"मैं इस पाशविक समाज को नही मानता!"

"धर्म!"

"प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही कर्म है। प्रेम के आदेश को तुम्हे सर झुकाकर मानना पड़ेगा—न मै इसे टाल सकता हूँ, न तुम।"

"आप भूल गये, आपने मुझसे क्या कहा था? आप इस जोश मे भूले भी हो, पर मैं तो भूली नही हूँ।"

"कब ?"

"वही, जिस दिन मै पहले-पहल आपकी शरण मे आई थी।"

"क्या कहा था मैंने ?"

"यही कि 'बेला, तुम्हारे लिए भगवद्भक्ति के अतिरिक्त कोई दूसरा पथ नही है, "

"वह गुरु का वचन शिष्य से था !"

"और आज ?"

"आज यह पुरुष का वचन नारी से है, प्रेमी का वचन प्रेयसी से है। तुम नारी हो और नारी के जीवन की सार्थकता प्रेम है—भक्ति नही। तुम्हारा क्षेत्र परिवार है, संन्यास नही, भवन है, भुवन नही। तुम्हारी प्रकृति रस का दान है, सूखा ब्रह्मज्ञान नही। तुम्हारी स्थिति हृदय है, दिमाग नही। तुम्हारे ललाट की भूषा सुहाग-भरी लज्जा है, तपस्या की तेजोमयी आभा नही। तुम इसी के जरिये लोक और परलोक दोनो को एक कर सकोगी। मुझे आशा नही, विश्वास है कि मै अपने प्रेम के पुलक स्पर्श से तुम्हारे सुषुप्त नारीत्व को जगा सकूँगा, और तुम्हारी अपनी प्रकृति—तुम्हारी सहज अनुभूति—फिर सचेत होकर तुम्हारे जीवन को पूर्ण कर देगी।"

"लेकिन, महाराज ! मेरे हृदय मे न तो आवेश है, न आवेग। जो जीवन-तरी बिलकुल झाँझर हो गई है, उस पर प्रेम की पतवार भी एक भार ही होगी। यह तिर तो सकती

नहीं। पानी मे पैंदा पड़ा, और यह डूबी। मुझे अपने डूबने का तो डर नहीं, मै तो डूब ही चुकी हूँ, पर साथ-साथ आपको भी डुबो दूँ, यह मेरे लिए मरण से भी कहीं भयङ्कर है।"

"बेला! मैंने अपनी आत्मा मे डूबकर देख लिया, तुम्हारे बिना न मेरा जीवन है, न मरण है। मै अपने जीवन-सर्वस्व को तुम्हे भेट कर आज निःस्व हो गया हूँ, और इस त्याग के वैभव से मेरा अन्तर आप्लुत है। अगर तुम्हारे हृदय मे मेरी प्रेम-मुरली की प्रतिध्वनि नहीं जगती—कोई आकुल आह्वान नहीं उठता, तो सच मानो, मुझे इसका जरा भी दुःख नहीं। मैं इसे एक-न-एक दिन जगा लूँगा। मुझे तो पतंग बनकर जलने का अवसर दो, यही काफी है!"

बेला चुप है। उसकी आँखो का कोना तर हो गया। उसने गीले आँचल से गीली आँखों को पोछ डाला।

निशीथ वायु, बौरे रसाल की मंजरी से छकी, बेला की छाती के आँचल से और श्रीधर की गरदन की चादर से उलझ रही है। उसका सुरभित निःश्वास कमरे मे भर चला है।

बेला ने आँखे उठाकर श्रीधर के पद्मपलाश लोचनो को देखा, और उसकी दीप्ति से सहम उठी। श्रीधर के ललाट पर रक्त-चन्दन का तिलक पानी से भीगकर पसर गया है। वह वङ्किम रेखा चन्द्रमौलि के ललाट की चन्द्रलेखा की तरह चमक रही है।

बेला बड़ी धीमी आवाज़ से बोली—"आप जन्म की इस

कंगालिनी को जो अतुल ऐश्वर्य देने पर तत्पर हैं, उसकी आशा तो मुझे स्वप्न मे भी न थी। यह मेरे जीवन का एक अनन्त मुहूर्त्त है। इसकी स्मृति सौ जनम मे भी नहीं भूल सकती। पर भिखारी के आँचल के खूँट मे स्नेह का दो मुट्ठी चावल काफी पाथेय है। इस कुबेर की सम्पद की तो मैं अधिकारिणी नहीं, न मेरी झोली मे इसके लिए जगह ही है।"

बेला का सर झुक गया। उसने एक सर्द आह खीची—"हाय! मेरे क्षुधित प्राणो के सामने रस का सागर उमड रहा है और मैं एक बूँद भी पी नहीं सकती!"

"बेला!"—श्रीधर ने बेला के दोनो हाथो को अपनी उँगलियो के दाब मे थाम लिया और थम-थमकर सहलाना भी शुरू किया। उसकी उँगलियो मे आवेग की थर्राहट थी।

बेला इन थपकियो क पुलक से अवश हो चली। उसके हाथ ढीले पड़ गये। उसके प्राणो की सनसनी दुगनी हो गई।

लेकिन दूसरे ही क्षण वह सचेत हो गई, और धीरे-धीरे हाथो को समेट लिया।

"बेला! चलो, हम-तुम दोनो वहाँ चले चलें, जहाँ कोई भी हमारा अपना न हो, किसी अज्ञात देश मे, किसी शैल-प्रदेश मे, किसी विजन वन के किनारे, किसी नदी के कछारे—जहाँ पशु-पक्षी हमारे सहचर हो, जहाँ चिरवसन्त की हलचल हो। वहाँ न लोक का कुतूहल होगा, न समाज का अङ्कुश। चलो बेला, वहीं किसी निकुंज मे हम-तुम अपना घोसला बाँधे,

और खेती करके, कन्द-मूल-फल खाके, आनन्द से जीवन का रस लूटे। तुम्हारी गर्दन मे फूलों की लड़ी होगी, सर पर फूलों की पटमौरी; हाथों मे फूलों के कंगन होंगे, कानों मे फूलों के झुमके।"

बेला ने लम्बी साँस ली और खाट पर करवट बदली—"या भगवन! मै आज कुएँ मे डूब क्यों नहीं गई!"—सहसा साँसी मे वह बोल उठी। उसका चेहरा न जाने किस आवेग से खिच गया. और वह सिर से पैर तक थर्रा उठी। उसकी शिथिल कबरी छूटकर छाती पर छा गई। उसके लोचनों के कोनों पर ठमके हुए आँसू उछलकर आँचल पर आ पडे। एक आन्तरिक आवेग का धक्का खाकर वह चट खाट पर उठ बैठी।

श्रीधर ने फिर हाथ थाम लिया—"बोलो, बेला! अपने दिल को तौलो—टटोलो—हिम्मत बाँधो। चलो, हम-तुम उँगली मे उँगली देकर निकल चले।"

बेला ने असम्मति-सूचक सर हिलाया, और उठकर चलने लगी

"नहीं-नहीं. तुम मुझे ठुकरा नहीं सकती। तुम्हे साथ चलना होगा!"

"नहीं"—बेला ठमककर खड़ी हो गई और उलटकर बोली। उसका चेहरा दूध का धोया सफेद था।

"मै उस नीच नेता के साथ जाने को तैयार हो सकती हूँ, मगर मगर आपके साथ हरगिज़ नही जा सकती। मै बाज़ार

के कोठे पर जाकर बैठ सकती हूँ, मगर आपके पवित्र प्रेम के आश्रय मे एक क्षण भी नहीं बैठ सकती !"

"क्यों, बेला ? क्या मेरे इस प्राणमावी प्रेम का यही प्रतिदान है ?"—श्रीधर ने ज़रा खीजकर पूछा।

"मेरी समझ मे यही प्रतिदान है।"—कहती हुई बेला प्रलय-आवेग के नशे मे चूर लडखडाती हुई कमरे से बाहर निकल गई। वह उसी तरह अटपटे कदमो से आँगन मे आई और आकुल बाट जोहती हुई गङ्गा और यमुना से कन्नी कटाकर सिसक-सिसक रोने लगी।

निशीथ के पल्लव-मर्मर से मिलकर एक सूक्ष्म क्रन्दन-वनि आँगन मे बिखरने लगी। आकाश ने सुना। चाँद ने सुना। सितारो ने सुना। नीम की डालियो ने सुना। मकान की दीवारो ने सुना। गायो ने भी सुना। पर, कौन उससे पूछता कि उसकी वेदना क्या है और कहाँ है !

गङ्गा ने कान फटफटाकर, पूँछ डुलाकर, पूछा। यमुना ने उसका कपोल सूँघकर, कंधा चाटकर, पूछा। पर बेला किसी पर भी कुछ खुली नहीं—न चर पर, न अचर पर, न जीव पर, न जड़ पर।

आज तक तो वह गङ्गा और यमुना से कोई राज़ छिपाती न थी। निचाट रात की निरतव्धता मे हर रोज़ उनके कानो मे अपने दुःख की कथा सुना देती रही। उनकी हमदर्दी की मूक चेष्टा उसके दिल की लगी को शान्त कर देती। मगर, भगवान्

जाने, आज बात क्या है कि गङ्गा और यमुना कान पाते खड़ी रह गईं। शायद वह अपने कलेजे की टीस को अपने दिल से भी चुरा रही है। जब दिल शरीक न हो सका, तो फिर और कोई कहाँ तक दर्दशरीक होता ?

चतुर्दश परिच्छेद

बेला ने सुबह उठकर विश्व मे एक नवीन युगान्तर देखा। हर ज़र्रे, हर पत्ते पर नया चमत्कार पाया। फूलों पर नया रंग, पल्लवों पर नवीन उमंग। भोर का आकाश गान से भरा है, लता का वितान मुस्कान से। समीर की गति मे वसन्त की चंचलता है—उसकी सरस सर्राहट में रहस्य की कथा।

बेला ने तड़के नहा-धोकर साडी बदली। एक किनारदार धुली धोती पहनी। उलझे बाल को कंघी देकर सुलझा डाला। जूड़ा बाँधा। पाँच मिनट तक जगत पर खड़ी होकर कुएँ के जल मे झाँकती रही—भगवान् जाने, क्यों! बालटी भरकर उसी जल से नहाया। चुल्लू भरकर उसी जल को पान किया। फिर पिछवाड़े की फुलवारी से फूलों को चुन लाई। दो मालाएँ गूँथी।

एक यमुना की गरदन में पडी, दूसरी गंगा की। कटोरा में कपूर की डली जगाई और आरती उतारी। उन्हे प्यार किया। नॉद मे भूसा और खली देकर उन्हे खिलाने ले गई। वे उसका प्यार पाकर अघा गई। वे उसका मुँह देखती, उछलती, पूँछ डुलाती और चाटने का आग्रह करती। कल की रात मे कैसी कसक थी और आज के प्रभात मे कैसा पुलक, इसे थाह लेने की जरूरत नहीं।

बेला ने देखा कि कल शाम को मेले मे नेता ने गनेस बहू के लिए जो मिठाई खरीद दी थी, उसे गनेस बहू पत्ते मे लपेटकर ऑगन के एक कोने मे छोड गई है। रात के गोलमाल मे वह उसे उठा ले जाना भूल गई। खैरियत थी कि बिल्ली को गंध न मिली।

बेला ने मिठाई के दोने को ऑचल मे बॉध लिया। कल कमला ने उसे चार पके आम दिये थे, उन्हे भी लिया, और धीरे से ऑगन का किवाड खोलकर पिछवाड़े के खंड मे चली गई।

गनेस बहू अभी सोकर उठी है। खाट पर बैठकर ऑगडाई भर रही है। गनेस कोने मे दबका चिलम भर रहा है। गनेस बहू के सर के बाल खुले है। छाती का ऑचल कमर पर आ गया है। उसकी बिल्ली-सी पीली ऑखे कीचड से भरी है और वह बार-बार ऑचल के खूँट से उन्हे साफ़ कर रही है।

बेला को आते देख वह स्याह हो गई। उसके रूप की बहार

को देखकर वह चौंधिया-सी गई। देखा कि बेला की बोटी-बोटी फड़क रही है। उसके चेहरे पर मुस्कान की लहर है, निगाह में किरनों की कुलेल।

गनेस बहू चकराई—बात क्या है? यह तो कभी की ऐसी हसमुख न थी। नाक-भौं सिकोड़े, घूँघट ताने, गुम्मी बनी रहती। क्या कुएँ में डूबकर इसकी काया पलट गई? ज़रूर इसके सर पर देवी की सवारी होगी। परी नहीं रहती, तो मरी नहीं जाती।

बेला ने सामने आकर कहा—"गनेसी बहू! यह लो अपनी मिठाई। बिल्ली चट कर गई होती। तुम्हारे भाग की थी, बच गई।"

बेला ने मिठाई का दोना खाट पर रख दिया—"और कुछ लोगी? यह देखो, तुम्हारे लिए आम लाई हूँ!"

"आज क्या है, बेला? इतने दिनों तक तो ईद का चाँद बनी थी! कभी इधर झाँकती भी नहीं थी! कल मैंने कौन तेरा उपकार किया जो आज इनाम पाती हूँ?"

"तुमने मुझे नई ज़िन्दगी दी, गनेसी बहू!"

"मैंने?"—गनेस बहू सिट हो गई। उसके चेहरे की स्याही पर स्याही का पुचारा फिर गया। उसने समझा, बेला बड़ी दूर की कौड़ी लाई है। शायद उसने उलटकर पैंतरे का हाथ मारा है।

बेला की 'नई ज़िन्दगी दी' की वाणी में कौन-सा गूढ़ आशय

निहित है—व्यंग्य या उमंग—कौन कहे !

गनेस बहू सँभलकर बोली—"मैंने ? वही, जो तुझे कुएं से ऊपर खींचने के लिए रस्सी लटकाई ?"

"जाने दो। मुझे तो यही रह-रहकर टीसता है कि मैं कुएँ में डूबकर भी जीती क्यों निकली, मर क्यों नहीं गई ! लो आम खाओ।"

"तू मरेगी ? तेरे सर पर जिन सवार है !"—गनेस बहू ने सूखी हँसी के साथ कहा। उसके दाँतों की पाटी काजल से काली टाटी की ओट से दीपक की धुँधली दीप्ति-सी चमक उठी।

बेला ने देखा कि कोने में बैठा गनेस एक टक उसकी ओर मुँह बाये देख रहा है ! चिलम की आग तार से उतरी जा रही है, पर उधर उसकी आधी नज़र तक नहीं। उसकी एक आँख बेला पर है, दूसरी बहू पर। कहीं वह कलूटी देख न ले कि उसकी आँख बेला पर टँगी है, इसीलिए उसे अपनी आँख पर भी आँख रखना ज़रूरी है।

"अच्छा, गनेसी ? सुन तो जाओ !"—कहती हुई बेला झम-से लौट चली। गनेस ने चिलम को कोने में खड़ा कर दिया, और साथ हो लिया।

"क्यों रे पागल ? तू मुझे इस तरह आँखें फाड़कर क्यों देखता है ? तेरी बहू से कह दूँगी, तो तेरी मूँछ का एक-एक बाल उखाड़ लेगी !"

गनेस सिटपिटा गया। क्या जवाब देता ? दाँत निपोर दिया !

"मेरी ओर क्यों घूर रहा था ? बोल !"—बेला ने बनावटी डपट से पूछा।

"यही कि एक तुम हो और एक वह है। एक तुम भी औरत हो एक वह भी है। पर, तुम इन्दर की रानी हो और वह "

"और वह ?"

"भस्मासुर की नानी !"

गनेस लगा सर खुजाने। बेला खिलखिला पडी।

"कहीं वह सुन पाएगी तो ?'

"सुना करे !"—गनेस ने ताव मे आकर कहा—"वह चुड़ैल मेरा क्या बिगाड़ लेगी ? मिश्रानीजी भी सरकार को निगलने को मुँह फैलाती है ! दाँत रहते तो जाने कच्चा चबा जाती।"

"तुझे लुगाई से पटती है न, गनेसी ?"—बेला ने जरा मुस्कुरा कर पूछा।

"पटती क्यों नहीं ? मैं उसका रास्ता तो काटता नहीं ! जानती हो, बेला ! तुमसे वह कलूटी आठो पहर जला करती है ! तुम्हे कुएँ मे ढकेलने मे उसका भी एक हाथ हो, तो ··।"

"इसी उपकार के लिए न उसे आम खिलाने आई थी !"

हँसती हुई बेला भीतरी आँगन मे दौड़ गई। गनेस मुँह ताकता रह गया। बेला की बातो मे उसे न सिर ही मिला, न पैर।

जब बेला ने आँगन मे क़दम रखा, उसे सिसकती हुई मुन्नी

मिली। वह माता को सोती हुई छोड़कर उठ आई थी और बेला को आँगन मे न पाकर ऊँ-ऊँ कर रही थी। बेला ने उसे गोद मे उठा लिया और पीठ पर थपकियाँ दे-देकर 'राम-नाम लड्डू, गोपाल-नाम घी; हरि-नाम मिसरी, घोल-घोल पी' की आवृत्ति मीठे स्वर से करने लगी। इसी मंत्र पर मुन्नी वश होती।

बेला मिश्रानी की पतीली से मूँगफली उठा लाई। छील-छीलकर उसे खिलाती और कंधे पर सवार कराकर आँगन मे भाँवरी देती।

तबतक कमरे से कमला निकली और फूली-फली बेला को देखकर उछल पड़ी। वह बला की छाती से लिपट गई और हँस कर बोली—"वाह बेला! मै तो रात-भर हौलदिल मे तडप रही थी कि सबेरे तुझे किस सूरत मे देखूँगी। मैं क्या जानती थी कि तुझे ऐसी हरी-भरी पाऊँगी! कुएँ के पानी ने तो तेरे चेहरे पर नई रंगत चढ़ा दी है! तेरी बोटी-बोटी पर जवानी बरस रही है!"

"तुम्हारे आशीर्वाद से बच गई, बहन!"—बेला टुप मे झुक कर कमला के पैर छूती हुई बोली—"और, अगर मर ही गई होती, तो किसकी सेज सूनी करती?"

"क्या बकती हो, बेला? पुरुषो की सेज भी कही सूनी होती है? एक गई, दूसरी आई। और, तुम्हारी सेज सूनी हुई, तो ज़िन्दगी सूनी हो गई!"

"बहन! मेरा तो मरना ही जीना है!"

"इसीलिए तो तुम मरकर जी गई; डूबकर चंगी हो गई !"

कमला बात की धारा को पलटती हुई फिर बोली—"आओ, चोटी गूँथ दूँ।"

कमला सीने पर सवार होकर चोटी गूँथने पर तुल गई। बेला लजाकर लाल हो गई। उषा की लाली गालों की लाली में डूब गई।

इधर मिश्रानीजी कुम्भकर्णी नींद से बेदार हुईं, और वज्र-पात की कड़क की तरह उनका गंभीर गर्जन आँगन में गूँज उठा। कमला और बेला चौंक पड़ीं।

"बेला, ज़रा इधर तो सुन जा !"

मिश्रानी के कंठ की टीप ऊँची थी। बेला ने मुँह पर आँचल को खींच लिया, और दौड़ती हुई सामने आई। पहले तो वह भीत हरिनी-सी डरी थी, पर जब मिश्रानीजी के गाल पर नमूदार गड्ढों पर नज़र पड़ी, तब वह फ़ौरन् संभल गई।

"बेला, रात तेरी जान बच गई। जानती है, यह पीर मियाँ की बरकत है। मैं तुझे मज़ार पर कल शाम को न भेजती, तो तुझे पनाह मिलती ? अबतक तेरी लाश में चींटियाँ रेंगती होतीं। तुझे इतनी अक्ल नहीं कि सुबह उठकर वहाँ शीरीनी तो चढ़ा आती ! खुद न जाती, तो गनेस बहू को भेज देती ! जा-जा, तुलसी के तले दीप तो दिखा दे।"

मिश्रानीजी माया-शास्त्र में विशारद थीं। कभी लोलजिह्वा चामुंडा का रूप—हाथ में खड्ग और खप्पर; कभी सौम्यमूर्त्ति

सरस्वती का रूप—हाथ मे वीणा और पुस्तक। मगर सरस्वती के दर्शन कभी किसी को भाग्य से ही मिलते!

बेला हँसती हुई लौट गई।

जब दोपहर को श्रीधर आँगन मे रोटी खाने आया, तब छन-भर उसकी चकित दृष्टि चारो ओर फिरती रही। वह चौखट ही पर ठमका रहा, अन्दर चौके मे न घुसा। कमला ने औचक देख लिया, और मुड़कर पूछ बैठी—"किसे ढूँढ़ते हो?"

"मुन्नी कहाँ है?"—श्रीधर ने ज़रा शरमा कर कहा।

"मुन्नी तो बेला के घर मे खेल रही है।"

"कहो कि मुन्नी को दे जाय, मै उसे बहला लूँगा।"

कमला ने बेला को पुकारकर कहा—"मुन्नी को उठा लाओ, मामा के साथ बैठकर रोटी खाएगी।"

मुन्नी के आने मे देर हुई, तो श्रीधर ने फिर टोका—"वाह! दे क्यो नही जाती?"

"तुम्हारे सामने आने मे लजाती होगी। मैने आज उसकी चोटी गूँथ दी है।"—कहती हुई कमला हँस पडी।

वही चोटी बेला के गले की फाँस हो रही थी—उसके पैर मे जंजीर बनकर पड़ गई। जब वह उठती, लज्जा उसकी चोटी थाम लेती। वह उठ-उठकर बैठ जाती और रह-रहकर सोचती—"भगवन्! मुझे क्या हो गया है? यह जड़ता कैसी? मुन्नी को तो मामा के निकट पहुँचा देना है। अकेली तो वह

जा नहीं सकती। आँगन मे आग बरस रही है। उसे आँचल के साये मे गोद मे रखकर पहुँचाना होगा, नहीं तो कमला क्या समझेगी ?"

पर रात की बात के बाद वह श्रीधर के सामने

बेला आकाश और पाताल के बीच टँग गई। लज्जा उसे रोकती थी—आकुलता उसे ठेलती थी। एक ओर हृदय खींचता था, दूसरी ओर विवेक। वह शायद जाना चाहती थी, पर जा नहीं पाती थी।

सहसा मुन्नी मचल पड़ी। बेला विवश हो गई। उसे जाना ही पड़ा। आखिर मन ने बुद्धि को मनाकर उस खींचतान का निबटारा कर दिया। बुद्धि बिचारी शालीनता का कवच देकर सम्मत हो गई। शील की कील मन के कपाटो मे कस दी गई।

बेला ने आँचल के छोर को आँखो पर खींच लिया, और चल पड़ी। वह मुन्नी को लिये आँगन पार हो गई। चौके के सामने आकर जब वह मुन्नी को उतारने के लिए झुकी, तो उसकी विद्रोही चितवन अवगुंठन की दीवार को उचककर श्रीधर के दृष्टि-पथ पर कूद पड़ी। बुद्धि और मन के सुलहनामे पर आँखो की तो गवाही थी नहीं—आँखे चार हो गईं।

श्रीधर ने बेला की चटक धोती को देखा, पीठ पर लटकती हुई काली चोटी को देखा, लज्जा-लोहित कपोल को देखा, सुकुमार करकमलो की चिकनाहट को देखा और झुककर मुन्नी

को गोद से उतारने की सलज्ज सलील सहज सुन्दर भङ्गिमा को देखा।

बेला ने आँचल के पट की फाँक से क्या देखा, यह वही जाने। उसने श्रीधर के चन्दन-चर्चित उन्नत पेशानी को देखा, चेहरे के तरुण तेज की कान्ति को देखा, स्फीत छाती के पीत यज्ञोपवीत को देखा, कंधों पर सुशोभित जरी-डोर के उत्तरीय को देखा, या एक ही निगाह में नखसिख तक सब कुछ देख लिया।

जो हो, इस देखा-देखी की तो बदी नहीं थी हो क्या?

आखिर बुद्धि कबतक नज़र को नजरबन्द कर सकी है? और जब मन की किलेबन्दी न होगी, तब घूँघट की नज़रबन्दी किस मर्ज की दवा होगी? विवेक का शासन न मन पर चलता है, न चितवन पर! आँखों ने जब चाहा, मन के कवच-कुंडल को पल में उतरवा लिया। जिस तरह तरुणी-परायण पलित पति की हुकूमत परिवार के प्रत्येक मेम्बर पर बे-असर होती है, उसी तरह अव्यवस्थित बुद्धि की हुकूमत अधीनस्थ इन्द्रिय-कुल पर है।

मुन्नी दौड़कर श्रीधर की गरदन से लिपट गई। श्रीधर आसनी पर बैठे रोटी को दाल में भिगो रहा है। कमला कटोरे में कढ़ी डालने लगी, तो बेला ने वापस लौटने को पैर बढ़ाया। इतने में श्रीधर ने आँखें उठाकर बेला का घूँघट टटोला। बेला

ने आँचल की ओट से झाँका। फिर वही चारु चितवनों के चाह-भरे चुम्बन! आँखों के आँखों से चोंचले—आँखों के आँखों से पैंतरे!

आँखों से आँखों का मिलना कैसा निविड मिलन है! प्राणों से प्राणों का परिचय तो यही आँखें कराती हैं! अनुभूति के इस चरम मुहूर्त्त पर भाषा तो जैसे एक बाधा हो जाती है। यह असीम तो किसी वाणी में समा नहीं सकता। इस योग की साधना के लिए तो मौन ही माध्यम है, ध्वनि नहीं। इस निःशब्दता की मौज पर हृदय की निखिल कथा, निखिल संगीत, निखिल वेदना, निखिल प्रार्थना किस आसानी से तैरती हुई हृदय तक पहुँच जाती है! भाषा तो इस निसर्ग स्फुरण का पर बाँध देती है!

आँखों से आँखों का मिलना कितना मधुर है! आँखें बचा-बचाकर आँखों का उलझना कितना प्राणस्पर्शी है! फूलशय्या के निविड स्पर्श में वह माधुरी नहीं मिलती। चुम्बन के रसाल-नन्दन में वह चाशनी नहीं मिलती। दर्शन में जो पुलक-स्पन्दन है, वह भुजान्तराल में नहीं। इन्तज़ार में जो लज्जत है, वह विसाल में नहीं। घूँघट के साये में जो माया-मंडित रहस्य-लोक है, वह अक्सर घूँघट उठते ही कङ्काल बन जाता है।

आँचल की कोर की प्रत्यञ्चा से छूटा हुआ चितवन का तीर कलेजे को चलनी कर डालता है, फिर भी उस वेदना-मधुर चोट की चाट कलेजे से नहीं छूटती। यह वह ज़ख्म है,

जिसका मरहम उसी तीर की चीस है, यह वह दर्द है जिसकी दवा उसी दर्द की टीस है। यह वह ज़ख्म है, जिसे भरने देने के बदले ताज़ा रखने मे ही ज़िन्दगी की लज्ज़त है। जिसकी छाती मे यह ज़ख्म है, वह टीस से तड़प रहा है, जिसकी छाती मे यह ज़ख्म नहीं, वह उस टीस के लिए तरस रहा है। यह वह हलाहल का हाला है, जिसके उफान मे पीयूष की बूँद छलकती है। यह वह तमंचे की चोट है, जिसकी मार मे ज़िन्दगी का करार है। यह वह दिल की जलन है, जिसकी आँच मे कलेजे को ठंढक मिलती है। इस दर्द की मिठास से—इस आँसू के मकरन्द से—जिस जीवन मे रस नहीं आया, इस उसास की सुरभि से—इस व्यथा के पराग से—जिस प्राण मे सौरभ नहीं भरा, इस रुदन के संगीत से—इस टीस की मीड से—जिस हृदय के तार स्पन्दित-झंकृत नहीं हुए, वह जीवन, वह प्राण, वह हृदय इस धरातल पर किसी इन्सान के नहीं, हैवान के ही होगे।

जब दिन-भर के काम से निबटकर बेला अपनी कुटिया मे चारपाई पर जा बैठी और बाँये गाल पर हथेली रखकर पत्थर की मूर्त्ति बन गई, तब उसके अन्तर-पट पर एक उदास स्वप्निल रेखा सघन होने लगी और वह गम्भीर चिन्ता मे डूब गई। 'प्रेम-सागर' की पुस्तक गोद मे औंधी पड़ी रही। झुककर वरक उलटने की सत्ता भी उँगलियो मे बाक़ी नहीं थी।

जाने किस आवेश मे वह लट की बेनी खोल देती है। लम्बे-लम्बे बाल उसके मुख, कंधे, पीठ और सीने के इर्द-गिर्द

फर-फर बिखर आते हैं। और वह सोचती है—"भगवन्! यह किस धारा मे बही जा रही हूँ मैं - ? सच! मैं आज हरी-भरी नज़र आती रही? सचमुच मेरे पैर ज़मीन नहीं छूते? क्यो—किस लिए? भला कुएँ मे डूबकर कौन-सी ऐसी विश्व की अलभ्य सम्पद मिल गई! दीवानी नहीं हूं। आखिर क्यो बे-वजह धधाई हुई इठलाती चलूँगी? मगर, मेरे दिल मे यह चाञ्चल्य कहाँ से आया? प्रभो! सच कहो, यह क्या है? चंचलता है या आकुलता, वेदना या पुलक-लीला; उद्वेग या उमंग, टीस या उच्छवास, दु:ख या सुख, विष या मधु, ताप या प्रलेप, या दोनो का एक विचित्र मेल-जोल है?··· क्या जाने, क्या है! श्रीधर की जगह तो मेरे प्राणों मे —मेरे जीवन मे—कभी हो नहीं सकती। वह तो मेरा कोई अपना नहीं, न मेरा अपना हो सकता है। फिर उसकी समीपता मेरे प्राणो मे मलयहिल्लोल की लपट कहाँ से लाती है? उसके कंठ की काकली सितार के तार की झङ्कार कहाँ से पा गई? उसके गले की आवाज़ मे वह मीठा लोच, लोचनो मे वह सरस सावलील सकोच, क्या सचमुच मुझे किसी सुदूरवर्त्ती मायालोक की आलोक-लीला बनकर प्रतीत होता है?·· · कमला की ज़बान भी तो मीठी है, मुन्नी की तोतली वाणी भी तो मीठी है, गुरु-महाराज के वचन भी तो मधुर हैं, मगर यह मिठास और वह माधुर्य-निर्झर क्या एक हैं? कमला की चित-वन मे भी तो सुधासिञ्चन है, गुरु-महाराज की चितवन भी

कैसी शान्त प्रसन्न है, मगर यह करुणा-प्रवण चितवन और वह प्राणविह्वल जोवन्त चितवन क्या एक हैं ? भला, एक कैसे होगी ? सबकी ज़बान तो बराबर नहीं होती, सबकी चितवन तो एक-रस नहीं होती ! फिर, इसमें तर्क की गुंजाइश कहाँ है ? जो हो, मगर श्रीधर की ओर आज मेरे दिल में अभूतपूर्व भाव कहाँ से आ गये ? अच्छा ! मैं समझी ! उसने मुझे अकालमृत्यु के मुख से जान पर खेलकर खींच निकाला है; इसीलिए मेरा हृदय उसके आगे बरबस झुक पड़ा है। यह प्रेम नहीं, कृतज्ञता है—कृतज्ञता ! मगर ··

बेला सोचते-सोचते सहसा रुक गई। उसने चंचल लटों को समेटकर बाँध डाला। गोद की किताब को समेट कर रख दिया। एक लम्बी साँस ली। फिर डूब गई—"श्रीधर ने रात मुझे अपना प्रेम जताया। क्या यह सच है ? तो उसके हृदय का निखिल परिमल मेरे चरणों पर लुंठित है ? नहीं-नहीं, यह कभी सम्भव नहीं। पुरुष की ज़बान में दिल नहीं होता, उसकी चितवन में तो कामना होती है, वेदना नहीं। पर, श्रीधर तो 'दिनेश' नहीं है—इसका साक्षी तो मेरा अपना हृदय है। अगर उसकी वाणी में भी हृदय नहीं है, तो कोई भी आदमी इन्सान नहीं। उसने जो कुछ कहा, झूठ कहा ? आकाश के तारे ! तुमने तो रात सुना है ! तुम्हीं कहो, श्रीधर की बातें बिलकुल ज़बानी थीं ? तारापति चन्द ! तुम तो देख रहे थे—सुन रहे थे ! कहो तो, श्रीधर की ज़बान में काम था या प्रेम ?

विश्वव्यापी पवन ! तुम भी तो कल रात उसकी गर्दन की चादर से उलझ रहे थे ! बोलो, तुमने उसके हृदय मे क्या पाया—अनन्त सौरभ या क्षणिक उच्छ्वास ? " मगर इस पूछताछ से मतलब ? श्रीधर को तो न प्रेम जताने का हक है, न मुझे उसे पाने का हक है। मेरे हृदय मे तो प्रेम हराम है। प्रकृति का यह शाश्वत दान तो मेरे जीवन का अभिशाप है। भला, इस मरुभूमि मे कहीं मन्दाकिनी बह सकती है ? मै न इसे हृदय मे जगह दे सकती हूँ, न जबान पर इसे ला सकती हूँ। मेरे लिए तो परलोक का अभिसार है, चिता की फूल-शय्या है। मनोवाछा मेरी यंत्रणा है, हुलास मेरा सत्यानाश। तो क्या मै इस शून्य जीवन की मन्दाकिनी के कूल पर पहुँचकर प्यासी रह जाऊँगी ? इस रसाल-नन्दन की लज्जत से मुझे मुँह मोड़ना पड़ेगा ? मुझे तो बस 'हाँ' कह देना है और विश्व का निखिल ऐश्वर्य आप-से-आप मेरे आँचल मे चू पड़ेगा। ओह ! नाथ ! यह क्या सोच रही हूँ मै ? यह मनमोदक लेकर मै क्या करूँगी ? मुझे तो तुम्हारा चरणोदक चाहिये !"

बेला उठ खड़ी हुई। कोठरी के बाहर चाँदनी मे निकल आई। अपने दिल की लगी किसको सुनाती, किससे कहती, किससे सलाह लेती ? और बिना कहे, पेट मे बात फूलने लगी। वह गङ्गा से लिपटकर बोली—"गङ्गा ! मै तो अपनी मर्मकथा को—अपनी अन्तर्व्यथा को—यहाँ किसी मनुष्य के आगे प्रकट नही कर सकती, न सहानुभूति तलब कर सकती। देवता के

आगे भी तो ज़बान पर ला नहीं सकती। पर, तुम्हारे सामने तो मैं जी खोलकर रो-गा सकती हूँ।"

वह गायों से लिपटकर न जाने क्या-क्या कहती रही, और वे दोनों चुपचाप उसके कंधे के आँचल को चाटती रहीं।

पञ्चदश परिच्छेद

बेला ने निश्चित कर लिया कि श्रीधर के सामने वह हरगिज न जायगी। न सामने जायगी, न लौ लगेगी। वह ज़िन्दा रही या मरी, दोनों एक ही है। वह जीकर न किसी घर को रोशन करेगी, न मरकर कहीं एक क्षण भी अँधेरा करेगी।

पर, श्रीधर की बात और है। उसके कंधों पर हज़ारों की सद्गति का दारमदार है; गुरुपद के सिंहासन का भार है। उसके सर पर एक दिन छत्र और चमर होगा; उसके पद पर एक दिन सैकड़ों का सर होगा। उसके भविष्य को वह कभी कलांकृत न होने देगी। नहीं—कभी काँटा नहीं बो सकती।

अब वह श्रीधर से कन्नी कटाती चलती। जब कभी उसकी

मनमौजी आँखे आँचल से उचककर उसे देख लेती, वह आँखो को आँख दिखाती।

यह देख-रेख सुबह से रात तक चलती। वह मन को मनन करती, आँखों पर आँख रखती। उसके मन के मर्म मे विवेक की अनी चुभी रहती। वह इस निरन्तर दंशन मे लाख तडपती, पर सचेत रहती। आँसू पीकर रह जाती, पर आँख सेक-सेक कर आँखो का पानी ढलने न देती।

उसने आसमान से तारे उतारने के लिए आस्तीन तो चढा ली, पर कदम-कदम पर ठोकरे खाती रही। विवेक और हृदय मे निरन्तर द्वन्द्व जारी रहा। पर वह अपने कर्त्तव्य-पथ पर पल-पल दृढ़ होती गई। उसने निश्चय कर लिया कि यहाँ से उसका टल ही जाना उचित होगा, और जहाँ तक जल्द हो सके, उसे इस संकल्प को पूरा करना पड़ेग। देर होने से बेलुत्फी होगी।

वह सोचने लगी—"यही न डर है कि इससे मैं अशरण होकर दो दाने चावल के लिए बाज़ार के कूडे कुरेदती फिरूँगी? मैं कुरेद लूँगी। मुर्दे पर जैसे दस मन मिट्टी, वैसे सौ मन! मैं तो सर से कफन बाँधे तैयार बैठी हूँ। इससे उसका तो कल्याण अवश्य होगा। उसी का कल्याण तो मेरे जीवन का चरम कल्याण है। उसने परसों रात जो प्रस्ताव किया, वह उसकी आत्मा की महत्ता है। वह अपनी तमाम उमीदों को—अपने निखिल यश-मुकुल को—कुचलकर, मेरे श्मशान-जीवन

को प्राणों से सींचकर रसमय करने के लिए बद्धपरिकर है। उसकी हड्डियों में दधीचि की आत्म-सत्ता है। उसके प्राणों में कर्ण की त्यागशीलता है। यह कभी मुमकिन नहीं कि वह मुझ पर मरता हो। उसकी नस-नस में तेजस्विता की बिजली भरी है। वह किसी कामिनी के आँचल को अपने सर का सेहरा नहीं बना सकता। मुझ जैसी अधम स्त्री पर उसका मर मिटना न कभी सम्भव है, न समुचित। और, मुझमें रखा ही क्या जो कोई मेरे कलुषित आँचल के खूँट में अपना कलेजा निकालकर बाँध देगा? उसे चार आँखें हैं। वह क्या समझता नहीं कि मेरे शरीर का सौरभ जल्लाद के हाथों लुट चुका है? मैं विधवा हूँ, पतिता हूँ। मुझ-जैसी सैकड़ों स्त्रियाँ उसकी पदांगुली के नख पर लोटती रहेंगी। उसे क्या रूपवती गुणवती कुमारी नहीं मिलेंगी जो वह मुझ पर आसक्त होगा? मैं न उसकी सहधर्मिणी हो सकती, न जीवन की सहचरी। फिर भी वह मेरे दुःखों से पसीजकर मेरे शून्य जीवन के साये में अपना यश, कुल, तेज, धन, यौवन—सब-कुछ तिलाञ्जलि देने को तत्पर है! यह महत् आवेग! यह विराट् त्याग! जब वह पुरुष होकर इस कलङ्किनी के लिए अपना कलेजा निकाल सकता है, तो क्या मैं नारी होकर उस वीर-कुञ्जर के लिए अपने हृदय पर पत्थर भी नहीं रख सकती? त्याग तो पुरुषों का सिरमौर नहीं, हमारा जेवर है। जीते-जी पुरुष तो चिता पर नहीं चढ़ता, स्त्री चढ़ती है। पुरुष रण में खेत आता है, स्त्री चिता पर खेत

आती है। वह उसका वीरत्व है, यह मेरा नारीत्व। वह उसका गौरव है, यह मेरा सौरभ। पुरुष के सर का ताज उसका तेज है, उसके ललाट का तिलक उसका मान है। उसी मान को वह एक मानवती के लिए—नहीं, एक मानहीना के लिए—क़ुरबान कर सकेगा; और मुझसे प्राणों के अरमान की क़ुरबानी मुमकिन नहीं? ज़रूर मुमकिन है। सीतापति राम! मुझ अबला को बल दो। मेरे क्षोभ के आँसुओं की धारा में वह प्रलय की सत्ता भर दो, जो मुझे बरबस बहाकर तुम्हारे चरणों के तले तुम्हारी भक्ति के रस-सोत में बोर दे! नाथ! मैं और कुछ नहीं माँगती। मैं मँझधार में पड़ी हूँ, मेरी बाँह पकड़कर अपनी शरण में खींच लो।"

सुबह का वक्त। बेला, गङ्गा और यमुना को खिला-पिलाकर, आँगन में बैठी थाल में चावल से कंकड़ी चुन रही है। कंकड़ी क्या चुनती है, कॉकरी चुन रही है। चेहरे पर उदासी भरी है। इस क़दर डूबी हुई कि एक ढीठ कौआ धीरे-धीरे नज़दीक सरकता हुआ थाल में जब खट-से चोंच मार चावल के दाने उठाकर भागा और उसके पंख की फड़फड़ाहट कनपटी के पास अचानक खटकी, तब कहीं उसका ध्यान टूटा। उसने निगाह उठाकर देखा कि कहीं मिश्रानीजी की नज़र तो इधर नहीं पड़ी! ख़ैरियत थी कि मालकिन की पीठ उधर थी; नहीं तो आज पीठ छिल जाती।

तबतक कमला हँसती हुई सामने चली आई। बेला सिटपिटाकर कंकड़ी चुनने लगी।

"जानती हो, बेला? बाबा तो आ गये। अभी कोठे पर गये हैं।"

कोठे की खिड़की आँगन मे खुलती है। कमला का यह कहना था कि बेला की निगाह काठे पर जा पड़ी। उसने मिश्रजी की आँखों को अपनी आँखों पर सवार पाया!

"महाराज की आँखों मे यह कैसी विचित्र लौ है आज!" —सोचती हुई बेला तड से झुक पडी, और सर पर आँचल खींच लिया—"दीदी, महाराज सामने हैं। उधर सरक चलो।"—कहती हुई थाल को उठाए कुएँ की आड मे चली गई।

मिश्रजी ने चन्द्रमौलि के हुज़ूर में अपने शरीर के रक्त से जिस कबूलियत को लिखा था, उस पर अमल करना ज़रूर था, और शायद उसकी शर्तों की तामीली मे आसानी समझ कर वे यहाँ से दो-चार दिनों के लिए टल गये थे। जो हो, पर कई दिनों के फाके से तड़पती हुई भूखी आँखें इस क़दर मुँहज़ोर हो गई थीं कि कोठे पर मिश्रजी के क़दम रखते ही उन्होंने अपने शिकार पर उछलकर दाँत गड़ा ही तो डाला—और मिश्रजी के हाथ मे विवेक की जंजीर झनझना कर रह गई! शायद यही वजह है कि बेला ने उनकी आँखो मे एक विचित्र दीप्ति देखी, उनकी सतर्कता छन-भर भी शिथिल पड़ी और आँखों ने चारो खाने चित फेंका।

बेला सर झुकाए बंकडियो को थाल मे एक ओर जमा कर रही है। कमला नजदीक आकर बोली—"जानती हो, बेला ! श्रीधर का ब्याह तय हो गया। कल तिलक है।"

"सच, दीदी ?"—बेला चार अंगुल और झुक गई। कमला की निगाह उसकी ठुड्डी तक थी।

"तो क्या झूठ ? बाबा ने कल ही बात पक्की कर दी। उनके एक शिष्य की लडकी है—'सुधा'। कल रात को वे वहीं रुक गये थे। नही तो शाम ही को यहाँ आ जाते। उन्होंने कन्या भी देख ली।"

"सच, दीदी ?"

"हाँ भाई ! कन्या क्या है, कंचन की पुतली है !"

"सच, दीदी ?"

'बाबा तो कल उसके हाथ की चीजे भी खा आये। केले की पूरी, मूँग की कचौरी, खटमिट्ठी बढी, करैले की कलौजी, आलू की बडी, दही की जलेबी, मखाने की फीर्नी, और न जाने क्या-क्या कह रहे थे, मैंने तो इतने नाम भी नही सुने है। मत पूछो, बाबा तो उसके हाथ की सफाई का पुल बाँध देते हैं।"

"सच, दीदी ?"

"और, जानती हो, बेला ? वह मिडिल-पास भी है, रामायण का अर्थ लगा लेती है !"

"सच, दीदी ?"

"बाबा तो कहते थे, सीने-पिरोने मे भी वह अपना सानी नही रखती। बेल-बूटे तो ऐसा काढ़ती है, मानो कल के बने हो। उसके हाथ की कारीगरी देखोगी, बाबा एक तश्तपोश साथ लेत भी आये है। क्या कहूँ, बेला! मैने तो ऐसी फूलपत्ती की बारीकी नही देखी। "

"सच, दीदी ?"

"अब तो मेरा ससुराल जाना फिर रुक गया। मोहन और उसके बाप नवेद मे यहाँ जरूर आएँगे ही।"

"सच, दीदी ?"

"और क्या ? तुम्हे मोहन को देखने का मौका मिल गया।"

कमला तो मन की तरङ्गो पर थिरक रही थी। यह "सच दीदी—सच दीदी ?" की रटन उसे जरा भी न खली।

"अरे! यह क्या कर रही हो ? चावल से कंकड़ी अलग कर रही हो या दोनो की खिचड़ी ?"

सचमुच बेला ने चुनी हुई कंकडी और चावल को मिला कर एक कर दिया था! उसकी नज़र थाल पर जो पडी, तो सिटपिटा गई। उसने बडी आजिजी से शर्माते हुए कहा—"माफ करो बहन, मै जाने कहाँ भटक चली थी!"

कमला ने देखा कि बेला के चेहरे पर चूना पुत गया है; आँखे डबडबाई-सी नज़र आती हैं।

"बेला, तुझे हो क्या गया है ? रोती तो नही ?"

"क्या कहूँ, दीदी, मेरे भी वे दिन याद आ गये !"—बेला कुछ लजाई-सी सहमी हुई बोली।

बात की सफ़ाई कोई औरत से सीखे ! बेला भी तो नारी है। किस ख़ूबी से आँखो का काजल चुरा ले गई !

"दुर पगली ! बीती बात पर कुहुँककर क्या होगा ? जो इस घड़ी सामने है, उसे देख। तेरे गले मे लोच है, तुझे गा-बजाकर मॉडो गुलज़ार करना पड़ेगा !"

"मुझे ? मैं कब की गानेवाली ? बचपन मे कुछ रो-गा लेती थी, अब तो न रोने आता है, न गाने।"

"रहने भी दो। मुझी से उड़ रही हो ? तुम रामायण गाती हो तो कलेजा निकाल लेती हो !"

"मगर, दीदी ! मैं इस ब्याह मे शामिल नही हो सकती। मुझे आखिर एक दिन यहाँ से जाना ही है, तो फिर क्यों न इसी वक्त टल जाऊँ ?"

"वाह ! इतने दिनो तक जब रह गई, तब ब्याह के मौक़े पर न रहोगी ? यह भी कोई बात है ! अपने मन से न सही, हमारे मन को तो रख लो !"

"नही, दीदी ! मुझे मुआफ़ करो, मैं न रहूँगी !"—बेला की आवाज़ मे एक हल्की दृढ़ता का आभास है।

"क्यों ?"—कमला ने ज़रा खीजकर पूछा।

"तुम समझती नही। मैं किसी मंगल कार मे तो हाथ

बँटाने नहीं पाती। जब इन हाथों से चूड़ी उतर गई, उसी छन इनका पानी भी उतर गया!"

"दुर पगली! तू हाथों से वर को नहीं चूमेगी—बहू को नहीं परछेगी, तो क्या और कामों से भी हाथ खींच रखेगी?"

"मालकिन कभी आँगन में मुझे फटकने भी देंगी; काम करना तो दूर रहे?"

"देख लेना, तुम्हारी कमर में भंडार की कुंजी झूलती रहेगी। माँ को इतनी समझ तो ज़रूर है कि तुम एक दाना भी सरका नहीं सकती। तुम्हें न घर है, न परिवार, तुम कहाँ चुराकर ले जाओगी? जब ख़ुद न लोगी, तो फिर दूसरों को क्यों लेने दोगी? तुम ख़ुद देखती हो, माँ की ज़बान ऐसी तीखी है कि यहाँ दो दिन भी कोई ठहर नहीं पाता। तुम्हारी पीठ पर घट्ट पड़ चुके। और, ब्याह का घर है। यहाँ चोटी का पसीना ऐंड़ी पर लाना होगा। तुम्हारी तरह कोई भाड़े का टट्टू भी खट सकेगा?"

बेला चुप सुनती रही। अब कौन दलील पेश करती? कमला ने देखा कि उसके चेहरे पर बादलों का वितान उसी तरह छाया हुआ है।

कमला नज़दीक चली आई और उसके कंधों पर हाथ रखकर बड़ी नरमी से बोली—"मानती हूँ, बहन! तुम्हें बीते दिन याद आ जाते हैं। पर तुम जो कुछ खो चुकी, वह तो तुम्हें इस लोक में लौटता नहीं! अब फ़िज़ूल कलपकर क्या

करोगी ? मान भी लो, तुम्हे ब्याह मे असमंजस पड़े या तुम्हारे भरे हुए जख्म फिर ताजा हो उठे। पर करोगी क्या ? तुम हसकर चिता पर चढ सकती हो, फिर तुम कलेजे पर पत्थर रखकर इस ब्याह मे नही भिड सकती ?"

"सच कहती हो, बहन ! मेरे लिए फूल-शय्या नही, चिता है। संसार नही, संन्यास है।"

बेला ने इस तरह कहा, मानो अपने मन से कहती हो। उसने चट से थाल को उठा लिया, और सर झुकाए अपनी कोठरी मे चली गई।

वह चटाई पर लेटे गहरे विचारो मे डूब गई। श्रीधर का ब्याह ! क्यो ? मुझे तो चटपट मुँहमाँगी मुराद मिल गई। भगवान ने मुझे मँझधार से उबार लिया। अब मेरी आँखो मे आँसू कैसे ? मेरे सर के ऊपर छाये हुए बादल आप-से-आप ट गये।

उसने भगवान् का ध्यान किया, हाथ जोडा और जुडे हाथो को सर तक ले गई, पर चेहरे पर कृतज्ञता की किरने झलकी नही।

वह फिर सोच मे डूब गई—"तो क्या श्रीधर ने जो कुछ कहा था, वह महज मुखपात था ? उसकी आँखो मे मर्म की व्यथा नही, कामना की शिखा थी ? वह पुनीत प्रेम नही, काम था ? मेरा खयाल सरासर गलत निकला। मैने उसे मनुष्य समझा था, वह पुरुष निकला। जिसे मैने रत्न समझा था, वह

कॉच ठहरा। देवता कौन कहे, वह इन्सान भी नहीं, पशु है! नहीं तो उसे एक नारी ः हृदय के साथ यह निदारुण खेल खेलने की जरूरत क्या थी? पर, मै भूलती हूं। मैं तो नारी नहीं, पतिता हूँ!"

कि हठात् चारो ओर से चीं-चीं की आवाज उसके कानो मे पडी। वह चौक पडी। दो गिलहरियाँ उसके इर्द-गिर्द तडप-तडपकर पूँछ पटक रही है। उनके रोएँ खड़े है। आँखो मे आतङ्क भरा है। वे जोर-भर ची-चा चिल्लाती और थर-थर काँप रही है।

बेला इन दोनो से परिचित थी। उनके आगे वह प्रतिदिन फल और सब्जी के छिलके या रोटी का एकाध छोटा टुकड़ा फेक देती। आगे के दोनो पैरो से छिलके या दाने को थाम कर उनका कुतरना उसे बडा भला लगता। इसीलिए वे जरा ढीठ थी—बेला के नजदीक स्वच्छन्द थिरकती रहती।

सामने आँगन मे एक छोटा-सा केतकी का गाँछ है। उसी पर उनका घोसला है। बेला ने देखा कि केतकी के गाँछ के नीचे एक बडी-सी बिल्ली दबकी बैठी है और हिंसा-भरी आँखो से ऊपर गुरेर रही है। बेला समझ गई कि यह गिलहरी के बच्चो की ताक मे पैतरे कर रही है।

आँगन मे एक कुहराम-सा मचा है। कौए और मैने नीम की डालियो पर काँव-काँव चे-चे करते मँडरा रहे है। नीचे चारो ओर गिलहरियो की फरियाद है।

बेला भाँप गई कि यह चीं-चीं उससे इमदाद की प्रार्थना है। मगर जाने क्यों वह ज्यों की त्यों बैठी रही।

बिचारी गिलहरियाँ लाख गला फाड़ती, पर बेला के कानों पर जूँ तक न रेंगती—"मुझे क्या पड़ी है कि मैं किसी के मुँह का आहार छीन लूँ? मेरे दो-दो बच्चे काल के गाल में चले गये, मैंने चूँ तक न किया। तिल-तिल मर रही हूँ मैं, मुझे तो कोई सहारा देता! मैं ही ज़माने-भर के ज़ुल्म से भिड़ूँ?"

उसने मन-ही-मन इतना कहा और मचलकर उन पर लात चला दी। वे बिचारी अनाथ होकर चिल्लाती रहीं।

स्त्रियों के मिज़ाज की रविश को समझना कुछ खेल नहीं है। यह तत्त्वज्ञान से भी बढ़कर चक्कर में डालनेवाला मसला है। बेला तो कभी की चिड़ही नहीं थी। इस बेवजह ज़िद की जड़ कहाँ है, इसे शायद वह ख़ुद नहीं समझती थी!

उसके ज़ाती मसले से और बिचारी गिलहरियों के सर पर मँड़राती हुई आफत से क्या निस्बत?

जो हो, जब बिल्ली ने भाँप लिया कि बेला की जानिब से कोई जुम्बिश नहीं है, तब वह उचककर डाल पर कूद गई। परिन्दों और गिलहरियों के आर्त्तनाद से आँगन गूँज उठा।

वह 'बाघ की मौसी' खोंते में सटके हुए मासूम बच्चों पर पंजा उठा चुकी थी कि एकाएक बेला ज़ोर से चिल्लाकर लपकी और बिल्ली धम-से कूदकर नौ-दो-ग्यारह हो गई।

गिलहरियाँ दौड़कर गाँछ पर चढ़ गईं। बेला मुस्कुराती

हुई चटाई पर लौट आई। उसने सोचा क्या, और किया क्या!

शायद औरतों के मिज़ाज और कलेजे में आकाश-पाताल का अन्तर है!

तबतक कमला किवाड़ के पास आकर खड़ी हो गई और बोली—"ग़ज़ब हो गया, बेला! श्रीधर ने शादी करने से इनकार कर दिया!"

"क्यों?"—बेला ने उतावली होकर पूछा।

"भगवान् जाने! मैं तो कुछ समझ ही नहीं पाती।"—कमला ने मुँह बनाकर कहा—"उसे अभी और पढ़ना है या पहाड़ तोड़ना है। पढ़कर लाट होगा! बाबा की तो तमाम उमीदों पर पानी फिर गया। उनको ज़बान लौटानी पड़ेगी। वे तो शर्म से पानी-पानी हो गये हैं। वे क्या जानते थे कि जिसे बचपन से पढ़ा-लिखाकर आदमी बनाया, वह पलटकर एक दिन उन्हीं के चेहरे का पानी उतार लेगा! बिरादरी में वे अब अपनी आँख सीधी कर सकते हैं? यही न कहा कि पराया कभी अपना नहीं हो सकता—चाहे उसे लाख कंचन का कौर खिलाओ। तुम्हीं कहो, बेला! अगर आज बाबा निगाह पलट दें, तो श्रीधर की क्या हस्ती रहेगी?"

"हाँ दीदी, महाराज की बात को उठा देना अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना है। उन्हें यह क्या सूझी है?"—बेला ने आँखें मटकाकर कहा।

"बाबा ने उसे कल सुबह तक सोचकर जवाब देने को कहा है। मुझे भी उसे समझा-बुझाकर रास्ते पर लाने को कह गये है। मै तो, बहन, हर पहलू से समझाकर थक गई। वह टस-से-मस नही होता।"

"मालकिन क्यो नही बुलाकर कहती ? उनके सामने उनकी एक न चलेगी !"

"माँ तो गुम बैठी है। उसे तो अपने पेट का बेटा है नही, इसी पर हौसले निकालती। मूँगा को बडे तडके ही बुलाकर गहनो का दर-भाव ठीक कर रही थी कि तबतक यह बखेडा उठ खडा हुआ। जानती हो, बेला, वह बहू की मुँह-दिखाई मे अपने गले की सतलरी देती। श्रीधर की अक्ल मे तो भंग पड़ी है। नही तो कंचन म उसकी बहू लद जाती। माँ तो अलग बाबा पर लाल-पीली हो रही है कि 'तुम्ही ने दूध पिलाकर साँप पाला और अब ज़हर का दाँत तोडो—मै उसे बुलाकर झाड-फूँक नही करती।"

बेला के लब पर—"मै उन्हे मना लूँगी, दीदी !"—आया ही था कि विवेक ने अन्तराय होकर ज़बान थाम ली। वह घूँट पीकर रह गई।

"देखूँ, क्या गुल खिलता है। इस घडी मोहन मिश्र भूत उतारने आये है !"—कहती हुई कमला लौट गई।

बेला सोच मे डूब गई—"तो क्या श्रीधर की शादी रुक गई ? मेरे सर पर तो बला नही आई ? भगवन् ! तुमने मुझे

मँझधार से उबारकर फिर अथाह में डाल दिया! शायद मेरी कृतज्ञता की वाणी सच्चे दिल से जयध्वनि बनकर नहीं निकली थी, उसीका यह दंड है। पर, यह दंड मेरे हृदय पर वज्र का आघात बनकर क्यों नहीं टूटता? यह तो पुष्प-वृष्टि बनकर कलेजे पर उतर गया। मेरे अन्तर के कोने में वसन्त की लपट चलने लगी। क्यों—किस लिए? क्या अब वह मेरा होकर रहेगा? उफ! यह क्या सोच रही हूँ मैं! नाथ! क्या मुझे भी दुनिया की हवा लग गई? क्या सचमुच मेरे मन की जड में पाप का कीट है? उसे चाहती हूँ मैं? भगवन्! क्या श्रीधर मुझे तुमसे भी दूर कर देगा? या तुम्हीं ने उसे मेरी कसौटी बनाकर भेजा है? वह तो कभी मुझे मिलनेवाला नहीं। तुम्हारी भी शरण छूटी! तुम तो अब इस कलुष की कोठरी में झाँक भी नहीं सकते! हाय! मेरा शेष संबल भी लुट गया। कैसी अभागिनी हूँ! लोक भी छूटा, परलोक भी टूटा। न सुहाग मिला, न विराग। न पति-प्रेम का रस मिला, न भक्ति का पीयूष। मैं न सीता हो सकी, न सती, न मीरा हो सकी, न शबरी। मैं पतित हूँ, और तुम पतित-पावन। तुम्हीं कहो, इस पतिता की कोई गति भी है?"

"यह हो नहीं सकता। श्रीधर को विवाह करना ही पड़ेगा। नहीं तो, वह जीतता है और मैं हारती हूँ। मेरे कारण वह सर से ताज उतारकर कोपीन पहने, उसके कंधों पर दुशाले के बदले भीख की झोली चढ़े, यह होने का नहीं।

मेरे साथ तो उसकी भाँवरी पड़ेगी नहीं। और, मैं उसके उज्ज्वल भविष्य की क्षति के बदले उसे क्या दे सकूँगी? उसके विफल जीवन की शून्यता को क्या देकर भरूँगी? मुझे क्या है—एक जीवन है, जिसके तमाम पुर्ज़े हिल गये है, एक जिगर है, जिसके तमाम रेशे छिल गये हैं, वह यौवन है, जिसका पानी उतर चुका है, वह दामन है, जिसकी सीवन उधर चुकी है। और है ही क्या? पुरुष भोग करता है, स्त्री त्याग करती है। यह सनातन प्रथा है, उलट नहीं सकती। वह ख़ुश रहे; मैं ख़ुश हूँ। वह फूले-फले, मैं सुनती रहूँ। मेरा दुःख उसका दुःख न हो। उसका सुख मेरा सुख हो। बस, मुझे फौरन् यहाँ से टल जाना ज़रूरी है, नहीं तो यह मोह का बन्धन और भी निविड़ होता जायगा। और, कहीं यह बात फट पड़ी, तो—मेरा जो होगा, वह तो होगा ही—उस बिचारे पर तो सौ-सौ घड़े पानी पड़ जायगा"। उसे शादी करनी ही पड़ेगी। मेरी उमीद पर वह क्यों रहे और अपने सर पर गुरुजनों का अभिशाप बटोरे, यह मैं जीते-जी कभी देख नहीं सकती। मैं विष खाकर जान दे दूँगी या कुएँ में डूब मरूँगी, पर उसके जीवन के पथ पर काँटा न बनूँगी।"

बेला फूल सूँघकर रह गई। उसे न भूख थी, न कौर उठता। वह हथेली पर गाल रखे खयाली पुलाव पकाती रही। वह कैसे अपने हाथों आसमान के तारे तोड़कर श्रीधर के यश के मुकुट में गूँथ सकेगी, यही असंभव कल्पना तरह-तरह के

रूप धरकर उसके अन्तर-मुकुर मे झलकती रही। यही मानसिक उत्तेजना उसकी क्षुधा को खा गई—प्यास को पी गई। श्रीधर के लिए वह समुद्र मे डूबकर कौस्तुभ निकालती, अमृत का घड़ा चुराती, हरिचन्दन की डालियों को झुकाकर अमरफल तोड़ती तथा चन्द्र की किरनों को छीनकर उसकी चादर मे पिरो देती और स्वयं उसी समुद्र में डूबकर लापता हो जाती।

इसी मीन-मेष मे शाम हो गई। आकाश की लालिमा पर कालिमा छाने लगी। पर बेला तसवीर बनी बैठी रही।

षोडश परिच्छेद

उधर मिश्रजी की प्यासी आँखें बेला की झलक की तलाश में आँगन का कोना-कोना ढूँढ़ रही हैं। आँखों को सेकना तो कभी उन्हें नामंजूर नहीं; पर हाँ, एक हद तक। ऐसा नहीं कि उनकी आँखों में आँख जा पड़े।

वे देव-पूत अहदनामे की शर्त्त को रात-दिन उँगलियों पर माला की तरह जपते, जभी तो वे अपनी चित्तवृत्ति को सैकड़ों उद्योग-धन्धों की परिधि में आबद्ध रखने की कोशिश करते कि उसे दायरे के बाहर दौड़ने की फ़ुरसत ही न रहे। कहीं कथा-पुराण कहना, कहीं यज्ञ-याग का अनुष्ठान, कहीं वेद-वेदान्त की चर्चा, ग़रज़ यह है कि दिमाग़ को मशग़ूल रखने के लिए और कर्त्तव्य-पथ पर उसे अटल रखने के लिए एक-न-एक आयोजन अवश्य रहता। साथ-साथ घर पर आकर एकाध घंटे बेला के दरस-परस से दिमाग़ को ताज़ा कर लेना भी उनके स्वास्थ्य के लिए ज़रूरी था।

बेला क्या थी, उनके दो घड़ी के दिलबहलाव का क़ब थी; और उसी क़ब पर अपना आधिपत्य मज़बूत करने के लिए वे समझते थे कि श्रीधर की शादी करके उसके लिए एक नई बहू बुला देना ज़रूरी है; नहीं तो, वह भी क़ब की मेम्बरी के लिए उम्मीदवार हो सकता है! फिर बाप-बेटे मे आपस की तनातनी की आशङ्का उठ सकती है।

उन्होंने जब घर पर आकर यह सुना कि कुएँ मे डूबती बेला को श्रीधर ने जान पर खेलकर बाहर निकाल लिया, तो उनका माथा ठनका, और फिर जब घंटे-भर के बाद श्रीधर ने—बिना किसी सङ्गत कारण के—विवाह से इनकार कर दिया, तब तो उनकी पिलही चमक उठी। उनके दिल मे चोर बैठा, और श्रीधर का दिल ढूँढ़ने के लिए छटपटी पड़ी। पर उसके व्यवहार-बात से, या बेला के शील-स्वभाव से, दाल मे कुछ काला नज़र न आया।

उधर मिश्रानीजी कोप-भवन मे पलंग पर चित लेटी हुई हैं। गनेस-बहू पैर टीप रही है। कमला चटाई पर बैठी मुन्नी की पीठ सहला रही है।

एक ओर मूँगा मुँह लटकाये खड़ा है। उसके चेहरे की रोशनी बुझी हुई है; पर 'आसमानी-भवानी' की कृपा से आँखो मे सुरूर भी भरपूर है। वह श्रीधर पर जी-जान से गरम है। बात भी है। उसके हाथो मे आई हुई सोने की चिड़िया उड़ा चाहती है। कहाँ सैकड़ो भर सोने के गहने पिटते और

उसका घर भर जाता! श्रीधर ने शादी के इनकार से उस बिचारे की सञ्चित उमीदों की जड़ काट डाली।

मिश्रानी अलग उबल रही हैं। वे दिल के फफोले फोड़तीं तो किस पर फोड़तीं? व्याह के बहाने वे नाती को देख पाती, दामाद को बुलाकर जोड़े पिन्हाती और मसरफी गहने बहू-बेटी को भेंट कर अपने लिए नये पैटर्न के पिटवाती। मुन्नी के पिता के नाम की अधूरी चिट्ठी उनके सिरहाने पड़ी है। नेता गुनी श्रीधर का मत फेरने का बीड़ा उठाकर अपने तमाम इष्ट भूतों को गाँजे के दम पर उभार रहा है।

मिश्रानीजी करवट बदलकर बोलीं—"क्यों री गनेसी बहू! तू क्या समझती है? श्रीधर तो हमेशा हमारे सामने एक टाँग पर खड़ा रहता था। मैं अगर उसे सात समुन्दर-पार फाँदकर परबत की जड़ी उखाड़ लाने का हुकुम देती, तब भी वह कभी 'ना' नहीं कहता। आज उस पर क्या सवार है जो उसके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती? न हमारी बात सुनता है, न अपने चचा की। उसे किसी की दीठ तो नहीं लगी?"

"मालकिन जी!"—गनेस बहू ने आँखें मटकाकर कानों में झुककर कहा—"दाई से पेट छिपता है? यह उसी डाइन का टोना है; नहीं तो श्रीधर बच्चू कभी महाराज की बात टाल सकते? वे तो जब कुएँ में कूदे, तभी मैं समझ गई कि दाल में कुछ काला है!"

कमला के कान खड़े थे। वह जरा दाँत किचकिचाकर

बोली—"क्यों कान भरती हो गनेसी बहू ? ऐसी बात होती तो कानों-कान खबर न होती ? तुम भी अगर कुएँ में जा पड़ोगी, तो मुमकिन नहीं कि श्रीधर कभी कान दबाकर देखता रहे। उस दिन रामू की ननिनी मन्दिरवाले तालाब में डूब ही जाती—अगर श्रीधर उसे निकाल न लाता। देखती हूँ, तेरी खोपड़ी खुजला रही है।"

मिश्रानीजी गनेस बहू का पक्ष लेकर बोलीं—"कमली, तुझे अभी दुनिया की हवा लगी नहीं। तू बेला को कहाँ तक समझेगी ? वह कुछ कच्ची गोटी नहीं खेलती। उसके पेट में पाँव है। एक तो तिनलौंकी, दूसरे नीम चढ़ी ! एक तो बेवा, दूसरे—घर की निकाली !"

"जो हो, तुम्हारे लिए तो महज पेट पर लहू-पसीना एक करती है। मुझसे तो कोई काम बन पड़ता नहीं। अकेले वही न आठों पहर तेली का बैल बनी रहती है ? अगर घर में शादी पड़ी, तो तुम्हें आटे-दाल का भाव मालूम होगा। गनेस-बहू तो खाकर डकार तक न लेगी। बेला बिचारी लल्लो-चप्पो नहीं जानती; इसीलिए न किरकिरी हो रही है !"

गनेस बहू भीतर-ही-भीतर खिझी थी, यद्यपि ऊपर से हँसने की कोशिश करती। आज बेला न होती, तो कमला उस पर ऐसा लांछन न लगाती।

वह जरा भिन्ना कर बोली—"मेरी बात तो तीती लगती

है, दीदी, मगर एक दिन जब लुटिया डूबेगी, तब आप समझेंगी !"

स्त्री जब जी से चिढ जाती है, तब वह चोट खाई हुई शेरनी की तरह शिकार को पंजो से नोच-नोचकर झँझोर-झँझोरकर खून चूसती है !

"कुछ भी कहो, कमली !"—मिश्रानी ने हाथ मटकाकर कहा—"मैं तो उसकी झावली मे नही आ सकती। आखिर यही आकर उसे पेटी पड़ी। नही तो जब आई थी, पेट पीठ से सटा था !"

कमला को ऐसी बेरुखी बातें बुरी लगी। वह उठकर बेला के पास चली आई। बिना उगले भला कमला के पेट का पानी पचता ? उसने बेला के कानों मे गनेस बहू की बानी सुना दी।

सुनकर बेला सन्न हो गई। उसके पाँव-तले की धरती निकल गई। जरा चुप होकर बोली—"मैं गरीब न होती, बहन ! तो गनेस बहू मुझपर छींटे मारती ? चूडी न फूटती, तो आज यों "

बेला आकर चटाई पर बैठ गई, कसर थामकर। गाल पर हथेली पडी है। पीठ पर लटें छिटकी है। गंगा और यमुना चरागाह से लौट आकर सामने खडी हो गईं। शायद बेला का भाव देखकर उन्हे छेडने की हिम्मत नही थी। वे बिचारी चुप देखती रही। फिर दोनो ने नाँद को टटोला। जो ही मिला, उसी पर सब्र रखा।

अँधेरा हो चला है। सामने छप्पर पर पसरी हुई लौकी की लता हवा में थर-थर काँप रही है। उसकी पत्तियों मे हवा की हर्राहट दुःख बाँधती। बेला चुप सुनती रही।

गनेस बहू मिश्रानी का दरबार बरख़ास्त होने पर जब आँगन में आई, तब धीरे से हाथ उठाकर उसने एक लौकी तोड़ ली, और आँचल मे छिपाकर अँधेरे मे चम्पत हो गई। बेला ने देखा और आँखे फेर लीं।

रात हो आई। सितारे निकल आये। चाँद उठ आया। मिश्रानी के चौके मे चूल्हा जला। छनमन कड़ाही की काकली चली। घी की कचौरी की खुशबू आँगन मे भर गई। मिश्रानी ने कचौरियाँ तोडीं। मिश्रजी कुछ अस्वस्थ थे। उनके लिए कमला साग बनाकर ऊपर ले गई।

थोडी देर आँगन मे हलचल रही। फिर सब सन्नाटा।

आधी रात। झनझन सुनसान। बेला उठी। एक लम्बी साँस ली, और आँगन मे आ गई। केश खुले है, आँचल कंधे पर है।

आकाश पर ज्योत्स्ना की लहर। वह दूध की बौछार आँगन की दीवारो पर चाँदनी-सी तनी है। आकाश मे सुदूर उत्तरी कोन पर कुछ बादल लटके नज़र आते हैं। रह-रहकर उनकी छाती को चीरती हुई एक अनल-रेखा चमक उठती है। दूर से एक गंभीर गर्जन कानों पर आ टकराता। कोनी हवा नीम की पत्तियो मे—लौकी की टहनियो मे—बौरी-सी फिरती है।

चारो ओर किवाड बन्द हैं। कही कोई आवाज़ नही।

चंचल समीर उसके आँचल को छेडता रहा। चाँद की किरणें उसके चेहरे पर बरसती रही। वह दरवाज़े पर आई, किल्ली उठाई, और बाहर निकल गई।

बाहरी बैठक को पार कर गई। दूसरे किते में क़दम रखा।

श्रीधर के कमरे के किवाड खुले हैं। मिट्टी के दीपाधार पर दीपक की क्षीण शिखा डोल-डोलकर अपने हृदय की बेचैनी रो रही है।

सहसा हारमोनियम छेडने की आवाज़ कानों मे पड़ी; साथ-साथ एक वीणा-विनिन्दिनी काकली भी। बेला ताड गई। वही उठान, वही तान, वही मूर्च्छना, वही लहरा और गले का वही परिचित लोच। वही लावण्यलीलामयी लय की लहरी। चाँदनी की धारा में ध्वनि की धारा दूध-पानी की तरह मिल चली। ज़र्रे-ज़र्रे मे जान पड़ गई।

बेला किवाड़ के पास खड़ी हो गई। कान देकर पीने लगी। श्रीधर गा रहा है—

चितवन में प्राण भरके मैं जोहूँगा प्रिया को,
नन्दन-चमन की झूमती लावण्य लता को।
होठों पर आ गई किसी विप्लव की वेदना,
चुम्बन में लुटा दूँ अभी यौवन की सुधा को।
रग-रग मे दौड़ती हैं क्यों बेताब बिजलियाँ,
प्राणों में चूमता है क्यों आनन्द व्यथा को!

क्यों भर रही है दिलमें मेरे दर्द से मिठास,
घोला है क्या किसी ने हलाहल में सुधा को?
आँखें बिछा चुका हूँ मैं मन्दिर में हृदय के
लड़ियों में गूँथता हूँ मैं आँसू की कण्ठ को,
आओ, वरण करो मेरे जीवन को, मरण को,
आनन्द को, विषाद को, यौवन को, जरा को।

गाना रुका, पर उसकी प्रतिध्वनि बेला के हृदय-पञ्जर में, अन्तस्तल मे, प्राण में, मन मे, चेतना मे गूँज उठी। वह अवश होकर श्रीधर की गोद में गेंद बन जाती, यदि कठोर कर्त्तव्य उसके तमाम अस्तित्व को सतर्क न रखता। वह सिर से पैर तक थर्रा उठी और काँपती-झिपती श्रीधर के सामने आ पडी।

"आ गई, महाराज! मगर" कहते-कहते बेला रुक गई। गला रुँध गया।

"आओ बेला, आओ, मेरे रोम-रोम मे रोमाञ्च बनकर फैल जाओ। मेरे शरीर की पोर-पोर मे बिजली बनकर खेल जाओ। मेरे अन्तर मे कामना बनकर उठो—मेरे प्राणो मे चेतना बनकर रहो। आओ, छन-भर इन लोचन-पल्लवो के भीतर ठुमको—दम-भर इस अधीर वक्षःस्थल पर नाच लो। आओ, खड़ी क्यों हो? तुम स्फटिक की मूर्त्ति नही, प्राणो से भरी परी हो। सच कहो, यह स्वप्न तो नही है?"

बेला कुछ देर तक चुप रही। फिर सर पर आँचल खीच

सामने आई। वह होठो की ओट मे दिल को छिपा भी लेती, पर चितवन के पुट मे तो छिपाना आसान नही। वह आँख चुराती हुई बोली—"हाँ, यह स्वप्न है और स्वप्न ही मे संभव है। मैं बेला हूँ, विधवा हूँ, पतित हूँ। मैं आपकी राह मे "

" " न आओगी ?"—श्रीधर ने छाती पर हाथ रख कर पूछा।

"नही ! विदा लेने आई हूँ मैं !"

"क्यो ? कहाँ जा रही हो ?"

"कही भी !"

"तो फिर चलो, मैं भी साथ दूँगा।"

"नही आपको साथ लेना रहता, तो मै बेला न होकर कुछ और होती। आपका जो साथ देगी, वह कभी की जन्म ले चुकी है—बस, कुछ दिनो मे आपकी संगिनी होगी !"

"परन्तु, बेला, इस जीवन मे तो एक ही संगिनी बन सकती है—दूसरी नही।"

"महाराज, तो फिर यह क्यो भूले जा रहे हैं कि स्त्री के जीवन मे भी तो एक ही पुरुष होता है, दो नहीं ? पुरुष के लिए तो क़ैद नही—एक हो, दो हो या दस हो। हाँ, आपके जीवन मे एक ही स्त्री हो ज़रूर, लेकिन वह स्त्री एक कुलटा नही, एक कुलीन कुमारी होगी।"

विवेक ने बेला के कलेजे को मुट्ठी में कसकर थाम लिया।

इसलिए उसके हृदय की वाणी रुद्ध और बुद्धि की आवाज़ खुल पडी।

श्रीधर हारमानियम पर हाथ टेककर बैठ गया।

"बेला, मैं तो विवाह करता नहीं। चचा को साफ जवाब दे दिया है। इस संसार मे ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो मुझे मजबूर कर सके!"

"महाराज, वह शक्ति मैं हूँ!"

बेला की आवाज़ मे तेज की दृढ़ता है—आँखो मे तेज की सुषमा।

"तुम?"—श्रीधर ने आँखें फाड़कर पूछा।

"हाँ, मै! मै इसी पल विष खाकर जान दे दूँगी!"—आँचल के खूँट मे बँधी हुई विष की डली दिखाती हुई बोली—"मेरे जीवन पर जो कुछ लद चुका, वह लद चुका। अब आप एक और विराट् कलङ्क का पहाड इन कंधो पर मत डालिये। मैं पिस जाऊँगी। मुझे कहीं भी शरण न मिलेगी। आप तो दुपट्टा तानकर सो रहे है, इधर मेरी जो गत हो रही है, मैं ही जानती हूँ। आपका क्या मालूम कि मै किस तरह लहू के आँसू पीकर दिन काटती हूँ! घर मे आठों पहर यह काना-फूसी चल रही है कि आपकी इस ज़िद की जड मैं हूँ। कमला दीदी भी अब मीठी चुटकियाँ लेने लगी।"

श्रीधर का चेहरा ज़र्द हो गया। वह आकाश-चुम्बी उच्छ्वास पाताल मे धँस गया। न वह आवेश रहा, न वह

आवेग। जवानी के बलबले गर्म तवे पर दो बूँद पानी की तरह छन्न हो गये। वह फिर सँभलकर बोला—"किसी फ़िरिश्ते तक को तो ख़बर नहीं। फिर कमला कैसे - "

"क्यों भूल रहे हैं, उस रोज़ गनेस वहीं मौजूद था।"—बेला ने बात काटकर कहा।

"कब ?"

"जब आप कुएँ से उबारकर मुझे यहाँ उठा लाये। गनेस चौखट पर बैठा ऊँघ रहा था। देखने में वह जो गावदी हो, लेकिन भीतर का घाघ है। और, उसकी बहू तो पानी में आग लगा सकती है। आपने शादी से इनकार किया और घर-घर मेरे कलङ्क की डुगडुगी पिट गई।"

"वह हरामज़ादी तो शैतान की ख़ाला है। वह दुलत्ती झाड़कर क्या करेगी ?"-- श्रीधर ने तिनककर कहा।

"क्या करेगी ? आपका पानी उतार लेगी। सत्य के सामने आपकी तलवार म्यान से बाहर न आ सकेगी। आप शादी में 'हाँ' कर दीजिये; फिर देखिये -गनेस बहू ऐसा चारों खाने चित्त गिरेगी कि बस ! मेरे मुँह में भी चन्दन लग जाता।"

आकाश बादल से भर गया। जो मेघ का टुकड़ा उत्तरी कोने पर उठा था, वह धीरे-धीरे आलमगीर हो गया। विश्व पर अँधेरा भर चला। कभी-कभी बिजली चमककर उस तिमिर के तूमार को चीर देती। हवा तेज़ हो गई।

बेला आँचल को समेटकर ठमकी खड़ी रही।

श्रीधर सोच में डूब गया। उसके चेहरे पर भी मेघ की सघन छाया है। वह भर्राई हुई आवाज़ मे बोला—"बेला, तुम्हारी आँखो की अनी मेरे दिल में चुभी है। इसे मैं निकालता हूँ, तो सच मानो, कलेजा निकल आता है।"

"तो फिर आप कहें, तो मैं इन आँखों को निकाल डालूँ। न ये रहेंगी, न किसी मे चुभेंगी।"—बेला शान्त-स्थिर स्वर मे बोली।

"क्या बकती हो बेला? इन आँखो का क्या क़सूर है? मेरा दिल ही ऐसा मुलायम है, मेरा मन ही ऐसा मायल है।"

"मै यह मान नहीं सकती। आप तलवार का वार उठा सकते हैं और किसी आँखो की फूलझरी पर मैदान हारे बैठे है!"—बेला ने जरा हँसकर कहा।

"बेला, मैं भी पहले यही समझता रहा। मगर, जब आँखो से मैदान लेना पड़ा, तभी उनका जाहर खुला। दीदार की आँच के सामने तलवार की आँच झूठ है। तुम्हारी आँखो मे भी यदि आँख पड़ता, तो तुम आँखो को पोर का मानती। तुम्हार दिल मे भी अगर दिल रहता, तो तुम इस दर्द-दिल को जानती। तुम तो तड़पाती हो, तड़पती नहीं। यह दिल की लगी दिल्लगी नहीं। रस से भागी है ज़रूर, मगर विष की पगी है—पगी। बेला, तुम भी कभी किसी पर मेरी तरह मरती, तो तुम इस मरने के आनन्द की—इस मरने

की वेदना की—थाह पाती। तुम्हें तो लौ लगी नहीं। तुम इस लौ को खाक समझोगी ?"

बेला ने एक लम्बी साँस ली, दिल को थामा और आँचल को सर पर खींच लिया। भला, वह क्या जवाब देती ?

बरसाती नदी की तीव्र धारा समुद्र के गाम्भीर्य पर चुटकियाँ लेती है। अगर आकाश पर पूर्णिमा का चाँद रहता, तो समुद्र उभरकर अपने हृदय के आवेग को प्रगट कर देता। अगर अम्बर पर दिनकर अस्त न होता, तो बिजली की बत्ती कभी उस तजल्ली को बिल्ली उड़ा सकती ? गली का कुत्ता शेर पर शेर होता है !

श्रीधर कुछ देर तक चुप रहा। उसे ऐसा महसूस होने लगा, मानो उसका दिल बैठा जा रहा हो। हथेलियों के बल सर लटकाए, बड़े गम्भीर शब्दों में, वह बोला—"और मेरा प्रेम ? उसे तो मैं तुम्हें दे चुका हूँ ?"

"वह परजन्म के लिए थाती रहेगा। इस शरीर में रहकर उसपर मेरा अधिकार नहीं।"—बेला ने धीमी जबान से जवाब दिया।

"जो हो, मैं तो इसे तुम्हें दे चुका हूँ। अब वापस नहीं ले सकता।"

"आप बेफिक्र रहें। मैं इसी को नई दुलहिन को देकर वधूवरण करूँगी। पृथ्वी पर इसे भोगने के लिए वही आई है, मैं नहीं।"

"तुम्हे देने का हक़ क्या है ?"

"मगर मुझे लेने का हक़ क्या है ? मैं तो इसे ले नही सकती, न आप इसे दे सकते है ।"

"यह चीज़ मेरी है, मै जिसे चाहूँ "

"आपकी नहीं"—बेला ने बात काटकर कहा—"सुधा की—सुधा की ।"

"सुधा को मै क्या जानता हूँ ? वह मेरी कौन होती है ? उसे तो "

"आप दे या न दे । हमारे यहाँ देने-लेने का सवाल ही नही उठता । उसपर उसी का जन्मगत अधिकार है । आपके चचा ने मिश्रानी को जान-बूझकर अपना हृदय दिया हो या न दिया हो, लेकिन न्यायत उसपर क़ब्ज़ा किसी दूसरे का हो नहीं सकता । मै फिर भी कहती हूँ कि कल सुबह तक अगर आपने शादी की ज़बान नही दी, तो बेला का ख़ून आपके सर पर होगा । मै इस शर्म को नहीं उठा सकती । मैं जान दे दूँगी ।"

"बेला, मैं विवाह-वेदी की तिकठी पर चढ़ने को तैयार हूँ । मगर यह मशहूर बात है कि फाँसी के मुजरिम की भी अन्तिम इच्छा सुन ली जाती है । मेरी भी विनती सुनती जाओ । मेरे दिल को तस्कीन तभी होती, जब मै तुम्हारी ज़बान से सुन लेता कि तुम्हारा प्रेम मुझपर निरन्तर है, और निरन्तर····"

"महाराज, पार्वती का प्रेम तो ओस की बूँद है । आप

यह किस फेर मे पडे है ? मैं तो प्रेम के नेम को जानती तक नही ।"

वार खाली गया । बेला पैंतरे पर सरक गई ।

"जो हो, पतिता ही सही । मगर, तुम्हें मानना होगा कि जो कुछ तुमने कहा है, वह कर्त्तव्य की वेदना थी—विवेक की प्रेरणा ; कुछ हृदय की कामना नही । सच कहो, तुम्हारे हृदय मे मेरी जगह है या नही ?"

"हृदय ? महाराज, हृदय तो वैधव्य के हुताशन मे होम हो चुका है । आज हृदय जलकर खाक न हो गया होता, तो मैं इसे निकालकर दिखा देती । मैं दिलवाली रहती, तो उमड़कर आपके चरणों पर जा पड़ती । मगर, मै क्या हूँ, मुझे खुद पता नही । हाँ, इतना निश्चित है कि मैं जहाँ रहूगी, आपके सुख मे सुख पाऊँगी—आपके सुयश की चकोरी रहूँगी ।"

"तो क्या सचमुच तुम न मिलोगी ? "

"इस जीवन मे नही । मुझे भूल जाइये । समझिये—एक स्वप्न था, कट गया ।"

बेला पलट पड़ी । श्रीधर खड़ा देखता रहा ।

उसी पल प्रमत्त आँधी-पानी हुङ्कारता हुआ आ धमका । पानी की डबल बूँदे । आँधी की प्रबल झोंक । अन्धकार पर हाहाकार । मेघों की भीषण चीत्कार ।

वह दो कदम भी आगे न बढ़ी होगी कि एक भयङ्कर कड़कड़ाहट से कौधती हुई बिजली गिरी । पृथ्वी से आकाश

तक वज्राग्नि की लपलपाती हुई लोल जिह्वा चमक उठी।

श्रीधर ने आँखे मूँदकर किवाड थाम लिया। फिर इसी बिजली तूफान मे बेला को जाते देख वह ज्योंही कमरे से बाहर निकला कि बेला ने धक्का देकर उसे कमरे मे ठेल दिया और किवाड़ लगाकर जंजीर चढ़ा दी। फिर चिल्ला उठी—"नहीं-नहीं; बाहर मत आइये। आसमान फटकर गिरा चाहता है, बिजली गिरी !"

"तुम इस तूफान मे जान दोगी ? कहाँ जाती हो ? दम लो। बिजली की कड़क··· "—श्रीधर ने भीतर ही से गला फाड़कर पुकारा।

"मुझपर, और बिजली ?—मै ऐसी खुशकिस्मत नहीं हूँ !"—कहती हुई बेला आगे बढ़ गई। वह न सहमी, न सकुची। वह युगान्त टङ्कार उसके कानो के बारीक परदे पर रेंगकर रह गया। वह अशनि-सम्पात की प्रदीप्त ज्वाला उसे सितारे टूटने की चमक-सी नजर आई। उसे न पानी से भीगने को खबर थी, न बिजली के कौधने की।

शायद जो तुमुल तांडव उसके अन्तस्तल मे उठ रहा था, वह अगर निकल पाता, तो प्रकृति को यह प्रलय-विभीषिका पाताल मे चली जाती। उसपर जो बीतती थी, उसे वही जानती थी, दूसरा उसे क्या जानता ? यह वह आग है, जिसमे धुएँ की ध्वजा नही। यह वह हाहाकार है, जिसमे चीत्कार का पता नही !

सप्तदश परिच्छेद

शहनाई बजी। नौबत झडी। मिश्रानी की नाक की नथिया थिरकी। कमला के हाथो की चूड़ियाँ खनकी। फुलझरियाँ छूटी। फुलवारियाँ लुटी। शादी हो गई। छुनमुन बहू की नूपुर-ध्वनि से आँगन का कोना-कोना मुखरित हो उठा।

बेला ने गाया-बजाया; गुलगुले बाँटे। उसके अंगो मे उछ्वास की लहरी थी। उसके उछाह की किरने आँगन मे बिखरी थी।

वह अलग रहकर भी सबसे ज्यादा शामिल रही। उसके आचल मे बंधी भंडार-घर की कुंजियों की झनकार गनेस बहू की छाती की पंजरियों मे टीस पैदा करती। बिचारी की नई लहरिया चुनरी बेकार हो गई। वह लहू पीकर हाथ मलती रही, आखिर उसके दिन भी पलटेंगे। शादी के बाद जब कमला ससुराल चली जायगी, तब वह एक-एक घूँट के बदले

दस-दस घूँट चूस लेगी। फिर बेला की एक दाल न गलेगी। नई बहू तो नई बहू है। और, मिश्रानी को हाथ में कर लेना तो बाएँ हाथ का खेल है। कमला न रहती, तो यह निगोड़ी चक्की पीसनी। मिश्रानी तो इसे फूटी आँखों न देख पाती। शादी में यह तरस्की चार दिन की चाँदनी है।

गनेस बहू का समझना कुछ गलत न था। नेता के हाथ में मिश्रानी की चोटी थी और उसकी आँख पर बेला चढ़ चुकी थी। फिर, पत्ते की आड़ में वह कबतक छिपती रहेगी? अगर श्रीधर के विवाह का हंगामा न उठता, और मिश्रानी की चित्त-वृत्ति दूसरी ओर खिंच न जाती, तो कभी मुमकिन न था कि अबतक वह बाल-बाल बची रहती।

फिर, वह भी अपनी परिस्थिति को अच्छी तरह समझती थी। उसका रोआँ-रोआँ सतर्क था। वह तय कर चुकी थी कि शादी के बाद जब कमला ससुराल चली जाती है, तब व० भी किसी बहाने या चुपके-से अपना रास्ता देखेगी। वह रात-दिन इसी उधेड़-बुन में खौलती रहती। नेता की गन्दी गोद में बैठने से कहीं दूर जा सड़क के किनारे सिरकी तानकर बैठना उसे कहीं प्रिय था। यहाँ श्रीधर की आग में घी होना और खुद भी जलकर कबाब होना कबतक निभेगा? मिश्रानी से करुणा का भरोसा मरु में मन्दाकिनी की तलाश है। गुरु महाराज तो घरनी के आगे सिटपिटाकर भीगी बिल्ली बन जाते हैं। गनेस बहू जिस ताक में बैठी छुरी पर सान दे रही है,

वह खेल कभी होने का नहीं। वह बन्दूक छतिया कर ही क्या कर लेगी, जब शिकार घेरे मे आने का नहीं? बला से वह वेश्या हो जायगी। इस आठो पहर काँटो पर रेंगने से तो जान बचेगी। जब लाचारी है, तब वह शरीर बेचकर शरीर की रक्षा करेगी; क्योंकि यही शरीर तो आखिर परलोक का सेतु है? राम के चरणों मे आश्रय ढूँढने के लिए उसे शरीर को दाँत से उठाकर सञ्चित रखना जरूरी है; और अगर बिना नारीत्व का होम किये उसकी रक्षा मुमकिन नहीं, तो वह खुशी से इस त्याग को भी स्वीकार करेगी। अगर सर्वस्व होम देने पर भी यह शरीर आगे चलकर साकेत का सेतु हो सकता, तो आज इसका पानी उतरा या रहा, दोनों बराबर है।

आखिर जल-तरङ्ग पर जब नाव डूबने लगती है, तब उसमे भरी हुई सोने और मूँगे की पेटियों को भी पानी मे फेंक देना पड़ता है, ताकि वह हल्की होकर तैरती रहे।

वह शरीर का सत फेंककर दुनिया की आँखो मे हल्की तो जरूर होगी, पर जान तो बचेगी! इस चोले को कायम रखने का दूसरा तो कोई जरिया नजर नहीं आता। गुरु महाराज की वाणी है कि वेश्या करुणा का पात्र जो हो, घृणा का पात्र कदापि नहीं। फिर हर्ज ही क्या है?

मिश्रजी की बात बेला के दिल मे घर कर गई थी। जब-जब वह अथाह मे डूबती, राम का नाम लेकर तिनके का सहारा पाती। वह समझती थी कि संसार मे सबसे पहला धर्म

शरीर का पालन है। रोटी-दाल के लिए चक्की पीसना पड़े या रूप का सौदा करना पड़े—दोनों एक-सा है। उस रोजगार में जैसी उसकी बुद्धि होगी, वैसी ही उसकी गति होगी।

वेश्या बुरी नहीं, कुलटा बुरी है। रंडा बुरी नहीं, पुंश्चली बुरी है। जब स्त्री की दसों दिशाएँ सूनी हो जाती हैं, तब उसके पेट की ज्वाला उस सुनसान अंधेरे में रसातल का रास्ता दिखाती है। वही रसातल बाजार की गली के कोठे का दुतल्ला है!

मगर, दूसरे ही पल बेला का कलेजा काँप उठता और नाबदान में दामन तर करने के बदले कुएँ में डूबकर जान दे देना वह बेहतर समझती। वह सोचती कि जीकर क्या होगा, जब वह शरीफ होकर जी न सकी? यह तिल-तिल मरने से एक ही बार मर जाना कहीं बढ़कर है। वह इसी हैस-बैस में डूबती-उतराती और मन-ही-मन—"होइहैं सोइ जो राम रचि राखा"—कह-कहकर सब्र कर जाती।

जब कमला ससुराल जाने लगी, तब बेला बिलकुल अनाथ होकर विकल हो गई। मुन्नी को गोद से उतारते उसका कलेजा निकल आया।

"तुम तो चली, दीदी अब मेरी कौन गति होगी?"—कहकर वह बिलख पड़ी। कमला ने उसे बाबा की बाँह को छाँह का भरोसा देकर शान्त करना चाहा। पर, उसका जर्रा-जर्रा जानता था कि वह भुजा मिश्रानी की लाल आँखों से

पनाह देने के लिए किस हद तक उठ सकती है!

श्रीधर के हाथ का कङ्कण छूटना था कि बेला के सर पर चिन्ता का पहाड टूट पडा। दूसरे ही दिन कमला जो रुखसत हुई, तो साथ-साथ बेला के दिल की तसल्ली भी रुखसत हुई। वह रात-दिन डरी-सकुची रहने लगी। एक-एक कदम फूँक-फूँककर रखती। नेता और गनेस बहू की कानाफूसी उसकी आँखो के सामने जारी थी। न जाने कब, किधर से वार हो! अब कमला तो थी नहीं जो ढाल होती। और, श्रीधर के रू-ब-रू अब वह भूलकर भी नहीं जाती—मदद लेना तो दूर रहे। विवेक ने संयम की मजबूत रस्सियाँ लेकर उसकी भाव-प्रवण मनोवृत्तियों की कडी मुश्कें कस दी थी, वे उलटी उसाँस लेकर रह जातीं, उनमें किसी तरफ हाथ-पैर फैलाने की सत्ता ही न थी।

बेला नई बधू के पास जाकर घंटों बैठती। जब कभी मौका पाती, उसकी चोटी गूँथती, उसे फूलों से सजती, गिलौरियाँ बना कर देती और आँचल पर खुशबू छिडक देती।

सुधा अभी किशोरी थी—कुल चौदह साल की। वह लम्बा घूँघट डाल कोने में रंगीन कपड़े की गठरी बनकर बैठी रहती और दस बात पूछने पर एक पर सर हिलाती। उसके चेहरे का रंग साफ था—कुछ चम्पक नहीं। वह देखने में भोली सुन्दरी थी—परी नहीं। आँखें काफी बड़ी—रस से भरी। गाल दोनों नई कोपलों की तरह चटक

और चिकने। एक-एक अंग फूलों में तुला।

बेला घूँघट उठाकर उसका मुँह देखती और देख-देखकर न जाने क्या सोचती रहती। वह धीरे-धीरे बहू के दिल में घर कर गई। सुधा तो कम बोलती, पर अब बेला के लगातार इसरार पर कभी-कभी मीठे-मीठे रामायण गाकर सुना देती। जब वह ललित स्वर से राम की कथा गाकर सुनाती, तब बेला भाव से विभोर और स्नेह से सजल होकर उसकी ठुड्डी थाम लेती और भर्राई हुई आवाज में कहती—"तुम्हें मैं क्या दूँ बहू? मुझ कंगालिन के पास है ही क्या? अगर परजन्म में भी मुझे वांछित सुख लिखा है, तो उसे भी मैं खुशी से आज तुम्हें सौंप देती हूँ। तुम्हारे सुहाग की सत्ता दुगनी रहे; मैं एक जन्म और सूनी सही। तुम्हारे ललाट की सिन्दूर-रेखा मेरे ललाट की ब्रह्म-रेखा की तरह अमिट हो!"

सुधा इस स्नेह-सरस आशीर्वाद-वाणी को सुनकर मन-ही-मन बेला के चरणों में सर झुका देती।

इधर कुछ दिनों से बेला को गुरु महाराज के पास जाने की फ़ुरसत बिलकुल नहीं मिलती रही। दो-पहर की पढ़ाई का सिलसिला शादी की झंझटों की वजह से स्थगित था। कभी किसी काम से उसे उनके सामने जाना पड़ता, तो सर झुकाए जाती और सर झुकाए वापस आती।

मिश्रजी की आँखें उसकी मराल-गति की माधुरी में मधुमक्खी-सी डूब जातीं, और फिर प्यासी की प्यासी रह

जाती ! भर-मुँह बात होनी सम्भव नहीं थी, और उनकी दिल की लगी दिल ही में सुलगकर रह जाती !

कङ्कण छूटने के दिन जब बेला किसी काम से उनके कमरे में गई, तब अचानक वे टोक ही बैठे—"क्या, बेला, शादी तो खुशी-खुशी हो गई। कल कमला भी अपने घर चली। अब तुम्हें अध्ययन में मन देना जरूरी है। तुम्हारी तो दूसरी गति नहीं।"

इतना उन्होंने कह तो दिया, पर दूसरे ही क्षण उनको यह खटका कि फिर आग से खेलना—आग से खेलना होगा। दूर ही से आँखों को सेक लेना या कभी दो-चार बातें कर मुँह मीठा कर लेना तफ़रीह के लिए काफी है। आगे बढ़ने से मन की तरावट तो विशेष होगी; पर खुदा-न-खास्ता कहीं वह रपटकर अथाह में जा पड़े तो

पर उनको अपने विवेक की कूवत पर भरोसा था और चन्द्रमौलि के चरणों का आसरा।

उस दिन मिश्रानी को तीसरे पहर बाजे-गाजे और सखी-सहेलियों के साथ कालू कलवार के देवघर में विवाह की मन्नत उतारने जाना पड़ा। यह उसी जाबिर दरबार की मदद थी कि श्रीधर के सर का भूत सुबह होते-होते उतर गया था और मिश्रानी की मुराद पूरी हो सकी थी। अब देर होती, तो अहसान-फरामोशी होती, इसलिए उन्होंने कमला के जाने के दूसरे ही दिन गुलगुले और सिन्दुरिया चुनरी, साकल और

घी तथ छोकरे के नाच और शहनाई के साथ जयारत के लिए खुद जाने की तकलीफ गवारा की। घर में अकेली बधू थी और बेला।

श्रीधर झीलवाले मठ पर गया था। उसकी वहशत अभी गई नहीं थी। उसके सर पर सेहरा तो जरूर बँध गया था, पर उसका चेहरा अभी तक वैसा ही मुहर्रमी बना था, सुधा-जैसी पत्नी मिलने पर भी उस पर उछाह या चाह नहीं थी। फूल-शय्या पर यह चेहरा बदली या नहीं, भगवान् जाने!

आज सुधा ने पहले-पहल अपने हाथों से दाल-भरी पूरियाँ पकाई थीं। बेला ने भी आज वही पूरी खाई और दो जोड़ी गङ्गा और यमुना के लिए रख छोड़ी।

बेला कभी पान खाती न थी, पर आज सुधा के स्नेह का उपहार गिलोरी हँसते-हँसते दाँतों में दबा ली। होठों की पपड़ियाँ गुलाब की पाँखुरी बन गईं! जब दो-पहर को सुधा थक कर सो गई, तब बेला ने रामायण उठाई, और गुरु-महाराज के निकट चली गई।

मिश्रजी आसन पर बैठे पान चाब रहे थे। घुटी दाढ़ी, घुटी मूँछें, फटी माँग, कटी-छटी केश-राजि, खड़ी चुन्दी, गर्दन में रुद्राक्ष के दानों के साथ सोने की कंठी, कंधों पर केसरिया चादर, ललाट पर केसर का तिलक—ये सब-कुछ उनकी भव्य आकृति के सर्टिफिकेट हैं।

कमरे की खिड़कियाँ खुली हैं। हवा और धूप से कमरा

लहालोट है। वे जो चाहते थे, या वे जो डरते थे, वही हुआ। बेला सर झुकाए, हाथ में रामायण लिये, आ खड़ी हुई। मिश्रजी ने समझा, उस दिन का टोकना फल गया

मिश्रजी कुछ ऐसे बन गये, मानो बेला के आने की उनको खबर ही नहीं! वे बिलकुल मुखातिब न हुए। एक ओर मुँह फेरे बैठे रहे।

जब बेला पुस्तक खोल वहीं जमीन पर बैठ गई, तब वे मुँह फेरे-ही-फेरे जरा मुस्कुराते हुए बोले—"बेला, कमला की माँ कहीं बाहर जा रही है?"

"जी हाँ। कालू के देवघर। अब पहुँच चुकी होंगी।"

"और श्रीधर?"

"खबर नहीं।"

"तुम्हें बहू पसन्द आई, बेला?"—मिश्रजी ने हँसकर पूछा।

"पसन्द न आएगी? हीरे की कनी है!"

"श्रीधर के गले का हार हो, तब समझूँ! दुनिया में किसी चीज का जौहर उसके रंग-रूप पर नहीं, उसकी माँग पर निर्भर है। जानती हो, मेरे पिताजी मेरे लिए मुझसे सिर्फ दस बरस बड़ी बहू लाये, और मैं रीति उलटकर दस बरस छोटी लाया। समझती हो, क्यों?"

बेला ने सर हिला दिया।

"क्योंकि पुरुष तो साठ के इधर कभी लचता नहीं, और स्त्री तीस के पार जाते बिलकुल लच जाती है। यही सनातन

विभेद है। मेरे जीवन की बरबादी की किल्ली भी दूसरी नहीं। मेरे पिता की यह भूल शूल बनकर ·· खैर, जाने दो, मेरा भाग्य ही खोटा है, किसी को दोष क्यों दूँ ? वे क्या जानते थे कि रमा के होठों के परदे में विष की थैली होगी और वह एक दिन शंखचूड बनकर मेरे जीवन को विषमय कर डालेगी ? मुझे तो डर है कि कहीं बहू की जिन्दगी भी योंही तीती न कर दे।"

"जी नहीं! मालकिन तो बहू को आँखों से लगाकर रखती है।"

"सच ? लेकिन, बेला! आज जिस चाव से आँखों पर बिठाती है, कल उसी चाव से आँखों से उतार भी देगी। आज न रेशमी हिंडोले पर झूल रही है, दो दिन बाद तिकठी पर झूलेगी, देख लेना। भगवान करें, बहू की पीठ की खाल मोटी हो; वह चुडैल तो बिना उधेड़े माननेवाली नहीं! एक दिन तो तू-तू-मैं मैं होकर रहेगा।"

बेला क्या जवाब देती ? वह चुप रही। सर झुकाए दाहिने जानिब बैठ गई।

मिश्रजी अभी उस ओर मुड़े नहीं थे, मुँह फेरे हुए ही बातें कर रहे थे। नज़र तिरछी करें या नहीं—मन-ही-मन यह उधेड़-बुन थी।

इधर कितने दिनों से प्रतिदिन का निभृत आलाप का सिलसिला टूट चुका था। आज अचानक बेला के आविर्भाव

से वे जरा चंचल हो चले। वे अपनी चित्तवृत्ति को सँभाल लेते, तब इधर झुकते कि बेला बोल उठी—"महाराज मैं रामायण लाई हूँ। कहाँ से पढ़ूँ ?"

"ठीक तो, मैं भूल ही गया था। इधर सामने आ जाओ। इस वक्त तो विवाह-प्रकरण ही पढना मुनासिब होगा। तुम पढती जाओ—जहाँ समझ न सको, वहाँ रुक जाना, मैं समझा दूँगा।"

बेला खिसककर आगे आ गई। सामने खुली हुई खिड़की पड़ी और अपराह्न की कोमल किरणें इर्द-गिर्द झूमती मिलीं। झीने आँचल के फानूस से उसके कमनीय मुख की कान्ति निखर पड़ी और होठों पर पान की लाली ज्योति की शिखा हो गई

पंडितजी ने इधर निगाह जो डाली, तो बस टकटकी बँध गई। वे अपनी शिष्टता को भूल गये, अपनी शालीनता को भूल गये, दुनिया को भूल गये, बेला को भूल गये! उनके सामने केवल एक अपरूप रूप की लहर थी और आँखें उस लहर में डूबने-उतराने लगी। उस लहर के रेले से विवेक के मोरचे टूटकर न जाने कहाँ विलीन हो गये। उनकी चातक-दृष्टि ने पक्ष्मान्तराल को चीर डाला।

बेला पढ़ रही है। मध्याह्न-वायु उसके मुख से आँचल को रह-रहकर उलट देती और वह हाथ उठाकर उसे थामती

जाती ! उसने दुहराया—

"जासु बलोकि अलौकिक सोभा ।
सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥"

"क्या बात है !"—एकाएक पंडितजी के मुख से निकल पड़ा ।

बेला के कानों में यह आवाज़ जो पड़ी, तो उसकी नज़र उचककर गुरुवर के चेहरे पर गई । आँखें चार हो गईं ।

पंडितजी की आँखों मे उसने एक विचित्र चमक देखी—वही चिरपरिचित चमक, जिसे पहले-पहल उसने मौलसिरी के पल्लवों की आड मे खड़े 'दिनेश' की आँखों मे देखी थी !

उसने सोचा, कहीं आँखें धोखा न दे रही हों । फिर आँखे उठाकर देखा, और गड़ाकर देखा । बिलकुल वही चमक—वही प्रज्वलित निष्पलक दृष्टि !

वह एकबारगी सहम उठी । मन-ही मन पुकार उठी —"भगवन ! मै स्वप्न तो नही देखती ? गुरुवर की आखें भी चटोर निकली ! वही चमक—वही चसका !"

उससे रहा न गया । ज़रा तिनककर पूछा—"महाराज ! मैं यह क्या देख रही हूँ ?"

"क्या बेला ?"—उनकी आँखें उसी तरह टँगी हैं ।

'आप यह आखे फाड़कर किसे देख रहे हैं ?"

"बेला, सच मानो, तुम्हारे रूप मे उस अपरूप-रूप—उस विश्व-सौन्दर्य—का छीटा है, जिसे देखकर फिर दुनिया मे कुछ

देखने की लालसा बाक़ी नहीं रह जाती। मेरी आँखों ने न जाने अबतक क्या-क्या नहीं देखा; मगर जिसे देखने के लिए ये आँखें आँखें हुईं, वह रोशनी इन्हें आज ही नज़र आई। जगत् में जो यथार्थ सुन्दर है, वह चिरन्तन आनन्द का मन्दिर है; और अगर किसी की आँख उसे पा गई, तो यही जी चाहता है कि इस सुहाग में कभी विराग न हो—यह नन्दन का नज़ारा कभी आँखों की ओट न हो।"

"महाराज! मैं तो देखती हूँ कि आपकी आँखों में प्रदीप्त कामना की —"

"नहीं, बेला, यह कामना की शिखा नहीं, पुजारी की आरती की शिखा है। यह सच है कि ये आँखें देखने ही के लिए मिली हैं; पर मैं तो उसी को आँखवाला मानता हूँ, जिसकी आँखों में कलाकार की आत्मा है—उपासक की निष्ठा है। नहीं तो, गृध्र की जैसी व्यापिनी दृष्टि और किसकी होगी?"

पंडितजी के दिलफरेब शब्दों के परिच्छद के साये में बेला ने उनकी नग्न वासना के कङ्काल को देख लिया। उसके तो होश उड़ रहे थे—आज लोक और परलोक के तमाम रहस्यों को अपनी उँगलियों पर रखनेवाले पंडित के सर पर यह कैसी खब्त सवार हो गई!

"बेला, तुम मानो या न मानो, मैं फिर भी कहता हूँ कि तुम्हारे रूप के लावण्य में उस विचित्र नूर का जलवा है, जिसे आँखों की राह दिल में उतारने के लिए विश्वनियन्ता

ने मनुष्य को लोचनों का सोपान बख्शा है। मैं उसी आनन्द-घन को ढूँढ़ रहा हूँ। यह कोरी कामना नहीं, गंभीर प्रेम है। बेला, मैं चारों ओर उपवन के एक-एक प्रफुल्ल कुसुम-कुडमल मे तुम्हारे मुख की कान्ति को देखना हूँ, सितारों की निर्निमेष करुण चितवन मे तुम्हारी आँखों की किरन को जोहता हूँ, मलय-हिल्लोल-विह्वल रसाल की एक-एक नई कोपल मे तुम्हारे अंगों के लावण्य को ढूँढता हूँ और वसन्त-वैभव मे विभोर प्रकृति के एक-एक ज़र्रे पर तुम्हारी विराट् आत्मा के स्फुरण का पाता हूँ।"

"महाराज! आप यह कैसी बातें कर रहे है? आपकी जबान से भी इस अपवित्र शरीर और रूप की प्रशंसा "

"बेला, तुम महज शरीर नहीं हो! तुम शरीर से परे हो। इस सुन्दर शरीर से भी हज़ार दरजे सुन्दर हो। कौन कहता है, तुम अपवित्र हो? तुम पारिजात-पुष्पांजलि की तरह पवित्र—देवता के निर्माल्य की तरह निर्मल हो! और, तुम्हारा शरीर! वह भी तुम्हारी ही तरह सुन्दर, स्वच्छ, शुचिता-सम्पन्न है। पाप का कीट शरीर मे नहीं, मन के कोश मे घर करता है। शरीर की गन्दगी स्नान से जाती है, मन की गन्दगी बरसों तपस्या की आग से जलकर साफ होती है। तुम्हारा तो शरीर भी सुन्दर है, मन भी; न कीट है, न कलुष।"

"खैर, जो हो, लेकिन इन बातों से मतलब—?" बेला सिट-पिटाती हुई खीजकर बोली।

"मतलब ?"—पंडित जी हँसकर चुप हो गये। उनकी निगाह सामने छत की कारनिस पर क्रीड़ारत एक कपोत-मिथुन पर पड़ी। बैंगनी रंग का जाड़ा है। कबूतर कूद-कूदकर गुटरगूँ करता हुआ, अर्द्धनिमीलितलोचना रोमांच-कलेवरा कपोती के कानों में चोंच सटाकर, न जाने किस रहस्य-कथा को सुना आता है। उसका रोआँ-रोआँ उभरकर फैल रहा है और दोनों पंख न जाने किस आवेग से पुलकित हो रहे हैं। सुहाग में फूली कपोती सर हिला-हिलाकर फुदक रही है।

पंडितजी ने एक क्षण इस विलास-चचल उल्लास को देखा, और धीरे से बोले—"बेला! तुम्हारे दर्शन में जब इतना आनन्द है, तुम्हारा स्पर्श कितना पुलकप्रद होगा! मुझे अपने अंगस्पर्श का दान करो। मेरी यही विनीत याचना है। मैं ब्राह्मण हूँ, मुझे दान लेने का हक है। तुम शिष्य हो, दक्षिणा देना " ·"

गुरुवर गिरिधारीलाल एक सीढ़ी और भी उतर आये। आखिर आँखों ने कलाजंग पर उठाकर चित्त फेंक ही डाला! इतने दिनों तक ज्ञान और विज्ञान की जाड़ियाँ फेरीं, अध्यात्म के डंड पेले, आज एक भी कारगर न हुआ। चारों खाने चित गिरे!

क्या इन्द्रियाँ इतनी प्रबल हैं? हमारे मन की वृत्तियाँ क्या इतनी दुर्बल है? क्या इस जगत् मे कोई ऐसा घुड़सवार नही, जो मुँहज़ोर प्रवृत्ति की पीठ से पीठ नही खाता?

निरसन्देह, जिस वक्त, बेला रामायण लेकर पढ़ने आई, पंडितजी के हृदय मे किसी तरह के अवैध दरस-परस की उग्र लालसा उठी तक न थी। हाँ, मन-निकुंज मे महज़ एक मलय की हल्की लपट अवश्य थी, आँखो पर एक गुलाबी सुरूर-सा ज़रूर था। पर, यह आँधी अचानक किस निभृत कोने से दुँद बाँधकर उमड़ आई, जिसने मानस-समतल को एकबारगी विक्षिप्त कर डाला—विवेक के मोरचो की भुस्सियाँ उड़ा डालीं—कौन कहे?

आखिर बात क्या है? इधर कइ दिनो तक बेला के न आने से तिल-तिल तीव्र होती हुई यह बुभुक्षा की दशा है, सामने निगाह पर चढ़ी कपोत-मिथुन की प्रेम-लीला है, बेला के किसलय-कोमल कपोलो पर मध्याह्न-मरीचि की तरंग-भंगिमा है, या बे-आदत के ताम्बूल-रंजन पर उसके अधरो की ललाम लालिमा है, किंवा नित्यप्रात आग के साथ खेलने का यह अवश्यम्भावी परिणाम-चूड़ा है। सभव है, यह तमाम ग्रहो का जलज़ला पैदा करनेवाला गोल-याग हो!

जो हो, पंडितजी की याचना की वाणी सुनकर बेला सन्न हो गइ। पहले कुछ समझने मे कोर-कसर भी था। वह प्रथम

उद्‌गार, छायावाद की कविता की तरह—'साफ़ छिपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं'—का मजमून था। पर, इस अंगस्पर्श की याचना ने तो अस्पष्ट रहस्य की यवनिका को एक झटके मे उठा ही डाला।

बेला के हृदय मे हँसी; पीड़ा, शंका और ग़ुस्सा एक साथ उठ आये। वह ज़रा हँसकर बोली—"महाराज! आज आपने कुछ भंग तो नहीं पी ली? यह मैं आपके मुख से क्या सुन रही हूँ? आप सब समझकर भी बे-समझ हो रहे हैं। मै आपको क्या दे सकती हूँ? अभी आपने कहा था कि जब मेरा मन पवित्र है, तो शरीर भी पवित्र है! फिर आपने मुझे वेश्या समझकर ऐसी फरमाइश "

"छी-छी! क्या कहती हो?"—पंडितजी ने बात काटकर कहा—"वह तो धन के लिए अपने रूप और यौवन का सौदा करती है, बरसरे बाज़ार बेचती है; और यह तो, बेला, निष्काम सेवा है—निष्काम दान। इस दान मे तो त्याग की महत्ता होगी। अगर तुम्हारे मन की सम्पत्ति लुटती नहीं, तो फिर शरीर की सम्पत्ति यदि तुम्हारे गुरुवर के किसी अभाव को पूरा करने मे लुट भी गई, तो इससे तुम्हारे अन्तर की ढेरी मे तो क्षति नहीं पहुँची। इससे तो तुम्हारे अन्तर की उदारता टपकेगी। दधीचि ने देवताओं के लिए अपने शरीर की हड्डियाँ दे डाली—राजा शिवि ने श्येन की याचना पर उसे अपने

शरीर का टुकड़ा काट-काटकर दिया था, और तुम महज़ शरीर-स्पर्श की अनुभूति के दान पर अधीर हो रही हो! तुम्हें तो शरीर-अर्पण करने में भी द्विधा न होनी चाहिये। आखिर एक दिन तो यह शरीर जलकर खाक हो ही जायगा। फिर अगर आज यह किसी पीड़ित की क्षुधा मिटाने में मदद दे सका, तो इससे इसका गौरव बढ़ेगा, कुछ घटेगा नहीं।"

"महाराज, आप जिस अंग को कहें, मैं काटकर रख दूँ! लेकिन; मैं तो देखती हूँ कि आप इन्द्रियों के वशीभूत होकर गड्ढे में गिरे जा रहे हैं।"

बेला थर-थर काँप रही है—लाज से, लिहाज़ से और आशङ्का से। वह उठ खड़ी हुई। खिड़की के पास जाकर बाहर देखने लगी। एक अधेड़ औरत गुलेनारी दुपट्टा लपेटे, सर पर थाल लिये, खड़ी-खड़ी एक बूढ़ी औरत से बातें कर रही है। थाल में थाक-के-थाक पूए और गुलौरे सजे हैं। थाल का ढक्कन हवा से उघर गया है। आकाश पर एक चील मँड़रा रही है—उसकी चटुल चीख़ अपराह्न की निस्तब्धता को चीर रही है। बेला बुत-सी खड़ी देखने लगी।

पंडितजी भी उठकर नज़दीक आ गये। एक सूखी हँसी हँसकर बोले—"सच? मैं इन्द्रियों के वश में जा रहा हूँ? बेला, भगवान् ने इन्द्रियों को बेकार तो नहीं बनाया है! आँखें देखेंगी नहीं, तो क्या अंधी रहेंगी? और, अगर अंधी रखनी रहती, तो फिर इनमें दृष्टि क्यों भरी गई—तुम्हें रूप क्यों

दिया गया ? जब विश्व मे रूप आया, तभी आँखें आईं। जब शब्द आया, तभी कान भी आये। जब गन्ध आई, तो नाक भी आई। जब रस आया, तो जिह्वा भी आई। जब स्पश आया, तो त्वचा भी आई। इसी तरह इन्द्रियों की रचना हुई, साथ-साथ इन्द्रियों के विषय भी निश्चित हुए। प्रत्येक इन्द्रिय को अपने विषय मे बरतना ही पड़ेगा; यह स्वभाव-सिद्ध है। आखिर इन्द्रियों को पीड़ा देकर भूखो मारने का उपदेश तो भगवान् ने गीता मे भी नही दिया। इन्द्रियों को तो अपना कर्म अवश्य ही करना है। हाँ, तारीफ यही है कि जो कुछ करना हो, निष्काम करो—

'कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिन कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥'

मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इनके साथ नही हूँ, मै तो बे ाग—अलिप्त हूँ।"

बेला ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—"क्या यही आपकी निष्काम चेष्टा है ? आपको शर्म नही आती ? आप यह क्या कर रहे है ?"

पंडितजी बेला के बिलकुल निकट आ गये थे। हाथ पसार कर आगे बढ़ ही रहे थे कि बेला सरककर दूसरी खिड़की पर चली गई।

पंडितजी को ऐसा मालूम हुआ, मानो उनका कलेजा बाँसो उछलकर अचानक धम-से गिर गया। बड़ी नरमी से उन्होंने

अपनी दलील फिर पेश की—"बेला, मैं तो कुछ करता नहीं। आत्मा तो अकर्त्ता है। जो कुछ कर रही है, प्रकृति कर रही है। इसके लिए मैं जिम्मेवार नहीं—

'प्रकृते क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते॥'

"महाराज! मैं आपके वेदान्त की झावली में नहीं आती। मैं तो समझती हूँ कि आपके हृदय में शैतान ने घर कर लिया है, और आपकी चोटी थामकर ....."

"शैतान? नहीं-नहीं, भगवान्!"—पंडितजी बात काटकर बोल उठे—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥'

मेरी क्या मजाल है जो मैं एक उँगली भी बिना उसकी मरज़ी के उठा सकूँ! जो कुछ तुम देखती हो, सब उसी की प्रेरणा है। मैं तो महज़ निमित्तमात्र हूँ!"

"ठीक! प्रकृति करती है, ईश्वर कराता है, और आप तो आत्मा ठहरे—बिलकुल निर्लिप्त! महाराज, अब आप उलटी गंगा नहीं बहा सकते। मैं भी गीता कुछ समझ लेती हूँ। तब तो, चोर भी ईश्वर की ही प्रेरणा पर चोरी करता है, चटोर भी उसी के नाम पर मासूम का खून करता है, आप भी ईश्वर को ही बेचकर धन बटोरते हैं और आज भी ईश्वर के ही सर बला मढ़कर एक अबला पर शेर हो रहे है! धन्य आप

और धन्य आपका ईश्वर! सच कहिये, आपको ईश्वर मे विश्वास है?"

बेला की आँखों मे लहू उतर पडा था और पंडितजी के माथे की दोलायमान शिखा उसे विषाण-सी नजर आने लगी थी। उनके ललाट का रक्त-चन्दन का तिलक उसकी आँखो मे साँप की आँख की चमक-सा डरावना प्रतीत हो रहा था।

"विश्वास क्यो नही? जरूर विश्वास है। तुम्हारा यह सवाल ही फिजूल है।"—पंडितजी ने जरा तेज होकर कहा।

"आप मानते हैं कि ईश्वर हर जगह, हर जर्रे मे हमेशा मौजूद है और सब कुछ का साक्षी है?"

बेला का तमतमाया हुआ चेहरा होठो की लाली से लोहा लेने लगा।

"अवश्य!"—मिश्रजी जरा झेपते हुए बोले।

"तो क्या वह यहाँ मौजूद नही है, और आपकी चेष्टा को, आपकी हरकत को—देख नही रहा है?"

"क्यो नही!"—पंडितजी ने जरा सहमी हुई आँखो से बेला की ओर देखकर कहा।

"अगर मिश्रानीजी या कोई एक आदमी भी यहाँ मौजूद रहता तो—हाथ उठाना तो अलग रहे—आप कभी किसी अबला पर निगाह भी उठाते? और, जो सब देखता-सुनता है—जो सबकी गति-सबका पति है, उसकी सर्वव्यापी स्थिति मे आपकी प्रतीति रहती, तो कभी आपकी ऐसी मति होती? उसके सामने

कभी आप इस तरह पेश आते ? खयाल तक तो उठता नहीं, हाथ उठाने की मजाल कहाँ तक होती ! बात तो अमल यह है कि आपका ईश्वर में विश्वास नहीं। यह ईश्वरवाली बोली—ठठोली है या आपके रोजगार की बनावटी बँधी हुई बोली ?"

गुरु महाराज इस कठोर कशाघात से ऐंठ गये। जवाब क्या देते ? झेंप भी आई साथ-साथ गुस्सा भी आया। चेहरा चुकन्दर हो गया।

उन्होंने देखा कि उनकी आँखों का पानी तो ढल ही चुका—जो होना था, सो तो हो चुका—अब वे इस मुहूर्त्त पर यदि अपनी उमंगों को सिकोड़ तौबा भी कर लें, तो भी बेला की निगाह में वे परहेजगार अब कभी हो नहीं सकते। उसकी आँखों से तो वे उतर ही गये। अब तो उनको वह रुतबा—वह सुख-रूई—कभी मिल नहीं सकती।

जब बेशर्मी की जिल्लत से नजात होने की ही नहीं, तब फिर बेशर्मी की लज्ज़त से वे क्यों महरूम रहें ? जब साकी की आँखों में उनकी शुमार मयखारों में हो ही चुकी, तब अब प्यासे होठों के सामने से रस से लबरेज़ प्याले का जमीन पर उँड़ेलकर क्या होगा ? हो जो हो, उन्हें तोते की तरह आँखें फेर लेनी हैं। यह तीनों लोक का नज़ारा फिर मिलने का नहीं !

उधर बेला ने खिड़की से झुककर देखा कि उस मँड़राती हुई चील ने झपटकर थाल के गुलौरे पर छापा मारा, और औरत के सर से उचककर थाल जमीन पर जा पड़ा। औरत

चिल्ला उठी और छाती पीट-पीटकर धूल मे सने हुए पूए और गुलौरे उठाने लगी।

इधर भी गीध मँडराकर टूट पंडितजी ने झपटकर बेला के कंधे पर हाथ रखा और अपनी ओर खसकर समेटना चाहा। वह हाथ का पडना था—और पंडितजी के निःश्वास की लपट नाक तक पहुँची थी कि बेला बिजली की तरह पलट पडी और जोरो से झटका देकर दूर सरक गई।

"छी-छी! चुल्लू भर पानी मे डूब नहीं मरते! मैंने तो आपको देवता समझा था, आखिर जानवर ही निकले!"

पंडितजी किवाड़ से धक्का खाकर ज़मीन पर लम्बे हो गये, और बेला बदहवास तिलमिलाती हुई नीचे उतर गई।

ठीक उसी पल मिश्रानीजी अपनी सखी-सहेलियों के साथ, शहनाई के सुर मे सुर मिलाये, झूम-झूमकर झूमर गाती हुई, ड्योढ़ी मे दाखिल हुईं। तमाम आँगन गाने की लहर से गूँज उठा। गीत का वह लहरा, ज़मीन पर चित पडे पंडितजी के इर्द-गिर्द थिरकता हुआ, अट्टहास भरने लगा। वही आवाज़ दरोदीवार से गूँज उठी—

"गोरी की सेजरिया जनि जैहो मोरे सामी।
उतरि जैहे तारे मुँहवाँ के पानी—उतरि०।"

अष्टादश परिच्छेद

रात आँखों में कटी। पौ फटी। उषा के प्रतिहारी कुक्कुटों ने स्वागत की आवाज़ भरी। चन्द्रमौलि ने पंडितजी की विनती एक न सुनी। आखिर सेहर हो ही गई।

यह न हुआ कि रात कयामत की—ब्रह्मा की—रात होती। यह न हुआ कि आसमान टूटकर ज़मीन पर चला आता। यह न हुआ कि दीवारे ज़लजले की जुम्बिश से मसककर ढेर हो जाती। न ईंट से ईंट बजी, न तारे टूटे, न ज़मीन फटी। न डूबने को चुल्लू-भर पानी मिला, न खाने को विष की डली मिली। न इधर की दुनिया उधर हुई, न गंगा की धार ही पूरब से पच्छिम पलटी।

उधर बेला कोठे से नीचे उतरी, इधर मिश्रजी का सुरूर उतरा। और, फिर तो तीनो लोक पल मे नजर आ गये। बस, फलक टूटकर दुनिया को तहोबाला कर दे—यही दुआ उनकी एक-एक साँस मे थी। रात ने आकर उनकी

जिल्लत की चिलक पर अन्धकार का परदा डाल रखा; उषा ने आकर परदे को खींच उस दाग को रौशन कर डाला।

मिश्रजी ने अपनी आँखों के आइने में जो अपने चेहरे को देखा, तो पानी उतरा हुआ है और नाक कटी हुई है। यह वह चेहरा है, जिसे न वे खुद देख सकते, न किसी को दिखा सकते। एक ही रात में उसका तमाम रंग उड़कर सियाह हो गया। एक ही रात में उसका तमाम तेज मिटकर खाक हो गया। वे हाथ मलकर रह गये। अपनी ही आँखों में वे खुद सैकड़ों सीढ़ियाँ नीचे गिर गये।

उनकी समझ में नहीं आता कि अचानक उनके पाँव उखड़ कैसे गये। ऐसी स्थिति तो कभी दिमाग में भी नहीं आई थी। बेला के होठों के अभिनव ताम्बूल-राग ने उसके चेहरे के ज़र्रे-ज़र्रे पर कुछ ऐसी छटा बिखेर दी थी कि अचानक उनके मुँह से प्रशंसा-सूचक शब्द निकल पड़े, और बेला ने आँखें उठाकर उनकी चातक-दृष्टि की चाह को ताड़ लिया। उसकी चितवन का घी पड़ना था कि एकाएक उनकी कामना की आग भड़क उठी। न इस तरह परदाफाश होता न विवेक की कील उखड़ती।

बेला के अवज्ञापूर्ण नेत्र, उसके एक-एक शब्द का ज्वलन्त फिटकार उनके कलेजे में नेज़े की नोक की तरह प्रत्येक हृत्स्पन्दन के साथ चुभती रही। वे भीतर-ही-भीतर रो उठे—"हाय! यह क्या हो गया! मेरी बोझी हुई नाव डूब गई! क्यों?

आखिर क्यों ? भगवन ! मेरी तो कभी ऐसी साँझ न थी ! तो, फिर ? ...

कि उनके दिल के कानों पर न जाने कहाँ से गूँजती हुई आई गीता की वह भविष्यवाणी—

'स्वभावजेन कौन्तेय निबद्ध स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥'

और वह थर्रा कर चुप हो गये।

खिड़कियों से कमरे में धूप झाँकने लगी। ज्यों-ज्यों रोशनी भरती गई, उनकी आँखों के आगे अँधेरा घना होता गया। उनकी आँखें दुनिया की रोशनी के ताप को उठा नहीं सकती थीं। अब तो दुनिया से आँखें मिलाना मुमकिन न था। सदा के लिए ये आँखें बन्द हो जातीं, तभी कल्याण था।

वे आँखें बन्द किये चुप पड़े रहे। सात बजे, आठ बजे, नौ बजे। दस का घंटा भी पड़ा। अचानक आँखें खुल गईं। पंडितजी उठ बैठे। अँधेरे में एक पतली किरण नजर आई। जान में जान पड़ गई।

उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब वे घर-बार छोड़ संन्यास लेकर अपना शेष जीवन ब्रह्मचिन्तन और लोक-सेवा में व्यतीत करेंगे।

बस, फौरन् उठ खड़े हुए। घर की माया तो कभी प्रबल थी नहीं। गृहिणी का आँचल तो कभी साँकल था नहीं। जो शृङ्खला थी, वह यश और वैभव की रेशमी सुषमा थी। वही

रुपम सिहरता श्मशान की विभीषिका बन गई। गुरुपद की माया मृग-मरीचिका निकली। मखमली शय्या काँटों की सेज बन गई। घर काटने लगा। रमा का पोपला मुँह निगलने दौड़ा। कंचन और कंकड़ का भेद अचानक मिट गया। मान-अपमान का अन्तर सुई की नोक के बराबर रह गया। शान की आन उतर गई। प्रशंसा की करतली उपहास की चुटकी हो गई।

उनकी निगाह उनकी जीवन-सहचरी पुस्तकों पर पड़ी। आलमारियों में किताबों का मेला है। दर्शन, काव्य, धर्मशास्त्र, ज्योतिष योग, तंत्र, मंत्र, साहित्य, पुराण, स्तोत्र—हर तबके की किताबें हैं। दराजों में पोथी-पतरे भरे पड़े हैं। वे सुख और दुःख के संगी आज आँखों में काँटों-से खटकने लगे। न उनमें प्रीति रही, न प्रतीति। उनकी कीमत बनिये की दूकान में पुड़ियाँ बाँधने के लिए कोने में फेंके हुए रद्दी अखबारों-सी कानी चिन्दी की हो गई। पोथी-पतरे कागज़ के कनकौए बन गये!

उनको अचानक यह ख्याल हो आया कि इतने दिनों तक मैंने इनकी सेवा की—इनमें आस्था रखी, और मौके पर इन्होंने अँगूठा दिखा दिया, किसी ने कुछ मदद नहीं की। क्या इसीलिए मैंने एँड़ी-चोटी का पसीना एक करके इनकी उपासना की—इन्हें अपना कर रखा? जब मुझ पर पड़ा, तब किसी ने चूँ तक नहीं किया! मैंने दर्शन मथ डाला, वेदान्त तक हज़म कर रखा, ब्रह्मसूत्रों पर भेजा गलाया, धर्मशास्त्र की

बारीकियाँ हल की, उपनिषदों के एक-एक शब्द को स्मृति का तख्ती पर सैकड़ों बार लिखा, पर आखिर इस सरकन्दनी का नतीजा कुछ भी न निकला! इनकी तोताचश्मी मुझे ज़िन्दगी-भर खलेगी। अब इनसे वास्ता? नहीं, कोई सरोकार नहीं!

पंडितजी किताबों के गट्ठर को छत पर उठा ले गये। बीच सहन में अम्बार लगा दिया। पाँच मिनट तक खड़े-खड़े उन्हें देखते रहे। फिर न जाने किस झोंक में आकर दियासलाई लगा दी। बारूद में चिनगी पड़ी, ढेरी लहक उठी। वे ठठाकर हँस पड़े। फिर दूसरे ही क्षण उबलकर रो पड़े—"हाय! यह मैंने क्या किया? इन विचारों का क्या क़सूर है? तबेले की बला बन्दर के सर! मैंने कब इनकी चेतावनी मानी?"

नीचे मिश्रानीजी की नाक में कागज़ जलने की बू पड़ी। कुहराम मचा। जयदेव मिश्र दौड़कर आये। घड़ों पानी उँड़ेला गया। जो जला सो जला, जो बचा सो बचा।

किसी ने इस खललदिमागी की बुनियाद को नहीं समझा कि आखिर पंडितजी के सर पर यह कैसी वहशत सवार हो गई! पूछने पर वे सिर्फ़ सिसककर रह गये। उन्हें हिचकी-सी बँध गई। किसी के सामने वे दिल के टाँकों को खोल नहीं सकते थे। वे फ़ौरन नीचे मन्दिर में उतर आये और पछाड़ खाकर चन्द्रमौलि के चरणों पर जा पड़े।

उधर बेला कल शाम ही से अचेत पड़ी थी। उसे भी पल में तीनों लोक नज़र आ गये थे। इस लोक के देवता की

हमदर्दी की कैफियत तो नजर आ गई, भगवान् जाने, उस लोक के देवता की हमदर्दी किस कमाश की होगी! अबला के लिए शायद दोनों लोक बराबर होगा।

यहाँ रहकर वह काफी गंगा नहा चुकी। अब किसी तरह यहाँ से गंगा-पार जाने में ही कल्याण है। उसे नज़र बचाकर कैंची काटना होगा।

पर, वह जाती तो कहाँ जाती? किसी के घर जाकर चौका-बरतन पर भी वह खुशी से पेट पाल लेती—अगर पुरुषों की आन्तरिक शीलता का उसे भरोसा होता, औरतों की ईर्ष्या का शिकार न होने का आसरा होता। मिश्रजी-जैसे शालीन और शीलवान् पंडित की आँख की आँच से पनाह न मिली, तब और किसी की आँख तो उसे देखते ही निगल डालेगी। वह बिचारी क्या जानती थी कि गुरु महाराज का तलवा धो-धोकर पीने का परिणाम एक दिन लहू का घूँट पीना होगा?

वह रात-भर पड़ी-पड़ी आकाश-पाताल सोचती रही—

"मैं तो मझधार थी कि समुद्र के तूफ़ान के थपेड़ों से कराहती हुई मेरी नाव ज़िल्लत की चट्टानों पर भुरकुस न होकर यहाँ शान्ति के बन्दर में आ लगी है। पर, मेरी भ्रान्ति आज स्पष्ट हो गई। जिसे मैंने शान्ति का मन्दिर समझा था, वह जल्लाद का घर निकला। जिसे मैंने देवता के बराबर समझा, वह आख़िर जानवर निकला। आज गुरुवर की छाया भी व्यर्थ हो गई। यहाँ का इतमीनान भी जान का जंजाल हो गया।

"घर मे रही, तो देवर का अत्याचार, सरकार के दरबार मे गई, तो सरकार के प्रतिनिधियों का अत्याचार, ईश्वर के दरबार मे आई, तो ईश्वर के प्रतिनिधियों का अत्याचार ! घर या बाहर, एक ही दर्दसर। सरकार की छाँह मे आइ या गुरु की बाँह गही, कोई भेद नही। उधर खासी खाकी वरदी, इधर रामनामे का सन्दली उत्तरीय। उधर सर पर मुब्बेदार साफा, इधर सर पर बिल्व-पत्र-शोभी शिखा। एक ओर गर्दन मे सोने के तमगे, दूसरी ओर गर्दन मे रुद्राक्ष के दाने। एक के हाथ मे न्याय का डंडा, दूसरे के हाथ मे तुलसी की माला। उधर न्याय की पताका, इधर धर्म की ध्वजा। मगर दोनो एक ही गली के कुत्ते निकले, सरासर काम के कीड़े नजर आये। दोनो के पैंतरे भी एक ही थे। पहले हमदर्दी की बौछार, बादहू तलवार का वार। बस, मैं भर पा चुकी। मेरे लिए न घर है, न सरकार और न धर्म का दरबार।

"अब रहा बाज़ार। दूसरा तो कोई रोज़गार नही। महिला न सही, वेश्या ही रही, अपनी खुशी तो रहेगी! भद्रता न सही, पतिता ही रही, दाँत और नख से मँझोरी तो न जाऊँगी ! घर अपना न सही, दूकान तो अपनी होगी ! रात अपनी न सही, दिन तो अपना होगा ! शरीर अपना न सही, मन तो अपना होगा ! कम-से-कम वहाँ पुरुषो की नग्न वासना किसी न्याय या धर्म के आवरण और परिच्छद मे धोखे की टट्टी तो न बनेगी ! चैन की वंशी अगर न भी बजी, दम घुटने

से तो जान बचेगी ! वहाँ मिश्रानी की नीम का पगी ज़बान तो न होगी; गनेस बहू की विष की पगी मुस्कान तो न होगी ! वहाँ नेता की आँख की चिनगारी तो न होगी, धर्मध्वजी गिरिधारीलाल की ऐयारी तो न होगी ! और कुछ नहीं, घड़ी-भर भी राम का नाम तो ले सकूँगी ! यहाँ तो मिश्रानी के मारे वह भी हराम हो गया है।

"मै जानती हूँ, वहाँ भी मुझे तिल-तिल जलना ही पड़ेगा। जो हो, मैं इस जलन से तो नजात नहीं ढूँढ़ती ! जलने के लिए तो मेरा जनम ही है, लेकिन कम-से-कम जले पर नमक का छिडकाव तो बन्द रहेगा।

"मै अब किस आशा पर यहाँ अँटकी पड़ी रहूँ ? क्या श्रीधर की समीपता मेरे कर्त्तव्य-पथ पर रोडे अटका रही है ? क्या गङ्गा और यमुना की माया हौले-हौले मेरा दामन थाम रही है ?

"श्रीधर भी तो पुरुष ही है। आज न श्रीधर है, कल वही विषधर बनकर फुफकार उठे, तो ? आज न प्रेम की ज़बानी फैयाज़ी है, कल वही काम की चिनगारी मे पलट जाय, तो ? और, अब तो घर मे बहू आ गई। आज नहीं तो कल श्रीधर का प्रेम-प्रवाह उसके आँचल के साये मे गतिशील होगा। मैं तो यहाँ रहकर उस प्रवाह की गति मे मददगार नहीं होती। मैने ही न इन दोनों को एक किया ? एक बार उनके मिलन का सेतु

होकर फिर उनके प्रेम-जीवन पर धूमकेतु बनना न मेरे लिए उपयुक्त है, न उनके लिए हितकर।

"अब यहाँ एक दिन भी रहना सर पर आफ़त मोल लेना है। गंगा और यमुना का माया तो माया-मरीचिका है। उन्हें तो जो पुचकारकर सानी-सत्तू देगा, उसी का तलवा वे चाटेंगी। बेला न होगी, सुखा रहेगी। उसकी देखरेख किस बात में कम होगी?"

बेला ने करवट बदली, तो देखा कि गङ्गा और यमुना आँचल को सूँघती उदास खड़ी है। उनकी डबडबाई आँखें न जाने किस वेदना से कातर होकर एक टक उसी को जोह रही है। बेला ने सोचा—"दिन चढ़ आया, अभी तक दोनों बिचारी भूखा तड़पती होंगी।"

वह हाथ टेककर उठी और उनकी गर्दन से लिपट गई। आँसुओं का झड़ी बँध चली। अब तो इतने दिनों का साथ छूटने का दिन आ गया। तुम कहाँ, बेला कहाँ! दो क्षण गले-गले मिलकर दिल का बुखार निकाल लो। फिर तो आँखों से भी मिलना मुहाल होगा।

बेला ने नाँद में भूसा डुबोया और खली डाली। दोनों ने पेट-भर खाया। फिर गनेस ने आकर रस्सी खोली, और दोनों बाहर चरने गईं।

बेला तो आँसुओं से मुँह धो चुकी थी। उसे हाथ-मुँह धोने का भी खयाल न था। वह चटाई पर जाकर फिर लेट

उससे आगे पुष्यमित्र जैसे जातीय राज्य उनके अधीन थे। सब का शासन-प्रबंध भारशिवो की सगठन-प्रणाली के अनुरू होता था। समूचे देश में हिन्दू साम्राज्य की स्थापना कर सम्भवतः इनका आदर्श था, जिसे आगे चल कर, गुप्त-सम्राटो ने ग्रहण किया। प्रवरसेन प्रथम के काल में ही एक-छत्र राज्य की भाव ने सिर उभारा, सस्कृत का प्रचार तेजी के साथ व्यापक रूप में हु और वह राज-भाषा के पद पर आसीन हो गई जिसमें अनेक उत्की लेख लिखे गए।*

वाकाटक शिव के अनुयायी थे। शिव की यह उपासना रुद्रसे द्वितीय से पहले तक चलती रही। गुप्त-सम्राटो के प्रभाव में आक रुद्रसेन विष्णु का उपासक बना। बाद के वाकाटक शासक बौ धर्म के प्रति झुकाव रखते थे। वर्ण-व्यवस्था का इनके शासन-काल में काफी सरक्षण प्राप्त हुआ और उसकी जड़ें मज़बूत हो गई हिन्दू-कला और स्थापत्य की भी इनके शासन-काल में उल्लेखनीय उन्नति हुई।

---

* वाकाटको के एक सामन्ती राज्य दरबार में एक महिला थी जिसने ३४० ई० मे कौमुदी महोत्सव नामक ग्र थ लिखा था। इस ग्र थ मे उस काल की धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक प्रगति का अच्छा दिग्दर्शन है। एरन, उदयगिरी, देवगढ और अजन्ता मे हिन्दू कला के पुनरुत्थान का जो श्रेय गुप्त सम्राटो को दिया जाता है, सस्कृति के पुनर्जागरण मे, वह वाकाटको को मिलना चाहिए। इस पुनरुत्थान को, बीज रूप मे, नाचना मे बने वाकाटको के मन्दिर मे देखा जा सकता है। अजन्ता मे स्थित तथा कथित गुप्त गुफाओ का श्रेय भी उन्हें मिलना चाहिए, क्योंकि गुप्तो का प्रभाव अजन्ता तक कभी नहीं पहुँचा था और वह, अन्त तक, वाकाटको के ही अधिकार मे था। (श्री के० पी० जायसवाल, जे० बी० आर० एस, भाग १६, पृष्ठ ६७ और १०६)

बिचारी सुधा की पीठ तो नाहक उधेड़ी जाती है !"

पूजा के कमरे से आती हुई मिश्रजी की गंभीर आवाज़ को भी उसने सुना। साथ-साथ श्रीधर की आवाज़ भी सुन पड़ी।

वह और आगे बढ़ आई और कान देकर सुनने लगी—

"चचाजा ! मुझे आप मँझधार में छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ? मुझसे तो गुरुपद का निर्वाह मुमकिन नहीं। सौ बात की एक बात, इस काम में मेरी श्रद्धा नहीं उपटती। मुझे तो हाथ पसारकर दान लेने में पसीना छूट जाता है।"

"श्रीधर, मुझे भी शुरू-शुरू शिष्यों के घर-घर परलोक का 'दही-दही' करते जाना बड़ा खला था। मगर, आखिर करते-करते सब मँज गया। जो हाथ दान लेने के लिए उठता है, वही दान देने के लिए भी खुलता है। नहीं तो, न लेना होगा, न देना। छप्पर फाड़कर तो तुम्हारे घर धन बरसेगा नहीं। जिस हाथ से लेना है, उसी से देना भी। यही लेन-देन की दुनिया है। कौन ऐसा ब्राह्मण है, जिस पुरोहिती या यजमानी से दिल की तसल्ली होती हो ? लेकिन, अगर वह इसे तिलाञ्जलि दे दे, तो उसकी दाल-रोटी कैसे चलेगी ? जिसे न खेत है, न बारी है, और घर में कोरी बेटी है, उसकी तो आखिर यही रोटी है ! मैं यह ख़ूब समझता हूँ कि यजमान के सामने हाथ पसारकर दान लेना कारचोबी की गद्दी पर बैठकर नज़र छूना नहीं है। इसमें शान तुम्हारी ख़ाक होती है, पर बीवी-बच्चों के चेहरे पर तो ख़ाक नहीं उड़ती ? तुम्हारी

आत्म-गरिमा का तेज जो ठंढा हो, पर घर का चूल्हा तो ठंढा नहीं पड़ता ? याद रखो, चेहरे की आग ठंढी पड़ने से चूल्हे की आग ठंढी रहना कहीं भयंकर है। जब खेती फूलने-फलने लगती है, तब पुरोहिती का बाज़ार आप ही ठंढा पड़ जाता है। जब उद्योग-धन्धा चल निकलता है, तब परलोक का पेशा ख़ुद-ब-ख़ुद छूट जाता है। जो ब्राह्मण ज़मींदार है, वह भी इस रोज़गार से बेज़ार है।"

"मैं तो समझता हूँ, कुबेर का वैभव भी सन्तोष के संचय के आगे हेच है। आख़िर धन ही तो जीवन का सर्वस्व नहीं।"

"श्रीधर, इतना ख़याल रखो कि धन ही इस लोक और परलोक की किल्ली है। यह कर्मनिष्ठ के हाथ की मैल है और अकर्मण्य के आकाश का कुसुम। आलसी के हाथों में पारस भी लोहा हो जाता है।"

"चचाजी, सन्तोष से मेरा मतलब निरुत्साह और निरुद्यम नहीं है। हौसला और हिम्मत रखना तो ज़रूरी है, मगर कृपणता और लोभ नहीं। दान देने से भंडार की ढेरी बढ़ती है, कुछ घटती नहीं।"

"बहुत ठीक! मैं इसे ख़ुद तसलीम करता हूँ। तुम्हें कब शेरदिल होकर लुटाना है और कब दाँतों से उठाकर रखना है, इसी समझ पर तुम्हारे जीवन की कामयाबी है। ग़नी को कानी चित्ती समझने का हक तुम्हें तभी हासिल है, जब वह

किसी दुखिया के दर्द की दवा होगी, नहीं तो, नहीं। जब दिल खुला रहता है, तभी हाथ भी खुलता है। पर हाथ खुलने का यह आशय नहीं कि समझ की कील भी खुल पड़े और आगे चलकर आदमी खुद खोखला हो जाय।"

"चचाजी, बात यह है कि घर के झंझटों को देखकर मेरा कलेजा दहल उठता है। चचानी का मिजाज दिन-रात कच-कच···"

"सुनो श्रीधर!"—गिरिधारीलाल ने बात काटकर कहा—"संसार में वही मनुष्य सुखी है, जिसके परिवार का वायुमंडल उसके मिजाज के अनुकूल है। पर, यथार्थ प्रसन्न वह है, जिसके मिजाज का समतल किसी वायुमंडल—किसी हलचल—में भी कभी चंचल-विह्वल नहीं होता। तुम्हारा वातावरण तुम्हारे हाथ चाहे न हो, पर तुम्हारा रहन-सहन, तुम्हारी चाल-चलन तुम्हारे हाथ है। तुम्हारी पाँचों उँगलियाँ घी में तभी रहेंगी, जब तुम्हारे मन की पपड़ियाँ घी में सनी होंगी। तुम्हारा मन कोमल है, तो जबान भी कोमल होगी। और, जबान की कोमलता पारिवारिक जीवन की कितनी बीमारियों की दवा है।"

"मुझसे जहाँ तक निभेगा, मैं घर का भार उठाने में जरूर कंधा दूँगा। आप इतमीनान रखें।"

"ठहरो। मुझे एक आखिरी बात और कहनी है। दुनिया में कतिपय आपत्तियों का आरम्भ इतना सूक्ष्म—इतना

मासूम—है कि उसे मजाक समझकर छेडने में हमारे दिल मे एक गुदगुदी-सी लगती है मगर यही लापरवाही की छेड़खानी हमारे अधःपतन का अग्रदूत है। हम बोतल देखकर सहम उठते हैं, पर विषय की एक बूंद को अदना समझकर ला-दिमाग रहते हैं। यह समझ ही हमारी भयंकर भूल है; क्योंकि इस कतरे मे करोड़ों की सत्ता भरी है। जो चालाक और चुस्त नही है, वह तो एक-एक कदम फूँक-फूँककर चलता हुआ किसी तरह मंजिल काट भी सकता है; पर जिसे दिमाग का दिमाग है, वह लापरवाह चलता हुआ ठोकरे खाकर मुँह की खाता है। याद रखो, हमारी सबसे बड़ी भूल अपनी अदना-सी कमजोरी से हमारी उदासीनता है। आज यह कमजोरी जो कमजोर नजर आती हो, पर धीरे-धीरे हमारे रक्त मे फैलकर एक दिन यह इतनी प्रबल हो उठती है कि जीवन के तमाम पहलुओं पर हावी हो जाती है। जाओ, मुझे और कुछ समझाना नहीं है। जमाना तुम्हें जमाने की हवा का पता बता देगा। ऊपर जाकर सब देख-भाल लो। देखो, मैं तो चला; अब तुम्हीं को घर सँभालना है। शहरी बनकर बाबूगिरी पर गये कि लुटिया डूबी। यह गृहस्थ का घर है। जब घर मे दूध-दही बहता है; तभी दरवाजे पर नौबत झडती है।"

पंडितजी उस पार दालान में पंडितानी के पास गये। आध घंटे तक टहल-टहलकर मीठे-मीठे समझाते रहे। मिश्रानी को

सो घिग्घी बंध गई थी। अपने पति के अटल निश्चय के सामने उनकी जबान तालू में सट गई। आज न तेवर मे बल था, न चितवन मे अनल।

नेता ओसारे मे दबका भीगी बिल्ली बना था। श्रीधर के सर पर छत्र और चमर होना नेता के सर पर घास का गट्ठर होना था। अबतक तो वह मिश्रानी की नाक का बाल बना रहा और उसका दबदबा तमाम परिवार पर अक्षुण्ण रहा, पर अब श्रीधर की अमलदारी मे उसे चौखट के भीतर झाँकने की भी इजाज़त मिलेगी या नहीं, कौन कहे ?

युवराज की गद्दीनशीनी मन्थरा 'गनेस बहू' को भी खल रही थी। पर, वहाँ कैकेयी के तो कोई बेटा नहीं था, और न पानी में आग लगाने की गुंजाइश थी।

मिश्रजी बाहर आँगन मे निकल आये और कुएँ के निकट सिटपिटाती हुई बेला को पुकारा। आज उनको न आँगन मे आने मे द्विधा है, न बेला को बुलाने मे शङ्का।

बेला सर झुकाये उनके सामने चली आई।

"बेला ! डरो मत ! वह काम का कुत्ता गिरिधारीलाल तो कल ही चुल्लू-भर पानी मे डूबकर मर गया। सती का शाप फल गया। सच मानो, मैं आजीवन तुम्हारा ऋणी रहूँगा। मैंने जिस तत्व की तलाश मे इतने दिनों तक वेदान्त और ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषत् की छान बीन की, उसी दुर्लभ ज्ञान ने, तुम्हारी चुभती हुई फिटकार से पैदा होकर, मेरे जीवन

की गति को पलट डाला। तुम्हारी लाल-लाल आँखों ने मेरी आँखें खोल दीं। तुम्हारे भृकुटि-कुटिल कटाक्ष ने मेरे मर्म को चीरकर मेरे निहित शक्ति-स्रोत की तह तोड़ डाली।

"कल इसी उच्चाटन मंत्र को पाने के लिए मुझे आदमी से जानवर बनना लिखा था, और शायद अब आदमी से इन्सान बनना मुमकिन होगा। सच कहता हूँ, मेरी जिल्लत आज मेरी पेशानी पर खिल्लत बन गई है। मेरा कलङ्क मेरे ललाट का तिलक हो गया है। आज मेरे अन्तर में जिस चैतन्य—जिस सत्य—की उपलब्धि हुई है, वह किसी धर्मविधि की पद्धति की परिधि में, या देश-काल तथा समाज के अधिकार-भेद-सीमित संकीर्ण परिसर में, नहीं टिक सकता। मुझे आज प्रत्येक प्राचीर को तोड़कर निखिल विश्व से आत्मीयता स्थापित करना है।

"बेला! कभी-कभी नारी के मुख की फिटकार-भरी वाणी से बढ़कर पुरुष के जीवन में दूसरी मृत-संजीवनी नहीं होती। इसी भित्ति पर अक्सर पौरुष की इमारत खड़ी होती है। अगर कामिनी की विष-बुझी वाणी कलेजे में घर न करती, तो कभी मुमकिन था कि 'तुलसीदास' के जीवन की धारा पलटकर असीम अनन्त से मिलती? अगर चिन्तामणि की फिटकार दिल के परदा को न चीरती, तो कब सम्भव था कि अंधे 'सूर' को उस अपरूप रूप की तजल्ली नज़र आती?"

"आप मुझे लज्जित कर रहे हैं। मैं किस योग्य हूँ? और

मेरी ज़बान से फिटकार ·· "

"सुनो बेला"—वे बात काटकर बोले—"मेरे जीवन में ऐसी एक क्रान्ति की जरूरत थी, नहीं तो कभी मेरी भ्रान्ति मिटती ही नहीं। अक्सर क्रान्ति के गर्भ में शान्ति का बीज पड़ता है। अब इस क्रान्ति का परिणाम शान्ति होगा। मेरे जीवन में वैराग्य के छोटे ऐसे प्रबल नहीं थे कि अन्तर के निभृत प्रांगण में कामना की चिता कभी ठंढी पड़ती। तुमने आकर उस वासना की टिमटिमाती लौ को बेतरह प्रदीप्त कर डाला, और कल अचानक जब वह अपनी चूड़ान्त सीमा पर पहुँचकर विफल हो गई—और मैं आत्मग्लानि तथा अपमान के झकोरों से पानी-पानी हो गया—तभी वह कलेजे की आग बुझकर खाक हो सकी, नहीं तो आज भी अंदर-ही-अंदर वह जरूर जलती रहती। इसीलिए, मैं समझता हूँ, तुम इस अभिशप्त जीवन में कल्याण-मूर्त्ति बनकर मंगल-दीप जलाने आई, और आज मेरा रोआँ-रोआँ इस माहात्म्य के दान को पाकर कृतकृत्य है।"

"मुझे क्या आदेश है? मैं तो यहाँ अब एक दिन भी ठहर नहीं सकती।"

"तुम्हें जाना ही है, तो आज नहीं, किसी और दिन जाना। मुझे विश्वास है, तुम कहीं पर—किसी वायुमंडल में—रहोगी, तुम्हारी आन्तरिक सत्ता तुम्हें दुर्बल न होने

देगी। मैं अब चला। मेरा जमाना लद गया। देवि! मेरी श्रद्धाञ्जलि कबूल करो।"

पंडितजी ने हाथ जोडा, और बाहर चल दिये।

पंडितजी की इस अचानक विरक्ति की खबर कानों कान मुहल्ले-भर मे फैल चुकी थी। उन्होंने ड्योढ़ी मे पैर रखा, तो उनके संगी-साथी अन्तिम विदाई के लिए कमरे मे हाथ बाँधे खडे थे। शिष्यों की टोली भी कदमबोसी के लिए बाहर जमा हो चली थी। आध घंटे तक वे अपने अन्तरङ्ग संगियों से मिलते रहे, और समझाते रहे—"भाई! जाने कब से मेरे जीवन के नेपथ्य पर अनन्त का इंगित प्रतिफलित होता चला आया, पर लाख कोशिश पर भी पैमाना कभी भरा नहीं। कल की रात अचानक वह लबरेज होकर छलक पडा और मुझे दुनिया के झंझटों से विस्तर लपेटना पडा। कैसे भरा और क्यों भरा, इसे जानकर तुम क्या करोगे? मुझे चेतावनी मिली, आँखे खुलीं—यही यथेष्ट है। और, अब इस जीवन की गोधूली मे उस निर्वाण-निकुंज की छाया की तलाश न होगी, तो फिर कब होगी?"

पंडितजी बाहरी बरामदे मे आये, तो वहाँ शिष्यों का हुजूम था। बैठक के ठीक सामने ही सदर सडक थी। शिष्यों की भीड इतनी थी कि लोग नीचे सड़क तक क़तार बाँधे खडे थे। उन्हे देखते ही सबने झुककर प्रणाम किया। सबकी आँखों में करुणा की रेखा थी।

पंडितजी बरामदे के बाहर निकल आये और समवेत

शिष्य-मंडली को कुछ उसी निगाह से देखने लगे, जिस उदास दृष्टि से उस समय अस्ताचलगामी सूर्य रूप-रस गंध-भरी पृथ्वी को देख रहा था। उनकी आँखों में भी एक करुण शान्त दीप्ति थी; जो शिष्यों के चेहरे पर प्रति-फलित हो रही थी। सभी चुप थे, घबराये-से एक-टक देख रहे थे। सन्ध्या की नीरवता उन चितवनों के चांचल्य को चीरकर कलेजे पर बोल रही थी।

सहसा एक शिष्य सामने आया और हाथ जोड़कर बोला—"महाराज! हम सब लोग आपका अन्तिम उपदेश और आपका अमर आशीर्वाद पाने के लिये सेवा में हाज़िर हैं।"

"मुझे तो कुछ विशेष कहना नहीं है। केवल "

कि हठात् 'रास्ता छोड़ो, हटो' की ध्वनि कानों में गूँज उठी। सड़क की भीड़ बात-की-बात में दोनों बग़ल फट गई। सबकी निगाह सामने दौड़ी। काले-कलूटे—पर सफ़ेदपोश—क्रिश्चियन लड़के और लड़कियों का दल है। आगे-आगे दो मेम—पीछे-पीछे, क़रीने से क़तार बाँधे, क़दम से क़दम मिलाये, कपड़े लत्ते से लैस, सैकड़ों हँसमुख छोकरे और छोकरियाँ।

जबतक वे सब गुज़र नहीं गये, तबतक तमाम जनता पर एक अजीब रोब छाया रहा। किसी ने चूँ तक न कसा। सिर्फ़ आँखें फाड़कर देखते रहे। जब एक-एक करके सब निकल गये,

तब फिर शिष्यों की मंडली एक दूसरे पर पिलती हुई बरामदे और सड़क पर एक-मे-एक गुथ गई, और पंडितजी की ओर एक टक देखने लगी।

पंडितजी आगे बढ़कर आवेग-भरी आवाज मे बोले—"देखते हो, सड़क पर क्रिश्चान लड़कों और लड़कियों का दल किस करीने से जा रहा है! जानते हो, ये कहाँ से आये? यही नजदीक के गाँवों से इनकी आमदनी होती है—छोटी कौमों से। कुछ दिन पहले ये तुम्हारे ही अंग के गलित अंश थे। आज ये तुमसे अलग होकर फिर पनप उठे। तुमने जिन्हें कूड़ा समझ बुहार फेंका था, उन्हें दूसरे ने उठाकर उनमे रूह फूंक दी। देखा तुमने, आज ये कैसे साफ-सुथरे कपड़े-लत्ते मे लैस, बात-बर्ताव मे चलते और चुस्त नजर आते हैं! इन्हें देखकर आँखों से लहू उतर आया, क्यों? क्या वजह? चूँकि ये तुम्हारे थे? तुम अपना बनाकर रखते, तो ये आज कभी तुमसे जुदा होते? चूँकि ये हिन्दू न रहे? कब ये हिन्दू तुम्हारे न रहे? कब ये थे? हिन्दू-समाज से ताड़ित, पददलित, अस्पृश्य चांडाल थे। पहले इन्हें कहीं खड़ा होने-भर को जगह न थी, आज हम-तुम खड़े होकर इनका स्वागत करते हैं। क्यों? चूँकि आज ये हिन्दू होने के शाप से मुक्त होकर मनुष्य के तबके मे आ गये। पर तुम्हें मलाल है, ये हिन्दू न रहे? हिन्दू न रहे, न सही, आदमी तो हो गये! आदमियों में—सभ्यों में—इनकी शुमार तो हुई! तुम्हीं कहो—हिन्दूपन बड़ा है या मानवपन?

चर्च के साये में जाकर इनकी काया पलट गई, नहीं तो, आज भी ये चमार ही रहते।"

"महाराज! हमारे यहाँ क्या यह रूपान्तर मुमकिन नहीं?"—उसी शिष्य ने पूछा।

"क्यों नहीं—तुम्हारे यहाँ सब-कुछ है, पर सब कुछ होकर भी कुछ होने नहीं पाता! तुम लकीर के फकीर हो। न तुम लकीर छोड़ोगे, न तुम्हारी फकीरी छुटेगी।

"क्या वजह है, इन बिचारों को राम के मन्दिर में जगह न मिली और ईसा के गिरजाघर में मिल गई? तुम्हीं कहो, कौन उदार हुआ—राम या ईसा? किसका नाम पतित-पावन हुआ—राम का या ईसा का? जो छोटे को अपनाता है, वह बड़ा है—या जो बड़प्पन की शान में छोटे को धक्का देता है, वह? शङ्कर की जटा से छूटी हुई हमारी गंगा आज तक हिलोर लेती रह गई, घूम तो बड़ी रही, पर किसी एक चाण्डाल को भी उन्हें तारते तुमने देखा है? और, इधर ईसा के पद-तल की कलुष-कालिनी गंगा ने भारत के लाखों शापग्रस्त पतितों और पीड़ितों को तारकर हिन्दुत्व की वैतरणी पार करा दी। अब तुम्हीं कहो, किसकी गङ्गा पतित-पावनी निकली—हमारी या उनकी? हम शिखा-सूत्रधारी अडड पंडितों की जूतियाँ सर पर रखते हैं, और वे ईसाई दलितों और गलितों के ज़ख्म पर मरहम लगाते हैं—स्वार्थ से ही सही! ज़रा सोचो तो, किसकी कीर्त्ति बड़ी हुई—हमारी या उनकी?"

"महाराज! हमारे राम की कीर्त्ति किसी से····"

"तुम्हारे राम या विश्व के राम?"—पंडितजी ने बात काटकर कहा—"क्या अछूतों के राम कोई अलग हैं? भाई! राम या कृष्ण किसीके खास हैं या सबके बराबर हैं? आज राम होते, तो वे रामानन्दी रहते; कृष्ण होते, तो वे वैष्णव आचारी रहते; शिव होते, तो भंग पीकर गाल बजाते, भवानी होतीं, तो मदिरा और मांस पर धर्म की मुहर देकर दूकान चलातीं! जिनका नाम बुलन्द करने के लिए ये दलबन्दियाँ खड़ी हैं, उनमें उनका नाम बड़ा या घटा? आखिर वे खुद किस दल के थे? उनके सर पर—उनकी छाती पर—या किसी मत की मुद्रा या मुहर लगी था? हमने राम को रामानन्दी बनाकर क्या उनका महत्ता—उनकी सार्वभौमिकता—कायम रखी? जो समुदाय की निधि है, वह सम्प्रदाय की परिधि में पड़कर कानी चित्ती नहीं हो जाती?

"खैर, राम ने तो भिल्लिनी के जूठे बेर खाये हैं—निषाद को गले लगाया है और बन्दर-भालुओं के कर में राखी बाँधी है। उन्होंने तो जानवरों में भी भाईचारा रखा, फिर तुम उन्हीं का नाम लेकर उन्हीं के मन्दिर में आदमी से नाक-भौं सिकोड़ते हो! क्यों? चूंकि तुम आचार के आगार हो!

'भाई, अति आचार ही अत्याचार है। तुम्हीं कहो, क्या शास्त्रों के निर्देश से प्राणों के निर्देश का महत्व बड़ा नहीं? तुम डूबकर देखो, किसका दर्जा ऊँचा है—मत का या मनुष्यत्व

का ? एक देश और काल मे सीमित है, दूसरा सनातन है।

"भाई ! आज वे अछूत आदमीयत के धरातल पर तो आ गये—मनुष्य के प्रकृत आधकारो को तो पा गये ? उनके बाप-दादो का धर्म छूट हो गया, तो उनकी कौन सी क्षति हो गई ? और, फिर धर्म भी तो नहीं छूटा, एक अन्ध नेम का पथ छूटा, दूसरा उदार प्रेम का पथ मिला। सब रास्ते तो एक ही जगह जाकर मिल जाते हैं। यहाँ तुम्हारी जूतीबरदारी छूटी, वहाँ उन्हें विश्व का बिरादरी मिली। उनका तो कुछ बिगडा नहीं, बिगड़ा तुम्हारा। वे तो बन गये—जानवर से आदमी हो गये, पर तुम्हारे घर की दीवार की ईंटें खरक गई। यो ही खरकते-खरकते जब दीवार ही भरक पड़ेगी, तभी तुम्हे मालूम होगा कि तुम्हारी नाक कटी या बची—तभी तुम्हें मालूम होगा कि देवता से मनुष्य का दर्जा ऊँचा है, भगवान् से इन्सान का दावा बड़ा है—तभी तुम्हे मालूम होगा कि मज़हब और मत से आदमीयत बड़ी है, ब्रज की क्यारी से अछूत की टोली कहीं पुण्यवती है।

"वह दिन क़रीब है, जब तुम समझोगे कि परमार्थ की तलाश से दुखियों के दद की तलाश तुम्हारे जीवन मे उच्चतम लक्ष्य की तलाश है। यजन-भजन से दरिद्र-दुख-भंजन का महत्व कुछ कम नहीं। जो प्रलयिनी सत्ता दलित के दिल की भाप मे है, वह जटा पटकनेवाले दुर्वासा के अभिशाप मे नहीं। मन्दिर की चकमकी मूर्त्ति की वन्दना से मन्दिर की चौखट से ताड़ित

अछूत की उपासना कुछ कम फलवती नहीं।

"देखो, पत्थर की प्रतिमा में ईश्वर की प्राणप्रतिष्ठा जरूर ही करनी पड़ती है, पर मनुष्य की प्रतिमा में वह खुद-ब-खुद प्रतिष्ठित है। वहाँ उसे न्योता देकर बुलाना पड़ता है, यहाँ वह हर घड़ी मौजूद है। क्या पत्थर की जड़ मूर्त्ति से आदमी की जीती-जागती मूर्त्ति ईश्वराराधन के लिए विशेष उपयुक्त आधार न होगी? मनुष्य ही तो ईश्वरांश का प्रत्यक्ष मन्दिर है—और उस स्फुरण को तुम इस मन्दिर में नहीं ढूंढ पाते, तो फिर किसी ईंट-गारे की दीवार के भीतर, किसी पत्थर के आकार के भीतर, कदापि नहीं पा सकते।

"इसीलिए अछूत की सेवा किसी मूर्त्तिपूजा, देवपूजा से भी उच्च कोटि की उपासना है। आज तक तुम गुरु और पुरोहित के आशीर्वाद सर पर रखते चले आये; अब तुम दीन-दरिद्र की फरियाद सर पर रखकर देखो कि तुम्हारे हृदय में शान्ति की प्रसन्नता फूट उठती है या नहीं।

"याद रखो, तुम यश और शान, मान और ज्ञान—जीवन के तमाम अलंकारों को सर से पैर तक लाख सजे रहो, पर इन सबके होते हुए भी अगर तुम पर आदमी का लिबास नहीं, तो सच मानो, न तुम्हारी नम्रता छूटी, न तुमने मानवता पाई। तुम्हारे हृदय में अगर अनुभूति न रही, तो फिर तुम्हारे सर पर तपस्या की विभूति या मोतियों के मुकुट की दीप्ति रही या न रही—दोनों बराबर है। तुम्हारे ज्ञान-विज्ञान का तमाम

संचय अधूरा ही रह गया, अगर तुमने मानव-हृदय का परिचय नहीं पाया।"

पंडितजी चुप हो रहे। एक बार निगाह उठाकर आकाश पर फैलती हुई गोधूली की अबीरी आभा को देखा। फिर हाथ में छड़ी उठाते हुए बोले—"मैं अब चला। मुझे कुछ विशेष तो कहना था नहीं। आज अचानक महायात्रा के समय इन ईसाई बच्चों को देखकर मुझे हिन्दूत्व की छाती का दाग—हिन्दूत्व के सर का कलंक—याद हो आया, नहीं, कलेजे में धधक उठा, और अचानक दिल की आग तुम्हारे सामने फट पड़ी। जभी तो मेरी ज़बान से जो बात निकली, वह जलते हुए शरारे बनकर निकली। मैं खुश हूँ कि ये बिचारे आदमी हो गये, पर मुझे दुःख है कि हम इन्हें आदमी न बना सके!"

"महाराज! आज तक तो आपने · "

"तुम्हारा यह पूछना सर्वथा उपयुक्त होगा कि मैंने अब तक इस पतितोद्धार के मसले को हल करने की कहाँ तक कोशिश की। कहीं शराबी के मुख से शराब की शिकायत किसी के दिल में घर कर सकती है? करनी खाक की, कथनी लाख की! यह सच है कि मैंने कभी किसी को दिल से आज तक अस्पृश्य नहीं समझा, पर अफ़सोस! समझकर ही रह गया, उसे उठाकर गले नहीं लगाया। मेरे विचार उदार अवश्य थे, पर वे उदार ही होकर क्या हुए, जब मैं अपने मर्ज़ का शिकार बना ही रहा—समाज के आगे सीना भिड़ाने

की हिम्मत न रही ! साँप मरे, न लाठी टूटे। मै स्वार्थ से उतना मजबूर न था, जितना अपनी आदतो से।

"यहाँ हमारे-ऐसे कितने हैं, जो दिल तो लिये फिरते हैं; पर कही दिल डाल नही पाते ! सब कुछ देखते हैं; पर देखकर भी हाथ उठा नहीं पाते ! कौन इस बखेड़े मे पड़े—हज़ारों स मैदान ले ? यहाँ तो 'न ऊधो का लेना—न माधो का देना' है। बस, यही निश्चिन्त निर्विवाद जीवन का आराम—रोज़मर्रे की रोटी-दाल का इन्तज़ाम—हमारी अकर्मण्यता की किल्ली है। सुखावेश की यह मानसिक जडता हमारी क्षमता की जड़ मे दीमको का घर है। इस जहान मे वही सच्चा जवान है, जिसने जान हथेली पर रखकर इस आस्तीन के शैतान के दाँत तोड़ डाले।

"हमारी कट्टरता और अदूरदर्शिता के कारण हमारी तिल-तिल जो क्षति होती आ रही है, वह निरन्तर मेरे कलेजे पर चोट करती चली आई, पर मैं अकेला कट्टरपंथियों और धर्म-ध्वजियो के विद्रोह की सेना का कहाँ तक विरोध करता ? इसी उधेड़-बुन मे हाथ पर हाथ रखे बैठा रह गया। हमारे सामने हज़ारो युवती विधवाएँ हमारे यहाँ शरण न पाकर पड़ोस के घर मे कानो मे बालियाँ और कमर मे सुथनी देकर बाल-बच्चेवाली हो गईं—या सड़क के किनारे सिरकी तानकर नारकीय जीवन मे फिसल पड़ी, और हम धर्मशास्त्र के पन्ने उलटते और आचार के दम भरते ही रह गये। इधर अछूत

हैं, उधर पीड़िता विधवाएँ; पर न हमारे हाथ मे जुम्बिश है, और न दिल मे कशिश !

"खैर, जा हुआ सो हुआ, आज सामने न कोई बाधा है, न द्विधा; न भय है, न आलस्य। मैं मुक्त हूँ और सबको मुक्त देखना चाहता हूँ। आज मेरे अन्तर मे न राजगार की अड़चन है, न परिवार का बन्धन। आज मेरी आत्मा इस निखिल मे फैल जाने के लिए उतावली हो रही है, और विश्व-चराचर के दर पर आत्मीयता को डाली लिये सर झुकाए खडी है।

"सच मानो, आज मेरा कोई अपना नहीं है, इसीलिए कि सभी हमारे अपने हैं—मैं आज किसी का नहीं हूँ चूँकि मैं सभी का हूँ। जबतक हम अपने संसार को छोड़ नहीं पाते, तबतक हम इस संसार को पाते नहीं। एक छोर से हम ज्यों-ज्यों शून्य होते हैं, त्यों-त्यों दूसरी ओर स हम भरते जाते हैं।"

"महाराज ! यह तो आपने जो कुछ कहा, बड़े पते की बात है, मगर साथ-साथ हमलोग कुछ आपसे हमारे अपने धम पर उपदेश ....."

"भाई ! आज मेरे सामने अपना और पराया धर्म—दो भिन्न तत्त्व नहीं रहे। बहुत दिनों तक इस अपनापन को अपना चुका, आज दिल ढूँढ़ता हूँ, तो दिल नहीं भरता। देखो, दुनिया मे आदमी का आदमी से अलग करने के लिए जितनी दीवारें खड़ी की गई हैं, उनमे मज़हब की दीवार नंगी तलवार है।

हमारी ममता, हमारी मज्जागत अपनापन की प्रवृत्ति कुछ ऐसी ज़ोरदार है कि हम ईश्वर को भी अपनी अलग सम्पत्ति बनाकर रखना चाहते हैं। हमारी अपनापनवाली यह सत्यानाशी बुद्धि ईश्वर तक को नहीं छोड़ती—आदमी का क्या ज़िक्र है! जिस तरह इस लोक मे हमारा बेटा, हमारा भाई, हमारी स्त्री, हमारी जायदाद, हमारा घर, हमारा परिवार, हमारा देश है; उसी तरह हमको अपना धर्म, हमारा अपना अलग ईश्वर भी चाहिए। हम परलोक के लिए भी अपनी अलग डफली बजाना चाहते हैं। हम भूल जाते हैं कि 'राम या रहीम' किसी के बाप का नहीं है—न वह किसी सम्प्रदाय-विशेष का मौरूसी तबर्रुक है. उसके घर की कुञ्जी किसी खास ज़बान, किसी खास किताब या किसी खास मज़हब की जेब में नहीं है!

"आज जब भाई-भाई मे बंटवारा पेश होता है, तब चाँदी-सोने की तरह देवी-देवताओं को भी बाँट लेना आम बात है। इस अपनापन की तकरार के कारण हमारे देवता भी सरकारी कचहरियों मे घसीटे जाते हैं, और वकीलों की जेब गरम करते हैं—हाकिमों का मुँह जाहते हैं। हमारे घर की 'बंदी' तुम्हारे घर की 'शीतला' से भिन्न नहीं, मगर हम झगड़ते है कि बंदी हमारी हैं और शीतला तुम्हारी। हम तैश मे आकर तलवार खींच लेत हैं—आखें नीली-पीली करते हैं कि शिव हमारे हैं, राम तुम्हारे, ये गोरे हैं, वे काले, मन्दिर हमारा है, मसजिद तुम्हारी—चर्च उसका!

"इसी हमारे-तुम्हारे की तकरार के आधार पर ठाकुर के सर पर भी सर फुटौवल का बाज़ार गर्म है। हमारे ईश के गले में गुञ्जों का हार हो या भुजंगों का हार; वे मेघ की तरह श्यामल हों या तुषार की तरह उज्ज्वल, उनके हाथ में मुरली और लकुट हो, या तीर और धनुष, किंवा त्रिशूल और डमरू; बात तो एक ही रही! इस वेश-भूषा के तबादले में न उनका उहदा बदलता है, न एकाधिपत्य। हम उस एक को 'राम' कह-कर मन्दिर में पुकारें दूसरा उसे 'रहीम' कहकर मसजिद में अज़ान दे, तीसरा उसे 'ईसा' कहकर गिरजाघर में बुलावे—इससे दलबन्दियाँ जो हों, कुछ उन दलों के भिन्न-भिन्न नायक तो नहीं हुए?

"सोलह हज़ार गोपियों ने रस-रास के वक्त सोलह हज़ार गोपाल के गले में हाथ डालकर ठुमुक-ठुमुककर नाच किया, और प्रत्येक गोपी ने नटवर-नागर को अपना ही खास कंठहार समझा; मगर—गोपियों की तादाद हज़ारों में जो हो, गोकुल के नन्दलाला तो एक ही थे? हम एक ही सुर को सैकड़ों अलग-अलग बाजों पर जगाते हैं, पर उसका समुचित रूप से उठना या न उठना हमारी उंगलियों के रेआज़ पर निर्भर है, कुछ इसराज या सितार के तार पर नहीं।

"क्यों हम 'राम' के नाम पर सर झुकाते हैं और 'रहीम' के नाम पर फबतियाँ चुस्त करते? बात यह है, चूँकि राम हमारा है, रहीम दूसरों का! राम और रहीम तो एक ही

रहे; मगर हम और वे जो एक थे, दो हो गये! कुछ हमारी और उनकी दो समझ, दो जबान होने से वह तो दो होना नहीं? यह अपनापन का सवाल न रहता, तो कोई मन्दिर तोड़कर उसपर मसजिद उठाता? इस तोड़-फोड़ में हमारा और उनका सर टूटा; राम या रहीम का तो न कुछ बिगड़ा—न बना।

"यही अपनापनवाली प्रवृत्ति हमारे जीवन की तमाम कृतियों की कुञ्जी है। इसी की लपेट में हमारा लोक भी चलता है, परलोक भी। जिस वक्त, आँखों से अपनापन का पर्दा उठता है, और पृथ्वी पर के तमाम नाते-रिश्ते दो घड़ी के तमाशे बन कर निःसार नजर आते हैं, उसी वक्त, हमारा और तुम्हारा का कुहरा एकाएक फट जाता है; और फिर हमें न कोई अपना नजर आता है—न पराया। उसी दिन राम और रहीम का यह भेद आप-ही-आप मिट जाता है—और एक ही सत्ता मन्दिर, मसजिद और गिरजे के साये में नजर आती है। अगर हम अपने को इस अपनापनवाले बन्धन से अलग समझते, तो फिर इस विश्व में किसको हम अपने से अलग पाते?"

"महाराज! यह बड़ा उच्च कोटि का ज्ञान है। हमलोग तो साधारण जन ठहरे, हमारे लिए तो हमारा चिर-परिचित धर्मपथ ही कल्याणप्रद होगा।"

"अवश्य ! तुम्हारे लिए तो वही पथ सुगम है, मगर याद रखो, तुम्हारा ही पथ इस विश्व मे एकमात्र पेटेंट पथ नहीं है—और जो इस पथ पर नहीं चलता, उसे तुम पथभ्रष्ट समझते हो, तो तुम्हारी भूल है। रास्ते चाहे जितने हों, मंजिल एक ही है। प्रत्येक पथ का पाथेय प्रेम है, नेम नहीं। तुम जिस राह से चलो—घर की राह या वन की राह—मगर तुम्हे राह पर आना है, उस मंजिल तक जाना है, तो बगैर दिल की राह लिये गुजर नहीं। भाई, स्वधर्म मे निष्ठा का मतलब परधर्म की कुत्सा नहीं होता। परिवार से प्यार का परिणाम पडोस से तकरार नहीं है। स्वदेश से भक्ति का मंशा संसार से विरक्ति नहीं होता।

"क्या वजह है कि आज दुनिया मे मजहब से बढ़कर दूसरा कोई फसाद का घर नहीं, और आज सामूहिक जीवन मे इससे बढ़कर कोई अजाब नहीं। सच मानो, हमारे मतों ने आकर मनुज-परिवार मे वह मतान्तर पैदा कर दिया है कि मनुष्य-प्रकृति के तमाम परिमल को तअस्सुब की आँधी न जाने कहाँ उडा ले गई! आचार के अत्याचार से विचार की कमर टूट गई। कट्टरता की कटुता आदमीयत की सरसता चाट गई। विधि-निषेधों की चपकलिश ने दिल की पपडियों को खुलने नहीं दिया। पद्धति और परिपाटी हमारे जीवन की घाटियों मे जंगल-झाड बनकर भर गई। प्रपञ्च के तुषार ने विश्व के सत्य को धूमिल कर दिया। गुटबन्दी

के अपनापन ने आदमीयत से आदमी को अलग कर दिया।

"कोई भी डूबकर यह नहीं देखता कि तमाम धर्मों की आत्मा एक ही है, जो कुछ विभेद नज़र आता है, वह ऊपर का नश्वर कलेवर है। ऊपरी आडम्बरों को हटाकर देखा जाय, तो मनुष्य-मात्र में एक ही प्रकृति, एक ही प्रवृत्ति, एक ही प्रतीति और एक ही नीति नज़र आएगी। जिनका लोक एक है, उनका परलोक दो नहीं हो सकता। इन तमाम धर्मों के अवतार मानव-प्रकृति को ऊँचा और उदार बनाने की गरज़ से हुए थे, उसे संकीर्ण और ओछा बनाने की गरज़ से नहीं। उनका ध्येय मानव-समाज का संगठन था, टुकड़ों में वितरण नहीं। वे क्या थे— क्या होकर आये थे, और आज कहाँ भटक गये? जो भगवान का सन्देश लेकर आये थे, वे सुना गये शैतान का फरमान। जिन्हें इन्सान बनाने का दावा था, वे आखिर बना गये हैवान। जो हमारे जीवन में फूल बोने आये थे, वे काँटे बिछा गये। जो शाश्वत शान्ति की प्रेम-मुरली बजाने आये थे, वे आखिर रणभेरी का निनाद उठा गये। मधु तो बहा न सके, बहा गये खून; विरोध तो मिटा न सके, मिटा गये सौहार्द!"

"महाराज! तो क्या उनकी तमाम साधना व्यर्थ हो गई?"

"यही व्यर्थ होते देख तो आँखों से लहू टपक रहा है। वह मन्दार-मंजरी साम्प्रदायिकता की गन्दी हवा में पड़कर अपना सौरभ ही नहीं खो बैठी, बू तक देने लगी है। इस

पृथ्वी पर कितने पैगम्बर भटकती दुनिया को मनुष्यत्व का मंत्र देकर चल दिये ; मगर उस मंत्र को सिद्ध करने के लिए जो विधि वे बता गये—उस सत्य को जपकर हृदयङ्गम करने के लिए जिस सुमिरनी का माध्यम दे गये, वही सुमिरनी, वही पद्धति आज मूलमंत्र पर भी प्रबल होकर धर्म बन गई है। मंत्र तो हम कभी भूल बैठे, हाथ धरे रह गई वही पद्धति की सुमिरिनी ! जिस तसबीह को हमें उँगलियों के छोर पर रखना था, आज उलटे वही हमें उँगलियों पर नचा रही है ! जो महज़ एक रीति थी, वही हमारी आत्मा की प्रतीति—नीति हो गई है। भाई, आज हर जगह सत्य की सरिता रीती रीति की रेती में रोती फिरती है। इसीलिए आज धर्म के नाम पर अधर्म का बोलबाला है ; शान्ति की जगह पर क्रान्ति का दौरदौरा है।

"आज धर्म की मुहर देकर अधर्म का तर माल जो हमारी टोली में सरे बाज़ार चलता है, उसे हम आँख मूँदे विशुद्ध समझकर निरन्तर इस्तेमाल करते है, पर धीरे-धीरे उसके भीतर के विषाक्त कीटाणु हमारी धमनी के रक्त में पैवस्त होकर हमारे अन्तर की मिठास को चाट रहे हैं। इसीलिए तुमलोगों को समझ लेना है कि धर्म क्या है—अधर्म क्या है। ज़रा-सी उत्तेजना की शह पर धर्म और अधर्म में उलट-फेर होते देर नहीं लगती। पाप या पुण्य की उपज हमारी बुद्धि पर निर्भर है; कुछ कर्म पर नहीं। बुद्धि शुद्ध रहती है, तो

अधर्म की प्रवृत्ति पनपने नहीं पाती। तुम्हारी खुशनीयती तुम्हारे लोक और परलोक दोनों के जोड़ की किल्ली है। मैं तो समझता हूँ, धर्म वही है, जो तुम्हारी आध्यात्मिक सत्ता को जगाकर तुम्हारे प्राणों में विश्व-वेदना का सुर भर दे और इन्द्रियों के इन्द्रजाल को चीरकर तुम्हें तुम्हारे अन्तर की महत्ता का पता बता दे।

"आज तक मैं तुमलोगों को पूजन और तर्पण, भजन और यजन पर उपदेश देता चला आया, पर आज गुरु-जीवन की सीमान्त-रेखा पर पहुँचकर मैंने तुम्हें उस विश्वधर्म का निचोड़ बतलाया है जो संसार के तमाम विभिन्न धर्मों का आधार है। यह वह धर्म है, जो न किसी आचार पर निर्भर है और न जिस पर किसी मंत्र की मुहर है। यह न किसी किताब में कैद है, न किसी दीवार से बन्द। यहाँ न किसी पाखंड का पहलू है, न किसी मजहब की बदबू। यह मुक्त है, असीम है, अनन्त है। सबके लिए एक है, सबके लिए बराबर। यह किसी प्रदेश या किसी भाषा की संकीर्ण परिधि में बाँधा नहीं जा सकता। जो इसे टुकड़ों में बाँटकर अपनी एक अलग सम्पत्ति बनाना चाहता है, वह इसे पाता नहीं—खो बैठता है। और, जो इसे सर पर रखकर मानवता के प्रशस्त मन्दिर में अपनी आत्मीयता का अर्घ्य लिये खड़ा है, वह किसी खास पथ पर नहीं चल सकता—किसी खास दल में शामिल नहीं हो सकता। मैं आज इसी शाह-राह से विश्व के शाहंशाह को

ढूँढ़ने चला हूँ और जिधर देखता हूँ, उधर उसे रू-ब-रू पाता हूँ।

"भगवान् करे, धर्म और तत्वों मे तुम्हारी मति हो, सत्य के स्वत्वों में प्रतीति हो, देश मे रति हो, परिवार मे प्रीति हो। हाँ, इतना याद रखो कि जिस चमन मे ममता के गुल हैं और आत्मीयता के परिमल, वही तुम्हारा मन्दिर है—वही तुम्हारा नन्दन! देश के लिए—सत्य के लिए—जान देना तुम्हारी जान है। जो इनके लिए सर पर कफ़न बाँधता है, उसीके सिर सेहरा बँधता है। जो ज़िंदगी में मरने पर तैयार रहता है, वह मरकर भी लाखों में ज़िंदा है।"

मिश्रजी का लेक्चर समाप्त हुआ। आज उनके उपदेश की नई ज़मीन थी, नया आसमान। यह दुनिया ही अलग थी, यह हवा ही और थी। तमाम शिष्य-समाज में ऐसा सन्नाटा छा गया, मानो उस पर जादू चल गया हो।

विदाई की घड़ी आई। संध्यारती की मंगलध्वनि विषाद की रागिनी बन गई। मॉझ की वह आवाज़ कूच का डंका बन गई।

मिश्रजी ने दरो-दीवार पर हसरत-भरी निगाह डाली और बूढ़े-बच्चे, छोटे-बड़े, सबसे गले मिलकर, बग़ल में कम्बल दाबे, अनन्त के पथ पर चल निकले। उन्हे क़ैद से छूटने का उल्लास था या सुख-दुख-भरा घर छूटने का विषाद—किंवा अश्रु-हास-मिश्रित पुलक-वेदना का एक साथ सञ्चार. कौन कहे?

जो हो, उनके बचपन और जवानी की मधुर स्मृतियों से सिञ्चित वह लीला-भूमि सदा के लिये आँखों से ओझल हो गई। गाँव-भर की बहू-बेटियों ने खिड़कियों और दरवाज़ों पर खड़ी होकर उनकी महायात्रा के पथ पर पलकों के पाँवड़े बिछाये। कितने गाँववालों ने साथ-साथ स्टेशन तक जाकर उनकी चरण-धूलि को सर पर रखा। दो-चार शिष्य तो हरिद्वार तक साथ गये।

घर-घर विषाद छा गया। जिसे देखो उसी की आँख का कोना तर है। उनकी आजिज़ी उनकी खुशामिज़ाजी, उनकी उनकी दिलदारी, उनकी बन्दा-परवरी एक-एक की ज़बान पर थी। उनके अतीत-जीवन की कितनी छोटी-मोटी खामियाँ, आज खूबियों के तले जाने कहाँ गुम हो गईं!

धन्य है वह लौ की लपट जिसमे धात का खोटा भी जल-तपकर सोना-सा निखर आता है, और धन्य है वह नश्तर का नोक जो तुलसी ऐसे कामी को भी चीर-फाड कर तुलसी ऐसा प्रेमी बना देता है!

ऊनविंशति परिच्छेद

सन्ध्यारती की घंटा-ध्वनि है। दीवारों से उसकी प्रतिध्वनि उठ रही है। वही शंख की फूँक, वही झाझ की झङ्कार और वही घंटे की ध्वनि। पर, खाट पर लेटा हुई मिश्रानी के कलेजे पर वज्रटङ्कार-सी पड़ी, बेला के कानों पर कूच का घंटा बनकर बजी और श्रीधर के हृदय में दुन्दुभि की आवाज़-सी—प्रतिहारी की गुहार-सी गूँज गई। एक ही ध्वनि जिस आवेष्ठन में पड़ी, उसीके अनुकूल कड़वी या मीठी हो गई।

चन्द्रमौलि की चरण-चौकी पर केसर-चन्दन, धूप-दीप, फल-फूल—सब सजे हैं। थालों में लड्डू और पेड़े हैं। सुगन्धि से कमरा आच्छन्न है।

श्रीधर ने आरती उतारी; प्रसाद बाँटा। मन्दिर के दाहिने प्रांगण में स्त्रियाँ खड़ी होतीं। वे आरती लेतीं, प्रसाद पातीं।

श्रीधर ने देखा, उस टोली मे बेला नहीं है। वह प्रसाद का दोना किसे देता ?

भीड़ छँटी तो श्रीधर ने जयदेव मिश्र से झुककर पूछा—"क्यों चाचा ! आज बेला नहीं आई !"

"सच तो ! बात क्या है ?"—जयदेव मिश्र ने माथा खुजलाकर कहा।

"जरा खबर तो दो !"

श्रीधर के शब्दों मे आदेश की एक सूक्ष्म ध्वनि है। निस्सन्देह कल तक बेला को बुलाने की मजाल न थी—न आँगन मे जाकर बात करने की। पर, आज तो वह चचा की गद्दी पर विराजमान है। छोटे-बड़े सभी उसके हुक्म के बन्दे हैं।

जयदेव मिश्र सीधे-सादे बूढ़े व्यक्ति थे—दुनिया के तहपेंच से अपरिचित। वे फौरन् अन्दर चल पडे।

बेला गङ्गा और यमुना की सेवा में उलझी हुई थी। उन्हे खिला-पिलाकर आँचल से मुँह झाड रही थी। उसकी आँखो का कोना तर था। वह सोच रही थी—"इतने दिनो तक तो दाँत-काटी रोटी का सम्बन्ध रहा, अब यह चोली-दामन का साथ छूटने का दिन आ गया !"

यह सोच-सोचकर बेला का कलेजा मुँह को आ जाता था। "पर, इस दुनिया मे कौन किसका साथ देता है ? न बेटा ने दिया, न पति ने। एक दिन इस शरीर से—इस नाम से—भी साथ छूटना है ! और, मैं न रहूँगी, तो क्या इस घर का

कोई काम बन्द रहेगा? गङ्गा और यमुना की देख-रेख न होगी? आज मिश्रजी नहीं है, तो सन्ध्यारती का घटा न बजा? चूल्हा न जला? दाल में घी न पड़ा? मैं न रहूँगी, सुधा तो रहेगी? मैंने उसे भार भी सौंप दिया है। लेकिन, दिल की तसल्ली तो नहीं होती। इस छली दुनिया में ऐसी वेज़बान निष्कपट हृदय की आत्मीयता कहाँ मिल सकती है?"

बेला के मरुजीवन में यह ममता का सोत मन्दाकिनी का सोत था।

"बेला! श्रीधर महाराज बुला रहे हैं।"—जयदेव मिश्र ने आते-ही-आते कहा।

"श्रीधर महाराज बुला रहे हैं मुझे?"

बेला स्तम्भित-सी हो गई—"श्रीधर ने तो कभी आदमी भेजकर खुल्लमखुल्ला मुझे बुलवाया नहीं था। आज क्या रीति बदल गई? आज ही तख्त पर कदम रखा और आज ही डङ्के की चोट पर नादिरशाही की घोषणा! घर में चचानी मौजूद हैं, बहू है, ससुराल की दाई है—किसी का लिहाज़ नहीं?"

"हाँ, तुम्हें! तुम मन्दिर में प्रसाद लेने भी न आईं?"

"अच्छा, चलिये, आती हूँ।"

बेला कहकर चुप हो गई, पर गई नहीं। श्रीधर का दरजा जो बदल गया हो, बेला का दरजा तो वही था। श्रीधर को संकोच न हो, पर वह तो संकोच से ओतप्रोत थी।

वह खड़ी-खड़ी सोचती रही। तबतक सुधा चली आई। फिर तो बातों का ऐसा सिलसिला चला कि वह जाना ही भूल गई।

जब सुधा उस पार चौके में रोटी सेंकने चली, तब अचानक उसे जाने का फिर ख़याल हो आया। पर, अब रात काफ़ी हो चुकी थी। अँधेरे में वह कहाँ जाती? उसने सोचा—मुमकिन है, वे भूल गये हों।

जब आध घंटे के इन्तज़ार पर भी बेला न आई, तब श्रीधर खुद उठा। पहले वह सीधे चच्ची के पास गया। वे खाट पर बेख़बर पड़ी थीं। फिर दालान से निकलकर वह आँगन में आया, तो बिलकुल अँधेरा—घुप! वहाँ न कोई आदमी, न आदमज़ाद।

हाँ, चौके में सुधा दाल छौंक रही है। उसकी अंगूरी साड़ी का आँचल बाहर से भी नज़र आता है। तजपत्ते के बघार की खुशबू आँगन में फूली केतकी की सुगंध से मिलकर एक विचित्र महँक हवा में बिखेर रही है। सुधा के पिता के घर से डोली के हमराह आई हुई महरी ओसारे में बैठकर पतीली में बेसन घोल रही है।

श्रीधर दो मिनट तक वहीं ठमका रहा। आग की लौ से लोहित सुधा के किसलय-कपोल की झलक छन-भर उसकी चितवन पर चमक उठी। पर वह रुका नहीं। बस, सीधे आँगन पार कर बेला की कोठरी के निकट चला आया।

बेला चटाई पर बैठी अपने अतीत के चिता-भस्म को कुरेद रही थी। उसकी मानस-दृष्टि के आगे बचपन की कितनी ही धूमिल स्मृतियाँ एक-पर-एक पिली पड़ती थी; और वह न जाने किस आवेग मे विभोर उन्हे एक टक हेर रही थी। वह कुछ ऐसी भूली थी कि श्रीधर के पैरो की आहट कान के परदे के भीतर उतर न सकी।

चिराग की धुँधली रोशनी मे श्रीधर ने बेला के मुख की शतदलस्निग्ध सरस सुषमा देखी, और देखते-देखते दिल मे अचानक एक आग-सी भड़क उठी। वह एकाएक बेला के निकट सटकर चटाई पर बैठ गया, और उसके कंधे की चादर बेला के स्खलित आँचल स उलझ पड़ी।

बेला फौरन् आँचल समेटकर उठ खड़ी हुई और सरककर अलग चली गई। उसने देखा कि श्रीधर का चेहरा किसी आवेग से स्पन्दित-सा हो रहा है, उसके कंधे पर ज़री की चादर है और गले मे जूही का गजरा—ललाट पर रक्तचन्दन का तिलक और हाथ मे एक लाल जिल्दवाली पुस्तक—होठों पर एक मधुर हास की वङ्किम रेखा और आँखों मे एक क्षीण कामना की शिखा!

श्रीधर ने गले के गजरे को उतार लिया, और उँगलियों मे फेरता हुआ हँसकर बोला—"बेला! तुम बुलाने पर भी न आई और मैं बिना बुलाये भी चला आया। तुम्हें नारी की

लज्जा है, मुझे पुरुष की स्पर्द्धा। तुम्हे मान है, मुझे प्राण। तुम्हे नेम है, मुझे प्रेम।"

बेला चुप रही। वह क्या जवाब देती? उसने धीरे से दाँतो-तले होठो को दबाया और कसकर दिल को मुट्ठी में थामा—ऐसा न हो कि कि ी आवेग पर उसके पैर उखर पडें।

केतकी का फूल परिमल की डाली लिये चारो ओर मँडराता ही रहा, पर बेला पर सुगन्धि की मोहिनी एक न चली।

आकाश पर बादल उमड़ रहे हैं और पुरवैया के झोके नीम की डालियो पर छलाँग भर रहे हैं।

"क्या सचमुच तुम्हारी छाती मे हृदय नही? महज हृदयहीन बुद्धि का ही आधिपत्य है? बेला! हृदय पीयूष है, विवेक विष।"

"महाराज! आपकी छाती मे प्रेम की सुधा हो, मेरी छाती मे विवेक का विष, आपके लिए सुधा कल्याणी है, मेरे लिए कल्याण-प्रद विष।"

बेला के शरीर का एक-एक जर्रा सतर्क था।

"नही। मैं तो समझता हूँ, नारी का सर्वस्व हृदय है, विवेक नही। उसके जीवन की सार्थकता प्रेम है, संयम नही।"

"प्रेम के माथे का मणि संयम है, काम नही, उसका तेज त्याग है, आग नही।"—बेला धीरे-धीरे, पर मीठे स्वर मे, बोली—"अतृप्त आकांक्षा ही प्रेम का अमिट सौरभ है। उसासो के समीर से—आँसुओ के नीर से—प्रेम की मंजरी

जीती-जागती, अमरत्व पाती है। हजारों वर्ष बीत गये, गोपियों के आँसू आज तक सूखे नहीं—उस प्रवाह से लक्ष-लक्ष हृदय निरन्तर भागते चले आये, युग-युग भीगते रहेंगे। उनकी व्यथा कितने सहृदय मर्म की पोर-पोर में बजती चली आई। महाराज! गोकुल का विरहोच्छ्वास अक्षय्य मधुभांडार बनकर जगत् में व्याप्त है। रुक्मिणी का सुहाग उनके हृदय के तारों पर ही बजकर रह गया, राधा का विरह विश्व का अमर संगीत बनकर आज भी जीवित-झंकृत है। मैं तो समझती हूँ, प्रेम की परिणति रति नहीं होती, विरति होती है, परितृप्ति तो उसकी समाधि है। वियोग ही प्रेमयोग का आधार है—उपभोग तो एक विकार है।"

श्रीधर सर झुकाए सुनता रहा। फिर आँखें उठाकर बेला को देखा। एक क्षण देखता रहा। और, जरा हँसकर बोला—"बेला, प्रेम क्या है—इसे तुम जानती भी हो? अगर जानती भी होगी, तो कहीं यह भाषा में व्यक्त हो सका है? मैं तो समझता हूँ, इसकी तीन सीढ़ियाँ हैं, पहली—प्राणों से प्राणों का परिचय, दूसरी—प्राणों से प्राणों का परिणय, आखिरी—प्राणों में प्राणों को लय—दो का खिंचकर एक हो जाना। प्रेम का चरम परिणाम अभेद है, भेद नहीं, संयोग है, वियोग नहीं। विरह तो एक अन्तराय है, और उस अन्तराय से वह आकांक्षा, वह आकर्षण और भी तीव्र हो जाता है। जब लगन की लौ होगी, तो कोई भी बाधा उस आँच पर टिक नहीं

सकती। गोपियो की बाधा उनकी पत थी, उनके पति थे; उनका शील था, उनका कुल था। मगर, ये तमाम बाधाएं एक क्षण भी उनके दामन को थाम सकीं? प्रेम-मुरली की टेर पर कोई गले का हार बरक़रार रह सका? सब टूट गया। आज वही कलंक उनका तिलक है। यह जीवात्मा भी जब प्रकृति की कंचुकी को उतारकर फेंक देती है, तभी वह प्रेमास्पद के पूर्ण मिलन को पाती है। बेला, तुम्हारे हृदय मे भी वह मुरली बजती, तो फिर इस विश्व में कौन-सी बाधा रोड़े अटका सकती?"

"मेरी बाधा आपकी मर्यादा है। आपका जीवन उपभोग के लिए नहीं, उपयोग के लिए है। मेरी बाधा आपकी - "

"सुधा है, क्यो?"—श्रीधर ने ज़रा तिनक कर पूछा—"खैर, जान दो। तुम्हारे हाथ मे यह किताब कौन-सी है?"

बेला खड़ी-खड़ी अनमनी-सी एक पुस्तक के पन्ने उलट रही थी।

"प्रेम-सागर।"

"अच्छा! ठीक है। बेला, तुम चचाजी से धर्म की सैकडों किताबें पढ़ चुकी। चलो, मुझसे ब्रजलीला सुनो—पुनीत प्रेम की कथा पढ़ो।"

बेला चुप थी। उसके हृदय के तमाम भाव-पुंज उसके चेहरे पर बिखर आये। उसने आँचल को सर पर और खींच लिया।

"बेला, कहो, किस वक्त आकर मुझसे पढ़ा करोगी ?"—श्रीधर ने कनखियों से उसका मुँह जोहते हुए कहा।

भला, बेला फिर गुरुजी से पढ़ने का नाम लेती ? वह सर झुकाए चुप खड़ी रही। फिर सँभलकर बोली—"महाराज, आखिर मैं कब तक यहाँ पड़ी-पड़ी पापड़ बेलती रहूँगी ?"

"अच्छा ! ··यहाँ रहना पापड़ बेलना है !"—श्रीधर ने ज़रा मुँह बनाकर रुखाई के साथ कहा—"और बाहर जाओगी, तो मोतियों में तुलोगी ! उस दिन बाहर मेले में गई थी न ? जो लुत्ती लगी थी, उसे भूल गई ? हुँह ! दामन न जला, यही बहुत हुआ !"

"महाराज ! बाहर की उड़ती हुई लुत्ती से कहीं ज्यादा घर के चिराग़ में आग लगने का डर होता है—मैं भूली नहीं हूँ।"

"समझ गया, तुम्हें भी बाज़ार की हवा लग गई !" श्रीधर ने कंधा झाड़कर कहा। उसके नथने फूल रहे थे।

"मेरे लिए तो हर जगह की हवा बराबर है जो यहाँ घर की हवा है, वही बाज़ार की हवा है !"

"ओ हो ! यह बात है ? तब यहीं मौज करो ! मैं तो पतंग बनकर निछावर हो ही चुका हूँ !"

"आपकी महफ़िल में तो खुद चिराग रौशन है। आप गैर की बुझती हुई शमा पर क्यों पतंग बनने लगे ?"

"इस सवाल का जवाब मेरे दिल की बेताबी से तलब करो—मैं क्या कहूँ ? तुम तो मेरे लिए ईद का चाँद बनी हो !"

—श्रीधर ने कलेजे पर हाथ रखकर कहा।

"महाराज, मैंने आप ही का मुँह देखकर अपने दिलपर सिल रखा। नहीं तो, मै किस खेत की मूली हूँ? यह तय है कि मैं यहाँ रहकर आपकी कामना की आग मे घी न बनूँगी। आपके सुख मे काँटा "

"तो उस नम्बरी नीच 'नेता' के साथ जाओगी?"—श्रीधर झल्लाकर बोला। उसका चेहरा तमतमा रहा था; आँखे लाल टमाटर हो रही थीं, गरदन की चादर कमर पर आ गई थी।

बेला चुपचाप सर झुकाए पैर के नख से धरती कुरेदती रही।

"बेला, क्यो अपनी ज़िन्दगी भी तबाह करती हो, और मेरी भी? मैं तो विवाह करने पर भी तैयार था, तुम्हीं ने रास्ता बन्द कर डाला।"

"भगवान ने ही रास्ता बन्द कर दिया है—मेरी क्या बिसात? मेरी सूनी माँग पर अब सिन्दूर जगेगा? इस सर पर अब कफन बाँधना ठीक होगा या सेहरा?"

"तुम भूल करती हो। सिन्दूर जगेगा, न कफन बँधेगा। मैं तो समझता हूँ, तुम्हारी माँग पर मोती का जुगनू होगा और पैर मे चाँदा का घुँघरू!"—श्रीधर ने रूखी हँसी हँसकर कहा। उसका खून उबाल पर था। संयम का बाँध तिलमिला रहा था।

"वही सही! इस आग पर लोटने से तो जान बचेगी!"

बेला ने सर झुकाकर इस तरह कहा, मानो अपने दिल से कह रही हो।

"किसी ने तुम्हे न्योता देकर तो यहाँ बुलाया न था। आई तुम अपनी खुशी से ! ·"

"और अपनी खुशी से जाऊँगी !"—बेला ने बीच मे बात काट दी। वह भी खीझ पड़ी।

"तो सचमुच तुम दूकान खोलने चली ? यहाँ शरीफो की मजलिस मे जी ऊब गया ?"—श्रीधर के तूणीर मे ये विष से बुझे बाण थे।

"यहाँ रहकर कब मेरी गिनती शरीफो मे हुई या होगी ?" —बेला ने तिनक कर पूछा।

"पहले चेहरे पर शराफ़त का पानी तो हो ! नाक कटी न रहती "

"आज मैं आपकी बातों मे आकर आपके गले का हार रहती, तब तो पानी मे कमी न होती ? आज मैं रखेली न बनी, चहेती न बना, इसीसे न शरीफो मे शुमार नहीं ? खैर, मेरी नाक कटी, तो कटी, आपकी नाक तो ऊँची रहे !" —बेला ने जोश मे आकर तड़प कर कहा।

श्रीधर बिलकुल लाल हो गया। एकाएक उसे इतना ग़ुस्सा चढ़ आया कि आदमी के लिबास मे रहना मुश्किल हो गया। वह कभी का ऐसा सख्त नहीं था, पर आज उसे न जाने क्या हो गया। इधर महीनों से वह दर्द-दिल की दवा की तलाश मे

बूटी छानने लगा था। जब जान अन्दर-ही-अन्दर घुलने लगती है, तब बग़ैर बेखुदी के जान में जान नही पडती। आज वही सब्ज़ परी सर पर सवार होकर ज़बान उभार रही थी। अक्सर आदमी उसी पर दिल के फफोले फोडता है, जिसपर वह आठो पहर दिल निसार करता है।

श्रीधर दाँत पीसकर बोला—"ओ हो! तुम्हारी मीठी जबान के तले एक और भी तीती ज़बान है! तुम भी आवाज कसना जानती हो! तुम्हारी लाज की चादर कुछ मेरे घर मे नही उतरी, इसे क्यो भूल जाती हो? अबतक तुम बाज़ार मे दलालो की जूतियाँ सीधी करती रहती। मैंने अपने सर कलङ्क लेकर तुम्हे यहाँ शरण दी—और तुम यह अच्छा नमक अदा करती हो! जाओ, बाज़ार ही मे तुम्हारा गुज़र होगा, यहाँ नही! गली की कुतिया कभी घर मे पोस नही मानती।"

श्रीधर तमतमाया हुआ लौट पडा।

"जाती हूँ महाराज! आपका शाप मेरे लिए सुहाग का आशीर्वाद हो!"

श्रीधर ने साफ़ सुना तक नही। जब वह आँगन पार कर रसोई-घर के निकट आया, तब उसे खयाल हुआ कि वह नाहक बेला पर ज़रूरत से ज्यादा सख्त हो गया। 'आखिर उस बिचारी को मैने बेवजह जली-कटी सुना दी। उसने तो मेरे ही हित के लिए कलेजे पर सिल रक्खा। वह दिल से तो अलग करती नही, शरीर से अलग करती है। और, मै इस त्याग

की महत्ता को सर पर उठा नहीं सकता। वह मेरे दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए खुद बे-शरम होकर बाज़ार की खाक छानने को भी तैयार है, और मेरी पलक भी नही पसीजती! चचा के जाते ही मैदान खाली समझकर मुझपर काम का भूत सवार हो गया। छि. छि! मैंने यह क्या कर डाला?'

श्रीधर पलट पड़ा। वह चाहता था कि घायल बेला के दिल मे चुभे हुए तीर को मुलायम हाथों से निकाल ले।

इतने ही मे उसकी ससुराल की महरी सामने आ गई और ज़रा रास्ता रोकती हुई बोली—"बाबू! रोटी ठंढी हो रही है। आप अँधेरे मे कहाँ चक्कर काट रहे हैं? पानी आ गया। अन्दर खाने चलिये।"

श्रीधर शर्म से गड़ गया। वह फौरन् चौके मे घुस गया। बूँदो की टपाटप शुरू हो गई।

सावन की झडी बँध गई। श्रीधर रुक गया। बातों-ही-बातो मे दाई मीठी चुटकियाँ ले गई—इतना वह समझ गया। उसके दिल मे खटका होने लगा—'वह कुछ जानती तो नही? किसीने कान तो नही भरा? हो-न हो, यह गनेस बहू की शरारत होगी! वही धुएँ के बादल उडा सकती है। कही सुध के कान तक न डौड़ी पिट गई हो! मै तो शादी के बाद भी इधर-उधर कन्नी कटाता फिरता था; कही यही सोचकर

तो महरी ने तिल का ताड़ नहीं कर दिया ? सुधा क्या समझती होगी ?'

श्रीधर की धोती ढीली हो गई। उसे डर हो गया कि वह सुधा की नज़रों से गिर गया होगा। उसके सामने तो उसे अपनी नाक पर मक्खी नहीं बैठने देना था। बेला की दिलजोई का ख़याल बिलकुल जाता रहा—भूल गई बिचारी बेला। उसने सुधा पर रंग जमाना चाहा।

वह चौके पर बैठ चुका था। थाल में रोटियाँ भी पड़ चुकी थीं। सुधा कढ़ी की कटोरी जो रखने लगी, तो श्रीधर ने उसका आँचल थाम लिया, और साथ खाने के लिए इसरार किया। वह बरज़िद हो गया कि जबतक वह साथ बैठकर नहीं खाती, वह दूसरा लुकमा नहीं उठाता।

सुधा का चेहरा सुर्ख़ हो गया—शर्म से और सुहाग से। मुहब्बत की खींचतान चली। आख़िर सुधा वहीं सटकर बैठ गई।

श्रीधर ने रोटी का टुकड़ा दाल में भिगोया और सुधा के मुँह में थमाया, सुधा ने भी रोटी का टुकड़ा कढ़ी में डुबोकर श्रीधर के मुँह में डाला। यही सिलसिला चला।

खुली खिड़कियों से केतकी की गन्ध कोठरी में बिखर चली है। बाहर पानी की झमझम मलार की ध्वनि हो रही है।

उधर श्रीधर के पलटते ही बेला फौरन् मकान छोड़ने पर उतारू हो गई। पास में कुछ सामान तो था नहीं; दो-तीन

कपड़े थे, एक कम्बल और एक रामायण की पुरानी पुस्तक। बस, चटपट पोटली बाँधी। गङ्गा और यमुना से एक क्षण लिपट कर रोई। रोया न गया। दिल की जलन मे आँखो का पानी छन्न हो गया!

वह बिलकुल बदहवास हो रही थी। पोटली लिये चल पडी। न पानी की बूँदो की सुध थी, न पुरवैया के झोको की। जब बीचोबीच आँगन मे आई, तब कानो मे ऐसी आवाज़ पडी, मानो कोई उसे पुकार रहा हो। मुड़कर देखा, तो श्रीधर के ससुराल की महरी थी—"क्यो पानी मे भीगती हो बीबी? बाबू को तलाश रही हो? ज़रा दम लो! उन्हें रोटी भी तो खा लेने दो!"

बेला सन्न हो गई। चोट पर चोट! मन-ही-मन वह सोचने लगी—"मैं ही एक इस संसार मे कलेजेवाली हूँ? मेरे ही सर पर लगातार वार पर वार?"

वह समझ गई कि आज श्रीधर का अकेले अँधेरे मे आकर उससे मिलना ज़हर हो गया। महरी की ज़बान मे विष की चाशनी थी। सुधा भी सुनेगी, मिश्रानी भी सुनेगी; और कल सुबह मे गनेस बहू मुहल्ले मे नक्कारा बजाती फिरेगी। अब तो एक क्षण भी यहाँ टिकना अपने सर पर नई आफत मोल लेना है। बची खुची इज्ज़त भी धूल मे मिल जायगी।

बेला वहीं ठमककर खडी हो गई। सामने ही रसोई-घर था। खिड़की खुली थी। देखा, श्रीधर सुधा का आँचल अपनी

ओर खीच रहा है, सुधा लाज और अनुराग मे पुलकित हो तिल-तिल उसके बाहुपाश मे चुई जा रही है। श्रीधर के चेहरे पर विलास-चंचल लावण्य का गुलाल है, सुधा के चेहरे पर लज्जारक्तिम सुहाग का संचार।

वह आगे देख न सकी, न महरी के दृष्टि-पथ पर आगे बढ सकी; उलटे पॉव ओसारे मे पलट आई। खम्भे पर कमर टेककर खडी रही। दस बजे। ग्यारह बजे। बारह बजे। वह पत्थर की प्रतिमा-सी खडी रही। उसके हृत्स्पदन की गति कैसी है, मन की गति कैसी है या दोनो शरीर ही की तरह निस्पन्द-निश्चेष्ट हैं – कौन कहे ?

केतकी ने लखलखा लाकर नाक पर रखा, आकाश भी—न जाने किस वेदना से पागल होकर—बारबार उसके कानो मे चिल्लाता रहा, पुरवैया का झोंका उसके कंधे और छाती से झटके दे-देकर लगातार आँचल उडाता रहा, बिजली आँखो के सामने थम-थमकर आतिशबाजियो की छटा दिखाती रही; पर उसने न कुछ सुना, न देखा, न सूँघा और न हिलने का नाम ही लिया।

वह किसी गहरे सोच मे थी, या उसकी सोचने की भी सत्ता जाती रही थी—भगवान् जाने! उसका आँचल का छोर भीगकर तर हो गया। सर के बाल भीग गये, लटे बँध गईं।

एक बजा। दो बजे। बेला हिली और बूँदो की रिमझिम मे चल पडी। आँगन मे श्मशान-विभीषिका मुँह बाये खड़ी

है। बेला डरी नहीं, आगे बढ़ी। सुधा के कमरे के सामने आई, तो बन्द किवाड़ो की फाँक से भीतर की हल्की रोशनी झाँक रही थी। गुलाबी हँसी की आवाज भी सुन पड़ी। बरसाती रात की सुहाग-वर्षा!

उसने छन-भर ठमककर उस कमरे की ओर देखा। फिर न जाने किस उद्देश्य से दोनों हाथों को जोड़कर सर तक ले गई। होठों तक एक साँस उठी; बरौनियों पर दो बूँद ठहरी।

सहसा कमरे के भीतर खड़ाऊँ की चट-चट आवाज हुई। बेला ऐसी चमक उठी, मानों कानों के पास बन्दूक छूटी हो। वह लपककर बाहरी दरवाजे पर आई, झटके के साथ कुंडी खोली और उस गीली अँधियाली में—सागर मे बूँद की तरह—मिल गई!

तमाम मकान—तमाम आँगन—मे एक निर्शीथ नीरवता छा गई। केवल गङ्गा और यमुना, न जाने किस आशंका से आकुल, बार-बार चिल्ला उठती थी, और उनकी करुण कातर चीत्कार वर्षा-पात के क्षीण कोलाहल से मिलकर दीवारों पर प्रतिध्वनित होती रही।

द्वितीय खंड

बिजली

प्रथम परिच्छेद

"आखिर, यह बहिश्त की कुमरी कहाँ से उड़ा लाये यार ?"

"अजी, कुमरी नहीं—राजहंसी है, और वह चुगती है मोती !"

"मोती ? फिर तो म्याँ, तुम्हें मोती की खेती करनी होगी ?"

"जी हाँ, यही तो आफत है ! मोती लाऊँ तो कहाँ से लाऊँ ?"—सलीम ने हँसकर कहा।

"भाईजान ! दुनिया के समुन्दर मे कुछ मोती की कमी नहीं, पर किनारे बैठकर बालू उधेड़ने से तो वह नसीब नहीं होने का ? यहाँ जान हथेली पर रख डूबकर ढूँढ़ना होगा।"

"सुनिये, क़िबला ! मुझे डूबने से इनकार नहीं। पर यह भी तो पता चले कि कहाँ—किस दायरे मे—डूबना होगा ? तमाम समुन्दर छान डालना तो इमकान से बाहर है।"

"म्याँ सलीम, आसमान से तारे तोडने की हिम्मत रखनी होगी। चाँदी की फ़सल काटना कुछ चने की खेती नहीं है।

यहाँ तह तोड़ना है और ऍड़ी का पसीना चोटी तक लाना है।"

"कहीं सरकारी मुलाज़मत भी मिल जाती "

"तुम ख्वाब तो नहीं देखते? इसी को आसान समझ रखा है? बस, कमन्द फेंकी और लबे-बाम पर जा टपके! और फिर तो साकी है, कबाब है, शराब है! अभी तुम्हें उस कूचे की हवा नहीं लगी। भई, इसे माशूक की लटों का जाल समझो। यहाँ बरसों भटकते फिरोगे। किरानियों की जेब गरम करो, चपरासियों के पान-पत्ते के लिए हाज़िर रहो, साहबों की सिफ़ारशी चिट्ठियाँ लाओ, सिरिश्तेदार के साले की चिलम भरो, उनकी हमशीरे की फरमाइशें पूरी करो और दिन में दस बार चौखट पर नाक रगड़ो, तब तो कहीं मुकद्दर चमका और बीस-पचीस की नौकरी मिली। नौकरी क्या मिली, गरदन में गुलामी का तौक लटका। फिर ज़िन्दगी-भर अफ़सरों की जूतियों पर पेशानी की पालिश करो। तुम तो अभी ग्रैजुएट भी न हुए। तुम्हारी वक़त ही क्या है? म्याँ, नौकरी की उम्मीदवारी शैतान की आँत है। जो इस चक्कर में पड़ा, वह गल-पचकर रह गया; समझे? फ़जे करो, इस जाँफ़िशानी पर पचास की नौकरी भी मिली, तो यह रक़म तो बेगम साहबा की कंघी-चोटी के खर्च के लिए भी काफ़ी न होगी। पहले इस शहर में हुज़ूर को पहचानता ही कौन है? और पहचान करानेवाला कौन है?"

"क्यों? आप इतनी मदद भी न देंगे? आपसे तो कुछ

परदा रहा नहीं। यहाँ आये मुद्दत हो गई। जेब आज जवाब दे या कल। अब कमरे का किराया भी चलना दुश्वार है। दो दिन में बिजली का जेवर गिरो रखना पड़ेगा और मैं इस ज़िल्लत के सदमे को "

"वाह! इतने ही पर मैदान हार गये? अजी, यह भी कोई बात है? अभी तो इब्तिदा है। नई उल्फ़त की नई लज़्ज़त बड़ी मसर्रत लाती है। आँखों पर एक सुरूर-सा छाया रहता है, और वह नशा का बादल इतना घना होता है कि दूर तक नज़र कभी जाती नहीं। दूर तक नज़र जाती, तो कभी तुम इस उल्फ़त की आग में कूदकर यहाँ आते? जिस दिन बीवी की गरदन की चेन जेब में रखे सर्राफ़ों की दूकान की मटरगश्ती का हाजत होगी, उसी दिन यह सुरूर आप-से-आप काफ़ूर हो जायगा। तभी तुम्हें मालूम होगा कि दुनिया कितनी सख़्त है, और दोस्तों की तोताचश्मी नेज़े की नोक है—मस्ती की मसर्रत दो घड़ी की चाँदनी है। जिस रास्ते पर तुमने क़दम रखा है, उस रास्ते पर कभी मुफ़लिस नहीं चलता। और, अगर उस चलना भी पड़े, तो मियाँ-बीवी दोनों को एक-दिल होकर तलवार की धार पर चलने के लिए बराबर तैयार रहना चाहिये। शान-शौकत को दूर ही से सलाम करना होगा; कबाब-कोरमे के बदले भुने चने पर आँत की आँच बुझानी होगी। सर पर खुंचा लेकर गली-गली को चहलक़दमी करनी पड़ेगी, और बीवी साहबा को आग में पककर खुंचे का

सामान तैयार करना पड़ेगा। अब तुम्ही कहो, तुमसे यह गलियो की गर्दखोरी होने को है? और, फूलो मे तुली हुई फ़ैशनपरस्त बेगम साहबा की नाजुकी तन्दूर की आँच बरदाश्त कर सकेगी? तुम दुनिया का लुत्फ भी उठाते रहोगे और पैर पर पैर भी रखोगे? यह भी कोई बात है? हाँ, यह तभी मुमकिन था, जब तुम किसी रियासत के तालुकेदार होते और रैयतो के पसीने की कमाई पर खुदादाद हक होता।"

"तो क्या सरकारी नौकरी की उम्मीद "

"माशल्ला! तुम अभी तक वही ख्वाब देख रहे हो! खुदा जाने, तुम कहाँ के रहनेवाले हो! यहाँ तुम्हे जानता कौन है? मैं इस तूफान-बेतमीज़ी मे हाथ नही बँटाता। मैने इस दोजखी कूचे की सूरत तक नही देखी है—सिरिश्तेदार साहब के दरवार मे मुजरा बजाना तो दूर रहे, मेरा तो उसूल है—'खुदा के घर भी न जायेगे बे-बुलाये हुए!' तुम कल से इस गली की खाक छानने चलो, तो खुद ही आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा। भाईजान! अब वह ज़माना लद गया। खुदा मिले तो मिले, नौकरी नही मिलती।"

"तो आखिर कोई रास्ता निकालियेगा भी कि यो औलिए की तरह नसीहत ही झाड़ते रहियेगा? है कोई सूरत?"

"भई, मैं तो रोज़गार का कायल हूँ। ज़माना हुआ, जब मै इस शहर मे पहले-पहल आया था। मेरी दोनो जेब बिलकुल हवा मे उड़ती थी और चेहरे पर खाक उड़ रही थी। तुम तो

दोनों वक्त, पुलाव-मुतंजन पर हाथ साफ़ कर रहे हो; कहाँ मैं पेट बजाता फिरता था !

"इसी ठनठनिया-बाज़ार में एक बूढ़ी फूफी थी, जो ख़ुद बिचारी दाने-दाने को मुहताज थी। मैं दिन-भर किसी धन्धे की तलाश में बाज़ार की ख़ाक छानता और रात को वहीं आकर कमर सीधी करता। कुली-कबारी का काम भी बाकी न रखा। जब साल-भर की मशक़्क़त पर जेब ज़रा खनखना उठी, तब वही बरामदे पर कबाब-रोटी की दूकान कर ली। फूफी के हाथ की रोगनी और बाक़रख़ानी, सीक-कबाब और बिरियानी की शुहरत धन्नूमल की मशहूर दुकान के कचालू और फुलौरी से बाज़ी मार ले गई। बस, मार ख़रीदार ही ख़रीदार हो गया। हिन्दू-मुसलमान, पारसी-क्रिस्तान—कुछ ठिकाना था ? कितने घरों की कंठी टूटी। सैकड़ों ज़ुन्नारवालों की नाक कटी। चारों ओर डौड़ी पिट गई। रमज़ान के ज़माने में रोज़े-आफ़तार की चटपटी चीजें, चने की घुघनी और खटमीठी चटनी तमाम शहर के रईस और हुक्काम की दिलरुबा बन गई। यों ही, साल-दो-साल गुज़रे। कबाब-रोटी से भुनी खिचड़ी, भुनी खिचड़ी से पुलाव-ज़र्दा, पुलाव-ज़र्दे से चॉप-कटलेट, चॉप-कटलेट से चाय-बिस्कुट, चाय-बिस्कुट से पोच-आमलेट, पोच-आमलेट से बाज़ाब्ता लञ्च-डिनर तक मोसल-मल तरक्की होती गई।

"मुझे एक मालदार कलाल मिल गया—मिस्टर

शामलाल। उसे आधे का शरीकदार कर लिया। वह तीन हाथ की छोटी दूकान आज शहर का आलीशान होटल हो गई। आज इस होटल मे साहब और सूबेदार, नवाब और राजे, वकील और बारिस्टर, सेठ और साहूकार—सभी आकर हफ्तो मौज करते हैं। यह अमीरो की जियारत की जगह बन गई है। सच मानो, हमारे यहाँ की फरमाइशी मक्खन और डबल रोटी, केक और पेस्ट्री, क्रीम और रट्टावेरी, अँगरेज़ी होटलो की तैयारियो से लोहा लेती है। हमारा हेड खानसामा 'हमीद'—वल्लाह! जिस कमाल का क्लैरेट-कप और कॉकटेल तैयार करता है, उस मुकाबले मे जामेकौसर की लज्जत भी फीकी है। सब्र की डाल मे मेवा फलता है, यार! अभी तुम्हारा जवानी का सिन है, गुले-बकावली भी तोड लाना दुश्वार नहीं —हिम्मते मरदाँ मददे ख़ुदा!"

"वाक़ई आपका फ़रमाना बजा है। फिर भी, बाज़ी लड जाने की बात है। नहीं तो, सैकडों कबाब-रोटी बेचनेवाले आँत की आँच मे पककर ख़ुद कबाब हो गये। आपका सितारा बुलन्दी पर है, मिट्टी भी छूने से सोना बन जायगी। भाई-साहब, मुझे हिम्मत की कमी नहीं, जो कमी है, पैसे की। और, सर पर ख़ुंचा लेकर बाज़ार की ख़ाक उडाते फिरना—गुलाब-रेवडी हो या कबाब-रोटी—मुझसे तो कभी मुमकिन नहीं। मुझे फाक़े मस्ती क़बूल है, मगर यह ज़िल्लत की टोकरी ···क्या कहूँ—

"इश्क़ ने 'ग़ालिब' निकम्मा कर दिया,
वरना हम भी आदमी थे काम के!"

"तुम इसे ज़िल्लत समझते हो; मगर इस इश्क का अंजाम तो दूसरा नहीं। वल्लाह! तो फिर क्या समझकर तुमने इस कूचे मे क़दम रखा? हर रोज़ ईद होगी—कभी मुहर्रम नहीं, ऐसे तकदीर के साँड़ हो? जब घर मे दूध-शक्कर नहीं, तब ख़ाक ईद होगी?"

"जभी तो यहाँ की आसाइशें भी मेरे लिए आतिश के शरारे बन गई हैं! ख़ैर ·· "

सलीम उठा, कमीज़ का कफ उठाकर कलाई की घडी देखी, और घबराया-सा बोला—"ओफ़! चार बज गये।"

"सच! घडी तो, यार, तुम्हारी बे-नज़ीर है। रोल्ड-गोल्ड है न?"

"जी जनाब! अभीतक यह सर्राफ के सेफ मे नहीं गई। इसे ईमान की तरह बचाये रखता हूँ।"

सलीम चुप हो गया। उसकी आँखें छलछला उठीं। मैनेजर साहब ने उस ख़ूबसूरत जवान के कंधे पर हाथ रखा और उसे अपनी ओर खींच लिया।

"मियाँ सलीम! तुम नाहक इस कदर बेज़ार हो। आखिर किसी पहलू तो ऊँट बैठेगा ही। और, अगर किस्मत की चित्ती चित्त पड़ी, तो मोहरा लाल होने मे देर न होगी।"

"चित्त या पट— कोई एक तो होना ही है। आखिर बेकार

यहाँ कबतक टँगा रहूँगा ? इस धुकधुकी से तो कोई भी एक निपटारा—मरना या जीना—कहीं बेहतर है·····"

"तुम फिज़ूल हिम्मत हार बैठे हो। यह भी कोई बात है ? अगर तुम तनहा रहते, तो फिर कोई दिक़्त ही न होती। यह पुछल्ला जो तुम्हारे साथ है, यही जान की आफ़त है। तुम कहाँ-से-कहाँ इस ज़ालिम के जुल्फो मे असीर होने गये! तुम खुद ही कहते थे, अबतक तुम ग्रैजुयट हुए रहते। टेनिस मे तुमने कमाल का हाथ पाया है। तुम्हारे लिए तो डिप्टी-कलक्टरी धरी रखी थी। कहाँ आज अफसरी की धाक रहती —कहाँ

'किस्मत को देखिये तो टूटी कहाँ कमन्द,
दो-चार हाथ जबके लबे-बाम रह गया।"

—तुमने नाहक अपनी उम्मीदों को हलाल किया। अब तो सरकारी नौकरी जान से भी महँगी हो गई।"

"मैं खुद समझता हूँ। मगर, अब तो जो होने को था, सो हो गया। बिजली तो अब छूटती नहीं।"

"छूटती क्यों नहीं ? यह भी कोई बात है ? जब वह तुम्हारे लिए खुशी-खुशी तकलीफ़ नहीं झेल सकती—पुलाव की जगह सत्तू नहीं खा सकती, तो तुम ऐसी लहू-चूसनेवाली औरत के लिए क्यों तबाह होगे ? वह तो फ़ैशन की तितली है, नाज़ो-अन्दाज़ की पुतली—उसे तो चकल्लस का चमन चाहिये। वह कब किसी मसले हुए दिल की तसल्ली होगी या तुम्हारे घर

की रोशनी !···· आख़िर वह किस चमन का गुल है !···· अच्छा, तुम दीवार तड़प इसे तोडकर चम्पत हुए या जोशे-जवानी का तूफ़ान उसे खुद तुम्हारी महफ़िल मे उड़ा लाया !"

"क्या बताऊँ ! ··· जाने दीजिए—फ़ायदा क्या है ? उस वक्त तो मेरे सर पर भी वहशत सवार थी—बस, बिजली-ही-बिजली नज़र आती थी। मैं क्या जानता था कि चाँदनी के बाद ··· "

"अजी सुनो, मरदो की दानाई की कश्ती नाज़नीन के चेहरे के पानी की मौज पर बडी मुश्किल से ठहरती है; और कही जो बहककर उसकी मस्तानी आँखो के आँसू के भँवर मे जा पडी, तो फिर चक्कर खाकर डूबने मे कभी देर नही होती।"

सलीम ने सर झुका लिया। आख़िर रोज़गार तो आसमान से नही बरसता ! उसके लिए ज़मीन-आसमान एक करना पडेगा, तब कही कोई सूरत निकलेगी—इसी उधेड़-बुन मे वह माथा खुजलाता रह गया। मियाँ अहमद तो लेक्चर झाडकर चल दिये !

द्वितीय परिच्छेद

कोहनूर-होटल का लाउञ्ज-कमरा है। बीचोबीच में काकरेजी कश्मीरी कारपेट बिछी है। किनारों पर नक्काशी का काम है। जगह-जगह बाकायदा सोफे और कुर्सियाँ पड़ी हैं। कुर्सियों पर अब्बासी-क्रेटोन के गिलाफ हैं। सामने दरवाजों पर लहरिया कर्टेन लटक रहे हैं। करीब-करीब एक ही रंग की लहर दीवारों पर भी है और परदों पर भी। यहाँ तक कि नमदों और कालीनों पर भी उसी रंग के छींटे हैं। सफाई में विलायती बू है। सजावट में कमाल की सफाई है। वॉलनट की मेजों पर पीतल के गोल मोल गमले हैं। गमलों में पाम और क्रोटेन के पौदे खिले हैं। दीवारों पर विलायती मजाक की तस्वीरें हैं। मैंटिल-पीस पर हाथी-दाँत के नायाब खिलौने सजे हैं।

दिन का तीसरा पहर है। सलीम लंबे-चिड़की सोफे पर

बैठा हुआ है। नज़र है सामने की लॉन मे उछलते हुए बच्चो पर। नज़र के सामने इस खुशनुमा मंजर के होते हुए भी काश कोई उस वक्त उससे पूछ बैठता कि किस बच्चे ने कमाल की छलाँग भरी या कौन-सा बच्चा उलझकर झाड़ी पर गिर गया और सिसकता हुआ अम्मा की गोद मे चला गया, तो शायद वह हुक्के की तरह मुँह बा देता और भौचक-सा पूछनेवाले का मुँह ताकने लगता।

और हुआ भी यही। मिस्टर अहमद ने पीछे से कंधो को हिलाकर पूछा—"सलीम! क्या देख रहे हो? बच्चो का खेल-कूद? वल्लाह! किस सफाई से रजिया कैना की क्यारी टप गई!"

"जी हाँ, क्या बात है!"

सलीम ने हामी तो भर दी, पर उसने देखा तो कुछ था नहीं; गर्चे उसकी आँखें खुली ज़रूर थी।

आँखे तो इस घरौंदे की खिडकियाँ हैं। जबतक घरौंदे मे बसनेवाली रूह इन झरोखो पर नही बैठती, तबतक खिड़कियों के पल्ले खुले रहे या बन्द—दोनों बराबर है।

सलीम का मन कहीं और था, आँखो पर तो था नहीं। वह देखता क्या खाक? उसके चेहरे की सहज प्रफुल्लता पर विषाद की छाया सघन थी।

इस अनजान देश मे अभाव की आसन्न विभीषिका तथा नाजुकबदन बिजली के सजल लोचनो की सशङ्क चेष्टा ने

सलीम की आँखों के तले अँधेरा कर रखा था। उसी आच्छन्न अन्धकार के पाश से मुक्त होने के लिए वह चपल आकांक्षा-तुरङ्ग की पीठ पर सवार एक सुदूर मायामंडित स्वप्नलोक मे विचर रहा था।

धीरे-धीरे उसकी खुली आँखो के परिसर पर एक ऐश्वर्य का नन्दन उभर पड़ा— ''' वह अलीबाबा की तरह किसी पर्वत के निभृत कन्दरे से अशर्फियो का खजाना खच्चरो की पीठ पर लादकर घर लौटता है, और फूस की झोपडी के दरवाजे पर गाल पर हाथ रखे बाट जोहती हुई बिजली के क़दमों पर ला उझलता है। बिजली लिपटकर उसके होठो को चूम लेती है और दो दिन मे वह झोपडी शाही महलो से लोहा लेती है। '' उसके हाथ मे अलादीन का चिराग आ पड़ा है, जिसे रगड़ते ही एक खौफनाक-क़द जिन हाज़िर होकर उसके सूने घर को हीरे-जवाहरात से भर देता है। ''' उसके कोट की जेब मे सीमुर्ग का पर है, जिसे वह आग की लौ पर सोख्त करता है। उसी क्षण अपने चंगुलो मे मोहरो की थैलियाँ लटकाये वह सीमुर्ग आकाश पर प्रकट होता है और पलक मारते बिजली की टूटी खाट के चारो ओर चाँदी-सोने, मोती-मूँगे का अनन्त वैभव उमड़ पडता है। '' अहमद की पुरानी टूटी-फूटी कबाब-रोटी की दूकान के सामने उसकी मिठाई की दूकान खड़ी है, जहाँ सैकड़ो तरह की ज़ाफ़रानी शीरीनी और बर्फ़ियाँ, पिस्ते और बादाम की गिलौरियाँ, रेवड़ी और गुलाब-

जामुन, मगदल और हलुआ-सोहन कश्तियों में क़रीने से सजे हैं; और आधी रात को जिन्नात आकर टोकरियों से अशर्फियाँ उझल-उझलकर एक-एक चीज़ सौगुनी क़ीमत पर ख़रीद ले जाते हैं; और फिर नूरमहली पुलाव और अम्बरी बिरियानी में अशर्फ़ियों के बघार की ख़ुशबू से बिजली का नाज़ुक दिमाग़ चकरा उठता है''।

''इतने में ही पास के कमरे से मिस्टर अहमद की अँतड़ियाँ उझल देनेवाली ज़नाटे की ँसी की आवाज़ कानों पर टकराती है, और सलीम के हवाई महल की दीवारें इस कहक़हे के ज़लज़ले से चकनाचूर होकर उसके चारों ओर धूल में मिल जाती हैं। वह अपने स्वप्निल स्वर्ग से बेदार होकर अपनी पुरानी दुनिया में लौट आता है।

सलीम उठ खड़ा हुआ। उस अपनी नादानी की ख़याली दौड़ पर एक आह-भरी हँसी आई। उसने धीरे-धीरे कमरे में टहलना शुरू किया। उसकी निगाह सामने के बिल्लौरी आइने पर पड़ी। उसने देखा कि तीन साल के बने हुए लैवेंडरी ट्वीड का स्पोर्ट-जैकेट और पैंट बरसों के इस्तेमाल से धूमिल हो चले हैं। कोट की आस्तीन और पतलून की सतह पर शिकनों की मेड़ें उग आई हैं। कमीज़ के कफ की विपन्न सिकुड़न, कॉलर और टाई का कुम्हलाया हुआ जोबन, सहज-प्रसन्न चेहरे का उतरा हुआ कुन्दन—सभी उसकी आँखों के आगे शोले बनकर उभर पड़े।

वह मिनटो तक सर झुकाए खड़ा रहा। फिर आइने के सामने जाकर अपने शिकन-आलूदा लिबास को सीट-साट कर दुरुस्त किया; यौवन के सहज निखार के रोगन से चेहरे पर ताज़गी लाने की कोशिश की।

अब बिजली सोकर उठी होगी—यह सोचते हुए उसने अपने कमरे की ओर कदम रखा। वह दो क़दम भी न बढ़ा था कि मिस्टर अहमद चुरुट की आँधी उड़ाते, और हाथ मे छलकता हुआ पैमाना लिये, कमरे मे दाखिल हो गये। हँसकर बोले—"कहाँ चले हज़रत! वाह! आज भी तुम्हारी कफनी सूरत नहीं गई? क्या इरादा है, इसी होटल की लॉन पर एक शहीदे-नाज़ की तुरबत बनेगी?"

मिस्टर अहमद खिलखिलाकर हँस पड़े। सलीम ने भी मुस्कुरा दिया।

"अरे यार! ज़िन्दगी चार दिन की है और जवानी दो घड़ी की। क्यो फ़िज़ूल झखते हो? इस चाँद-से चेहरे पर मातम के बादलो का उभरना—यह भी कोई बात है? खाओ-पीओ, चैन करो, हर रोज़ ईद, हर रोज़ दिवाली"

"जनाब! मेरी महफ़िल की दिवाली तो गुल होने पर आई है।"—सलीम ने बात काटकर कहा।

"अजी, कौन कहता है, गुल होने पर आई है—यह भी कोई बात है? मैंने नवाब साहब को तुम्हारे लिए मजबूर किया है कि कोई जगह ज़रूर देनी होगी। दो सौ से कम की

दिलवाऊँ, तो मेरे नाम पर कुत्ता पाल रखना—समझे ?"

"कौन नवाब साहब ?"—सलीम ने उतावला होकर पूछा।

"यह सुनो! तुम जानते भी नहीं ? इसी होटल में उम्मेदपुर के नवाब साहब हफ्तों से ठहरे हुए हैं। चार-चार सूट आपके कब्ज़े में हैं। आप अवध के मशहूर तालुक़ेदार हैं। कौंसिल के मेम्बर भी। लाखों की रियासत है। आपकी नज़र पड़ी, तो तुम्हारी क़िस्मत पलट जायगी।"

"सच ! मज़ाक तो "

"मज़ाक—और तुमसे ! यह भी कोई बात है ? जानीवाकर को सलामत रहे !"—मिस्टर अहमद ने हाथ का लबरेज़ टम्बलर ज़रा ऊपर उठाते हुए फ़रमाया—"इसी के इक़बाल पर सितारे तोड़ लेता हूँ। नहीं तो, मेरी क्या बिसात ? अमाँ ! एक घूँट तुम भी लो। तुम्हारी रूह को फ़रहत होगी।"

"जी नहीं, मुआफ़ कीजिये।"—सलीम ने सिर हिलाकर जवाब दिया।

"वाह ! यह भी कोई बात है ? यह परहेज़ "

'मैंने तो आज तक पी ही नहीं।"

"हाय ! कम्बख्त, तूने पी ही नहीं ? ख़ैर, कुछ परवा नहीं, अब चखो।"

सलीम ने फिर सर हिलाया, और ज़रा पीछे हट गया।

"मैंने अभी ज़ुहर की नमाज़ पढ़ी है, तो भी मुझे इन्कार नहीं। और, तुम तो मियाँ, नमाज़ी भी नहीं ठहरे।"

—मिस्टर अहमद ने सलीम के मुँह पर गिलास तानकर कहा।

"लेकिन पीता नहीं हूँ।"—सलीम ने बड़ी आजिज़ी से जवाब दिया।

"सुनिये हज़रत! यह होटल है! कोई मक़बरा या मसजिद नहीं, और न जनाब को ही किसी खानकाह की सज्जादनशीनी मिलनी है। यहाँ पीरों और ज़ाहिदों का गुज़र नहीं। होटल में रहना और जानीवाकर से इनकार—यह भी कोई बात है? सच कहता हूँ, खुदा की कसम, अगर तुमने ज़्यादा चीं-चपड़ की, तो मैं सीने पर सवार होकर तुम्हारे मुँह में बोतल उँड़ेल दूँगा। अब्बाजान भी जन्नत से उतर आएँ, तो मैं टस-से-मस होनेवाला नहीं।"

अब सलीम बिचारा क्या करता? मिस्टर अहमद की दिलजोई ज़रूरी थी; नहीं तो, नवाब साहब तक रसाई कैसे होगी? अभी नज़र पलट दे, तो होटल के किराये के लिए वह बची-खुची रिस्टवाच भी किसी सर्राफ के मटके में जा पड़ेगी।

फिर, मिस्टर अहमद पुराने घाघ! उन्होंने सलीम के मग्वमसे को ताड लिया और लपककर छलकते हुए गिलास को मुँह में उँड़ेल ही तो डाला! वह शोले का पानी हलक से नीचे आते-आते उचककर सरपर चढ गया।

सलीम ने आँखें उठाकर देखा, कि नेचर के ज़र्रे-ज़र्रे पर

क्या रंग है, क्या निखार ! चारो ओर डोरंडे की टट्टियों और गुलाब की क्यारियो पर नई उमंगों का ऊधम। उसकी नस-नस मे बिजली की आँखो की बिजली-सी एक बिजली समा गई। उसके प्राणो की पोर-पोर मे मिसरी की पगी एक बेकली आ गई।

मिस्टर अहमद के कर्म-कटु जीवन मे दो ही तफरीह थी—एक सौरभ का आगार 'बरमा-सिगार', दूसरा पीयूष का आकर 'जानी-वाकर'। कभी मुँह मे स्कॉच शीराजी का रस होता, कभी दाँतो के दाब मे बरमा-चुरुट का कश।

जानी-वाकर का अभिन्न सहचर था सोडा-वाटर। जब शराब की शोखी सोडे की फ़ैयाज़ी से घुलकर शरबती हो जाती, तब धीरे-धीरे चुरुट-सेवन के साथ-साथ चुस्कियो का सिलसिला चलता। दिन-रात मे दर्जनो सोडावाटर की बोतलें आपके मशकनुमा शिकम मे विलीन हो जाती—पानी बनकर आती और पानी होकर निकल जातीं।

ह्विस्की का चसका कुछ आज से नहीं, बरसो से है। वह हलक से नीचे उतरते वक्त उचककर दिमाग तक नहीं आने पाती; न कभी सर पर सवार होने पाती। यही तो आपकी खास खूबी है।

यह बात नहीं कि आप मीने की गुलेनार परी पर दिलोजान से फ़िदा नहीं, मगर आपकी ऐयाशी या उल्फत के दायरे मे उस परी-पैकर की जगह दिल और आँखो तक थी;

कुछ सर तक नहीं। बस, आँखों पर एक हल्की सुरसुरी रहती और दिल में फरहत की गुदगुदी। पर दिमाग का दायरा निर्मल आकाश की तरह मेघमुक्त।

आप हमेशा शराब पीते रहे, पर आज तक किसी ने आपको शराबी नहीं समझा, न नशेबाजों में आपका शुमार रहा, चूँकि एक लहमे के लिए भी न आपकी जबान लड़खड़ाती, न सर चकर काटता। आपने दुनिया की लज्जत भी ली और जिल्लत से दामन भी पाक रखा।

यह बात न थी कि आप धर्मप्राण मुस्लिम नहीं थे और नियाज की शीरीनी और मौलूद-शरीफ़ की जलेबियों में आपका खर्च कसीर नहीं था। पर आखिर मीने की मोहनी कुछ ऐसी मोह-भरी थी कि मजहब की पाबन्दी कहाँ तक आपकी तमन्ना के दामन को थामती रहती! अल्लाह-रसूल का नाम लेकर आप पौ फटते बिस्तर से उठते, वज़ करते, नमाज़ पढ़ते, फिर वजीफा पढ़ने बैठ जाते। वहाँ से उठते, तो सीधे शाहसाहब की दरगाह में जाते, फातिहा पढ़ते और लौटती बेर फाटक पर टक लगाये अंधों को और दिन एक अधन्नी और जुमे के दिन एक एकन्नी अता करते।

आपकी उम्र लगभग पचपन की होगी। मयाना कद। थुलथुल बदन। लम्बी पेटी पड़ी तोंद। गंजी चाँद। ऊँचा माथा। चुहल-भरी चुन्धी आँखें। ऊँची नाक। मुँह की चौड़ाई इतनी डबल—होठों की मोटाई इतनी प्रबल—कि चेहरे पर

अगर चारो ओर मसृण कृष्ण केशों का वितान न रहता; तो वह चुरुट-चर्चित मुँह जानवर की थुथुन की नाक काटता।

सर पर बाल का अभाव तो आपको निरन्तर खलता, पर ललाट के ऊपर केशों का अंजुमन भले ही न हो, ललाट के नीचे तो मुलायम केस-किसलय का चमन ज़रूर था। माली अपने चमन को जिस चाव से सँवारता है, कुछ उसी चाव से आप कपोल-व्यापी चमन को सँवार रखते।

फटी माँग की तरह आपकी बीच से फटी खसखसी दाढ़ी है। आधे से ज्यादा बाल तो खिज़ाँ के हमले से पामाल हो चुके हैं, लेकिन आपने विलायती खिजाब के प्रचुर प्रयोग से उनकी सफेदी को नजरबन्द कर रखा है। आप इस चमन को प्रति-दिन काट-छाँटकर दुरुस्त रखते, कंघी देकर सँवारते और खुशबूदार तेलों में सींचकर मुलायम रखते। शायद यही वजह है कि गुस्ल में जरूरत से ज्यादा देर हो जाया करती।

बारहों महीने आपका लिबास एक ही ढाँचे का होता—वही जोधपुरी ब्रिचेज और स्पोर्ट-कोट, शोख मखमली वास्कट, माहतावी टाई और फेल्ट-हैट। यही आपका पेटेन्ट पोशाक। कोट-पेंट या अचकन-पाजामा आप शायद कभी छठे-छमासे पहनते होंगे। पर बदलना औरतों को जेबा है, मर्दों को नहीं; यही आपकी बँधी दलील है।

सौ बात की एक बात तो यह है कि एक बार जो चीज़ आपके दिल तक उतर गई, फिर तमाम उम्र के लिए आप उसी

के होकर रह गये। खुदा जाने, बरमा-चुरुट में क्या रखा है; पर आप उसपर इस दर्जे के आशिक़ थे कि आपके लिए न कोरोना-सिगार था—न कन्नौज का अम्बरी तम्बाकू। यों तो, तफ़रीहन, किसी तक़रीब मे प्याले-दो-प्याले शैम्पेन या कॉकटेल, सैतरन या मोजैल से आपको इनकार नही था; लेकिन आधे दिन के लिए भी जानीवाकर का साया उठ जाना तो आपके लिये मौत का सामना है।

और, यही एकरस का आधिपत्य भोजन पर भी है। आपका सुबह का नाश्ता महज़ ओवलटीन और कच्चे टमाटर का जूस या दो-चार संतरे का रस है। बस। आप विटैमिन के भयङ्कर पक्षपाती हैं। जिन चीज़ो मे विटैमिन की कमी है, वे लाख मज़ेदार क्यों न हों, आपकी निगाह मे कौड़ी के तीन हैं।

लञ्च के लिए भी आपका अपना ख़ास 'मेनू' बँधा है, होटल के 'मेनू' से अलग—मेयोनेज़ और मैकेरोनी, सलाद के पत्ते, चुकन्दर और मूली, पनीर और ख़मीरी रोटी।

यों तो, होटल के बावर्चीख़ाने मे अमीरो की फ़रमाइश पर बटेरों की बिरियानी, तीतर के दमपोख्त; मुर्ग के शबदेग़ —सब कुछ पकाये जाते; मगर आप इन नेमतो से महरूम ही रहते। मटन तो आप कभी छूते तक नहीं। बहुत हुआ, तो एकाध भूनी हुई कलेजियाँ खा लीं। चिकेन से भी कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं।

अलबत्ता मछली पर आप ज़रूर मरते। वह भी बाज़ारू मछली नहीं। आपने होटल के ख़र्च के लिए समुद्री मछली का निरन्तर आयोजन कर रखा था। बम्बई से बर्फ़ की पटरियों में लिपटे हुए पारसल आते—सामन और वेकटी, सोल और पामफ्री!

रात का खाना तो महज़ बराय-नाम, मानो फूल सूँघ कर रह जाते हो। सेलेरी सूप और मछली का एक काश, और काफी। मीठी चीज़ो से आपको सख़्त परहेज़, क्योंकि 'पेशाब में चीनी' का भूत आपके सर पर सवार रहता और इसकी बराबर जाँच-पड़ताल जारी रहती। यही बात थी कि चावल और चीनी से आपकी चुनाचुनी बराबर चलती रहती।

आप खाने में लाख कमज़ोर हो पीने में तो बेहद शहज़ोर हैं। आपकी औधी नाँद-सी तोंद आठो पहर तरल रस से लबालब रहती, अन्न ठहरे तो कहाँ ठहरे—पानी में पके तो कैसे पके! इसीलिए शायद जबतक विलायती बरमूत के छींटे नहीं पड़ते, तबतक न आँच उठती, न दाने तहलील होते!

आप खुद कुछ न खाते हो, पर दूसरों को—आज़िज़ी से हो या ज़िद से—खिलाने-पिलाने में आप ज़ालिम थे। एक तो होटल के मैनेजर, दूसरे चकल्लस-पसन्द तबीयत। जब मौका मिलता, दो-एक चीज़ स्टोव पर अपने हाथों से पकाते और खुद प्लेटों पर परसकर दोस्तों को खिलाते।

यों तो, बावर्चीगिरी की बारीकियों में आप अपना सानी

नहीं रखते; पर खस्सी के मग़ज का कटलेट, अंडे का रम्बल-टम्बल और बत्तख़ का रोस्ट या मोसल्लम आप इस कमाल का पकाते कि जो एक दफा भी इन्हें चख लेता, फिर वह बहिश्ती नेमतों का भी तलबगार न होता।

यह आपकी बुलन्द-इक़बाली है कि आपको शामलाल-जैसा मालदार कलाल पार्टनर मिल गया, और दोनों दोस्तों मे आजतक दाँत-काटी रोटी चली आई।

शामलाल अपनी खाल मे मस्त बेज़बान आदमी थे। काम से फ़ाज़िल किसी लाव-लपट या तू-त-मैं-मैं से मीलों दूर रहते। न कभी किसी से मिलते, न को कभी उनसे मिल पाता। मशहूर था कि बड़े कट्टर है। पर, आख़िर कहाँ तक पत्थर है या मक्खन, यह महसूस करने को उनसे किसी का कभी साबिका नहीं पड़ा।

सुबह से आधी रात तक वे अपनी कोठरी मे अलग एक-एक पैसे की आमद और ख़र्च के हिसाब-किताब मे डूबे रहते। चारों ओर के कमरों से हवा पर नाचती आती हुई विभिन्न ध्वनियाँ, शैम्पेन-बोतलों के काग उडने के पटाखे, काँटे-छुरी और प्लेटों की मीठी झनकार तथा विलायती बारुणी के विलास मे चूर जेंटिलमैनों और लेडियों के दिलफेंक कहकहे एक मिनट के लिए भी उनके मानस-तल पर कोई तरंग नहीं उठा सकते थे।

दोनों शरीकदारों मे आपस के समझौते की भित्ति मजबूत है। मिस्टर अहमद के जिम्मे हिन्दुस्तानी और अँगरेजी

डिशों की देख-रेख, विलायती बोतलों की खपत की तरक्की, होटल मे ठहरे हुए धनी-मानियों की दिलजोई, नई-नई फैसी चुहलें, नई-नई दिलचस्प पार्टियों की तैयारियाँ है। शामलाल के हाथ मे ख़ज़ाना, तोशख़ाना, अटलख़ाना—यानी तमाम मालगोदाम की देखरेख।

शामलाल दिन-रात कोठरी मे बन्द रहते। वहाँ मुलाजिमों के सिवा किसी दूसरे का गुज़र नहीं। होटल के रहनेवाले तो महज़ उनके नाम से वाक़िफ थे, कभी उनकी शक्ल देखने की भी नौबत नही आती। पर उनकी परदानशीनी और बेमुरौवती की शुहरत होटल की दुनिया के बाहर तक फैली हुई थी। लोग मुँह बनाते—पैसे का पिस्सू है, चंट है, कभी एक धेला भी किसी को माफ नहीं करता, मिस्टर अहमद की सिफ़ारिशों की भी परवा नहीं रखता। पर, किसी के फ़िरिश्ते को भी ख़बर न थी कि वे किस दरजे के लहू-चूस हैं, सींगवाले जानवर हैं या दाँतवाले।

अगर कभी कोई जातशरीफ होटल के बिल की निस्बत किसी तरह की रियायत या मुहलत के लिए खातगार होता या कोई उज्र पेश करता, तो मिस्टर अहमद माथा खुजलाकर खसखसी दाढी सहलाते और आँखों को मुलायम करते हुए धीमी आवाज मे कहते—"मै तो हर तरह से तैयार हूँ साहेब, मगर क्या करूँ, वह जालिम बुतेकाफिर तो नहीं सुनता। आप जानते हैं न, जिसकी पूँजी होती है उसी के हाथ मे कुंजी होती

है। मुझे तो महज़ इन्तजाम से सरोकार है। खैर, मैं कोशिश करके देखूँगा।"

दूसरे दिन जब वे अपनी अरजी लिये हाजिर हुए, तब मिस्टर अहमद ने मुँह बनाकर और सर्द आह खींचकर साफ जवाब दे दिया—"क्या कहूँ, किबला! वह पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देता।" मुझे भी खरी-खोटी सुना दी। दो-चार दिन तो मैं रो-गाकर आपको चला ले जा सकता हूँ; मगर इससे ज्यादा के लिए मेरे वालिद मरहूम भी कब्र से उठकर तलबगार हों, तो साफ इनकार है। छोड़ने-छाड़ने का तो सवाल ही नहीं है। खैरियत है, आपको शामलाल से रू-ब-रू साबिका नहीं; वरना आप खुद समझ जाते—वह आदमी नहीं, जानवर है। अल्लाह मियाँ भी होटल के रूल के खिलाफ उसको तिल-भर नहीं हिला सकते!"

कभी कोई फिरिश्तासूरत किसी चैरिटी के लिए चन्दा उगाहने आता, या किसी सवाब के काम के लिए आजिज़ी से अपील पेश करता, तो मिस्टर अहमद ज़बानी हमदर्दी और ज़बानी फैयाजी का ताँता बाँध देते, पर चन्दे में हाथ बँटाने से मुकर जाते। क्या करें, बिचारे वगैर सीनियर पार्टनर की रज़ामन्दी के दे ही क्या सकते? कैश-बक्स की कुंजी तो पार्टनर के पॉकेट में है; और उस जल्लाद को न मोह है न माया।

मिस्टर अहमद विपत्नीक थे। दो जवान बेटे थे; दोनों

कालिज में थे। जबतक मिसेज़ अहमद जीवित थीं, तबतक उनके पति का शुमार बस बिचारों मे था। वे परदानशीं तो ज़रूर थीं; पर मियाँ की बोतलबाजी का चसका उनसे परदा नहीं था।

मिस्टर अहमद बिचारे लाख सिगार की तीव्र गन्ध से अपनी ह्विस्की-सुरभित निःश्वास को विलीन करने की कोशिश करते, मगर कहीं किसी दिन अगर चोरी फाश हो जाती, तो फिर घर मे वह भीषण हड़ताल का बादल उमड़ता कि आपके तमाम सूट-बूट की जेंटिलमैनी की अकड खाक मे मिल जाती। आप सैकड़ों दफे कान थाम कर तौबा करते और बन्द कमरे मे बीवी के पैरो पर गिरकर अपनी गंजी चाँद पर रहम रखने के लिए मिन्नतें करते, मगर जहाँ जल्लाद-नासेह के शिकंजे से नजात मिलती कि दामन झाड़कर अकड़ते हुए होटल मे सरपट दौड़ आते और अपनी मानसिक उत्तेजना को शान्त करने के लिए बाध्य हो जानीवाकर के हिम-शीतल हुम्माम की शरण लेते।

जब बीवी बिचारी कजा कर गई, तब महज एक रोज़े-हश्र का डर बाकी रहा। आप सोचते—देखा जायगा, अभी क़यामत तो सदियों दूर है, और यहाँ नज़रो के सामने बर्फ मे भिगोया आग का पानी सुराही मे मामूर है।

सुबह ही आठ बजे से आपकी ह्विस्की की चुस्की धीरे-धीरे शुरू होती और इंशा की नमाज तक मोतवातिर चली जाती।

जब आधी रात के लगभग आँखो के गुलाबी डोरे गुलेनार हो जाते और नींद के गलबों से एक बेखुदी-सी आती, तब आप मुँह से धुएँ का बादल उडाते हुए, और छलकता हुआ फेनिल टम्बलर हाथ मे लिये, होटल के पहलू से मस्तानी चाल से अपने क्वार्टर की ओर चलते। उस वक्त किसी-न-किसी दिन उनका मजाक-पसन्द खानसामा 'जब्बार' चमचे से टेबुल पर ताल दे-देकर आँखे मटकाता हुआ गजल की धुन छेडता—

"जिस नाज़ से जाता है अहमद मियाँ दीवाना,
एक हाथ मे चुरुट है, एक हाथ में पैमाना।"

जाम का दौर खत्म करके आप एक घूँट आबे-जमजम जरूर पी लेते। फिर, खालतेदार पाजामे और पजाबी कुरते मे बिस्तर पर जाकर लिहाफ खीच लेते। सोने के कमरे की मेज पर एक आबे-जमजम का कूजा हमेशा मौजूद रहता, चूँकि ह्विस्की के सेवन के अनन्तर यह शुद्धिस्वरूप गंगाजल का आचमन आपकी आत्मा के इत्मीनान के लिए अनिवार्य है।

रमजान के दिनों मे आपकी परीशानी दुगनी हो जाती। इधर शरीअत की पाबन्दी, उधर तबीयत की। एक ओर ईमान की चपकलिश, दूसरी ओर सुराही की लाल परी की हविस। इधर पीरी की याद-ओकबा, उधर दिल का तकाजा। इस कशमकश मे कभी जान के लाले पडते, कभी जान होठों पर होती। नतीजा यह होता कि दोनों मे एक का अंजाम भी

मुनासिब न होता। 'आधा तीतर, आधा बटेर' वाला मज़मून था।

किसी दिन, दिन में रोज़ा रखते तो आफ़तार के बाद रात को तहज्जुद की नमाज तक पैमाने का दौर चलता। और, अगर कहीं सुबह से ही जानीवाकर का कब्जा हो जाता, तो शाम को तौबा करके घंटों मसजिद में बैठ शबीने की तरावी पढ़ते।

आप सूफ़ियों के एक मशहूर खानकाह के मुरीद भी थे और जवानी में शबे-मेराज की मजलिस में हालकाल का मजा भी उठा चुके थे।

कुछ दिनों तक मजजूब बनने की खब्त सवार रही, और आपने चिल्ला की मुसीबतों को भी सर करना चाहा, पर जानीवाकर की हवस आपको दुनिया के दायरे में खींच लाई अब ईमान और जान दोनों को निभाना मुश्किल का सामना है। और, खासकर रमजान में जानीवाकर पर जॉनिसारी जान का जंजाल हो जाती।

आज भी जब कभी आपका बचपन का दिली दोस्त 'हमीद' आपकी बलानोशी पर कुछ जली-कटी सुना देता है और जबदस्ती ह्विस्की का गिलास मेज से सरका लेता है, तब आप इस जुल्म को कलेजा थामकर सह लेते है और बरमा-चुरुट के दिलकश कशों में दिल की बेकरारी को तस्कीन देने की कोशिश करते हैं।

आप सिगार का कश खीचकर शायरी की धुन में आते हैं और खसखसी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बड़े तपाक से फ़रमाते हैं—

"मय दे या न दे बादए अतहर तो नहीं है,
कुछ पीरे मुगाँ साक़िये कौसर तो नहीं है;
खाली हो तो अज़ खुद अरके शर्म से भर जाय,
मिन्नत कशे साक़ी मेरा सागर तो नहीं है!"

"म्याँ! शायरी रखो। आजतक शराब का मारा कोई लौटा नही। किस फेर मे पड़े हो!"

"अम्याँ! सच पूछो तो, शराब कोई बुरी शय नही। शराबख्वारी बुरी नही, नशेबाज़ी बुरी है। कौसर का जाम भी कमीनो की सुहबत मे बदनाम हो सकता है।"

"लिल्लाह! रमजान तक तो बाज़ आओ! पाँचों वक्त की नमाज़ की पूँजी भी हश्र के दिन बेकार हो जायगी। यह शराब का तरारा तमाम सवाब को बहाकर तबाह कर देगा।"

मिस्टर अहमद तिनककर उठ खड़े होते हैं और शीशे की आग को सोडे के पानी मे लगाते हुए हँसकर फरमाते हैं—"भाईजान! शराब से बढ़कर यह होटल का अज़ाब है। पैसे के लिए इन्सान को ईमान भी ताक़ पर रखना पड़ता है। मगर खैर····मुझे उसके करम का नाज़ है, वरना में खुद पीता

और पिलाने का रोज़गार करता ? तुम बेफ़िक्र रहो; मुझे हश्र की परवा नहीं—

"कह दूँगा रोज़े हश्र में दावर के सामने,
हाँ-हाँ, गुनाह की, तेरी रहमत के ज़ोर पर !"

तृतीय परिच्छेद

सुबह के आठ बजे होंगे। होटल की लॉन पर धूप की चादर तन चुकी है। कैना के फूल किरणों के चुम्बन पर सूरज-मुखी हो रहे है। गुलाब के फूल तालाब के कमल-से खिले है। हल्की हवा फूलों के परिमल को लूटकर होटल के कोने-कोने मे बिखेर रही है।

बरसाती मे मोटरों की पों-पों है, कमरों मे बेटरों की हलचल। नवाब साहब अभी ख्वाब से बेदार हुए है। आँखों मे खुमारी भरी है। मुँह मे जँभाई, अंग मे अँगडाई। बिस्तर से उठकर आराम-कुर्सी पर लेटे कुछ ऊँघते-से है। गोद मे प्यार का पिल्ला 'टामी' आँखे बन्द किये निश्चेष्ट पड़ा है। सामने टूल पर चीन की सिलफ़ची रखी है। नौकर मुँह धुलाने का गंगाजमनी आफ़ताबा लिये बगल मे खड़ा है।

बड़ा-सा कुशादा कमरा। अँगरेज़ी क़िते की सजावट।

कारपेट और परदे, कुर्सी और सोफे—सब कुछ करीने से सजे है। अधखुली खिड़कियों से सफेद परदों की जमीन पर किरणों का हिरण्य-अंचल झिलमिला रहा है। एक ओर तार के पिंजडे मे एक कनारी-मिथुन अपनी चुहलों और चहचह से कमरे मे प्रभात का प्रतिहारी बनकर नवीन जागरण की जुहार सुना रहा है।

सामने कुर्सी पर बैठे दरबार के खानदानी हकीम साहब अपने शीर्ण चिबुक की जीर्ण दाढी पर उँगलियाँ फेर रहे हैं। दाढ़ी के बाल देखने मे लाल तो ज़रूर है, पर जडों मे सफेदी की रेखा भी स्पष्ट है। जुल्फों पर भी यही गंगाजमनी नकशा है। सुर्ख सुर्खी की क्यारियों की कोर पर चूने की सफेदी का गोट जो समाँ बाँधता है, कुछ वही मंजर आपके चेहरे के बालों की लाली और सफेदी की खिचडी दिखा रही है। कश्मीरी बेल टँकी हुई जामदानी का अचकन और सर पर कमरखी चौगोशिया टोपी। कंधे पर शाल-रूमाल और उसके साये के तले एक हाथ मे तसबीह। कानों मे मोतिया के फाहे, आँखों मे मर्मीरे का सुरमा, उँगलियों मे याकूत और ज़मुरद की अगूठियाँ—किसी एक रंगीन अतीत की निशानियाँ—आज भी मौजूद है।

नवाब साहब ने करवट ली, और उठ बैठे। हकीम साहब चौकन्ना हो गये और नब्ज़ पर हाथ रखते हुए बोले—"क्यों? आज हुजूर के दुश्मनों की तबीयत कुछ नासाज़-सी....."

"नहीं, कोई ख़ास तकलीफ़ नहीं। यों तो, ज़ोफ़मेदे की शिकायत ···"

"जी हाँ, रेयाह का ग़लबा ज़रूर है"—हकीम साहब बायीं नब्ज पर हाथ ले जाते हुए बोले।

"तो फिर ?"

"कोई अंदेशा नहीं, हुजूर ! जवारिश कमूनी और शरबत-शिकंजबीन मैं अभी भिजवाये देता हूँ।"

इतने मे मिस्टर अहमद दबे पाँव कमरे मे दाख़िल हुए। अदब से झुककर बन्दगी अर्ज की। बक़ायदा दाहिनी जानिब खड़े रहे।

नवाब के रू-ब-रू, ख़ास करके जब आप अपने कमरे मे गम्भीर बैठे हो, निशस्त और बरख़ास्त की तमीज़ ज़रूरी है—गुफ्तगू मे शीन और क़ाफ का दुरुस्त रखना भी अनिवार्य।

"खाने में कोई परहेज़ भी ज़रूरी होगा?"—नवाब साहब ने आहिस्ते-से दरियाफ़्त किया।

"जी हाँ। आज चुलाव और चूजे का शोरबा रहे। और, शोरबे मे शलजम और कद्दू के काश हों।"

"मैं तो समझता हूँ, हकीम साहब, कि चुलाव-शोरबे की जगह पर पिशपैश, रोली-पोली, बगेरी की बिरियानी या फ़ाउल का स्टू हो, तो कहीं हल्का होगा।"—मिस्टर अहमद ने अपनी राय पेश की।

"वल्लाह! कोई मुज़ायका नहीं!"—हकीम साहब ने आवाज़ बुलन्द की।

"और टमाटर की चटनी?"—नवाब साहब ने फिर दरियाफ्त किया।

"जी हाँ, यह तो क़लब व जिगर दोनों के लिए मुफ़ीद है!"

"और कोई मीठी चीज़? प्याज़ की फिर्नी या अंडे की ज़रदी का हलवा वग़ैरह?"

"हुजूर, ये दोनों तो ज़रा हाज़मे के लिए सख्त होंगे!"

—हकीम साहब ने माथा खुजलाते हुए धीमी आवाज़ मे कहा।

मियाँ अहमद फिर कूदे—"हुजूर, गुस्ताखी माफ। मै तो समझता हूँ कि होटल की स्ट्रावेरी और क्रीम एक ही होगा!"

"मगर, हकीम साहब, दिल व दिमाग की तरावट के लिए भी तो कुछ ज़रूरी है। पैमाने का दौर न हो, तो कही कौर उठेगा?"—नवाब साहब ने हँसकर कहा।

हकीम साहब चुप हो गये। दाढ़ी सहलाई। फिर ज़रा सँभल कर बोले—"हुजूर! नज़ले की शिकायत तो अब जाती रही?"

"आजकल तो अल्लाह का शुक्र है, वरना जुकाम तो मेरा बारहमासी है!"—नवाब साहब ने रूमाल से नाक बजाकर कहा।

"अगर तबीयत बरज़िद हो, तो एक-आध घूँट मवल्लहम और बेदमिश्क या ....."

"आपकी भी क्या बातें हैं, हकीम साहब ! यहाँ शैम्पेन का जाम न होता तो ख़ैर"—मिस्टर अहमद ने बात तराशकर छेड़ा।

भला, होटल के दायरे में विलायती बोतलों के मुकाबले नेटिव मवल्लहम की बराबरी की कुर्सी आपको क्योंकर क़बूल होती ! आख़िर अंगूरी शैम्पेन की खपत नवाबों के शिकम में न होगी, तो कहाँ होगी ! पसीने की कमाई पर पीनेवालों की हिम्मत की दौड़ तो एक-शॉ और जानीवाकर तक ही है।

"मैं तो, साहब, बिलायती बोतलों का कायल नहीं !"—हकीम साहब ने झल्लाकर कहा, और 'खुदा हाफिज़' कहते हुए रुख़सत हुए।

"क्यों मैनेजर साहब ! आज सुबह का अख़बार ....."

"जी हाँ, अभी लाया"—कहते हुए मिस्टर अहमद कमरे के बाहर तीर की तरह निकल गये।

नवाब साहब ने एक सिगरेट जलाई। फिर एक चुल्लू गुनगुने पानी से हाथ-मुँह धो लिया।

आपकी उम्र लगभग पैंतीस की होगी। गुलाब सा खुलता रंग। बड़ी-बड़ी चमकीली आँखें। नाक पर ऐनक। कड़ी-कड़ी मूँछें। ताड़ की तरह लम्बे, बेंत की तरह लपलप। जब कभी आप टेनिस खेलते या छठे-छमासे लॉन पर तेज़ टहलते, तो यों

ही बेवजह कभी दाहिने लच जाते, कभी बायें। अगर नेचर चौड़ी और कड़ी हड्डियों की कमानी देकर आपके ढाँचे को थाम कर न रखती, तो बहुत अंदेशा था कि यह आपकी डगमगी हरकत बे-मौके मुँह के बल ले जाती।

आप बराबर इमारत की गोद में पले। बचपन में आप लौंड़ियों और बाँदियों के लोचन-पल्लवों के पलने पर झूला किये। पलकों से जब ज़मीन झाड़ी गई तब आपने कहीं क़दम रखा। नहीं तो नवाबों के क़दम जमीन से दो बालिश्त ऊँचे ही रहते हैं। गोद से परेम्बुलेटर और परेम्बुलेटर से मोटर। यही वजह है कि आपका शरीर ही सुकुमार न रहा, मिज़ाज भी नाजुक हो गया।

स्नेह का अतिशय सिञ्चन बच्चे को नर्सरी के पौदे की तरह बना देता है—तुनक-बदन और तुनक-मिज़ाज; जो अनुकूल वायुमंडल में तो फूलदान की शोभा है, नहीं तो, एक हल्की भी सर्द हवा दो थपेड़े मार उसे ज़र्द कर डालती है।

पाजामे में ज़ारबन्द देने से लेकर गोरे गुलगुले गालों पर सेफ़्टी रेज़र का इस्तेमाल तक भी बग़ैर नौकरों की मदद के आपके लिए दुश्वार था। यहाँ तक कि दाँत साफ़ करने के ब्रश पर कॉलगेट-क्रीम का प्रयोग भी नौकर ही के ज़रिये सम्पादित होता!

आपकी नज़ले की शिकायत सनातनी है। बनफ़शे का जोशाँदा आप चाय की तरह दोनों वक्त पीते। अगर रोज़मर्रे

की मोटर की हवाखोरी के वक्त बटलर ने रूमाल को युकैलिप्टस से तर करके कोट की जेब मे न रखा, तो आपके हाथ की लपलपाती छड़ी बिचारे ख़ानसामे के सर पर टूटने से बाज़ न आती।

लू चले या शोला बरसे, आप जब नहाते, गुनगुने पानी से नहाते। आबेरवाँ और तंजेब का इस्तेमाल हो या न हो, ऊनी गंजी का इस्तेमाल आपके लिए ज़रूरी है। सर्दी के मौसम में तो गुस्ल का दिन ईद का दिन है।

पर, इससे यह न समझिये कि जाड़े के दिनो मे आप फिटफ़ाट या साफ-सुथरे नज़र नहीं आते। गर्दन के नीचे पशमीने और ऊनी लबादो के भीतर शरीर की रंगत मैली है या उजली, यह तो पता चलना नामुमकिन है, पर गर्दन के ऊपर आपकी घुटी दाढ़ी, पोमेड लगी मूँछे, क्रीम और पाउडर की पॉलिश तथा सैलून-शैम्पू से मसृण केशो की परिपाटी आपके चेहरे के सहज लावण्य को लाखो मे एक बनाकर रखती।

सर्दियो मे कमरे के भीतर अँगीठियाँ दिन-रात रौशन रहती। आपके शरीर पर कॉटन गंजी के ऊपर जेसन की ऊनी जर्सी, जर्सी पर रुई की बंडी, बंडी पर फलालैन की कमीज़, कमीज़ पर संगीन स्वेटर, स्वेटर पर पशमीने का मफलर, मफ़लर पर दबीज़ ट्वीड का कोट और कोट पर मोटा अलस्टर—आठो पहर ज़िरहबख्तर बनकर शिशिर के पाले के हमलों से आपको पनाह देते।

आपको नज़ले की शिकायत तो थी ही; साथ-साथ ऊँची इमारत मे पनपनेवाली डिसपेप्सिया भी अब्रे-बहार की आपकी सावनी महफ़िल का मज़ा किरकिरा करने ज़रूर नमूदार होती। बसन्त के तदाकुल-ऐयाम मे हकीम साहब के जुलाब के फ़र-माइशी नुस्खे, हेमन्त मे नज़ले के हमले और बरसात मे ज़ोफ़मेदे के मचले, नवाब साहब की नवाबी ज़िन्दगी मे, चैन की वंशी—चन्द दिनो के लिए भी—निःशङ्क नही बजने देते। जहाँ जोफ़मेदे का गुज़र हुआ, वहाँ फिर दामन थामे ज़िरियान भी आ टपका। एक न शुद, दो शुद!

जो हो, आपमे एक बड़ी खूबी यह थी कि किसी अलालत से आप तबीयत हार नही जाते। एक हद तक परीशानी ज़रूर होती; पर आपके ऐश विलास का सिलसिला कभी स्थगित नही होता।

खाने के मद मे आप खास परहेज़ जो करते, पर पीने के मद मे जाम का दौर कभी रुकता नही, न शतरंज और ब्रिज की महफिल आधी रात के पहले बरखास्त होती।

यह न था कि आप इलाज से मुँह मोडते। जबतक जागते रहते, मुरक्कब और मुजर्रब दवाओ के नुस्खे बराबर चलते रहते। कडी-से-कडी दवा भी खुशी से निगल जाते, कभी जवारिश, कभी माजून, कभी अर्क, कभी शरबत, कभी लुबूब।

इधर बावर्चीखाने मे मोचर्रब बत्तख और मुर्ग हलाल होते, उधर समाक के खरल में मोती और मूँगे हल होते;

इधर तसलों में चूज़े की अख़नी खींची जाती, उधर देग-भबके के ज़रिये विविध दवाओं के शामिल मुश्क और अम्बर की रूह उतारी जाती। दोनों साथ-साथ चलते—शीरमाल मोज़फ्फर और माजून मोफर्रह; पिस्ते की नानखताई और बालाई—साथ-साथ खमीरे-गावजुबाने-अम्बरी की तैयारी। अल्लाह ताला आपकी उम्र को दराज करे और आपके मुबारक मर्जों के हुजूम को सलामत रखे, वरना आजकल इस बेकारी के जमाने मे हमारे पीर-मुर्शिद हकीम साहब के दर्जनों बच्चो की दाल-रोटी और सफेदपोशी क्योंकर मुमकिन होती! आपके हाथ का रूहेशबाब मोकव्वियात का मुकुट-मणि था। और, खाने मे इतना आसान कि नवाब साहब इसे पान के बीड़े मे क़माम बनाकर दिन मे दस बार खा जाते। बस, इधर मोकव्वी और मोब्बही नुस्खो का दिलफरेब सिलसिला चलता उधर महल की खिलवत मे हिन्दुस्तानी और विलायती अँगियो की तनी टूटती; बारीक किरेप की धज्जियाँ उड़ती और दिगम्बरी विसाल की विलासलीला कीमिये और कुश्ते से ज़ोर आजमाती।

आप न बिलकुल नये वज़े के असीर थे, न पुरानी लकीर के फ़क़ीर। जमाने की हवा का रंग देखकर चलते। फ़र्शी दस्तरखान पर बैठकर दिलपसन्द चावल और रोटी, खुश्का और फूलगोबी उँगलियो से मिलामुलू कर शौक़ से खा जाते; और फिर खुशी-खुशी होटलो मे कुरसी पर बैठ सॉस मे

भिगोई तीतर की टाँग से—काँटे-छुरी के सहारे—गोश्त का एक-एक रेशा इतमीनान से साफ कर लेते। अचकन-पाजामे मे भी आप सजते; डिनर-जैकेट मे भी खुलते। कभी कोरोना-सिगार की खुशबू; कभी दिल्ली की मुश्की तम्बाकू। आपको न शैम्पेन से इनकार, न मवल्लहम से कोई ख़ास प्यार। कभी आप घुँघरू की रसीली झनकार के मुजरे पर मायल होते, कभी होटलों के प्यानो-मुखरित कैबरे पर बिस्मिल। कभी गाव-तकिया के सहारे गलीचों पर गंजीफे और चौसर की महफ़िल चलती; कभी पार्टियो और क्लबो मे ब्रिज और पेग की दिल्ल-गियाँ रहती। आपकी मायल चितवन मे साँवले-सलोने आनन के लोचनो की कृष्णतारिका अमृत की शलाका थी, और साथ-साथ विदेशी हिमांगी की आँखो की पुतलियो की नीलिमा आनन्द की चन्द्रिका भी।

यह न था कि आप सुबह से आधी रात तक ऐशो-इशरत ही मे गर्क रहते। रियासत के काम पर भी आपकी पूरी चौकसी रहती। साथ-साथ पॉलिटिक्स से भी काफी दिलचस्पी। मैनेजर और कारपरदाज थर मारते। आमद और खर्च का रोकड़ ख़ुद जाँचते। रियायो से भी आप मिलते—उनकी तकलीफे भी सुन लेते। इसीलिए अमूमन आपका दिन का प्रोग्राम रियासत का काम है। यह बात और है कि आप ज्यादातर घर से बाहर रहते—शहरो की सैर करते फिरते। मिस्टर अहमद से आपकी गहरी छनती और इस होटल पर

आपकी खास नज़र रही। लिहाज़ा, यहीं से आप, मीर-मुंशी के ज़रिये, इलाक़े पर फरमानों की झड़ी बाँधते।

आपका उसूल है—दिन को सरकन्दनी, रात को दिलबस्तगी। जहाँ शाम होते बिजली की बत्ती जलती कि मिस्टर अहमद के क्वार्टर में आपकी इन्दर-सभा की महफ़िल जम जाती—लालपरी और सब्ज़परी की जादूनज़री की कटारी आपकी नस-नस में पैवस्त रूहे-शबाब को ललकारने लगती।

आपको कुत्तों का खास शौक़ है। जहाँ जाते, कुत्तों का एक क़ाफ़ला साथ चलता। यही बात है कि शहर में भी 'कुत्तेवाले नवाब' के ख़िताब से मशहूर है। आप ख़ुद ख़ानदानी है। लिहाज़ा, आपके साथ के कुत्ते भी ख़ानदानी नस्ल के है। ग्रेट डेन, ग्रे हाउंड, स्पैनियल, अलसेशियन, पेकिनीज़, टेरीअर—जाने कितने। कोई देखने में शेर की तरह ख़ूँख्वार, कोई भेड़िये की तरह। कोई पतला-दुबला पलीता; कोई लम्बे मुलायम बालों से ढका झबरा। कोई घरैला, कोई बनैला। कोई ताज़ी, कोई शिकारी। उनकी गर्दन में गंगाजमनी चमौटियाँ पड़ी रहतीं, पीठ पर मख़मली वर्दियाँ। वे खाते बे-नमक के उबाले हुए मटन की रान और डॉग-बिस्कुट। दूध का इन्तज़ाम अलग। सफ़ाई के लिये सोप और ब्रशबरदार आठो पहर तैयार रहते। उनकी सेहत की निगरानी के लिए ख़ास डाक्टर भी हैं।

आप खुद गरमियो मे बर्फानी चोटियो की सैर करें या न करे, मगर आपके नाजुक-मिज़ाज कुत्तो की एक टोली लावलश्कर के साथ मंसूरी की सैर के लिए हर साल रवाना होती। जब कभी उनको ज़ुकाम, बुखार या जोफमेदे की शिकायत होती, तब डाक्टर साहब का इंजेक्शन और पिल का बिल आपके माजून और अर्क के नुस्खो से बाज़ी ले जाता। उनकी सेवा-शुश्रूषा किसी नाज़ुक-बदन नवाबज़ादी की नाज़-बरदारी से भी कहीं बढ़ी-चढ़ी थी।

आपके हुज़ूर मे मुलाज़िमो का कौन ज़िक्र, बीवी-बच्चो का गुज़र भी बगैर इत्तिला के मुमकिन न था। मगर इन पालतू चौपायो का आपके खास कमरे मे भी हर वक्त,—हर हालत मे—अनावृत द्वार है। आपका पेकिनीज़ टामी बेखटके आपके बिस्तर पर जाकर कमर सीधी करता, आपकी गद्दी पर, गोद पर या कुर्सी पर इतमीनान से बैठता। हवाखोरी के वक्त, मोटर पर बगलगीर होकर सैर करता, आपकी गर्दन, हाथ और ठुड्डी को बेखटके चाटता। खाते वक्त, आपके प्लेट मे भी कभी मुँह लगा देता हो, तो कोई तअज्जुब नही!

जो हो, ये बेज़बान जानवर जान पर खेल जाते और वफादारी की इन्सानियत मे आदमी के कान तराश लेते। शिकार मे दोनो बाजू मोटर के साथ सरपट दौडते, रात मे पलंग का पहरा देते और ललकार देने पर शेर के मुँह पर भी टूट पड़ने को तैयार रहते। यही वजह है कि आप इन्हे सिर

और आँखों पर बिठाकर रखते, और रियासत के सालाना बजट मे इस केनेल के महकमे की एक काफी मोटी रक़म मंजूर होती।

यह कोई बनी-बनाई बात नहीं कि जिस नाज़ से ये दुमदार चौपाये पलते, वह इमारत का टीमटाम हरम के बच्चो को भी शायद ही नसीब होगा। और, कुबेर की ढेरी का जो हिस्सा इन पर निछावर है, उससे सैकडो रियायों के घर मे दूसरे वक्त का भी चूल्हा कभी ठण्ढा न होता। पर, शायद भारत के कंगाल किसानो को किसी नवाब के कुत्तो की भी किस्मत नही मिली है!

आपने अधजली सिगरेट को राखदान पर उलटकर रख दिया और टामी के मुलायम बालो को उँगलियो से सहलाना शुरू किया। उसी वक्त, ईदू मियाँ सुबह की हवाखोरी से वापस लौटे कुत्तो का काफला लिये कमरे मे दाख़िल हुआ। कमरे मे चहल-पहल हो गई। आप उठ बैठे। थोड़ी देर तक कुत्तो से लपट-झपट रही, उछल-कूद चली। फिर आपने जमादार को उन्हे बाहर ले जाने का इशारा किया, और मिस्टर अहमद की ओर मुड़े। मेज़ पर रखे अख़बार का बन्द तोडा और उलट-पलटकर एक सरसरी निगाह डालनी शुरू की।

चन्द मिन्टो के बाद आपने एक हल्की जमुहाई ली, और ज़रा नाक सिकोड़कर गोल्डकेस से दूसरी सिगरेट निकाली। मिस्टर अहमद ने दियासलाई जलाई और लपककर पेश की।

"कोई है ?"—नवाब साहब ने आवाज़ दी।

"जी, जहाँपनाह !"

दो नौकर वर्दी-पेटी मे दुरुस्त एक साथ हाज़िर हुए।

"मैनेजर साहब के लिए सिगार लाओ।"

सिगार का बक्स आया। बक्स क्या है, सिगारो का नुमाइशगाह। हैवेना और कोरोना से लेकर मद्रासी और बरमा-सिगार तक मौजूद है। मिस्टर अहमद ने अपना मुँह-लगा चुन लिया।

"क्यो मैनेजर साहब ! क्या रंग है ?"—नवाब साहब ने ज़रा आँखो मे मुस्कुराकर कहा।

दोनो मुलाज़िम रुख देखकर उलटे पाँव बाहर निकल गये।

"क्या हुज़ूर ?"—मिस्टर अहमद ने सिगार जलाते हुए बड़ी नरमी से पूछा।

"वाह ! कल आपने किस हिम्मत से बीडा उठाया और आज लग्गी से घास·····"

मिस्टर अहमद फ़ौरन सचेत हो गये और दस्तबस्ता बोल उठे—"नही हुज़ूर ! यह भी कोई बात है ? काम न हो, तो जो चोर की सज़ा, वह मेरी भी। कल ही मैने सलीम को आड़े हाथो लिया। वह कल तक डिप्टी-कलक्टरी या तहसीलदारी का सब्ज़बाग देख रहा था। मैंने आँखे खोल दी। अब हज़रत समझ गये कि सरकारी नौकरी उनके लिए गुलेबकावली से कम नही !"

"आख़िर यहाँ उनकी रोटी-दाल कैसे चल रही है ? होटल का किराया तो·····"

"अर्ज करता हूँ न, सलीम मियाँ का तो दिवाला पिट चला है। जो एक-आध चीज़ थी भी, वह सब जब्बार के ज़रिये सर्राफ की दूकान मे जा पड़ी है। आज-कल तो उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम है, हुज़ूर !"

"और पेटीकोट-महकमे की कैफियत ?"

"जी हाँ, उधर भी दम घुट रहा होगा ! मगर, हुज़ूर ! वह बड़ी दिमागवाली औरत है ! यह कभी मुमकिन नहीं कि वह मियाँ के लिए लहू का घूँट पीए और चक्की पीसे। वह महफ़िल की परी है—महमिल की पर्दानशी नहीं। जबतक फैशन का फ़ानूस या परवानो का जुलूस न हो, तबतक वह हरगिज़ किसी बज्म पर रौशन नहीं रह सकती। मै तो समझता हूँ कि मुफ़लिसी की चिमनी के तले वह शमा कभी रंग नहीं ला सकती—सलीम मियाँ उसके दिल के पहलू मे लाख उल्फ़त का तेल क्यों न ढाले !"

"तो आखिर मेरी रसाई उस परी-पैकर के दिल तक क्यों-कर नसीब होगी ?"

"हुज़ूर ! ऐसी औरतो के दिल की कुंजी तो मर्दों की जेब में रहती है !"

"यानी·· "—नवाब साहब ने ज़रा अकचका कर पूछा।

"यानी, हुजूर के कैश-बॉक्स मे ! उस परीज़ाद के लिए

रोज़ एक नई लहालोट जार्जेट की साड़ी, मोती—पुलाव और फ़िरनी, मोटर की सवारी, पिकनिक और पार्टी, दो-चार नौ-जवानों की नज़रों की सलामी ज़रूरी नज़रे है, वरना वह बहिश्त मे भी क्यों न रहे, उसके दिल से धुआँ उठता रहेगा। और, हुज़ूर खुद समझ सकते है कि सलीम मियाँ के सात पुश्त से भी इनमे से एक का अंजाम मुमकिन नहीं।"

"ओहो! यह बात है!"—नवाब साहब ने सिगरेट का कश खीचते हुए हँसकर कहा—"देखता हूँ, आप हर फ़न के उस्ताद हैं!"

"हुजूर! मैंने कुछ धूप मे बाल थोड़े ही पकाये हैं! आखिर इसी यारबाशी मे तो उम्र कटी! जब से वह होटल मे आई, तभी से मैंने एक आँख उस पर बराबर रखी—हुजूर के खयाल से, वरना मुझे क्या पड़ी थी? इस आब का मोती बाज़ार मे मिलना दुश्वार है, हुजूर!"

"आखिर, वह किस चमन की बुलबुल है और सलीम उसे कहाँ से उड़ा लाया?"

"हुजूर, इसका पता अभी नहीं चलता। वह ज़रूर किसी बड़े घर की लाड़ली होगी—हिन्दू या मुसलमान। और, इमारत मे पली ज़रूर है। सलीम उसे उड़ा लाया या वह खुद सलीम को उड़ा लाई—यह राज़ तो अभी खुलता नहीं। हाँ, सलीम उसे 'बिजली' कहकर पुकारता है, इतना तो मुझे ज़रूर मालूम है।"

"खैर, जो हो; मियाँ सलीम को तो यहाँ से टरका देना ज़रूरी है।"

"हुजूर, तमाशा तो देखे। मैंने घाट चराना शुरू कर दिया है। बस, कल से डोरी डाल दूँगा। सलीम के तो अभी दूध के दाँत भी नहीं टूटे है। खुदावन्द करीम ने उसको जैसी शक्ल अता की, वैसी अक्ल नहीं दी। वह दिलेर जो हो, पर दबंग नहीं। चेहर की चाँदनी या टेनिस की नामवरी कुछ और चीज़ है; ज़माने की चालाकी और चुस्ती कुछ और। मुझे तो डर है, वह औरत ही कुछ दिनों मे उसे ठुकरा देगी। आखिर सलीम मियाँ के चेहरे को चाट कर तो वह ज़िन्दा नहीं रह सकती, और न घर की बहू बनकर चपातियाँ ही सेक सकती है।"

"मगर इस धुँधली उमीद पर होठ चाटते रहना तो मेरे लिए मौत का सामना है।.....कोई अपने को लाख लिये रहे मगर क्या किया जाय, यह आँखे न दिल का भरम खोल देती हैं। बस, जब से बिजली नज़र आई है, कोई पल चैन नहीं ..."

"बन्दानेवाज़, ज़रा दम लें—'मुश्किले नेस्त जो आसाँ न शवद !' मैंने तो कल सलीम को पट्टी पढ़ाई कि तुम्हे नवाब साहब की रियासत मे एक खासी जगह दिलवा दूँगा, और वह इस उमीद पर चहक रहा है। उसे हुजूर कोई जगह इनायत करें, फिर तो स्याह-सफेद करना हुजूर के हाथ में

रहेगा। उसकी कोर दबी रहेगी। फिर, मौक़ा देखकर उसे इलाके पर पैक कर दूँगा। वह खुद बीवी के मचलो से बेज़ार हो चला है—उसे उलटी टाँगे गले पड़ी हैं।"

"मैं तो समझता हूँ कि जबतक बिजली सलीम को दिल से उतार नही ...."

"यह तो"—मिस्टर अहमद ने छेड़कर कहा—"एक दिन रुकने को नही! और, मैंने भी एक छछूँदर छोड़ रखा है। मगर हुजूर जो 'चट मँगनी पट ब्याह' चाहते है, फिर तो कुछ नज़र-नेयाज़ करना होगा, दो-एक शैम्पेन-पार्टी देनी होगी। मैने तो इधर उनसे किराया भी तलब करना बन्द कर दिया है।"

"आप रुपये का ज़रा भी मुँह न देखिये। मैं तैयार हूँ!" —नवाब साहब मूँछो पर हाथ फेरते हुए बोले।

"फिर तो पौ बारह है हुजूर! मगर रुपये को पानी मे बहा देना—यह भी कोई बात है?"

"वल्लाह! यह तो एक ही रही—तेली का तेल जले और मशालची की छाती फटे!... जो हो; सलीम को तो जल्द चलता कीजिये। इस तरह लहू के घूँट पी-पीकर आखिर मै कबतक सुबह की शाम करता रहूँगा?"—नवाब साहब ने जरा तिनक कर कहा।

"हुजूर, किसी को उलटे छुरे से मूँड़ लेना कुछ बाएँ हाथ का तो खेल नही है! दोनो हाथ—दोनो कंधे—बराबर लगाने

पड़ेंगे, तब भी कुछ वक्त चाहिये। आज लञ्च के वक्त जब 'मिसेज़ सूर' आती हैं ···"

उसी पल होटल का हेड वेटर एक बड़े-से तश्त में ब्रेकफ़ास्ट लिये हाज़िर हुआ—टोस्ट और मक्खन, पोच और पॉरिज,, साथ-साथ चाय और भूनी हुई ताज़ी समुन्दरी मछली।

कमरे में प्याज़ की बिरियानी की खुशबू सिगार की खुशबू पर हावी हो चली। नवाब साहब ने सतृष्ण नेत्रों से तली हुई सोल-मछली के कत्थई चमत्कार को देखा, और नथने फैलाकर उसकी सोंधी सुरभि को श्वास के सहारे कलेजे तक खींच लिया; पर रेयाह के उत्पात से दिल मसोसकर रह गये—इस दरस-परस से आगे बढ़ने की हिम्मत न थी।

जो हालत ऐन की, वही गैन की भी। मैनेजर साहब के भी मत्स्यगत प्राण मुँह तक उछलकर पानी हो गये। इनकी आँखों में भी एक बिजली उठी और फना हो गई। इनकी दौड़ तो सुबह में महज टमाटर के जूस तक थी। अगर मछली की माया प्रबल हो उठती, तो फिर उस दिन दिन-भर पेट थामे ही चलना पड़ता!

खानसामे ने तश्त को मेज़ पर रखा, और कमरे के बाहर निकल गया। नवाब साहब ने आँखें उठाकर मिस्टर अहमद को देखा और मिस्टर अहमद ने कनखियाँ नचाकर नवाब साहब को। दोनों ने दोनों की वेदना को देखा समवेदना जताई।

अमीर बिचारा गरीब भूखे की रोटियों की मोटी गड्डी को—महज़ नमक के साथ मिनटों में भस्म करनेवाली भूख की शिद्दत को—या चिथड़ों में लिपटे हुए मजदूर की चौड़ी छाती तथा ऐंठी हुई भुजाओं की पेशियों की बरकत को—कुछ उसी सतृष्ण दृष्टि से देखता है, जिस निगाह से भूख और अभाव से पीड़ित कंगाल, महल की खिड़की से झाँककर, विलासिता की नफासत और इमारत की नज़ाकत की चूसी हुई कमानीदार देह पर ज़री पोत और मिल्क की रोती हुई बहार को—या सफेद दस्तरख़ान पर सजे हुए पुलाव-कारमे और मुतंजन के अम्बार को देखता है। दोनों समान दुखी हैं। पर, शायद ग़रीब अमीर को खुशक़िस्मत समझता है और अमीर ग़रीब को! यही दुनिया है। अमीर चिल्लाकर फ़रियाद करता है—'या अल्लाह! मेरी दौलत ले ले, मुझे सेहत दे!' और, कंगाल रोकर कहता है—'या मौला! जब घर में अनाज नहीं देना था, तो फिर हाथी का पेट क्यों दिया?'

जिसे भूख है, पर घर में दाना नहीं, और जिसके घर में सोना है, पर भूख नहीं—इन दोनों में जो भूख का भूखा है, वह शायद कहीं ज्यादा बिचारा, ज्यादा बेबस और ज्यादा क़ाबिले-रहम है। भूखा अन्न के अभाव से तड़पता है, धनी भूख के अभाव से! वह पेट बजाता है, यह पेट सहलाता है। आख़िर दोनों की गति एक ही होती है—न इसको खाना नसीब है, न उसको! एक भूख का अम्बार लिये मुहताज है; दूसरा

मुहरों का अम्बार लिये महरूम है। और, विश्व का निर्मम नियन्ता करोड़पति और कंगाल को एक ही कौर का कंगाल बनाकर मुँह पर रूमाल दिये किस व्यंग्य से हँसता है!

इधर दुनिया दिगम्बर दरिद्र की उलङ्ग पसली की हड्डियों को देखकर, और कुछ नहीं तो, मौखिक दया की भीख देती है; और मधुमेह-मन्दाग्नि के झकोरों से मृतप्राय अमीर के हाड़ पर कमख़ाब और कलाबत्तू की चकमक को देखकर भवें तानकर ताना मारती है। ग़रीब बिचारा कम-से-कम आँखों का जल तो पाता है! धनी बिचारे को तो वह भी नसीब नहीं!

इस ज़माने में रुपयेवाले को और जो नायाब न्यामत मिल जाय, उसे कभी किसी की मरौवत नहीं मिलती। दुनिया उसकी तकलीफ़ पर खिल्लियाँ उड़ाती है, आँसू नहीं बहाती। वह नीरस ऐश्वर्य के मरुस्थल में एक बूँद हृदय के रस के लिए प्यासा ही मर जाता है। उसे चारों ओर से श्रुति-मधुर जय-जय-ध्वनि तो मिलती है, पर हृदय की वाणी कहीं भी नहीं मिलती। वह झुकी गरदनों के झुरमुट में दिल तलाशता है, पर दिलफरेब चापलूस की चाशनी को दिल की मिठास समझकर भटकता ही रह जाता है। अगर वैभव का अन्तराल न रहता, तो शायद वह मज़े से दिल डालकर दिल ढूँढ लेता।

वह चिकनी ज़बान पर जीता है, वह सलोनी मुस्कान पर मरता है। मगर इस मुँह-मीठी ज़बान और मुँहमीठी मुस्कान के उस पार उसे किसी की करुणा—किसी की आत्मीयता

की तलाश है तो वह अमारत की अटारी से उतरकर आदमीयत की जमीन पर आये नहीं तो रागरंग की महफिल जो मिले, किसी दर्दमन्द का दिल नहीं मिलता।

जब जर का अम्बार बाप और बेटे के बीच नंगी तलवार है, तो फिर आदमी को आदमी से अलग करने के लिए दूसरी दीवार और क्या होगी? कोई इस जर के जरिये कहाँ विजय नहीं पाता? लेकिन तीनों लोक को सर कर ही उसने क्या पाया —अगर इस दिग्विजय के ज़रिये वह कहीं अचूक विश्वास का आश्रय न पा सका?

चतुर्थ परिच्छेद

इस जीवन में प्रकृति की शृङ्खला सबसे प्रबल है। यह लाख जड़ हो, पर इसकी जड न जाने कब से है और कबतक रहेगी। यद्यपि आत्मा की सत्ता से इस शरीर का एक-एक ज़र्रा रौशन है, तो भी वह एकबारगी परदानशीं बनकर कहाँ—किस कोने में—रू-पोश है, इसकी खबर तो इन्द्रियों को भी मुमकिन नहीं। वह सल्तनत की आधारभूत शक्ति भले ही हो, पर डंके की चोट जिसकी हुकूमत चलती है, वह महामाया प्रकृति ही है।

आत्म-स्वातंत्र्य की चर्चा किताबों में हज़ार मिले, पर किसी ने कभी इसे जीवन में देखा भी है? 'भाई, तुमने वासना को लय किया, और बस, तुम मुक्त हुए'—यह फतवा दे देना कितना आसान है, पर करके दिखा देना कुछ शंखचूड़ के विष को पचा देना नहीं है—कब्र के आगोश से ज़िन्दा निकल आना नहीं है या प्राणों के स्फुरण को सहस्रदल कमल के कोष

मे बद्ध रखना नही है। यहाँ सैकड़ो जन्म के अनुशीलन का सवाल है; सदियो का नही, शायद युगों का।

पूरी प्रकृति तो दर-किनार रहे, कोई किसी एक वासना से तो ज़ोर आज़मा कर देखे, वह कहाँ तक उसे पछाड़ पाता है। मान ही सही—इसी पर कमान उठाए। मैदान मे उतरते ही जौहर खुल जायगा। मान-अपमान मे समता की बुद्धि आती है या नही! 'मै और मेरा, तू और तेरा' के विभेद की जड हिलाकर देखे—तिल-भर भी हिलती है? क्यो? अच्छा, भय ही को लय करे—यही सही। काम, क्रोध, लोभ, मोह, क्षोभ—किसी एक को सर टकराकर सर करे; जब सर पर पहाड टूट पड़ेगा, तब सर उठाने का मज़ा आप ही मिल जायगा।

पूरी प्रकृति पर विजय पाने की स्पर्द्धा तो ईश्वरता के दावे से कुछ कम नही। यह सच है कि बिना मन-मन्थन मे हाथ डाले तो कभी अमृतत्व किसी को नही मिलता। पर ख़याल रहे, यह मन्थन कुछ समुद्र के मन्थन से कम सर-मगज़न नही। सुमेरु से भी कही विराट् सत्र और संयम का पहाड़ लेकर इस तरङ्ग-लुब्ध अगाध मन-महोदधि को मथना पड़ता है। फिर तो इस एंड़ी-चोटी की मशक्कत के फलस्वरूप वह अमृत का मटका मिल सकता है, जो शायद देवताओ को भी मुश्किल से नसीब होगा; ऐसे-ऐसे रत्न मिल सकते है कि उनके आगे कौस्तुभ भी फीका जँचेगा।

गुणमयी प्रकृति के मैदान मे तलवार उठानेवाला कुरुक्षेत्र के रणस्थल मे गांडीव उठानेवाले से कही ज़ोरदार जीवट रखता है। जो स्वभाव पर स्वराज्य स्थापित करता है, उसे विश्व का राज्य करतलगत है। इस आध्यात्मिक आधिपत्य के सामने भूलोक की कौन बात, सुरपुर का साम्राज्य भी मिट्टी के मोल का है।

यह मशहूर बात है कि लाख मे एक इस मैदान मे उतरता है, और करोड़ मे एक किसी हद तक गुणो की मोरचेबन्दी पर फतह पाता है। पर, बिजली न लाख मे एक थी, न करोड मे एक। वह बिचारी तो प्रकृति के हाथो मे पुतली थी। जब कोपीन के बंधन से भी किसी की प्रकृति के पर नहीं बँधते, बल्कल के सॉकल के तले भी इस शोख़ की लट नहीं दबती, तो फिर बिजली की कमर का कार्सेट और कमख़ाब की कंचुकी किस मर्ज़ की दवा होती ?

वह तो अपने स्वभाव से मजबूर थी। सलीम के प्रेम की कशिश पर वह खिचकर चली आई थी, या उसकी उद्दाम स्वेच्छाचरिता उसे नचाये फिरती थी—दोनो तत्त्वतः एक ही बात है। जब सलीम ने मुँहजलो की छाती पर कोदो दलकर सैकड़ों मे टेनिस का मैच जीत लिया, उसी वक्त, वह बिजली की आँखो मे—जनक के यज्ञमंडप मे धनुष तोड़नेवाले राम-सा —वीर बन गया ! वह सलीम के लिए घूँघट खोलकर घुँघरू बाँधने पर भी तैयार हो गई। उसके हृदय मे ऐसा उत्ताल

आवेग उठा कि भरी महफिल मे वह लिहाज़ और शर्म दोनो को ठुकरा सकती। मगर, इसकी ज़रूरत ही नही पड़ी।

वह तो यह समझती रही कि टेनिस-मैदान का वीर दुनिया के मैदान मे भी जब उतरेगा, तब उसके हाथ के कौशल की तलवार हज़ार मुश्किलो को भी काट डालेगी। पर, इस होटल के चन्द दिनो की चाँदनी मे चाँदी काटने के बाद उसकी सारी कलाबाजियाँ—टेनिस के सभी पैंतरे भूल गये। वह टेनिस की हज़ार मुश्किले हँसकर सर कर चुका था सही, लेकिन दुनियादारी की एक भी मुश्किल वह सर न कर सका। उसकी जो इज्ज़त तूफान की तरह उठी थी, शबनम की तरह अब चू गई।

बिजली ने देखा कि सलीम संसार के रणस्थल मे एक अनाडी है और खाने-पीने, हँसने-खेलने और लपटकर सोने के अतिरिक्त वह और कुछ जौहर नही दिखा सकता। वह समझ गई कि सलीम के सुकुमार सुगौर चेहरे पर काले घुँघराले बालो की दिलफरेब तरतीब, उसके अंगो के सौष्ठव पर खुली गर्दन की कमीज, और पैंट की सजावट, और टेनिस-कोर्ट पर उसके हाथ की कमाल की सफाई ही इस ज़माने की गर्दिश मे उसकी तमाम पूँजी है।

ज्यो-ज्यो बिजली के हैंड-पर्स के नोटो की गड्डी धीरे-धीरे सरंजामे-इशरत जुगाने मे पतझड़ की पत्तियो की तरह झर चली, त्यो-त्यो उसकी आँखो मे तसवीर की शक्ल सलीम की

क़ीमत घटती गई, और फैशनेबुल जीवन की किल्ली कनक-चित्ती की कीमत बढ़ती गई। उसके दिल मे यह बात बैठ गई कि संसार मे जो कुछ श्रेय है या प्रेय, वह एक कांचन है और जिसके सर पर इसका साया है, उसकी फ़रमाबरदारी में विश्व की तमाम नियामते हाथ बाँधे खडी हैं। प्रेम भी उसीका दम भरता है; ईमान भी उसीका मुँह जोहता है।

वह सोचने लगी कि वह मुफ़लिस सलीम के प्रेम को लेकर और उसको प्रेम देकर क्या करेगी? वह तो समझती रही कि रणधीर सलीम सौन्दर्य के साथ-साथ ऐश्वर्य की डाली भी उसके चरणो पर ला रखेगा और उसकी आन-बान की तजल्ली दिन-दुगनी रात-चौगुनी तरक्की करती रहेगी।

सलीम के पतलून की झोल और शिकन, उसके कोट का धूमिल रंग, उसके पाकेट के रूमाल को पामाली और उसके चेहरे की मुहर्रमी चेष्टा बिजली की आँखो मे गुलाब के काँटे बन गईं। सलीम के हाथ मे हाथ देकर होटल की लॉन पर टहलना उसके लिए एक विकट सङ्कट की परीक्षा हो गया। बदनसीब सलीम के शबाब के तमाम वलवले पानी के बुलबुले बन गये।

अब वह सलीम से भर-मुँह बात तक नही करती। बे-वजह एक-न-एक खुचड़ निकालकर झल्ला उठती—"क्यो बेकार बैठे रोटियाँ तोड़ रहे हो? मर्द होकर औरत के सिर बैठ गये!"

वह उसे बराबर फटकार बताती और उसको किसी रोज़गार या मुलाज़मत की तलाश मे शहर की खाक छानने को मजबूर करती। सलीम बिचारा कहाँ जाता और क्या करता? वह इधर-उधर घूमकर वापस आता और बिजली को खुश रखने की गरज से बाते बनाकर अपनी कारगुज़ारी का परिचय देता। पर, बिजली की कुशाग्र बुद्धि कँटीली जिरह की नोक से उस हवाई बुलबुले को फोड देती, और सलीम एक झूठ को सच बनाने मे ज्यो-ज्यो दिमाग से नई-नई दलीले पेश करता, त्यो-त्यो वह सुलझने के बदले और भी उलझता जाता।

धुएँ का बादल उडाकर भी जब सलीम देखता कि रंग जमने के बदले रंग फीका हो चला, और धुएँ की चौक से बिजली की आँखो का कोना भी पानी से भर आया, तब बिचारा पानी-पानी होकर उसके कंधे पर सर रख प्रेम और त्याग का इजहार करता, या उसे अपनी दोहरी भुजाओं मे समेटकर प्यार से गेद की तरह उछालने की कोशिश करता। पर, बिजली झल्लाकर दूर सरक जाती, और सलीम के मुँह से बात छीन कर अपनी कुरबानी की वेदना जताती कि कैसे उसने एक मिट्टी की मनोहर मूरत के मोह मे पड—अपनी शान और शर्म, धन और धर्म की धज्जियाँ उड़ाकर—मिट्टी पलीद की।

जब कभी बिजली मीठी चुटकियाँ लेती, सलीम चुपचाप बात पीकर रह जाता। उसका रोआँ-रोआँ जानता रहा कि

बिजली जब खुश रहती, तब फूली न समाती, और जब चिढ़ी रहती, तब बात-बात पर तिनकती और बेवजह बाल की खाल खींचती। सलीम की इतनी मजाल नहीं की वह बिजली से नजर मिलाकर कहे—"बिजली, मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि मेरे पास न जर है, न हुनर, परदेस में गुजर होना मुश्किल होगा! मगर, तुम तो उस वक्त हवा के घोड़े पर सवार थी, मुझे घसीटती हुई साथ लेती चली आई!"

सलीम की तो जेब कभी की ठंढी हो चुकी थी; उसकी जबान में गरमी आती तो कहाँ से आती!

जब जेब खनखनाती रहती है, तभी जबान भी फड़कती है। जिस निखट्टू का गुजर स्त्री की दया की भीख पर निर्भर है, वह चुल्लू-भर पानी में डूब नहीं मरता—यही आश्चर्य है। वह अगर बीवी से बीवीगिरी की ताबेदारी की उमीद रखता है, तो शायद इस जमीन पर उससे बढ़कर न कोई कम्बख्त है, न अहमक!

पुरुष का आधिपत्य स्त्री पर इसीलिए निरन्तर है कि वह उसको और उसके बच्चों को खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र देता है। यह आधिपत्य आलमगीर है, अनादि है, अनन्त है। आज घर-घर अबला के त्याग और सेवा की लहलहाती फसल इसी आर्थिक परतन्त्रता की मिट्टी की उपज है। यही आर्थिक पराधीनता सतीत्व की भित्ति भी है। जभी तो मृत पति की चिता का हुताशन परलोक का सोपान है।

पुरुष शास्त्रकारों ने स्त्रियों की गरदन की इस जंजीर पर धर्म के माहात्म्य के सोने का पानी चढाकर इस सॉकल को सुहाग का हैकल बना दिया है। कहीं-कहीं तो इस लोहे की कडी की चपकलिश से पसली की हड्डियॉ तक पिस गईं, पर, लडियों की मीनाकारी कुछ ऐसी मोहिनी है कि लाख तकलीफ पर भी नारीत्व के इस जेवर को गले से उतारते नहीं बनता। यही वजह है कि ताबेदारी का नाम वफादारी है!

कहने का मतलब यह नहीं कि इस रुद्ध वायुमंडल मे सच्चा प्रेम पनप ही नहीं सकता। प्रेम तो एक जंगली आजाद पौधा है, जो स्वच्छन्दता के किसी चमन मे फल-फूल सकता है। नेम को प्रेम समझकर हम लाख मियॉ-मिट्ठू बने, पर नेम—नेम है, प्रेम—प्रेम।

मनुष्य की पशुवृत्तियों को नियंत्रित करने की जरूरत हमारी विवाह-प्रथा की नींव है। यही विवाह समाज-संगठन की किल्ली है। इसका उसूल है—पुरुष की ओर से रक्षा और स्त्री की ओर से सेवा। जो महज सेवा करने का अधिकारी है, वह जायदाद पर बराबरी का हकदार नहीं हो सकता। समाज मे इसी नियम पर औरतों का वैसा हक न जर पर है, न जमीन पर। अगर जीवन-संग्राम मे आज स्त्रियॉ हाथ बँटाने पर उद्यत हो सकीं—अपने पैरों पर खडी हो सकीं, तो यह निश्चित है कि नारियों की निगाह मे सतीत्व के प्रचलित माहात्म्य की जगह नारीत्व का उत्कर्ष स्वातंत्र्य होगा और

प्रत्येक समाज में स्त्री-धर्म का नवीन संस्करण अनिवार्य होगा।

आर्थिक स्वातंत्र्य का सहचर कभी सतीत्व का आत्मोत्सर्ग नहीं हो सकता। महाप्राणता की त्यागशीलता कुछ और है, दीनता की सहचरी—व्यक्तित्व की विलीनता—कुछ और।

आज इस जमाने में प्रगतिशील महिला के माथे की मणि-मञ्जूषा आजादी हो चली है। निस्सन्देह इस क्रान्ति से हमारे सनातन भवन की शान्ति सदा के लिए विलीन हो जायगी और 'जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहि नारी' की आवाज़ हर चहार तरफ से बुलन्द होने लगेगी—गर्चे स्वतंत्रता की मौज पर बहककर बिगड़नेवाला सवाल स्त्री और पुरुष दोनों के लिए कम या बेश बराबर लागू है।

पर साथ-साथ यह भी मद्दे-नज़र रखना ज़रूरी है कि शान्ति का मारकेश निरङ्कुशता ही नहीं, अङ्कुशता भी है, और कभी-कभी क्रान्ति की प्रलय-सत्ता रुद्ध हाहाकार की ऊमस पर रहमत का मेह बन छप्पर फाड़कर बरस पड़ती है।

बिजली के हाथ में कैश-बक्स की कुंजी थी, और सलीम मियाँ की पहुँच भूलकर भी उस कल्पलोक तक कभी मुमकिन न थी। नतीजा यह था कि सलीम की गुलामी थी और मिसेज़ सलीम की हुक्मरानी—बीवी की अफ़सरी, मियाँ की मातहती!

पर, बिजली के कैश-बक्स का सञ्चय कुछ रक्तबीज का परिवार न था, न कुबेर का अमिट अम्बार ही। वह धीरे-

धीरे शून्य हो चला। होटल की विलासिता की लीला और फ़ैशनपरस्ती की प्रवणता ने इस शून्यता की गति मे तेज़ी भर दी।

बिजली ने आँखो-तले अँधेरा देखा। वह तो भूने चने फाँक और मारकीन की मोटी धोती लपेट ज़िन्दगी बसर नही कर सकती। सलीम से उसका प्रेम जो हो, पर उस प्रेम का अर्थ उसकी लुगत मे अपने अस्तित्व को विलीन कर देना नही था। वह बन-ठनकर दस के सामने ज़रूर रौनक-अफरोज़ होगी, और जबतक दस-बीस की झुकी गरदन और आँखें उसके हुस्न की सलामी नही उतारती, तबतक उसे जीवन मे रस नही मिलता।

वह बचपन ही से खुशामद के वायुमंडल मे पली है। आज तक प्रशंसा का मधुर गुञ्जन उसके प्राणो के तार-तार मे भरा है। किसी एक के उसके कदमो के तले कलेजा निकालकर रख देने से कही ज्यादा आनन्द दस के कलेजो को मसलकर अपना रंग जमाने मे है।

जब वह शाम को जामनी या नारंगी साड़ी मे इठलाती और बल खाती, होटल की सीढ़ियो से उतरकर, हरी-हरी दूब की लॉन पर टहलने आती, और होटल के तमाम अधेड़ और जवान सन्नाटे मे आकर कलेजा थाम लेते, या उसको चितवन की कोर की तलाश मे उसके दोनो बाजू मुलाकातियो की रेल-पेल होती, तब वह पलको के फर्श पर पैर न रखकर कुछ उसी

भाव और चाव से निगाह और मुस्कान का पञ्चामृत वितरण करती, जिस अन्दाज़ से वह कुछ साल पहले, स्कूल की लॉरी पर जाती हुई खुशामदी सहेलियों के गरोह मे, पॉकेट मे भरी टाफी और चाकलेट की गोलियाँ जी खोलकर बाँटा करती थी।

वह सब कुछ बरदाश्त कर लेती; पर किसी हालत मे भी अपनी शान मे बट्टा लगते नहीं देख सकती। और, जबतक चाँदी की चाँदनी नहीं होती, तबतक शान की कुमुदिनी कहाँ खिलती है? सलीम की सलोनी शक्ल, उसके उभरे हुए कपोल, उसके चुम्बन की मीठी चुमुक, उसके आलिङ्गन का वसन्त-पुलक—सब कुछ उसके लिए आठों पहर मौजूद थे, पर रुपये के अभाव ने सबका रंग फीका कर दिया!

अभाव ही इस संसार मे तमाम अनर्थों का मूल है। मनुष्यता की जड़ मे इससे भयङ्कर कोई दूसरा कीट नहीं। हमारे जीवन की कतिपय आपत्तियों का—हमारे मन की कतिपय व्याधियों का—एकमात्र अभाव ही मातृगर्भ है।

आज कितने मनुष्य डाकू और खूनी न रहकर शरीफों मे शरीफ शुमार होते—अगर असह्य अभाव के चपेटों ने उनके जीवन की गति को बरबस उन्माद की घाटियों मे ढकेल न दिया होता। अभाव ने लत धरा दी और लत ने धीरे-धीरे हृदय की कोमल वृत्तियों को तिलचटे की तरह चाट डाला। परिणाम यह हुआ कि एक स्वस्थ सुन्दर जीवन अभाव की आँधी मे उखड़कर लुढ़कता हुआ खड्ड मे जा पड़ा। दुनिया उस

खूनी की आस्तीन के लहू को देखती है और भवें सिकोड़ती है; पर उसे रोज़मर्रे की झंझटों से फ़ुरसत कहाँ कि वह उसकी ज़िन्दगी के ख़तनाक पहलू पर एक उड़ती नज़र भी डाल सके!

बिजली का दिमाग़ चकरा उठा। अभाव उसकी प्रकृति के निहित उन्माद को कुरदने लगा। विलासिता की लगन आग में घी बन गई। इधर फ़ैशन की शान की धौंकनी आठों पहर चल ही रही थी। उसे ज़रा-सा चितवन की कोर को और मुलायम कर देना था—लिहाज़ की लगाम को और ढीला कर देना था, फिर तो उसके क़दमों पर मुहरों का अम्बार उमड़ आता। सलीम का प्रेम एक अकेला अन्तराल था। विवेक उसकी स्वच्छन्दचारिणी पशु-वृत्तियों को संयम के काञ्जी-हाउस तक हाँककर ज़रूर ले जाता; पर खड्गहस्त वासना दंगे के ज़ोर पर छुड़ा ले जाती!

उसका हृदय घात-प्रतिघात की चोटों से विह्वल हो उठा। जब कभी वह सलीम के सजल नेत्रों को देखती—उसके चेहरे की निर्वाणप्राय आभा पर नज़र डालती, तब अक्सर उसकी पलकें पसीज आतीं, वह कमरे में बन्द होकर इशरत के प्रसाधनों को फेंक बैठती और पापड़ बेलकर जीवन बिताने पर कमर बाँधती। मगर, दस मिनट बाद, अवसाद उसे ऐसा आ घेरता कि फिर उससे न खाया जाता, न सोया जाता, न हँसा जाता, न बोला जाता, न कहीं हिला जाता और न किसी तफ़रीह में उसे कोई मज़ा मिलता।

बिचारी करती क्या ? इन्द्रियों की इस भीषण हड़ताल के आगे बुद्धि की क्षीण अपील कहाँ तक चलती ? शरीर का एक-एक ज़र्रा दंगे पर आमादा था। इधर हृदय के उद्दाम अरमानों की रेल-पेल का हुजूम और उधर नारीत्व की एक भटकी कणा की पिकेटिंग का प्रयास।

अलसाई संध्या है। बिजली बेड-रूम के विशाल आइने के सामने खड़ी होकर लम्बी लटों को सँवार रही थी। उसने ज़री के फीते देकर नये फैशन का जूडा बाँधा। जूड़े मे जूही की कलियाँ डालीं। पिन दे-देकर छिटकी लटों को कानों पर चढ़ा डाला। सर के ऊपर सुनहले आँचल के छोर पर नीलम की आँखोंवाली तितली बैठी। कमर मे कार्सेट के ऊपर काकरेज़ी कमखाब का टाइट जैकेट चढ़ा। बारीक क्रेप की कुसुमी साड़ी सजी। सजी क्या, बल उठी। गालों पर रूज की गुलाबी पॉलिश चढ़ी। होठों पर पान की-सी विलायती लाली और ललाट पर कुंकुम की बिन्दी जगी। खुली गरदन मे सॉप की शक्ल की सोने की लरी लटकी। उसके एक-एक अंग पर कला की विद्युल्लता चमक उठी। रेशमी रूमाल पर उसने कस्तूरी की शीशी उँड़ेल डाली। तमाम कमरे मे सेंट की भीनी खुशबू फैल चली।

इस बीच किसी ने किवाड़ पर खट-खट आवाज़ दी। वह फुदक कर आइने के पास गई। एक बार और लटों को सहला-कर दुरुस्त किया। फिर पाउडर-पफ के सहारे गरदन से लेकर

खुली छाती तक नमूदार पसीने की एकाध बूँद को उठा डाला, और हैंड-बैग को मेज़ से उठाती हुई मुड़कर बोली—'ठहरिये, आती हूँ।"

"मैं हूँ बिजली !"—सहमी हुई आवाज़ आई।

"कौन, सलीम ?"

"हाँ, अभी बाज़ार से लौटा हूँ।"

"वाह ! अन्दर आओ !"

सलीम पसीने से लथपथ है। उसकी कमीज़ कमर तक तर-ब-तर। बाल चेहरे पर परीशान हैं। आँखें चढ़ी हुई हैं।

"क्यो, तुम कहाँ से टपक पड़े ?"—बिजली ज़रा हताश-सी बोली।

"कहाँ से कहूँ ! कन्नू मल न जाने क्यो रिस्टवाच को गिरो नही रखता।"—सलीम बदहवास होकर पलँग की पाटी पर बैठ गया।

"क्यो, ऐसी उलझन क्या थी ?"—बिजली ने तिनक कर पूछा।

सलीम ने आँखें उठाकर बिजली की साजसज्जा देखी और देखकर सन्नाटे मे आ गया। लहू के जोश पर बिजली के फड़कते हुए नथने मस्ती मे चूर हैं। छलकते हुए प्याले की शक्ल उसकी चुहल-भरी झूमती चितवन पत्थर के कलेजे मे भी जोबन उभार देती। उसके गुलेनार आँचल की सुनहली कोर लहू में लिपटी तलवार की धार-सी चमचमा रही है। सलीम ने दिल-

ही-दिल मे कहा—"वल्लाह ! आज किस खुशबख्त की आँखों की ज़यारत के लिए यह फ़रमाइशी इन्तजाम है !"

क्या कहने इस निखार के ! फैशन की प्राण-स्वरूपा कला की बारीकियाँ दोनो हाथो से बलाएँ ले रही हैं।

सलीम ने समझा—आज बिजली किसी खास हवाखोरी के लिए तैयार हो रही है और उसे भी शायद साथ जाना पड़े। पर, यहाँ तो घर मे भूनी भाँग नहीं और बीवी के मिज़ाज मे इस क़दर इमारत का टीमटाम ! उसकी आँखो के सामने मौसम की चिलचिलाती धूप, सड़क की उडती हुई गर्द-गुबार और ऑफिसो के मुँह पर टँगे 'नो वेकेंसी' के तख्ते की तसवीर नाच गई। वह सूखी हँसी हँसकर बोला—"तुम्हे पता है, मिस्टर अहमद ने आज कमरों के किराये के लिए मेरी कैसी मरम्मत की ?"

"सच !"—बिजली ने तुर्श होकर कहा—"तुम तो कहा करते थे कि तुमसे वे बड़ी हमदर्दी रखते हैं। नवाब साहब से कहकर तुम्हें कोई खासी जगह····"

"यह सब कुछ तो है; पर आखिर वे कबतक मुफ्त आँचल पर बिठाये रखेंगे ? वह विषखोपड़ा शामलाल तो एक ही कॉइयाँ है। मिस्टर अहमद कुछ इहतियात भी करे—चूँकि उनकी आँखों में पानी है; मगर वह तो बिजिनेस मे 'शाइलॉक' का चचा है। आज उसीने तो रुक्का भेजा और फिर मिस्टर अहमद सिर हो गये। उस जल्लाद तक किसी का गुज़र नहीं।

क्या कहूँ, मेरी ऐसी किरकिरी हुई···ज़मीन भी न फटी। कभी से जूतियाँ चटकाता फिरता हूँ। कहीं दाल नहीं गली—गलने की कौन कहे, गमे भी न हुई! वह बदज़ात कन्नूमल इसे मिट्टी के मोल लेना चाहता है!"—सलीम ने बाईं कलाई की घड़ी दिखाते हुए कहा।

बिजली चुप खड़ी रही। उसने एक नज़र अपनी चुहचुहाती साड़ी पर रखी और दूसरी नज़र सलीम के उतरते हुए चेहरे पर। उसके पास भी तो कुछ नक़द रहा नहीं। और, गहनों को गिरो रखने के पहले वह अपनी शान की आग मे जान दे देगी। वह तो किसी की कड़ी आँख देखना गवारा नहीं कर सकती।

"तुम आज यह बन-ठनकर कहाँ चली?"—सलीम ने आहत स्वर मे पूछा।

"क्यों, कहीं जाने मे गुनाह है क्या? और मैं तो जब बाहर जाती हूँ, कपड़े बदल कर ही जाती हूँ। शौक-सिंगार आज न करूँगी, तो उतार पर करूँगी? तुम भूल गये"—बिजली ने तिनककर कहा—"आज मेरी साल गिरह है!"

"क्या करूँ, अल्लाह ने मुझे इस लायक़ नहीं बनाया कि आज भी मैं तुम्हारी दिलजोई कर सकूँ!"

"दिल से दिलजोई होती है न!"—बिजली आँखो में मुरकुराती हुई बोली।

"मगर दिल से दौलत तो नहीं पनपती?"

"दिल .खुद ही एक बेहतरीन बेशक़ीमत दौलत है !"

"तुम समझो, तब न !"

"अच्छा कह रहे हो ! मैं इसे बेशक़ीमत न समझती, तो दुनिया की दौलत पर लात मारकर यहाँ आती !"

"ज़रूर। मगर, आज तो यहाँ ख़ाक उड़ रही है, और तुम्हें हवाख़ोरी की सूझी है !"

सलीम से नहीं रहा गया। आज की मानसिक उत्तेजना ने दिल की लगी को ज़बान तक ठेलकर पहुँचा ही दिया।

"ओ, यह बात ! तुम पहले कहते, तो मैं नवाब साहब के साथ मोटर की सैर क़बूल न करती। वे तो सालगिरह का ख़ासा जल्सा दे बैठते—कम-से-कम डिनर-पार्टी तो ज़रूर ! मगर, मैंने साफ़ इनकार कर दिया।"

"आख़िर नवाब साहब को इस साल-गिरह का पता क्यों-कर लग गया ?"

"यों ही बातों-बातो मे ज़िक्र आ गया। अब तो ख़ाक उड़े या पत्थर पड़े, मुझे जाना ही होगा। मैं····"

"कब ?"

"बस, यही दस-बीस मिनट मे !"

"क्या ख़ुद आकर तुम्हें बुला गये हैं ?"

"नहीं तो। वहीं लञ्च के वक़्त मुझसे वादा करा लिया।"

"तो फिर कहाँ का प्रोग्राम है ?"

"फ़ैसी-मेले !"

'ओह्हो ! जभी तो यह फ़ैसी फ़ैशन है, चेहरे पर यह ग़ज़ब का रंग-रौगन।"—सलीम ने आँखें उठाकर रुक-रुककर कहा।

बिजली सर से पैर तक बिजली-सी चमक उठी थी। सलीम की आँखों मे उस लौ की आँच लगी। उसने फिर चौंधिआई कनखियो से देखा। बिजली की नज़रो मे शान-भरी शोखी की शिखा जल रही है। वही लौ उगलती हुई दीप्ति उसके जूड़े के गुलाली गुलाब मे है, उसके गालों के गुलाबी आब मे भी; उसके ज़री गुलेनार आँचल के निखार मे है, उसकी गरदन के जुगनू के चमत्कार मे भी, उसके होठो की पपड़ियो मे लिपटी हुई मुस्कान मे है, उसकी ज़हरीली मिसरी से पगी ज़बान मे भी। साथ-साथ एक नाज़ुक चुटीली गन्ध उसके बालो से, गालो से, रूमाल से, कपड़ों के अन्तराल से छन-छनकर चारों ओर मादकता बिखेर रही है।

"आख़िर तुम क्यो ऐसे बेज़ार हो रहे हो ?"—बिजली ने ज़रा मचलकर पूछा।

"मैं ? मैं तो ज़िन्दगी ही से बेज़ार हो चला हूँ !"

"अच्छा ! यह कब से ?"—बिजली हँसती हुई बोली।

"जब तुम्हारे दिल से इश्क़परस्ती छूट गई और ··"

"और ?"

"ख़ुद-परस्ती आ गई !"

"खूब ! मैं तो बुतपरस्त ठहरी, और आजतक एक पत्थर का बुत पूजती आई।"

"बिजली ! यह क्यो उलटी गंगा बहाती हो ? बुतपरस्त तो मैं ठहरा; नही तो, आज यो मिट्टी पलीद होती ? मै फिर कहता हूँ, बिजली, क्यो अपना पानी आप खो रही हो ?— यह रंगीन तितली बनकर चमन मे उड़ने चली हो—देख लेना, काँटों मे उलझ जाओगी।"

"वाह ! और तुम, तुम भौरे की तरह कलियों के रस पर मँड़राते फिरो—क्यो ? आज लञ्च के पहले मिसेज़ सूर से कैसी घुल-घुलकर बातें होती रही !"

"क्या गजब ढाती हो, बिजली ! मैं तो जिस शमा का परवाना हूँ, वह किसपर रौशन नहीं ? पर जल चुके, अब दिल का जलकर कबाब होना बाक़ी है। तुम्हें दस की आँखों में खुब जाने की तमन्ना हो, मुझे नही !"

सलीम उठा। उसकी आँखो के डोरे सुर्ख हो रहे हैं, चेहरे पर एक अजीब वहशत-सी बरस रही है।

"सलीम ! तुमने फिर ढालना शुरू किया ? तुम्हारी आँखें टमाटर हो रही हैं। मिस्टर अहमद ने तुम्हे ज़हर की लत धरा दी !"—बिजली नज़दीक आकर मीठे स्वर से बोली।

'क्या करूँ ! इस पानी से भी तो दिल की आग बुझती !"

"क्योंकर बुझे, सलीम ! यह आग का पानी है—आग लगाता है, बुझाता नही !"

"खैर, जाने दो। कल अगर होटल का बिल चुका न सका, तो हम दोनों ····बस····"

बिजली खीज गई। मुड़कर झल्लाती हुई बोली—"तुम्हें यह कहते शर्म नहीं आती? तुम्हारे चलते होटल में क्या आई, भट्टी में पड़ गई। तुम मर्द होकर औरत के सिर बैठे तर माल चाब रहे हो। कुछ कमाकर लाते, तो यह ऐठ भी निभती। तरसती रह गई कि तुम्हारे पसीने की कमाई देखती।····मैं जानती हूँ, तुम्हारी आँख इन जेवरों पर है। कितने रह गये हैं, देखते जाओ—यही एक जोड़ा हाथ का बाला; कान का झुमका, गले की चेन—बस! ले जाओ, इन्हें भी बेचकर पैसे खड़े करो, और पी जाओ। मैं भर पाई!"

सलीम ने देखा कि बिजली का सुर चढ़ गया; अब यहाँ से टल ही जाने में खैरियत है। वह आगे दरवाजे की ओर लपका, तो फिर बिजली ने टोका—"कहाँ जाते हो? सुनते तो जाओ!"

"जहन्नुम में!"

सलीम जैसे बावला हो पड़ा। एक झटके के साथ किवाड़ खोला, और तीर की तरह बाहर निकल गया।

पञ्चम परिच्छेद

सलीम सीधे होटल के 'बार' मे पहुँचा और उसी साँस में एक बड़े पेग के लिए आर्डर दिया। उसकी नज़र मे दिमाग़ के बौखलापन के लिए दूसरी दवा न थी। इधर बिजली का मिज़ाज, उधर होटल का हिसाब; उसे राहत कहाँ थी? इस परीशानी के मौके पर उसे जानीवाकर का सहारा मिल गया और उद्विग्न मन की बेचैनी उसे शीशे के साये मे खींच लाई। दर्द-दिल की यह अकसीर दवा पाकर वह पैमाने का मिक़दार भूल गया। चुल्लू से प्याले पर और प्याले से बोतल की मंज़िल पर क़दम रखा। नक़द खरीदना तो था नहीं; बस, आर्डर देना था और ढालना। फिर, पैमाने का दौर थमता क्योंकर?

मिस्टर अहमद ने कभी ख्वाब मे भी न सोचा था कि जाम का जादू इस तेज़ी से सलीम के सर पर सवार हो

सकेगा। उन्हें क्या मालूम कि शराब की लगन से कहीं ज्यादा यह उसके दिल और दिमाग की जलन है, जो उसे बेखुदी की तलाश में इस आग मे ठेलती लिये जा रही है!

सलीम कुर्सी पर बैठा पेग-पर-पेग ढालता रहा। यहाँ तक कि अब मद्य-पुराण-परायण हो चला। सोडावाटर के सरलार्थ की जरूरत तक न रही। खैरियत थी कि अभी उठती जवानी का जोर था, वरना दूसरा कोई होता, तो इस बलानोशी पर अंटाचित हो गया होता। शायद, बिजली अगर साबित क़दम रहती, तो वह बिचारा अपनी खाल ही मे मस्त रहता और शराब पीकर बदमस्त होने की कभी हाजत भी न होती।

जहाँ सलीम बैठकर पी रहा था, वहाँ से होटल की बरसाती का एक हिस्सा साफ नज़र आता रहा। उसने देखा कि एक डील-डौल की मोटर आकर खडी हो गई।

सुरमई रंग की 'सिडान-बॉडी' कार। बॉनेट के सिर पर एक नंगी परी की मूरत, जो संध्या की लोहित आभा की चमक से लाल परी बनी है। शोफर की कपूरी जीन की ज़र्री वर्दी क़ीमती कार की जीनत है।

तबतक नवाब साहब, मिस्टर अहमद और कई-एक सफेदपोश सज्जन आकर वहाँ खड़े हो गये। शायद किसी के स्वागत की प्रतीक्षा है।

नवाब साहब के सर पर सील की खाल की काली टोपी

है। तूसी सर्ज की शेरवानी और चूड़ीदार सफ़ेद पाजामा। बाकी सब विलायती लिबास मे लैस हैं।

नवाब साहब के दो परम प्रिय कुत्ते—पेकिनीज़ भूरा टामी और स्पेनियल काली टोनी—सबसे पहले दुम हिलाकर मोटर पर सवार हो गये। मिस्टर अहमद की बगल में 'मिसेज़ सूर' भी माहताबी साडी और ब्लाउज़ मे फूली-फली मल्लिका-लता-सी बसन्त की दुलहिन बनी हैं।

'मिसेज़ सूर' होटल के दलालो मे नम्बरी दलाल हैं। विज्ञापन के इस युग मे होटल का बाज़ार गरम रखने के लिए एक चुलबुल हसीन की ज़रूरत पहले-पहल मिस्टर अहमद ने महसूस की। होटल के भवन के नज़दीक ही 'मिसेज़ सूर' की 'सूरमंज़िल' थी। मिस्टर अहमद ने वही डोरी डाली और सौदा पट गया। चिराग से चिराग जलता है।

मिसेज़ सूर सोसाइटी की एक आलोक-प्राप्त विधवा हैं। उनमें त्यागशीलता भी है और प्रगतिशीलता भी। त्यागशीलता इसलिए कि युवती होकर भी उन्होंने फिर शादी न की; और प्रगतिशीलता इसलिए कि विधवा होकर भी उनके दिल से शादी की ताज़गी कभी छुटी नहीं। सर पर सिन्दूर न हो, न सही; पर मुँह पर पाउडर ज़रूर है। हाथ मे चूड़ी रही या न रही, सोने की घडी तो है। सुहाग की बूँदी चुनरी न सही, गुलेनार रेशमी साड़ी तो है।

मिस्टर सूर को आँख मूँदे ज़माना हुआ। वे चूने के

कंट्राक्टर थे। उनकी सारी कमाई सूर-मंज़िल की ईंट और पत्थर मे जज्ब हो चुकी थी।

मिसेज़ सूर ने वैधव्य के दो-तीन साल लहू के घूँट पीकर काटे। गोद मे दो नादान बच्चे भी थे। पति के काल के गाल मे जाने के बाद भी गाल का गुलाल पामाल न हुआ। यह उनके जीवट का जुलूस है कि हज़ार मुसीबतों पर भी उनके चेहरे पर न कभी बल पडा, न साडी पर शिकन। इधर तो उनके दिन मज़े मे गुज़र रहे हैं। दोनों वक्त के लञ्च और डिनर ठाट से होटल ही मे चलते हैं। दुपहरी में वे सज-धजकर होटल मे आतीं और किसी दिन भी आधी रात के क़बल वापस नहीं जातीं।

यह मिसेज़ सूर की चुहलमिज़ाजी तथा परिमार्जित रुचि की फैयाजी है जो मिस्टर अहमद के मुवक्किलों के दिल मे मलय-हिल्लोल की हरियाली लाती और होटल मे विलायती बोतलो की खपत तरक्की पर रहती। वहाँ जितनी ठठोलियाँ और दिलचस्पी की चुहले होती, सभी मे मिसेज़ सूर का हाथ ज़रूर रहता। और, यह उन्हींके हाव-भाव और दिलफ़रेब गुफ्तगू की बरकत है कि आधी रात तक भी वहाँ शैम्पेन और कॉकटेल की धूम मची रहती। कभी वे प्यानो छेड़ती, कभी जाम का दौर अपने हाथो चलातीं; कभी सनीचर की रात मनचले नवासिखुओं को फ़ाक्सट्राट की बारीकियों का सबक भी देतीं।

यह किसी ने आजतक नहीं जाना कि होटल की आमदनी में वे किस हद तक शरीक हैं—शराबों की खपत पर किस कदर कमीशन पाती हैं। तनखाह या दलाली से उनकी जो भी आमदनी हो, यह राज़ कभी किसी पर खुला नहीं। यों तो आजकल इस ज़माने में किसी परदा-तोड़ प्रगतिशील महिला की कुत्सा एक आम बात-सी है, पर कानों-सुनी बात का ज़िक्र नहीं, आँखों-देखी कभी किसीने उनकी शिकायत नहीं की।

आज क्लबों और होटलों में कितनी लेडियाँ मुसीबत से—और शायद कुछ अपनी तबीयत से भी—मजबूर, शरीफों के लिबास में, तलवार की धार पर चलती हुई, अपनी मुस्कान और निगाहों की बाजीगरी की रोटी पर पेट पाल रही हैं! उनमें अच्छी और बुरी दोनों रहती हैं।

किसी मदमस्त अजनबी के साथ, छाती से छाती मिलाये, कमर में हाथ देकर, फाक्सट्राट के कदम पर ठुमुकना, तहजीब के खिलाफ जो समझा जाय; पर जिस समाज में मिसेज़ सूर हम-नेवाला हम-प्याला थीं, वहाँ निशस्त और बरखास्त की तालीम की तरह यह कलाबाजी की शिक्षा भी एक ज़रूरी कला में दाखिल है।

आखिर भारतीयों की एक ज़बरदस्त टोली विलायती तरीकों का हिमायती हो ही चुकी। उनका खान-पान, रहन-सहन ही अलग नहीं है; उनकी दिलबस्तगी की रँगरलियाँ

भी निराली हैं। हमारी हँसी-ठठोली के गुलछर्रे, हमारी होली के भड़ौए, हमारी पिचकारियाँ और कुमकुमे, उनकी निगाह मे बर्बर रुचि की छीछालेदर के नमूने हैं। उनके लिए न तो तायफो की जादूनज़री है, न झूले की कजली, न सावन के तराने हैं, न बुलबुल के फिसाने। पतलून की गेलिस की चपकलिश पर उनकी टाँगें न फर्श पर जम सकती हैं, न मोरक्को-लेदर के बूट की नोक झूले के छोर पर बैठ सकती है। जबतक कॉकटेल की चुहले और फैसी फाक्सट्राट की कुलेलें न हों, तबतक उनकी तबीयत की फरहत कभी मुमकिन नहीं। हम भवे सिकोड़कर उनमे से किसी एक को भी अपने रंग पर ला नहीं सकते।

इसीलिए सनातनी दुनिया जिन बातो को—विलासिता-बहुल स्वतंत्रता के जिन उच्छ्वासो को—शिकायत की नज़र से देखती है, उन्हे मिसेज़ सूर का पश्चिमी ढांचे पर ढला समाज, नैतिक पतन कौन कहे, रोज़मर्रे के स्वच्छन्द जीवन का एक आवश्यक अङ्ग मानता है।

यह ग़ौर करने की बात है कि जब बड़े-बड़े मानी और ज्ञानी भी पापी पेट के लिए नैतिक मार्ग से सरक कर गड्ढे के किनारे तक बेखटके चले जाते है और सुमिरिनी के दानो पर उँगली फेरनेवाले बड़े-बड़े महात्मा कमंडल के गंगाजल के सहारे ईमान को उलटे छुरे से मूँड़कर धर्मध्वजी बने फिरते हैं, तो फिर मिसेज़ सूर की क्या बिसात? वे तो जिस वायुमंडल

मे पली थी, वह पश्चिमी बवंडर का एक अंश है। अमीरों के घर इस नाज़-नखरे के रोज़गार पर उनके बच्चों का शरीफ़ों मे गुज़र है—उसीपर उनकी रोज़मर्रे की जार्जेट साड़ी और जम्पर तक का निभना भी निर्भर है। ऐसी परिस्थिति में उनकी गर्दन मे हाथ देने के पहले शायद समाज को अपनी न्याय की कसौटी किसी पारदर्शी स्फटिक की बनानी होगी।

अगर हलाल और हराम की रक़मो की छानबीन हो और कोई नीर-क्षीर का सच्चा पारखी हो, तो बहुत मुमकिन है कि कितने समाज-पतियों की विभूतियों की कीर्ति-कौमुदी कलंक से पाक न मिलेगी; और कितने दलितों और पतितो की कालिमा की कमाई मे पसीने की वफ़ा की गन्ध भी मिल सकती है।

सलीम ने देखा कि बरसाती के दामन पर जमी हुई टोली मे एक हलचल-सी हुई और नवाब साहब ने आगे बढ़कर सीढ़ियो से उतरती हुई बिजली को हाथ का सहारा दिया। अदब के साथ गरदन झुका ली। बस, इन विनीत लोचनो को पलटन ने परेड के क़ायदे से सलामी उतारी और सर झुकाए हँसती और इतराती हुई बिजली मोटर मे दाख़िल हुई।

उसके हाथ मे एक छोटा-सा सुनहला लेडीज़-बैग है, जो हर सैर-सपाटे का साथी है। उसमे और कुछ हो या न हो, एक पाउडर-पफ और एक छोटा-सा आइना बराबर रहता; चूँकि घूमते-फिरते जब मौक़ा मिलता, वह गालो की पालिश बिना दुहराये बाज़ न आती।

मोटर की पीछेवाली सीट पर वह बैठी और नवाब साहब भी बैठे! मिस्टर अहमद ने क़दम बढ़ाकर दरवाजा बन्द किया, और सर्र-से मोटर फाटक के बाहर निकल गई।

सलीम की आँखो मे लहू उतर आया। वह सोचने लगा—"बीवी की तो यह फ़रमाइशी इज्ज़त और मियाँ को कोई पूछता तक नही! जैसे कि वह कोई क्या है! बहुत है, तो बेगम साहेबा का कोई पानखवास या हुक्कावरदार है। कहाँ से कहाँ यहाँ आने गया! और बिजली का यह शाहाना ठाट तो देखो! कहाँ की नवाबज़ादी है! कल जब होटल के बिल का तक़ाज़ा शुरू होगा, तब दिमाग का पारा आप ही उतर आएगा। नहीं-नहीं, उसने ज़रूर कोई मोटी रक़म चुरा रखी है; वह गरमी न होती तो इस आसन्न विपत्ति के सामने यह आन-बान कभी निभ पाती? जो हो, कल आप ही राज़ खुल पड़ेगा। ··· मैं तो अब रिस्टवाच लेकर बाज़ार की चहलकदमी नही करता। " अच्छा! आज बिजली को यह फैसी मेले की हवाखोरी कैसे सूझी! सुबह ही से यह बन्दिश रही! और मुझीपर रौशन नहीं। तो क्या "

सलीम के पेट मे चूहे कुलाँच भरने लगे। वह एक अव्यक्त आशंका से कातर हो उठा।

मिस्टर अहमद आकर उसके पास बैठ गये और बड़े मीठे स्वर से बोले—"क्यों सलीम, इस कदर बेज़ार क्यों नज़र आते हो? यह भी कोई बात है?"

"सिर फटा जा रहा है"—सलीम हाथ से सर थाम कर बोला।

"और तुम ढाले जा रहे हो! यह दर्दे-सिर की दवा है?"

"दर्दे-सिर की नहीं—दर्दे-दिल की तो है!"—सलीम ने रूखी हँसी हँसकर कहा।

"हरगिज़ नहीं। तुम्हारे दर्दे-दिल की दवा पैमाने की परी नहीं, सोने की परी है—गोल-गोल गिनी!"—मिस्टर अहमद ने हँसकर रुपया ठनकाने का इशारा कर दिखाया।

"मगर, वह मिलती कहाँ है?"

"यहाँ बीवी के दामन के साये में अंडे सेते रहोगे तो खाक मिलेगी!"

इतना कहकर मिस्टर अहमद ने सर एक ओर किया और आवाज़ दी—"कोई है?"

"जी, हाँ।"—ख़ानसामा दौड़कर हाज़िर हुआ।

"एक छोटा पेग लाओ। और सुनो, साहब के लिए जिन और पोटेटो चप्स ··· "

"हुज़ूर, सोडावाटर या लेमनेड?"—ख़ानसामे ने दस्त-बस्ता अरज़ किया।

"बस, जिन और लेमनेड।"—मिस्टर अहमद जरा तुर्श होकर बोले। ख़ानसामा भीतर दौड़ गया।

"मैनेजर साहब, आपने भी तो होटल के बिल के लिए

शदीद तक़ाज़ा शुरू कर दिया !"—सलीम ने दबी ज़बान से कहा।

"भाईजान ! यह होटल है—और होटल कुछ मेरा घर नहीं। तुम्हीं कहो, मेहमान-नेवाज़ी कबतक चल सकेगी ?"

"दो-चार दिन भी तो ·· "

"मैं तो हर पहलू से तैयार हूँ, पर वह ज़ालिम बुत-काफ़िर तो नहीं सुनता !"

"कौन ?"

"अजी, वही शामलाल—मेरा पार्टनर। टस-से-मस होता ही नहीं। और, तुम जानते हो, मेरा बस "

"क्या करूँ ! कोई सूरत नज़र नहीं आती।"—सलीम ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा।

"तुम्हारी नज़र को तो नज़र न लग गई है ! हो तो क्या हो ? जबतक नजरों से बीवी की सूरत नहीं उतरती, तबतक तो राह दिखाने पर भी तुम्हें नज़र न आएगी। मैंने नवाब साहब के इलाके पर दो सौ की एक ख़ासी जगह ठीक करा दी, और वह भी अफ़सरी—कुछ मातहती नहीं। मगर, तुम्हारी अक्ल पर तो पत्थर पड़ा है। यहाँ तलवे सहला रहे हो ! अब क्या तुम्हें कलक्टरी मिल जाएगी ?"

"मैनेजर साहब, मुझे तो तहेदिल से कबूल है। मगर अभी बिजली से "

"तो क्या तुमने ज़िक्र भी नहीं छेड़ा ?"—मैनेजर साहब ने बात काटकर पूछा।

"मौक़ा ही कहाँ मिला ? उसे अपने मिस्सी-काजल से फ़ुरसत भी मिले !"—सलीम ने बड़ी आजिज़ी से कहा।

"अम्याँ, मिस्सी-काजल नहीं, पेट-पाउडर कहो। हाँ, तो आख़िर तुम कबतक जा सकोगे ?"

"मैं तो आज भी तैयार हूँ, मगर यहाँ से छुट्टी मिले, तब न !"

"अजब सिड़ी हो ! क्या उसने तुम्हें आँचल के खूँट में बाँध रखा है ? यह भी कोई बात है ! मैं तुम्हारी जगह होता, तो कभी दामन झाड़कर अलग हो जाता। अब भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं ?"

मिस्टर अहमद कुर्सी को और भी नज़दीक खींच लाये, और सलीम के कंधे पर हाथ रखकर फुसफुसाना शुरू किया। बेटर ने मेज़ पर जिन और ह्विस्की के गिलास रख दिये।

"भाईजान ! माफ करना, तुम्हारी बिजली तो चमन की तितली है। वह उड़-उड़कर फूल-फूल का रस लेगी। कुछ एक की होकर तो वह निभ नहीं सकती !"

सलीम ने आँखें फाड़कर मिस्टर अहमद को देखा। उसकी छाती धक्-से कर गई। उसने एक साँस में गिलास को साफ कर डाला।

मिस्टर अहमद ने हाथ के शीशे की आड़ से सलीम का

चांचल्य देखा, और एक अव्यक्त मुस्कान से उनके होठ के पल्ले कॉप गये।

"सलीम! यह वह फूल है, जिसमे रंग तो है—बू नहीं। नाज़ोअदा है,—वफा नहीं।"

"माफ कीजिये। यह आपकी भूल है, वरना मुझ-जैसे मुफलिस के लिए तमाम ऐशो-इशरत पर लात मारकर ·"

सलीम आगे न बढ़ सका।

"अम्यॉ, तुम भी किस फेर मे हो! वह एक मस्ती का झोक था, खत्म हुआ। तुम्हे पता नहीं, यह वह बुलबुल है, जो चोच मे दिल लिये फिरती है · "

"दिलबर की तलाश मे? ···"

"जी नहीं, गुहर की तलाश मे। भला वह एक वीराने में आशियाना बॉधे रहेगी? "

"नहीं तो जाएगी कहॉ?"

"जाएगी कहॉ! यह भी कोई बात है?—बाजार मे, गुलज़ार मे! कुछ उसके पर बॅधे है?"

"मगर, साहब, आपने भी तो बड़े तपाक से अभी उसकी कदमबोसी की। इस मुहज्ज़ब तरीके से तो आप किसी मल्के की "

'बम, रहे तुम यों ही। अरे भाई! मुझे तो उसकी जूतियॉ सीधी करने मे भी एतराज़ नहीं। आखिर मेरी तो यही रोटी है न"—

"जो हो, मुझे यह आजिज़ी ज़रा भी न जँची। मगर हाँ, मैं आपको इलज़ाम क्यो दूँ? वह तो खुद ही चापलूस के दाने चुगती फिरती है। इसी शान-शौकत के नशे ने तो उसे तबाह कर रखा है। फिर भी आज इस ठाले मे नवाब साहब के साथ फैसी-मेले की सैर—और मुझसे ज़िक्र तक नही "

"तुम भी हो काठ के उल्लू! यह भी कोई बात है! सुनो, यह दकियानूसी तहज़ीब के खिलाफ जो हो, पर इस ज़माने की तमीज़ तो दूसरी नही। बीवी की दिलबरतगी मियाँ से नही और मियाँ के दिल की कली बीवी के आँचल की हवा से नहीं खिलती। दोनो दिन-भर अलग-अलग टोलियो मे चरते-चुगते, खेलते-खुनते रहे, और आधी रात तक नशेमन मे दाखिल हो गये। यही तो मॉडर्न तरीके हैं!"

'मगर, सच पूछिये तो, मुझे नई रोशनी की तरतीबें बिलकुल पसन्द नही। बीवी घर की जीनत है! उसे हवाखोरी सूझी, तो खुदा की क़सम, लुटिया डूबी!"

"वल्लाह! तुम भी किस खवाब मे गन हो! जमाने की रविस नहीं देखते? अम्याँ, वे दिन लद गये, जब बीवी चिक के भीतर चूल्हा फूँकती रहे और मियाँ बाहर गुलछर्रे उड़ाते रहें। इधर तबले की ठनक हो और झाँझो की झनक—दोस्तो के रंगीन झुरमुट मे मीने की खनक, और उधर बीवी परदे मे बैठकर ताबड़तोड़ चिलम-पर-चिलम भरती रहे और गंगा-

जमनी तश्तरी पर हुक्के-पियासे गिलौरियाँ सजती रहे। और, आपने जब अन्दर आकर 'वाह बीवी' की, तो बीवी, सुहाग से घुलकर, पाजामे से बाहर हो गई, और इसी पसीने की ताबेदारी को वफादारी की खिल्लत देकर आपने बिचारी को चकमे मे डाल रखा, और खुद छैल-छबीले बने चौक के चकलों की सैर करते रहे। क्यो साहब, यही न बाप-दादा के वक्त के सलीके थे? तायफो की तानो और मियाँ भाँड़ो के तरानो के दिन गये। अब तो तफरीह की जगह क्लब और होटल हैं; फिल्म और थिएटर हैं। वुर्का फेक बीवियाँ परदे की भुस्सियाँ उडाकर हर चकल्लस की शोरिश मे मियाँ के कान तराशने पर तैयार है। भाई साहब, ऊँची ऐडी के जूते जमीन नही छूते!"

मैनेजर साहब जरा रुक गये। ह्विस्की का गिलास होठो से लगाया, और बोले—"उठो, चलो। क्यो ख्वामख्वाह बीमार बने बैठे हो? बिजली न रही, तो क्या दुनिया खाली हो गई? यह भी कोई बात है? मिसेज़ सूर किस नाज़नीन से कम है? ज़रा छेडकर तो देखो, किस कमाल के अन्दाज़ हैं!"

मिस्टर अहमद ने झटके देकर सलीम को कुर्सी से उठाया, और बग़ल मे हाथ दिये मिसेज़ सूर की तलाश मे निकले। अब उनका दूसरा पेग चल रहा था और हाथ मे प्याले की छलक मौजूद थी।

राम जाने, उनकी तोद के दायरे मे कितनी बोतलों की गुंजाइश है। दिमाग के दराज़ मे तो सैकड़ो क़राबे शराब की

रूह भरी है। इसीलिए इधर ह्विस्की के बैरेल की तरह तोंद का फैलाव है और उधर दिमाग में ह्विस्की की आग की तरह गज़ब की तेज़ी।

मिसेज सूर रास्ते में ही मिल गईं।

"हल्लो! मिस्टर सलीम! आपके टेनिस का इस कदर शोर है। आइए तो, एक हाथ मैं भी देखूँ!"—मिसेज सूर ने आँखों में मुस्कुराकर कहा।

"मैं किस लायक हूँ! और, आपके मुकाबले···"—सलीम ने जरा व्यंग्य से जवाब दिया।

"वाह! मुझी से उड़ने लगे! क्या मैं जानती नहीं, आप हिन्दुस्तान में दूसरे सलीम हैं?"

"मैं? आपने ख्वाब तो नहीं देखा है?"

"ख्वाब ही सही। किसी तरह आपको देखा तो?"

"वाह, जनाब!"—मिस्टर अहमद ने तोंद सहलाकर फ़रमाया—"आप छुप-छुपकर मिसेज़ सूर के ख्वाबगाह में भी जाने लगे? वल्लाह! वहाँ भी आपका गुज़र है? क्यों न हो, सलोनी शक्ल रखना भी एक ऑल-राउंड पासपोर्ट है। जन्नत में भी सूरत ही की कद्र है। मुझे तो कोई फूटी आँखों भी न देखता होगा!"

"क्यों नहीं? आपकी इस नायाब तोंद की बलाएँ लेने को आपके बेड-रूम में बहिश्त की हूरें भी उतर आती होंगी। आप

तो नींद में ग़ाफ़िल रहे, आपको पता कहाँ !"—मिसेज़ सूर ने हँसकर कहा।

सभी हँस पड़े। सलीम के चेहरे के बादल को विनोद की हवा उड़ा ले गई।

"आपको क्यों न ख़बर होगी ? आख़िर परी की बातें परी ही जानती है !"

फिर कहक़हे पड़े।

"तो आख़िर क्या ठहरा ? टेनिस का जाल खड़ा कराऊँ ?"

"मुझे मुआफ़ हो। मैं तो इस जाल में जाता नहीं !"—सलीम ने खिलखिलाकर कहा।

"वाह ! आप ही के लिए जाल खड़ा हो और आप ही ग़ायब ?"—मिस्टर अहमद ने गिलास साफ़ करते-करते फ़रमाया।

"डरिये मत। यहाँ किसी के ज़ुल्फ़ों का जाल नहीं है। और आप तो टेनिस-चमन के दूल्हा ठहरे !"—मिसेज़ सूर ने चितवन की चाशनी में एक डली की मुस्कान मिलाते हुए कहा।

"ख़ूब ! और आप बॉल-रूम की दूल्हन !—क्यों ?" सलीम ने उसी रंग में जवाब दिया।

"अलबत्ता ! यह दूल्हे और दूल्हन की एक ही रही !" —मिस्टर अहमद ने दाँत निपोरकर छेड़ा।

"अच्छा, आप मुझे टेनिस का सबक़ दें और मैं आपको बॉल रूम की तालीम दूँगी !"

"दुरुस्त ! यह आपस की लेन-देन मज़े की चलेगी। सलीम ! है मंजूर ?"—मिस्टर अहमद ने सिगार का कश खींचकर पूछा।

"ब-सरो-चश्म !"—सलीम ने तपाक से सर झुकाकर कहा—"तो फिर कोई एक शुरू हो—टेनिस या डान्स !"

"लॉटरी डालिये !"—मिसेज़ सूर ने छूटते ही जवाब दिया।

मिस्टर अहमद ने कोट के पाकिट से एक रुपया निकाला और उसे अँगूठे पर उठा सलीम की ओर मुड़कर पूछा—"बोलो, हेड या टेल ?"

"हेड।"—सलीम ने कहा।

रुपया ठनका और हवा में नाचकर ज़मीन पर आ पड़ा। सबने झुककर देखा, तो 'टेल' ही ऊपर मिला !

मिसेज़ सूर उछल पड़ी और सलीम की बगल में हाथ डालकर बॉल-रूम की ओर खींच ले चली।

षष्ठ परिच्छेद

'रोल्स-रायस-कार' के पहियों में पर लगे हैं। वह हवा पर उड रही है, शहर के दामन पर मैदान का चक्कर दे रही है। न उस विशाल बॉडी में कहीं मच-मच की आवाज़, न इंजिन की झनझनाहट। मुलायम गुदगुदे गद्दे, सिल्क की झालरें, पाँव फैलाने का आराम, दोनों बाजू पर मख़मली कुशन, छज्जे में बिजली के कुमकुमे—गरज़ कि वाह! क्या कहने हैं इनके!! शरीर का ज़र्रा-ज़र्रा एक सुखावेश के सुरूर में शराबोर है। मोटर की हवाखोरी क्या है, जन्नत की फ़िज़ा है।

पहले मौसम का ज़िक्र छिडा—सर्दी और गर्मी, हवा और पानी। यही विलायती सलीके की गुफ्तगू का श्रीगणेश है। फिर भैरवदेव के वाहनों—टामी और टोनी आदि—की चर्चा चली। नवाब साहब ने कुक्कुर-कुल-कुमुद-कलाधर 'टोनी' की नियमित जीवन-चर्या की कथा, रणस्थल में उसकी वीरता

और धीरता की वार्त्ता, नमक-मिर्च लगाकर तपाक से पेश की। टामी की मिहनत और दयानत की, टोनी की प्रतिभा और तेजस्विता की, मोना की महाप्राणता और प्रभुपरायणता की, सोनी की सुन्दरता और शीलता की विविध कहानियाँ उन्होंने बड़ी आजिज़ी से अर्ज़ की।

किस नस्ल के कुत्ते कुलीन हैं, किस खानदान में रियासत की बू है, किस शक्ल पर सिपाहियाना चिह्न रहता है, किस सूरत पर शराफत बरसती है, कब-कब उनके कुत्तों ने मैदान मारा है, कब केनेल-क्लब के सेक्रेटरी की हैसियत से उन्होंने कुत्तों की प्रदर्शनी की आयोजना की, और कब टोनी ने मार्के का कप पाया—ये सभी निहायत जरूरी बातें बिजली की जानकारी के लिए बयान की गईं।

नवाब साहब ने साथ-साथ अपनी परीशानी भी सुना डाली—"आज पूरे उन्नीस दिन हो गये, मेरा वीर बहादुर 'जानी' निमोनिया में मुबतला है, और जब-जब मैं अस्पताल जाकर उसकी तकलीफ़ को देखता हूँ कि किस बहादुरी से वह मौत से पंजा ले रहा है, तो खुदा की कसम, कलेजा निकल आता है।"

बिजली ने नवाब साहब की अन्तर्वेदना से समवेदना प्रकट की और झुककर पायदान पर बैठे स्पैनियल की पीठ सहलाई। उसके हाथों की चन्द फैन्सी चूड़ियों की खनक नवाब साहब के कानों में सितार की मीड़ की तरह मीठी लगी।

"अगर चारपायों में कोई इन्सान है, तो वह है जर्मन शीड का सेंट बारनार्ड !"—यह फतवा देकर नवाब साहब ने श्वान-पुराण की कथा समाप्त की।

फिर ज़माने की रवानी—औरतों की आज़ादी की चर्चा छिड़ी। नवाब साहब मौका देखकर ऐन मुद्दआ पर आये।

"मिसेज सलीम! मैंने भी दुनिया का कोना-कोना छान डाला है, मगर इस गजब के हुस्न के साथ-साथ ऐसा दिल और दिमाग "

बिजली घुल पड़ी, पर बात काटकर ज़रा झेंपती हुई बोली—"आप मुझे क्यों शरमा रहे हैं? अभी तो महज दो दिन की "

"बन्दानेवाज़, दो दिन तो बहुत है! बस, एक झलक काफी है। जो असली जौहर है, वह सर पर चढ़कर बोलता है। सूरज की किरन सुई की नोक के बराबर सूराख से भी चमक उठती है। आपके बदन का ज़र्रा-ज़र्रा न जाने किस रूहानी किरन से रौशन है! बिजली भी कहीं बादल में छिपी है?"

"नवाब साहब, आपसे कोई खुशामद का अन्दाज़ सीखे!"—बिजली कनखियों से बिजली गिराती हुई बोली।

"माशल्लाह! खुशामद? खुशामद तो मैंने मरहूम अब्बाजान तक की नहीं की, न कभी सूबे के गवर्नर की। मगर जो बात होगी, हज़ारों में डङ्के की चोट कह दूँगा। खुदावन्द

करीम ने आपको महज़ हुस्न का जलवा ही नहीं अता किया—हया दी है, तो मीठी शोख़ी भी दी है, दिल जैसा कुशादा दिया है, वैसा ही ऊँचा दिमाग भी बख्शा है। और, वल्लाह! यह मिज़ाज का अन्दाज़! खुशमिजाजी से बढ़कर इस ज़िन्दगी मे दूसरी कोई न्यामत नही, न इन्सानियत से बढ़कर कोई ख़िल्लत है।"

बिजली जामे से बाहर हो चली। यो तो वह बचपन ही से खुशामद की ज़मीन से वाकिफ़ थी, पर नवाब साहब की बातो के जाल मे उसने एक नया रंग—एक नया चमन—देखा। वह शुस्ता मजाक़, वह सलीके का संलाप, वह बारीक खुशामद का अन्दाज़, वह दिलजोई की तरतीब—एक नई दुनिया की हवा थी।

नवाब साहब की ज़बान की रस-भरी लन्तरानियाँ शहद के फव्वारे बनकर बिजली के चारो ओर उमड पडी।

भगवान् जाने, इस खुशामद का अंजाम क्या होगा! बिजली की यह कमज़ोरी तो कुछ आज की न थी। उसके सामने हाथ जोड़े स्तोत्र पढ़कर सुना देना है और सर झुकाकर दीप-नैवेद्य दिखा देना है, फिर तो पुजारी मिष्टान्न का थाल उठाकर चट कर जाय, तो भी कुछ इनकार नही! हाँ, अगर कोई विशेष वरदान लेना है, तो भले ही लगातार स्तुति-वन्दना या गन्ध-धूप-दीप-नैवेद्य का विशेष आयोजन करना ज़रूरी है।

मोटर, पार्क के सामने आकर, ज़रा रुकी। हुस्नहिना के

झोंप से खुशबू की भीनी लपट आकर मोटर को शराबोर करने लगी। टोनी कूद पड़ा। नवाब साहब ने हाथ से एक गेंद उछालकर बाहर फेंका और टोनी टप से उसे मुँह में थामकर मोटर में दौड़ आया।

बिजली उसकी कुशलता पर मुग्ध हो गई। टोनी के मिट्टी में सने पंजे का एक छोटा बिजली की साड़ी के छोर पर जा पड़ा। नवाब साहब ने चट पाकेट से रेशमी रूमाल निकाला और उसे साफ़ कर डाला।

"आप क्यों ?"—कहते हुए बिजली ने पैर खींच लिये।

नवाब साहब ने टोनी की बदतमीज़ी पर खीजकर उसे एक चपत रसीद करना चाहा। बिजली ने हाथ बढ़ाकर टोनी की तरफ़दारी की, और हाथ का वार हाथ पर आकर रुक गया! इधर हाथ पर हाथ जो पड़ा, तो दोनों हँस पड़े!

नवाब साहब ने देखा, बिजली के दाँत क्या हैं, मोती के छड़े हैं, हँसी क्या है, बिजली की तड़प है!

तबतक एक भनभनाता हुआ बर्रे कहीं से बहककर खिड़की की राह मोटर में घुस गया और बिजली 'बर्रे, बर्रे' कहकर सहमी हुई पीछे दब चली। नवाब साहब रूमाल से उसे उड़ाते हुए बोले—"यह बर्रे नहीं, परवाना है। रुखे-रौशन पर जाँ-निसार होने को आ रहा है! काश मैं भी ..."

"चलिये, मेले मे चले"—बिजली ने बात पलट दी।

"जो इरशाद !"

मोटर चल पड़ी और फैसी-मेले के फाटक पर आकर खड़ी हो गई। पहले टोनी और टामी उछल पड़े। फिर नवाब साहब उतरे, बिजली भी उतरी।

मेला जगमगा रहा है। बिजली की बत्तियो ने अंधेरे का गला घोट डाला है। रात बिचारी दिन के पाले पडी है। आसमानी पर्दे के सितारे ज़मीन पर सितारों से जगमग एक दूसरा आसमान देखकर आँखे मीच रहे है।

दूकानों की सजी क़तारे है—एक ओर कपड़ों और गहनों की, दूसरी ओर पारचून और बरतनों की। कहीं चाय-बिस्कुट का ठाट-बाट, कहीं कलाकन्द और शकरपारे की सजावट। खानेवाले और पीनेवाले दोनों के लिए दिलफरेब इन्तजाम है। एक ओर कबाब और कटलेट, दूसरी ओर क्लैरेट और कॉकटेल।

सैकडो तरह के खेल-तमाशे, कार्निवल और जूए हैं। कहीं पाजामा-शेरवानी, कहीं पंजाबी धोती। कहीं कोट-पतलून मे लैस जेंटलमैन, कहीं नगे बदन चादर डाले द्विजदेव। लेडियो की रंगीन साड़ियों की लहर जाने कितने कलेजों पर टकराती है। उनकी चंचल निगाहो की चुहलबाजी मुरादों का एक बवंडर उठा रही है। मेला क्या है, शौक़ीन नौजवानों के—फ़ैशनपरस्त नाज़नीनों के—अरमानों का मीनाबाज़ार है।

बिजली-बत्तियों का विशद विकास, दूकानों की तड़क-भड़क, दूकानदारों की हाँक-डाँक, मोल-मुलाई की मचलें, जुएबाज़ी का शोरगुल।

एक ओर दबकी हुई देहाती औरतों की झुलनी और झाबिया की झलक, उनके बच्चों की कुलेल, देहातियों की पगड़ी, बीड़ी और लाठी, दूसरी ओर शहरियों की घड़ी-छड़ी की बहार, शरीफ़ों के रंग-ढंग, लिबास और बोलचाल के अन्दाज इस बाज़ारे-गुलज़ार के गुल-बूटे हैं।

जब बिजली मोटर से उतरी, एक सनसनी फैल गई—"भाई! यह कुत्तेवाला नवाब इस जन्नत की परी को कहाँ से उड़ा लाया!"—सैकड़ों के लब पर यही आवाज़ उठ आई।

नजरों की दूरबीनें तन गईं। बिजली जिधर निकल जाती, पलकों के फ़र्श बिछ जाते। न नवाब साहब के पैर ज़मीन पर आते, न बिजली के कदम मेले की हरी-हरी लॉन पर। वह तो रंगरूप की निराली—जहाँ जाती, पलक मीचते मैदान ले लेती।

मेले में आकर उसकी आँखें खुल गईं। दौलत की रँग-रलियों ने उसके कलेजे में गुदगुदी पैदा कर दी। नवाब साहब उस अंजुमन के दूल्हा हैं। उनके सामने झुकी हुई गरदनों की घटा उमड़ी आ रही है और उस घटा के भीतर बिजली-जैसी सैकड़ों बिजलियाँ पल भर चमकें तो क्या!

आखिर, बात क्या है? क्यों आज विश्वलोचन उनके चरणों पर मूर्च्छित है? रूप? सलीम तो उनसे कहीं रूपवान्

है ! यौवन ? उनके चेहरे की पालिश कुछ स्वास्थ्य की सुर्खी नहीं। कभी गालों की उभरी हुई हड्डियाँ सेहत का सिगनल नहीं होती। तो क्या बोलचाल ? कितने ज़बान और तमीज़ के उस्ताद इस ज़माने मे जूतियाँ चटकाते फिरते है !

तब ? सच है, धन ही विश्व की विभूति है। जिसके सर पर अशर्फियों का साया है, उसीके करतलगत ज़ीनत है, बरकत है, जन्नत है।

वह कहाँ-से-कहाँ एक मुफलिस की रंगीन सूरत की पत्नियों की नाव पर अपने तमाम भविष्य को लादने चली थी ! इस नादानी की कोई हद भी है ? वह तड़पकर रह गई।

नवाब साहब उसको लिये एक मशहूर जौहरी की दूकान मे घुस गये। दूकान का मालिक उस वक्त, दो-चार खरीदारों को लाकिट और अँगूठियाँ दिखा रहा था। आपको देखते ही उसने इन मुवक्किलों को बाकायदा अपने असिस्टैंट के सुपुर्द किया और खुद तड़फड़ आपके सामने आ झुककर ताज़ीम किया।

"अक्खाह ! मिस्टर अमीन, आप यहाँ कैसे ? आप तो विलायत मे न थे ?"

"जी हाँ, हुजूर ! मुझे वापस हुए एक माह हो चला। फर्म की एक नई ब्रैंच बनारस मे भी खुल गई है। मुझे वहीं की मैनेजरी मिली है। आज वालिद कुछ काम से दिल्ली चले

गये; वरना अबतक हुजूर के दरेदौलत पर हाज़िर हुआ रहता।"

"आप विलायत सैर की गरज़ से गये थे या·····"

"नहीं, हुजूर, वहाँ मैंने सेटिंग और मीने की नई तरतीबें सीखीं। एक कारीगर भी साथ लाया। जो सेटिंग और मीने का काम मेरे फर्म में होगा, वह विलायत की तैयारियों से लोहा लेगा।"

"सच! आप यहाँ ठहरे कहाँ हैं?"

"उसी होटल में, जहाँ हुजूर हैं।"

"कबतक कयाम है?"

"यही आठ-दस रोज़!"

"फिर तो मुलाकात होगी। विलायत की ताजी ख़बरें सुनने को मिलेंगी। खैर, कुछ नये पेटर्न की चीजें हों, तो निकालिये।"

"जो इरशाद"—अमीन ने शीशे की आलमारी का पल्ला खोलते हुए कहा—"बन्दानेवाज़, एक-से-एक नायाब चीज़ें हैं। हुजूर ही के लिए तो ख़ास ऑर्डर देकर तैयार कराई गई है।"

बिजली ने देखा कि अमीन एक शकील नौजवान है। पंजाबी डीलडौल, दमकता हुआ चेहरा, अंडानुमा गोल सर, रस-लीन चितवन, जुटी भवें, भीगती रेख—सब-कुछ एक विचित्र सौन्दर्य के परिचायक हैं। कासनी सर्ज का कोट है और सफेद फलालैन का पतलून। कानी उँगली की अँगूठी का

हीरा नेकटाई के पिन के मोती से मेल खाता है। एक-एक हरकत से चरफर चुलबुलाहट का अन्दाज़ है। तमोज़ और तेज़ी अपने चिरन्तन विरोध को भूलकर एक दूसरे की अभिन्न सहचरी बनी है।

हीरे और मोती से कमरा जगमगा उठा। मोतियों के मुन्तशे, हीरे के टायरे, पुखराज के आर्मलेट, मीने के ब्रेसलेट, सैकड़ों तरह के जवाहरात के नेकलेस, ब्रूच, पिन, इयरिंग, कँगने, बाले, झुमके—बिजली की रोशनी मे रौशन हो उठे। वह आबोताब कि आँखे नहीं ठहरती। एक छोटी-सी मेज पर लाखों का बाजार जम गया।

बिजली की आँख एक हीरे के झुमके पर पड़ी और उसकी खूबसूरती पर लुट गई। न जाने वह किस उत्तेजना के वशीभूत अपनी परिस्थिति भी भूल गई और हथेली पर उठाकर प्यासी नज़रों से उसे देखने लगी।

नवाब साहब ने मुडकर उसकी आँखों की चमक देखी और होठों मे मुस्कुराहट को चुराकर आहिस्ते से कहा—"मिसेज़ सलीम! यह चीज़ आप ही को जेबा है।"

नवाब साहब की आवाज़ कानों मे आते ही बिजली सँभल गई और फौरन् उसे केस मे वापस करना चाहा। नवाब साहब ने उसके हाथ से झुमके को थाम लिया और अमीन को एक मनोहर मख़मली केस निकालने का आर्डर दिया।

हुक्म पाते ही उधर अमीन मुड़ा, इधर नवाब साहब

बिजली की ओर झुके। वह सर हिलाती हुई बोली—"नहीं-नहीं, मुझे जरूरत नहीं। आप क्यों फिजूल·····"

"आपको ज़रूरत न हो, मुझे तो ज़रूरत है! और हम दोनों से ज्यादा इस झुमके की माँग है। इसकी मुराद तो पूरी हो! इन गालों के पहलू में लोटने से भी इसे ज़ीनत मिलेगी!"

"सच कहती हूँ, नवाब साहब, यह कीमती झुमके मेरे काम के नहीं।"—बिजली एक मीठे तिरस्कार से उस जेवर को टालती हुई बोली।

"मिसेज सलीम, इसकी कीमत आपके कानों में झूमकर होगी, वरना कुछ भी नहीं। आज आपकी साल-गिरह है और मुझे नज़र करने का हक़ है। आपने इनकार किया, तो मेरी हकतलफी होगी।"

"नवाब साहब, आप मुझे क्यों शर्म दे रहे हैं?"

"और आप मुझे क्यों शर्म दे रही हैं? मैं दरतवरता अर्ज करता हूँ, आपका यह एहसान मेरे सर पर रहेगा।"

बिजली चुप हो गई। नवाब साहब ने पैकेट को हाथ में उठा लिया, और अमान की ओर मुड़कुराकर 'गुडनाइट' कहते हुए—जिस तपाक से आये थे उसी तपाक से पुलकित—बिजली को साथ लिये मोटर में दाखिल हुए।

अमीन ने असिसटैंट को पुकारकर कहा—"देखो, कल बिल बनाकर होटल में नवाब साहब के पास भेज देना—भूलना नहीं!"

"वही किताबी क़ीमत लिख दूँ···सात सौ पचास ?"

"और क्या ?"

इधर मोटर दनदनाती हुई जब होटल की बरसाती मे रुकी, तब मिस्टर अहमद के सिवा और किसी की आँखो को यह पता न चल सका कि बिजली के कानों की बिजली पलट गई है।

बिजली हैड-बैग लिये मोटर से उतरी, आँखे नचाकर मीठी मुस्कुराहट के साथ नवाब साहब को थैंक्स दिया, और सीधे अपने कमरे की ओर चली। सीढ़ियो पर चढ़ते हुए उसने एक बार सलीम के लिए इधर-उधर जरूर निगाह दौडाई, पर वह एक क्षण के लिए भी कहीं ठमकी नहीं—मुस्कुराती हुई अपने कमरे मे घुस गई।

नवाब साहब बिजली को रुख़सत कर मिस्टर अहमद की ओर मुडे, और दोनो ने झूम-झूमकर हाथ मिलाया। नवाब साहब बोले—"मिस्टर अहमद! आपकी बिजली क्या है, बिलकुल पुदीने की चटनी है! आन-बान का मिच कुछ इस अन्दाज़ से है कि क्या कहना—निहायत खुशगवार। भई, यह पालतू कनारी नहीं, चमन की बुलबुल है!"

"मैंने तो पहले ही हुजूर से अर्ज़ किया था। हुजूर का इकबाल बुलन्दी पर है। और, बन्देनेवाज़, सलीम भी 'मिसेज़ सूर' की शागिर्दी मे बॉल-रूम के मदरसे मे दाख़िल हो गया। टैंगों और फाक्सट्राट की तालीम दी जा रही है। जानीवाकर

का जाम भी दौर पर है। अब भी न गुल खिलेगा, तो कब फिर ?'

"भई, खुदा का शुक्र है। आज अव्वल मंज़िल तो कट गई। अब · · "

"देखना क्या है, हुज़ूर ! मंज़िले-मकसूद तो अब क़रीब आ गई !"

"आख़िर इतना आसान नहीं। यह रास्ता ज़रा पथरीला है। जबतक आपकी पूरी · · "

"मै तो, हुज़ूर ! क़दमे, रक़मे, सखुने, दिरमे—हर तरह से ख़िदमत के लिये तैयार हूँ।"

"मुझे आप ही की तो उमीद है। खैर, अब आप बिल की वसूली का तक़ाज़ा शुरू कर दें—आज ही, देर न हो।"

"जो इरशाद !"—अहमद ने वेटर को बुलाकर एक छोटा पेग तलब किया और कहा—"हुज़ूर ! आज की खुशी मे तो शैम्पेन की बोतल खुलनी ज़रूरी है। हुक्म हो तो "

"मँगाइये। आज शैम्पेन-कप पर बिजली का टोस्ट हो। सच कहता हूँ, मिस्टर अहमद, ऐसे कमाल के नख़रे-तिल्ले मैने उम्रभर नहीं देखे !"

इधर बॉल-रूम मे सलीम मिसेज़ सूर के आँचल के साये मे, टैंगो और फ़ाक्सट्राट की बारीकियाँ हल करने मे मसरूफ है। उसके पैरों मे पर लगे हैं। वह झूम-झूमकर नाचता क्या है—उड़ रहा है ! नये शौक़ की नई लज्जत ! नये जोश की नई

फरहत! आँखो पर सुरूर की मसरत! न होटल-बिल की बला सामने है, न बिजली के तेवरो का डर आँखो पर।

छाती को छाती गुदगुदाने लगी। आँख को आँख कुरेदने लगी। रग-रग मे कामना फनफना उठी। पोर-पोर मे झिरकी चिल्ला उठी। नेकटाई से आँचल की आँखमिचौनी रही। क़दमो से क़दमो की छेडखानी चली। घडियाँ हवा के घोड़े की पीठ पर सवार हो गईं।

लेकिन जब डिनर का गॉग कानो पर मुअज्ज़िन की अजान की आवाज़ बनकर बजा, तो आज साल-गिरह की रात बिजली के निकट सूने हाथ जाने का आतंक कलेजे मे धुआँ बनकर छा गया!

सप्तम परिच्छेद

बिजली ने कमरे मे आकर नये झुमकों को कानों से उतार दिया। बिजली की रोशनी मे उन्हे हथेली पर रखकर उनके जुगनू की चमक देखी। कमल हीरे की आभा आँखों मे खुब गई। वह ज़रा-सा होठों पर मुस्कुराई। फिर कानों मे लटकाकर उनकी किरन देखी, और खुश हो गई।

उसने कार्मेट की तनी तोडकर खोल डाली। उठाकर दराज़ मे डाल दिया। सिल्क की एक संदली 'लिङ्गरी' निकाली। जापानी जार्जेट की साड़ी। आसमानी ज़मीन पर गुलेनार बूटे। मलमली ख़सख़सी ब्लाउज़। साड़ी बदल दी। नई साड़ी के रंग से मैच करती हुई कैसी चूडियाँ ढूँढ़ने लगी।

वह खुश है—आप-ही-आप मस्त झूमती है। इतराती,

बल खाती, आइने के सामने झूमकर कभी गुन-गुन गाती—

"दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है।
आखिर इस दर्द की दवा क्या है!"

पर, वह दर्द—वह टीस—कहाँ है इसे न वह खुद बता सकती, न किसी को उसके आह्लाद-विह्वल अंगों का स्फुरण देखकर ही पता चल सकता। शायद जो टीस होगी, वह उसके कोकिल-कंठ मे होगी, क्योंकि वहीं से एक दर्द-भरा सुर उठकर कमरे मे भर रहा है, वरना उसके शरीर के एक-एक जर्रे पर तो वसन्त-चाञ्चल्य का पुलक है। यह किस अभिसार के अभिनन्दन के लिए उसके अन्तर मे उमंगों का ऊधम है—इसे स्पष्ट जान लेना उसके लिए भी टेढ़ी खीर था। वह तो लदी डालो की चहकती बुलबुल-सी इधर-उधर कमरे मे अपनी ही मस्ती की मौज पर फुदक रही है। उसके मन की क्यारियों मे किस सुदूर मलय-प्रदेश की हवा है—उसकी हृत्तंत्री पर किस वसन्त-राग का सुर आप-ही-आप उठ रहा है—इसका पता उसके फिरिश्तो को भी न होगा।

शायद युवती नारी का अन्तर वह रहस्य-मय माया-निकुंज है—उसकी लीलाएँ कुछ ऐसी निर्विकल्प निगूढ़ है—कि बड़े-बड़े मनोविज्ञान विशारद भी उस अपरम्पार के तट पर जाते-जाते अतल तल मे डूब जाते हैं।

बिजली ने आईने के पास खड़ी होकर अपनी मुस्कान के विविध तरीक़ो का मुलाहज़ा किया। होठ बन्द रखे एक महीन

सिहरन या होठों के पल्लवों का किलोल-कम्पन; दाँतों का बारीक स्फुरण, मन्द मुस्कान या तुन्द मुस्कान; मुस्कान में लज्जा या शोखी का पुट, साथ-साथ हिमायती नज़रों के मुलायम इशारे या स्पष्ट नख़रे—उसने एक-एक तर्ज़ को आँखे गडा-गड़ाकर देखा, उसकी बारीकियों को बार-बार हल किया, और किस तबके की मुस्कान या हँसी कहाँ तक उसके चेहरे पर खुलकर पुर-असर होती है—इसे चुन-चुनकर अपने तूणीर में सज डाला।

उसने देखा कि उसकी नाक के छोर पर पाउडर की पालिश ज़रा धूमिल हो चली है, उसे बराबर कर देना ज़रूरी है। उसने मेज़ पर से हैंड-बैग उठाया और पल्ले खोलकर पफ निकालने लगी। पफ के साथ-साथ नोटों का एक पुलिन्दा भी खिच आया!

वह चौंक पडी। बिलकुल ताज़े चमकीले चुहचुह नोटों की गड्डी! उसका माथा ठनका—ऐं! ये कहाँ से टपक पडे? कितने के होंगे? 'बस, एक हज़ार! जब छप्पर फाड ही कर बरसा, तब जी खोलकर मूसलधार बरसता, कोना-कोना भर उठता, क्यारियाँ उमड चलतीं। इस तवे की बूँद से न तो प्यास बुझेगी, न खेती ही पनपेगी। खैर, बूँद-बूँद न तालाब भरता है? जहाँ से हज़ार आया, वहीं से लाख भी आ सकता है!

मगर, आख़िर यह आया कहाँ से? वह तो अल्लाह

मियाँ की दुलारी नहीं, न जिन्नात की ही उस पर नज़र है। फिर इस आसमानी बौछार की बुनियाद ? यह हैंडबैग तो कुछ भानुमती का पिटारा नहीं ! जरूर यह नवाब साहब के हाथों की सफाई है। वे ही इसे मोटर में उठाकर देख रहे थे। बिना कहे, बिना माँगे—उसकी ऐन जरूरत पर ये नोट बरस पड़े !

मियाँ सलीम महीनों से बाजार की खाक छानते रहे, कानी चिन्नी भी न ला सके ! जनाब का पतलून तक ढीला हो चला है। और, बिजली ने मिनटों में ताली बजाकर आसमान से हजार रुपये बरसा दिये !

तो क्या वह नोटों को लौटा दे ? नवाब साहब को खत लिखकर जता दे ? मगर यह तो उसके हुस्न का नज़राना है ! इस हज़ार की बिसात क्या ? उसका एक-एक नकशे-कदम नोट बन सकता है—नोट की छाप उखाड़ सकता है। एक-एक मुस्कान में मोती और मूँगे झड़ सकते हैं।

बिजली के मानस-पट पर एक आसन्न वैभव का स्वप्न खिंच आया। उसने आँखें उठाकर देखा, तो भविष्य की तसवीर पर सोने का पानी चढ़ा है। एकाएक उसी चित्रपट पर एक ओर सलीम की शक्ल उठ आई। उस मूरत को देखकर वह चौंकी, ज़रा-सा हँसी। फिर सोच में डूब गई—

"आखिर सलीम सुनेगा तो क्या कहेगा ? कहेगा क्या ? उसकी ज़बान को ज़बान भी है ? कौन वह माल कमा लाया है

कि मेरी लट दबी है! आज उसकी गाँठ मे पैसे रहते, तो बिजली को कौन पूछे, सारे जहान को वह ता-थेई नचाता, पर मियाँ की तो मिट्टी-पिट्टी गुम है! कदम-कदम पर कलेजा लरज़ उठता है। मैंने कुछ गुलामी का दमामी पट्टा थोडे ही लिख दिया है! कौन कहे, शादी की बागडोर गले मे पडी है?

"अलबत्ता एक प्रेम का सूत्र है, मगर उस प्रेम का मान उसी दमतक है, जिस दम तक मेरी प्रवृत्ति—मेरी उन्नति की गति मे वह रोडे नही अटकाता। राम ने ऐश्वर्य की जड मजबूत करने के लिए प्रेम की जड काट डाली थी, नेपोलियन के हौसलो की बुलन्दी के तले उसकी प्रियतमा धर्मपत्नी पिस गई थी। ऐसी दिलेरी की निदारुण घटनाएँ अतीत के पन्नों मे भरी पडी है।

"कोई लाख बेदर्द कहे, हृदयहीनता का हज़ार इलजाम दे, मगर दुनिया मे कब कोई बगैर सैकडो के दिल कुचले या दूसरो के सर पर पाँव रखे ऊपर चढ सका है? जब तबीयत नर्म होती है, तब किस्मत भी नर्म रहती है। जो छाती का कडा है, वही मैदान मे मारता या मरता है, और संसार मे उसी बेदर्द बहादुर का सिक्का चलता है। जिसकी आँखो मे ज़रूरत से ज्यादा पानी है, उसके चेहरे पर शान का पानी कभी टिक नही सकता। जो दाता की जय मनाकर हाथ पसारता है, वह भीख पाता है—दौलत नही। और, जो मोह-माया पर लात मारकर दुनिया के सीने पर सवार दाँत गड़ा-

कर लहू चूसता है, वही रस भी लूटता है और यश भी।

"दुनिया ने तोताचश्मी की मलामत तो की, पर कितने तोता-चश्म को सरो-चश्म पर बिठाकर रखा, और छाती मे रस-भरे कितने मुलायम दिलवाले ज़िन्दगी मे एक बूँद रस की तलाश मे होंठ चाटते रह गये।

"ज़माने मे बगैर संगदिली और बदनामी के न धन मिलता है, न नाम। और, धनवाले के सामने नेकनामी और बदनामी हाथ बाँधे खड़ी रहती है। बिजली मुलायम भावनाओं की झावली मे पड़कर अपनी संभावनाओं की हत्या नहीं कर सकती।

"नवाब साहब ने आखिर दिया ही क्या है? हज़ार-पाँच सौ तो उनके 'जानी' के इलाज मे उड़ गया होगा। उनके पास-बुक मे करोड ही क्यो न हो, वह तमाम रकम तो रियाया के पसीने की कमाई है और उन्हे बिना हर्रे-फिटकरी के मुफ्त हाथ लगी है। अगर लाख-दो-लाख उनसे ऐठ ही लिया जाय, तो उनपर आँच आने को नहीं।"

बिजली ने हँस दिया। वह कुछ दुधमुँही बच्ची तो है नहीं। उसे धन की तलाश है और नवाब साहब को हुस्न की। बगैर कनकचित्ती के उसकी शान-शौकत बेकार और बगैर हुस्न-परस्ती के नवाब साहब की दौलत बेकार। वह अपनी रुझान से मजबूर, नवाब साहब अपने मिज़ाज से मजबूर।

वह अपने निसर्ग के आँगन मे घुँघरू बाँधती है, नवाबसाहब अपने निसर्ग के मैदान मे कमर बाँधते हैं।

वह उठी और खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई। झुककर उसने इस संसार के मीनाबाज़ार को देखा, उसके विविध ध्वनि-कम्पन को सुना—मोटरों की चहलपहल, कमरों से बिजली-बत्तियों का विकाश, लतागुल्मों का झुरमुट, आकाश पर तारों की झिर्कमिक, सड़क पर शौकीनों की हलचल, ताँगे के घोड़ों की टाप की आवाज़, सामने कोठे के बरामदे मे बेले से निकलता हुआ श्यामकल्याण का राग, और प्रकृति के ज़र्रे-ज़र्रे पर एक जीवन्त स्पन्दन का विलास!

अचानक सामने आकाश से एक तारा टूटा और शून्य मे आग की एक लकीर खींचता हुआ निःसीम विस्मृति के कूल पर लीन हो गया। यही जीवन है। आठों पहर बेवजह बेकार भुकभुक करने से एक ही बार आग की लौ-सी भक-भक कर अनन्त-मग्न हो जाना कहीं बेहतर है। एक ही क्षण की भभक सही, पर वह एक क्षण उसका अनन्त क्षण है।

वह फिर न जाने क्या सोचने लगी। उसके चेहरे पर प्रसन्नता की लहर खेल उठी। भगवान् जाने, वह क्या देख रही है—क्या सोच रही है। जो कुछ भी हो—वह उमंगों की तरंग पर रह-रह कर काँप उठती है और कोने के बिल्लौरी आइने से लेकर खिड़की तक किसी संचारिणी पल्लविनी लता की तरह लहराती फिरती है। शायद उसके मानस-अम्बर पर

जो धूमिल—पर, रंगीन—स्वप्न का बादल न जाने किस कोने से उठकर उमड़ा आ रहा है, उसे हेर-हेरकर उसकी कामना-मयूरी सैकड़ों आँखों से रस लेती हुई थिरक रही है।

तबतक किसी के पैरों की आहट कानों पर पड़ी। उसने झट नोट की गड्डी को दराज़ में छिपा दिया। उसका कलेजा धक्-से कर गया—कोई नवाब साहब का एजेंट न हो! मगर, नहीं; यह तो सलीम है!

सच! क्या यही वीर बहादुर बिजली का मनोहर सलीम है—हवन्नक की सूरत, उथल-पुथल बाल, खिची हुई भेंगती आँखें, ढीलाढाला पतलून, लरजता हुआ कोट, शिकन खाये हुए कॉलर और कफ!

नहीं, यह तो उस चिर-परिचित सलीम का कङ्काल है! क्या सचमुच अभाव ने उसके यौवन का लूट लिया? सलीम वह सलीम न रहा? नहीं-नहीं, आज भी तो प्रेम-सिञ्चन से यह तरोताज़ा हो सकता है!

सलीम की—शराब की बिगाड़ी हुई शक्ल को देखकर वह खिन्नी नहीं। आज वह खुश है। और वह खुशी की किरन कमरे की रोशनी हो रही है। उसके तेवर पर बल नहीं। आँखों में मरौवत है। उसने दिल-ही-दिल में कहा—बदकिस्मत सलीम! तुम क्या शराब पिओगे, शराब तो तुम्हें पिये जा रही है!

वह नजदीक चली आई। सलीम कमरे में आकर ठिठका,

था। डिनर के लिए तैयार तो वह ज़रूर थी, पर कहाँ खाएगी—डाइनिग हॉल मे जायगी या खिलवत मे यहीं मँगाकर खाएगी ?—वह एक क्षण तक यही सोचती रही।

फिर ठुमुकती हुई सलीम के निकट आकर उसके कंधे पर दोनों हाथ रख प्यार से बोली—"तुमने फिर पीना शुरू किया, सलीम ? तुम तो पहले कभी पीते न थे !"

"पीता नही था ? खूब पीता था ! तुम्हारी आँखे साकी थी और तुम्हारे ये होठ आबे-हयात के प्याले थे ! वह जामे-कौसर तो अब मिलता नही, झख मारकर जानीवाकर पीता हूँ !"—सलीम ने ज़रा हँसकर कहा।

"सच ?"—"बिजली ने खुश होकर पूछा।

"बिजली ! तुम्हे क्या मालूम कि तुम्हारी आँखों मे, तुम्हारी ज़बान मे, तुम्हारे लबों मे, तुम्हारी अंगडाइयों मे किस मार्के की अंगूरी है ! तलवार की तरह तेज़ कहूँ या कटार की तरह अनोदार ! और, जो इसे एक बार पी चुका है, उसे फिर विलायती बोतल की परी कहाँ तक लुभा सकती है ! मगर, वह खुमखाना तो मेरे लिए अब आसमान का फूल हो गया। जहाँ एक दिन वह आठो पहर खुला रहता था और मै आँखे गडा-गडाकर कुरावे ढाल जाता था, वहाँ अब एक बूँद भी नही मिलती, बिजली ! "

सलीम ने उसको चापलूसी का लबरेज़ प्याला पिला दिया। वह मस्त हो गई और सुहाग से सलीम के कंधो पर

झूमकर हँसती हुई बोली—"तो फिर तुम विलायती बोतलों पर क्यों टूटते हो ?"

"क्या करूँ, असीरे-हिर्स हूँ ! जब सुराही की रूह नहीं मिलती, तो पेंदे की तलछट ही सही ! वह रस—वह मस्ती नहीं मिलती, तो बलानोशी की वहशत ही सही !"

"मैं क्या जानती थी कि तुम ऐसे प्यासे हो ? और, तुमने कहा भी तो नहीं !"—बिजली ने आँखें नचाकर आहत स्वर से कहा।

"ज़बान तक भी लाने की हिम्मत हो, तब तो ! यहाँ गरदन पर तो छुरी फिर रही थी। ··· वही गरदन, जिसे मैंने तुम्हारे लिए नाप दी है। तुम्हारी आँखों में कहीं मुरव्वत का पता था ? तुम तो बात-बात पर मीन-मेख निकालती—जले फफोले फोड़ती "

"खैर, जाने भी दो। जो मधुमक्खी मधु लुटाती है, वह कभी-कभी डंक भी मार देती है ! मैं तो समझती थी कि ज़माने की गर्दिश ने तुम्हारी उल्फ़त की आतिश को सुबह के चिराग की लौ बना डाला है।"

"बिजली ! अगर मेरे दिल में आग बराबर लगी नहीं रहती, तो यकीन मानो, मैं शीशे की आग में नहीं कूदता। मैं तो शराब की बोतलों में और होटल की चुहलों में तुम्हें भुलाने की—नहीं-नहीं, अपने-आपको भुलाने की—लाख कोशिश करता; मगर छाती की भट्टी कभी ठंढी नहीं पड़ती।

चंद घंटों तक एक नशे का कुहरा-सा छा जाता है—एक बेखुदी की बेहोशी-सी आ जाती है; मगर धुएँ के भीतर आग तो कभी बुझती नहीं। सच कहता हूँ, अगर तुम मुझपर मुहब्बत की नजर रखती—भर-मुँह हँसती-बोलती, तो मेरी हिम्मत की मौज सितारे तोड़ती और बहुत मुमकिन है कि मैं अबतक किसी रोजगार का रास्ता जरूर ढूँढ लेता। यहाँ तो तुम्हारे चेहरे पर किरन ढूँढते मेरी रूह फना रहती है, होश उड़े रहते हैं, फिर मैं खाक मैदान लूँ !"

सलीम के लोचन-पल्लव भीग गये। बिजली घुल गई और सलीम से लिपट पड़ी। महीनों का भूला हुआ प्यार उमड़ आया। उसके दोनों हाथ सलीम की गरदन में जा पड़े—दोनों होंठ सलीम के लबों पर गड़ गये। होंठ क्या थे, रस-भरे अंगूर थे, और उस अंगूर की बूँद उसके उच्छ्वास के जोश पर खिंच गई। सलीम इस अंगूरी का मजा चखकर शैम्पेन का जायका भूल गया।

उधर सलीम की आँखों का जल बिजली की छाती में उतर आया। हृदय का एक-एक कोना भीग गया। और, इस छिड़काव से उसके ऊसर उर में हमदर्दी की एक नन्ही-सी कोंपल निकल आई।

उसने ठान लिया कि वह अब इतनी कठोर नहीं हो सकती। वह नवाब साहब के नोटों को वापस कर देगी ! अब जो भी बात होगी, सलीम की सलाह से होगी। यही न

कि उसकी शान-शौकत मे थोड़ी कमी होगी ? कुछ परवा नही। होटल का बिल आखिर कहाँ तक होगा ? अभी उसके हाथ की एक चूड़ी उसे चुका देने को काफी होगी। सलीम को एक बार पनपकर फूलने का मौका देना जरूरी है। अगर उसमे जौहर होगा, तो मैदान मे आने पर साफ खुल पड़ेगा; अगर धाँधली होगी, तो··· खैर, देखा जायगा।

बिजली ने बोसो की बौछार की; कभी जुल्फ पर, कभी लब पर, कभी चश्म पर। सलीम के सर पर रहमत बरस पड़ी।

बिजली मे मातदिली तो थी नहीं। वह आतिश का पलीता थी। खुश रहती, तो बल्लियो उछलती, प्यार करती, तो कलेजा निकालकर रख देती। और, जब तकरार पर आती, तब तलवार निकाल लेती। यानी, जो हवा उठती, दुद बाँधकर उठती। पर, कब किस कोने से कैसी हवा अचानक उठ पड़ेगी, यह तो शायद सलीम को भी मालूम न था।

जो हो, आज तो नन्दन-कानन की हवा थी और सलीम को ज़माने पर मिली थी। वह उछाह-भर विस्मय मे डूब गया। आज क्या है, बिजली के दिल मे कोई रस का सोता-सा खुल गया है! वही आँखो की भूली हुई मुस्कान, वही जबान का परिचित पीयूष-स्रावन। डियर-डार्लिङ्ग की बौछार!

अहा! प्रेम की वाणी मे न जाने कैसी मलय की लपट है कि एक ही फूँक मे दिल का धुआँ आसमान छू लेता है।

जिधर गई, एक खुशबू फैल गई—हृदय का कोना-कोना भर उठा। न जड़ता रही, न आशङ्का, न ग्लानि, न गुमान। स्विच टोपा और बिजली ने अन्धकार का पलक मारते बेकार कर डाला—कुछ वही चलत्शक्ति प्रेम का वाणी में निहित है—कुछ उसी तरह वह भ्राता के अन्तर के अन्धकार को उड़ा ले जाती है।

बिजली के निपुण हाथ ने एक ही झटके में सलीम के हृदय के टूटे तारों को खींचकर बाँध डाला।

सलीम तमाम ताप भूल गया। बिजली ने न जाने कौन-सा मन्त्र फूँक दिया कि उसकी भुजाओं की विगत शक्ति लौट आई। वह ज़मीन से उड़ चला। उसने बिजली को झट गोद में उठाकर गेंद की तरह उछाल डाला और फूल की तरह छाती में लोक लिया।

"वाह! तुम तो रुस्तमे-हिन्द हो गये!"—बिजली ने पीठ ठोंककर कहा।

सच है! नारी की छाती का सरस मृदुता कितने खिन्न अवसन्न जीवन में पौरुष का पता लाती है! उसका उत्साह-प्रद चित्तवन को किरन में वह तूर का तजल्ली है, जो सैकड़ों नाउम्मीद जीवन-पथ पर आनन्द का प्रकाश डालती है।

प्रेयसी के हाथ से तिलक पाकर जब हम मैदान में उतरते हैं, तब हमारे हाथ की तलवार बिजली-सी चमककर दुश्मनों के सर पर टूटती है। प्रियतमा के मुख की दिलासा-भरी वाणी

से बढ़कर पुरुष के जीवन में दूसरी मृतसंजीवनी नहीं। इसी नींव पर अक्सर नवीन जीवट की गथनी खड़ी होती है।

"लिल्लाह! बस करो, मुँह-हाथ धो लो, बन-सँवर लो। भूल गये, आज मेरी साल-गिरह की रात है! आज मैं भी ज़रा शैम्पेन का मजा चखूँगी—हाँ!"

"तुम्हें शौक हो, चखो। मुझे ज़रूरत नहीं। मेरे सामने तो कौसर की नहर बह रही है। तुम्हारी नज़रों में तो दर्जनों बोतल ब्रॉडी की रूह भरी है। भला, शैम्पेन की बूँद किस मर्ज़ की दवा होगी!"

"खैर, जल्दी करो। जो जी में आये, पीना।"—बिजली ने कुछ हँसकर, कुछ शरमाकर, कहा।

सलीम ने ट्रंक की कुंजी तलाशी। ख़याल नहीं, कहाँ रख छोड़ी है। तलाशने में देर होने लगी। उसने एक झटके से ताला तोड़ डाला। पहले स्लेट-रंग का एक चेक-सूट निकाला, फिर निकाली—गुलेनार टाई, सिल्क की कमीज़, तौलिया और साबुन, कंघी और आइना, स्पञ्ज और क्रीम। झट बाथरूम की ओर लपका। किवाड़ तक पहुँचा होगा कि कमरे के बाहरी दरवाजे पर खट-खट की आवाज़ आई।

बिजली ने पुकारा—"कौन है?"

बाहर से आवाज़ आई—"आपका ख़ादिम अहमद!"

"अच्छा! आप हैं! अन्दर आइये।"

बिजली ने लट सुलझा ली, साड़ी सँवार ली, और सचेत

होकर बीचोबीच कमरे मे आकर खड़ी हो गई।

मिस्टर अहमद आये। साथ-साथ मिसेज़ सूर भी थीं। हाथ मे होटल का बिल।

बिजली ताड़ गई। बाथ-रूम के किवाड़ की फाँक स झाँक कर सलीम ने भी मामला भाँप लिया। उसका सारा नशा हिरन हो गया—चेहरा उतर गया।

"मिसेज़ सलीम! मै बेवक्त मुखिल हुआ! माफी का खास्तगार हूँ। क्या करूँ, होटल के रूल की पाबन्दी। महीनो से आपका बिल लटका चला आया।"

"आपने मुझसे तो कभी कुछ कहा नहीं!"—बिजली ने तुर्श होकर कहा।

"बन्दानेवाज़! मै शर्म व लिहाज़ से ज़बान पर न ला सका। जब मिस्टर सलीम को बीसियों बार - "

"आखिर आज सब को ऐसी उजलत क्या है? मै तो उड़ी नहीं जा रही हूँ! आप कल सुबह तक तो दम ले!"

"हुजूर मेरी बेबसी जानतीं, तो ज़रूर रहम खातीं। मैं तो हर पहलू से तैयार हूँ, गरीब-परवर! मगर मूजी शामलाल ने तो रास्ता बन्द कर रखा है। और है भी वहाँ असल शख्श, मै तो महज़ मैनेजर हूँ। आज महीने की आखिरी तारीख है। अगर बिल न चुका, तो मुझपर बला आती है। मुझे अपनी जेब से गिन देना पड़ेगा। हुजूर उसे जानती नहीं; चौबीसो

घंटे टिर्र-टिर्र किये रहता है, कभी नाक पर मक्खी तक नहीं बैठने देता।"

"हाँ, उनके आगे किसी की एक नहीं चलती, मिसेज़ सलीम! क्या किया जाय!"—मिसेज़ सूर ने श्री सूर में सुर भरा।

"देखूँ तो सही बिल!"

बिजली ने मिस्टर अहमद के हाथ से बिल ले लिया और आइने के पास कुर्सी पर बैठकर बिल का मुआयना करने लगी। मगर, देखती क्या खाक! यहाँ तो आँखों में अँधेरा छा रहा है। वह तो देखने के बहाने सोच रही है कि कल तक किस तरकीब से वह टाल सकेगी। मिसेज़ सूर के आने से वह ज़रा मुश्किल में पड गई। औरत के सामने औरत कभी बगलें नहीं झाँक सकती, यही नारी-प्रकृति है।

बिजली ने सोचा—अभी तक सलीम बाथ-रूम में क्या कर रहा है? उसने कागज की ओट देकर उधर मुडकर देखा, तो सलीम को बाथ रूम के किवाडो की फाँक से झाँकता हुआ पाया।

बिजली की निगाह उधर फिरते ही सलीम ने झट पल्ले लगा दिये। उसके लिये तो मिस्टर अहमद की तशरीफ-आवरी मलकुल-मौत की सवारी थी। उसके चेहरे पर हवाइयाँ छूट चलीं। उसने स्विच दबाकर बाथ-रूम की रोशनी गुल कर दी, ताकि अँधेरे में मुँह छिपाकर वह इतमीनान से झाँक सके। फौरन् पाइप खोलकर छप-छप करना भी शुरू कर दिया कि

लोग समझे, वह हाथ-मुँह धोने में मसरूफ है।

बिजली उसकी इस चालाकी से मारे गुस्से के सुर्ख हो गई। उसे ऐसा मालूम हुआ कि घर में डाकू आ घुसा है और मिया साहब बीवी को अकेली छोड़कर अपनी जान बचाने की गरज़ से पलग के नीचे जा दबके है! सलीम इस दुनिया में मैदान खाक लेगा—जब यहाँ सामने आने में उसकी रूह फना हो रही है? आखिर वह रहता, तो दोनों मिलकर कोई तरकीब निकाल लेते। किवाड़ से झाँक रहा है और आता नहीं!

बिजली बिल का टोटल देखकर सन्नाटे में आ गई। उसने कभी ख्वाब में भी न समझा था कि बिल की रकम पाँच सौ के पड़ोस में पहुँची होगी।

"पौने सात सौ का बिल है?"—बिजली ने जरा अकचका कर पूछा।

"जी हाँ। साढ़े पाँच सौ तो बोर्ड और रूम का ही चार्ज है, और....."

"और बाकी?"

"मिस्टर सलीम की शराब है!"

"अच्छा! इस ज़ालिम की बोतलबाजी है! चन्द दिनों में दर्जनों बोतलें साफ हो गईं! मैंने तो कभी उनको नशे में टर्र नहीं पाया? "

"हुजूर! उन्होंने कुछ कच्चे घड़े की थोड़े ही पी थी। यह

वह जाम नहीं है, जो किसी को जामे से बाहर फेंक दे। मेरे यहाँ की शराब कभी सर पर नहीं चढ़ती।"

"सर पर नहीं चढ़ती, हिसाब पर तो चढ़ती है! यही कुछ दिनों में सर गंजा कर डालेगी। आखिर यह लत कैसे पड़ी, मेरे फ़रिश्तों को भी पता न था!"

"अब हुजूर को किन-किन बातों का पता रह सकता है? आखिर बॉल-रूम में कदम तो कोई परहेज़गार नहीं रखता। बन्दानेवाज़! अगर बार के साथ डान्सिंग-हॉल न हो, तो होटलों का दिवाला पिट जाय।"

"ओहो! यह बात है! बॉल-रूम का भी शौक है!"

"यह भी कोई बात है! हुजूर! आखिर जवानी का सिन है और माशा-अल्लाह तबीयत भी रंगीन है। यही तो खुल खेलने के दिन है! आपके पाटनर भी तो यहाँ मौजूद ही है।" —मिस्टर अहमद ने मिसेज़ सूर की तरफ इशारा करते हुए कहा।

"मिसेज़ सूर?"

"हाँ, मिसेज़ सलीम! वे मुझे टेनिस की तालीम देते है और मैं उन्हें डान्स का सबक देती हूँ। यही आपस का समझौता है। आज तो घंटों दिल्लगी रही!"—मिसेज़ सूर बोलीं।

"हूँ-ऊँ! भरसक ह्विस्की की मश्शाकी में आपने कमाल की तरक्की की!"

बिजली खीस की हँसी खिलखिलाकर हँसी, और मन-ही मन कहा—'वाह मियाँ सलीम! बहे नहीं जाते, गँव से जाने है! शराब भी है, एक चुलबुल हसीन भी है और सीने से सीना लगाकर डान्स भी है! तमाम दुनिया जान गई और मुझी से परदा रखा गया! जरूर दाल मे काला है, वरना मुझसे नकाबपोशी की हाजत क्या थी!

'मियाँ सलीम समझते है कि वह दुधमुँही बच्ची अभी कच्ची गोलियाँ खेलती है। वह नहले पर दहला देना जानती है। बाजी लगाकर देख ले—बिजली बीस रहेगी, उन्नीस नहीं। उससे चुराकर मिसेज सुर के साथ घुल-मिलकर नाच चल रहा है! वह वह नाच नचा देगी कि जनाब की तमाम नसे ढीली पड जायँगी।'

बिजली को डान्स जरूर नहीं था—उससे चुराकर डान्स करना और गुलछर्रे उडाना उसे सख्त नागवार गुजरा। वह इतमीनान से भूल गई कि उसने भी सलीम से कहीं भयंकर बाते छिपा रखी है—कानों के झुमके और दराज के नोट! उसके दिल मे तो रह-रहकर यही उठने लगा कि सलीम ने उसके साथ विषम विश्वासघात किया है। यह बॉल-रूम की आपस की शागिर्दी और मास्टरी का मादेनामा वगैर मुहब्बत के आफिस मे रजिस्टरी हुए सादा तो होगा नहीं। अगर प्याले के रग मे लिखा गया है तो लबो की मुहर भी जरूर पड़ी होगी!

वह नीली-पीली हो चली, पलीता तो थी ही, भभूका बन गई !

वह उठी। उसने विचारा कि उसे जो कुछ करना है, अब कर गुजरेगी। उसे जीवन के मैदान में अपने हाथ में तलवार लेनी होगी। सलीम के हाथ में टेनिस का रैकेट रह सकता है या शराब का जाम—तलवार नहीं। उसकी भूल होगी, अगर वह हाथ की तलवार को मुहब्बत की म्यान में डाल रखेगी। आखिर किस भरोसे पर—सलीम के ?

उसने हँस दिया और चटपट दिल की म्यान से तलवार को खींच लिया। जरा तिलमिलाती हुई बड़ी मेज के पास पहुँची और अकड़कर बोली—"हाँ, तो, आपका कितने का टोटल बिल है ?"

"हुजूर ! मैं तो अभी कर चुका हूँ—सिर्फ पौने सात सौ !"

उसने दराज को खोला और नोटों की गड्डी को तोड़कर बेखटके गिनना शुरू किया।

सलीम लकदक होकर तैयार हो गया, पर बाथ-रूम के किवाड़ के पास आकर फिर ठिठक गया। पल्ला हिलाकर देखा कि बिजली होंठ चबाती हुई नोट गिन रही है।

देखते ही वह हक्का-बक्का हो गया। उधर बिजली की आँखों में लहू उतर रहा था, इधर सलीम की आँखों के आगे चिनगारियाँ उड़ने लगीं—ऐं ! ये नोट कहाँ से आ गये ? बिजली का खजाना तो आज सुबह ही उलटी साँस खींच रहा

था। यह किसने नोशदारू नोट-दारू पिलाकर इसमें नई जान डाल दी ?"

सलीम का चेहरा एक निदारुण आशंका से म्लान पड़ गया। कोट-पैंट की सारी अकड़ खाक में मिल गई!

बिजली ने छः सौ पचहत्तर के नोट गिनकर मिस्टर अहमद के सामने रख दिये। उन्होंने तपाक की ताजीम के साथ उन्हें उठाकर पाकिट में रखा और तहे-दिल से शुक्रिया अता की।

सलीम तबतक भीगी बिल्ली की तरह दबे पाँव कमरे में आकर सिटका खड़ा हो गया।

मिस्टर अहमद मुड़कर, बीवी के साथ-साथ मियाँ को भी थैंक्स देकर, आजिजी से सर झुकाते हुए, चलते हुए।

मिसेज सूर ने भी थैंक्स दिया, और सलीम की आँखों के आगे मलील मुरकान के मोती बिखेरकर धीरे-धीरे कमरे के बाहर हो गईं।

"क्यों मिस्टर अहमद! आखिर ऐसी रवारवी क्या थी? कल ही आप बिल चुका लेते, तो....." —मिसेज सूर ने चलते-चलते मिस्टर अहमद के कानों में फुसफुसाकर कहा।

'तुम्हीं सब समझोगी—दाव-पेंच की बातें हैं! इस सुपैदी में होटल की पतवार हाथ में लेना कुछ इबादत की तसबीह लेना नहीं है!"

"मैं तो मिसेज सलीम की आबोताब देखकर सहम गई। खुदा जाने, नाक ही पर उनका मिज़ाज रहता है। मुझसे तो

बेहद खिन्नी हैं। उनका खयाल है कि मैंने ही उनके शौहर को पीने-पिलाने की लत · · ·"

"वल्लाह! कहाँ का शौहर—कहाँ की बात! देखो तो, क्या गुल खिलता है! हाँ तुम डान्स की तालीम का सिलसिला ज्यों-का-त्यों लिये चलना। · · अच्छा, देर तो न हुई? डिनर हो चुका?"

"अभी कहाँ! अभी तो मन्ज सूप का दौर पास हुआ था। आप टेबुल पर से घसीट लाये।"

"जाओ, तुम खाना शुरू करो। मैं अभी नवाब साहब के कमरे से होता हुआ आया।"

इधर बिजली ने सलीम की ओर मुडकर देखा तक नहीं। उसकी गुलेनार टाई और कॉलर की सफाई कालिमा मे परिणत हो गई। बिजली इस तैश से झमककर सीटिंग रूम की ओर लपकी कि पाँव से लगकर छोटी मेज धड़ाम से जमीन पर जा गिरी और फूलों से भरा फूलदान उलटकर उसकी साड़ी के छोर पर मटियाला छाप दे गया।

सलीम ने दौडकर फूलदान को उठा लिया और बिखरे हुए फूलों को चुनकर अपनी जगह पर जल्दी से सज दिया। फिर रूमाल निकाल कर बिजली की साड़ी के धब्बे को उठा लेना चाहा, पर वह दनदनाती हुई आगे निकल गई।

जाते-जाते उसने कहा—"अभी आपको बाथ-रूम से फुरसत हुई है न! थैंक्स! मैं साफ़ कर लूँगी।"

सलीम ने कोई जबाब नहीं दिया। शायद जवाब पर बात बढ़ती और बिजली बात-बात पर तिनक उठती।

"आपने अँगरेजी नाच मे भी मश्शाकी हासिल कर ली है, और मुझे पता तक नहीं! खैर, मेरी वजह से बी० ए० की डिगरी न मिली, न सही, मिसेज सूर की शागिर्दी मे अगर डान्सिङ्ग की डिगरी मिल जाय तो बड़ी बात होगी। अब बाजार नापने की जरूरत नहीं। किसी बॉल-रूम की नौकरी मिल जायगी!"

बिजली की एक-एक बात विष मे बुझी थी।

"क्या करूँ, बिजली! जब तुम नवाब साहब के साथ मेले मे चली गई, तो मै अकेला ·"

"बस-बस, समझ गई। आपको सफाई देने की ज़रूरत नहीं। आप आखिर अकेले पड़ गये, तो करते क्या? पीते नहीं—नाचते नहीं, तो क्या मसजिद मे जाकर तराबी पढ़ते?"

सलीम की जबान पर जवाब तो उठा, पर दाँतो के तिनके ने रोक लिया। वह बात पी गया। मुँह से निकलते ही बिजली उसे पकड़ लेती और बेकार की कचकच मचती। उसे भी बिजली से नोट की निस्बत एक बात दरियाफ्त करनी थी पर पूछने की मजाल कहाँ थी? बिजली से सफाई तलब करने के पहले सवाल पूछने की सफाई देनी पड़ेगी। और, फिर बात का बतंगड़ हो जायगा! नोट चूल्हे-भाड़ मे जायँ,

सलीम को अपना सर प्यारा था। पेट मे चूहे कुलॉच भरकर रह गये।

"चलिये, खाने चलिये। आपकी बातों मे पड़ी रहूँगी, तो खाना भी हराम हो जायगा।"—बिजली ने उसी तैश मे कहा।

"यही सीटिंग-रूम मे आर्डर करूँ?"—सलीम ने दबी ज़बान से पूछा।

"सीटिंग-रूम मे! यह फाज़िल चार्ज कौन देगा? कुछ कमाकर लाये रहते, तो नवाबी निभती भी!"—बिजली झल्लाई हुई बोली।

"तुम्हीं ने तो कहा था कि आज साल-गिरह की रात है। हम-तुम ··"

"जब कहा था, तब कहा था। मेरी साल-गिरह की रात है या मौत की रात?"—बिजली ने बात काटकर पूछा।

दोनों विशाल डाइनिंग-हॉल मे दाखिल हुए। देर हो चुकी है। वेटरों की हलचल कम है। खानेवालों की भीड़ छँट चुकी है। मेज़ों से चादर उठा ली गई है। न प्लेटों की सजावट है, न छुरी-काँटों की झनझनाहट। दो-एक वेटर शराब के गिलासों को गिन-गिनकर दीवार मे लगे हुए तख्ते पर सज रहे हैं। एक ओर रिकाबियों का थाल लगा है। दूर कोने मे मिस्टर अहमद बैठकर अपना आखिरी पेग ढाल रहे हैं।

बिजली के क़दम रखते ही मिस्टर अहमद ने विलायती तरीक़े से सर झुकाकर ताज़ीम दी और एक वेटर को फ़ौरन् डिनर लाने का ऑर्डर दिया।

बिजली और सलीम सबसे किनारे की खिड़की के पास जाकर बैठ गये। वेटर ने दौड़कर मेज़ लगा दी। फूलदानी और नमकदानी, क्रूएट और प्लेट, काँटे और छुरी—सब अपनी जगह पर सज दी गईं।

जबतक डिनर आने में देर थी, तबतक बिजली खिड़की पर झुकी हुई प्रकृति की छटा देखती रही—

नीचे होटल की हरी-हरी दूब की मखमली लॉन है। चारों कोने पर चार खम्भे, उनपर बिजली की बत्तियाँ रौशन हैं। बीचोबीच अलबेली नरगिस अपने दिल की भीनी-भीनी माधुरी को हवा में बिखेर रही है। जगह-जगह मिहराब पर विलायती बेलों की बहार। एक ओर माशल नील का टट्टी, दूसरी ओर मॉर्निङ्ग-ग्लोरी; कहीं जैसमिन, कहीं हनीसकल। बरसाती पर चुहचुहाती मालती अपने निखार और खुशबू से सब पर शोर बनी है। ऊपर आकाश पर चाँद और मेघ की छीना-झपटी चल रही है।

बिजली ने देखा कि बादलों की फौज ने चाँद को क़ैद कर लिया। अंधकार की डौंड़ी पिट चली। पर वह बहादुर निशाकर विरोधी बादल-दल को चीरता हुआ फिर

आकाश के सिहासन पर आरूढ़ हो गया और चन्द्रिका की छटा पृथ्वी पर टूट पड़ी।

बिजली ने सोचा—यही जीवन है, यही जीवट। मेघ और चाँद का द्वन्द्व जीवन है, मेघ की छाती पर चाँद का सिहासन जीवट। जो धुएँ से घिरकर धूमिल हो गया, वह गया; और जो धुएँ को काटकर बाहर निकल आया, वह चमका।

सूप आया। बिजली ने नीबू निचोड़कर दो बूँद डाली। सलीम ने चमची से नमक मिलाया। बिजली सर झुकाए रही, सलीम सर झुकाए रहा। दोनो ने चुपचाप शोरबा सुड़क डाला। बिजली ने बाये हाथ से लोफ का एक काश तोड़कर मुँह मे डाला, और गिलहरी-सी कुतरने लगी। दाहने हाथ से मेनू-कार्ड को उठाकर उसकी बारीकियाँ हल करती रही।

सलीम ने मुड़कर तरसती आँखो से मिस्टर अहमद के हाथ मे छलकते पैमाने को देखा। मिस्टर अहमद ने भी गिलास को ऊँचा उठाकर कनखियो से डोरा फेका। सलीम ने दाँत से जीभ जाँतकर सर हिलाया।

फिर तली मछली आई। दोनों काँटे चुनने मे मशगूल रहे। फिर बटर-सॉस का पञ्चामृत पाकर मछली प्लेट-लोक से उठकर निर्वाण-पद को पहुँची। जबान चलती रही, पर हिली नहीं।

दूर कोने मे बैठे हुए मिस्टर अहमद इस नीरव निरानन्द भोजन-नाट्य को एक-टक देखा किये, और ह्विस्की की चुस्कियों के साथ-साथ चुरुट के कश लेते रहे। उनके होंठों के प्रान्त पर एक अद्भुत वक्र रेखा खिची हुई है।

रोस्ट आया। साथ ही, सती होने को मटर और गोबी आई, और—गाजर और चुकन्दर की छालियाँ।

वेटर ने तमीज़ के साथ पूछा—"हुजूर, पीने को क्या लाऊँ?"

बिजली ने छूटते ही कहा—"सादा पानी।"

सलीम ने कहा—"सोडा-पानी।"

"खाली?"—वेटर ने दुबारा पूछा।

"हाँ, खाली।"—सलीम ने ज़रा झुँझलाकर कहा।

वेटर पानी लाने चला। चीज़ की बाढ़ियाँ चली। फिर क्रीम से भरी खुबानी की फिर्नी। बिजली ने मीठे पुडिंग के सहारे मुँह तो मीठा किया; पर ज़बान तीती की तीती रह गई।

ज्योंही वेटर ने सलीम के गिलास मे सोडा डाला, बिजली तड़प उठी—"क्यों लिहाज़ करते हो? पीते क्यो नही? आज के मन मसोसकर रह जाने से तुम्हारा शुमार तो ज़ाहिदो मे न होगा!"

"जबतक तुम नही पीती, मैं इसे छूता नही!"—सलीम ने बड़ी दीनता से कहा।

"मैं तो पीती नही!"

"तो मैं भी नहीं पीता !"

"तुम्हारी मर्ज़ी, न पियो ! मैं इस नुमायशी खुशामद की क़ायल नहीं !"

यही तो सलीम की भूल है। एक दिन विजयी सलीम ने बिजली के दिल को मुट्ठी मे किया था; उसके विजय-मुकुट की चन्द्रिका की वह कुमुदिनी बनी थी। आज श्रीहत सलीम लाख तलवे से आँख मलता है; पर वह पसीजती नहीं ! वह खुशामद पर ज़रूर मायल होती—बशर्ते कि वह खुशामद भी एक सलीके की हो।

जो तेज-हत होकर दिन रात दाँतो मे तिनका लिये दीनता दिखाता है, वह कभी किसी मानिनी स्त्री के हृदय पर सिक्का नहीं जमा सकता। स्त्री तलवार के हाथ को चूमती है और नमस्कार के हाथ को भीख देती है। वह खुशामद से खुश होती है और पौरुष से सर।

सर-दर्द का बहाना कर बिजली उठी और दो हाथ भी आगे न बढ़ी होगी कि अमीन न जाने कहाँ से डाइनिग-हॉल मे फट पड़ा। आँखे चार हुईं। उसने झुककर इस अचानक दर्शन के लिए अपनी खुशकिस्मती ज़ाहिर की और कहा—"मुझे अभी दूकान से फुरसत मिली है। बस, दौड़ा आ रहा हूँ; आप खा चुकी ?"

"जी हाँ; और आप ?"

"मुझे तो चाय पीने की भी फुरसत नहीं। आँतें कलामल्लाह् पढ़ रही हैं।"

"आप शौक़ से खायँ। मैं बैठकर बातें करती हूँ।"

"फिजूल की तकलीफ़····"

"नहीं-नहीं, मुझे इतमीनान है। आप खाइये।"

"जो इरशाद।"

एक अलग कोने मे दोनो बैठ गये। वेटर ने दौड़कर मेज़ लगा दी। सूप-मछली का सिलसिला चला। अमीन ने खाना शुरू किया और अपनी विलायत की सैर का क़िस्सा छेड़ा। बिजली इस तेजस्वी युवक की बातों को कान देकर सुनने लगी।

अमीन हसीन ही नही, ज़हीन भी है। बिजली के सिर का दर्द न जाने कहाँ हिरन हो गया! अमीन के दाहने हाथ की उँगली मे एक रत्नमुखी नीलम था। बिजली ने देखा कि बिजली की तेज़ रोशनी मे उस नीले नग से एक विचित्र लोहित दीप्ति विकीर्ण हो रही है और वह कफ के लिक पर जड़े हुए कमल-हीरे मे लोहा ले रहा है। वह दीप्ति उसकी आँखो मे घर कर गई।

अमीन बातो के फन मे कामिल था। उसने यूरप के आनन्द-विह्वल जीवन की चर्चा छेडी। लन्दन की नन्दन-विभूतियाँ और पेरिस की विलास-विभ्रम रँगरलियाँ बिजली के दिल पर टूटकर पड़ीं। वहाँ की स्त्रियों की स्वच्छन्द

जीविका की कथा उसे विशेष मधुर लगी। वहाँ के नारी-जीवन का नैतिक आदर्श उसने बिलकुल मनोऽनुकूल पाया। वहाँ की इशरत, आज़ादी और फ़ैशन की कथाएँ उसके अन्तस्तल में निहित उन्माद को कुरेदने लगीं।

वह बुत बन गई। बचपन मे जब से उसने मिशन-स्कूल की विलायती मेमो की शान शौकत देखी और यूरप की दिलफरेब कहानियाँ सुनी थीं, तभी से उसके अन्तर के एक अज्ञात अन्तराल मे विदेश-यात्रा की लालसा अंकुरित हो गई थी, और 'मिस नैसी अहमद' की बातो से दिन-दिन पल्लवित होती गई थी।

मगर इस होटल मे आकर यहाँ की आर्थिक तपिश मे वह झुलस चली थी। आज अमीन ने उसकी जड़ मे रस के छींटे देकर उसे तरोताज़ा कर दिया। मुर्झाई आशा-लता फिर से लहलहा तो उठी; पर सलीम के असफल जीवन के साये मे वह फल-फूल सकेगी—ऐसी तो सम्भावना नहीं!

बिजली सोचने लगी—उसे ज़िन्दगी की पतवार को अपने हाथ मे रखना होगा और दुनिया की खामखयाला के आँधी-पानी से मुकाबला करने के लिए दिल की कोलों को मज़बूत कसना होगा, वरना उसकी तमाम उमीदों पर पानी फिर जायगा और वह कभी मंज़िल तक न पहुँच सकेगी। जिस तरकीब से हो— निगाहों की जादूगरी से, चेहरे की बाजीगरी

ने, आँखों का पानी ढले या रहे, उसे अमीरों के बाम पर मोती चुगना ज़रूरी है।

उसने निश्चय कर लिया कि वह मनोरथ के रथ को वैभव के लक्ष्य तक पहुँचाकर ही दम लेगी। दया और धर्म की दुहाई देनेवाले हाथ उठाकर आकाश फाड़ते रहें; पर वह हौसले का चाबुक फटकारकर कामना के तुरंग को लोक की छाती पर रेलती हुई बाज़ी मार लेगी।

इस निदारुण निश्चय की निष्ठुरता के नीचे बिचारे सलीम की आत्मा पिसती है या बचती है—उसके अपने नारीत्व की क़ीमत घटती है या बढ़ती है, इस सरकन्दनी की उसे ज़रूरत नहीं। उसके सर पर अगर हीरे का टायरा हो; फिर सीमन्त पर सिन्दूर हो या ख़ाक, दोनो बराबर है!

मोतियों की आबताब के साये मे कलङ्क का टीका सुहाग के कुंकुम के तिलक को भी इस ज़माने मे पस्त कर सकता है।

"मुझे तो उमीद है; आप एक-न-एक दिन ज़रूर यूरप की सैर करेंगी। आपका चुलबुला दिल कभी भी हिन्दुस्तान के दक़ियानूसी आँचल मे बँधा नहीं रह सकता!"—अमीन ने हँस कर फरमाया।

"देखिये, मेरे लिए तो अभी यह दिल्ली का लड्डू है। ऐसी खुशकिस्मती "

"खुशकिस्मती! खुशकिस्मती तो हिम्मत के हरम की बाँदी है। अल्लाह के करम का ताज उसीके सिर पर होता है, जिसे

जीविका की कथा उसे विशेष मधुर लगी। वहाँ के नारी-जीवन का नैतिक आदर्श उसने बिलकुल मनोऽनुकूल पाया। वहाँ की इशरत, आजादी और फैशन की कथाएँ उसके अन्तस्तल मे निहित उन्माद को कुरेदने लगी।

वह बुत बन गई। बचपन मे जब से उसने मिशन-स्कूल की विलायती मेमो की शान शौकत देखी और यूरप की दिलफरेब कहानियाँ सुनी थी, तभी से उसके अन्तर के एक अज्ञात अन्तराल मे विदेश-यात्रा की लालसा अंकुरित हो गई थी, और 'मिस नैसी अहमद' की बातो से दिन-दिन पल्लवित होती गई थी।

मगर इस होटल मे आकर यहाँ की आर्थिक तापिश मे वह झुलस चली थी। आज अर्मान ने उसकी जड़ मे रस के छींटे देकर उसे तरोताजा कर दिया। मुर्झाई आशा-लता फिर से लहलहा तो उठी, पर सलीम के असफल जीवन के साये मे वह फल-फूल सकेगी—ऐसी तो सम्भावना नहीं!

बिजली सोचने लगी—उसे जिन्दगी की पतवार को अपने हाथ मे रखना होगा और दुनिया की खामखयाली के आँधी-पानी से मुकाबला करने के लिए दिल की काला को मजबूत कसना होगा, वरना उसकी तमाम उमादों पर पानी फिर जायगा और वह कभी मंजिल तक न पहुच सकगी। जिस तरकीब से हो– निगाहो की जादूगरी से, चेहरे की बाजीगरी

में, आँखों का पानी ढले या रहे, उसे अमीरों के बाम पर मोती चुगना ज़रूरी है।

उसने निश्चय कर लिया कि वह मनोरथ के रथ को वैभव के लक्ष्य तक पहुँचाकर ही दम लेगी। दया और धर्म की दुहाई देनेवाले हाथ उठाकर आकाश फाड़ते रहे, पर वह हौसले का चाबुक फटकारकर कामना के तुरंग को लोक की छाती पर रेलती हुई बाजी मार लेगी।

इस निदारुण निश्चय की निष्ठुरता के नीचे बिचारे सलीम की आत्मा पिसती है या बचती है—उसके अपने नारीत्व की कीमत घटती है या बढती है, इस सरकन्दनी की उसे ज़रूरत नहीं। उसके सर पर अगर हीरे का टायरा हो; फिर सीमन्त पर सिन्दूर हो या खाक, दोनों बराबर है!

मोतियों की आबताब के सामने में कलङ्क का टीका सुहाग के कुंकुम के तिलक को भी इस जमाने में पस्त कर सकता है।

"मुझे तो उमीद है, आप एक-न-एक दिन ज़रूर यूरप की सैर करेंगी। आपका चुलबुला दिल कभी भी हिन्दुस्तान के दकियानूसी आँचल में बँधा नहीं रह सकता!"—अमीन ने हँस कर फरमाया।

"देखिये मेरे लिए तो अभी यह दिल्ली का लड्डू है। ऐसी खुशकिस्मती "

"खुशकिस्मती! खुशकिस्मती तो हिम्मत के हरम की बाँदी है। अल्लाह के करम का ताज उसीके सिर पर होता है, जिसे

अपने बाजू पर नाज है। मैं आपकी नज़रों की कोर में उस बिजली की तडप पाता हूँ, जो जिस मुश्किल के सर पर टूटकर पड़ेगी, उसकी भुस्सियाँ उडाकर रख देगी। ख़ैर, मैंने आपको इतनी देर अटका रखा····"

"क़तई नहीं। मुझे आपकी बातों से बडी तस्कीन हुई।"

"अच्छा, गुड-नाइट !"

"गुड-नाइट !"

बिजली उठी और अमीन की कुतूहली आँखों पर मुस्कान की सुन्दर फुलझरियाँ छोड़ती हुई डाइनिग-हॉल के बाहर निकल गई।

सलीम, खिड़की के पास बैठा हुआ, सामने लॉन पर बिजलीबत्तियों के इर्द-गिर्द फड़फड़ाते हुए पतंगों के अन्तिम नाच का अभिनय देख रहा था, और सोच रहा था—यही नाच अब उसको भी नाचना है। उसके पर तो बहुत पहले ही जल चुके। वह मँड़रा भी चुका काफी। बिजली की रोशनी पर पतंगों की कभी कमी न होगी। रोज़ नये रंगरूट परवानों में दाख़िल होंगे। नवाब साहब तो हैं ही। यह एक नया शिकार आज कहाँ से आ टपका? ख़ैर, कोई आये। बिजली की तिलस्मी चितवन की नैरंगियाँ रंगीलों की महफ़िल में रोज़ ही एक नया रंग लाएँगी, तो लाती रहे—बला से! उसे तो अब जलन नहीं। उसका ज़माना तो लद चुका। अब उसे दामन झाड़कर दूर सरक जाना ज़रूरी है। बिजली को

अपनाने की कोशिश करना पत्थर पर सर पीटना है। वह क्य ख़ाक राह पर आएगी ? उसके मिज़ाज का कोई ठिकाना भी है ?—कभी ऊमस, कभी खुनकी, कभी आँधी, कभी पूही; कभी धूप, कभी बदली ! ऐसे बुते-ज़ालिम की नाज़बरदारी अपनी जान का जंजाल होगी। इस तूफ़ाने-बेतमीज़ी मे पड़कर जो ज़रर पहुँच चुका, वही कुछ कम नहीं। अब आगे इस आग से खेलना तमाम उमीदो को खाक कर देना है।

इतने मे उसके कंधे पर एक हाथ पड़ा, और वह चौंककर पीछे मुड़ा। देखा, तो मिस्टर अहमद हैं। वे कुर्सी खींचकर नज़दीक बैठ गये और सलीम के दोनों हाथों को अपने हाथ मे लेकर बडी दर्द-भरी आवाज़ मे बोले—"क्यों ख़ामखवाह उस जल्लाद के लिए पसीने की जगह लहू बहा रहे हो ? यह भी कोई बात है ? तुम पलको से तलवे झाड़ते रहोगे और उसकी पलक तक न पसीजेगी। मुझसे दिल चुराने से फायदा ? मेरी आँखे खुली है। मै सब-कुछ देखता हूँ—समझता हूँ। खुदा दरमियान है, मै तुम्हे चकमे नहीं देता। वह अमीरो के मान की चीज़ है, तुम्हारे मान की नहीं। तुम कहाँ से-कहाँ इस बेपीर के फेर मे जा पड़े ? तुम्हे नवाब साहब की मुलाज़मत क़बूल नहीं, तो घर लौट जाओ। क्या तुम समझते हो, मेरी कुछ अपनी गरज़ है जो तुम्हारी गर्दन पर सवार हूँ ? यह भी कोई बात है !"

मिस्टर अहमद ने जो कुछ कहा, शायद सच्चे दिल से

कहा। उन्हे ज़माने की हवा का अनुभव था—आदमी की पहचान थी। वे समझते थे कि बिजली कभी सलीम की नहीं रह सकती—चूँकि वह चमन की परी है, घर की देवी नहीं। उसके दिल मे हौसलो की शिद्दत है, स्नेह की मलाहियत नहीं। वह शान-शौकत मे रँगी है, धन की भूखी है—और, मियाँ सलीम को न ज़र है, न ज़ीनत!

इसीलिए बहुत मुमकिन है कि मिस्टर अहमद की बन्दिशो मे एक हद तक इन्सानियत का अंश हो और नवाब साहब की दिलजोई के साथ साथ सलीम की रिहाई उनकी दिली तमन्ना हो। अगर उनकी बात दोनो ओर लह गई, और बिचारा बिजली का मारा सलीम नवाब साहब की रियासत मे रोटी-दाल का एक ज़रिया पा गया, तो यह गौर करने की बात है कि उन्होंने सलीम के हक़ मे काँटा बोना चाहा था या फूल।

सलीम इस हमदर्दी पर पिघल पड़ा। आज उसको लांछना—उसके हृदय की वेदना—चरम सीमा पर पहुँचकर फूट पड़ी। भला या बुरा जो हो, मिस्टर अहमद के सिवा वहाँ कोई दूसरा हमदर्द नहीं। और, उस भी एक दर्दशरीक की तलाश थी, जिसे वह अपना सके और अपना अफसाना सुना सके।

मनुष्य का जीवन समाज का जीवन है। वह अकेला नहीं निभ सकता। उसे साथी चाहिये, संगी चाहिये, बेतकल्लुफी चाहिये, और दस की दादखानी चाहिये।

उसे महज़ नुमायशी बातचीत या मुलाकात से तस्कीन नहीं होती। वह चाहता है कि जब वह सर्द आह खींचे, तब किसी की आँख में पानी भर जाय, जब वह खुश होकर चहके, तब कोई उसके सुर में सुर मिलाकर राग छेड़ दे, और जब वह कोई जीवट का काम करे, तब चारों ओर से करतल-ध्वनि निरन्तर गूँजती रहे। वह अकेला किसी भी सुख का जी खोलकर उपभोग नहीं कर सकता। उसे नन्दन की सैर में भी कोई लुत्फ नहीं है, यदि कोई साथी या हमजोली न हो।

लोग अमूमन कोई भी सार्वे का काम महज अपने मन की मौज पर नहीं करते, दो-चार की जबान की वाहवाही उनके प्रत्येक उद्योग की प्रेरणा है। कोई महज कसरत ही के खयाल से समुद्र नहीं तैर जाता, न हवाखोरी ही की गरज़ से हिमाचल की चोटियों को सर करना चाहता है। जो दिमाग का अर्क निचोड़ कर सैकड़ों वर्क बागज़ रँगने बैठा है, कभी एक पन्ना भी लिख पाता—अगर इस प्रयत्न की दौड़ उसीकी दिलचस्पी तक सीमित रहती? वह ऐंडी-चोटी का पसीना एक कर जो कुछ खयाली पुलाव पकाकर तैयार कर रहा है—वह मीठा हो या तीता, उसे जबतक उसके दोस्त सराह-सराहकर खाते नहीं, तबतक उसकी आत्मा की तृप्ति कभी मुमकिन नहीं।

हमारे पसीने से सींचे हुए चमन के गुलबूटों के रंग और बू की तारीफ हमारे हाथ के कुदाल को भी ज़ीनत बख्श देती

है। हमारी मुरली की तान पर तमाम सहृदय जगत् के घर-घर स्खलित अंचल और विलुलित कुन्तल का अभिनय हो, यही तमन्ना हमारी वंशी की प्रत्येक फूँक मे निरन्तर ध्वनित होती है। यह सच है—हमारे होंठ की वंशी कुछ वंशीवट की वंशी नहीं हो सकती, पर यही सत्चेष्टा तो हमारे जीवन की महत् चेष्टा है। हम इसी सुर के सूत्र को लेकर तो विश्व के हाथों में राखी बाँधने चलते हैं।

हमारे दिल का बुखार भी अगर भीतर-ही-भीतर खौलता रहे, तो वह एक मानसिक सन्निपात-सा पैदा कर सकता है। जब दिल का धुआँ उठकर दिमाग को घेर लेता है और हम जब्त का ढक्कन देकर उसे बाहर निकलने नही देते, तो यह जरूरी है कि इस स्टीम की शिद्दत से एक-न-एक दिन दिमाग की कीलें फट पडेंगी, और आदमी पागल या वहशी हुए बिना नही रह सकता।

मनुष्य को इस भूतल पर परलोक का साया मिले या न मिले; पर एक स्निग्ध स्नेह की छाया अनिवार्य है। हमारे दुर्दिन में धर्म की सान्त्वना से कहीं ज्यादा किसी दिलदार का दिलासा दिल मे घर करता है।

दिल की आह आँखो से जल की कणा बनकर और जबान से आफसाना बनकर निकलने की राह ढूँढ़ती है, पर पर्दे से बाहर आने के पहले वह एक दर्दमन्द इन्सान को तलाशती है, जिसके सामने दुखड़ा रोया जाय और कहा

जाय। हमारे सुख-दुख में—शादी और श्राद्ध में—निरन्तर एक ऐसे अन्तरङ्ग बन्धु की जरूरत है, जिसके सामने हम घूँघट उठाकर नाच सकें या फूट-फूटकर रो सकें। किसीकी आँखों में हमारे लिये जल हो, किसीकी छाती में हमारे लिये दिल, यही इस विराट् संसार में हमारा सबसे बड़ा आश्रय—हमारा सबसे बड़ा बल—है।

हमारे सन्देह और संकट में, हमारी आशंका और आतंक में, एक हमदर्द सुहृद से बढ़कर दूसरी नेमत नहीं। हमारे सामने लाख झुकी गरदनों की अवली हो, हजार खुशामदी जबानों की चाशनी हो, पर वह सब होते हुए भी अगर एक दर्दशरीक दिलफेक न हो, जो हमारे मुरदे दिल में जान और दिल डाल सके, तो हमारे जीवन का तमाम संचय अधूरा ही रह गया।

मिस्टर अहमद की मुलायम और मीठी बात सलीम के दिल में बैठ गई। वह आँखों में आँसू भरकर और घुटनों में सर देकर उनके सामने उबल पड़ा—"मैं खुद परीशान हूँ, मैनेजर साहब! मैंने ख्वाब में भी नहीं समझा था कि बिजली पत्थर की परी होगी और इस बे-मुरव्वती से आँखें फेर लेगी। मुझे तो जैसी चोट पहुँची है ·····"

'मैं तो तुमसे शुरू से कहता चला आया। खैर, आज भी तुम समझे। जाने दो, उठो, कमर बाँधो। अभी तुम्हारे पर बिलकुल जले नहीं हैं, तुम उड़ सकते हो।"

"कोई ज़रिया हो, तब तो ! मेरे पास तो कानी चित्ती तक नहीं।"

"नवाब साहब की मुलाज़मत क्यों नहीं कुबूल कर लेते ? खासी जगह है म्याँ !"

"नवाबों की बात है। खुदा जाने, कहाँ तक इतमीनान "

"नहीं-नहीं, मुझे वे ज़बान काटकर दे चुके हैं। शरीफों की बात है।"

"आप ही समझिये, न दीद न शुनीद ! मुझे वे एकबारगी खासी नौकरी क्यों देने लग गये ?"

"अजी, यह भी कोई बात है ! तुम भी अजब शक्की हो ! भई, मैंने तुम्हारे लिए ऐंडी-चोटी का जोर लगाया, तब कहीं वे पिघले। हमारे पुराने करम-फरमा हैं। यह अहसान मेरे सर है, तुम्हारे सर नहीं ! और माना कि उनकी नीयत खाम ही सही, तुम्हारा तो एक रास्ता निकल आता है !"

सलीम का दिल इस सिफारिश पर भी उठता न था। नवाब साहब की मुलाजमत उसे कबूल न थी। जब से बिजली उनके साथ फैसी मेले मे गई, तभी से एक अव्यक्त आतङ्क की काली घटा उसके मन के एक निहित कोने मे जम रही थी, और वह दिल का धुआँ धीरे-धीरे समग्र अन्तर को व्याप्त कर गया था। ऐसी परिस्थिति मे नवाब साहब का नमक खाना ज़हर खाना था।

पर, वह लाचार था। उसे तो रोटियों के लाले पड़े थे।

मिस्टर अहमद को भी वह दुतकार दे, तो फिर इस शहर में उसे कफन भी मिलना मुश्किल होता। उनकी दिलशिकनी उसे बेहद खलती थी। इस घात-प्रतिघात से उसका दिल फट चला था और बिजली की उँगलियाँ भी अब उसे रफू नहीं कर सकती थीं।

"उठो, क्यों बेकार बेजार हुए जाते हो? कैद से छूटने के दिन आये। तुम्हारी गरदन की जंजीर अब टूट चली। लो, दो घूँट पी लो।"

मिस्टर अहमद ने ह्विस्की के गिलास को तपाक से आगे बढ़ाया और खुद चुरुट का एक कश खींचा। सलीम की आँखों के सामने धुएँ का बादल छा गया।

"नहीं, मुझे मुआफ कीजिये।"—सलीम ने गिड़गिड़ाकर कहा।

"मुआफ कीजिये! यह भी कोई बात है? अब भी तुम्हारा डर नहीं छूटता? बिजली कोई शेरनी नहीं है जो तुम्हारी हड्डियाँ चबा डालेगी!"

मिस्टर अहमद ने ह्विस्की के गिलास को सलीम के मुँह में उँड़ेल दिया। वह गट-गट पी गया। फिर, उन्होंने चुरुट का आखिरी कश खींचा और गुड-नाइट की सदा देकर चलते हुए।

सलीम उठा। दबे पाँव कमरे में दाखिल हुआ। पलँग की तरफ़ गया, तो देखा कि बिजली सो रही है। मगर बिजली

की आँखो मे नींद कहाँ ? उसका तो माथा टन-टन कर रहा था।.....सलीम और मिसेज़ सूर मे कहाँ तक गहरी छनती होगी ?.....किसी के साथ अँगरेज़ी नाच नाचना तो गले का हार बनना है ... और, उस पर जानीवाकर की ललकार !

सलीम ने आहिस्ता-आहिस्ता कोट-पैंट उतार डाला। कमीज़ निकालकर सोफे पर रख दी। पाजामा और पंजाबी पहन लिया। फिर, सुराही से ढालकर एक गिलास जल पिया, रोशनी बुझा दी और मसहरी के पास आकर खड़ा हो गया। थोडी देर तक न जाने क्या सोचता रहा। फिर पलँग पर कदम रखा। उसके कुरते का एक छोर बिजली के कंधे से छू गया। इस स्पर्श से वह कुछ उसी तरह चमक उठी, जिस तरह मानिनी पद्मिनी चाँद के कर-स्पर्श से सिकुड जाती है।

सलीम खिसककर चुप सो गया। बिजली भी करवट बदलकर चुप सो गई। सन्नाटा छा गया। आँखे बन्द थी दोनो की; पर किसी की लगी नहीं। और, दोनों के बीच बदगुमानी की नंगी तलवार धरी रही।

अष्टम परिच्छेद

सुबह के आठ बजे होंगे। धूप और छाया का हेर-फेर चल रहा है। बादलों के पैर में पर लगे है—हवा पर उड़े जा रहे हैं। रात पानी बरस गया। मिट्टी की बू में सोंधी ताज़गी है, हवा में खुनकी।

नवाब साहब गरदन में तूस का मफलर लपेटे खिड़की से होटल की गर्मबाज़ारी का मज़ा ले रहे हैं। ब्रेकफास्ट का घंटा बज चुका है। वेटरों के हाथ में प्लेटों का ताँता बँधा है। मक्खन और टोस्ट की, पॉरिज और पोच की धूम है। रिकाबियों से पीतपट आमलेट की चटपटी सुरभि प्रातःकाल की क्षुधा को कुरेद रही है।

नवाब साहब के नसीब में तो सुबह का नाश्ता आसमान का फूल है। अगर मध्याह्न के क़बल कुछ खा लेते, तो फिर दिन के खाने से हाथ धोना पड़ता। बस, आप हसरत-भरी

निगाह से घी मे तले हुए अंडो के गुलज़ार को देखकर ही हिर्स मिटा लेते ह ।

आपका सुबह का नाश्ता तो महज़ आँवले का मुरब्बा और बनफ़शे की चाय है। ऐसे कभी दख्ल मे आया, तो एक-आध चम्मच ख़मीरे-मरवारीद या बकरी के दूध के साथ सेनाटोजन खा लिया। छठे-छमासे शरबत-उन्नाब या नीलोफर।

आप अर्क-पुदीना और शोधी हुई छोटी हर्रे का एक डिब्बा ज़रूर साथ रखते, चूँकि मन्दाग्नि के निरन्तर आक्रमण की वजह इन दोनो मुदब्बिरो का आपके उदर-दरबार मे विशेष समादर है।

नवाब साहब ने मुड़कर देखा, तो ठीक आपकी खिड़की के नीचे एक मज़दूर कुदाल लेकर कैना की क्यारियों को कोड़ रहा है। कोई बीस बरस का हट्टाकट्टा नौजवान। अभी मर्द्दे भीग रहा हैं। धूप से धूमिल माटयाला रंग। कसदार रान और बाँह। चाड़ी उभरा हुई छाती। ऐठा हुई मांस-पेशियाँ। आप तूस के मफलर मे भा दाँत खटखटा रहे है, पर वह नंग बदन कल्ला कस मस्ता के साथ कुदाल चला रहा है। उसको पेशाना पर पसीने का बूँदे निकल आइ है। आप सतृष्ण नेत्रों स उस स्वस्थ सुन्दर शरार क संचालन का देखते रहे।

अचानक आपकी आँख अपना कमल-हारे का अँगूठी पर पड़ी। यह अँगूठो आपके खानदान मे एक बशकामत तबर्रुक

है। पर, आज आपकी निगाह मे उस छोकरे की गठीली भुजा की एक तनी हुई पेशी ऐसे हज़ार हीरों से भी कहीं क़ीमती हो रही है।

किसी की क़ीमत बढ़ती है माँग पर। आपको जिस चीज़ की माँग है, वह—उस छोकरे की आँखों में पानी का मोल जो हो—आपकी निगाह मे तो कोहेनूर का मोल रखता है।

"क्यों बे छोकरे! तुझे कितनी मजदूरी मिलती है?"—आपने ज़रा झुँझलाकर पूछा।

मजदूर ने आवाज़ सुनी, तो कुदाल टेककर खड़ा हो गया। दाहने हाथ की उँगलियों से पसीने को झाड़ा और बड़ी आजिज़ी से कहा—"यही चार आने रोज़ कमा लेता हूँ, सरकार!"

"बस?"

"जो मालिक!"

"कैसे चला लेता है काम?"

"भगवान् चलाते हैं, मालिक! दिन को सत्तू, रात को बाजरे की रोटी और नमक·····वह भी·····"

"और नाश्ता?"

"जलखावा कहाँ नसीब में मालिक! यहाँ एक जून भी पेट नहीं भरता!"

"क्यों, चार आने मे तो दोनों वक्त दाल-रोटी मजे मे चलनी चाहिए!"

"दाल तो कहीं मरनी-जीनी में मिलती है मालिक ! घर में दाल नही पकती।"

"क्यो, तूने दाल नही खाई है ?"

"खाई काहे नहीं है मालिक ! पार साल जब काका के बेटे की मँगनी थी, तो दाल चखी थी।"

"ताज्जुब है ! चार आने मे तो··· "

"हाँ सरकार, अकेला दम रहता, तब तो ! यहाँ घर में बुढ़िया है, छोटा भाई है, छोटी बहिन है।"

"तो अभी तक क्या तेरी शादी नहीं हुई ?"

"··· जी नही।"

"क्यो ? तू साँड़ बना फिरता है और आज तक बहू नहीं मिली ?"

"मिले कैसे मालिक ! पैसे कहाँ हैं ?"

"ओ ! यह बात है ! माँ और बहन कुछ कमाती नहीं ?"

"कमाती क्यो नही ? माँ मुहल्ले मे कूटती-पीसती है। घर मे एक भैंस है। बहिन सानी-पानी करती है, घास लाती है।"

"तो तू दूध नही पीता ?"

"एक-आध चुल्लू मट्ठा मिल जाता है। दूध का तो घी बनता है। इसीसे तो पेट चलता है। फिर, बहिन भी सयानी हो चली है।"

"तू सेर-भर बाजरा एक वक्त पचा डालेगा ?"

"पचाने को तो पत्थर भी पचा डालूँ मालिक! बाजरे मे कौन दम है?"

"सच! ऐसी ज़बरदस्त तेरी भूख है—इस ज़न्नाटे की? और दुनिया तुझे दुखिया समझती है, मुझे इकबालमन्द! मुझ गरीब का तो इस भूख के लाले पड़े हैं! अगर तू मुझे अपनी भूख का एक हिस्सा भी दे दे, तो तुझे रियासत का एक तालुका लिख दूँ!"

बिचारा मज़दूर आँखे फाड-फाड़कर आपका मुँह ताकने लगा। भला, वह आपकी ममेव्यथा को कहाँ तक समझ पाता!

"क्या देखता है—मेरे कान के हीरे के टाप को?"—आपने फिर कहा—"अबे उल्लू! खुदावन्द करीम ने तुझे जो रहमत बख्शी है, उसे मेरी तमाम दौलत भी खरीद न सकेगी।"

तबतक चिल्लाते हुए दो खुंचेवालो की हाँक कान पर पडी—"चटपटे दही-बड़े····ताज़ी जलेबियाँ!"

"तूने कभी जलेबियाँ खाई हैं?"

"नहीं सरकार, मैंने कहाँ खाई? बचपन में खाई होगी याद नहीं!"

"और दही-बड़े?"

"ऊँ-हुँक!"—छोकरे ने सर हिला दिया।

"दौड़ जा, पुकार तो ला दोनो खुंचेवालो को!"

छोकरा हिरन हो गया। एक कुलाँच मे कैना की क्यारियो को तड़पकर तीर की तरह निकल गया।

खुंचेवालो ने आपको झुककर आदाब बजाया, और खुंचो को ज़मीन पर रखकर खड़े हो गये। आपने उँगली नचाई, तो तश्त पर के मैले कपडे सरका दिये। एक मे सूजी का हलवा और रस-भरी जलेबियाँ, दूसरे मे चटपटी मसालेदार चीजे—कचालू, दही-बड़े, फुलौरियाँ। आपकी नाक मे गन्ध पड़ी, और छोकरे के मुँह मे पानी भर आया।

आपने छोकरे की तरफ देखा, और ज़रा मुस्कुराकर बोले —"दोनो खुंचो को साफ कर डालेगा? दो रुपये इनाम दूँगा!"

खुंचेवालों ने आँखें फाड़कर पहले आपको देखा, फिर नौजवान को और अपने खुंचो को। फिर दोनो ने एक दूसरे को देखा और मुस्कुरा दिया।

मज़दूर को तो जैसे मुँहमाँगी मुराद मिली। वह हसरत-भरी निगाह से तश्तो के तर माल को देखने लगा।

खुंचेवालों ने देखा, किसी रईस की दिल्लगी ही सही, उनका माल तो बिका जाता है! गली-गली खाक छानने से तो नजात होगी! चटपटेवाला कुछ चटपटी तबीयत भी रखता था। आँखें नचाकर खुंचे की तरफ़ इशारा किया और नौजवान से बोला—"बस, पिल पड़ो पट्ठे! तेरे भाग खुल गये। आधे के क़रीब तो बिक चुके हैं, अब बचा ही क्या है? तीन-चार

सेर की बिसात क्या ? मैं तो तेरी उम्र में इससे दुगना पचा डालता।"

बिचारा मजदूर पहले तो छन-भर शर्म से सहमा रहा, फिर डट गया। केले का पत्ता लिया और कैना की क्यारी में पलथी मार दी। काम जारी किया। दो लपेट मे हलवा सुड़क गया। एक ओर से जलेबियाँ और दूसरी ओर से चटपटी फुलौरियाँ और बड़ियाँ बरसने लगी। कभी जलेबियों की कुरकुर और कभी बडियों को भुसभुस। मीठे पर नमकीन और नमकीन पर मीठा। यही सिलसिला चला। मुँह क्या है, मशीन है ! बड़ियाँ और जलेबियाँ होठो तक जाकर गुम हो जातीं।

नवाब साहब की आत्मा उचककर आँखो मे आ गई, टकटकी बँध गई, जैसे घबरा-से गये—माशल्लाह ! आदमी है या घनचक्कर ! पेट भी नही फटता !

एक क्षण आपकी आँखो से ईर्ष्या की चिनगारियाँ छूट पड़ी। खाते-खाते वह यहीं लोट जाता, तो कलेजा ठंढा होता ! आपने न जाने कितनी दावतें दीं। दोस्तों ने पुलाव और कलिया, कबाब और कोरमा सराह-सराहकर खाये; मगर आज तक न इस शिद्दत की भूख देखी, न इस जन्नाटे का कचरकूट !

आपने एक लम्बी साँस ली और मन-ही-मन कहा—"या अल्लाह ! तूने मुझे मजदूर क्यों नही बनाया ! दौलत न देता,

न सही। दाने-दाने को तरसता, यह कुबूल था। कुदाल चलाकर खाता, चोरी करके खाता, जेल जाकर खाता—खाता तो! तूने इस भूखे कंगाल को जिस भूख का खज़ाना—जिस सेहत की दौलत—अता की है, उसके सामने मेरे हीरे और मोती की क्या वक़त है? वह पैसे का कंगाल है, मै भूख का, वह सेहत से मालामाल है, मैं दौलत से। अब तू ही बता, इस दुनिया में कौन-सी बडी नेमत है—सेहत या दौलत? कौन खुशकिस्मत है—कंगाल या नवाब? वह सेहत के जरिये दौलत पैदा कर सकता है, मगर मै दौलत के जरिये सेहत नहीं पा सकता! और, दुनिया खुशबख्त को कम्बख्त पुकारती है और कम्बख्त को खुशबख्त! चूँकि अमीर रोल्स-रायस-कार पर हवाखोरी करता है—उसके घर में अशर्फियो का बघार दिया मुश्की ज़ाफ़रानी पुलाव पकता है; और गरीब कॉट-कूस मे पॉव-पयादे चलता है—उसे पेट-भर भूना चना भी मुश्किल से मिलता है।"

खुंचेवालो के तश्त साफ हो गये! उन्होने पैसे लिये, आपकी सलामती की दुआ की, और चलते हुए।

अमीरो की खत्त या नवाबी मौज समझकर जो दो-चार वेटर आपस मे गुपचुप ठठोलियॉ कर रहे थे, वे भी खेल खत्म होते ही नौ-दो ग्यारह हुए।

आप बड़े हैरत में थे—इस छोकरे ने चार-पॉच सेर मीठी

और नमकीन चीज़े साफ कर डालीं और चेहरे पर शिकन तक नहीं ! न दम घुटा, न पेट फटा !

फिर, आपने दो रुपये मज़दूर के सामने फेंक दिये। उसने झुककर उठा लिया और टूटी-फूटी ज़बान मे आपकी लक्ष्मी की बुलन्दी की शुभ कामना प्रकट की। आप कुछ कुढ़-से गये।

नवाबो का कुढना भी रहस्य से खाली नहीं !

"कम्बख्त ! तेरे मुँह से दुआ भी निकली तो वही, जो मेरे काम की नही ! तुझे देना ही था, तो अपने खजाने से कुछ देता कि कम-से-कम एक वक्त का पुलाव और खुश्का तो जी खोल कर खाता ! कोई है ?"

"जहाँपनाह !"—दो हुदेबरदार हाज़िर हो गये।

आप होटल मे भी कयाम लेते, तो अपने ठाट-बाट मे कमी नही रखते !

"इस बेहूदे को दो तमाचे तो रसीद करो। क्या अनाप-शनाप बकता है !"

प्यादा मज़दूर की ओर लपका। वह बिचारा हक्का-बक्का होकर आपका मुँह ताकने लगा—क्या खता हुई ?

पर उसपर चपत पड़ने के पहले आपको एकाएक दया आ गई। इशारे से मना कर दिया—"जाने दो, उसे तो सेहत और भूख अज़ाब हो रहे हैं। यह कुदरत का खज़ाना—यह नेमतों की नेमत—उसकी निगाह मे नाचीज़ है। वह समझ

पाता कि मैं इसीका भूखा हूँ, तो दोनो हाथो से उलीच देता।"

आप एकाएक खिलखिलाकर हँस पडे और खिडकी की जानिब से खिसककर कमरे मे आ गये।

आज सुबह से ही आपके चेहरे पर प्रसन्नता की लहर है। अन्दरूनी जो बात हो, जाहिर तो आपके जवाँमर्द 'जॉनी' के—निमोनिया के पंजे से छूटकर—सही-सलामत लौट आने की खुशियाँ हैं।

बडे तडके ही वह अस्पताल से मोटर पर आया। बीमारी तो जाती रही; पर कमजोरी अभी बहुत-कुछ है। आपने गोद मे उठाकर मुँह चूमा, बलाएँ ली; निछावरें गुजरीं। होटल के गरीब वेटरो के—आज शाम के नशे-पानी के लिए—पाकिट गर्म हुए। मुलाजिमो ने मुबारक-बादियो की झडी बाँधी। नूरे-चश्म जॉनी की उम्र दराज हो—यही हर-एक लब पर दुआ है।

नवाबो का शौक भी तो नवाबों का शौक़ है! जिस रंग पर आये, भरपूर आये। हिन्दुस्तान के अमीरो ने यूरपवालो से जिस-जिस शोक की तालीम ली, उसके अनुशीलन मे उनसे भी नम्बर मार ले गये! गुरु गुड हो रहे, चेले चीना हो गये अँगरेजो को बिला नागा—रोज शाम की खेल-कूद की कसरत के बाद—दो-एक पेग जामे-फरहत पी लेना जरूरी है; मगर यहाँ रईसो ने जब विलायती तौर-तरीक़ो को अपनाया, तब कसरतवाले मद को तो ताक़ पर रख पेगवाले मजमून को बिला

तअम्मुल दिन-दहाड़े शुरू किया और आधी रात तक मोत-वातिर जारी रखा।

यूरपवाले अमूमन रात मे, डिनर के बाद घंटे-दो-घंटे, ब्रिज खेलना सेहत और दिलचस्पी के लिए ज़रूरी समझते हैं। वही ब्रिज जब यहाँ आया, तब अमीर-उमरा इस तरह पंजा झाड़कर पीछे पड़े कि सारी खुदाई टापती खड़ी रहे, पर ब्रिज की जुदाई मंजूर नही!

आज अँगरेज़ी डान्स के शौक़ ने भी किस हद तक यहाँ विलायती वज़े के हिमायतियों के दिल मे घर कर रखा है इसका नज़ारा देखना हो, तो हिमाचल की चन्द चुहचुहाती चोटियों की सैर करने से कुछ अन्दाज़ मिल सकता है।

नवाब साहब का भी विजातीय श्वान-परिवार से प्यार उसी विलायती वज़ेदारी का एक छींटा है। फ़र्क सिर्फ इतना ही है कि समुद्र के उस पार से आये विविध राग-रंगो मे यह रंग आप पर कुछ विशेष खुला है। और, जब आप इस रंग मे आ गये, तो फिर कुछ इस क़दर रंग गये कि श्वान शास्त्र की गरिमा की बारीकियों मे आप यूरोपीय विशारदो को भी सबक़ दे सकते हैं।

आप विलायत से 'Dog World' पत्र तो मँगाते ही, इसके सिवा श्वान-संसार की और कितनी ही पत्रिकाएँ आपके यहाँ बराबर आती। और, जिस चाव से आप इन्हे देखते, उस चाव से अपनी कौंसिलकी कार्यवाही भी नही पढ़ते।

कुछ दिनों तक आपका विचार कुत्तों का एक जिमख़ाना खोलने का था, पर केनेल-कलाविदों की काफी हमदर्दी न मिलने से वह साधु प्रयत्न ख़त-किताबत के स्टेज पर आकर टें बोल गया।

जॉनी को आपने आँखों में पाल रखा है। वह बहादुरों में बहादुर, शेर से भी पंजा लेने को कमर बाँधे तैयार रहता है। उसने ख़ानदान में पुश्तैनी सिपहगरी चली आई। उसके वालदैन भी नवाब साहब के नमकख़्वार रहे। वालिद-माजिद को कजा किये तो जमाना हुआ, पर वालदा बिचारी —दो साल हुए—इस लीला-भूमि से उठ गई।

जब इलाके में दौरे पर आपके नूरेचश्म जॉनी की रश्क-रंगिनी जननी देवी की अकस्मात् मृत्यु हो गई, तो आप खुद ताबूत के साथ उसके समाधिस्थल तक नौहा करते पाँव-पयादे गये थे। इतना ही नहीं, उस वीरप्रसविनी सती की अन्तिम-शयन-भूमि पर आपने एक संगमरमर का छोटा-सा मकबरा बनवा दिया, जहाँ आज भी मिहराब के सिरे पर सोने के हर्फ में खुदे हुए इस शेर को पढ़कर मुसाफिरों की आँखें तर हो आती हैं—

"ऐ राह चलनेवालो, मुड़कर इधर भी देखो,
आकर मुसाफ़िरत में यह गत मेरी हुई है!"

आज भी जब आप रियायों की फरियाद पर या शिकार की चाट पर उधर निकल जाते हैं, तब यह ज़रूरी है कि आप

जॉनी के साथ उसके बुजुर्ग के मजार पर एक घी का चिराग और दो फूल अपने हाथों से रखे बगैर वापस नहीं आते।

आप जॉनी को गोद में बिठाकर गरम-गरम टोस्ट और दूध खिला रहे थे कि मिस्टर अहमद तुलबुल तोड़ हिलाते कमरे में दाखिल हुए। मगर आप लख्ते-जिगर जॉनी से सुख-दुख की बातें करने में कुछ ऐसे मसरूफ थे कि किसी के मोरक्को-बूट की आहट जरा भी न मिली। जब बरमा-सिगार की तीव्र गन्ध आपके नासिका-रन्ध्र में जगह ढूँढने लगी, तब आपने नजर उठाकर मिस्टर अहमद को देखा।

"अख्वाह! आप हैं! आपने तो खुशखबरी सुनी होगी! मेरा नूरे-चश्म जॉनी बिलकुल चंगा हो गया!"

मिस्टर अहमद ने समझा कि नवाब साहब के घर से किसी नूरे-चश्म के सेहत पाने का तार आया होगा। उन्होंने तो कुछ सुना न था, चूँकि क्वार्टर से सीधे नवाब साहब के दरबार में चले आये। पर, वे बात की ही रोटी खाते—मौके पर कब चूकते! उन्होंने 'खुदा का शुक्र है' कहा ही था कि नवाब साहब ने खुद ही राज खोल दिया 'गोद भरी रहे!" तक जाने की हाजत न पड़ी!

नवाब साहब बोल उठे "अभी-अभी अस्पताल से आया है। पूरी सेहत भी नहीं हुई। सच कहता हूँ, मैनेजर साहब, जबसे बिचारा जॉनी निमोनिया में मुबतला हुआ, दुनिया की

तमाम चीज़ों से मेरी दिलचस्पी जाती रही थी। आज दम में दम पड़ा।"

इस कलाम को सुनकर मिस्टर अहमद को कुछ हँसी आ गई। वे तो नवाब साहब की परीशानी और दिलचस्पी के तमाशे इधर कई दिनों से बराबर देख रहे थे। मगर, चूँकि नवाबों की बात है, लिहाज़ा अपनी मुँह-आई मुस्कान को कसकर होंठों पर दबा रखा, और वह हास की क्षीण स्पन्दन-रेखा उनके चेहरे के सघन लोम-निकुंज की छाया में सुप्त हो गई।

"हाँ हुज़ूर, आपकी तरद्दुद देखकर तो मेरी आँखों से लहू टपक पड़ता था। ख़ैर, अल्लाह का करम ·"

"मैनेजर साहब, यह कुत्ता नहीं, फ़िरिश्ता है। हैवान है सही; मगर इसकी समझ किसी इन्सान से कम नहीं। इसकी नमक-हलाली और शेर-दिली के क़िस्से बयान करूँ, तो एक छोटी-मोटी तवारीख बन जाय! और, सौ बात की एक बात, यह ऊँचे ख़ानदान-शरीफ़ की नस्ल है, वरना ऐसी रियासत की बू कहाँ मिलती है! हिन्दुस्तान ऐसी मनहूस—ऐसी बदशौक—जगह है कि यहाँ कुत्तों का कोई ख़ास परचा नहीं और विलायत लिख-लिखकर भेजने से, आप ही समझें, कोई फ़ायदा नहीं।"

"सच है, हुज़ूर! हिन्दुस्तान-ऐसी गई-गुज़री जगह इस आसमान के नीचे और कहाँ होगी!"

दो मिनट तक दोनों चुप रहे। मिस्टर अहमद ने जब देखा कि नवाब साहब तो खुलते नहीं—जब्त किये बैठे हैं और इधर-उधर की बातें छेड़ रहे हैं, तब खुद ही ऐन मुद्दआ पर आये—"रात भी मैं हुजूर की खिदमत में हाज़िर हुआ था, मगर जब मुलाकात न हो सकी, तब एक रुक्क़ा · · ·"

"वल्लाह! मैं भी कहाँ भटक रहा था!"—नवाब साहब कुर्सी से फ़ौरन् उठ खड़े हुए, और मिस्टर अहमद के दोनों हाथों को थामकर ज़ोरों से झोरना शुरू किया, और बोले—"नोट तो निकालिये!"

मिस्टर अहमद ने पाकिट से नोट का बंडल निकालकर मेज़ पर रख दिया। नवाब साहब ने हाथ से उठाकर देखा, वे ही नोट हैं—ताजे और चुरचुरे!

"वाह! कमाल किया आपने! मुझे तो दहशत थी कि कहीं वह वापस न कर दे!"

"कहाँ का वापस करना, हुजूर! यह भी कोई बात है? उसके नक़शे-क़दम की शोखी उसकी रंगीन तबीयत की रवानी का पता देती है!"

"जो हो, आपका तकाज़ा बड़े वक्त पर पहुँचा; उसे हैस-वैस का मौक़ा ही नहीं दिया! देखिये, यह बात किसी पर ज़ाहिर न हो!"

"हुजूर, खुदा मियाँ पर तो ज़ाहिर ही नहीं हो सकती,

आदमी का कौन सवाल ! यह तो महज़ अदना-सी बात है। बड़े-बड़े मुल्की राज़ को पेट में डाल दूँ, तो ख्वाब मे भी किसी को पता न चले। आख़िर, लम्बी तोंद का भी तो कोई नफ़ा हो !"

"मैं मान गया। आप हर फन के मौला हैं। कोई है ?"

"बन्दानेवाज़"—ख़ास ख़ानसामा दस्तबस्ता हाज़िर हुआ।

"मैनेजर साहब के लिए मुश्की मवल्लहम का एक जाम तो लाओ।"

"इस वक्त, हुजूर· ·"—मिस्टर अहमद ने हाथ जोड़कर कहा।

"वाह ! इसके लिए भी कोई वक्त की क़ैद है ! और, ख़ासकर आप कब पाबन्द "

"मगर, हुजूर ! शरबती मवल्लहम से तो इस खूसट खाल का एक रोआँ भी नहीं सिहरता। यहाँ तो वह चाहिये, जो बिजली-सी कलेजे पर टूटकर पड़े।"

"सच ! तो फिर शैम्पेन या मोजेल !"

"जी नहीं। मेरा तो बस एक कुँवर-कन्हैया है···"

"वह कौन ?"

"जानीवाकर !"

"वल्लाह ! गुलबदन कॉकटेल से भी इनकार है ?"

"इनकार तो किसी से नहीं; मगर दिलदार एक है !"

"खूब ! आपकी यह तमन्ना—यह अदा—भी निराली है !"

"वफा की बू है, हुजूर !"

"और क्या ?"—नवाब साहब हंस पड़े।

"हुजूर ! दिल के आगे तो दलील नहीं चलती ! शैम्पेन या शीराज़ी का क्या ज़िक्र, अगर जामे-कौसर भी मिले तो बन्दा की नीयत नहीं फिरती।"

"समझ गया। आप जानीवाकर पर दिल हारे बैठे हैं। ग़ैर से आशनाई "

"नामुमकिन, हुजूर ! यह बचपन की लगन है; पीरी तक चली आई !"

"भरसक आप बार की चौखट पर सुबह से आधी रात तक डटे रहते हैं।'

"क्यों न रहूँ, हुजूर ! 'मक्का है यही, मेरा मदीना है यही' !" –मिस्टर अहमद ने बड़े तपाक से कहा।

हँसते-हँसते नवाब साहब के पेट मे बल आ गया।

इसी तरह मिस्टर अहमद बात-बात मे बात बनाते और बडों की नाक के बाल बने रहते। दिलचस्प बातें बनाना कोई उनसे सीखता। भरसक शौक़ीन अमीर दुनिया की झंझटों से हाथ झाड़कर आपके होटल मे महीनो नशेमन बनाते !

"हुजूर, मैं पीऊँ-पिलाऊँ नहीं, तो आख़िर मेरा गुज़र क्योंकर हो ! होटल के कारबार मे तो दो पैसे की जो कुछ गुंजाइश है, वह शराब ही की खपत से मुमकिन है; वरना दिन-दहाड़े

दिवाला बोल जाय। हुजूर से तो कोई परदा नहीं, ख़ादिमों का ख़ादिम हूँ। यह सुबह से ही जानीवाकर का सिलसिला मेरी दूकान का इश्तहार है। आख़िर ख़रबूज़े को देख ख़रबूजा रंग पकड़ता है, हुजूर !"

"मगर, मीरी मे यादे-ओकबा भी तो थोड़ी-बहुत "

"ज़रूर, हुजूर ! वही तो पतवार है। मजाल है कि एक वक्त भी नमाज क़ज़ा हो ! मैं मयख़्वार तो ज़रूर हूँ, मगर नशाख़्वार नहीं। अगर एक लहमे के लिए भी ज़बान लटपटाए, तो हुजूर सर क़लम करा दे। यह भी कोई बात है ? हुजूर ! इजाज़त हो, तो एक मौजूँ क़िस्सा बयान करूँ !"

"हाँ-हाँ, फ़रमाइये !"

"बन्दापरवर ! एक दफा शाहंशाह अकबर बादशाह जंगल में शिकार खेलते-खेलते कहीं दूर निकल गये। घोड़ा नया था—बुर्राक ; हिरन के पीछे हिरन हो गया। साथी सब छूट गये। आप रास्ते से भटक पड़े। वह अम्प-ताज़ी हिरन का कान तराशता हुआ कोसों दूर निकल गया।

"शाम हो चली। भूख और प्यास से जान होठों पर आ गई। आख़िर सामने पहाड की चोटी पर एक रोशनी-सी नज़र आई। आपने घोड़े को ऐड लगाई और पलक मारते चोटी पर आ पहुँचे। वहाँ देखा, तो एक आलीशान मकान है, सामने एक चमन का अंजुमन। मालिक-मकान ने आपको पहचान लिया और फ़ौरन् क़दमबोसी को झुक गया।

फिर, उसने घोड़ा थाम लिया। आपको गंगा-जमनी तामजान पर बिठाकर अन्दर ले गया।

"आपने कपड़े उतार डाले। केवड़े और गुलाब से हाथ-मुँह धोया। मेज़बान ने शीराज़ी का एक लबरेज़ प्याला तश्त पर रखकर आपके रू-ब-रू पेश किया।

आपने पूछा – 'म्याँ, क्या लाये हो ?'

"मेज़बान ने झुककर अर्ज किया—'आलीजाह, यह दफ़्रयेहरारत है। इसे पीने से थकावट जाती रहेगी।'

"आपने प्याले को उठाकर एक साँस में साफ़ कर दिया। थकान जाती रही। फिर आप उठकर गुलाब और जूही की क्यारियों मे बैठ गये।

"आध घंटे बाद जब दूसरा प्याला खुशरंग शीराज़ी का सामने आया, तब आपने फिर दरियाफ़्त किया—'क्या लाये हो, किबला ?'

"मेज़बान ने बडी आज़िज़ी के साथ जवाब दिया—'जहाँपनाह ! यह जामे-फ़रहत है, इसके पीने से दिल में मसर्रत और नस-नस मे फ़रहत दौड़ जायगी।'

"आपने उस प्याले को भी उलट दिया। तबीयत में फ़सले-बहार की लपट आने लगी। कुदरत के एक-एक ज़र्रे पर फ़िज़ाँ नज़र आई।

"आध घंटे बाद फिर वही शीराज़ी का तीसरा प्याला आया। आपने फिर पूछा— 'क्या लाये हो, हज़रत ?'

"मेज़बान ने इस बार बतलाया—'खुदावन्द, यह शराब है। इसे पीने से नशा होता है।'

"यह सुनते ही बादशाह सलामत ने नाक सिकोड़ ली, प्याले को ज़मीन पर दे पटका, और झुँझलाए-से बोले—'तौबा-तौबा! शराब हराम है, हराम!!"

"तो, हुजूर, मेरा भी कुछ यही उसूल है। पीता हूँ, सही; मगर कभी तीसरे प्याले की खौफनाक मंज़िल तक भूलकर भी नहीं जाता। शराब पीकर ग़न हो जाना मैंने आज तक नहीं जाना। सुरूर की एक हल्की सुरसुरी शुरू हुई और उसी मीठी आँच पर बराबर चलती रही—न कम, न ज्यादा। तबीयत भी सही, दिमाग भी दुरुस्त। और, सुबह से शाम तक जाम का दौर जारी रहे, तो कोई मुज़ायका नहीं। हुजूर! अव्वल तो मैं कच्चे घड़े का कभी पीता नहीं। दूसरे, जानीवाकर से मुझे इतमीनान है। उसके एक-एक क़तरे का अन्दाज़ है।"

"खैर, यही सही। कोई है? मैनेजर साहब के लिए एक जाम ह्विस्की तो लाना!"

"म्याँ, एक छोटा पेग लाना। अभी सुबह का वक्त है!"—मिस्टर अहमद ने हँसते-हँसते बेटर से कहा।

बेटर भीतर दौड़ गया, पलक मारते सोडा और ह्विस्की हाज़िर किया। मिस्टर अहमद ने गिलास में आधा पेग ढाला और सोडा-पानी से भर दिया।

"हुजूर, तो मैं इन नोटों को शामलाल के पास भिजवा दूँ ? देर होने से "

"ज़रूर, काम तो अंजाम हो गया ही !"

मिस्टर अहमद ने मेज़ पर से नोट का बंडल उठाकर वेटर के हवाले किया और ताकीद कर दी—"जाओ, यह बिल और नोट शामलाल को दे देना—समझे ?"

"क्यों, मैनेजर साहब, अब तो वह जाल में फँस गई ! एक झटके मे किनारे पर खींच लेना है !"

"हुजूर, उसके दिमाग का पारा एकबारगी सातवें तबक़ पर रहता है। अभी तो वह महज़ दो-एक डिगरी उतरा है। लिहाज़ा, नज़र-नेयाज़ का सिलसिला जारी रखना है, ताकि पारा नॉमल मे आ जाय ! हुजूर, क़सूर माफ हो, यह इश्कबाज़ी है—कुछ गुड्डे का खेल नहीं। यह भी कोई बात है ! जल्दबाज़ी " "

"तो फिर ?"

"हुजूर, उस सोने-चाँदी के हिंडोले मे झुलाते रहे। वह आप लिपट पड़ेगी।"

"तो आखिर अब करना क्या होगा ?"—नवाब साहब ने ज़रा उतावला होकर पूछा।

"पहले तो, हुजूर, सलीम को टरका देना ज़रूरी है। बस, उसे परवाना देने का हुक्म हो जाय, मैं दो-चार दिनो में चलता करूँ। वह बिचारा ख़ुद आजिज़ है; अपनी भूल पर

बादिम भी है। बाक़ई, अगर वह रियासत का काम सीख लेगा, तो मज़े से अंजाम देगा। आख़िर उसे धक्के देकर निकाल देना तो बड़ी बे-मुरव्वती होगी।"

"मैं आज ही हुक्म दिये देता हूँ। आप जब चाहें, सेक्रेटरी से हुक्मनामा लिखा लें। आख़िर वही बहादुर तो आसमान से बिजली उतार लाया; वरना मुझे जन्नत की परी कहाँ मयस्सर होती! उसका अहसान तो मेरे सर-आँखों पर है।"

"हुजूर की खुशनीयती फूलकर फलेगी। हाँ, हुजूर, अब बिजली को एक तपाक का शैम्पेन-डिनर दे देना ज़रूरी है।"

मिस्टर अहमद के तिब में तो तमाम मर्ज़ों की दवा शैम्पेन की बोतल या होटल का डिनर ठहरा! जहाँ मौक़ा मिला, इसे पेश किया।

"दुरुस्त! बतलाइये, किस दिन?"

"यही, अगले सनीचर को। आज ही नवेद लिखकर भेज दिया जाय··· कुछ फूल-पत्ते के साथ। यह नुस्ख़ा ज़रूर पुर-असर होगा!"

"ठहरिये, मैं अभी लिखे देता हूँ।"

आपने ख़ानसामे को बुलाकर हुक्म दिया कि मार्शल नील गुलाब का एक बड़ा-सा गुलदस्ता तैयार कर रेशमी रिबन से बाँध फ़ौरन से पेश्तर हाज़िर किया जाय।

नवाबी हुक्म! गुलदस्ता चटपट तैयार हो गया। आपने

सेक्रेटरी को बुला भेजा और एक क़ीमती पिन या ब्रूच की फ़रमाइश की।

ख़त लिखने का ख़ास कागज आया—खुशबूदार खुशनुमा काराज, आसमानी रंग, सिरे पर शेर के कंधे पर दाँत गड़ाये सुनहले शिकारी कुत्ते की तसवीर। वैसा ही चुलबुला लिफ़ाफ़ा।

आपने अँगरेज़ी मे नवेद लिखा और लिफाफे में बन्द कर गुलदस्ते मे डाल दिया। मोटर पर ब्रूच भी आ गया। तलवार की शक्ल। मूठ पर हीरे की चुन्नियाँ जडी हैं। बीच-बीच मे नीलम।

आपने झट ब्रूच देकर गुलाबी रिबन के छोर को गुलाब की टहनियों मे अटका दिया, और उस खूबसूरत गुलदस्ते को मिस्टर अहमद के हवाले करते-करते बोले—"लीजिये, तोहफा हाज़िर है। अब अगर वह सोने की चिडिया मोती चुगकर उड गई, तो साहब, ज़िम्मेवारी आपकी!"

"हुजूर, यह भी कोई बात है! वह चरती-चुगती आप चली आती है! मगर, हाँ, पिजड़ा हो गंगा-जमनी और तीलियाँ हो मोती-पिरोई!"

जब वह फूलो का तोहफा दस मिनट बाद बिजली के हाथ मे आया, वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। देखना है, बिजली, यह सोने की चिड़िया हाथ से उड़ न जाय!

बादिम भी है। बाक़ई, अगर वह रियासत का काम सीख लेगा, तो मज़े से अंजाम देगा। आख़िर उसे धक्के देकर निकाल देना तो बड़ी बे-मुरव्वती होगी।"

"मैं आज ही हुक्म दिये देता हूँ। आप जब चाहें, सेक्रेटरी से हुक्मनामा लिखा लें। आख़िर वही बहादुर तो आसमान से बिजली उतार लाया; वरना मुझे जन्नत की परी कहाँ मयस्सर होती! उसका अहसान तो मेरे सर-आँखो पर है।"

"हुजूर की खुशनीयती फूलकर फलेगी। हाँ, हुजूर, अब बिजली को एक तपाक का शैम्पेन-डिनर दे देना ज़रूरी है।"

मिस्टर अहमद के तिब मे तो तमाम मर्ज़ों की दवा शैम्पेन की बोतल या होटल का डिनर ठहरा! जहाँ मौक़ा मिला, इसे पेश किया।

"दुरुस्त! बतलाइये, किस दिन?"

"यही, अगले सनीचर को। आज ही नवेद लिखकर भेज दिया जाय··· कुछ फूल-पत्ते के साथ। यह नुस्ख़ा ज़रूर पुर-असर होगा!"

"ठहरिये, मैं अभी लिखे देता हूँ।"

आपने ख़ानसामे को बुलाकर हुक्म दिया कि मार्शल नील गुलाब का एक बड़ा-सा गुलदस्ता तैयार कर रेशमी रिबन से बाँध फ़ौरन से पेश्तर हाज़िर किया जाय।

नवाबी हुक्म! गुलदस्ता चटपट तैयार हो गया। आपने

सेक्रेटरी को बुला भेजा और एक क़ीमती पिन या ब्रूच की फ़रमाइश की।

ख़त लिखने का ख़ास कागज आया—खुशबूदार खुशनुमा काराज, आसमानी रंग, सिरे पर शेर के कंधे पर दाँत गडाये सुनहले शिकारी कुत्ते की तसवीर। वैसा ही चुलबुला लिफ़ाफ़ा।

आपने अँगरेज़ी मे नवेद लिखा और लिफाफे में बन्द कर गुलदस्ते मे डाल दिया। मोटर पर ब्रूच भी आ गया। तलवार की शक्ल। मूठ पर हीरे की चुन्नियाँ जडी हैं। बीच-बीच में नीलम।

आपने झट ब्रूच देकर गुलाबी रिबन के छोर को गुलाब की टहनियों मे अटका दिया, और उस खूबसूरत गुलदस्ते को मिस्टर अहमद के हवाले करते-करते बोले—"लीजिये, तोहफ़ा हाज़िर है। अब अगर वह सोने की चिडिया मोती चुगकर उड गई, तो साहब, ज़िम्मेवारी आपकी!"

"हुजूर, यह भी कोई बात है! वह चरती-चुगती आप चली आती है! मगर, हाँ, पिजड़ा हो गंगा-जमनी और तीलियाँ हों मोती-पिरोई!"

जब वह फूलो का तोहफा दस मिनट बाद बिजली के हाथ मे आया, वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। देखना है, बिजली, यह सोने की चिड़िया हाथ से उड़ न जाय!

नवम परिच्छेद

सनीचर की रात है। यों तो होटल की प्रत्येक रात ईद की रात है, पर सनीचर की रात की कुछ और ही बात है। थिएटर की चुहलें हों या कैबरे के मुजरे—यानी, कोई दिलचस्प नई तफ़रीह ज़रूरी है। रोज़मर्रे के पेग और ब्रिज की पार्टी में कोई ताज़गी नहीं रह जाती।

यों तो शाम की गुलाबी किरणों के इस्तक़बाल के लिए ह्विस्की की गुलाबपाशी होटल के दायरे में हर रोज़ ज़रूरी है, पर सनीचर की शाम वहाँ बहार की सवारी आती है और शैम्पेन की सुनहरी दरिया बहती है। जानीवाकर के सिवा कितने सुधाकर उस दिन दिल गुदगुदाते हैं, गला सींचते हैं। बिजली की हज़ारों बत्तियाँ, फूल-पत्तों की रंगीन तैयारियाँ, खाने-पीने की दिलफ़रेब रॅगरलियाँ ज़रूरी हैं। जहाँ चिराग़ जला और जबतक बादे-सबा का झोंका रात की रंगीनी

को उड़ा नहीं ले जाता, तबतक विलायती डांस की लहर-लीला कभी ठंढी नहीं पड़ती। हसीनों की झीनी साड़ी और टाइट जैकेट की चुलबुली दिलजोई, उनके चेहरे पर पाउडर और क्रीम की तिलस्मी धाँधली, उनके विलोल अंचल और चपल चितवन की मस्त कलाबाज़ी, उनकी पपनियों और भवों पर कज्जल की बारीक रंगसाज़ी, उनका रस-भरी ज़बान और मद-भरी मुस्कान की नशीली शीराज़ी, उनकी मॉडर्न तमीज़ और अन्दाज़ की दिलकश फैयाजी, उनके एक-एक अंग से भीनी-भीनी सुरभि की मीठी गुदगुदी, उनकी आबोताब और हावभाव की निराली मस्ती, उनके होठों और गालों पर कमाल की गुलाली गुलकारी, उनके हाथों में गुलाबी कॉकटेल की हल्की प्याली—आज किसे नहीं भाती, किसे नहीं लुभाती!

अब वे दकियानूसी तौर-तरीके के दिन गये। अब मोतियों से भरी माँग है, न अञ्जन से रञ्जित आँख। अब अङ्गों से मोतिया और हिना की लपट है न केसर और सन्दल की उबटन। आज चुस्त चोली है न चुहचुहाती चुंदरी; लहरिया लहँगा है न केसरिया ओढ़नी। फैशन की रविश ने अंगों के राग-रंग पर पश्चिम का रंग भर दिया।

बिजली तो परियों की महफिल में परी-पैकर थी। जब वह बन-ठनकर होटल के लाउञ्ज में इठलाती हुई आई, बिजली की रोशनी भी उसकी रोशनी में गुलाबी पड़ गई। उस विशाल हॉल में ऐसा कौन कलेजे का पोढ़ था, जिसकी आँखों में उस

ज्वलन्त रूप की आरती नही उतारी, और उसकी रस-भरी चितवन का प्रसाद नही पाया !

बिजली के सुडौल अंगो मे बतासफेनी क्रेप की अंगूरी साडी है, और साड़ी के किनारे पर सुनहले रेशमी डोरो से बुनी अंगूरी लता की बेल। फाल्गुनी रसाल-किसलय की हल्की हरीतिमा उसके हरे मख़मल के चुस्त जैकेट पर निछावर है।

नवाब साहब को तो ऐसा मालूम हुआ, मानो मेघ-लोक की बिजली आसमान से सब्ज-परी बनकर उतर आई है। तमाम हॉल मे हर आँखवाले के हृदय पर लहलही हरियाली उभर आई।

बिजली के कश्मीरी सेब की तरह गुल्लाले गालो पर हीरे के झुमको की झूमती मरकत रश्मि आँखो मे कलेजा निकाल लेती। उसकी एक-एक मुस्कान प्रातःकाल के परिमल से लदी शेफालिका हो रही है।

उसने अपनी शोख़ आँखों से महफ़िल को देखा और एक-एक जवान ने कलेजा थाम लिया। उसके चेहरे के पाउडर और पेंट पर यह विजय दर्प की सुनहली आभा एक अलौकिक पालिश बन गई। इसी स्पर्द्धा की रेशमी सुषमा तो उसकी निगाह में नारीत्व के अलंकार की मणि-मञ्जूषा है।

भला सेवा और सतीत्व की गुलामी की शृंखला मे बद्ध हत-श्री घरेलू स्त्री इस विजयोल्लास की दीप्ति को कहाँ तक पा सकती है ! उस बिचारी के सीमन्त पर सिन्दूर-रेखा तो उसके

सर पर उसके अरमानों के खून से भरी तलवार है।

बिजली के दिल की यही दलील है।

नवाब साहब की पार्टी लाउञ्ज के एक सुसज्जित प्रान्त में कुशनदार कुर्सियों पर सजी बैठी है। सभी के हाथों में चेरी-मण्डित कॉकटेल की प्याली है। बिजली भी नवाब साहब की प्याली से प्याली मिलाकर मीठी चुस्कियाँ ले रही है।

एक कोने में बैठा सलीम बिजली की रेशमी शोखियों को देखकर कलेजा थाम लेता और दिल की आग को आग के पानी से ठंढा करने की कोशिश करता। अब उसे एक उदासीनता-सी आ रही है, चूँकि बिजली के मिज़ाज की कज-अदाई का उसे काफी परिचय मिल चुका है।

जो हो, जब बिजली उसकी बिजली न रही—उन रगों का लहू सफ़ेद हो गया, तब उसे क्या पड़ी है कि लहू का घूँट पीता रहे! अब उसका खून उबल-उबलकर ठंढा हो चला है, और उसकी आँखों में लहू की कणा की जगह कुतूहल की रेख झाँक रही है।

उसके दाहने जानिब मिस्टर अहमद हैं और बाईं ओर नवाब साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी मिस्टर नूर। सलीम ने झुककर आहिस्ते से मिस्टर अहमद से पूछा—"मैनेजर साहब! आप कौन हैं?"

"अच्छा! तुम जानते भी नहीं? तुम्हें जान लेना निहायत जरूरी है।"—मिस्टर अहमद ने फुसफुसाकर कहा।

"क्यों ?"

"चूँकि ये ही नवाब साहब के नाक के बाल हैं। और, इनकी दिलजोई तुम्हारा लाजमी फर्ज़ है।"

"सच ! आख़िर आप हैं कौन ?" —सलीम ने कॉकटेल की प्याली को उलटकर पूछा।

"नवाब साहब के सालारजंग !"

"सालारजंग !"

"जी हाँ! आप नवाबी सालों के रिसाले के सालार हैं। आप नवाब साहब की आख़िरी—यानी पाँचवीं—बीवी के चचाज़ाद भाई हैं। इस वक्त दरबार में आप ही की तूती बोलती है। पहली शादी का साला तो मोटरों का दारोगा है और उसका खलेरा भाई कुत्तों का कोतवाल। दूसरी शादी का साला तबेले का अफसर है और उसका सौतेला भाई अटल-खाने का मुहर्रिर। इसी तरह कितने ममेरे-चचेरे भाई-भतीजे किस किस महकमे में मीर-मुनश्वर हैं, मुझे पता नहीं। मगर, सालों की तमाम फौज के इस वक्त आप ही नम्बरी कमांडर हैं। होम-डिपार्टमेंट के मिनिस्टर भी आप ही हैं !"

"समझ गया। ज्यादा तारीफ की जरूरत नहीं।"

पार्टी में अमीन और मिसेज़ सूर के अलावा नवाब के हाँ-में-हाँ मिलानेवाले दो दिली दोस्त भी मौजूद हैं—मिस्टर पाल और मिस्टर बाल। एक बंगाली, दूसरे पंजाबी। दोनों पीनेवाले, खानेवाले और नवाब साहब के तलवों से आँखे

रगड़नेवाले हैं। नवाबो के दरबार मे आँखें सीधी रखनेवालो का गुज़र बड़ी मुश्किल से होता है।

बिजली इस समाज की सम्राज्ञी है। उस हॉल मे चुलबुल हसीनो की तो कुछ कमी न थी, न उनके विलायती सलीक़े की सजावट की। फिर भी क्या वजह है कि तमाम मजलिस की नज़र उसीके चेहरे पर है? शायद यह उसके नाज़-अन्दाज़ की बिजली है, जो सबपर रंग लाती है। उसकी एक-एक चेष्टा मे प्रगल्भता और प्रतिभा का—शोखी और तमीज़ का— कुछ ऐसा विचित्र मेलजोल है, जो उसकी खूबसूरती की किरन मे चार चाँद लगा देता और बरबस दिलवालो का दिल खींच लेता है।

वह जानती थी कि चेहरे की चमक बेकार है, अगर चितवन मे प्रतिभा की चमक नहीं। जबतक खूबसूरती के साथ-साथ हया-भरी शोखी की माधुरी न हो—इस मीठी चाशनी के साथ-साथ मिज़ाज की नमकपाशी न हो तबतक मदहज़ हुस्न और शबाब कूवते-कशिश की रस्सा-कशी मे बाज़ी नहीं ले सकते।

उसकी एक-एक हरकत पर उसके प्रदीप्त प्राणो की लपट है, एक-एक अंग पर हाव-भाव का पुलक।

वह एक क्षण कहीं स्थिर नहीं रहती, तितली-सी उड़ती फिरती है। कभी मुस्कान से विद्रम बरसाती, कभी भवे तानकर बिजली गिराती, कभी इठलाती-बलखाती कॉकटेल की प्याली

को होठों से लगाकर चुस्कियाँ लेते-लेते कनखियों से अमीन को इशारे देती—गोरी मिसों की कल्पित मुहब्बत पर चुटकुले छोड़ती, कभी नवाब साहब के कंधे-से-कंधा मिलाकर उनके रोम-रोम में रोमाञ्च का सञ्चार उठाती हुई सरककर टामी को गोद में उठा लेती—उसके सर पर हौले-हौले थपकियाँ देती, कभी मिस्टर बाल और मिस्टर पाल के बीच में बैठकर पंजाबी लदफद शलवार और बंगाली ढीली धोती पर मीठी चुटकियाँ लेती, और कभी मिस्टर अहमद के कंधे पर झूलकर उनकी पर्वताकार तोंद के दर्रों में निरन्तर प्रवाहित जानीवाकर की बोतलों की खपत पर--उनके मुख-फनेल' से फक-फक धुएँ के अनर्गल प्रस्रवण पर--क़हक़हे मारती। और, उस खिल-खिलाहट से उभरी हुई मोतियों की लरी की तरह शुभ्र दन्तराजि की उज्ज्वल किरन आँखों में चकाचौंध लगा देती।

वह आँचल को संभालती नहीं—सरकाती रहती और इस सरकाने में लज्जा-चंचल शोखी की मिठास है। उसके अंग-सञ्चालन की एक-एक गति पर उसकी साड़ी का आँचल इस अन्दाज़ से कंधे पर सरक उठता कि उसके वक्षमंडल का रहस्यमय अंचल, शराबी की आँखों पर छलकते हुए पैमाने की झलक-सी, इर्द गिर्द दोस्तों के कुतूहली दृष्टि-पथ पर बार-बार खुलता और ढक जाता। खुली गर्दन का टाइट जैकेट बेकार हो जाता, अगर सामने से आँचल का बादल उड़ता न रहता। साड़ी और जैकेट की रेशमी झीनी चिक़ से बदन

का जौहर खुलकर चमका नहीं, तो फिर क़ुदरती ज़मीन पर इस नक़ाबपोशी की ज़रूरत ही क्या रही ?

यह समझना भूल होगा कि सभ्य-समाज में यह सकेत-भंगिमा कुछ तहजीब के ख़िलाफ़ बात है। पश्चिम से जो चीरहरण की हवा चली है, वह पूरब की पुरानी तमीज़ की रूढ़ियों को न जाने कहाँ उड़ा ले गई ! यह प्रकृति-उपासना की मोहिनी माया आज आलोक-प्राप्त प्रगतिशील समाज के भीतर दक़ियानूसी लाज और लिहाज़ की मोरचेबन्दी को तोड़ती हुई, विलासिता के स्फुरण को नवीन संस्कृति की पदवी देकर भारत की छाती से क़बूल करा रही है।

जिस फ़ैशन के हिमायती धनी-मानी बन गये, वही तमीज़ की नाति बन गई। अब नव बधू के लज्जालोहित अंचल की चाँदनी न रही, न रही घूँघट-पट पर छना हुई दीदार की चाशनी। अब न कहीं कङ्कण-किङ्किणि की काकली है, न मंजीर की मीठी मुरली। मुखरा चूड़ियों की खनक भी नव्य समाज के दो-चार ही मेम्बरों के कर से उठकर किसी की सुषुप्त चेतना को सतर्क करता होगी।

अब चिका की ओट से न रहस्यमय झलक है, न माया-मधुर गुञ्जन। वरञ्च, एक उड़ती झलक की जगह पर नखसिख की सोलहो कलाओं का साक्षात् दिव्य निवेदन है; और कहीं-कहीं तो उन्नतिशील मंडल में नवीन नृत्यकला का निदर्शन भी।

अब औचक की कड़े-छड़े की मीठी रुनझुन की जगह पर संगीत-प्रवण महिलाओं के हाथ से इसराज के सुर का संचार है—सितार की मींड़ की निपुण झनकार भी।

ज़माना बदल गया है और बदल रहा है। सागर के उस पार से आँधी के झोंके आ-आकर हमारे सनातन मन्दिरों के कपाट को धक्के देकर तोड़ रहे हैं। आज साथ-साथ खाना-पीना, उठना-बैठना, हँसना-खेलना, नाचना-गाना हमारी तरक्की का नवीन आदर्श है। अब चुम्बन में न वह रस रहा, न आलिंगन में वह आकर्षण। जहाँ आठों पहर दरस-परस लगातार जारी है, वहाँ न इन्तज़ार की लज़्ज़त रही, न दीदार की हसरत। मन भरत-भरत सूना हो जाता है, पुलाव खाते-खाते फाका हो जाता है। जी अघाने से दिल बुझ जाता है; जी की जी में रहने से वह जला करता है। अरमान उठने न पाये कि पूरे हो गये, तो फिर बेकली का दिलचस्पी कहाँ रही!

ज़िन्दगी तो बिलकुल रूटीन की पाबन्दी हो गई! विजातीय आचार-विचार, विदेशीय रहन-सहन तथा विलायती नृत्य-विलास ने पुरुष और स्त्री के बीच के सङ्कोच के सूत्र को छिन्न-भिन्न कर डाला। वे परदे उठाकर निकट तो आ गये, मगर वह दूर की निज्ञा का मज़ा हो जाता रहा। छाती तो ज़रूर सटी रही, पर आँखें रोते ही रह गये! कल्पना की क्षति हुई, 'रोमैंस' की समृद्धि। रहस्य की अवनति हुई; तफ़रीह

की तरक्की। ललना की लज्जा लुटी; पर तेज़ी आ गई। वह शुचिता और सरलता न सही—वह सुहाग-सङ्कोच की मधुरिमा न सही; पर एक विलक्षण अभिज्ञता और सतर्कता आ गई!

अब इस देश से मॉडर्न रुचि की रंगरलियाँ जानेवाली नहीं। पोगापन्थी अपने चौपाल में जमकर इसकी लाख खिल्लियाँ क्यों न उड़ायें—चूँकि उनके लिए यह फैशन-नन्दन अंगूर खट्टा है, लेकिन जहाँ एक बार बराबरी के दरजे पर वे इस आलोक-मन्दिर में दाखिल हो गये, फिर तो कभी मुमकिन नहीं कि वे बेतकल्लुफी की दिलफरेब नुमाइशों को सभ्यता का स्फुरण न कहकर बर्बरता का पतन समझें।

यों तो, भले और बुरे कहाँ नहीं हैं? प्रकृति का खेल हर जगह, हर रंग में, जारी है। एक ओर घूँघट की ओट से चितवन का वार है, दूसरी ओर आँचल के सञ्चार पर खुले अंगों की लुनाई का इज़हार है।

जो हो, इस वक्त तो यही सवाल है कि हम इस नवीन युग की धारा को पलट सकते हैं या नहीं, और अगर नहीं, तो अपने-आपको बिलकुल इसकी तरंगों पर बहने दें, या एक हद तक इसे अपनाकर क्रान्ति की तीव्र रुझान को मातदिल कर दें। घर की संस्कृति की भित्ति यदि कायम रहे, तो फिर जहाँ-तहाँ खिड़कियाँ फोड़कर नई रोशनी और हवा को प्रवेश देने में हर्ज ही क्या है?

बिजली के रंगढंग तो निराली मे निराले थे। वह विलासिता का पलीता थी। उसकी बारीकियो के आगे निराली नाज़ोअन्दाज़वाली मिसेज़ सूर भी चौकड़ी भूल गईं—सिट-पिटाती हुई सलीम के पास जा बैठी और गुपचुप कॉकटेल की चुस्कियाँ लेती रही। बिजली ने कनखिया से देखा कि सलीम ने मिसेज़ सूर के बिलकुल नज़दीक अपनी कुर्सी खींच ली, और झुककर बातें करने लगा।

"मिसेज़ सूर! अभी तो डिनर मे आध घंटे की देर है। तबतक हम-आप बिलियर्ड खेल लें।"

"बिलियर्ड तो ··· "

"कैरम ?"

"हाँ, कैरम तो ज़रूर खेल लेती हूँ। और, है भी यह बहुत दिलचस्प खेल!"

"तो यही सही!"

"शौक़ से!"

दोनो उठे और हाथ-मे-हाथ मिलाये कैरम-बोर्ड की तलाश मे दूसरे कमरे में चले गये।

बिजली के तेवर पर बल पड़ गये, पर उसने हाथ के गिलास को आँखो तक उठाकर शीशे का परदा दे डाला। उसके जी मे एकाएक एक शाले-सा भड़का कि अभी हाथ के प्याले को सलीम के सर पर दे मारे; पर वह परिस्थिति के लिहाज

से ज़ब्त कर गई। नवाब साहब और मिस्टर अहमद ने आँखों-आँखों में मुस्कानों का विनिमय कर लिया।

'हुजूर, वहाँ दो कॉकटेल भिजवा दूँ ?"—मिस्टर अहमद ने जाते हुए मिसेज़ सूर और सलीम की तरफ उँगली उठाकर पूछा।

"ज़रूर, बरमूथ भी !"

"जो हुक्म।"

औरों की आँख पर बिजली झूमती है, मिस्टर अहमद की आँख पर शीशे की परी। और क्यों न हो यही तो उनकी रोटी है। किसी की और कुछ भी खब्त हो, उनकी खब्त तो विलायती बातलों की खपत है।

"बिजली !" —नवाब साहब ने झुककर बिजली के कानों में कूककर कहा।

'मिसेज़ सलीम' की जगह यह पहले-पहल आज 'बिजली' चला। एक मंज़िल और भी तय हुई। बिजली इस स्नेह-निदर्शन पर खिझी नहीं—खुश हुई और चट से उनके हाथ-पर हाथ रखकर बोली—"कहिये !"

नवाब साहब ने उस सुकोमल स्पर्श को उसकी स्वीकृति समझी, और मस्ती में झूम गये। अब नाम का सेतु बँध गया; अरमानों को पार उतारने में कोई दिक्कत न होगी !

"मैं सलीम को इलाक़े पर चलता करूँ ?"—नवाब साहब ने बिजली के कानों में फुसफुसाकर कहा।

"खुशी आपकी। मेरे लिए तो वह रहे या न रहे, दोनों बराबर है।"

बिजली इसे कहना नहीं चाहती थी, पर पास के कमरे से आती हुई सलीम और मिसेज़ सूर के बेतकल्लुफी के क़हक़हे की आवाज़ उसके ज़ब्त के बाँध को उधेड़ रही थी।

नवाब साहब की बगल की कुर्सी पर बिजली है। सामने एक गोल मेज़ रखी है। मेज़ पर एक चुटकुला फूलदान—लेवेंडरी गुलाब के फूलों से भरा। बिजली ने एक फूल निकाला और धीरे से नवाब साहब के कोट के बटन-होल में डाल दिया।

नवाब साहब ने 'थैंक्स' कहकर तपाक से सर झुका दिया। कॉकटेल की माधुरी और बिजली की आँखों की रसभरी ब्रांडी उनके दिमाग की आग को कुरेदने लगी। हिम्मत बढ़ी। चट उनके बूट की नोक मेज़ के नीचे बिजली के ऊँची एँड़ी के जूते की नोक से जा मिली। दोनों में नोकझोंक का सिलसिला चलता रहा, हाथों के छलकते हुए पैमानों का चुम्बन जारी रहा। नीचे वह आलिंगन और ऊपर यह चुम्बन! किसी पर भी यह रहस्य रौशन नहीं—गर्चे कमरे का कोना-कोना बिजली की बत्तियों से रौशन हो रहा है, और सारी मंडली आँखें पसारकर बिजली की एक-एक हरकत के लावण्य-मधु को पी रही है।

सलीम और मिसेज़ सूर दोनों हँसते हुए पास के कमरे से

निकलकर शामिल हो गये। बिजली ने देखा कि सलीम के कोट के बटन-होल में भी एक लेवेंडरी गुलाब है! उसने समझा कि हो-न-हो यह मिसेज़ सूर के हाथ का काम है।

सलीम ने देखा कि नवाब साहब के कोट के बटन-होल में भी एक लेवेंडरी गुलाब है! उसने भी समझा कि हो-न हो, यह बिजली के हाथ का काम है।

भगवान् जाने, उन दोनों ने सामने लेवेंडरी गुलाब ही तक देखा या आगे बढ़ कर अतीत के उन गुलाबी दिनों को भी देखा, जब किसी के लज्जा-चंचल सुकुमार हाथ की पैंसी एक टेनिस-वीर के कोट के बटन-होल की शोभा थी।

अब न वह वासन्ती सन्ध्या रही, न वह उल्लास की उत्तेजना। न वह टेनिस की दिलचस्पी रही, न बटन-होल की पैंसी। आज उस स्नेह की समाधि पर दो लेवेंडरी गुलाब के फूल नज़र आते हैं, और वह चमन की बुलबुल परिमल से लदी शाख़ से उडकर ज़मीन पर मोती चुगने उतर आई है।

"मिसेज़ सलीम! आप तो कुछ गा भी लेती होंगी!"—अमीन बरमूथ का गिलास मेज़ पर रखते हुए बोला—"जब आपकी ज़बान इतनी मीठी है, तब गला कितना दानेदार होगा! सामने प्यानो भी मौजूद है।"

"इधर तो मैंने कभी गाया नहीं। और, आप जानते हैं, यह रेयाज़ की चीज़ है।"

"खैर, जो ही सही! बड़ी चीज़ न हो, हल्की ही सही।

सतारे न भी टूटे, ग़म तो मिटेगा ! पत्थर न भी गले, दिल तो हिलेगा !— 'दुर्द ही दुर्द सही, बाद तो है।"

बिजली ने अमीन के कानों के कमल-हीरे के टाप को देखा, उसके दाहने हाथ की कानी उँगली मे रक्तमुखी नीलम को देखा; फिर आँखों की कामना की किरण को देखा—और उठ खड़ी हुई।

"आप पहले होस्ट की इजाज़त लीजिये !"

"अजी वाह ! नेकी और पूछ-पूछ !"—नवाब साहब ने हँसकर फरमाया।

गाने का ज़िक्र होते ही सबने अपनी-अपना गरदन सीधी कर ली। मिस्टर पाल ने आगे बढ़कर कहा—"आप बोगला गान भी कोई गा शक्ती है ?"

"जी नहीं; मैं बंगालिन नहीं हूँ। मुझे अफसोस है कि मै न आपके लिए बंगला गा सकती हूँ, न मिस्टर बाल के लिए पंजाबी।"

"मुझे रोबि ठाकुर के गान शुने जोमाना होगया !"

"सच ! और भात-माछ खाये ?"—बिजली ने छेड़कर पूछा।

"माशा-अल्लाह ! क्या बात है ! ज़बान से राल टपक पड़ेगी।"—मियाँ अहमद ने कंधे झाड़कर कहा।

सब लोग हँस पड़े। मिस्टर पाल का चेहरा शर्म से लाल हो गया।

"खैर, मैं आपकी बात मान लेती हूँ। एक रवि बाबू का गाना ज़रूर सुना दूँगी। मैंने स्कूल में बंगालिन लड़कियों से सुना था। लेकिन हाँ, शर्त यह है कि पहले आप तर्जुमा करके मिस्टर अमीन को समझा दीजिये!"

"ज़रूर; मुझे क़बूल है। गान तो सुनाये!"

"हाँ हाँ, सुनिये—

"आमि चिनिगो चिनिगो तोमारे ओगो विदेशिनी!
तुमि थाको सिन्धुपारे, ओगो विदेशिनी।
आमि आकाशे पातिया कान ओगो शुने छि तोमारि गान,
आमि सेपे छि तोमारि प्रान, आगो विदेशिनी!"

मिस्टर पाल एक एक पद पर—बल्कि पद के एक-एक शब्द पर—झूम गये। बड़ी दिलचस्पी के साथ उन्होंने अमीन को भाव बताया।

"वाह! मिसेज़ सलीम! मैं बाज़ आया गाना सुनने से! मैंने आपको विलायत के क़िस्से क्या सुनाये, अपने सर पर अज़ाब ले लिया! अभी तक आप चुटकुले छोड़ रही हैं!"

"भाई! बंगाली-वंगाली हटाओ। कोई अच्छी-सी ग़ज़ल हो!"—नवाब साहब बीच में ही फट पड़े।

जब मीर-मजलिस नवाब साहब ने खुलकर ग़ज़ल की फरमाइश कर दी, तब और किसी की फरमाइश की गुंजाइश ही कहाँ रही! मिस्टर बाल की ज़बान तक आई हुई 'ठुमरी' लबों पर ही नाचकर रह गई। सबने दाद दी—"बिस्मिल्लाह!

बस, ग़ज़ल हो—ग़ज़ल! भला, क़व्वाली के बग़ैर कभी महफ़िल का रंग जम सकता है!"

जिस बात पर नवाबी ज़बान की मुहर पड गई, वह दरबार मे चलता सिक्का बन गई। सोने का रंग दुनिया के तमाम रंगो पर रंग लाता है।

बिजली फुदककर प्यानो के टूल पर जा बैठी, और पटरियाँ छेडकर गाना शुरू किया—

"ऐ इश्क अता कर दे ऐसा मुझे काशाना,
जो काबा का काबा हो बुतखाना का बुतखाना।
तू वह गुले रंगी है ऐ जलवए जानाना,
हर गुल है तेरा बुलबुल हर शमः है परवाना।
एक जाम इधर भी दे ऐ साकिये मयखाना,
सिजदे में सुराही हो और ब्रज्द में पैमाना।"

सुरपुर से सुर-परी उतरकर तमाम हॉल मे ताल-ताल पर नाच उठी। नवाब साहब के हाथ का ठेका प्यानो के सर पर लगातार चलता रहा। बिजली का अपूर्व कंठस्वर कमरे मे भर गया। अमीन तो जैसे लोटन कबूतर हो गया। विलायत की कोई इसी तरह की रागरंग-भरी चुटीली सीन याद आ गई या बिजली की सुरीली सुरलहरी प्राणों मे अणुरक्षित होने लगी। नवाब साहब की आँखे तो बिजली की आँखो मे पडी थीं और उनकी समग्र चेतना उस कोमल सुर की मूर्च्छना पर मूर्च्छित थी।

गान नीरव हुआ; पर सुर का सौरभ अन्तस्तल की निविड़ अनुभूति मे बना रहा। एक-एक कण कानो से उतरकर प्राणो मे भर गई। पॉच मिनट तक सकते का आलम बना रहा। मस्टर अहमद भी बरमा-सिगार को दॉतो-तले दबोचे चुप खड़े रहे। अचानक उनके मुँह से 'सुभानल्लाह' निकल पड़ा और वह जलता सिगार दॉतो की चपकलिश से छूटकर ज़मीन पर जा पड़ा। जब डिनर का घंटा कान पर तड़ाक से गूँजा, तब सुर का नशा सहसा उतर पड़ा और कॉकटेल का सुर फिर सर पर सवार हो गया।

सब लोग उठ पडे। नवाब साहब के बाजू पर हाथ रखकर बिजली सबके आगे डाइनिग-हॉल मे चली।

किसी अप-टु-डेट होटल का डाइनिग-हॉल महलो मे शीशमहल है। हर रोज़ ईद—हर रोज़ दीवाली। यूरप ने भोजन के आनन्द को आनन्द-प्रद आवेष्ठन मे रखकर उसे नन्दन-वन की सैर बना दिया है। वहा बैठकर खाना खाना जीवन का एक आनन्द-मुहूर्त्त है। जहॉ ताज़े रंगीन फूलो की मीठी सुरभि है, कॉटो और प्लेटो की सफाई और चिकनाई है; चुल-बुल हसीनो की चितवनो की चारु चॉदनी है, उनके रंगरूप—वेश-भूषा—की माया-मधुर माधुरी है; बिजली-बत्तियो की मुलायम नयनाभिराम रोशनी है, परदे से आती हुई सुरीले संगीत की कोमल काकली है तथा गुलबदन विलायती बोतलो की—चम्पई प्यालो की—ललाम लुनाई है;

वहाँ अगर भूख की रग़बत दुगनी न होगी—भोजन की लज़्ज़त चौगुनी न होगी, तो फिर कहाँ होगी !

भरसक आज हिन्दुस्तान मे दस्तरख़ान का न वह मान है, न आसनी का वह आसन ! जब था, तब था। आज राजा के आगे बाबू को कौन पूछे ? भरसक आज विलायती टिनो मे बन्द बरसो की बनी सड़ी मछली, ह्विस्की के घूँट के धक्के मे, हिन्दुस्तानियो के हलक के नीचे बेरोक उतर जाती है ! भरसक आज घर का लाड़ला माता के पकाए फुलके और मूँग की कढ़ी देख मुँह बिचकाता है—और पिता के कोट के पाकिट से नोट निकालकर, हैट-पैंट डाटे, होटल की टेबुल पर सजी चिकनी-चुपड़ी चीजो को चौगुने चाव से चट कर जाता है ! भरसक आज शिखा मे बिल्वपत्र और गले मे कंठी बाँधनेवाले भी, कालेंडर बदलकर, कन्नी कटाते, इस तीर्थ-राज होटल का प्रसाद और पञ्चामृत पाकर, भौतिक जीवन के चरम सोपान पर आरूढ़ होते है; और फिर दुम झाडकर धर्ममञ्च पर उसी मुँह से विजातीय खान-पान की बुराइयो पर गर्म लेक्चर झाड़-झाड़ अपना बाज़ार भी गर्म रखते हैं !

यह होटल की विलास-विलोल लावण्य-लीला की ही करामात है कि आज भारतीयो की रुचि मे यह युगान्तर भी सम्भव हो गया कि सुनहरा पुलाव और बाक़रख़ानी नानख़ताई और बर्फ़ी चटपटी कचौरियाँ और रस-भरी जलेबियाँ, लाख सस्ती और ताज़ी होकर भी, बाज़ार की ख़ाक छानती हुई बूढ़ी

वेश्या की दुर्गति को पहुँच गईं; और कोको और काफ़ी, चाकलेट और टाफी, जैम और जेली, वरमसेली और मैकेरोनी, क्रीमरोल और रोली-पोली जैसी चीज़ें, भद्दी व रद्दी होकर भी, मुँहलगी बन गईं।

हमारे शरीर के ऊपर विदेशी विभूति का प्रसार न हो, इसके लिए तो निरन्तर आकाशचुम्बी प्रचार जारी है; पर शरीर के भीतर हमारी जबान के दायरे मे विदेशी साम्राज्य का विस्तार किसी को नागवार नहीं गुज़रता। विलायती इलाज, विलायती खान-पान और विलायती तौर-तरीके के हिमायती अपनी ज़बान की गदन पर चढ़ी हुई जंजीर की मनोहर मीनाकारी के चक्कर मे ऐसे भूल बैठे हैं कि फटती हुई छाती की क्षति उनको खलती तक नहीं।

बिजली, टेबुल की प्रदक्षिणा करती हुई नवाब साहब के साथ-साथ, टेबुल के सिरे पर जाकर बैठ गई। सामने सलीम और मिसेज़ सूर।

गोल मेज डाइनिंग-हॉल के एक कोने मे लॉन के सामने लगी है। मिस्टर अहमद ने उसकी सजावट मे चाँद की किरने पिरो दी हैं। सुकुमार मीठी रोशनी। टेबुल-लिनेन की चाँदनी। फूलों की फुहार। प्लेटों की कतार। सब चीज़े करीने से सजधजी।

तमाम पार्टी बैठ गई और बैठते ही चहचहा उठी।

पहले प्यालियो मे चेरी-कीरिटी ग्रेपफ्रूट के काश आये।

सबने चमचे से उठाकर रस चखा। मुख में लज्जत आ गई, नसों मे बिजली।

मुलगटानी शोरबा चला। देखने मे खुशरंग, खाने में खुश-ज़ायका। नवाब साहब की खास पसन्द की चीज़ है। इसकी नस्ल है हिन्दुस्तानी और लिबास विलायती।

नवाब साहब ने जॉनी की कृतियाँ बयान कीं, बिजली ने कान देकर सुनीं। सलीम ने टेनिस की कृतियाँ बयान कीं, मिसेज़ सूर ने कान देकर सुनी।

नवाब साहब के सामने डॉग-बिस्कुट का एक डिब्बा रखा है। आपकी कुर्सी के पास दोनो ओर फर्श पर जॉनी और टॉमी बैठकर दुम हिला रहे है। आप बिस्कुट निकालकर दोनों जानिब फेकते जाते और दोनो कुत्ते मुँह मे लोक लेते।

अमीन ने मिस्टर अहमद को खोदकर पूछा—"भाई! आखिर यह बिजली किस जन्नत की परी है? इसमे तो विलायती रंग व बू है! मैंने हिन्दुस्तान मे कभी ऐसी बिजली नहीं देखी। बोटी-बोटी फडकती रहती है।"

"वल्लाह! खूँ लगाकर तुम भी शहीदों मे मिल गये!"—मिस्टर अहमद ने मुस्कुराकर कहा।

"मज़ाक नहीं, सच पूछता हूँ। महज एक दिलचस्पी है।"

"आज न दिलचस्पी है, क़िबला! कल कहीं दिल चस्पाँ हो गया, तो?"

"हिश्! आप भी कहाँ की बात ....."

"कहाँ की बात ! पते की बात है, भाईजान ! लिल्लाह ! इस जादूनज़री से अलग ही रहिये ! यह खेमटा-नाच नचा देगी—ताक-धिनाधिन, हाँ !"

"आप बेफिक्र रहे,"—अमीन ने बात काटकर कहा—"नाच के तमाम पहलू मेरी उँगलियो पर हैं। वह क्या नचाएगी !"

अमीन ने आँखें उठाईं, तो बिजली की आँखों को अपनी आँखों पर पाया। उसकी चितवन की कोर मे किसी सुदूर का आह्वान है, उसकी मुस्कान की कोर मे किसी रहस्य का आभास। उसकी एक-एक भङ्गी में किसी अज्ञात—किसी अपरूप—का इशारा है ; भला अमीन उस अथाह की थाह क्या लेता, आँखें गड़ाते रह गया।

अमीन ने शोरबा साफ करके रूमाल से होठ साफ़ किये। मिस्टर पाल और मिस्टर बाल सर झुकाए शोरबा सुडकने मे मसरूफ़ थे। नवाब साहब के तो जैसे कोट के बटन टूट रहे थे। छाती मे मसर्रत भरी थी। बिजली के एक-एक अन्दाज़ पर लट्टू थे।

तली हुई पाम-फ्री चली। मछली तो पानी की चीज़ ठहरी, इसलिए साथ-साथ लाल पानी भी चला। शैम्पेन की सरिता बही। मछलियाँ उसी प्रवाह पर तैरती हुई हलक़ के नीचे अतल तल मे डूब चली।

"मैं तो पीती नहीं। मुझे मुआफ कीजिये!"—बिजली ने झुककर नवाब साहब के कान में कहा।

"वाह! यह तो महज़ पानी है, कुछ ब्रांडी या ह्विस्की नहीं! आप जानतीं नहीं, कॉकटेल की तक़रीर पर शैम्पेन की मुहर जरूरी है!"

"क्यों?"

"चूंकि बगैर इस मुहर के जन्नत का पासपोर्ट मुकम्मल नहीं होता!"

"ओ! यह बात है!"—बिजली ने इस मीठे सुर से कहा, मानो किसी ने प्यानो की कोमल पटरी पर उँगली रख दी। उसकी बात-बात में एक ऐसी लोनी लचक है—सितार की मीड की तरह मुलायम, जो बात खत्म होने पर भी मिनटों कान में झङ्कार देती रहती।

नवाब साहब ने इशारा किया और खानसामे ने बर्फ से ठंढी की हुई शैम्पेन की बोतल बिजली की प्याली में उँड़ेल दी। फिर तो खूब दौर चला। बेटरों ने भाँवरी भरी। पटापट काग उड़ने लगे। बोतलें क्या खुलतीं, बन्दूकें छूटतीं। प्याले खाली होते और फिर फेनिल होते।

मिस्टर पाल और बाल ने महज़ खाने में ही मश्शाक़ी नहीं दिखाई, पीने में भी कमाल किया। गिलास भरा नहीं कि हलक़ के अन्दर खाली हुआ।

पुलाव और खुश्का चला। नवाब साहब ने पूछा—"क्या चीज़ है, मिस्टर अहमद! यखनी पुलाव?"

"जी नहीं, 'किडनी' पुलाव है—और नूरमहली भी। कश्तियों में तीतरों का दमपोख्त, बटेरों का दो-प्याज़ा, सीख़-कबाब, चटनी शाहनाज़, टर्की का रोस्ट, गाजर और चुकन्दर की छालियाँ, पालक की सब्ज़ी, हरा मटर की छीमी, उबाले हुए आलू और प्याज़ वग़ैरा-वग़ैरा!"

"वल्लाह, मियाँ अहमद! आप भी पूरे विलायती बन बैठे!"—मिस्टर नूर सेट के पुलाव पर ज़ाफ़रानी शोरबा उँड़ेलते हुए बोले।

"मैं और विलायती! यह भी कोई बात है! आप ख़्वाब तो नहीं देख रहे हैं!"

"रंग न हो, बू तो ज़रूर है। पीने का यह रेवाज, और ख़ुराक बराय नाम! यही तो विलायती दस्तूर है! आठों पहर विलायती होटल की आबोहवा में रहते-रहते वही की हवा लग गई। यह हवा पीकर रहना! आख़िर बात क्या है जो पुलाव-कलिया छूते तक नहीं! बस, मछली का एक काश, मुर्ग की एक टाँग, वह भी न रंगत, न रोगन! तौबा-तौबा!"

"क़िबला! जिसे खाना नसीब नहीं होता, वही ठूस-ठूस कर गरदन तक भरता है। मैं तो मुँह मीठा करने का क़ायल हूँ!"

"मगर पीने के मद में ज़बान तर करने के क़ायल नहीं—क्यों! वहाँ गरदन तक लबरेज़ कर लेना है!"

सब लोग हँस पड़े। मिस्टर अहमद ने फिर फ़रमाया—

"जनाब! विलायती डिशों की तो यही ख़ासियत है। सादे और हल्के तो ज़रूर हैं; मगर खाने मे बाहिश्ती लज्ज़त है! और हाज़मे के लिए ....."

"लज्ज़त !"—मिस्टर नूर ने बात काटकर कहा—"लिल्लाह! बस कीजिये। यहाँ तो शक्ल ही देखकर जी मिचलाता है!"

"मिचलाता नहीं, भुरभुराता है—कहिये !"—अमीन ने हँसकर छेड़ा—"भला, विलायती डिशों का कहीं मुकाबला है! एक बार जो इन्हे चख लेगा, वह आपकी जाफ़रानी न्यामतो का भी तलबगार नहीं हो सकता।"

"खूब! आप भी तो उसी दरगाह के मुरीद ठहरे! बरसों विलायत रहते-रहते ज़बान फिर गई है। भई, ज़माना बदल गया! नहीं तो, इन नापाक चीजो की हस्ती ही क्या थी? यह होटलो की दिलफरेब रंगीनी है जो विलायती डिशो की लज्ज़त दुनिया की ज़बान की रूह बन गई है। हमारे घर की लज़ीज़ चीजे—और जाने दीजिये, समोसे और नमकी, पापड़ और बडी—कैसी ख़ासी सस्ती और ताज़ी है! मगर, बिचारी टीमटाम की कमी से किरकिरी बनी है। और उधर, कोसो दूर—बरसो दूर—बनी हुई खूबसूरत डिब्बो मे भरी गेहूँ और बार्ली की, दूध और चीनी की, सड़ी और महँगी चीज़ें इश्तहारो के धक्के पर हमारी ज़बान से होती हुई छाती मे पैठ गईं! मशहूर बात है, अपनी बीवी से पराई बीवी हर हालत मे

नमकीन नज़र आती है ! और यहाँ तो क़यामत का सिगार-पटार भी है। जब होटलों मे ज़बान तालीम पा गई, तो फिर घर पर भी होटलबाज़ी ज़रूरी हो गई, वरना आज जैम और मामलेड के आगे सेव और आँवले के मुरब्बे कभी फीके पड़ते ? विलायती पिकिल की चामचुम हमारी चटपटी चटनियों की चाट को कभी चाट पाती ?"

"वल्लाह ! रोज़गार के लटके कोई यूरपवालों से सीखे !" नवाब साहब ने ज़रा आगे झुककर अपनी राय पेश की—"देखिये, सिगार और सिगरेट ने पान और तमाखू की आलमगीर सल्तनत की भुस्सियाँ उड़ा डाली। विलायती इसेंस की शीशियों के आगे मोतिया और मौलसिरी की—हिना और सेवती की—माँग गवारों मे रह गई।"

"हुजूर, यही कैफ़ियत पीने की चीज़ों की भी है।"—मिस्टर अहमद ने दाद दी—"और जबतक पैसे की निहायत तंगी नहीं हो जाती, तबतक कभी कोई गद्दीख़ाने के ठर्रे की ओर फूटी आँखों भी नहीं देखता ! अब किस अमीर के घर भट्ठी जलती है—किस शरीफ को सागरे-मुश्क-बू नसीब है ! आज ज़ाफ़रानी मवल्लहम की बूँद पीकर किस खुशबख़्त की रूह सब्ज़ होती है ? शीराज़ी और अंगूरी किसी खुश ज़माने मे मयस्सर होती थीं। अब तो ये बहिश्ती नियामतें किताबो मे क़ैद हैं—इनका मजा दीमके ही उठा पाती हैं ! आज तो ह्विस्की का दौर-दौरा है, कॉकटेल का बोलबाला है; शैम्पेन की

तूती बोलती है, ब्रांडी की हुकूमत चलती है। भला, ठर्रे की कुल्हियाँ कैसी गिलासों के सामने निगाह भी सीधी कर सकती है ?"

"सा बात की एक बात"—नवाब साहब ने फ़रमाया—"आखिर यूरप ने इन विलायती टिब्बों और बोतलों का मीठे-मीठे हमारे हलक़ के नीचे उतार ही डाला। अब इन टिनों और शीशों की उलझन से निकल जाना हमारी रूह के लिए क़ुदरत के गिरफ्त से छूटने के बराबर मुश्किल है।"

"मगर, हुजूर, कहीं गांधी का रंग जम गया, तब तो ये विलायती बोतलें आलमारियों में टापती रह जायँगी!"—मिसेज़ सूर ने हँसकर कहा।

"अजी, कहाँ का टापना! किसी के पत्थर पर सर मारने से कोई पीना-पिलाना भी बन्द करता है ? दुनिया से मसजिद और मन्दिर उठ जायँ तो उठ जायँ, मगर, साहब, मयपरस्ती नहीं उठ सकती। मिस्टर गांधी human nature से जिस टैक्स की वसूली की उम्मीद रखते हैं, उसे दो-चार इने-गिने भले ही दे डालें, हम-आप उसे नहीं दे सकते। हाँ, विलायती बोतलों पर बिजली गिराना कोई मुश्किल नहीं। मैं तो समझता हूँ, जबतक नहले पर दहला नहीं पड़ता, तबतक यह मसला हल नहीं होता। ब्रांडी का जवाब अंगूरी है, शैम्पेन का जवाब मुश्की गुलबदन ; मगर शर्त यह है कि उसी नफ़ासत से तैयार हो और उसी नज़ाकत से इज़हार हो।"

खूब चकल्लस रहा। ठाट का कचरकूट। नवाब साहब ने तो सिर्फ होंठ जूठे किये, पर यारों की गहरी छनी। अमीन ने टर्की की एक टाँग ली। मिस्टर अहमद के पेट में बेटी गई। औरों ने पुलाव और कलिया में मैदान लिया।

मिस्टर पाल और बाल खाने के मद में हिन्दुस्तानी और विलायती विभेद के कभी क़ायल नहीं थे। दोनों के दिल और ज़बान में अन्तर्जातीय सौजन्य की फैयाज़ी थी। दोनों ने पुलाव और कोरमा भी खाया, रोस्ट और सब्ज़ी भी चखी। और, सर झुकाकर टूटे, तो एकबारगी लिपट गये। ज़बान को बात की फ़ुरसत कहा!

सहसा मिस्टर बाल को ख़याल हो आया कि खाने के वक्त बात न करना टेबुल के सलीके के ख़िलाफ़ बात है। दस्तूर तो यह है कि एक लुकमा खाओ और दो लपेट बातें करो। चुहलें हों, चुटकुले हों, क़िस्से छिड़ें, कहकहे पड़ें, और बीच-बीच में दो-एक काश मुँह में भी चलता रहे। सर झुकाकर चुप खाना तो घड़ों पानी पड़ना है। लिहाज़ा, मुँह चलाते-चलाते आपने तपाक से मुँह खोला—"मिस्टर अहमद! आपके मुहल्ले में तो आज एक नया गुल खिला है!"

"गुल! मुझे तो ख़बर नहीं!"—मिस्टर अहमद नमक-दानी से ज़रा-सा नमक उठाकर, कतरे हुए चुकन्दर पर छिड़कते हुए, कुछ घबराये-से बोले।

"आपने सुना नहीं, आप ही के मकान से दस क़दम पर एक नौजवान हसीन ने जान दे दी !"

"हाँ-हाँ, अजी वह शीतल की बहू न ? खुदकुशी कर ली—शौहर की लाश पर सती हो गई। बड़ी हलचल रही। पुलिस भी दंग है ···"

"सच ! अभी तक हिन्दुस्तान से यह खब्त गई नहीं !"—बिजली ज़रा मुँह बनाती हुई हँसकर बोली।

"खब्त ! मुहब्बत की इस इन्तहा को आप खब्त कहती है ?"—मिस्टर बाल ने आँखे फाडकर कहा।

"और नहीं तो क्या यह दानाई है ? यह उस वक्त की खलिश है, जब औरतो की जिन्दगी की कोई कीमत नहीं थी—मरदो की गुलामी मे कुरबानी उनकी बहादुरी मान ली गई थी।"—अमीन ने अपनी राय पेश की।

"मगर भई ! आखिर मुहब्बत की भी तो कोई वक़त है ?"

"इसी सेंटिमेंट ने तो मुल्क को जहन्नुम-रसीद किया है। यही चकमा देकर आपने औरतो के हाथ मे हथकडी भर दी और उसी हथकडी को सुहाग का कङ्कन समझकर हाथो मे बाँधे रखना उन्होने अपना मज़हबी फर्ज समझ रखा !"—बिजली ज़रा झल्लाती हुई बोली।

"मेरी भी बिलकुल यही राय है। औरतो के साथ ज्यादती की कोई हद नहीं। और, यह सती होनेवाली बात तो साफ़ है। नशे के झोंक मे आदमी क्या नहीं कर बैठता ? दिल का

धुआँ उठकर दिमाग़ को घेर लेता है। मुहब्बत भी तो दिल का एक ज़बरदस्त नशा है।"—अमीन ने गाजर का एक काश ज़बान पर रखते हुए फ़रमाया।

"मगर, मिस्टर अमीन! हिन्दू औरतों के सती होने मे एक ख़ास बात है। यह आजकलवाली नशीली मुहब्बत नहीं, जो बरसाती बाढ़ की तरह उठती है और फिर दो दिन मे गायब! समुन्दर मे तो बाढ नहीं आती।—

"हम चूँ हिन्दूज़न कस जर आशिकी मरदाना नेस्त,
सोज़तन बर शम कुश्त. कार हर परवाना नेस्त!"

—सलीम ने बिजली की ओर आँख मटकाते हुए कहा।

"यहाँ शायरी का ज़िक्र नहीं, समझ की बात है। आप दाद न देंगे तो फिर आपकी नवाबी कहाँ निभेगी! अगर हमारी आँख खुल गई, तो फिर मर्दों के हौलदार बूट क तलव के तले पलकें कहाँ बिछेंगी?"—बिजली ने कहा।

"भई, बात तो असल यह है कि जब दिल पर शदीद सदमा पहुँचता है, तो दिमाग की कीले बेसाख्ता उखड़ जाती हैं। फिर कोई वहशत के गलबे मे कलेजे पर गोली लगा ले या आग मे कूद पड़े, दानों एक ही बात है!"—नवाब साहब ने फ़रमाया।

"जी हाँ, हुजूर! विलायत मे लड़कियाँ गोली लगा लेती है, और यहाँ किरासन का तेल ही सही!"—अमीन ने हँसकर कहा।

"और यहाँ हिन्दुओं ने उसमे धर्म का तुर्रा लगाकर उस खुदकुशी को एक तबर्रुक क़रार दे दिया !"—मिस्टर अहमद ने उसपर मुहर लगा दी।

मिसेज़ सूर से भी अब चुप न रहा गया। ज़रा तमककर बोलीं—"मगर, आखिर मर्दों का यह निनानबे साल की हुकूमत का पट्टा !"

"निनानबे साल या निनानबे सदी ?"—बिजली ने बात काटकर कहा।

"जी नहीं। निनानबे युग ! यह पट्टा तो कुदरत के दरबार से जारी है। इस कुदरती इन्तजाम क लिए घर-घर मर्दों के खिलाफ दंगे की तो ज़रूरत नहीं ! भला, नेचर के मुक़ाबले मे किसी की एक चली है ?"—मिस्टर बाल ने तीतर की पसलियों मे दाँत गड़ाकर गोश्त के रेशे खींचते हुए कहा।

"तो यह इन्तज़ाम हिन्दुस्तान ही के लिए है या सारे जहान के लिए ?"—अमीन ने पूछा।

"बन्दानेवाज़ ! यह आलमगीर इन्तज़ाम है—कम या बेश। मादीन मकान ही मे शेर होती है, मैदान मे नहीं। आप मानें या न मानें, यही कुदरती फरमान है।"—मिस्टर बाल ने दुबारा नाल दिया।

"सच ! तो कुदरत को भी बहुत जल्द अपनी भूल समझ मे आ जायगी। वह दिन अब दूर नहीं, जब मर्दों के हाथ मे

चूड़ियों की झंकार होगी और औरतों के हाथ मे तलवार !" —बिजली हँसकर मोती बिखेरती हुई बोली।

"हुजूर ! तलवार तो आज भी है, आपकी एक-एक हरकत मे चमचमा उठती है। कुदरत ने वह शमशीर की आँच भर दी है कि उसके सामने चंगेजी तलवार भी झख मारे !"

सभी हँस पड़े। मीठा चला—प्याज़ की फिरनी या पिस्ते का हलवा नहीं, क्रीम से भरा पीच-मेल्वा। मिस्टर पाल की ज़बान तो सन्देस की तलाश मे चटपटा रही थी; पर यहाँ तो ज़बान खोलना क़ायदे के खिलाफ़ है। बस, आपने एक चुटकुला छोड़ा— "भई ! मिठाई तो बंगाले से ख़त्म है। लेडी-कैनिङ्ग और पानतुआ, सन्देस और रसगुल्ला ! आप ही कहें, इनका माक़िफ़ ···मुझे तो ···"

"मिठाई ही क्यों, मछली भी कहिये ! चिङ्गड़ी और कवई भी तो आपकी खास चीजें हैं !"

बात पलटकर मछली पर आ गई। मिस्टर पाल ने पीच-मेल्वा का प्याला साफ़ कर डाला।

"खास ही नहीं, लाजवाब भी !"—मिसेज़ सूर ने हँसते हुए कहा।

"बेशक ! सोल और पाम-फ्री की भी भुस्सियाँ उड़ा डाले ! मगर, हाँ, बंगालिनों के पकाने की तरतीब भी निराली है।" —मियाँ अहमद ने आँखें मटकाकर कहा !

"और केकड़े की कलौंजी ?"

"क्या बात है! मत कहिये, याद आने से···"

फिर ज़ोरों के क़हकहे जगे। सुरूर का सुर सर पर सवार हो चुका। शैम्पेन का उफान आँखों में स्पष्ट है। दिल की पपड़ियाँ उभर चली हैं। एक मस्ती का आलम शुरू है।

खाना खत्म हुआ तो शेरी और पोर्ट की बोतलें चली। छोटी-छोटी तश्तरियों में सजे-धजे टाफी और चाकलेट भी चले। नमकीन पिस्ते और अखरोट भी पास होने लगे।

बिजली और मिसेज़ सूर उठकर खिड़की के पास चली गईं। इधर सिगार और सिगरेट का सिलसिला चला। मिस्टर अहमद ने बरमा सिगार लिया, यारों ने कोरोना। धुएँ की लड़ियाँ हवा में उड़ने लगीं।

मिस्टर पाल और मिस्टर बाल ने नवाब साहब की फ़ैयाज़ी और खुश-अख़्लाकी के नारे बुलन्द किये। बहिश्ती डिशों की तैयारी के लिए मिस्टर अहमद की भी बलाएँ ली गईं।

नवाब साहब ने मिस्टर पाल से हँसते-हँसते पूछा—"कहिये, बंगाली मिठाई मँगवा भेजूँ?"

मिस्टर पाल ने हाथ जोड़कर सर हिलाया—"आज्ञे नहीं"

नवाब साहब मिस्टर बाल की ओर मुड़े—"कहिये··· "

"जी नहीं। माफ़ी चाहता हूँ। काफ़ी हो चुका। हाँ, अलबत्ता काफ़ी हो, तो कोई मुज़ायक़ा नहीं!"

काफ़ी चला। नवाब साहब उठकर बिजली की तरफ़ बढ़े।

जॉनी और टॉमी पीछे हो लिये। नवाब साहब ने फूलदान से एक फूल निकालकर ऊपर फेंका और नीचे आते-आते जॉनी ने दौड़कर दाँतों मे थाम लिया। कुछ इसी तरह वह शिकार मे छर्रे की चोट पर आसमान से लतपत नीचे आते हुए चाहो को लोक लेता रहा। तालियाँ पिटी। नवाब साहब के कदम ज़मीन से दो बालिश्त ऊपर उठ गये।

खिडकी के पास खड़ी-खड़ी बिजली एक नज़र नवाब साहब पर डालती, दूसरी अमीन पर। सलीम को तो वह फूटी नजरो भी नही देख पाती। उसकी आँखो पर सवार हो मिसेज़ सूर के साथ यो घुलमिलकर चकल्लसबाज़ी सलीम के जुल्म और जुर्म की इन्तहा थी। उसने देखा कि जब सलीम की छाती पर न बाल है, न छाती मे दिल, तब बिजली के आलिगन के लायक़ वह छाती न रही। उस छाती को वह खुशी से मिसेज सूर की छाती से लगाकर विलायती नृत्य-कला का रियाज़ करे, बिजली को इसकी परवा न रही।

जो हो, पर बिजली की छाती तो उडी जाती थी, और जबतक वह उन दोनो की छाती पर अपने हाथो से मूँग नही दलती, तबतक उसे तस्कीन नही। खैरियत यही कि उसके हुस्न और शबाब का निखार है, और मिसेज़ सूर तीस के उस पार। खैरियत यही कि उसका मोतियो का गुलूबन्द मिसेज़ सूर के गले की मटर-माला से मैदान लेकर तिलक पा चुका है।

इधर मिसेज़ सूर लाग़म। बिजली की आँखो की तलवार

की आँच को अपने होठों की एक व्यंग्य-भरी नोक से जवाब देना यथेष्ट समझती रही।

जब-जब बिजली की निगाह अमीन के चेहरे पर फिरती, उस मायल नौजवान के दिल में कोपलें निकल आती। वह बिजली को और भी निकट से देखना चाहता, आख़िर वह क्या चीज़ है, इसे जानने के लिए सिर चीरता। पर मिस्टर अहमद के सिवा किसी और से उसकी गहरी छनती न थी। वह पूछे, तो किससे पूछे! मिस्टर अहमद खुद खुलते न थे, और वह खुद खुल नहीं सकता। इतना वह ज़रूर समझता कि सलीम महज़ टट्टी की ओट है, और दर-असल यह सोने की तितली नवाब साहब के कमख़ाब-कलित कंधों पर अँटकी है! नवाबों के सामने किसकी दाल गल सकती है? जो हो, बिजली उसकी आँखों के सामने मूर्त्तिमती मदिरा-सी छलक रही है।

अमीन विलायती आदर्श पर पल कर जवान हुआ था। उसकी निगाह में वही नारी नारी है, जो दिन में घर की लक्ष्मी है और रात में टेबुल की रानी। उसकी अपनी बीवी परदे की पोटली थी। न हँस सकती, न बोल सकती; न रीझ सकती, न रिझा सकती। वह ख़ानदानी ज़रूर थी, और अमीन के सिवा किसी और पर आँखें भी नहीं उठाती; पर उसके ख़ानदान और ईमान को लेकर अमीन के प्राणों को तस्कीन कहाँ थी! वह उसके साथ बैठकर मोटर कहाँ तक चलाती, जब

ज़रा-सी स्पीड पर उसका कलेजा धक-धक कर उठता। अमीन बेहद बेज़ार था पर मजबूर। उसके वालिद मौजूद थे, वह दिल मसोसकर ओस चाटता।

यही वजह है कि बिजली उसकी आँखो मे खुब गई। अगर वह परी बनकर चमन-चमन की सैर करती है, तो यह तो उसकी ज़िन्दादिली की निशानी है। जो कुछ भी हो, आख़िर मिट्टी की मूरत से तो चमन की तितली कहीं अच्छी है। यह वसन्त-चाञ्चल्य—यह प्राण-प्रवाह तो हिन्दुस्तान के चमन मे अनूठा है।

आज वही स्त्री जीवन की प्रिय सङ्गिनी है, जो सोसाइटी मे हँस-बोल सके, टेनिस मे प्रवीणो को 'लव सेट' दे सके, प्यानो पर टप्पा और ख्याल का सुर छेड़ सके, बॉल-रूम मे बाल्ज और टैगो के क़दमो पर थिरक सके, टेबुल पर कमान की मीठी अफ़सरी कर सके, और सुबह से आधी रात तक सिगार-पटार के बाँकपन से—नाज़ो-अन्दाज़ के निरालेपन से—पति के प्राणो मे स्पन्दन, दोस्तो की आँखो मे सिहरन और हमजोली महिलाओ के कलेजे मे जलन पैदा कर सके।

अमीन बैठा-बैठा आसमान-ज़मीन के कुलाबे एक कर रहा है। उधर सलीम सुस्त है। तबीयत की उचाट भी है और शैम्पेन की चाट भी। कल उसका क्या हश्र होगा, यह तरद्दुद चेतना मे घुन बना है। आज तो शैम्पेन के प्रवाह पर वह बह रहा है, कल कहाँ बहकर उसे जाना होगा, पता नहीं।

मिसेज़ सूर घर लौटने के लिए उतावली हैं, पर मिस्टर अहमद की आँखों के इशारे पर उनका गुज़र है। उनके अंगों पर प्याज़ी लहालोट जार्जेट साडी भी है और गले मे कल्चर-पर्ल की लड़ी भी। होटल का मधुमय लञ्च-डिनर भी और शैम्पेन का सागर भी। यह सब कुछ है ; पर जेब मे न कनक-चित्ती है, न जीवन मे आज़ादी। और, सबके ऊपर हँस-हँसकर रीझना रिझाना, बे-बात की बात पर क़हक़हे भरना, पीना-पिलाना, बॉलरूम मे किसी अधेड मनचले रईस की कमर मे हाथ देकर साथ-साथ ताथेई नाचना-नचाना और उसकी नशे से झूमती इशारेबाजी और चुहलबाजी को जी जॉतकर पीना है। उधर घर की कबाहत अलग। कल बच्चे के ट्यूटर की तनख्वाह जुगानी है, रेशमी साडियों की सिलाई का बिल भी!

यारबाशी भी जब ड्यूटी हो जाती है—निगाहों की बाजीगरी भी जब रोटी हो जाती है, तब इस हुक्मी चकल्लस के रियाज़ मे न कोई लुत्फ रह जाता है न रहस्य।

अमीरों के फौज़ की टेबुल पर पुलाव और शैम्पेन की तो उनको कमी न थी, पर इस टेबुल के वैभव से तो किसी के जीवन की शून्यता नहीं भरती! कोई सैकड़ों की शराब यहाँ खुशी से पी ले या पिला दे; पर मजाल नहीं कि उस मजलिस में अपनी दस-बीस की ज़रूरत भी जबान तक ला सके। शैम्पेन के सागर ढालते जाइये; पर एक बूँद मीठे पानी की प्यास यहाँ मिट नहीं सकती। गाते रहिये और हँसते रहिये,

गुलछर्रे उड़े और क़हक़हे पड़े, लन्तरानियाँ हों और रँगरलियाँ हों, पर दिल का दर्द दिल ही मे रहे—आँख का कोना कभी तर न हो और दिल से दिल तक कभी किसी का गुजर न हो। यहाँ थैंक्स की भरमार है सही, मगर महज़ ज़बानी खर्राची, आजिजी बेशुमार है ज़रूर, मगर महज़ नुमाइशी। यहाँ बाक़ायदा मिज़ाज-पुरसी की कमी नहीं, पर कोई कभी किसी का पुरसाँ-हाल नहीं होता। यह नन्दन-वन का मरुस्थल है, इस आलीशान अमरावती का श्मशान है।

होटल या क्लब मिल्लत की जगह जो हो, पर यहाँ आपस की सच्ची मिलनसारी तो मुरौवज नहीं। यहाँ परिचय, स्नेह-सिचन के सहारे, आत्मीयता मे परिणत नहीं होता। इस प्रमोद-कुञ्ज मे शीलता के फूल हैं और शिष्टता की कोपल; पर उनमे स्नेह का परिमल नहीं। कमाल के रंग-रूप, पर कहीं वफा की बू नहीं। जो दिल खोलता है, वह बदनाम होता है। नाक भी कटी, बात भी फूटी और बात-की-बात मे बातों मे उडा भी दी गई। साथ-साथ खाने-पीने या हँसने-बोलने से कोई किसी के जीवन के पहलुओं से परिचित नहीं होता। हम-नेवाले हम-प्याले की पहुँच नेवाले और प्याले तक ही परिमित है। इस चाय और चुरुट के वायुमंडल मे जो दिल ढूँढ़ता है, वह मेम्बरी के क़ाबिल नहीं समझा जाता। दिल की टीस लब पर आने नहीं पाती; न लब पर लाने की चाल है। कोई अपने पड़ोसी की हाँड़ी के एक-एक चावल का

अन्दाज़ जो रखे; पर उसके दिल के पड़ोस मे उसका गुज़र नही, न दिल डालने का सवाल है।

इस मॉडर्न समाज की रूढ़ियाँ ही अनूठी हैं। दिल न रहे, तो चन्दा हर्ज नही, पर ठाट होना जरूरी है! हम पडोसी के बच्चे की बीमारी मे अयादत या मिज़ाज-पुरसी के लिए दोनो वक्त जरूर हाज़िर होगे या हाज़िरी का कार्ड छोड देंगे, पर बच्चा मरे या बचे, इससे हमे गरज़ नहीं! बच गया, तो हाथ मिला-मिलाकर मुबारक-बादियो की झडी बाँधी, जल्से तलब किये; मर गया, तो बाँह पर काली पट्टी बाँध ली या एक आह खींचकर हमदर्दी जता दी। इस ज़माने मे दोस्ती महँगी नही, पर हमदर्द दोस्त महँगा है। बाज़ार मे मोतियो की कमी नही होती; पर मोती का जोडा मिलना मुश्किल है।

अमीर को तो खुदा पनाह दे! उसे खुदा मिले तो मिले, आशना नही मिलता! दौलत के ज़रिये वह दुनिया के इन्साफ और ईमान तक खरीद सकता है; पर दिल नही ख़रीद पाता।

दाम देकर नाम मिलता है आराम भी। परी मिलती है, तरी भी। बन्दगी मिलती है, मुँह की लाली भी। हाँ और कुछ? माना कि ऊँची कुरसी की प्रतिष्ठा, दस के हाथो की सेवा मिलती है; मगर किसी की श्रद्धा भी? टोकरियों यार मिलते है; किसी का प्यार भी? मुस्कुराती चितवनो का जादू मिलता है; किसी की आँख का आँसू भी? दिया है उसकी त्रुटियो पर किसी ने एक निर्भीक भृकुटी का सहारा? मिला है

कभी तपिश के उसास पर एक निःस्वार्थ स्नेह का साया ? पाया है उसने किसी के प्राणों का परिचय ? किसी की समवेदना, किसी की आत्मा का अर्घ्य ?

हमारे दस्तरख़ान की बिल्ली हमारे जीवन के सुनसान कोनों में नहीं झाँकती। हमारी रोटी की ख़ाक झाड़नेवालों से कभी हमारी दाँत-काटी रोटी नहीं चलती। हमारे पत्तल पर पनपनेवाले दोस्त हमारी आख और कान बचाकर जो हमारा ख़ाका उतारते है, उसे शायद बराबर आँखों से लहू टपकाये हम देख नहीं सकते। वे दामन पसारकर हमारी फ़ैयाज़ी के मोती को चुन लेगे, पर उस दामन के कोने से कभी हमारी आँख का कोना पोंछना पड़े, तो वे आँखें फेरकर दामन समेट ले। और क्यों न हो, जिन्हें मुस्कान के मोती चुगने की आदत है, वे आँसुओं के दाने क्यों चुगने चले ? जबतक हमारा हाथ ऊँचा रहता है, तबतक इस ज़माने में हाथ मिलानेवालों की कमी नहीं होती, पर अगर खुदा-न-ख़ास्ता कभी हाथ फैलाने की नौबत पड़ी, तो फिर कोई पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देता।

आजकल की टकसाली भद्रता जाहिरदारी है। किसी हालत से नुमाइशी शिष्टता में कमी न हो, भीतर-ही-भीतर लाख शहद की छुरियाँ चलती रहें, कोई मुज़ायका नहीं। हम क्लबों और पार्टियों में चेहरे पर सौजन्य का नक़ाब डाले एक दूसरे की साड़ी या सूट—घड़ी या ब्रुच—देख-देखकर निन्तर जला करते हैं, और फिर आपस में चाय की प्याली या प्लेट

की पैस्ट्री पास करते-करते ज़माने-भर की विष-भरी कुत्सा की गिलौरियाँ मीठी ज़बान के सुनहरे वर्क़ मे लपेटकर किस तपाक की तमीज़ से वितरण करते है ! विलायती काट के कोटो की चौड़ी आस्तीन मे साँप को खुल खेलने को काफी जगह मिलती है।

हम क्लब मे बैठकर किसी रंगीन दोस्त को एक-आध पेग खुशी से पिला देंगे, लञ्च या डिनर का नवेद देकर अपनी टेबुल के जलूस से उसे चमत्कृत और चंचल कर देगे, पर इस खान-पान की फैयाज़ी से न हम ही उसके निकट पहुँच सके, न उसीने कभी कुछ अहसान समझा। अगर हौसले के उफान मे हमारे पाँव तले उसका सिर आ गया, या उसके हाथ मे हमारा कल्ला पड़ गया, तो न वह अपना हाथ रोक पाता है न हम अपना पाँव

हम इस जीवन मे दुनिया के हाथों से उतना ही पाते हैं, जितना हम उसे खुद देते है—न कम, न बेश। इस हाथ देना है, उस हाथ लेना। जबतक हम कही दिल डाल नही देते, तबतक हम कभी दिलवाले नही होते। हम स्वार्थ के वश होकर कितना जल्द भूल जाते हैं कि जीवन का मज़ा आदान-प्रदान है—चयन और वितरण। प्रत्येक काँटे मे भी फूल है और हर फूल मे परिमल। एक ओर से हमे इस मकरन्द की एक-एक बूँद को बटोरकर हृदय के सनातन राग की मीठी आँच पर रस उतारना है, दूसरी ओर से मधु-भांडार

को दोनो हाथो से जगत् के कोने-कोने मे वितरण करना है। इसी संग्रह और प्रसार मे हमारे जीवन की निरन्तर सार्थकता है, और हमारा यह अत्यन्त छोटा-सा अस्तित्व विश्व की व्यापकता मे असीम बन जाता है।

जबतक हमारी अनुभूति निखिल की अनुभूति नहीं होती —हमारी हृत्त्रा पर विश्व-वेदना का सुर नहीं उठता, तबतक उस शाश्वत रस का परिचय हमे कदापि नहीं मिलता। आज पश्चिम ने 'अहम्मन्यत्व' को महत्त्व देकर मानव-हृदय की सहानुभूति का ख़ज़ाना लूट लिया। आत्मविलोपन ही आत्मज्ञान का सोपान है। पर, आज इस अपनापन के युग मे आत्म-वितरण की महत्ता कहाँ रही!

दशम परिच्छेद

मिस्टर पाल और मिस्टर बाल काफी खा-पी चुके है। अब नवाब साहब की दुआगोई मे भी जबान की जुम्बिश मुश्किल हो रही है। आँखें झिपती है। शरीर के ज़र्रे-ज़र्रे से शैम्पेन की शरारत टपक रही है।

वे दोनो उठे, और नवाब साहब के मीठे इसरार पर जामे-रुख़सत के तलछट को चाटते हुए अँगरेज़ी सलीके के अनुकूल होस्ट को सुखमय निशा और रसमय नशा की शुभ कामना जताई, और हाथ मिलाकर चलते हुए। अमीन भी नवाब साहब को 'गुडनाइट' कहकर आँख से ओझल हो गया। नवाब साहब ने बिजली की कमर पर हाथ रखा और धीरे से खुली हवा मे चलने का इशारा किया—"चलिये, बाहर चला जाय। कमरे की ऊमस से दम घुट रहा है।"

"शौक़ से !"—कहती हुई बिजली ख़रामे-नाज की मौज पर बाहर निकल गई।

बाहर प्रेमियों के प्रमोद की प्यासी वासन्ती चाँदनी भी है और जगह-जगह लता-गुल्मों की परछाईं भी। हरी-भरी दूब की मख़मली लॉन भी, और छाती फाड़कर रस लुटाती हुई मालती का वितान भी।

नस-नस मे शैम्पेन भीग रहा है।। पास ही खुले कमरे से बाजे का लहरा हवा मे उन्माद भर रहा है। फिर ऐसी सुनहरी रात मे—ऐसे मधुमय वायुमंडल मे—हाथ मे हाथ डालकर टहलना दिल की उमंगों के खुल खेलने के लिए कहाँ तक मददगार है, कहने की ज़रूरत नहीं।

सलीम ने दिल थामकर खिड़की से यह सब-कुछ देखा। पर, जब उसने मिसेज़ सूर के होठों पर व्यंग्य-भरी मुस्कान देखी, तो कट-कट गया। वह फौरन कंधा झाड़कर उठा और मिसेज़ सूर की कमर मे हाथ लपेटकर बॉलरूम की तरफ चला। सामने मिस्टर अहमद मिल गये।

"मिस्टर अहमद ! शैम्पेन पर ह्विस्की का जाम तो हराम नहीं ?"

"अजी, यह भी कोई बात है ! जानीवाकर का दरवाज़ा तो बराबर खुला रहता है !"—मिस्टर अहमद ने हाथ के गिलास को दिखाकर सिगार का ज़बरदस्त कश खींचते हुए कहा।

"तो एक पेग इनायत हो !"

"हॉ-हॉ, अभी लीजिये।"

मिस्टर अहमद ने बेटर को आवाज़ दी और ह्विस्की का पेग लाने का ऑर्डर दिया !

बेटर पेग लाने दौड़ा। इधर सलीम ने मुड़कर मिसेज़ सूर से कहा—"मिसेज़ सूर ! आप थकी तो न होंगी ! बाजे के लहरे पर फ़ॉक्स्ट्राट का लहरा मजेदार होगा !"

मिसेज़ सूर के जवाब देने के पहले ही मिस्टर अहमद बात काटकर बोल उठे—"इस उम्र मे भी थकान होती है ! अभी तुम्हारे ऐसे दस जवानो को ये उँगलियो पर नचाकर बन्द-बन्द ढीला कर दें ! पॉलिश्ड फ्लोर पर नचा देना तो लट्टू का खेल है !"

मिसेज़ सूर के सर पर सुरूर तो न था; पर ड्यूटी से मजबूर थी। सलीम सिर हो गया। आखिर जाना ही पड़ा। समयोचित रस-संचार के हाव-भाव का वितरण करना ज़रूरी हो गया। पर, जाते-जाते आपने एक चुटकुला छोड़ा—"मिस्टर सलीम ! माफ कीजिये, आपने डोरी ज़रा ढीली छोड़ दी है। अगर, उस चंग ही पर चढ़ाकर उड़ाना था, तो कम-से-कम डोरी तो हाथ मे थामकर रखते !"

सलीम समझ तो गया, पर मुड़कर पूछा—"आप किसकी बाते कर रही हैं ?"

"यही, आपकी बिजली की !"

"मेरी बिजली ? आपने ख्वाब तो नहीं देखा ?"

"क्यों, मैंने ग़लत क्या कहा ?"—मिसज़ सूर ज़बान चटकाती बोला । उन्हें पुदीने की चटनी का मज़ा आ गया !

रोमैंस की चटनी प्रत्येक कुत्सा के परोसे पर आजकल की एक ख़ास चटपटी चीज़ है ।

"मिसेज़ सूर ! बिजली भी कभी किसी की चादर के खूँट में बँधी है ? इधर आई, उधर गई। हवा पर उड़ती फिरी !"—सलीम ने बात टालनी चाही ।

"तो क्या आपने · "

"आप फिज़ूल परीशान हो रही हैं । आजकल सोसाइटी में बिजली जैसी कितनी बिजलियाँ खेल रही है । आप ही किस बिजली—किस कातिल—से कम हैं ? आप तो एक-एक कदम पर गुल कतरती हैं !"

मिसेज़ सूर चुप हो गईं । दोनों इन्द्र के अखाड़े में पहुँचे । बॉलरूम सरगर्म है । कुछ लोग नाच रहे हैं, कुछ बैठकर पी रहे हैं । फ़ाक्स्ट्राट का लहरा है । सलीम ने भी झूमकर नाचना शुरू किया । मिसेज़ सूर पर भी रंग सवार हो चला । सलीम हज़ारों में हसीन है ; लाखों में सुबुक कदम ।

सीने से सीना मिलाकर कला की किलोलें शुरू हुईं । थम-थमकर ह्विस्की का पैमाना भी चलता रहा । कोई दो घंटे तक यह सिलसिला रहा ।

सलीम की आँखों में ह्विस्की कामना बनकर झाँकने लगी ।

नस-नस मे ह्विस्की बिजली बनकर तड़प उठी। बॉलडान्स के शिथिल वक्ष-संघर्ष को वह धीरे-धीरे निविड़ करता गया, और होठो मे मुस्कान और चितवन मे प्राण भरकर मिसेज़ सूर की शरबती आँखो मे हेरता रहा।

मिसेज़ सूर मन्द-मन्द हँसती और सलीम की आवेश-विह्वल सुकुमार बन्दिशो का रस लेती रही। उनके लिए तो यह सलील स्पर्श कोई रोमाञ्चप्रद सिहरन नही। उनकी भावभङ्गिमा मे तो कोई प्रदीप्त उच्छ्वास की चपलता नही —कुछ ड्यूटी, कुछ कुतूहल और एक हल्की स्पन्दन की लहर है।

सहसा बाजा रुक गया। निशीथ 'सपर' का अवकाश। इस वक्त भी कुछ शोरबा और शराब चलती है; कुछ फलो की फिरनी की किस्म की चीज़े। जिन्हे डान्स की कसरत मे कुछ भूख उभर गई, वे तो फिर टेबुलो की ज़यारत पर लपके, और कुछ नही, तो सैंडविच और सूप ही सही। कुछ लोग कमरो मे लौट गये। कुछ इधर-उधर लता-कुंजो की छाया मे बिखर पड़े।

सलीम और मिसेज़ सूर दोनो सबसे अलग दूर निकल गये। पाम और क्रिोटन के झुरमुट मे एक आराम-कुर्सी पड़ी है। मिसेज़ सूर उसी कुर्सी पर लेट गईं और बोलीं—"मै तो अब टहलती नही। ज़रा ठंढो होकर घर जाऊगी।"

सलीम कुर्सी की बाँह पर बैठ गया और तनकर मिसेज़

सूर के कंधे पर सर रख दिया। ह्विस्की की क्लान्ति या शराब की शोखी, बात एक ही है।

मिसेज़ सूर ज़रा सरकती हुई बोली—"लिल्लाह! भले आदमी की तरह बैठो!"

सलीम और भी जोश मे तन गया; और आँखें नचाकर, हँसकर, कुछ कहा ही चाहता था कि किसीकी चीख़ कानो पर पडी और वह उठ बैठा। देखा, तो दस क़दम आगे बिजली खडी-खडी थर-थर काँप रही है—हाथ में गुलेनार गिलास छलक रहा है—आँखो से आग के शरारे छूट रहे हैं!

सलीम के पाँव-तले की मिट्टी निकल गई। वह हक्का-बक्का-सा हो गया। पर, जब उसकी नज़र पत्तियो की आड मे छिपे नवाब साहब पर पड़ी, तब वह डटकर खडा हो गया। नस-नस मे पैवस्त ह्विस्की ने उसके मान को ठोकर मारकर उठा दिया। मिसेज़ सूर ने देखा कि मामला बेढब है! वे धीरे से उठीं और कन्नी दबाकर चम्पत हो गईं।

"अजी वाह सलीम मियाँ! आखिर आ गये रंग मे!"—बिजली विष उगलती हुई बोली। क्रोध की शिद्दत से बात पूरी भी न हो पाई।

"क्यो न आऊँ? खरबूज़े को देखकर ही खरबूज़ा रंग बदलता है!"—सलीम ने ज़रा हँसकर लापरवाही के भाव से कहा।

"खैर, तुम्हारी क़लई तो खुल गई !"

"तो खुलने से बाक़ी किसकी रही ?"

बिजली की जबान की जब कमान चढ़ती थी, मियाँ सलीम के मान का पता न चलता था। पर, आज का उफान तो शायद पैमाने की शान है !

"मैं कब जानती थी कि तुम इतना जल्द रंग बदल सकते हो !"—बिजली दाँत पीसती हुई बोली।

"और मैं ही कब समझता था कि तुम इतना जल्द रंग बदल सकती हो !"—सलीम ने नहले पर दहला दिया।

सलीम की जबान मे यह ढिठाई !—बिजली दंग हो गई—दंग ही नहीं, भूत भी। वह तो योंही नहीं बात पी सकती, और आज तो वह काफी शैम्पेन भी पी चुकी थी।

शराब पी लेने पर कोई बात नहीं पी सकता।

सलीम तो चढ़कर बोलता नहीं था, बोलता था सिर होकर जानीवाकर। फिर, जानीवाकर की कोर तो किसीसे दबती नहीं।

बिजली भनभनाकर बोली—"हुँ ! यह सवाल-जवाब ! यह जबानदराज़ी ! ज़बान ही नहीं चढ़ी है, मिज़ाज भी चढ़ा है !"

"तो यहाँ डर किसका है—तुम्हारे आक़ा नवाब का ?"—सलीम ने मूछों पर ताव देकर कहा।

"तुम्हारे आक़ा होगे ! तुम्हें रोटियों के लाले पड़े हैं !"—बिजली चीख़ती हुई बोली।

"मुझे ? मैं भीख माँगकर पेट पाल लूँगा, पर तुम्हारे नवाब की रोटियों पर· · ·"

"यह बात ! अभी न उनके दस्तरख़ान के टुकड़े चाट रहे थे ! तमाम पुलाव-कोरमे पचा बैठे ! मियाँ ! नमक फूटकर निकलेगी, याद रखना ! किसीने तुम्हारी सूरत पर तुम्हें शैम्पेन की बोतलें नहीं पिला डालीं !"

"ख़ैर, तुम्हारी ही सूरत पर। मगर तुम जिस खूँटे के बल कूद रही हो, मैं ख़ूब समझता हूँ ··· हाँ !"

"तुम्हारे बाज़ू के बल तो कूद न चुकी ! बाज़ार में सुपारियाँ कतर-कतरकर बेचना न पड़ा, यही बहुत है। मियाँ के छप्पर पर एक फूस भी रहता, तो एक बात होती !"

"नहीं था, तो आई क्यों ? और जब आ गई, तब सुपारी कतर-कतरकर भी बेचती, तो कुछ पानी नहीं उतरता। ख़ुदा जानता है, मैं तो तुम्हारी वजह से इस भँवर में पड़ गया !"

"ख़ूब ! मियाँ बाज़ार की ओर सैर करें और बीवी घर में चूल्हा फूँके ! मैं इस चकमे में आनेवाली नहीं—समझे ?"

"समझता हूँ, और ख़ूब समझता हूँ ! अभी तो चकमकी मुहरों का चकमा है, तुम्हारी आँखों में चमक लगी है।"

"तो तुम्हारी आँखों से क्यों लहू टपक रहा है ?"

"मुझे वह दिन नज़र आ रहा है, जब तुम खीरे के मोल बाज़ार में....."

सलीम की ज़बान से यह जलती हुई तीती बात पूरी निकली भी न होगी कि बिजली जामे से बाहर हो गई। उसने तडाक से हाथ के गिलास को सलीम के सर पर तानकर फेंका! मगर, क़िस्मत की बात! कान पर से गोली निकल गई; सलीम बाल-बाल बच गया! गिलास पत्थर के खम्भे से टकराकर चनकनाचूर हो गया। हाँ, शराब के छींटों से उसका चेहरा तर हो गया और शीशे के दो ज़र्रे उडकर उसकी कनपटी में चुभ गये। फर्र-फर्र खून निकल पड़ा।

अगर बिजली ने शैम्पेन पी ली थी, तो सलीम ने शैम्पेन पर ह्विस्की! वह तडपकर सामने आ गया, और भागती हुई बिजली के घुटनों के मोड़ पर फुटबॉलवाला वह कडाके का 'किक' किया कि ऐन मौके पर मिस्टर अहमद पहुँचकर अगर बिजली को गोद में थाम न लेते, तो वह बेतहाशा मुँह के बल ज़मीन पर जा पडती।

गुलाब के काँटे से उलझकर बिजली की अंगूरी साडी बेजगह चर्र हो गई, और जूड़े के बाल खुलकर पीठ पर बिखर गये।

सलीम ने लपककर गमलों की आड़ में खड़े नवाब का कल्ला थाम लिया, और एक ही झटके में उनके सर को दीवार से टकराकर कचूमर निकाल देता—अगर पलक मीचते 'जॉनी'

सलीम पर बिजली की तरह टूट न पडता और हज़रत के तमाम उफान को एक लहमे मे ठंढा न कर देता! खैरियत हुई कि नवाब साहब के अन्तराल की वजह से 'जॉनी' के दॉत की पकड ओछी पडी, और सलीम के कॉलर और कमीज़ ने चिथडे बनकर जिस्म की खुरचन को बचा दिया।

तबतक मिस्टर अहमद और सेक्रेटरी दौड़कर निकट आ गये और सलीम को पकडकर अलग घसीट ले गये।

इधर खून से लतपत सलीम खून का प्यासा हो रहा है, उधर उसके जिगर के लहू से खुली हुई लटो को बॉधने पर बिजली तुली हुई है। पर नवाब साहब की भुजाओं मे भीम का बल तो था नहीं कि होटल के प्राङ्गण मे वेणी-संहार का अभिनय नजर आता! यहॉ तो जोफमेदे और जिरियान के झोको मे तिलमिलाती हुई हड्डियों की ठटरी है, जो मोकब्बियात के ज़ोर पर ताव पकडती। खैरियत यही कि वहॉ जॉनी मौजूद था, उनकी मरदानगी की नाक बच गई!

मिस्टर अहमद ने सलीम को खीच लिया। नवाब साहब ने दामन झाडकर बिजली को छाती मे समेट लिया। लाल-पीली बिजली पिन्तौल तलब करती, क्रोध को धधक पर सर पीटती, छाती पीटती और ऑचल की धज्जियॉ उड़ाती रही।

नवाब साहब ने उसे शान्त करने की गरज़ से उसकी पीठ सहलाई, कंधो पर थपकियॉ दी, और सलीम की छाती

की खाल उधेड़वाकर बिजली के पाँव की जूतियाँ बनवाने की क़सम खाकर रूमाल से उसकी आँखो के गर्म आँसू पोंछे।

सलीम जब बिलकुल गिरफ्त हो गया, तब वह उसी हालत मे होटल छोडने पर तुल पडा, "मेरा सूट-केस मँगवाइये। मैं यहाँ एकदम नहीं ठहरता।"

"कहाँ जाओगे ?"—मिस्टर अहमद ने रूमाल से उसकी कनपटी बाँधते हुए पूछा।

"जहन्नुम !"

"तुम्हारे लिए शायद वहाँ भी जगह नही है !"

"बला से नहीं है।"

"मियाँ ! नवाब साहब से चलकर माफी तो माँग लो ! कह देना—'हुजूर, यह बेताबिये-मय की ख़ता थी, मै न था' !"

"माफी ! धड़ से सर अलग कर दीजिये, क़बूल है, मगर सलीम कभी माफी तसलीम नहीं कर सकता—हर्गिज नहीं !"

वह चट हाथ छुड़ाकर फाटक के बाहर आँखो से ओझल हो गया।

उसी वक्त फाल्गुना का एक जोडा सर पर से सर-से निकला और होटल के पिछवाड़ेवाले पलाश-वन की अँधियाली मे गायब हो गया।

इस आधी रात को यह पक्षी-मिथुन कहाँ से आया और किधर निकल गया ! जिसने देखा, उसीको छन-भर विस्मय

हुआ। शायद यह जोडा उसी पनसेने के पेड के ऊपर घोसला बनाकर गुज़र कर रहा था, जिस पेड के नीचे अभी सलीम और बिजली के विद्रोह का निदारुण अभिनय हो गया।

शायद पंडुक ने उत्तम-योनि मनुष्य के प्रेम का यह दर्दनाक अंजाम देखकर मानव-संसर्ग के वायुमंडल से अपना आशियाना उठा लेना मुनासिब समझा, और फौरन् पंडुकी को चोंच से जगाकर जंगल के जानिब उड़ा ले गया। अगर यह बात नहीं है, तो फिर इस आधी रात को अचानक घर-बार छोडकर होटल के दायरे से निकल भागने की और दूसरी वजह क्या हो सकती है? निशीथ मे विरतर लपेटना तो विहग-समाज मे कहीं प्रचलित नही है।

बात जो भी हो, जिस अभ्रभेदी आवेग के साथ सलीम और बिजली के मिलन का सूत्रपात हुआ था, आज उसी आवेग के साथ वह सूत्र छिन्न भी हो गया। न प्रेम के पनपते देर हुई, न वैर के बिधते आँखे झिपी। और, जो तरंग उठी, वह दिल और दिमाग दोनो कूलो को प्लावित करती हुई उठी। जब राग था, तब प्रबल राग, जब विराग आया, तब कट्टर विराग!

शायद राग और विराग एक ही वर्क के दो पहलू है, और यह मानव-जीवन इन्ही दो पहलुओ के उलट-फेर का चिरंतन लीला-निकेतन है।

प्रेम और वैर दोनो एक ही थैले के चट्टे-बट्टे हैं। मन के

प्राङ्गण मे उनका बारी-बारी पहरा है। दोनो एक ही बैरक—एक ही रिसाले—के जोडीदार हैं। घंटा बजा और राग के कंधे से संगीत उतरकर विराग के कंधे पर चढ़ा, उसकी पेटी उसके पलटे की कमर मे गई। इस जीवन मे ये दोनो क़दम मिलाकर साथ-साथ चल रहे हैं।

किसी को दोस्ती का सत है, तो दुश्मनी की लत भी है। अगर हम एक ओर किसी की जान सताने मे नहीं हिचकते, तो दूसरी ओर किसी पर जान देने मे भी नहीं सकुचते—इधर मारते हैं, तो उधर मरते भी हैं।

जिसको दुश्मनी नहीं आती, उसको दोस्ती भी नही भाती; और जो हाथ तलवार नही उठा सकता, वह अँकवार भी नहीं कस सकता।

जब परिवार मे अनुरक्ति होगी, तो उधर मुहल्ले से विरक्ति होगी। जब मन एक मे रमेगा, तो किसी दूसरे से ज़रूर खिचेगा। वह कहीं रमता नहीं, तो किसी से खिचता भी नही!

जिसे गुस्सा नहीं आता, उसे ठठाकर हँसना भी नहीं आता। जो प्रहार नहीं कर सकता, वह प्यार भी नही कर सकता। जिसके चुम्बन के आवेग मे मर मिटने का उन्माद नहीं है, उसके हाथ का कटार भी वैरी की आँत चीरनेवाला ताव नही रखता। मन जिस परिमाण से ऊपर चढ़ता है, कुछ

उसी परिमाण से नीचे भी गिरता है। जिसे रिश्ता तोड़ने आता है, उसे जोड़ने भी आता है।

मन की शान्ति के लिए, अन्तर की प्रसन्नता के लिए, वैर जिस क़दर घातक है, उसी कदर प्रेम भी। प्रेम की लगन हो या विद्वेष का स्फुरण, दोनों हालत में आत्मा की तबाही बराबर है। आत्मा की गर्दन पर दोनों ही बन्धन है। फ़क इतना ही है कि एक के ऊपर मनोहर मीनाकारी है और दूसरा लोहे की भद्दी जंजीर है। मगर, प्रकृति की पसली दोनों के भार से बराबर पिसती है।

समाज और धर्म ने प्रेम की सॉकल पर कुन्दन का काम करके उसकी लौकिक महत्ता जो बढ़ा दी हो, उससे कुछ उसका भार नहीं कमता, न उसके दिलफ़रेब पंजे के नाखून ही टूटते है। धर्म और नीति ने वैर के सर पर खुदा की लानत बरसाकर उसे लाख निंद्य और त्याज्य बना दिया हो, पर उसे वे मानव-जीवन के दायरे से हटा नहीं सके।

जब प्रेम की वन्दना होगी, तब वैर की प्राणप्रतिष्ठा आप-से-आप होगी। जब अन्तर में प्रेम की सत्ता कम है, तब साथ-साथ वैर का माद्दा भी कमजोर है। जब एक जवान होगा, तो दूसरा भी बलवान् होगा। यही प्रकृति है, यही चिरन्तन सत्य है। एक ही ममत्व के बीज से इन दोनों का जन्म है। नाम अलग हो, रूप अलग हो; पर आत्मा की सत्ता पर दोनों का

असर एक है। कोई एक को दूर करके देखे; दूसरा आप से-आप काफूर हो जाता है।

अगर सबके लिए बराबर प्रेम हो जाय, तो प्रेम की आसक्ति जाती रहे। अगर सबके लिए बराबर वैर हो जाय, तो वैर का विष आप-से-आप झर जाय। जिस घड़ी यह बात धँस जाय कि इस निखिल विश्व में कोई अपना खास नहीं, उसी मंगल-मुहूर्त्त से हमारी निगाह में कोई यहाँ पराया भी नहीं रहता। यहाँ सब हमारे हैं, फिर भी कौन हमारा है?

अगर यह धारणा है कि प्रेम के बिना गुजर नहीं, तो उस परा प्रीति को जगाना चाहिये, जिस प्रीति के जरिये उस स्थिति पर पहुँचा जा सके, जहाँ न प्रेम है, न वैर। और, अगर वैर के बगैर बनता नहीं, तो आस्तीन चढ़ाकर अपनी इन्द्रियों से भिड़ना है, ताकि इस निरन्तर विरोध से उस स्थिति पर पहुँचा जा सके, जहाँ न वैर है, न प्रेम।

हम गैर से खिंचे रहते हैं; चूँकि हम अपने-आप पर मरते हैं। अगर हम अपने-आपसे खिंचना शुरू करें, तो फिर गैर से प्यार अनायास हो जायगा।

जो बहादुरी अपने-आपसे भिड़ने में है, वह कभी गैर से भिड़ने में नहीं। आदमी का इन्सान होने का दावा तभी निभ सकता है, जब वह गैर के लिए आँखों में पानी रखता है और अपने लिए आँखों पर ठिकरा। जैसे जहरीले दुश्मन हमारे लहू के पर्दे में छिपे रहते हैं, वैसे विषैले साँप न हमारा आस्तीन

मे मिलेगे, न इस फ़लक की गर्दिश मे। बाहर की उड़ती हुई चिनगारी से जिस क़दर घर जलने का डर है, उससे कहीं ज़्यादा घर के चिराग़ से ख़तरा रहता है।

जबतक हमारे घर का सुख-दुख हमारे जीवन का तमाम सुख-दुख है, तबतक औरो के सुख-दुख से हमारी दिलचस्पी मुमकिन नही। जबतक हमारे हृदय का सहज उत्स हमारे स्वार्थ के संकीर्ण परिसर मे बद्ध है—यानी जबतक हम अपने-आप पर निछावर हैं, तबतक हमारी निगाह मे ग़ैर ग़ैर है; मगर कही वह उच्छ्वास उस ममता की तंग गंडी से उचककर बाहर निखिल मे फैल सका, तो फिर बेगाना भी आशना बन जाता है, बन्दा भी खुदा हो जाता है।

एकादश परिच्छेद

मिस्टर अहमद जब सलीम का असबाब लेकर स्टेशन पर पहुँचे, तब रात आधी से ज्यादा उतर चुकी थी। वेटिंग-रूम के सामने आराम-कुर्सी पर सलीम चित लेटा है। न आँखे लगी है, न खुली। कौन कहे, वह चुपचाप आँखे बन्द किये अतीत के उन मधुमय दिनों को देख रहा है, जब उसके चमन की वासन्ती शाखों पर फूलों की महक थी और बुलबुल की चहक!

आज उसके जूते की करारी ठोकर उसी कमर पर जा पड़ी, जिसमे मुद्दतों तक उसकी विशाल भुजाएँ मुहब्बत की मेखला बनी थी, और बिजली के हाथ का बेरहम खंजर उसी गले पर उठा, जिसमे मुद्दतों तक उसकी मृणाल भुजाएँ मल्लिका की माला बनी थी।

सच है—"वह भी देखी, यह भी देख, इन अँखियन कर यही बिसेख !"

वह मेघ-कज्जल सावन की सन्ध्या, जब बिजली की छहराती चन्द्रप्रभा साड़ी—उसके एक-एक अंग की लीला-चंचल लावण्य-भंगी—उसकी चपल चितवन की सलील रफूर्त्ति तमाम टेनिस-लॉन पर बिजलियाँ बरसाती, आज अतीत के गर्त्त में सदा के लिए लीन हो गई। ज़िन्दगी के उन बहार के दिनों की याद आज दर्द की तरह उठी और आँसू की तरह गिर पड़ी !

सितार का अन्तिम मीड़—संगीत का अन्तिम सुर—जैसे गाने-बजाने की समाप्ति पर थर्राकर बन्द हो जाता है, और फिर तमाम महफ़िल में एक उदासी-सी छा जाती है, कुछ वैसी ही उदासी सलीम के मुहर्रमी चेहरे पर आज करवटें बदल रही है। वह मनोहर माया-जाल छिन्न हो गया, और अब चारों ओर मरघट की नीरवता छा गई।

एक वह दिन था, जब बिजली की आँखों में पानी था, और सलीम भी खुशी से उसके ऐश और तैश के अत्याचार को तसलीम करता रहा, एक आज है कि किसी हालत से टूटे हुए कलेजे के टुकड़े कभी जुड़ नहीं सकते। दोनों के बीच विरोध का एक विराट् व्यवधान—पहाड़ बनकर—खड़ा हो गया है। अब तो बिजली वह बिजली न रही, जिस बिजली के क़दमों पर सलीम के सर का ताज था। उसका दिल वह

दिल न रहा, जिस दिल पर उसे नाज़ था; और न वह शाख़ ही रही, जिसके पत्तों मे उनका आशियाना था।

उसकी कनपटी मे धँसे हुए शीशे के टुकड़े रह-रहकर टीस रहे है। पर, जो टीस थम-थमकर उसके प्राणों के पहलू मे उठ रही है, उसके मुकाबले वह सर की चोट कोई चोट है!

सूने प्लैटफॉर्म पर वह मौन, सूना, पड़ा है। स्टेशन की निशीथ-शून्यता उसके अन्तर की पोर-पोर मे भर रही है।

जब मिस्टर अहमद बिलकुल नजदीक आ गये, और उनके जूते की आहट सलीम के कानों मे पड़ी, तब उसने आँखे खोली, और मिस्टर अहमद को शून्य निश्चेष्ट दृष्टि से एक टक देखने लगा। कुली ने उसका सूट-केस, बिछौना और टेनिस का डंडा पास मे रख दिया। सलीम ने झुककर देखा तक नहीं कि सामान सब दुरुस्त है या छूटा-भटका।

मिस्टर अहमद बोले—"मियाँ सलीम! तुम्हारे सर पर शामत सवार थी, तुम ख्वामख्वाह उबल क्यों पड़े?"

"साहब, बरदाश्त की भी तो एक हद है!"

"जी नहीं। अभी आप कच्चे खिलाड़ी है। सोसाइटी मे ऐसी रकझक रोजमर्रे की बात है। जब सोसाइटी मे रहना है, तब ईमान को आस्तीन के भीतर रखना जरूरी है, इसे कोई लाकिट बनाकर बाहर नहीं लटकाता।"

"तो ऐसी सोसाइटी की ऐसी-तैसी! लानत है ऐसी सोसाइटी पर!"

"मगर आपकी बीवी ?"

"बाज़ आया बीवी से !"

"बाज़ आया ! तुम भी अजब बुज़दिल हो। कोई मैदान छोड़कर दुम दबाता है ? समझ गया, जानी शाकर न होता, तो तुम आज शेर भी न होते ! बच्चू, अभी तुम्हारे दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं।"

"क्यों ?"

"म्याँ, बात पीने की तारीफ है, उगलने की नहीं। दूसरे जान गये, तो वह छीछालेदर होगी कि मुँह दिखाना अज़ाब हो जायगा। फैशनवाली बीवी की जूतियाँ तो माशूक की गालियाँ है। सर पर पड ही गई, तो क्या हुआ ? फिर इसके लिए लाल-पीला होना ! ··· यह भी कोई बात है ! बीवी अलग चरती-चुगती रहे, तुम अलग चरते-चुगते रहो, सामने का आशियाना एक हो। और बस !"

"और बनाइये, और ! मै सब समझ रहा हूँ। मगर, जनाब, अब इन तिलों तेल नहीं। मैं घर चला !"

"सच ! प्याला भर गया ?"

"भर गया प्याला।"

"खुदा का शुक्र है। जवानी मे ठोकर तो डॉक्टर का नश्तर है। दो दिन मे ज़ख्म भरा समझो !"

"यह दिल का गुबार "

"अजी, धुआँ बनकर उड़ जायगा ! यह भी कोई बात है ! टिकट के रुपये हैं ?"

" ..... "

"क्यों, रुपये है टिकट के ?"

" "

"तो यह लो, दस-दस के तीन नोट मेरे पास हैं। दूर का सफर है।"

"थैंक्स, इस घडी को आप रख लेने। मै इस हफ्ते मे रुपये भेज दूँगा, फिर आप इसे वापस कर दीजियेगा।"—सलीम ने कलाई की घड़ी खोल डाली।

"अजी वाह ! मुझे इतमीनान है, घडी की जरूरत नहीं ! यह भी कोई बात है !"

"आपको इतमीनान जा हो, पर मेरा ईमान तो नहीं मानता !"

"तुम्हारा नशा अभी तक उतरा नहीं। मुझे भी बिजली समझ रखा है क्या ?"

" . "

"अच्छा, ट्रेन कब आती है ?"

"तडके पाँच बजे।"

"तो सो रहो। अभी काफी वक्त है।"

"भई, कहाँ का सोना ! नींद तो आती नहीं।"

"आजादी के नगमे शुरू करो। नींद तो आजादी की सहेली है।"

सलीम हँसकर चुप हो गया।

"अच्छा, तो मै अब चला। खुदा हाफिज़!"—मि० अहमद हाथ मिलाकर चल दिये; देखते-देखते आँखो से ओझल हो गये।

सलीम ने सोना चाहा। करवट बदली। हवा झिर-झिर बह रही है, मन्द और मुलायम। पर, वे रेशमी थपकियाँ सलीम को न सुला सकी। वह उठ बैठा।

सब लोग प्लैटफॉर्म पर बेखबर सो रहे है। गच पर इधर-उधर सर पर हाथ रखे कुली पडे है। कितने मुसाफिर बेचो पर टाँग फैलाए नाक बजा रहे है। टिकट-बाबू सामने टेबुल पर माथा टेके खर्राटे भर रहे है। दो-एक सफेदपोश बाबू तकियो को छाती से लिपटाये स्ट्रेचर पर पसरे है। शायद घोड़ा बेचकर सोनेवाले या बारात रुखसत होने के बाद ठाट से दुपट्टा तानकर पैर फैलानेवाले घराती भी इस बेखबरी से न सोते होंगे। एक मालगाडी हडहड़ाती हुई आई और गर्द उड़ाती हुई निकल गई। सोनेवालो ने जुम्बिश तक न ली।

ऐसी बेफिक्री की नींद सलीम को कहाँ नसीब! यह भुवन-मोहिनी माया उसकी चेतना पर—उसके लोचनो पर—क्यो नहीं आती?

वह उठ खडा हुआ। प्लैटफॉर्म पर धीरे-धीरे टहलने लगा। टहलता-टहलता बाहर निकल गया।

सामने बाज़ार। दूकानो पर निस्तब्धता छा रही है।

इधर-उधर लोग बिखरे पड़े हैं। सिर्फ दूर से कुत्तों के भूँकने की आवाज़ थम-थमकर उठ रही है। आम और मौलसिरी के पत्तों पर हवा के किलोलों की मर्मर-ध्वनि कितनी मीठी है!

वह यों ही सडक पर आगे बढता गया। आगे चलकर पार्क मिला। हरी-हरी दूबों की लॉन। कैना और क्रोटन की क्यारियाँ। एक एक्कावाला नशे मे चूर, 'लगी यारी छोड दीना कुँअर कन्हैया' की रट लगाये, अपने एक्के को बेतहाशा दौडाये जा रहा है।

सलीम ने तन्मय होकर गाने को सुना। 'एक-न-एक दिन दुनिया मे सभी यारी छूट जाती है, यही दस्तूर है'—सोचता हुआ आगे बढा।

सामने होटल पड़ा। वह ठिठककर खडा हो गया। सरसरी निगाहे फेककर दूर से ही इमारत का मुलाहजा किया। ऊपर के एक कमरे की खिडकियाँ खुली है। भीतर बिजली-बत्तियों का फानूस हल्की हवा के इशारों पर झूल रहा है। अचानक सलीम के मुँह से भुन-से निकल गया—यही तो है उसका कमरा!

कुछ देर तक वह न जाने किस हैस-बैस मे पडा रहा। फिर फाटक के पास पहुँचा। आँखे फाडकर उस कमरे की ओर निहारने लगा। मन-ही-मन सोचने लगा—उसी के कमरे की रोशनी है या पासवाले कमरे की'' वह भूल तो नही रहा है! क्या अबतक वह जाग रही है? पलँग पर नही गई?'

नहीं, यह उसके कमरे की रोशनी नहीं·····न, न! उसी के कमरे की है!

वह एक छलाँग मे फाटक टप कर दबे पाँव बरसाती के नज़दीक आ गया। होटल की दीवार के पास खडा होकर गौर से ऊपर देखने लगा। उसे यक़ीन हो गया कि बिजली का ही कमरा है। कमरे की पूरबवाली खिड़की की जो झिलमिली एक जगह टूट गई थी, वह साफ नज़र आ रही है। बिजली के ही कमरे की रोशनी है, शक नहीं। शायद परीशानी की वजह से वह बत्ती गुल करना भूल गई।

वह सोचने लगा—"मुमकिन है, अब तैश का नशा उतर गया हो और वह अपनी गलती पर पछता रही हो। चढ़ाव के बाद उतार भी ज़रूरी है। यही जंगी मिज़ाज की खासियत है। तो क्या वह शैम्पेन का उफान खत्म हो चुका?····"

एक आवाज़-सी उसके कानों मे पडी। ऐं!·· यह आवाज कहाँ से आई? उसी कमरे से या और कहीं से? होटल का चौकीदार तो बाहर खाट बिछाकर बेखबर पड़ा है। तमाम होटल पर सन्नाटा है। तीन बज गये होंगे। इस वक्त, कौन जागता होगा! तो फिर आवाज़—

वह चोर की तरह दबे पाँव बरामदे पर आया। सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गया। इस गरज़ से कि कहीं चर्रमर्र की आवाज न हो, जूते को पतलून के पॉकेट के हवाले किया। एक-एक

क़दम फूँक-फूँककर रखता हुआ उस कमरे के पास पहुँचा। यहाँ आते ही ठिठककर खडा हो गया।

दरवाजे के पास जॉनी और टॉमी पहरे पर बैठे है। आहट पाते ही दोनों के कान खडे हो गये। जॉनी ने भूँकना शुरू किया। टॉमी तो तडपकर टूटा ही चाहता था कि सलीम एक बार पागल की तरह ठठाकर हँसा, और फौरन रेलिंग थामकर नीचे झूल गया। चौकीदार के सजग होने के पहले ही वह हवा हो गया।

"ऐ! यह हँसने की आवाज कैसी?"—कहती हुई बिजली मसहरी के भीतर हडबड़ाकर उठ बैठी। मसहरी से बाहर निकलना ही चाहती थी कि एक लम्बा हाथ सरककर कमर से लिपट गया—"लिल्लाह! यक़ीन मानो, यह हँसी नहीं, जॉनी के भूँकने की आवाज़ है!"

बिजली पलँग पर फिर लेट गई। चारों ओर सन्नाटा छा गया। महज़ कचनार के पेड से एक कुचकुचे की आवाज रह-रहकर सन्नाटे को चीरती रही।

द्वादश परिच्छेद

दिन के दस बजे होंगे। आकाश पर बादलों की काली लटें छाई हुई हैं। पृथ्वी पर सावनी संगीत का सुर शुरू है—झम-झम झम-झम! यही वर्षा की अनन्त छन्द-लहरी है—प्रकृति के चंचल चरणों की नूपुर-ध्वनि। अजस्र सुर-निर्झर—कभी कोमल, कभी झंकार। प्रकृति का हरा-भरा आँचल विविध बेल-बूटों में लहालोट है। नवजीवन का प्राण-हिल्लोल तमाम विश्व में फैल चुका है। जर्रे-जर्रे पर हरियाली छा रही है। ऐसे वक्त में भला किस दिल के पहलू में कोंपल नहीं उठती!

बिजली होटल के कमरे में बन्द मेघ-कज्जल आकाश के वितान को देखती, कान देकर श्रावण-वर्षण के आनन्द-चंचल मल्हार को सुनती। कभी वृष्टि की ध्वनि क्षीण होती, कभी चारों ओर से झंकार देकर नाच उठती। खिड़कियों पर बूँदों

की टपटप—झिलमिली के शीशों पर छींटों की छम-छम—उसके कानों में मुक्ति के आह्वान की वाणी है।

वह होटल के कारागार के सीखचों को तोड़कर इसी धारा-प्रवाह में कूदना चाहती है। आज पन्द्रह दिनों से वह मुक्ति का मार्ग ढूँढ रही है, पर सर पीटती हुई कैद में उलझी पड़ी है। ऐसी परिस्थिति में आ पड़ी है कि तमाम ऐशो-इशरत का सरंजाम रहते हुए भी उसके दिल को घड़ी-भर के लिए चैन नहीं। किसी तरह वह निकल भागती! वह उठते-बैठते आजादी की हवा ढूँढ रही है, मगर रेशमी शिकंजों में ऐसी बँधी है कि हाथ फैलाने को भी जगह नहीं।

कल रात में सावन की धारा हहास बाँधकर आई और अविराम बरसती रही। निशीथ के अँधेरे में वह वृष्टि-प्रपात की झम-झम बिजली के सन्तप्त प्राणों पर कैदी की जंजीरों की झन-झन सी बजती रही।

और रात आँखों में कट गई। मुँह-अँधेरे उठकर उसने खिड़कियों से झाँका और विश्व के कोने-कोने में नवजीवन के जागरण को देखा।

वह एकाएक होटल के माया-जाल को दाँतों से काटकर छिन्न कर देने के लिए बद्ध-परिकर हो गई। फिर तो वही वर्षा की झम-झम भोर की शहनाई का सुर उठाकर उसके प्राणों में नाच उठी—झम-झम-झम-झम!

वह उठी। बाथ-रूम के टब में जाकर बैठ गई। आध घंटे

तक सुरभित जल मे छप-छप करती रही। फिर तमाम शरीर में तौलिया लपेटकर आराम-कुर्सी पर लेट रही। भीगी लटें कुर्सी के पीछे लटक गईं और बिजली के पंखे की हवा पर थिरकने लगी।

उसने छाती पर गुलगुले कुशन को समेट लिया, और अलसाई-सी पडी-पडी विलायती मेमों की फैशन-पत्रिका की तसवीरें देखती रही। मेमों की नई-नई लिंगरी और शमीज, नई-नई काट के पेटीकोट और ब्लाउज, कार्सेट और जम्पर, जैकेट और जर्सी—किस तरतीब से साडियों के मेल मे खुल कर निखरेगी, इसी उधेड-बुन मे वह चूर हो गई।

उसकी निगाह मे साडी और जैकेट की उपयोगिता तभी है, जब उनके पहनने से एक-एक अंग उभर उभरकर मुस्कुराता रहे। वह एक-एक डिज़ाइन पर ठहर-ठहरकर गौर करती और किस पैटर्न मे कहाँ तक रहस्य और नवीनता है, उससे किस हद तक अंगों की श्रीवृद्धि होगी, उसके छोर पर लैस या चुन देने से कहाँ तक बारीकियाँ खुलेंगी, साडी की लपेट में उस तर्ज के जैकेट के विकास का ह्रास तो नहीं होगा—इन्हीं सब ज़रूरी बातों की जाँच-पडताल मे वह आसमान से जमीन पर आती और जमीन से आसमान पर उडती। कभी लाल पेंसिल लेकर जगह-जगह निशान करती और कहीं-कहीं मार्जिन मे ज़रूरी नोट टाँकती जाती।

सहसा किवाड़ पर ठोकरें पड़ीं। वह चौकन्नी हो गई।

महज़ तौलिया लपेटे वह विलायती मेमों की तरह दिगम्बरी आनन्द का मज़ा ले रही थी। इधर लञ्च का समय आ गया। वह उठ पड़ी। आइने के पास खड़ी होकर कुछ देर तक अपनी नंगी तसवीर देखती रही।

वह बचपन ही से अपने अनावृत अंगों की एक-एक उन्नतिशील रेखा पर कड़ी निगाह रखती चली आई। अन्दाज से न मोटी हो, न पतली—यही निगरानी उसकी ज़िन्दगी की परीशानी रही। इस क्रम को कायम रखने के लिए वह प्रतिदिन नियमित कसरत करती या टेनिस खेलती। हर महीने की पहली तारीख़ को फीता लेकर कमर, गरदन और सीने की नाप लेती। इसी निरन्तर शासन और मासिक परीक्षा की कड़ाई से उसने तमाम अंगों को हाथ में रखा और किसी एक को भी बहककर न टीला होने दिया, न गुलगुला। उसने 'मूलर' वाली विलायती शिक्षा-प्रणाली पर अंगों की तालीम दी थी, और यही वजह थी कि उन अंगों की सुश्रृंखला काबिले-तारीफ़ थी। उसने एक दिन के लिए भी इस ड्यूटी में न लापरवाही की, न सुस्ती, चूंकि वह जानती थी कि अंगों की यही सुडौल तैयारी उसके जीवन की तमाम पूंजी है—और उसकी तमाम उम्मीदों की कुंजी भी।

बिजली ने आइने में अंगों का मुआयना ख़त्म करके सूखे-बिखरे बालों को समेटकर बाँध डाला, और आलमारी का दराज़ खोलकर साड़ी और पेटी-कोट का चुनाव शुरू

किया। किसे पहनूँ—किसे न पहनूँ, इसी पशोपेश में कोई आध घंटा लगा।

आख़िर विलायती वॉयल की एक ख़ुशरंग साड़ी पसन्द आई। जाफ़रानी ज़मीन पर अबीरी छींटें। साथ-साथ रेशमी कत्थई जम्पर रहा।

वह सजधजकर तैयार हो गई। आगे बढ़कर किवाड़ खोला, तो नवाब साहब के असिस्टेंट सेक्रेटरी मियाँ ख़ुरशीद खड़े मिले।

मियाँ ख़ुरशीद का सिन लगभग पचपन का होगा। लम्बी खिचड़ी दाढ़ी, मटमैला रंग, गोल-गोल आँखें, नाक पर चश्मा, सर पर टर्की टोपी, बन्ददार अद्धी का अंगरखा और लंकलाट का चूड़ीदार पाजामा। हाथ में रूमाल, रूमाल में पान के दाग। कम खाते, कम बोलते और सबके सामने आँखें नीची किये रहते। उनको सर उठाकर देखते या बातें करते शायद ही किसी ने कभी देखा होगा। नमाज़ी आदमी—ख़ुदा-रसूल के अनन्य भक्त।

होटल में रहकर भी होटल के वायु-मंडल से वे अलग रहे—न सिगार से सरोकार, न जानीवाकर से प्यार। हाँ, पान और हुक्के के बेहद शौकीन। जब देखिये, गाल में गिलौरियाँ भरी हैं और मुँह से अम्बरी तम्बाकू की ख़ुशबू उड़ रही है। ज़माने की हवा कभी लगी नहीं।

सुबह में सिर्फ़ एक प्याली चाय और एक काश सेब का

मुरव्वा उनका नाश्ता ठहरा। खाने के लिए दोनों वक्त चपाती और खुश्का। ऐसे तो कुछ सिड़ी-से नज़र ज़रूर आते; मगर आदमी थे मुस्तैद। जिस काम मे लग जाते, कोल्हू के बैल बन जाते। बस, ताँगे के टट्टू की कैफियत। सुबह से आधी रात तक जुते रहे, कुछ परवा नहीं!

बिजली, उनकी शक्ल देखते ही, झल्ला उठी। वे ऐसे शख्स थे, जिन पर उसकी साडियों का रंग चढ़ सकता, न उसके नाज़ो-अन्दाज़ की बारीकियों की छाप उखड़ सकती। न वे किसी चितवन के फेर मे पड़ते, न किसी शीरी ज़बान की चाशनी मे घुलते। उनपर न हुस्न का रोब चलता, न मुस्कान का असर पडता। होटल मे बिजली की आठों पहर निगरानी उनकी रोटी थी!

वे ड्यूटी के पक्के थे। साये की तरह चुपचाप साथ लगे रहते। न पुचकारने से दुम हिलाते, न लतियाने से दुम दबाते। खास खूबी उनकी यह है कि न वे लगे रहते, न अलग रहते। बिजली के कमरे का किवाड़ खटका और हाज़िर हो गये, आधी रात हो या दुपहरी। अगर वह बाहर हवाखोरी के लिए निकली, तो शोफर की बगल मे मौजूद!

बिजली ने उन्हे लाख मिलाना या बहलाना चाहा, पर तीर पत्थर पर पड़कर मुड़ गये। बिजली ने कमान रख दी। वह एक परिमित परिधि के भीतर जो जी चाहे खाये-पीये, पहने-ओढ़े; उसका पाई-पाई बिल चुका देना उनका काम था,

और उसे वे बड़ी ख़ूबी से अंजाम भी देते। पर, उस परिधि से बाहर न वह जाती, न जाने पाती।

नवाब साहब की अदम-मौजूदगी में बिजली की देख-रेख के लिए उनकी तैनाती रही, और वे फरिश्ते की तरह अलक्ष्य रहकर साथ सोते और साथ जागते।

"आप ही किवाड़ खटखटा रहे थे ?"—बिजली ने छूटते ही पूछा।

"जी हुजूर।"

"क्या लंच का टाइम हो गया ?"

"जी हाँ।"

"गाग तो बजा नहीं !"

"कभी बज गया !"

"मैंने सुना नहीं !"

" .. .. "

"लिल्लाह ! खाने के वक्त भी तो अपनी सूरत छिपाकर रखिये !"

"सो क्यों ?"

"मुझे मतली-सी आती है ! खाना हराम हो जाता है !"

" .. . ... "

मियाँ ख़ुरशीद ने मुँह लटका लिया।

"क्यों, आज मिस्टर अहमद को नहीं देखती !"

"मिस्टर अमीन आ गये हैं। उन्हें कमरे दिखाने गये हैं।"

"मिस्टर अमीन ?"

"जी हाँ।"

"आज आये ?"

"अभी आये है।"

बिजली ने और ज्यादा दरियाफ्त करना मुनासिब नहीं समझा। उसकी म्लान आँखे खिल गईं। वह खुश हो गई कि अब उसकी साडी की रंगत बेकार नहीं होगी।

'अभी आई'—कहती हुई वह फौरन् कमरे मे लौट आई। आइने के सामने खडी होकर चेहरे पर पाउडर और क्रीम की पॉलिश कुछ विशेष मनोऽनुकूल की। गालों और लबों की गुलाबी गुलेनार हो गई। चेहरे की ताजगी दुगनी बढ़ गई। कबरी-कलाप पर मोतियों का जाल लपेटा। सूने कानों मे हीरे के झुमके डाले।

बन-ठनकर बाहर निकली, तो ठमककर फिर बाते करने लगी। ज़रा झुँझलाकर पूछा— हाँ साहब, नवाब साहब की क्या खबर है ?"

"वे तो इलाके मे दौरे पर है।"

"यह सुनते-सुनते तो कान पक गये।"

"..."

"उनको गये आज एक माह हो चुका। बाट जोहते आँखो पर जान आ गई! आखिर लौटने की खबर ?"

"हुजूर, मुझे तो कोई खबर नहीं।"

"तो क्या यहीं पड़ी मैं सड़ती रहूँगी ?"

"मैं तो हर तरह से खिदमत में हाज़िर हूँ ! किसी बात की तकलीफ ..."

"फिर आप तो नवाब साहब नहीं हो सकते ?"

"मैं तो, हुजूर, ख़ादिम हूँ—हुक्मी बन्दा !"

"तो फिर आप मेरे दर्द को क्या समझेंगे !"

"जो हुक्म हो, उसे पूरा करूँगा।"

"खूब ! मेरी मुराद तो पूरी होती नहीं, और आप हुक्म पूरा करने चले हैं !"—बिजली ने तुर्श होकर कहा।

"वह कौन-सी मुराद...."

"मैं आज़ादी चाहती हूँ—आज़ादी !"

"मैं तो समझता हूँ, हुजूर, आज़ाद तो एक खुदा की ज़ात है। इन्सान तो बन्दा है, और बन्दे को आज़ादी नहीं। वह तो कुदरत में गिरफ्त है—ज़माने में मुबतला है।"

"आप फिर वही बे-सर-पैर की हाँकने लगे !"—बिजली ने तमककर कहा। उसकी आँखों से चिनगियाँ छूट पड़ीं।

"हुजूर ! लंच का वक्त टला जा रहा है।"

"चलिये। आपसे कहना दीवार पर सर फोड़ना है। अगर आपकी छाती में दिल ...."

"हुजूर ! ख़ादिम दिल नहीं रखता, ईमान रखता है।"

"सच ! मैं तो समझती हूँ, बे-दिल नौकर दुश्मन के बराबर है।"

बातें करते दोनो डाइनिंग-हॉल की ओर चले। वहाँ पहुँचकर देखा, मिस्टर अहमद पहले से ही डटे बैठे है। वही सिगार, वही सागर।

बिजली ने हँसते हुए आँखे नचाकर कहा—"क्यो, मिस्टर अहमद! आप वह अंगूरी लैस लाये?"

"अंगूरी लैस?"

"वाह! भूल गये? आपने उस दिन कहा था न कि मगनोलिया-फूलवाली बेल और अंगूरी या मोरपंखी लैस नज़र करूँगा!"

"वल्लाह! मगनोलिया-फूलवाली बेल? मै तो इस चमन के रंग और फूल से भी··· "

"उस दिन मिसेज दत्त की संदली साडी पर जो सुनहले फूलो की बेल थी, उनके जैकेट पर जो लैस था, उसी नमूने पर··· ··"

"हाँ-हाँ, मैं तो बिलकुल भूल ही गया था। क्या कहूँ, जब हाथ खाली रहता है, तब दिमाग भी खाली रहता है!"

"आपका हाथ, और खाली!"

"किससे कहूँ, कोई समझता भी है? मेरी तनख्वाह तक ज़ब्त है!"

"आपकी तनख्वाह! आप क्या होटल के कोई मुलाज़िम ठहरे?"

"मेरा मतलब एलावेस से है। दुनिया तो अन्दरूनी हालत

को देखती नहीं। यहाँ तो माल शामलाल का है। लिहाज़ा, उसके हाथ-तले मेरी भी लट दबी है। वह एक चंट—इस दर्जे का संग-दिल है"—मिस्टर अहमद ने तपाक से सर्द आह खींचकर कहा—"कि एक-एक पैसा दाँतों से उठाकर रखता है। आज एक हफ्ता हुआ, हमारे चन्द मिहरबान दोस्त खा-पी रहे थे। एक मस्ती का आलम था। एकाएक किसी के पैर से लगकर मेज़ लुढ़क गई। शेरी और हिस्की के दो लबरेज़ डिकैंटर और चन्द प्याले चकनाचूर हो गये। बदकिस्मती से मैं भी वहीं था। क्या कहूँ, मैं तो चुप भी रह जाता, मगर वह ज़ालिम सुनता ही नहीं! कहता है—'तमाम बरबाद हुई चीज़ों की कीमत गिन दो। तुम दो या तुम्हारे दोस्त दें, वरना एलावेस ज़ब्त समझो। यह रोज़गार का मुआमला है!"

"आपके दोस्त कहीं बाहर के थे?"

"जी नहीं। इसी होटल में वे ठहरे हुए हैं।"

"तब आप उनसे तलब क्यों नहीं करते?"

"यह भी कोई बात है! खुदा जाने, किसके पैर से मेज़ लुढ़की!"

"आपके पैर तो कभी उखड़ते नहीं। जानीवाकर भी आपसे बेज़ार है। उसकी भी एक नहीं चलती। आप ही को तो मैंने शराब पीते देखा। औरों को तो शराब ही पी डालती है!"

"खैर ··· मगर, मुझे तो दोस्तों से क़ीमत तलब करते बड़ी झेंप आती है।"

'अजी वाह! होटल की मैनेजरी और ऐसी शर्मसारी घोड़ा घास से यारी करे, तो खाये क्या—अपना सर ?"

सब लोग हँस पड़े। कुछ दूर पर वे चन्द मेहरबान दोस्त मेज़ पर बैठे लंच खा रहे थे। मिस्टर अहमद की तनख्वाह-ज़ब्ती की इत्तला उनके कानों तक पहुँच गई। मिस्टर अहमद ने एक ही तीर से दो शिकार किये।

लंच शुरू था। वही शोरबा, वही मछली; चपातियाँ और फाउल करी। मछली की प्लेट अभी टेबुल से उठी भी न थी कि अमीन आ टपका।

बिजली ने उसे आँखें नचाकर देखा, उसने बिजली को आँखें बचाकर देखा।

बिजली का एक-एक अंग मुस्कुरा उठा। उसकी ज़ाफरानी साड़ी हवा पर उड़ चली। कंधे से आँचल सरक पड़ा, जैकेट का तुषार-रहस्य खुलते-खुलते रह गया। कॉकटेल के रंग में रंग आ गया। मछली की लज्ज़त में जान पड़ गई! आँखों-आँखों में मिज़ाज-पुरसी हुई, किसी के कानों को ख़बर तक न लगी।

अमीन इतमीनान से बैठ गया, शोरबा के लिए वेटर को इशारा किया, और खुद टोस्ट के काश कुतरने लगा। इसी बीच अमीन की ओर निगाह फेंककर मुस्कुराती हुई बिजली बोली—"आप तो ईद के चाँद हो रहे हैं! ज़माने पर सूरत नजर आई!"

"क्या करूँ, बनारस-ब्रैंच में हूँ। यहाँ तो छठे-छमासे किसी काम से आ गया।"

"कबतक कयाम है?"—मियाँ खुरशीद ने पूछा।

"यही हफ्ता-दस दिन।.... आज-कल नवाब साहब कहाँ हैं?"

"दौरे पर।"

"यह कब से?"

"करीब एक माह हो चला।"

"और आते कब है?"

"पता नहीं।"—मियाँ खुरशीद ने सर झुकाये दाँतों से टील की खाल उधेड़ते हुए कहा।

"ज़माने पर तो आये, दोस्तों के लिए कुछ लाये नहीं?"—मिस्टर अहमद ने मछली के काँटे को चहू की घाटी से निकालते हुए पूछा।

"क्या कहूँ दोस्त, बीवी की बीमारी से परीशान हूँ।"

"सच! खैरियत तो है?"

"हाँ, बुखार तो छूट गया है, मगर अभी जोफ मौजूद है।"

"इलाज?"—मियाँ खुरशीद ने ठुड्डी की दाढ़ी पर से कलिया के रोगन को साफ करते हुए फरमाया।

"डॉक्टरी।"

"माशल्लाह! म्याँ, यूनानी आज़माओ—यूनानी! जवाहर-मोहरा खिलाकर देखो, दो दिन में रंग पलट देगा।"

"अच्छा, तो आप ख़ाली हाथ आये ?"—मिस्टर अहमद ने काँटे से मछली के काँटे चुनते हुए फिर छेड़ा।

"नहीं, बिलकुल ख़ाली तो नहीं आया ! मगर · ·"

"हाँ-हाँ फरमाइये तो सही !"

"यही फल-वल · · ·"

"आम ?"

"जी हाँ। तोतापरी और फ़ज़ली।"

"सुभानल्लाह ! तो फिर मँगवाइये। देर काहे की !"

वेटर दौड़कर आम लाये, प्लेटों पर रखकर परस दिये। यारों ने सराह-सराहकर खाना शुरू किया।

"तोतापरी तो शाहपसंद से मैदान ले गया !"—मिस्टर अहमद ने चहककर कहा।

"शीरी तो ज़रूर है ; मगर आम तो सफ़ेदा मलीहाबादी से ख़त्म है।"—मियाँ खुरशीद ने भी चुटकुला छोड़ा।

"और लँगडा—हाजीपुरी ?"—अमीन ने पूछा।

"वाह ! सिपिया दशहरी क्यों भूल गये ?"—बिजली बोली। "भई, जो हो, तोतापरी अपना सानी नहीं रखता। यों तो बुलबुलेचश्म और शाहबेला भी बेनज़ीर है।"

आम के साथ आमों की आलोचना भी ख़त्म हुई।

मियाँ खुरशीद ने रूमाल लेकर रसाल-रस-प्लावित श्मश्रु की क्यारियों को साफ़ कर दिया। फिर पाकेट से डिब्बा निकाल

कर गालो मे गिलौरियाँ दबाईं। ऊपर से दो डबल चुटकी ज़ाफ़रानी ज़र्दा भी छोड़ा।

अमीन ने गोल्ड-केस से गोल्ड-फ्लेक सिगरेट निकाली। मिस्टर अहमद ने भी अपना सिगार जलाया।

"आज जुमे की नमाज़ है। दस मिनट के लिए ग़ैरहाज़िरी की मुआफी · · "—मियाँ खुरशीद ने बिजली की ओर मुड़कर कहा।

"हाँ-हाँ, खुशी से जाइये।"—बिजली बोली।

"शायद अभी आप · ·····"

"नहीं, मुझे तो लञ्च के बाद सो जाने की आदत है। मैं भी कमरे मे जाती हूँ।"

"और आप ?"—मियाँ खुरशीद अमीन की ओर झुके।

"मुझे तो, साहब, शहर जाना है। बिलकुल फ़ुरसत नहीं।"

"म्याँ! जुमे की नमाज़ भी कोई · · ·"

"वल्लाह!"—मिस्टर अहमद ने बात काटकर कहा—"आप क्यो सिर हो रहे है ? खुदा मियाँ उनसे समझ लेगे!"

मिस्टर अहमद और मियाँ खुरशीद साथ-साथ बाहर निकल गये। बिजली ने अमीन को इशारे से रोक रखा।

जब मिस्टर अहमद और मियाँ खुरशीद आँखो से ओझल हो गये, तब वह फौरन् अमीन को लेकर नेवारी की क्यारियो मे चली आई।

चारों ओर गुलचाँदनी और कामिनी के झुरमुट हैं।

मिहराब पर फूली-फली मालती की बेल। वहीं गुलचीन की छाया मे एक बेंच पर दोनो बैठ गये।

पानी खुल गया है। हरे-हरे पत्तो से बूँद टपक रही है। आसमान पर सावन की घटा खाकी चाँदनी-सी तनी है।

"मिस्टर अमीन! आप नहीं जानते, क्यो आपको देखकर मेरी जान मे जान आ गई!"

"ज़हे-क़िस्मत!"—अमीन ने भी मुस्कुराकर कहा।

"मैं जान दे देती या जान लेकर कहीं भाग जाती। कैद मे पडी हूँ और काँटो पर लोट रही हूँ।"—बिजली ने जरा भर्राई हुई आवाज़ मे कहा।

अमीन ने चमत्कृत नेत्रो से बिजली को देखा; पर उसके गुलाबी चेहरे के गुलजार से - ज़ाफरानी साडी की बहार से—किसी तडप का अन्दाज़ न मिला।

"आख़िर बात क्या है? मै तो उसी डिनरवाली रात से ग़ायब हूँ। डिनर के बाद ही घर का ज़रूरी तार मिला। मिस्टर सलीम भी उसी गाडी से गये। मगर, न जाने क्यो, मुझसे वे कुछ खिचे-से रहे। कुछ बात न हुई।"

"सलीम का जिक्र फिजूल है। उसे तो, ज़माना हुआ, मैंने दिल से उतार दिया। जो बात—बुरी या भली—हो चुकी, हो चुकी। उसके लिए मै सर नहीं धुनती। मैं मुड़कर पीछे कभी नहीं देखती, हमेशा आगे देखती हूँ। मगर, जिस आज़ादी के

लिए मैंने घर छोड़ा—सलीम को सलाम किया, उसी आज़ादी के आज मुझे लाले पड़े हैं।"

"मैं समझता नहीं!"

"आपसे तो कुछ परदा नहीं है। सच कहती हूँ, नवाब साहब का क्या ज़िक्र—ख़ुदा मियाँ की ताबेदारी भी मुझसे मुमकिन नहीं। उस डिनरवाली रात के तीसरे हफ्ते में एक दिन नवाब साहब का घर से एकाएक तार मिला, कहीं इलाके पर रिआयों का दंगा—या ख़ुदा जाने, क्या—हो गया था। बस, हाली-मोहाली लिये वे मोटर से चल दिये। मुझसे कहते गये—दस दिनों में वापस आ जाऊँगा। आज महीना गुज़र चला। तो अब वे वापस आये या न आये, मेरे लिए दोनों बराबर हैं। एक बात थी, सो हो गई। मुझे कंधे पर सर रख कर देखने की आदत नहीं। अगर वे कलियों के मदमाते भौंरे हैं, तो मैं फूलों की रस-पीती तितली हूँ। ख़ैर, अब झींककर क्या होगा? उनके सिर की कलँगी उन्हें मुबारक रहे। बिजली किसी नवाबी ताज की मुँहताज नहीं। समझते होंगे, बिजली भी कोई पालतू कुतिया है जो उनकी टेबुल के टुकड़े पर दुम हिलाती फिरेगी, और जब जी चाहा उसे झाड़-पोंछ, बना-बुनू, मोटर पर बग़ल में बिठाये, हवाख़ोरी को ले गये, फिर गले में सोने की कीमती जंजीर देकर खूँटे पर बाँध रखा। मैं गले में फाँसी डाल लूँगी; मगर गरदन में यह फाँस नहीं रख सकती।"

मुग्ध और अभिभूत अमीन बिजली की एक-एक चेष्टा पर कौंधती हुई बिजली को देख रहा है। बिजली का तमतमाया हुआ चेहरा उसकी आँखों में नूर का टुकड़ा हो रहा है।

"आप जानते नहीं"—बिजली ने फिर कहना शुरू किया—"नवाब साहब तो चले गये, मगर, इन दो ताजी कुत्तों को मेरी निगरानी के लिए तैनात करते गये।"

"दो ताजी कुत्ते!"—अमीन अकचकाकर बोला।

"जी हाँ, खुरशीद और अहमद! दोनों छँटे हैं; नम्बरी लफन्दर। 'एक एक का जवाब है, दोनों हैं लाजवाब!' ये दोनों शैतान के चचे आठों पहर मेरे पीछे जासूसी कुत्तों की तरह सूँघते चलते हैं। खुरशीद तो बगलवाले कमरे में रहता है और रात-भर कुत्ते की नींद सोता है। अहमद की एक आँख मेरे ऊपर बराबर तनी रहती है। आज जुमे की नमाज़ न होती, तो आपसे बातों का मौका तक न मिलता मैं न किसी से बोल सकती हूँ, न किसी से दिल खोल सकती हूँ। मुझे खाने-पीने, कपड़े-लत्ते की कोई तकलीफ नहीं। जो जरूरत होती है, एक हद तक रफ़ा हो जाती है। यों तो, मैं चैन से हूँ, मगर मैं इस चैन की चेन से—अमीरी की असीरी से—इस आसाइश की चपकलिश से—ऊब गई हूँ। जंजीर जंजीर ही है, लोहे की हो या सोने की। आजादी के सामने मुझे बाहिश्त की न्यामतें भी मंजूर नहीं। मुझे दुनिया में मैदान लेना है। मैं आँचल पसारकर भीख नहीं लूँगी। जो लेना होगा, तह तोड़-

कर लूँगी। लिल्लाह, मुझे इस सैयाद के पंजे से छुडाइये, नहीं तो मेरे अरमानो की रंगीन दुनिया और दुनिया के तमाम अरमान कलेजे के लहू मे डूबकर तबाह हो जायँगे। आप जानते हैं—मैने जब सलीम के दिल को तसलीम नहीं किया, तो फिर एक नवाब के पलँग की ताबेदारी करूँगी? मुझे काफी ठोकर लग चुकी, अब ऐसी भूल दम रहते कभी मुमकिन नहीं। दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँककर पीता है।"

अमीन विलायती आबोहवा मे फूटकर खिला है। लिहाज़ा बात-की-बात मे उसपर बिजली का जादू सवार हो गया। उसने हिन्दुस्तान की औरतो मे ईमान पाया था, हुस्न भी देखा था, पर ऐसी आबोताब—यह विलायती हाव-भाव—देखने का उसका पहला मौक़ा है। वह इस देश की स्त्रियो को अपनी परदानशीं बीवी के नमूने पर मिट्टी की मूरत समझ बैठा था; पर आज उसने बिजली का एक पलीता देखा—वही पलीता, वही सलील सजीवता, वही सतेज विलासिता, जिसे—विलायती मिसो की मोहिनी माया मे पड़कर—उसने नारीत्व का आदर्श समझ रखा था। उसकी निगाह मे सतीत्व से कहीं ज्यादा कीमत व्यक्तित्व की है और सतीत्व तो व्यक्तित्व की समाधि है।

आज कितने नवयुवक इसी चकमे मे आकर ठोस के बदले चटक को पसन्द करने लगे है। बू हो या न हो, फूल खुशरंग ज़रूर हो। जिसे आँखो ने मान लिया, उसे दिल ने लगा लिया।

पश्चिम से जिस रुचि की लपट आती है, वही पूरब में दुन्द बाँधकर फैल जाती है। आज इन्द्रिय-परायणता स्वच्छंदता के नाम से मशहूर है। यूरप ने इस अराजकता को स्वराज्य पुकारकर आदमीयता के मैदान को घेर लिया। यही वजह है कि आज दुनिया में गुड के बदले चीनी, सादगी के बदले शोख़ी, पायदारी के बदले आतिशबाज़ी आसानी से खूब जाती है, और इसीलिए घर की देवी से मजलिस की परी दुलमुल दिलों पर करारी पडती है।

हम अगर स्त्रियों के स्वातन्त्र्य के समर्थक है, तो साथ-साथ यह आशङ्का बनी है कि स्वतंत्रता की सहचरी स्वेच्छाचारिता भी न घर कर ले। फिर तो हमारी संस्कृति—हमारे घरों की शान्ति--कहाँ रहेगी ? अगर हम उनको परदे में डाल रखते हैं, तो फिर हम आचार का दम भरते-भरते सीधे अत्याचार पर चले जाते है। इस निरन्तर अवरोध से उनके व्यक्तित्व का नाश ही नहीं--सर्वस्व का सत्यानाश है। अगर रास ढीली होती है, तो ठोकर का डर है, खिचकर कडी होती है, तो कुल्हा उखड जाने का ख़ौफ़ है। दोनों हालत में हमारी मर्यादा की गाडी गढे में जाती है। यहाँ इस अन्दाज़ में राम रखनी है कि न ढीली हो, न कड़ी।

पर अब तो एकबारगी यह सवाल उठ पड़ा है कि बागडोर की ज़रूरत ही नहीं, और अगर है भी, तो यह सारथ्य मर्दों के हाथ में क्यों रहेगा ? क्या स्त्रियाँ इस बागडोर को खुद

नहीं थाम सकती ? ज़रूर थाम सकती है--बशर्ते कि समुद्र-पार के झोंके आकर उनकी उँगलियों में लरज़िश न पैदा कर दें।

ज़माना पलट रहा है। अब पश्चिम को हमारी आँखों में उँगलियाँ देने की ज़रूरत न रही। ख़रबूजे ने ख़रबूजे को देख-कर खुद रंग बदल दिया। भारत की स्त्रियाँ अब अँखफोर हो चलीं। वे समझ गईं कि पुरुष अगर उनको जीवन की सङ्गिनी और माथे की मरकत-मणि बनाकर नहीं रख सकते, तो अब वे बाँदी या बन्दिनी बनाकर हरगिज़ नहीं निभ सकते। पुरातन की बेड़ियों में जंग लग गया—वे अब टूटा ही चाहती हैं।

यह ठीक है कि युगधर्म कभी सनातन धर्म नहीं हो सकता। अब सतीत्व का युग नहीं रहा, व्यक्तित्व का युग आया। त्याग के बदले भोग का दौरदौरा है। स्त्रियाँ अब चिता पर सवार नहीं होंगी, बल्कि—ब-क़ौल बिजली—छाती पर सवार होंगी! जो हो, आज उनके चरणों पर घूँघरू और नूपुर, मेहदी और महावर के बदले मोज़े और जूते की आन-बान रहे, तो चन्दा कोई हर्ज नहीं—यद्यपि मोरक्को-जूते की नोंक के स्पर्श से किसी अशोक-यष्टि के पुलकित होने की सम्भावना जाती रही। मगर कहीं उनकी कमर में किंकिणी मेखला के बदले किरच-परतले की पेटी होगी, तब तो पुरुषों को कमर पकड़कर बैठ जाने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं।

एक बात और है। महिलाओं को अगर आज़ादी के वेश मे खुदसरी की तलाश है, तब तो मामला बेढब होगा। जबतक कुदरत की परिपाटी पलटती नही, तबतक तो यह कैवल्य की प्राप्ति कभी मुमकिन नही। वास्तविकता के निर्मम ठोस पत्थर पर सर पीटने से वही गति होगी, जो शायद आज यहाँ के पुरुषो को नसीब है। प्रगतिशील युग के अनुकूल चलने का मतलब प्रकृति के प्रतिकूल चलना नही हो सकता। ये परदा-तोड़ महिलाएँ परम्परा की गर्दन भले ही मरोड डाले; पर जो परम्परा के परे है, उसका पर बाँध देना हमारे और उनके—दोनो के—सामर्थ्य के परे है। वे सीने पर सवार होकर हमारी छाती से कलेजा भले ही निकाल ले, पर लाख सर पीटकर भी वे हमारी छाती से दूध न निकाल सकेगी!

पर, शायद यहाँ भूल हो रही है। उनकी शक्ति के परे तो इस विश्व मे कोई सत्ता नही। वे तो अबला नही, सबला है। कही शक्ति भी अबला हुई है? नारी प्रकृति है और प्रकृति ही विश्व की शक्ति है। वह न हो, तो ब्रह्म भी आँख रहते अंधा, कान रहते बहरा, चैतन्य रहते जड़ और आनन्द-घन रहते भी निरानन्द है। ब्रह्म भी अगर उसका दम नही भरता, तो आज कहाँ का रहता!

रावण के विजेता राम को जब सहस्रबाहु से मैदान लेना पड़ा, और उस पाताल-युद्ध मे इक्ष्वाकु-वंश की मर्यादा तिल-मिला उठी, तब उन्हे आप मालूम हो गया कि उनकी भुजाओं

को ख्याति कहाँ तक सच्ची है और अशोक-वाटिक की बन्दिनी अबला मे किस पौरुष की सत्ता है। शायद सीता न होती, तो रघुकुल की नाक कट ही चुकी थी।

शङ्कर को भी एक दिन शैल-सुता की प्रलयिनी शक्ति के सामने पैरो-तले ज़मीन नापनी पड़ी है।

अब देखना है आज की नई रोशनी की रफ्तार किस रंग पर आती है, किस दिशा मे मुड़ती है। अगर हमारी प्रगतिशील महिलाएँ मकान के आसपास मैदान न लेकर मैदान मे कमान लेना चाहती है, तो फिर स्नेहमयी जगज्जननी की इस महाकाली मूर्त्ति को हमारा करबद्ध कोटि-कोटि प्रणाम है!

त्रयोदश परिच्छेद

बिजली की चितवन ने अमीन को जाने क्या पिला दिया कि वह एकबारगी चूरचूर हो गया। कौन कहे, उन दो चंचल पुतलियों के स्पन्दन मे क्या इशारा है कि जमाने का एक ऐसा प्रवीण पारखी भी यों उखड़कर हथेली पर अपना सर्वस्व रख देने को तैयार है।

शायद डूबती-उतराती बिजली का आज अकेला वही सहारा है, बिजली के हृदय मे उसके लिए प्रगाढ विश्वास है —यही आन की अनी उसकी छाती मे धस गई। यह कुछ कर दिखाने का हाथ मे आया हुआ मौका क्या फिर आने को है! और कर दिखाने ही का क्यो, बिजली को अपनाने का भी तो यह सुन्दर सुयोग है! बिजली की आँखो पर आँख रखकर भर्राई हुई आवाज मे वह बोला—"बिजली!"

तीर निशाने पर बैठ गया। बिजली मुरकुराई —"अमीन!"

"तुम्हारे लिए जान हाज़िर है, जानेमन! मै तुम्हें शैतान के पंजे से नजात दूँगा।"

"मै जानती हूँ, तुम्हारी छाती मे वह हिम्मत है, तुम्हारी आँखो मे वह मुरव्वत है, और "

"और क्या, बिजली ?"

"और तुम्हारे बाजू मे वह कूबत है।"

"मगर तुम जाओगी कहाँ ?"

"कहीं भी। मुझे बनारस ही भेज दो। तुम्हारे साये मे "

सहसा अमीन गहरे विचारो मे डूब गया—

"नवाब साहब सुनेगे, तो तमकर म्यान से तलवार खीच लेगे मगर मुमकिन है, वह जोश मिट चुका हो। नवाबो का प्यार तो दूध का उबाल ठहरा; उठा और गिरा—घडी मे माशा, घड़ी मे तोला! मगर मगर नवाब साहब से साल मे हज़ारो का मुनाफा है। जाने कब से सरोकार है।

"वालिद को खबर होगी, तो फौरन बनारस-ब्रैंच मे दिल्ली बदल देगे। बिजली तो अपनी बिजली हो नही सकती। बावी मौजूद है। और यह आन-बान की बिजली किसी की ताबेदारी कभी कुबूल नही करेगी। यही तो इसकी खास खूबी है। जो हो, बनारस तो रहेगी! यही क्या कम है? परवाना बन कर मँड़राने का तो मौक़ा रहेगा! सरे-बाम पर रसाई तो होगी!

"मगर, बिजली, तुम्हारा बनारस चलना मेरे लिए मौत का सामना है।"

"वह क्यों ?"

"चूँकि मुझे परवाने की मौत नज़र आती है। और इसी मौत में तो इस ज़िन्दगी का मज़ा है। यह मेरी मुहब्बत की कशिश है जो तुम खिचकर बनारस जा रही हो!"

"अमीन, सच कहती हूँ, मुझे अफसोस है कि तुम मेरी ज़िन्दगी में पहले नहीं आये, वरना आज इसकी रवानी कुछ और ही होती!"

"पहले न आया—न सही, अभी क्या बिगड़ा है? तुम तो मेरी निगाह में बहार की नई कोयल—फ़िज़ाँ की नई बुलबुल—ही रहोगी!"

"बिलकुल दुरुस्त! मगर, अमीन, तुम आज़ाद नहीं और मैं अपनी आज़ादी की कुरबानी पर तैयार नहीं!"

"तो क्या तुम मेरी आँखों का पुतला होकर नहीं रहोगी?"

"आँखों की या हाथों की?"

"दोनों की!"—अमीन ने मुस्कुराकर कहा।

बिजली हँसी।

पुरुष जब स्त्री को प्यार करता है, तब उसपर सोलहो आने क़ब्जे की किलाबन्दी करता है। वह अपनी नज़रों के साये में उसे नज़रबन्द करके रखना चाहता है।

मगर बिजली इस नज़रबन्दी का मज़ा काफ़ी चख चुकी

है। एक नवाब के शिकंजो से निकलकर वह एक गुहरफरोश के हाथों की पुतली होगी? उसकी मुस्कान से तो खुद मोती झड़ते हैं! फिर एक मोती बेचनेवाले की ताबेदारी कैसी? कहाँ एक की फरमा-बरदारी—वह हज़ार में एक क्यों न हो, और कहाँ सैकड़ों झुकी गरदनों की सलामी! कभी दोनों एक हो सकती है? ज़मीन-आसमान का फर्क! वह तो उसके रुखे-रौशन पर परवाना बनकर मँडराता ही रहेगा! उसकी चितवन की कोर में सैकड़ों अमीन को नचाये रखने का जादू मौजूद है।

मगर बिजली साफ जवाब देने से हिचकती रही—चूँकि इस वक्त अमीन के सर पर पैर रखकर उसे कैद की खिड़की पर से बाहर कूदना है।

"तो फिर वहाँ तुम्हारा गुज़र ···"—अमीन ने फिर रुकते हुए पूछा।

"तुम ज़रा-सी फिक्र न करो। मैं जहाँ रहूँगी, गा-बजाकर भी पेट पाल लूँगी। तुम्हे यक़ीन दिलाती हूँ, मेरी शान-शौकत में कमी कभी न होगी।"

"मगर, बिजली! बाज़ार की खाक छानना··"

"अमीन!"—बिजली ने बात काटकर कहा—"ताबेदारी के बहिश्त से आज़ादी का जहन्नुम भी कहीं बेहतर है। मैं उसी बाज़ार की खाक पर बहार के बेल-बूटे न उगा दूँ, तो नाम बिजली नहीं!"

"सो तो मैं मान गया कि तुम जहाँ रहोगी, वहीं बहार—वहीं गुलज़ार होगा। मगर फिर भी · "

"कहो-कहो, रुके क्यों ?"

"तुम आज़ादी नहीं चाहती, खुदसरी चाहती हो।"

"मेरी निगाह में दोनों एक ही है। खैर, यह ख़याली पुलाव अभी रखो। पहले मुझे यहाँ से निकालने का तो छंद-बंद करो। और तारीफ यह कि किसी को कानों-कान ख़बर तक न हो, और कारवाँ गंगा के किनारे बात-की-बात में उतर पड़े। बनारस तक तो मोटर की सड़क होगी ही ?"

"क्यों नहीं ! मगर ठहरो, मैं इस चिडीतन के बादशाह को चलता करूँ। फिर तो रास्ता आप साफ हो जायगा।"

"किसको ?"

"अजी, मियाँ खुरशीद को !"

"शाबाश ! मगर, कब तक ?"—बिजली बागबाग हो गई !

"यही, दो-चार दिन में। फिर तुम्हें निकाल देना बाएँ हाथ का खेल है।"

"हाँ तुम एक ही होशियार ! मगर देखो, तुम पर कोई आँच न आये।"

"आने दो ! मुझे परवा नहीं। हाँ, मैं तुम्हारे साथ नहीं चलता। यह बिछखोपड़ा अहमद फौरन ताड़ जायगा। बस, हम-तुम आज से अलग ही रहे, ताकि किसी के कान न खड़े

हो। यहाँ कान भरनेवालो की कमी नहीं। मैं बनारस तार देकर तुम्हारे ठहरने के लिए एक मकान ठीक कराये देता हूँ। पहले तुम वहीं ठहरना। फिर जहाँ जी जाहे" "

"मगर, यहाँ से जाने का इन्तज़ाम ?"

'तुम बेफिक्र रहो। तुम्हें वक्त पर इत्तला हो जायगी।"

"तो कहते क्यों नहीं ? मंतर की फूँक पर उडा दोगे ?" —बिजली ने, मालती-लता का एक गुच्छा तोडते हुए, ज़रा बेचैनी से पूछा।

"तमाशा तो देखो! तुम्हारे पैर मे पर लग जायँगे!" —अमीन ने हँसकर कहा।

"आह! डियर-डालिग अमीन!"

बिजली ने जामे से बाहर होकर अमीन के गले मे हाथ डाल दिया और उस फूल की डली को अमीन के कोट के बटन-होल मे अँटका दिया। इस क्षणिक स्पर्श से अमीन की नस-नस मे जैसे मादकता की बिजली दौड़ गई। मालती-कुञ्ज की इस खिलवत ने उसकी—हाइड-पार्क के झुरमुटो की रहस्य-लीला की—मधुर स्मृतियों को झकझोर कर जगा दिया।

"बिजली, तुमने इस कलूटे कोट को ज़ीनत बख्शी, मगर इस अभागे होठ को "—अमीन ने मिन्नत-भरी निगाह से होठ दिखाकर कहा।

"वे तो आप ही गुलफुल है—खिल रहे है!"

"रस तो पडा नही, खिलेगे क्या खाक ? जबतक तुम्हारे होठ सीचते नही, तबतक "

"नही-नही"—बिजली ने मीठी भर्त्सना तानकर सरस 'नही' का सर हिला दिया।

अमीन हँसकर बोला—

"कोई मुँह चूम लेगा इस 'नहीं' पर।
शिकन रह जायगी यों ही जबी पर।"

बिजली उठी और अमीन के होठो पर एक सलील सुकुमार चुम्बन देती हुई चटपट कुञ्ज के बाहर निकल गई। अमीन ने हाथ पसारकर उसे भुजान्तराल मे बाँधना चाहा, पर बिजली भी कही अंक मे भरी जा सकती है ? वह मायाविनी थिरकती हुई होटल के बरामदे पर चढ गई, और वही से उँगलियाँ हिला कर बिदा लेती हुई आँखो से ओझल हो गई।

अमीन के होठो पर वह क्षणिक पुलक-स्पर्श उसे तोप के मुँह पर दौडा देने के लिए काफी था।

वह रसावेश की मौज मे झूम-झूम गया। गागर मे सागर भरकर छलक उठा।

बिजली जब कमरे मे आई, तो देखा कि बीचवाली मेज पर फल-फूल की डालियाँ रखी है। तश्तो मे ताजे फल भरे पडे हैं। ऊपर से जरी का तश्तपोश पड़ा है। निगाह सामने के कार्ड पर पड़ी, तो उसने उठाकर देखा। लिखा है—

With love,

—Amin

उसने समझा, जब वह लंच पर थी—अमीन ने यह डाली उसके कमरे मे भिजवा दी होगी; खानसामे ने यहाँ लाकर करीने से सज दिया।

मर्तबान और काबुली केले, जाफा और माल्टा के संतरे, अंगूर और खुबानी, सेब और नासपाती--सब कुछ मौजूद हैं। तरह-तरह के नीबू—गलगल और सिलहटी, काग़ज़ी और मोसम्मी। आम—मगही, अगबीन और तोतापरी, शाहबेला और फज़ली। चाकलेट और टॉफी भी है।

रंगीन कागज का एक चौखूटा बक्स भी है। बिजली ने ढक्कन उठाकर जो देखा, तो आँखे खिल गईं। कोमल क्रेप की किसमिसी साडी, किनारे पर कचनार के फूलों-जैसी कासनी बेल, तह मे कमरख़ी कमख़ाब का ब्लाउज़-पीस—उसमे भीनी-भीनी जैस्मिन की खुशबू।

भगवान जब देता है, तब यों छप्पर फाड़कर देता है!

चतुर्दश परिच्छेद

दिन के तीन बजे होंगे। आसमानी मैदान में स्याह-रू बादलों की घुड़दौड़ शुरू है। पुरवैया के झोंके खिड़की के शीशे पर हरहरा रहे हैं।

बिजली अँगड़ाइयाँ लेती हुई पलँग से उठी; टम्बलर में संतरों का रस निचोड़ा, और पी गई। फिर उठकर खिड़की के पास आई। शीशा खोलकर बाहर चौक की चहल-पहल देखने लगी। देखते-देखते तसवीर बन गई। अविराम जन-स्रोत! ताँता बँधा है।

खिड़की की चौखट पर लाल-लाल हथेलियों के बल सर टेककर न जाने वह कबतक बुत बनी रही। फूलों की लड़ी उसकी शिथिल कबरी से गिरकर उसकी छाती पर आ पड़ी है, मगर वह बेख़बर खड़ी की खड़ी जन-समूह की लहराती हुई बाढ़ की एक-एक तरंग को एक टक हेर रही है।

दो युवक सावन की कजली गाते झूमते चले आ रहे हैं। दूर ही से बिजली को देखकर ठिठक पड़े, चितवनों की तीरन्दाज़ी की, फिर ऊँची टीप से तान लेकर आगे बढ़ गये।

थोड़ी देर बाद बिजली के कानों में फिर कजली की वैसी ही पैठती हुई आवाज पड़ी। उसने जो गरदन उस ओर की, तो देखा वे ही दोनों लौटे आ रहे हैं—मस्ती में डूबे हुए। एक सर डुला-डुलाकर ताल दे रहा है; दूसरा सीना ताने और बाये कान पर हाथ दिये गा रहा है—

"झरोखे गाल पर हथेली दिये कौन है खड़ी?
भूली माला की गुँथन फूल गोद में गिरी!"

बिजली कुछ शरमाई, कुछ मुरकुराई, और झट खिड़की का पर्दा खींचकर गिरा दिया!

सहसा दरवाजे पर हल्का-सा खटका हुआ। बिजली ने मुड़कर देखा मियाँ खुरशीद तोबड़ा-सा मुँह लटकाये खड़े है!

इधर बिजली बड़े तपाक से सेक्रेटरी साहब का स्वागत करती—उनके आगे दीठ बिछा देती। जिस दिन से अमीन से खुलकर बातें हुईं, उसी दिन से उसने भाव पलट डाला। मगर, इस नये अन्दाज़ को वह इस अन्दाज़ से अदा करती कि मियाँ खुरशीद उसे नुमायशी समझकर कहीं कान न खड़े करें।

पहले तो वह उनकी सूरत देखकर नाक-भौं चढ़ा लेती थी; लेकिन अब उस कमान के चढ़ाव को उसने धीरे-धीरे उतार

डाला। वह अब उनसे भर-मुँह बातें करती, हँसती, सटकर बैठ जाती। कभी-कभी तो लापरवाही की एक अदा से कंधे पर हाथ रख उनके चेहरे की रंगत के उतार-चढाव को कुतूहली कनखियों से देखती भी।

अक्सर तीसरे पहर या शाम को वह अल्लाह-रसूल की तारीफ में उन्हें गज़लें सुनाती। आँखों में आँसू भरकर बड़ी दर्द-भरी ज़बान से अनीस और दबीर के मरसिये पढ़ती, उर्दू के शाहनामे से रुस्तम और असफन्दियार के पुरजोश किस्से बयान करती। और, जब कभी उनको खुशरंग पाती, तब हाफिज की- शहद की स्याही में लिखी हुई—गज़ल 'ताजा ब ताजा, नौ ब नौ' हारमोनियम पर इस मीठे स्वर से गाती कि वे मोम होकर फर्श पर लुढक पड़ते, और फिर दाढी पर हाथ फेरते, आँखें उठाकर फरमाते--"बिजली! जब तुम गा ही रही हो, तो लिल्लाह! उसे भी सुना दो—वही—"बुलबुल ज़ तो आमोखत: शीरी सखुनी रा सखुनी रा!"

बिजली उन आँखों में रस का आभास देखकर मुस्कुराती हुई कहती "ज़रूर, चचाजान! एक नहीं, दो सुनिये!"

बिजली ने इसी बीच उनको चचा बना लिया, और वे भी अब बड़े प्यार से बिजली का नाम लेकर ही उसे पुकारते!

बिजली ने देखा, उनका चेहरा आज उतरा हुआ है और वे किवाड़ के पास किसी सोच में चुप खड़े हैं। वह उनके सामने सोफा सरकाती हुई बोली—"आइये, भीतर आइये।

मैं तो आप ही की बाट जोह रही थी।"—उसने जरी किनारे की चिनियापोत साडी के आँचल से सीट को झाड डाला और उन्हें बैठने के लिए इशारा किया।

"क्या बताऊँ, बिजली! मै तो चला! यह तार देखो! नवाब साहब के सेक्रेटरी मिस्टर नूर ने शिकोहाबाद से भेजा है।"

बिजली समझ गई, इस तार की बुनियाद कहाँ थी..... ओहो! अमीन तो दूर की कौडी लाया है! उसने तार देखा, और होठों पर उँगली से थपकियाँ देकर अपनी पशोपेशी और बेचैनी ज़ाहिर की। बोली—"बडा गज़ब हुआ! कब जाते हैं आप?"

"बस, इसी शाम की ट्रेन से।"

"कौन ऐसी सख्त ज़रूरत आ पडी!"

"यह तो कुछ लिखा नहीं है · कोई बात ज़रूर होगी।"

"वापस कब आते है? मै · यहाँ अकेली"—बिजली ने रुँधे गले से कहा!

"खुदा पर—तुम्हारे ईमान पर—समझता हूँ, मैं परसों लौट आऊँगा। मगर, मेरा आना या न आना तो नवाब साहब के हाथ है! जैसी मर्जी—हाँ! देखो, कहीं इधर-उधर न बहक जाना।"

"आपकी भी क्या बातें हैं! मै कहाँ जाऊँगी?"—बिजली ने ज़रा आहत स्वर मे कहा—"कल दर्जी के यहाँ से उस

सरदई साड़ी पर बेल टँककर आ जायगी, तो फिर·····"

"मैं आकर बिल चुका दूँगा, इतमीनान रखो। बस, यही इल्तजा है, कहीं सैर-सपाटे मे न निकल जाना। मेरी सुफ़ेद दाढ़ी की आबरू तुम्हारे हाथ है। कहीं कुछ हो गया, तो नवाब साहब एक-एक बाल चुनवा लेंगे।"

यहाँ तो बिजली उलटे उस्तुरे से मुँडने को तैयार थी! पसलियों मे उपटती हुई हँसी को कंठ तक आते-आते वह पी गई।

वाह री नारी! तुम्हारी माया की उत्ताल तरंगों पर पुरुष की बुद्धि की तरी कहाँ तक तैर सकती है!

"मैं इस आराम को छोड़कर कहाँ मँडराती फिरूँगी—मुझे क्या पर जमे हैं!"

"हाँ, बिजली, एक बात मानोगी?"—मियाँ खुरशीद ने गैरमामूल ज़मीन से आँखे उठाकर बिजली पर रखी।

"एक नहीं, सौ, और वह भी खुशी से·····"

"खुदा जाने, तुम्हारे गले की सुरीली तान अब इस ज़िन्दगी मे सुनने को कब मिले, एक बार उसी गजल को सुना दो।"

"कौन—खुदा-रसूलवाली?"

"नहीं-नहीं; अजी वह, जिसे कल शाम को तुमने गाया था।"

बिजली मुस्कुराई और हारमोनियम लेकर फ़र्श पर बैठ-

गई। उसने बाजा छेड़ा और मुलायम स्वर में गाना शुरू किया—

"चश्मे जानाँ और है, चश्मे ग़ज़ालाँ और है,
तर्ज़े इन्साँ और है, तरकाबे हेवाँ और है!
...चश्मे जानाँ।"

"सच है—'माहेतावाँ और है, रुख़सारे जानाँ और है!"
—मियाँ खुरशीद आखे बन्द किये गुनगुनाने लगे।

"वह खुदा-रसूल की तारीफवाली गज़ल भी सुना दूँ?"

"नहीं-नहीं, ट्रेन का टाइम हो चला!"

शायद मियाँ खुरशाद ने समझा कि इस रसालनन्दन के वायुमंडल में शुष्क पतझड़ का झोका क्यों आने पाये! जिस मजलिस की शुरुआत खुदा-रसूल के यश-कार्त्तन स हुई थी, वह रुख़सारे-जानाँ की ज़यारत पर आकर खत्म हुई!

"तो एक छोटा बहर की चीज़ सुनिये।"

मियाँ खुरशीद जेब से घड़ी निकालकर टाइम देखते उठ ही रहे थे कि बिजली ने झूमकर फिर छेड़ा—

"रक्स-बिस्मिल पर कज़ा लोट गई,
तेग-कातिल पर अदा लोट गई!
हस पड़े आप तो बिजली तड़पी
बाल खाले तो घटा लोट गई।"

इधर मियाँ खुरशीद भी लोट गये। उनकी उँगलियाँ—न

जाने किस आवेश से चंचल—सोफे की पीठ पर भड़कतिल्ला छेड़ने लगी !

उनकी गोल-गोल आँखे भंटे की तरह फूल उठी। जो आँखे कभी बिजली के जूते के फुँदने से ऊपर नहीं उठती, वे उसके चेहरे की चाशनी में मधुमक्खियों की तरह लटपटा पड़ी।

बिजली मुस्कुराती जाती और उनकी आँखों पर आँख रख कर गाती जाती। गाना थम भी गया, तो उनका नशा न टूटा। कंधे के शाल-रूमाल पर बकरे की-सी दाढ़ी तार्थेई नाच उठी। वे गुनगुनाते ही रह गये—

"पाये-रंगी पर हिना लोट गई
... • पाये-रंगी .. • "

तबतक बाहरी बरामदे से खानसामे की आवाज़ आई—"हुजूर, मोटर तैयार है।"

"चलो, आता हूँ।"

मियाँ खुरशेद ठुमुककर किवाड़ के पास जा पड़े। एकाएक ठिठक गए, मुड़कर बोले—

"बिजली, जाने को तो मैं जाता हूँ, मगर • "

बिजली एक चौतालिया। गला कँपाती हुई कूक कर बोली—

"अजी वाह ! क्या जाना है ! जाइए तो मेर दिल से ?
ये माना, निगाहों से छिप जाइयेगा,
ख्यालों से बचकर किधर जाइयगा !"

"सच, बिजली ! तुम दिल से "

कि मोटर का हॉर्न कानों पर फट पड़ा और पेट को मार के डर के आगे दिल की मार को दिल ही में समेट कर वह खिचते-खिचाते सीढ़ियों तक जा पड़े और 'खुदा-हाफिज़' कहते चलते हुए।

उनका जाना था कि बिजली खिलखिलाकर हँसी और उछलकर सोफे पर लोट गई। वह खिल उठी कि जब वह इस खूसट खब्बीस के सूखे अंगों में भी रस का संचार उठा सकती है, तब वही चुटका बजा कर पत्थर पर भी दूब उगा देगी—और, मुस्कान से मोती कौन पूछे, हीरे-जवाहर भी बिखेर सकेगी!

उसके रंग-रूप में कुछ ऐसी शोख दिलकश माधुरी—कुछ ऐसी कमाल की बारीकी है, जो राह-चलतों की आँखों में भी रूह फूँक देती है। अगर इसी बारीकी की नोक को वह मुस्कान का सान देकर तेज़ कर ले, तो कुलिश के कलेजे को भी आसानी से चीर डालेगी। इसी हथियार को लेकर तो विश्व के मैदान में उसे दिग्विजय करना है।

एक ज़रा-सी मुरकुराती चितवन किस आसानी से पुरुष की बुद्धि को लखलखा सुँघा कर मुट्ठी में थाम लेती है, यह तमाशा तो कोई बिजली की बिजली गिराती नज़रों में देखता!

बूँदें फिर टपटपाने लगीं। कभी रिमझिम, कभी झमझम। साँझ होते-होते उसे फूलों के तोहफे के साथ एक कार्ड मिला,

जिसके पुश्त पर लिखा था—"आज बरसात की रात आज़ादी की रात है !"

बिजली ताड गई। आज बेड़ियाँ खुल रही है। वह वर्षा की झम-झम उसके कानो मे एक अश्रुतपूर्व संगीत की लहरी बन गई।

जो गीति-वन्या आज विश्व के ज़र्रे-ज़र्रे पर प्रवाहित थी—जो सुर-समुद्र आज आकाश से पृथ्वी तक उमड रहा था, उसी विश्व-रागिनी की मूच्छना आज बिजली की हृत्तंत्री पर बज उठी।

इस निखिल के मर्मस्थल मे जो आनन्द-हिल्लोल निरन्तर प्लावित है—और जिसकी सूक्ष्म सुरीली अशरीरी वाणी वासन्ती संध्या की नीरवता मे, सावनी जल-धारा की सजीवता मे, शरत् की चाँदनी के उजेले मे, गो-धूलि की रंगीन मेघ-माला मे, फूल-फूल के पुलक मे, तारो की निनिमेष झिलमिल मे, निर्झारणी के अजस्र निर्झर मे, रसाल-पल्लव के निशीथ-मर्मर मे, गंगा के हिलोरो मे, मलय-मारुत के झकारो मे, कभी-कभी किसी मंगल-मुहूत्त की अनुभूति के अन्तस्तल मे सुन पड़ती है, और न जाने किस निर्विकल्प स्पन्दन से अन्तर का ज़रा-जर्रा काँप उठता है—उसी आनन्द की वाणी को, उसी विश्व-वीणा की निःशब्द ध्वनि को, आज बिजली के दिल के कानों ने सुना, और वह वाणी--वह ध्वनि -उसकी धमनी की पोर-पोर मे खेल गई।

उसका हृदय असीम की इस अव्यक्त झंकार को पाकर आत्मीयता के रस-सञ्चार से भर उठा। वह विश्व-चराचर पर अपने-आपको नि.स्व लुटाकर फैल जाने के लिए उतारू हो गई।

वह जिस काम मे हाथ लगाती, उसे लगे हाथों निबटाकर ही दम लेती। उसने चटपट अपना कैश-बक्स खोला, जो कुछ नकद और नोट मिले, हैंडबैग मे रखकर कोठे से नीचे उतर आई।

नीचे मिस्टर अहमद मिले, तो उनसे शाम की सैर के लिए मोटर तलब की। मिस्टर अहमद उसे इस लिबास मे निकलते देख बोले--"इस बूँदा-बाँदी मे, लिल्लाह! कोट तो पहन लीजिये। उफ, हवा कितनी सर्द है!"

"ठंढी तो जरूर है, मगर सर्द नहीं"—बिजली लहराती हुई बढ़ चली।

"आप तो अकेली पड़ गईं। किसी को साथ कर दूँ?"—मियाँ अहमद ने फरमाया।

"पासबानी के लिए, खासदान उठाने के लिए!"—बिजली हँसती हुई बोली—"आप ही क्यों नहीं चलते?"

"मुझे तो आज एक टी-पार्टी का इन्तज़ाम है, वरना ज़रूर साथ देता। मिसेज़ सूर एक दोस्त के साथ कमरे मे 'पिग-पौंग' खेल रही हैं। खैर, मोटर तो ठीक कर दूँ!"

मिस्टर अहमद ने अपने एक विश्वस्त ड्राइवर को मोटर

लाने का ऑर्डर दिया और झुककर उसके कानों मे कुछ हिदायत दी। बिजली के होठो पर वक्र हास की विद्युत्-रेखा-सी चमकी।

वह सर झुकाये मोटर पर सवार हो गई। एक घंटे तक इधर-उधर घूमती रही। रास्ते मे चिथडो मे लिपटे गरीबो को देखती—लूले-लँगड़ो और अंधो को पाती तो मोटर रुकवाकर उन्हे पैसे की जगह रुपये देती और दुआएँ लेती।

ड्राइवर दाँतो उँगली काटकर रह जाता। उसे इस खब्त के ओर-छोर का कुछ पता नही चलता।

चिराग जलते जब वह लौटी, उसकी जेब खाली थी! पर उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो कहाँ का धन कमा लाई हो। ड्राइवर को इनाम देकर वह ऊपर गई और कमरा बन्द कर जल्दी-जल्दी ट्रंक और बिस्तर समेटने लगी। उसकी जीवनी-शक्ति आज दुगनी हो उठी। वह गुनगुनाती हुई हवा पर उड़ने लगी।

जब वह कैलिको-सिल्क की मयूर-कंठी साड़ी लहराती हुई डाइनिग-हाल मे उतरने लगी, उसके इस्तकबाल के लिए अमीन की प्राणमयी आँखे पहले से ही सामने मौजूद थी। वह एक-एक सीढ़ी झूमझूमकर उतरने की भंगिमा, वह ख़रामे-नाज़ की मस्तानी मौज क़दम-क़दम पर गुल कतर रही थी—गुल ही नही, दिल भी कतर रही थी,—अमीन से कोई पूछता

तो यही जवाब पाता ; उसकी निगाह मे आसमान से चाँद उतर रहा था।

वह प्राणो का अर्घ्य लिये विनीत खड़ा था। अरमानो ने बलाएँ ली, चितवन ने आरती उतारी, गरदन ने झुककर सलामी दी।

बिजली ज़मीन पर उतर तो आई, पर उसके पैर गोया ज़मीन के ऊपर थे, और अमीन का एक-एक ज़र्रा जैसे उस ज़मीन को चूम रहा था।

"बिजली! काश तुम इसी ख़रामे-नाज़ से मेरे दिल मे उतर आती!"

"क्या बताऊँ! तुम्हारे दिल मे जगह होती, तो अबतक सर के बल उतर गई होती।"

"जगह! तुम्हे जगह ही नही मिलती?"

"तुम्हारी निगाहो मे जगह ज़रूर है, मगर, दिल मे तो गुंजाइश नही। और अगर हो भी, तो मैं चोर की तरह आना नही चाहती। तुम्ही समझो—जब दिल तक रसाई नहीं, तो फिर आँखो मे गुज़र होकर ही क्या होगा?"

"क्यो? दिल तक रसाई क्यो नहीं?"

"इसलिए कि तुम्हारे दिल पर दावा किसी और का है।"

"दावा जो हो, मगर, यहाँ दिल तो वीरान पड़ा है!"

"मै तो वीरान मे जाती नही, मुझे चमन की तलाश है!"—बिजली ने हँसते हुए आँखें मटकाकर कहा।

"तो बस, तुम्हारे क़दम आने की देर है। एक-एक ज़र्रा गुल हो जायगा!"

"मगर, उस गुल की बुलबुल तुम्हारे घर मे मौजूद है, इसे क्यो भूल जाते हो? एक म्यान मे दो तलवार नही होती, अमीन!"

"बिजली, मेरी हालत पर तरस खाओ! ऐसी संगदिली तुम्हे नही फबती।"

"अमीन!"—बिजली बिलकुल पास आकर साँसी मे बोली—"मुझे अपने दिल पर सिल रखना है, ताकि तुम अपनी दिलरुबा बीवी से दिल फेर न लो।"

बिजली के हृदय मे आज सहृदयता का सोता उमड़ रहा है। उसकी इस महत्ता पर अमीन मुग्ध हो गया। थोड़ी देर सोचता रहा, फिर सँभलकर बोला "यहाँ वह सवाल नही। मुद्दत हुई, मैने उसे दिल से उतार दिया।"

"तुमने उतार दिया और वह उतर गई! इतना आसान समझ रखा है? दीवार की तसवीर है कि चढ़ाई और उतारी?"

"वल्लाह! रज़िया बिलकुल तसवीर-ही-तसवीर है। न ज़बान मे जुम्बिश, न मिज़ाज मे कांशश। बस, मिट्टी की मूरत ही समझो।"

"मगर, दुनिया मे एक बे-ज़बान मूरत की पूजा तो जाने कब से चालू है!"

"माफ़ करो, मैं बुतपरस्त नही हूँ! जिसे ज़बान नही·"

"...उसे दिल भी न हो, यह कहाँ की बात है ?"—बिजली ने बात काटकर कहा।

"मैंने तो आज तक नहीं पाया।"

"बन्दा-परवर ! दिल डालने से दिल मिलता है न !"

"सो तो मैं डालकर देख चुका हूँ—और खूब देख चुका हूँ।"

"कसम !"—बिजली अमीन की आँखों में आँख डालती हुई बोली—"चलो, अब बनारस में ही यह मसला हल होगा। हाँ जी, आज "

"ठीक ग्यारह बजे मोटर हाज़िर रहेगी। तुम पहले से तैयार रहना। और सुनो, दीवार के भी कान होते हैं। ख़याल रहे हाँ।"

"ख़याल हो नहीं, मेरी जान इसी पर टँगी है !"

अमीन चला गया। बिजली डाइनिंग-हॉल में दाख़िल हो गई।

अभी सबेरा है। वहाँ कोई चहल-पहल नहीं। मिस्टर अहमद किसी अमीर की डिनर पार्टी के इन्तज़ाम में सिगार का धुआँ उड़ाते व्यस्त हैं। मिसेज़ सूर, गाल के गुलाबी जमाल को प्याज़ी बनारसी साड़ी की दीप्ति पर सान धराये, कॉकटेल की उपासना में मसरूफ़। बिजली इतराती हुई उनकी टेबुल पर चली आई और वहीं खाने बैठ गई।

उस डिनरवाली रात की सीन के बाद बिजली कभी मिसेज़

सूर से भर-मुँह बोलती न थी, कन्नी कटाती चलती। जब कभी आँखो-आँखो मे संघर्ष होता, तब चिनगारियाँ निकल आती।

मिसेज़ सूर की जानिब से तो ऐसी कोई बात न थी - न बात होने की वजह थी, चूँकि होटल के प्रत्येक खोटे-खरे की नाज़बरदारी उनकी रोटी है। पर बिजली की धमनी की धारा तो कुछ और है। हाँ, दिलो के पहलू मे लाख तनातनी हो, सामने आने पर तो मुरकान ही की रस्म है। बिजली इस रीति से परिचित थी। मगर, कही 'चूमने चले और दाँत गड़ गये' वाली बात न हो जाए, इसलिए अलग ही से चितवन से मिल तो लेती, पर आँखो के आगे—बातो तक नही आती।

आज तो रंग कुछ और है। उसकी छाती उमड रही है।

उसने आते ही मिसेज़ सूर से बच्चो की खैरियत दरियाफ्त की; पानी और सर्दी से उन्हे बचाकर रखने की मीठी हिदायत की।

मिसेज़ सूर इस स्नेह-निदर्शन मे घुल पड़ी।

स्नेह की ज़रा-सी रश्मि किसी दिल पर की हिम-शीतल सिल को भी पिघला देने के लिए काफी है।

फिर तो बाँध टूटा और बातो का सोता खुल पडा। लैसो और रिबन की, साड़ियो के फ़ैशन की, बेलो के डिज़ाइन की, जम्परो के पैटर्न की चर्चा छिड़ गई।

जब टेबुल पर मीठे का अन्तिम कोर्स पास हो गया, तब बात-ही-बात मे वह मन की बात पर आई—"मिसेज़ सूर, मैं

ज़माने से सोचती चली आई कि आपको कुछ नज़र करती। मगर मौका न मिलने से दिल की बात दिल ही मे रह गई। आज आपको अकेली पाकर मुझे जुर्रत होती है।"

उसने एक जोड़ा मोती का झुमका धीरे से बढ़ा दिया। मिसेज़ सूर ने कनखियो से देखा कि झुमके कीमती हैं और नायाब भी।

"नहीं-नहीं, इसकी क्या ज़रूरत? आपकी नज़र काफी है....."

मिसेज़ सूर की ज़बान रुक गई। वे बिजली का यह रूपान्तर देखकर विस्मित हो गईं। यह उनकी कल्पनातीत बात थी। उसके दिल के इस पहलू का उन्हे बिलकुल पता न था। वह वज्र की तरह कठोर है, पर फूल की तरह कोमल भी।

मानव-प्रकृति के मैदान मे राग और विराग कदम से क़दम मिलाये चलते है। ज़मीन एक बार लू से तपती है, फिर रस के छींटो से हरी हो जाती है। आज पूनो की टहटही चाँदनी है, कल अमावस की अँधेरी यामिनी। यही विश्व-चराचर मे कुदरत की चिरन्तन लीला है।

इस जीवन मे ऐसा कोई चित्र नही, जिसके श्याम और उज्ज्वल दो पक्ष न हो। दुनिया मे न कोई निरा अच्छा है, न कोई निरा बुरा। न निछक्का पाप है, न निछक्का पुण्य। वेश्या की छाती मे भी दिल है और संन्यासी की छाती मे भी सिल। दिलके

साथ सिल है और सिल के साथ दिल। जिस कोष मे पराग है, उसी मे संचित आग भी है। जिस फूल मे रस है, उसी मे कहीं विष भी है, भौंरे उसमे रस पाते हैं—बर्रे उसी से विष लाते हैं। जीवन मे इन दोनो का जुज हमेशा मौजूद है—कम या बेश। जिस वायुमंडल मे जो प्रबल हो जाय, उसी का बोलबाला है। जब साम्य है, तब निर्दोष है; जब अति है, तब दोष है।

आचार मे भी अति कर देने से अत्याचार हो जाता है। दान के आतिशय्य से बलि का भी बलिदान हो गया। संन्यास की शिद्दत से भारत के गले मे भीख की झोली पड गई—उसकी प्रगति में जड़ता की बेडी लग गई है, उधर भोग-लिप्सा की ज्यादती से पश्चिम के ऐश्वर्य्य के मर्मस्थल मे हिंसा के विषाक्त कीटाणु पनप रहे हैं। यहाँ अत्यन्त अध्यात्मतत्त्व की खलल-दिमागी है, वहाँ अत्यन्त वस्तुतत्त्व की बदहज़मी। यहाँ निर्विकार शान्ति की जडता, वहाँ दुर्निवार अशान्ति की तांडव-लीला।

भलाई• या बुराई का न तो कोई विश्व-स्वीकृत नियमित तौल है, न मापदंड। ये न सत्य हैं, न नित्य। आज जो पाप के नाम से बदनाम है, कल पुण्य के नाम से वही नेकनाम हो सकता है। देश, काल और विविध परिस्थितियों की लपेट में धर्म और अधर्म की सूरत बदलती रहती है।

आसिन की धूप पहाड़ पर जितनी सुखद है, ज़मीन पर उतनी ही दुखद। एक की निगाह मे जो अधर्म है, मुमकिन है, दूसरे

की निगाह मे वही धर्म हो। हम गोमांस खानेवाले अपने पडोसी को जानवर समझते हैं, और वह गोमूत्र को पञ्चामृत समझकर पीनेवाले को गधा समझता है। दोनों की समझ का फेर है। गऊ की लाश के काश को मजेदार समझकर खाने से न कोई जानवर हो जाता है, न गऊ के मूत्र की बूँद को पवित्र मानकर पीने से कोई गधा ही हो जाता है। अपनी आँख की फूली नहीं सूझती, मगर दूसरे की आँख का मॉडा चटपट सूझ जाता है। एक को लाश मुबारक है, दूसरे को पेशाब। एक इतमीनान से उसे चबाया करे, दूसरा आनन्द से इसे पीता रहे। इधर शुद्धि या प्रतीति है, उधर कुरबानी या रुचि। आखिर दुनिया के तमाम मज़हब अंधविश्वास के जखीरे है, फिर इसमे आपस की चुनाचुनी या तनातनी की गुञ्जाइश कहाँ है!

मुश्किल यही है कि हम दुनिया की तमाम चीज़ों की, अपनी किताब की दर से या अपनी गली के बाज़ार की दर से, दर लगाते है। मगर, दुनिया मे न बाज़ार ही एक है, न दर ही एक है। इस विश्व मे हमारा ही दृष्टिकोण एक पेटेंट दूरबीन नहीं है। हम जब बाज़ार मे दूसरे की बहू बेटी को घूरते है, तब हमे यह खयाल नहीं रहता कि हमारी बहू-बेटी को घूरने के लिए औरों के भी वैसी ही आँखे है। हम यह भूल जाते है कि आँखे देखने के लिए है, घूरने के लिए नहीं। हम अपनी आँखो से अगर अपनी सूरत भी निरन्तर देख पाते, तो शायद

दुनिया मे हमे कोई भी सूरत बदसूरत नज़र नहीं आती, वरञ्च, मुमकिन है, हम यह समझते कि 'हर सूरत कलेजे से लगा लेने के क़ाबिल है'।

मिसेज़ सूर आँखे फाड़कर बिजली को देखने लगी। इस आन-बान और विलासिता की पुतली की छाती मे कहीं छिपा हुआ एक हृदय भी है, और उस हृदय मे स्नेह की हरियाली भी—यह एक अनहोनी बात-सी थी

बिजली, मिसेज़ सूर का हाथ थामकर, बोली—"मेरी नज़र क़बूल न होगी, तो सच कहती हूँ, मेरी दिल-शिकनी होगी!"

मिसेज सूर चुप हो गईं, सभलकर बोली—"यह आज पहला मौक़ा है कि मुझे एक लेडी से प्रेजेंट मिल रहा है। जेंटिलमैनों के प्रेजेंट तो कभी मतलब से खाली नहीं होते। मगर, शायद आपसे पहले इस होटल मे कोई दिलवाली लेडी आई ही नहीं—कम-से-कम मै तो नहीं जानती।"

बिजली खुश हो गई। कल मिसेज़ सूर का लहू पीने को तैयार थी; आज उनके लिए लहू भी बहा देती!

वह 'गुड-नाइट' कहती हुई उठी और सीधे कमरे मे चली आई कमरा बन्द करके वह मिस्टर अहमद को एक खत लखने बैठी। यहाँ की नियमित ज़िन्दगी से बेज़ार होकर वह निरुद्देश निकली जा रही है—यही सुर बाँधा। साथ-साथ

उसने माफी भी माँगी। वेटरों के लिए लिफ़ाफे में बीस के नोट रख दिये। आज उसका चश्मे-फ़ैज़ ओज पर था।

ख़त लिखकर वह खिडकी के पास आ खड़ी हो गई और सड़क के जन-प्रवाह को देखती रही। फ़ुहियाँ पड़ रही है। सड़क चल रही है। वह सोचने लगी—उसे भी तो इसी बरसाती रात में जाना है; पानी पड़े या पत्थर, दुनिया में कभी कोई काम बन्द होता है? तूफ़ानी आँधी-पानी में हवाई-जहाज़ कहाँ-से-कहाँ निकल जाते हैं!

उसने म्युनिसिपल लैम्प की रोशनी में देखा कि चिथडे में लिपटी हुई एक बुढ़िया, पानी से बचने के लिए, सामने की—बनिये की—दूकान के छज्जे के तले, दबकी खडी है। बनिया हाथ में सोंटा लिये उसे डाँट बता रहा है।

बिजली से न रहा गया। उसने चिल्लाकर बुढ़िया को पुकारा, और टप-से दो रुपये उसके सामने फेंक दिये। बुढिया ने झुककर रुपये उठा लिये, और दुआ देती हुई निकल गई।

होटल की चहल-पहल धीरे-धीरे कम होती गई। पर बिजली के हृदय की हलचल धीरे-धीरे बढ़ती गई! बिदाई की घड़ी सर पर आते ही कमरे की एक-एक चीज़ से उसके दिल में मुहब्बत उमड़ आई। जेल से भी छूटने के वक्त, आदमी को मोह सताने लगता है, यहाँ तो एक बहिश्ती चमन से आशियाना उठाना था।

उसके सुख-दुख के न जाने कितने दिन उसी कमरे में बीते

हैं! न जाने कितनी मधुर करुण स्मृतियाँ उन दीवारों पर अङ्कित है! उस पलँग से, उस आइने से, उस सोफे से, उस फर्श से और उस मेज़ से न जाने कितनी कहानियाँ जडित हैं! वह एक-एक से गले लिपट कर मिलती रही। शायद आज उन्हे छोड़कर जाते उसकी आँखे तर हो रही थी

गोल मेज़ पर कमल की शक्ल का एक फूलदान था। वह प्रतिदिन उसे झाड-पोछकर साफ रखती और अपने हाथ से ताज़े खुशरंग फूलों की डाली भरती। आज उसने उसे उठाकर छाती से लगाया और होठों से चूमा।

उसकी साडी का एक छोर आइने के हुक से उलझ गया। वह हुक से अपनी साड़ी छुडाने लगी, तो अचानक वह दिन याद आ गया, जब स्कूल जाते समय उसके आँचल का एक छोर आइने के दराज़ मे फँस गया था। उसे यह बात याद हो आई कि उसके अपने घर का कमरा भी ऐसा ही कुशादा और हवादार था। उसकी खिडकी भी कुछ ठीक इसी तरह सड़क पर खुलती थी, जिस पर वह घंटों खड़ी रहती—उसकी आँखे सलीम को ढूँढती और उसके कान घंटी की आवाज़ को।

अचानक ग्यारह का घडियाल बना। उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ, और बचपन के दिनों की वह धुंधली तसवीर आँखो से ओझल हो गई।

वह दौड़कर किवाड के पास खड़ी हो गई और सोचने

लगी—अमीन आता ही होगा, आकर किवाड़ खटखटायेगा, और वह इस होटल के जंजाल से मुक्त होगी।

वह उतावली हो गई। एक-एक मिनट मन्वन्तर हो चला। घड़ी की टिक-टिक उसकी छाती की धुक-धुक में लीन हो गई।

अब इस कमरे में एक लहमा भी ठहरना काल हो गया। उसे सन्देह होने लगा कि कहीं लैन फेल तो नहीं कर गया! उसे उन्माद ने आ घेरा। कमरे की एक-एक चीज, उसके लिए तलवार बन गई। उसने उन्हें तोड़-फोड़कर चकनाचूर कर देना चाहा। उसके तेवरों में बल पड़ गये। नथने फड़क उठे। जिन्हें आध घटा पहले अपने गले का हार बना रही थी, अब गरदन रेतने के लिए उनके ही गले पर सवार हो गई। आते गले में आ पड़ी।

उसने तड़प कर मेज़ से फूलदान को उठा लिया और घुमा कर खिड़की के बाहर फेंका। वह चीनी का फूलदान नीचे बनिये के छज्जे पर जाकर चनाक-से पड़ा और चूर-चूर हो गया। वह ठठाकर हँसी।

उसने दिल का बुखार फिर आइने पर निकाला। इस ज़ोर की उस पर लात मारी कि वह तिलमिलाता हुआ भड़भड़ाकर जमीन पर जा गिरा। वह चौंक उठी—किसी ने सुना तो नहीं! उसके रोंगटे खड़े हो गये। फिर बड़ी आजिज़ी और प्यार से उसे उठाया—जगह पर रख दिया; मगर उसकी

छाती पर जूते की ठोकर एक लम्बी लकीर बनकर स्पष्ट हो गई थी।

वह पलटकर किवाड़ के पास आई और कान देकर आहट लेने लगी। चारों ओर सन्नाटा। बूँदों की टिप-टिप इस सन्नाटे को और भी तीव्र कर रही थी। वह सोचने लगी—अमीन अभी तक आया नहीं, न किवाड़ पर ठोकरें पड़ी। अगर वह आकर किवाड़ न खटखटाएगा, तो वह नहीं जायगी? मुर्ग बाँग न देगा, तो क्या सबेरा न होगा?

नहीं, अब वह रुकती नहीं। अमीन आये या न आये, डर किसका है? वह पेटी कस चुकी है। जो सामने आयेगा, उसे तलवार के घाट उतार देगी। इस अँधेरी आधी रात को जागता ही कौन होगा? मियाँ खुरशीद तो है नहीं। जो दो-चार छोटे मुलाज़िम है, वे ठर्रा पीकर होटल के सकरपेशे में पड़े हुए है, और अगर सामने हो भी, तो बिजली उनसे समझ लेने के लिए काफी है। मिस्टर अहमद तो खर्राटे भर रहे होंगे। जागते भी हो, तो क्या करेंगे· होटल के बिल की धमकी? बिल की गीदड़-भबकी से बिजली अब बिल नहीं ढूँढ़ती। होटल का बिल नवाब साहब चुकाते चले आये, और न भी चुकाये हो, तो बिजली एक लहमे में चुका देगी। बस, एक ही जेवर काफी होगा।

·····नहीं, वह अब क़दम पीछे नहीं पलटती। सवारी न

मिलेगी—बला से, वह पाँव-पैदल ही स्टेशन दौड़ जायगी—बिजली गिरे या ओले बरसे।

अकस्मात् किवाड पर खटका हुआ। बिजली ने चट दरवाज़ा खोलकर देखा, तो अमीन खड़ा है—सर से पैर तक ओवरकोट मे ढका। वह बोला—"मिस्टर अहमद अभी अपने कार्टर मे गये। इसी से देर हो गई। जल्दी करो "

"बरसाती मे कोई ....."

"बस, मैदान ख़ाली है। मै देखता आया हूँ।"

अमीन ने चमड़े का सूट-केस उठाया और बिस्तर को बगल मे दबाया। बिजली ने हैड-बैग उठाया। दोनो दबे पाँव ऊपर से उतरकर नीचे लॉन मे आये, इधर उधर एक उड़ती निगाह फेंकी, और दन से फाटक से निकलकर सड़क पर चले आये। वहीं मौलसिरी की छाया मे मोटर खड़ी थी। असबाब चटपट मोटर मे फेक दिया गया।

बिजली, अमीन के होठों पर कृतज्ञता-सूचक एक सलील चुम्बन देकर, गाड़ी मे बैठ गई। अमीन की ज़बान से बिदाई की शुभकामना निकलने भी न पाई थी कि मोटर सर्राटे से निकल चली।

वह आराम से गुलगुले गद्दे पर लेट गई। उसकी नस-नस मे उल्लास की बिजली दौड़ रही थी। वह सावन की निशीथ-विभीषिका उसकी निगाह मे सुहावनी छटा बन गई।

कल सुबह अहमद के हाथ स किस तरह ह्विस्की का

गिलास छूटकर ज़मीन पर जा पड़ेगा और नवाब साहब के मुलाज़िमों के चेहरे पर कैसी हवाइयाँ उड़ती रहेंगी—इसी मनोरम दृश्य को कल्पना की आँखों से देखती हुई वह झूले की कजली गुनगुनाने लगी।

मोटर की खिड़कियों से बूँदों के छींटे गुलाब-पाश के छिड़काव हो रहे हैं। भीगी मिट्टी और भीगी वनस्पति के सौरभ से लदी हवा उसकी रूह को भी लखलखा सुँघाने लगी।

उसकी आँखें लगीं झिपने। वह सो गई।

सहसा मोटर रुकने के धचके से उसकी आँखें खुल गईं। उँगली से इशारा करते हुए ड्राइवर ने बतलाया कि सड़क के किनारे एक औरत की लाश-ऐसी जाने क्या पड़ी है!

कौन कहे, कहीं मोटर के मडगार्ड से धक्के खाकर वह गिरी हो।

बिजली सचेत हो गई। फौरन उतर पड़ी। पास जाकर देखती है कि एक जवान औरत बासी फूल-सी मुरझाई पड़ी है। साड़ी भीगकर शरीर में चिमट गई है। बिखरी लटें मिट्टी में लतपत हैं। चेहरे पर स्निग्ध करुण सुषमा की एक रेखा है। उषा की लालिमा पल्लव-पेलव कपोलों पर प्रवाल-लेखा की तरह दमक रही है। पास ही रामायण का गुटका फूलकर बासी लिट्टे हो गया है।

पानी थम चला था। हवा भी शान्त हो चली। बिजली ने ड्राइवर को नज़दीक के गाँव से गर्म दूध लाने को भेजा,

और खुद सूट-केस से तौलिया निकालकर उस मूर्च्छित की शुश्रूषा में तत्पर हो गई। उसके अंग-अंग को तौलिये से रगड़-कर पोंछ डाला। भीगी साड़ी खोल कर दूसरी साड़ी लपेट दी। एक गर्म जाकेट पहना दिया। फिर अपनी छाती में सिमटाकर गर्मी देने लगी।

उस स्त्री के चेहरे की कुदरती कुन्दन-सी कान्ति को देखकर बिजली न जाने क्यों लहू की लहर से चंचल हो पड़ी—और उसका मुँह चूम लिया।

तबतक दूध लिये ड्राइवर भी आ पहुँचा। बिजली ने उसके मुँह में दो-चार चमच गर्म दूध दिया, तो उसकी आखें खुल गईं। बिजली ने उसका सर सहलाते हुए पूछा—"कौन हो, बहन! कहीं चोट है?"

" ....."

"डरने की कोई बात नहीं, बोलो!"

"बेला...."

"यहाँ कैसे आई? घर कहाँ है?"

".. ... .."

"कहाँ जाना चाहती हो?"

"क्या कहूँ !"

"क्या तुम्हारा कोई अपना नहीं?"

बेला की आँखों में आँसू उतर आये। उसने सर हिलाकर कहा—"उहुँक्!"

"तो आओ, मेरे साथ चलो। हम दोनों की शायद एक ही मंज़िल होगी।"

बिजली ने उसे उठाकर मोटर में लिटा दिया, और खुद उसे सहारा देकर बैठ गई। मोटर छूट चली।

तृतीय खण्ड

बेला और बिजली

प्रथम परिच्छेद

शाम का सुहावना समय है—शान्त, सौम्य, श्यामल। फूली सेवती के परिमल से लदी हवा बह रही है—मन्द, मधुर, शीतल।

एक आलीशान दुतल्ले मकान की छत पर एक युवती और दो युवक बैठे हैं। युवती बिजली है, युवक—सुरेशकुमार और चुन्नीलाल। सोफे पर बैठा हुआ सुरेशकुमार, गाव-तकिये के सहारे लेटी हुई बिजली से, हँस-हँसकर बाते कर रहा है। एक अलग कुर्सी पर बैठा चुन्नीलाल सिगरेट का कश ले रहा है।

"क्यों, देवीजी आज नजर नहीं आतीं!"

"देवीजी कौन?"—बिजली ने हँसकर पूछा।

"अजी, वह—बेला बाई!"

"अच्छा! वह देवीजी कब से हो गई?"

"सो मत पूछिये। सनम के दर पर कोई धरम का उपदेश सुनने नहीं आता। बेला बाई तो लेक्चर झाडती हैं। फरमाती हैं--'तुम ब्राह्मण होकर शराब पीते हो, मुर्गी खाते हो, तुम्हे परलोक की फिक्र नहीं। राम-राम, तुमने लुटिया डुबो दी।' अब आप ही कहे, जमाने मे एक मै ही गया-गुजरा हूँ या और भी कोई है! बाराङ्गना का घर तो कोई गुरु का घर नही। साकी की जबान से शराबी की मरम्मत! वही मसल-देशी मुर्गी, विलायती बोल! यहाँ खाना-पीना गुलछर्रे उडाना न रहता, तो मैं यहाँ आता ही क्यो कर? जिन्दगी का लुत्फ उठाने आता हूँ या गुरु-मंत्र की दीक्षा लेने?"

"वह आपको दिल से चाहती होगी, इसीलिए मुमकिन है, चेतावनी देती हो। आखिर तो औरत··· "

"खूब! क्या दिल से चाहना है! कभी पास तो फटकती नहीं। कहीं छाती से लगा पाया, तो मालूम होता है कि संगमरमर के बुत को लिपटा रहा हूँ! हड्डियाँ अकड़ जाती है। उसे प्यार करना उसकी सज़ा करना है। भगवान जाने, बदन मे खून है या पानी। न होठो मे जुम्बिश; न तबीयत मे चुलबुलापन। इससे तो वही बेहतर था कि उसकी तसवीर को गले लगाता! यह गुनाह-बेलज्ज़त! आखिर बदनाम भी हुआ और इधर भरमुँह बोसा भी न मिला!"

"तो क्या दुलत्ती झाड़ती है?"—बिजली ने हँसकर पूछा।

"अजी, वह भी झाडती, तो एक बात होती। ठोकरे तो मिलती, कुछ हरकत तो नज़र आती! न सही प्यार, तकरार तो रहती! किसी हालत से एक छोर तो मिलता! मगर, यहाँ तो बिलकुल कुछ नहीं। गले से लगाते ही न जाने किस तरह अपने-आपको ऐसा समेट लेती है कि हिलाने पर भी नहीं हिलती। न जाने हाड-मास की देह है या पत्थर की। खुदा जाने, यह कैसा निराला अन्दाज़ है। मैंने तो आज तक न सुना, न देखा। न लहू का पता चलता है, न दिल का हवाला।"

"वाह! आप दिल हार क्यों चले? दिल डालने से दिल मिलता है। आज न वह बर्फ की तरह कठोर है! मगर जब प्रेम की आँच पर पिघलेगी, तो पहाड़ की चोटी से छूटी धार की तरह तमाम बाधाओं को तोडती हुई आपकी ज़िन्दगी में उमड पड़ेगी।"

"और मुझपर जो धर्म-कर्म की फबतियाँ चुस्त की जाती है!"

"यह भी एक निराला अन्दाज़ है। वह खुद भी न शराब पीती है, न भीट खाती है। आज सात बरस हम दोनों को यहाँ आये हो चले, मगर मैंने एक दिन भी उसे बगैर गङ्गा-स्नान किये, बिना पूजा-पाठ किये, मुँह में दाना डालते नहीं देखा। आप शायद जानते होंगे, उसने एक गाय पाल रखी है और अपने हाथों से उसे खिलाती-पिलाती है। जब वह उसका नाम लेकर पुकारती है, तब उस जानवर की जाँनिसारी देखकर

हैरत मे आ जाना पड़ता है। अलग एक कोठरी में राम की एक छोटी-सी मूरत भी है। यही मूरत उसकी जिन्दगी की किल्ली है। मैंने जो उसे गाने-बजाने की तालीम दी, वह उसे फल गई। आज वह बडे-बडे उस्तादो के कान तराश लेगी। भजन गाने मे तो उसने कमाल का अन्दाज़ पाया है—सुरूर मे सुर बाँध देती है, गले मे दिल डाल देती है। बस, भक्ति का सोता उमड आता है। आप कभी उसके मुख से 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन' सुनिये, तो आपके सर पर भी राम का जादू सवार हो जाय!"

"फिर तो आपकी बहन दूसरी 'मीरा' होगी! कहाँ राम की भक्ति, कहाँ वेश्या की वृत्ति! शायद वे आसमान-ज़मीन के कुलावे एक कर रही हैं। मैं यह पहले जानता, तो इस बहिश्ती गुलशन मे कदम भी न रखता। इस नन्दन-वन मे तो फिरिश्तो का गुजर होगा, मेरी क्या बिसात!"

"और क्या! उसका शरीर वेश्या का जो हो; पर उसकी आत्मा तो किसी देवी की है। यही तो ख़ास खूबी है। कहती है, दुनिया मे कोई भी रोज़गार ख़राब नही, जैसी नीयत होती है, वैसी ही बरकत होती है। बस, नीयत ही सब कुछ करती-कराती है। कभी-कभी तो ऐसा भी कह डालती है कि उसने किसी शाप को सर पर रखकर इस कूचे मे कदम रखा है।"

"ओ! यह बात है! फिर तो लीजिये, उसका रंग ही ज़माने से जुदा है। नई ज़मीन है, नया आसमान। यह

वेश्या-वृत्ति क्या है—किसी यज्ञ का अनुष्ठान है ! कहीं अहल्या की तरह कोई देव-कन्या शाप के वश पृथ्वी पर न आ पडी हो ! यह राम की भक्ति भी तो इसी खयाल को मज़बूत करती है ! अहल्या तो मुजस्सिम शिला थी और यह भी तो आख़िर सिल-ही-सिल है ! खैर, यह तो आपकी बहन की तारीफ़ हुई। और आपकी ?"

"मेरी ? मै तो महज़ बिजली हूँ और बिजली गिराना मेरा काम है !"

"क्या बात है ! आपकी तो एक-एक अदा की चुटकी जैसे दिल की रगे झंझोर डालती हैं।" मगर, मेरा मन्शा कुछ और था। आख़िर आपकी रुझान किधर है--राम से नाता है या इस्लाम से ?"

"दोनो से या किसी से नहीं। दिल के कारोबार मे राम या रहीम का तो सवाल नहीं उठता। साहब, मै तो आज तक किसी मज़हब की कैद मे नहीं पडी—

"हम इश्क के बन्दा हैं, मज़हब से नहीं वाकिफ़,
गर काबा हुआ तो क्या, बुतखाना हुआ तो क्या।"

"मै तो दिल तलाशती हूँ। वह काबा के साये मे मिले या काशी के कूचे मे, इसमे मुझे कतई बहस नहीं।"

"वाक़ई ! क्या बात है ! यह आजाद तबीयत की मौज है। कोई मज़हबी उलझन नहीं।"

"जी हाँ। मैने अपने दिल के पहलू मे मज़हब को कभी

तिल-भर भी जगह नहीं अता की। मुझे इस दुनिया के चमन में आजाद उडना पसन्द है। जिस डाल पर बहार के फूल हों, उसी डाल की मै बुलबुल हूँ। रम लेती चहचहाती फिरती हूँ! अगर, आशियाना ही बॉधना पडा, तो मुहब्बत की किसी शाख पर बॉध लूँगी। मजहब की कैद तो सैयाद का पंजा है। अगर दिल मे तंगी नहीं, तो—'बुतखाने मे काबा है, काबे में है बुतखाना'।"

"काश मै भी आपकी तरह आज़ाद रहता! मगर, क्या बताऊँ, यहॉ तो एक देवी की वेदी पर बलिदान का शिकार हो रहा हूँ और देवीजी की पलकें भी नहीं पसीजतीं!"

"पसीजेंगी क्यों नहीं! आप बेज़ार क्यों हो रहे हैं? अभी कुछ दिन और माला जपिये!"

"यही तो आप महीनों से बताती चली आईं, मगर देवीजी तो बस बुत बनी बैठी है।"

"सुनिये, सब्र की डाल मे मेवा फलता है। दिल डालने मे पत्थर भी पिघल पडता है। अभी वह आपकी जॉनिसारी का इम्तिहान ले रही होगी।"

"यह अच्छी रही—

"मेरी खाक भी लहद मे न रही 'अमीर' बाकी
उन्हें मरने ही का अबतक नहीं एतबार होता।"

"तो वाक़ई आप बेला को दिल से चाहते है?"

"आज दो बरस हुए, मैंने उसे गङ्गा के किनारे तुलसी-घाट

पर रामायण की कथा सुनते देखा। उसी दिन से वह मेरी आँखों मे खुब गई। फिर तो वह जिस र म के मन्दिर मे जाया करती थी वहाँ मैने भी चक्कर देना शुरू किया। वहाँ जब उसकी चितवन को न फेर सका, तो आखिर इस कूचे मे भी दाखिल हुआ। भगवान् जाने, मंज़िले-मकसद तक इस शरीर से पहुँचना लिखा है या नहीं। जब यहाँ आ पडा, तो यहाँ की आबोहवा से बचकर कहाँ जाता! शराब और कबाब का चसका लगा।"

"तो क्या मैने मीने की मोहिनी डाली? हरगिज़ नहीं। मुझे ज़माने से मालूम है, आप एक कुलीन सनातनी ब्राह्मण हैं। आपके घर मे बड़े-बड़े रजवाड़ों की पुश्तैनी पडागिरी है। बेला भी तो आपकी मयपरस्ती पर नाक-भौं सिकोड़े रहती है! मगर, देखती हूँ, आप पर कुछ असर नहीं पडा।"

"वाह! दुनिया की तमाम लज्जतो से हाथ धोकर बैठ जाऊँ और उसे भी न पाऊँ! परी नहीं, तो प्याली सही। घर पर तो कभी कुछ खा-पी नहीं सकता। यहाँ कन्नी कटाकर आ जुटता हूँ। देवी के दर्शन भी हुए, प्रसाद भी मिला!"

"अच्छा, आज मै बला के हुजूर मे आपकी अर्जी जरूर पेश करूँगी!"

"आप अगर जरा जोर दे, तो फिर मजाल है कि वह चूँ कर सके! आप क़ायदे से समझा दें कि आज क्यों उस पर ज़माना फिदा है। आखिर कुदरत के दरबार से उसे जवानी

का दमामी पट्टा नहीं मिला है। उन गालों की रंगीनी कुछ पारिजात की जवानी नहीं रखती। वह चितवन की चाँदनी कभी तो चिरागे-सुबह की लौ होगी? जब उतार के दिन होंगे, तो फिर यह सारी हैंकड़ी किरकिरी हो जायगी! आखिर यह भजन-पूजन का ढकोसला एक हद तक ही निभ सकता है।"

"वह तो मैं समझ गई। मगर यह तो बतलाइये कि आखिर आपकी अर्ज़ी क्या है?"

"पाँच सौ रुपये नकद माहवार, एक आलीशान हवेली, दो दरवान, एक मोटर और सुरेश की जाँनिसारी!"

"आज मैं उसे छेड़कर देखूँगी। मगर, शायद वह अपनी आज़ादी की कुर्बानी पर तैयार नहीं होगी। वह किसी की रखेली नहीं बन सकती।"

"तो क्या बीवी बनेगी?"—सुरेश ने कटाक्ष करते हुए पूछा।

"फ़र्ज कीजिये, वह यही तलब करे, कोई दूसरी सूरत न हो।"—बिजली ने छेड़ने की गरज़ से कहा।

"शादी·· - ?"

"जी हाँ।"

"ना भाई, यह तो कभी मुमकिन नहीं—आसमान के सितारे भी ज़मीन पर उतर आयें, तो भी नहीं।"

"समझ गई, आपकी तमाम लन्तरानियाँ महज़ ज़बानी लफ्फाजी थीं। दिल से सरोकार नहीं।"

"सो क्यों ?"

"चूँकि रखेली बनाकर क़ैद रखना उसकी तमाम उम्मीदों का ख़ून करना है। आज़ादी भी गई, शरीफों में गुजर तक न हुआ।"

"तो आज वह कौन शरीफों का सिरमौर है ?"

बात बिजली को लग गई। वह खीजकर बोली—"न सही शरीफ, आज़ाद तो है। किसी की चादर के खूँट में तो नहीं बँधी है! दिन अपना है, रात अपनी है, मन अपना है, बात अपनी है। यही क्या कम है? आप-ऐसे सैकड़ों शहर के शुरफ़े दरो-दीवार पर नाक रगड़ते हैं। बेला की शराफ़त को आप सौ जन्म में नहीं पा सकते। एक पैसा हराम का छूती तक नहीं। आप जिस हलाल की कमाई पर शेर बने हैं, मुझसे परदा नहीं है।"

"जो हो, मगर, आख़िर तो वह वेश्या "

"आख़िर तो आप पंडे! जो मेरी दूकान है, वह आपकी भी। मैं बदन ही बेचती हूँ, कुछ ईमान नहीं।"

बिजली का चेहरा तमतमा उठा था। वह सुरेश की बात पर बेहद खीज चली थी।

"खैर, यहाँ तो शादी का सवाल पेश था। शराफत-वाली बात जाने कहाँ से टपक पड़ी! हाँ, तो फिर' "

"तो फिर क्या ?"

"यही की शादी होगी किस क़ायदे से ? एक तो मै हिन्दू, हिन्दुओ का सिरताज ब्राह्मण, ब्राह्मणो का सिरताज कुलीन, और कुलीनो का सिरताज पंडा—यानी परलोक का पुरोहित। मेरी गिनती कुछ ऐसे-वैसे मे नही !"

"अजी, वाह रे पुरोहित ! क्या बाभन के घर मे पैदा होते ही परलोक की पतवार हाथ मे आ गई ? आचार कुछ सही, विचार कुछ सही ?"—बिजली ने ज़रा व्यग्य-भरे स्वर से पूछा।

"और क्या ? यह पैदाइशी हक़ है। जो ब्राह्मण है, उसी के हाथ मे परलोक की मौरूसी एजेन्सी है, दूसरे के नही।"

चुन्नीलाल बैठा-बैठा बातें सुन रहा था। एकाएक उबल पड़ा—"खूब ! और उसको यह भी पता न हो कि परलोक किस चिड़िया का नाम है ! यह तो ठहरे ब्रह्मा की औलाद, और कितने हैं जो सूर्य के वंशज बने फिरते हैं, गर्चे बिल्ली की चौकड़ी पर उनकी तमाम चौकड़ी क्यो न हवा हो जाय !"

"अच्छा ! आप भी किसी आसमानी सितारे की नस्ल के हैं क्या ?"—बिजली ने हँसकर चुन्नीलाल की ओर रुख़ किया।

"आप जानती नही"—सुरेश ने मुड़कर नहले पर दहला दिया—"ये जहन्नुम के हेडक्लर्क की औलाद हैं !"

"किरानी की औलाद ?"

"जी हाँ, किरानी की औलाद !"

"किस महकमे के किरानी ?"

"फौती महकमे के। मुन्शी लोग अपने इन्शा-परदाज़ी जोश मे किसी की दाल नहीं गलने देते थे, पूजा-पाठ के सिलसिले से फटकते चलते थे, लेकिन पंडितों के दिमाग़ ने यमराज के दफ्तर के सियाहानवीस को खड़ा कर—उनके कान पर कंडे की कलम, जेब मे छुरी, हाथ में दावात, बग़ल मे बस्ता देकर—एक रूप तैयार कर दिया। फिर तो हिन्दुस्तान के तमाम मुन्शी कलम-दावात की वजेदारी पर लट्टू हो गये और चटपट उनको अपना बुजुर्ग मान लिया। और, जब इस चकमे में आ गये, तो फिर उनकी जूतियाँ सर पर ढोनी ही पड़ी।"

"मान गई, आपके मुकाबले कायथ की खोपड़ी भी नहीं चल सकती !"—बिजली ने मुस्कुराकर कहा।

"मगर, यहाँ तो ज़रूर चल गई ! सुरेशकुमार टापते ही रह जाते, मगर बेला का पता न पाते। महीनों मन्दिरों की खाक छानते रहे। आखिर मैंने ही पता लगाया, और यहाँ लाया।"

"ओहो ! बड़े आये हो मर्द बनकर ! भला घर का पता बताकर तुमने कौन पहाड़ तोड़ लिया, जब उसके दिल का पता न ला सके ?"—सुरेश ने आँखे मटकाकर कहा।

"यह तो आपका मैदान है, मेरा नहीं। आप अपना जौहर दिखलाये। मुझे दिल डालना रहता, तो अबतक सीने से कलेजा निकाल लेता।"—चुन्नीलाल ने मूँछों पर ताव देते फरमाया।

"भई, मैंने तो उसके कदमों पर कलेजा तक निकालकर रख दिया, मगर वह मुड़कर देखती तक नहीं। अब सुनता हूँ, वह शादी पर तुली है!"

"मैंने यह कब कहा? महज़ अपनी तरफ से एक सूरत निकाली थी!"—बिजली ने पलट कर कहा।

खैर, अब यह सवाल है कि शादी कैसे होगी, कहाँ होगी? मैं पंडे ·· · ·"

चुन्नीलाल, सुरेश की तरफ आँख मारते हुए, बीच में कूद कर बिजली से बोला—

"हाँ जी, शादी मंजूर है। कलकत्ता में और ब्रह्म-समाज के क़ायदे से। मगर, वह पहले तैयार तो हो!"

"आप तैयार हैं भी?"—बिजली ने हँसकर पूछा।

"वह दिल से मिले, तो सुरेश उसपर हिन्दुस्तान का तख्त भी निछावर कर दे।"—चुन्नीलाल ने पट्टी लगा दी।

"सच!"—बिजली ने सुरेश के चेहरे पर आँख रखते हुए कहा।

"और क्या? मेरी लाखों की सम्पदा उसके कदमों

पर निछावर ·· ''—सुरेश, बिजली से नज़र चुराता हुआ, बोल ।।

"खैर, शायरी रखिये । अब फिर कब आते हैं ? आज तो बेला रामबाग मे भजन सुनाने गई है ।"

"तो कल इसी वक्त। और यही रात के खाने का भी माकूल इन्तज़ाम रहे ।"

"क्या खाइयेगा ? रबडी और पूरी ?"

"नारायण ! नारायण ! यही खाना रहता, तो मै यहाँ क्यों आता ? अजी, मुर्ग का मुरग्गन कलिया हो और ह्विस्की का फेनिल प्याला। और आपकी कल रातवाली जामनी साडी !"

"और बेला की ?"—बिजली ने बात काटकर पूछा।

"मेरे कलेजे के लहू के रंग की जल्लादी जर्री साडी, गुलेनार पोत का अँगिया। देखिये, वह कन्नी न कटाने पाये। भर-भर कर जाम देना होगा उसे !"

"और मै जो भरकर दूँगी, तो इनकार है ?"

"इनकार का तो कोई सवाल नहीं। वह लुत्फ, वह मीठी रकझक तो न होगी ! आपने सात बरस उसे पेशे की तालीम दी , मगर आज तक उसकी धुकधुकी छुटी नही। वन की हरिनी मानो भटककर गाँव के दामन पर आ पडी हो। किसी की आँख मे आँख पडी कि जैसे बिजली छू गई। कभी आँचल सँभालती है, कभी नज़र चुराती है, कभी मुँह फेर लेती है,

और मेरी घूरती हुई आँखों की चोट पर तो शर्म से सहमकर पानी-पानी हो जाती है। आप उसे लाख उभारें, मगर वह तो बस कुछ यों ही है। वही, अन्दाज़ कि—

'अँगड़ाई भी न लेने पाये वह उठाके हाथ,
मुझको देख छोड़ दिया मुस्कुराके हाथ।"

"आपकी निगाह में अभी तक वही तस्वीर नाच रही है?"

"जी हाँ, ख़ास करके—

"देना वह उसका सागरे-मय याद है 'निज़ाम'
मुँह फेरकर उधर को इधर को बढ़ाके हाथ!"

सुरेश हँसता हुआ उठा और चुन्नी की बाँह पकड़कर कमरे के बाहर निकल आया। दोनों टहलते हुए घर की तरफ बढ़े। सुरेश बोला—"भला चुन्नी! तुमने आगे बढ़कर शादी मान ली। तुम्हीं कहो, यह कभी मुमकिन है?"

"बस, रहे तुम यों ही! अजी, वह क्या तुम्हारे घर की बहू होने जा रही है?... अरे यार, कलकत्ते ले चलो। वहाँ, जबतक जी भरे, बीवी बनाकर रखना, फिर कुछ उसे नज़र-नेयाज़ चटाकर घर लौट आना। आख़िर तो रंडी ही ठहरी! वह क्या इस परिस्थिति को नहीं समझती?"

"मगर, भई! यह तो सरासर विश्वासघात है!"

"वेश्या के साथ विश्वासघात किस नीति से गुनाह है?

वह तो खुद धोखे की टट्टी है। 'शठे शाठ्यम्' कहावत तुमने सुनी नहीं ?"

"फिर वह माँ हो गई तो ?"

"तो क्या हुआ ? कुछ नज़र की रकम बढ़ा देनी होगी; और बस ! तुम्हारे कितने कठभाई यहाँ रंडियों के तबलची है। तुम्हारे पिता ने बड़ी बारीकी से उनको कुछ दे-दूकर टरका दिया।"

सुरेश चुप हो गया। उसने चुन्नीलाल से तू-तू—मैं-मैं करना मुनासिब नहीं समझा। उसके जीवन का ताना-बाना अलग था, साफ और सीधा।

सुरेश बनारस के एक मशहूर पंडे का लड़का है। रजवाड़ों से खासा आमदनी है। उसे खुद तो बत्ती की टेम भी नहीं झाड़नी पड़ती। नौकर-चाकर रोज़गार चलाते, वह पैर-पर-पैर रखकर चैन की सुरती बजाता रहता। दोहरी देह, लम्बी कलम, घुँघराली बुलबुली, उठती हुई कोंपल, नशीली झूमती आँखें, आँखों पर ऐनक, चौड़ी पेशानी, जुटी हुई भवें, हँसमुख चेहरा, खुलता रंग, वह एक होनहार जवान है। उसका बनारसी ठाट भी एक ही है—बारीक आबेरवा का पंजाबी, काशी-सिल्क की फीकी लवेंडरी चादर और जरी-कार की शान्तिपुरी धोती।

उसने तबीयत भी अजब रंगीन पाई है। हिन्दी और उर्दू की शायरी से खास दिलचस्पी भी है। 'पद्माकर' और 'पजनेस'

की केसर की क्यारियों का मधुकर होकर उसे दुनिया में रस और शृङ्गार के चयन और वितरण के अतिरिक्त कोई काम नहीं। उसे हर वक्त, गोकुल की गली चाहिये और झूले की कजली; मोहन की मुरली हो और गोपियों की अवली।

वह रस की कविताएँ निरन्तर पढ़ता या सुनाता और आठों पहर कल्पना के सहारे गोपाल और गोपबाल के विलास-मंडल मे विचरते-विचरते उसका भाव-प्रवण रसिक मन करील और कदम्ब के किलोल-कुंजो की क्यारियाँ ढूँढ़ने लगता। वह बनारस की असूर्यम्पश्या गलियों की खाक़ छानते-छानते व्रजवीथियो की साँकरी गली का स्वप्न देखता और कालिन्दी-कूल के विविध रस-विलास का आस्वादन उसे गङ्गा-तट पर किसी रोमैंस—किसी रहस्य-लीला—की तलाश के लिए विकल करता। पर गङ्गा न यमुना हो सकी और न बनारस बरसाने हो सका। कचौड़ी-गली न कुंज गली मे पलट सकी, न दाल की मंडी माखन की मंडी बन सकी।

उसकी प्रकृति-गत लज्जाशीलता उसे ढीठ नहीं होने देती। फिर भी 'मतिराम' और 'बिहारी' के लखलखे परकीया-कुंज की उन्मादिनी गंध की लपट लाये; 'अमीर' और 'आतिश' की मस्ती ने उसे मीने की परी की झलक दिखाई।

यद्यपि काव्य-कल्पलोक की रसधारा ने उसके चारों ओर एक अभावनीय रहस्य-माधुर्य का एक आवर्त्त खडा कर दिया; पर बनारस के स्थूल-जगत में उसे न तमाल-निकुंजो की माया

मिली, न वकुल-वीथियों की अभिसारिका ही। वह गङ्गा के तीर पर कड़ाके की धूप में पसीने से तर-ब-तर होकर अपने भावविभोर हृदय को सर पर लिये चक्कर काट आता; पर कोई भी आँचल पसारकर उसे मीठे स्वर में नहीं पुकारता कि आइये—"घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलिपुंज !"

सुरेश का यौवन-वेदना-स्पन्दित हृदय किसी निविड़ रस—किसी निविड़ स्पर्श—की तलाश में इधर-उधर मँडराया किया; और आखिर गंगा-तट की पुजारिन बेला की रहस्य-मधुर स्निग्ध चितवन उसकी आँखों में खुब गई। फिर तो वह धीरे-धीरे अधीर होता गया और तमाम बाधा और द्विधा को अमान्य कर उस कूचे की चहलकदमी जारी कर दी।

बेला तक उसकी रसाई हो गई सही, पर बेला के दिल का कपाट तो खुला नहीं। सुरेश ने उसके एक-एक अंग को हिला-डुलाकर देखा। उसमें विश्व का सौन्दर्य था, पारिजात का परिमल था, पर लहू का चांचल्य नहीं। उसे बू मिली, पर रस न मिला। उसने सर तोड़ा, पर बस न चला। फिर भी वह गुलफुल बना रहा। उसकी काव्य-वीणा को एक नया सुर मिल गया। उस सुर की झङ्कार में उन्माद की मूर्च्छना थी; उसके भावों के प्रवाह में अंगूरी का फेनिल उफान था।

बेला का सरल सुन्दर निश्छल व्यवहार, उसमें चटुल हाव-भाव का अभाव, उसकी चितवन का सुधासिञ्चन, उसका पुनीत भक्त-जीवन—यह सभी सुरेश की निगाह में किसी सुदूर

अज्ञात के रहस्य थे। उसके काव्य की सहचरी कल्पना अलौकिक रंगों की माधुरी मिलाकर उस मनोरम मूर्त्ति को मानस-पट पर रँगती रही।

सुरेश ने देखा, इस घर में अकेली बेला ही नायाब नहीं थी, बिजली भी विचित्र थी। एक सुरलोक की देवी थी, दूसरी इन्द्रलोक की किन्नरी। बेला में माधुरी थी, बिजली में चातुरी। उधर हया, इधर शोख़ी। उधर सौम्य आकाश की प्रसन्न नीलिमा, इधर लीला-चचल लावण्य की विलास-भङ्गिमा। ये दोनों दो विभिन्न लोक की प्रतिनिधि थीं और एक दूसरे का जवाब भी।

सुरेश ने बेला की चौखट पर आकर हज़ार बार सर पीटा, पर ख़ैरियत यही थी कि इस धमक से उसका दिल नहीं टूटा। वजह यह थी कि उसको मधुर रस के साथ-साथ हास्य-रस का भी चसका था। वह किसी चित्र के श्याम पक्ष को कभी देखता नहीं। खुशदिल और खुश-मिज़ाज—वर्त्तमान का उपासक!

चन्द साल पहले जब वह दो-चार दोस्तों के साथ विन्ध्याचल की सैर को गया था और चादनी रात में गङ्गा के किनारे बजड़े पर चकल्लस की पार्टी की तैयारी हो रही थी, उस वक्त ख़बर आई कि वह और उसका दिली दोस्त चुन्नीलाल मैट्रिकुलेशन के इम्तिहान में फेल हो गये। चुन्नीलाल तो चोट पाकर इस क़दर ऐंठ गया कि वह लुढ़ककर

गङ्गा मे जा पड़ता, पर सुरेश ने उसकी पीठ पर दिलासे की थपकियाँ दे-देकर हँसते हुए कहा—"वाह ! अजब सिडी हो ! इतने मे ही अंटागफील हो गये ! मुझे क्यो नही देखते ? मेरा उसूल तुम भूल गये ? जो बात बीत चुकी, वह बीत चुकी, जो आनेवाली है, वह आयेगी ही। फिर तुम्ही कहो, आज बहार का रात मे अतीत और भविष्य की तडपन मे पडकर हम होठो के सामने लहराते हुए गरमागरम पुलाव और कोरमे को ठंढा क्यो होने दे ! यह भी कोई अक्लमन्दी है ?"

चुन्नीलाल के चेहरे की शिराएँ खिची ही रह गईं, पर सुरेश के चेहरे पर एक शिकन तक न आई। उसके मिज़ाज की चुहलबाज़ी की लपटे दिल पर बादलो का कभी घिरकर जमने नही देती।

पार साल जब उसकी स्त्री अचानक मायके मे प्रसव-पीडा से चल बसी, तो ख़बर पाते ही उसने एक हाथ कलेजे पर रखा और दूसरे हाथ से फेनिल प्याले को होठो से लगाया। उसने आठ आँसू गिनकर उस बिचारी के स्मृति-तर्पण मे खर्च किये, एक दर्द-भरी कविता लिखी और फिर यारो के साथ चकल्लस की महफिल मे लवलीन हो गया।

उसकी शादी की चर्चा फिर चल रही थी, पर उसे कोई मनचीती पात्री नही मिलती थी। अब वह बच्चा नही था कि उसके पिता कुलीनता की वेदी पर उसे हलाल कर दे। वह स्वयं देखे-सुने बिना किसी भी अजनबी चिडिया को अपने

आशियाने मे जगह देने को तैयार न था। इसी बीच बेला की आँखों की माधुरी और साक़ी की सुराही की अंगूरी उसके दिल की तसल्ली के लिये काफी हो गई।

दिन-भर वह पलँग पर लेटा हुआ रस-भरी कविता पढ़ता या कुंजगली की बेला का स्वप्न देखता। घर का तमाम काम पिता के या नौकरों के सर पर था। सही-शाम ही वह शहर के बाहरवाले बागीचे मे गाने की तैयारी से निकल पड़ता और आधी रात तक सुर्ख़ आँख रँगे, मुख से पान-सुपारी और इलायची दारचीनी की खुशबू छोड़ते, घर लौटता। जिस मदिरा-मधुवन की सैर मदीरा से शुरू हुई थी, वह शेरी और पामरी की क्यारियों से होती हुई ह्विस्की की चोटी तक पहुँच गई।

चुन्नीलाल छाया की तरह सुरेश का साथ देता रहा। उसी ने खुशरंग प्यालों की क्यारी भी दिखाई। वह कायस्थ-बच्चा था और उसने पाई भी थी कायस्थ की खोपडी। भभूका गोरा, नाक ऊँची, पर बिल्ली की-सी आँखें। सुरेश की शायरी और सवैयों पर उसके मुक़ाबले दाद देनेवाला कोई दूसरा न था। चकल्लस की पार्टी के वक्त, बूटी मे बादाम और केसर के जुज़ घोटनेवाला उसके ऐसा कोई दूसरा सिद्धहस्त न था। होटल से जानीवाकर की बोतल को लपेटकर, बगल मे दबाये तमाम जनता की आँखे बचाकर, सुरेश के अलग कमरे मे पहुँचा देनेवाला उसके ऐसा कोई दूसरा विश्वासपात्र भी न था।

सुरेश अमीर है; चुन्नीलाल ग़रीब। पर, ग़रीब होने की वजह से भी उसे एक विचित्र अभिमान था। सुरेश स्वभाव ही से सीधा, सहृदय और चुन्नीलाल चुस्त-चालाक। जब चुन्नीलाल को रुपये-पैसे की जरूरत आ पडती, तब सुरेश दाँत मे तिनका लेकर उसे इस तरह देता, जैसे वह उसका अहसान ले रहा हो।

बेला के दरबार मे सुरेश की रसाई कभी न होने पाती, अगर चुन्नीलाल की मदद उसे न मिलती। इन्ही खिदमत की वजह से सुरेश अपने को सदा कृतज्ञ समझता और अपने भार को हल्का रखने की ग़रज से चुन्नीलाल के पैरो पर वह कंचन की डालियाँ लगाता। वह अपने परिजनो के सुख-दुख मे हाथ बँटाता रहता और मुहल्ले के गरीब-दुखियो पर भी एक आँख बराबर रखता। कितनो ने चकमे देकर अपना उल्लू भी सीधा किया, पर उसने कभी आँखे नही बदली।

लिहाज़ और मुरव्वत जिन्दगी की दो बडी न्यामते है, पर अगर वही आँख खुली न रही, तो ये जहर की बूँद भी हो जाती है। शायद आँखो मे जब पानी की बाढ आ जाती है, तब ज़माने की हवा का रंग परखना आसान नही रहता।

अमीरो की महफिल मे तोहा कहनेवालो की जितनी सख्त कमी होती है, उतनी ही वाहवाही देनेवालो की ज्यादती। यारो ने सुरेश को दिलदार पाकर उसे चंग पर चढ़ा रखा। सुरेश को अपनी कविता बडी मीठी लगती और उस कविता

पर दस की मीठी जबान की दादखानी दही पर चीनी का काम करती।

अक्सर दोपहर को मुहल्ले के मेहरबान दोस्तों की मजलिस बैठती और उनकी करतालियों के ताल पर कवि की तुकबन्दियाँ आसमान पर थिरकती। जब हवा बँधती, तब सुरेश को चारों ओर सब्जबाग ही नजर आते।

हवाई वाहवाही के प्रवाह में बड़े-बड़े बहादुरों के पैर उखड़ जाते हैं। कितने कठोरव्रती नेता, जिनके दिल पर न रूप की आँच लगी, न मोहरों की छाप पड़ी, इस साधुवाद की सुराही की सस्ती शराब की चाट पर पेंदा चाटने से भी बाज नहीं आते। किस सार्वजनिक जीवन की तपस्या इस मेनका की मोहिनी से बेदाग बच सकी है!

फिर सुरेश तो बचपन से ही दुलमुल-यकीन था। धीरे-धीरे बिरादरी के बूढ़े-बड़े भी उसके दरबारियों में दाखिल हो गये।

जिस दरबार में चारणों के बदले मंत्री और मुसाहबों ने भाट बनकर मंगलाचरण छेड़ा, उसका दबदबा बहुत दिन टिक नहीं सकता!

बचपन में सुरेश पलकों के पलने पर झूलता रहा। जवानी में भी उसे रेशमी डोरियों का हिंडोला ही मिला। माँ बाप ने उसे आराम में रखकर आरामतलब बना दिया, दोस्तों ने विलास का चमका देकर उसे विलास-प्रिय बना डाला और

काव्य ने उसकी पोर-पोर मे रस भरकर रसलीन कर दिया। इस भोगविलास के मखमली रास्ते पर उसे किसी जानिब से ठोकर नहीं लगी, इसी से उसे जीवन की चेतावनी नहीं मिली।

मुमकिन है, अगर वह अमारत की गोद मे न पलता तो उसके अन्तर की नाजुक वृत्तियो को आलस्य और विलासिता की चिकनाई पर फिसलने का मौका नही मिलता।

बिना पसीने की कमाई के जर से बढकर यौवन का दूसरा शनिश्चर नहीं, चैन और इतमीनान की परिमल-लदी मलय-लपट से बढकर उठती हुई कोपलो का दूसरा सङ्कट नही।

शायद भीगती मसो के लिए अभाव से कही ज्यादा भयङ्कर विभव का वायुमंडल है। घोली हुई सत्त की पिडुलियो से कहीं ज्यादा शरारत का जुज्र दही की छालियो मे है।

जवानी मे जब कोई लोहे के चने चबाता है, तब कही आगे चलकर दुनिया के मैदान मे लोहा ले सकता है। मगर मक्खन और मलाई से मुलायम मुँह मे लोहे के चने तोडना पहाड़ तोड़ने से कम नही।

जगत् के धुरन्धर यशस्वियो के जीवन की छानबीन हो, तो उनमे सैकड़े नब्बे ऐसे ही मिलेगे, जो अभाव की घाटियो

से ही होकर यश के शिखर पर चढ़े हैं। विभव की दिलकश रेशमी क्यारियों से दामन छुड़ाकर यश की पथरीली चोटियों पर चढ़ जाना आसान नहीं। पहाड़ की चढ़ाई पर बूट-सज्जित पैर, मुमकिन है, फिसल पड़ें, पर छाले पड़े नंगे पैर बेखटक आगे निकल जाते हैं।

बात यह है कि विभव में विकास की जो सुविधाएँ हैं, वे अभाव में नहीं हो सकतीं, पर साथ-साथ यहाँ ऐसे दिलफरेब ख़तरे भी हैं, जिनसे बचकर चलना तलवार की धार पर चलना है। अकेला अभाव ही मनुष्य को रसातल का रास्ता नहीं दिखाता विभव भी दिखाता है। या यों कहिये, विभव और अभाव पर किसी का बनना-बिगड़ना निर्भर नहीं; यह सब-कुछ स्वभाव पर निर्भर है।

सुरेश की खुशअखलाकी और नेकमिज़ाजी उसे विभव के विषाक्त वायुमंडल की लपटों से न बचा सकीं। वह अजातशत्रु होकर भी स्वभावजनित शत्रुओं से घिर गया। दस की वाहवाही की आबोहवा में किसे नहीं हवा लग जाती? उसने सहृदय हृदय तो पाया, पर उसे दुनिया का यथार्थ परिचय न मिल सका। वह चमन के फूलों के रंग और बू पर मस्त था, पर उनके कंटकाकीर्ण वृन्तों का उसे पता न था।

उसकी समझ की तंगी ने--अनुभव की कमी ने—उसके मन की सुकोमल वृत्तियों के आब को धूमिल कर दिया; और

आखिर उसके अन्तर की अतुल सम्पदा आराम और विलासिता के आवर्त्त में पडकर बेकार हो गई।

शायद जो दिलदार होता है, वह अक्सर समझदार नहीं होता, और जो समझदार होता है, वह अक्सर दिलदार नहीं होता। दिल और दिमाग़—दोनों का आब बराबर हो, ऐसा नायाब मोती दुनिया के समुन्दर में विरला ही मिलता है।

द्वितीय परिच्छेद

बनारस मे आकर भी बेला बेला ही बनी रही—बेला-सी कोमल, बला-सी विमल। शरद के हास-सी मीठी, रसाल की कोपल सी चिकनी, बालक के हृदय-सी सरल, मल्लिका के मुकुल सी मञ्जुल; माता के आँसू-सी निर्मल, आरती की शिखा-सी उज्ज्वल, विधवा की मुस्कान-सी करुण, सती की छाती-सी कठिन, नव वधू की लज्जा-सी मधुर, उषा के तुषार-सी सुन्दर।

बिजली भी बिजली ही बनी रही—बिजली-सी चपल, बिजली-सी प्रबल। अंगूरी की झाक-सी तीखी, नदी की बाढ़-सी भूखी, कामिनी के कटाक्ष-सी चुटीली, नृत्य की छन्द-लहरी-सी रसीली, पाजेब की झंकार-सी मत्त, यौवन की वासना-सी मस्त; मन के स्वभाव-सी चचल, कामना की किलोल-सी विकल; सावन के समीर-सी आतुर, मानिनी के सुहाग-सी प्रखर।

बेला लज्जाशीला कुलवधू की तरह महफ़िल में भी आँचल सँभालता रहती और ज़मीन से आँखें उठाकर किसी का आँखों के सामने लात ज़मीन में गड़ जाती। उसकी चितवनों में न जादू-नज़री थी, न चेहरे पर मीनाकारी।

बिजली के चेहरे की शान तो चाँद को चुनौती देती। सितारों में वह चाँद बनी रहती।

सारे शहर में उसकी डांड़ी बज गई। न उसके ठाट-बाट में कमी हुई, न आन-तान में। वह बाराङ्गना-सी तो होकर रही, पर कुछ दालमंडीवाली रंडी नहीं। मजाल न थी कि कोई मुजरे की गरज़ से उसके पास तक फटक जाय।

उसके हुजूर में उसी का गुज़र था, जिसके घर पर हीरे और मोती की फसल होती, और जबतक वह फसल तबाह नहीं होती, उसके मायाजाल से कभी मुक्त न था।

उसकी चितवन की बिसरी में पगी कटारी कलेजे को चीरकर बिठास भर देती, और शहर के शौकीन रईस अपना सरबस लुटाकर भी उस नश्तर की मीठी नोक को दिल में जगह देने के लिए हथेली पर जान रखते थे।

वह कभी किसी के घर गाने-बजाने नहीं जाती—वहाँ के वेश्या-समाज से मरासिम भी नहीं रखती। उसकी दुनिया ही अलग थी। यह बात और है कि दोस्तों के इसरार पर कभी कुछ हरमोनियम पर गा-बजाकर सुना दिया, या कभी जी चाहा, तो दो-चार अभिनव नृत्य-कला का इज़हार देकर

चमत्कृत कर दिया। उसकी गति और भङ्गी की छन्दलीला कला की कुलेलों की पराकाष्ठा थी।

वह एक प्रगतिशील प्रवीण फैशनेबुल लेडी के ढाँचे में ढली वेश्या थी, जिस लोग दिल में जो समझे, पर सामने आने पर बैठने के लिए कुर्सी उठाकर देते हैं; जिसकी कोमल कला की बारीकियों पर—संगीत और साहित्य की खूबियों पर—मुग्ध होकर सर झुका देते है।

उसे भोग-विलास में कोई नैतिक हिंसा तो थी नहीं, वह तो इसे केवल स्वस्थ शरीर की एक प्रकृत क्षुधा समझती थी। और, अगर शरीर की भूख के साथ-साथ पेट की भूख भी मिटती हो, तो फिर पुरुषों के स्वास्थ्य और धन किस दिन के लिए बने हैं?

उसे अमीरों को नि.स्व और बिस्मिल बनाकर तड़पाने में एक खास मज़ा मिलता। किसी के सीने से कलेजा निकाल लेना उसके बाएँ हाथ का खेल था। उस किरातिनी के तीखे तार ज़हर में बुझे थे।

उसके दिल में कहीं मुरव्वत की जगह न थी। मगर, यह बात जरूर थी कि अमीरों को इधर लूटती; तो कभी खुशामद के झोंक पर गरीबों को हज़ार लुटा भी देती। अजब थी उसकी तबीयत की रवानी! जिस रंग में आती, उसमें तूफान उठा देती।

पार साल उसने एक अनाथाश्रम बनाने के लिए पाँच

हज़ार गिन दिये। अपने तमाम प्रेमिकों पर टैक्स लगाकर उसकी जड़ भी मज़बूत कर दी। उसके लिए यह रकम कुछ बड़ी बात न थी। आमदनी बेशुमार थी, तो ख़र्च भी कसीर था।

बेला ने भी पूरी मदद की, पर उसकी औकात ही कितनी!

यों ही बिजली की कुत्सा के कीर्त्तन के साथ-साथ कीर्त्ति-कीर्त्तन की काकली भी थी।

बेला उस मकान के एक अलग किते में रहती। वह घर पर भी मुजरा सुनाती—बाहर भी। बस, एक बँधी हुई फीस—कोई फरमाइश नहीं। वह वेश्या के नाम से मशहूर तो हुई ज़रूर, पर वेश्या के प्रपंच से—वेश्या के छल-छन्द से—उसने अपने को अलग ही रखा।

जब वह बाहर किसी नवेद पर जाती, मनचले जवान उस पर मज़ाक की चुटकियाँ चुस्त करने से बाज़ न आते। उसके रूप की कशिश पर या लहू के जोश पर हाथ आगे बढ़ा ही देते थे, पर उसकी चितवन और चेष्टा से कुछ ऐसी रुखाई टपकती कि बीच ही में उन्हें हाथ समेट लेना पड़ता रहा।

किसे मालूम था कि उसके जीवन के अन्तराल में एक तीव्र हाहाकार छिपा है—वह वेश्या होकर भी वेश्या के आचरण से क्यों फटकी रहती है! जब बिजली साथ रहकर भी जान न सकी, तो औरों की क्या कहिए!

यह शुचिता का ढंग मुजस्सिम ढोंग है—यह आचार का

तूमार सैकड़ों चूहे हज़म करनेवाली बिल्ली का वैराग्य है—एक दिन इस आडम्बर की तमाम पोल खुल पड़ेगी—यही धारणा उसके विफल-मनोरथ प्रेमियों की बराबर रही।

बिजली ने बेला को गाने-बजाने की तालीम तो दी, पर लाख कोशिश कर भी उसे वेश्या सुलभ नाज़-अन्दाज की कला मे दीक्षित न कर सकी। उसके गले मे सुरीली तान की जादूगरी तो आई, मगर चितवन मे न विद्युत् कटाक्ष को बाजीगरी आ सकी, न मुस्कान मे ज़हर की बुझी छुरी। न ज़िन्दादिली पनपी, न मस्तानापन आया।

बेला अपने स्वभाव और शील की शुचिता से उस दूषित वायुमंडल मे भी वैसे ही प्रसन्न थी, जैसी काशी के सैकड़ों नाबदानों को पीती हुई प्रसन्न पुण्य-सलिला गङ्गा की निर्मल धारा। उसमे आबोताब के अभाव ने ही उसे बाज़ार मे नायाब कर दिया। इधर बिजली कमाल के आबोताब के प्रभाव से नायाब थी।

बेला पौ फटते ही उठकर गङ्गास्नान को जाती, नहा-धोकर मन्दिरों का चक्कर काटती, दीन-दुखियों मे चवन्नियाँ वितरण करती। घर लौटकर अपने हाथों से सरजू को सानी-पानी देती, उसकी आरती उतारती, राम का नाम लेती, रामायण गाकर पढ़ती और तब अलग चौके मे जाकर रोटियां सेंकती।

जब वह इधर खा-पीकर तैयार होती, तब उधर पलँग से उठकर जँभाई लेती हुई—या ग़ुस्ल-कमरे मे विलायती वर्ज़िश

मे मसरूफ—बिजली की आवाज कानो पर पड़ता—"बेला, टब के पानी म ज़रा लवेडरी साल्ट तो छाड़ देना। आर सुनती हो बहन, आलमारी से ज़री-किनारे की साडी निकाल देना—वह बुलबुल-चश्म जम्पर भी।"

बेला टब मे साल्ट छोड़ती, फिर साड़ी निकालकर चुन देती।

गुस्ल से निबटने के बाद बिजली आइने के सामने कुर्सी पर बैठकर प्रसाधन की तैयारी करती, तो बेला उसके लम्बे बालों मे कंघी देती, सँवारती और जूडे बाँधती। आपस मे इधर-उधर की कुछ बाते भी चलती। साथ-साथ बिजली टोस्ट भी कुतरती जाती। चाय की चुस्कियाँ भी जारी रहती। कभी बिजली के रूप-दीपक पर मँडरानेवाले पतंगों की चर्चा छिडता। किसके पर झुलस चुके, किसके बिलकुल जल गए किसके पर अभी जम रहे है कौन अभी अलग ही से चक्कर काट रहा है और किस तरह वह इस दीपक की लौ पर टूटकर पड़ेगा।

गरज यह कि बिजली बेला को उल्लू फँसाने की कला समझाती और पुरुषो के कलेजे के लहू की धारा पर अपनी तारीफो के पुल बाँधती। वह किस तरकीब से आज तक अमीन को उँगलियो पर नचाती चली आई और साथ-साथ बनारस के कितने रईसो को उलटे छुरे से मूँड़ डाला, इस कमाल के फ़न को तूल देकर समझाने मे उसे खास दिलचस्पी थी।

उड़ती चिड़ियाँ पहचानना या किसी के मन के चोर को ताड़ लेना उसी चितवन की ख़ासियत है, जिसे डूबने की लत है। और, बिजली की आँखो मे यह बाबत न होती, तो वह दुनिया को कभी चरा न पाती। उसे दिल टटोलने के लाखो लटके मालूम थे, पर उन्हे घोलकर बेला को पिला देना उसके इमकान के बाहर था।

बिचारी बेला इन्हे कहाँ तक समझ सकती और कहाँ तक इनपर अमल करती! वह कुछ सुनती, कुछ न भी सुनती; मगर हूँ-हूँ की झड़ी बाँधे रहती।

बिजली कभी झल्लाकर बेला को डाँट सुनाती "दुर पगली, तुझे दिल चीरना है, तो चितवन को कोर को तिरछी रख! सीधी आँखे क्या ख़ाक चोट करेगी? भला, तू इस तरह सहमी क्यो रहती है, लजाई-सी? तेरे कदमो मे न शोख़ी है, न तेज़ी। मैं वह दिन ढूँढ़ रही हूँ, जब तू आसमान पर कदम रखेगी। देख तो सही, मैं तेरे लिए घाट चराती थक गई, तुझे अबतक डोरी डालना भी नही आया। देखते-देखते हाथ से शिकार निकल जाता है।"

बेला सहमी हुई ज़बान से जवाब देती—"मैं नज़र डालना जानती, तो अब तक बाज़ आती?"

बिजली झिड़कती—"नही जानती! यह भी ज्यामेट्री का कोई फ़ार्मूला है, जिसे समझाने के लिए मास्टर की ज़रूरत है? यह तो स्त्रियो का पैदाइशी हुनर है। घर मे रहो या

बाजार मे, हर हालत मे इसे जानना है—इस पर अमल करना है। मुझे क्यो नहीं देखती ? मेरे क़दमो पर रुपये कुछ आसमान से नही टपकते। तेरे गालो की कुदरती मीनाकारी अकेली कहाँ तक रंग लायेगी !"

कभी नये फ़ैशन की साडियो और जम्परो की आलोचना होती, कभी नये गानो के सुर की चर्चा चलती। कभी किसी दिलचस्प नॉवेल के पात्रो पर बहस छिडती—किसी कविता की मार्मिकता की छान-बीन होती।

बिजली बेला का दिल गुदगुदाती—उसके सूने जीवन मे रस-संचार की बन्दिश बाँधती—उसे धार्मिक किताबो की उदास बे-लौस आबोहवा से साहित्य की हरियाली की ओर खीच ले जाती।

बेला की उदासीनता पर बिजली लाख झल्लाती सही; पर उसे दिल से प्यार करती; मन-ही-मन उसकी मीठी बातों—मीठी चितवनो—की आरती उतारती। दोनो के मिज़ाज मे—नाज़-अन्दाज़ मे—आकाश-पाताल का अन्तर ज़रूर था; पर उस अन्तर के अन्तराल मे एक गंभीर आन्तरिक स्नेह का समुद्र हिलोरे ले रहा था।

जब दो-पहर को बिजली सोती रहती, तब बेला अपनी किताबो मे डूबी रहती, या कभी-कभी जी ऊबता, तो छत पर खडी होकर विश्व की हिल्लोल-लहरी को हेरती—आकाश की सौम्य अनन्त नीलिमा पर आँख सेंकती, उसकी अपरूप

मायामय किरणों की छटा अङ्क मे भरती. ऊपर उडते हुए कबूतरो की कलाबाजी देखती, शून्य मे तैरनेवाले अलबेले बादलो की बेकली ढूँढती. सामने की मौलसिरी के पत्तो का मधुर ममेर सनती और किसी गंभीर अनुभूति के स्पन्दन से बार-बार काँप उठती ।

वह देखती कि दाहनी ओर छिछली बावली मे पालतू मरालो की अवली काँव-काँव करती हुई काई-कंकडी मे किलोले करती फिरती है, सडक के उस पार मिठाई की दूकान पर टिफिन की छुट्टी पाये हुए स्कूल के लडके दो दो पैसे के मगदल और चमचम खरीदने के लिए पिले पडते हैं, बिजली की बाँदी की बेटी 'बूँदी' सडक के पाइप से घडा भरते-भरते एक-आध मीठी मुस्कान और दो-एक चुटीली चितवन हलवाई के लौडे को नजर करती है, और उस उपहार के विनिमय मे दो-चार लड्डू या बताशे आँचल के छोर मे बाँधती हुई घडा सर पर रखे चौके मे झमक कर चली जाती है, मुरारि मिश्र की विधवा किशोरी वधू घर के तमाम जूठे बरतनो को आँगन में कुएँ के पास इकट्ठा करके सर झुकाये माँज रही है—पसीने से तर-बतर हो रही है, ओसारे पर बैठी उसकी सास अपनी गोद के नन्हे बच्चे को दूध पिला रही है और नथ हिला-हिलाकर बहू पर आवाज़ कस रही है ।

यो ही जब दिन का मेला धीरे-धीरे शिथिल होने लगता और गली के मोड पर 'बाँकुडी चूड़ियाँ— शरबती चूड़ियाँ'

को हाँक देकर चूडीवाला दृष्टि-पथ से ओझल हो जाता, तब दुपहरिया की अलसाई अंगड़ाइयो मे उदासी की एक लहर-सी उठ आती—साथ-साथ एक स्वप्नवाही शून्य रेखा बेला के अन्तर-पट पर खिच जाती।

वह छत के एक ओर साये मे बैठ जाती। जो निरानन्द निस्तब्धता प्रकृति के एक-एक ज़र्रे पर चुई पडती थी, वही निविड नि.सङ्गता उसके कलेजे मे मूक हूक बनकर धीरे धीरे सघन होने लगती। वह ताड़ की चटाई पर चित लेट जाती और उसके चारो ओर एक रहस्य-तुषार घिर जाता। इस जन विरल उदास दुपहरी मे वह किसी कल्प-लोक की रचना करने लगती या—भगवान् जाने—अतीत की चिता-भस्म को कुरेद-कुरेदकर किसी अमिट मुहूर्त्त की कणा ढूँढ़ने लगती। जो हो, इस चिन्तन के साथ-साथ न जाने किस स्मृति-तर्पण के निमित्त उसकी आँखो से आँसू का अर्घ्य जारी हो जाता।

तीसरे पहर का प्रसाधन कुछ विशेष आयोजन के साथ होता। बेला को भी रोजगार के लिए लैस होना पडता। बिजली की देख-रेख मे उसे साडी भी बदलनी पड़ती, लट भी सँवारनी पडती। चन्दनी साड़ी पर मुख की चाँदनी निखर पडती। ललाट पर कुमकुम की बिन्दी सोने की अँगूठी मे रक्त-मुखी माणिक की चुन्नी-सी लौ फेंकती। गालो के क़ुदरती जावक पर न किसी विलायती गुलाल के छींटो की ज़रूरत

थी, न खरबूजे की तरह सुर्ख होठों पर कोई नकली रंग चढ़ाने की हाजत।

बिजली जानती रही कि उसका न बेला-जैसा चाँद-सा मुख है, न मुख पर वैसा काला तिल, न वैसा सोने का रंग है, न रंग पर वैसा स्निग्ध माधुर्य। मगर, वेश-भूषा के विकास के फन में वह उस्ताद थी और बेला अनाडी। उसकी शोख़ी की रँगरलियों मे एक अजीब रंगीनी है, जो रंगीन तबीयतों पर बात-की-बात मे रंग जमा देती है। और, मुस्कान और चितवनों की तीरन्दाज़ी के मैदान मे तो वह धनुर्धरों मे धनञ्जय है।

साडियो के रंग और शेड के चुनाव मे वह अपना सानी नहीं रखती। वह अच्छी तरह जानती रही कि उसके शरीर की आभा पर किस रंग की साड़ी खुलेगी, उसके शरीर का रंग किस शेड की साड़ी पर फूट पडेगा, पहनने के वक्त कहाँ चुन देनी होगी, किस अजो पर चुस्त करना होगा, कहाँ खुला या ढीला रखना होगा—बाकि, उसके सुडौल स्वस्थ अंगो के उतार-चढ़ाव की दिलफरेब रेखाएँ शौक़ीनो के दिल पर नक्श हो जायँ।

आजकल साडी और जैकेट किसी के नाज़ुक बदन पर बारीक चिलमन का काम देते हैं। उन्हे तो एक-एक सुडौल अंग को परदे से इजहार करना है, उन पर परदा देना नहीं है। अगर, साडी के परदे से छनकर शरीर की रंगीनी खुलकर चमकी नहीं, तो फिर क़ुदरती तसवीर पर ऐसे घटाटोप से

फायदा ? अब परदे का जमाना ही कहाँ रहा और उसकी ज़रूरत ही क्या रही—खासकर इस गर्म मुल्क मे !

जब बर्फीले देशो मे विलायती मेमो ने गाउनो की बुलन्दी की धज्जियाँ उडा डाली और न्युमोनिया को अँगूठा दिखाकर हिमवान् के आगे खुला सीना भिड़ा दिया, तो फिर भारत की स्त्रियाँ इस तपिश मे खुली गदन के जैकेट भी न पहने ? यह भी कोई बात है ! और, जब उभार के ज़माने मे हर अंग पर नई कोंपलें निकल आती है, तो फिर हवाये-बहार से आँचल का सरकना कोई ताज्जुब नही !

तृतीय परिच्छेद

सात बज गये होंगे। कमरों में रोशनी जल चुकी है। बेला और बिजली दुमंजिले के बरामदे पर खड़ी है। एक की साड़ी कपूरी, दूसरे की फिरोजी। दोनों किसी खयाल में चूर हैं। बेला तो बुत बनी है, पर बिजली तो चुप भी रहती, तो पल-भर स्थिर न रह पाती। उसके लीलायित तन की गति-भंगी जारी है—बोटी-बोटी फड़क रही है।

वह खड़ी भी रहती, तो मरुत झूमती हुई; मानो अपनी ही मौज में लहरा रही हो। वह बेवजह हिलती और इठलाती, आँखें नचाती और मुस्कुराती, कभी आँचल सरकाती, कभी उंगलियों में आँचल का छोर लपेटती, कभी हाथ उठाकर अँगड़ाइयाँ लेती। बस, नस-नस में वसन्त-चाञ्चल्य की लपट!

बेला हँसकर बोली—"बहन, जब तुम खडी भी रहती हो, तो लगता है, जैसे कि तुम झूम रही हो!"

"सच! जानती हो, बेला, इस जमाने मे ठिठककर खडा रहना गुनाह है। बस, झूमते रहो, बढे चलो! यह लो, तुम्हारा कुँअरकन्हैया आ पडा। पीछे पुछल्ला भी है—चुन्नीलाल।"

बेला चुप खडी रही।

"देख लेना, वह आते ही कुछ रंग लायेगा। उसके चेहरे पर मजाक के हुरूफ साफ झलक रहे हैं। आँखों मे अगूरी की शोखी भी साफ है। याद रखना, आज वह यहीं खाने को भी कह गया है।"

सुरेश सीढियो से ऊपर चढ आया। वह बाँका-छैला बना है। बारीक सिल्क का पंजाबी और अडी की हल्की फालसई चादर। हाथ म चन्द बेले के फूल।

आते ही उसकी नजर बेला पर पडी, और उसने चट फूल-भरे हाथों को जोड़कर, आँख और मुँह बनाये, ध्यानपूवक वन्दना शुरू कर दी—

"यथा प्रदीप्त ज्वलन पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगा।"

"ये तो गीता क श्लोक है! अर्जुन ने जब भगवान् की वन्दना की थी! आप··"—बेला ने मुस्कुराकर कहा।

"क्यो नहीं, सनम का दर्जा तो भगवान् से कम नहीं!

बुत का रुतबा तो खुदा से बढकर है। मेरी वन्दना तो बेवजह नहीं। गौर फरमाये, कृष्ण ने ज्ञान-विज्ञान का अलौकिक उपदेश किसी तपोवन के वायुमंडल मे नहीं दिया था, दिया था युद्ध-क्षेत्र मे। मै जब यहाँ आता हूँ, आपको देखकर इस कुलीन ब्राह्मण के अन्तर मे कौरवो और पांडवो की सेना खडी हो जाती है और आप उन दोनो प्रतिद्वन्द्वी सेनाओं के बीच मे खडी होकर मुझे ज्ञान के उपदेश सुनाती हैं, तब मुझे भी तो लाज़िम है, अर्जुन की तरह आपके विराट रूप का अभिनन्दन करना!"

"आखिर इस अभिनन्दन का अभिप्राय?"—बिजली ने हँसकर पूछा।

"कहाँ का अभिनन्दन, बहन! यह चुटकियाँ हैं—चुटकियाँ!"

"ओ! यह रंग है! ज़रा मुझे भी तो समझाइये!"—बिजली ने भृकुटी पर बल देते हुए कहा।

"मै इस कूचे मे आकर जिस मरने-जीने के तमाशे को देखता हूँ, उसी को गा रहा हूँ—परवानों का शमा पर टूटकर आना और जल-भुनकर शहीद हो जाना!"

"अच्छा!"

"जी हाँ। इस महफ़िल में तो बगैर सर मे कफ़न बाँधे किसी का गुज़र नहीं।"

"सो क्यों?"

"चूँकि इस महफ़िल का यही लिबास है—इस दरबार की यही वर्दी है। आख़िर आशिक़ों के सर की पगड़ी तो दूसरी नहीं। मुझे भी परवानों मे नाम लिखाने का परवाना मिल चुका है!"

"तो पर भी जम चुके होंगे!"—बिजली मुरकुराकर बोली।

"जी हाँ! मगर अभी शमा तक गुजर नहीं; फानूस के इर्द-गिर्द पर मार रहा हूँ!"

"आख़िर आप हैं किस महफ़िल के परवाना?"—बिजली छेड़ने की गरज़ से आँखे मारती हुई बोली।

"यों तो जिस बज्म मे उल्फत की लौ मिले, मै जलने पर तैयार हूँ, मगर"—सुरेश ने बेला की तरफ इशारा करते हुए कहा—"यहाँ तो मै इस बुत-बेपीर पर कुरबान हूँ। मै जानता हूँ, आप जो तूफान उठा सकती हैं, वह इसके लिए कभी मुमकिन नहीं। बोल-चाल का सेहरा तो आप ही के सर है। बेला मे न वैसी तबीयत की मस्ती है, न वह जादूकलामी—खुशखरामी। न वे निगाहों के करश्मे हैं, न मुरकान के गुच्छे!"

"लिल्लाह! बस कीजिये!"

"मगर, इसकी छटा तमाम आलम से निराली कुछ और ही रंग लाती है। जब यह शर्म से नीची निगाह किये आँचल सँभालती है—झेपती हुई बेवजह सर पर सरकाती है, तब

वल्लाह ! कलेजा निकाल लेती है। यह एक अनोखा अनमोल ढंग है, जो मेरे जिगर पर टूटकर आता है।"

"बहन, ये कवि हैं। इनकी बातों में न आना। बातों में पर बाँधते हैं।"—बेला ने झेंपते हुए, बिजली की ओर मुड़कर, कहा।

"कुछ परवा नहीं, उड़ने दो। यही रंग सही। कविजी, मुझे भी कभी अपना कलाम सुनाते!"

"हाँ हाँ, शौक से। किस मजमून पर?"

"यही जो आप कह गये—आँचल सँभालने पर—यही सही!"—बिजली ने मुस्कुराकर कहा।

"जो हुक्म! लेकिन यह तो बतलाइये, माशूका हो या नायिका—बहार की बुलबुल या वसन्त की कोयल?"

"मेरे लिए दोनों बराबर हैं, लैला या ललिता। सनम के कूचे की बादे-सबा हो या गोकुल की गली के मलय का झोंका—जो हवा हो, वह दिल के पहलू से उठे!...."

"बस, मैं समझ गया। अच्छा, तो पहले एक पेग मँगवाइये, यों तो दिमाग की पपड़ियाँ खुलकर उभरेंगी नहीं।"

"तो बस, कमरे में सुराही और सागर दोनों मौजूद हैं। वहीं जाम का दौर हो!"

"और कलाम का भी!"—सुरेश ने हँसकर कहा, और कमरे में घुस गया।

कल्पना की परी को जगाने के लिए शीशे की परी की मदद

जरूरी थी। हलक के नीचे शराब उतरी और दिमाग़ की पंखड़ियाँ खुलकर रंग लाईं। फिर तो बात-बात में काव्य के छोटे बादल-से उमड़ आते।

बेला छत पर खुली हवा में चली गई। बिजली बरामदे में टहलती हुई चुन्नीलाल से बातें करने लगी।

"क्यों चुन्ना, कुछ गाढ़ी रकम दिलवाओ, तो मैं तुम्हारे दोस्त की अर्जी सरकार में पेश करूँ!"—बिजली ने छेड़ते हुए सॉसी से कहा।

"आप अर्जी मंजूर तो कराये! मैं दस्तबस्ता हाज़िर हूँ।'

"पहले यह तो बताओ, वह बेला को जो से चाहता है या महज़ शायरी का मसाला ढूँढता है?"

"जी नहीं, हुजूर! दिल का लगा है, कोरी दिल्लगी नहीं!"

"जो हो, तुम भी अपना कमीशन ले लेना। आखिर कहाँ तक?"

"आप बेफ़िक्र रहें। सा मन तल का कमी न होगी, पहले राधा नाचना तो कबूल करे!"

"यही तो टेढ़ी खीर है। खैर ..."

कि सीढ़ियों पर जूता खटखटाता दरबान आकर हाज़िर हो गया—"हुजूर, तार है!"

"तार?"

"जी हाँ।"

दरबान ने बिजली के हाथ में लिफ़ाफा दे दिया। बिजली

ने खोल कर पढ़ा, तो उसके होठों के अन्तराल मे मुस्कान की एक छीन रखा झाँक गई।

"क्यों, खैरियत तो है ?"—चुन्नीलाल ने पूछा।

"हाँ, अमीन आ रहा है। इसी शाम की गाड़ी से। आध घंटे मे पहुँच जायगा।"

"क्या वे बनारस मे नहीं हैं ?"

"नहीं। जमाना हुआ, घर गया था—दिल्ली। बीवी बीमार थी।"

"फिर तो आज पार्टी जमकर होगी !"

"अच्छा, तुम मोटर लेकर जाओ। स्टेशन से यहीं लेते आना।"

चुन्नीलाल खट-खट नीचे उतर गया।

"किसका तार है, बहन ?"

बिजली बेला की ओर मुड़ी और मुस्कुराकर बोली—"अमीन की बीवी चल बसी !"

"बिचारी · · ·"—बेला ने साँसी मे कहा।

"महीनो से भुगत रही थी। नजात मिली। जभी तो अमीन हफ्तो स दिल्ली मे अटका था। आज वह बनारस लौट रहा है।"

"ठीक है। यहाँ आने स दिल की कली खिल पड़ेगी।"—बेला ने जरा मुस्कुराते हुए कहा।

"तुम भी उडती हो, बेला !"—बिजली उसके चिबुक पर एक मुलायम ठुनक देती हुई बोली।

बेला और बिजली कमरे में दाखिल हो गईं।

"कवि महाराज! कहिये, कविता तैयार है?"

"जी हाँ, सुनिये!"

सुरेश ने एक चुमुक में गिलास के रस को हलक़ के नीचे उतारा और काग़ज़ हाथ में लेकर सुनाना शुरू किया—

आँख के उजार मों लालन पी प्यारे
कच कारे घुँघराले की छाया तन डारि दै।
कान मा राखो कान्ह सुनिये दे कान बिनय
कुंजन बिहार छाड़ि दुखिनी निहारि दे॥
मुरली धर दीजै औ मुरलीधर देखा य
मारुत झँकोरन के दुख ये निवारि दे।
दुहूँ कर फेस्यो है गागर सर हाथ धरयो
उर उघरो ह, नक आँचल सम्हारि दै॥

"वाह! आपने तो क़लम तोड़ दी! एक एक पद में जान फूँक दी है! बेला, क्या उधर बुत की तरह खड़ी हो? ज़रा इस कलाम क जौहर का दाद तो दो। मै होती, तो मुँह चूम लेती!"

"काश बेला के भी दोनों हाथ योंही फँसे रहते और वह मुझे योंही आँचल सँभालने को" "—सुरेश ने सीने पर हाथ रख एक सर्द आह ली।

"आप योंही रस की धार सींचते जाइये। कभी तो उसके दिल की कोपलें सरस होंगी ही।"

"मैं तो सींचने के लिए तैयार हूँ, मगर हाँ, उधर से थोड़ी भी मदद मिलती, तो आप देखतीं कि मेरी कविता की क्यारी में कैसे नायाब गुल-बूटे निकल आते हैं!"

"कैसी मदद चाहिये?"

"अजी, ज़रा काव्य के अनुरूप रूप होता। यहाँ तो पैरों में न मेहदी है, न महावर, न मञ्जीर का शिञ्जन है, न घुँघरू की रुनझुन। जूते-मोजे आकर चरणों के चटक राग रंग को चट कर गये। अब आप ही कहें, कवि का रंगीन हृदय काले-कलूटे जूते के हचर-मचर पर खाक लोट-पोट होगा! काश, आँखों में मेघकज्जल अञ्जन होता—होठों पर पान का कुंकुम, माथे पर बिन्दी, कमर में किंकिनी, कपोलों पर चन्दन का राग, अङ्गों में केसर का पराग ..."

"कवि महाराज! आप ख्वाब तो नहीं देखते! अब तो न गोकुल की गली है, न मञ्जीरों की मुरली। आरतों की नज़ाकत के दिन गुज़र गये। अब आप उन्हें गद्दों की दिलफरेब बेडियों में बाँधकर नहीं रख सकते। आपको अपने काव्य की क्यारी बदलनी होगी, कल्पना की दौड पलटनी पडेगी। वह दिन करीब है, जब औरतें खुद कमान लेकर मैदान में उतरेंगी!"

"आखिर यह हथियारबन्द होकर मैदान लेने की जरूरत तो नज़र नहीं आती। हम तो योंही जान दिये बैठे हैं! आपके आबरू को तो कुदरत ही ने कमान दे रखी है—एक-एक अदा

मे तमंचे की चोट भर दी है। मुस्कान मे शमशीर है, चितवन मे अक्षय तूणीर। पाञ्चजन्य की टनक चूड़ियों की खनक मे है, गांडीव की टङ्कार मञ्जीर की झङ्कार मे!"

"बस-बस, फिर वही शायरी—एक ही पेग पर धुन सवार हो गई! भई, अब इन लन्तरानियों मे हिन्दुस्तान की औरतें आनेवाली नहीं। यहाँ मञ्जीर ही कहाँ रहा जो झङ्कार होगी!"

"न सही मञ्जीर, आपके गले की झङ्कार किस टङ्कार से कम है! एक तान मे कलेजा निकाल ले!"

"पंडाजी, अब औरते इस जनानपन को जूती की नोक पर मारती हैं। आपको पता भी है, हम आज क्या चाहती हैं?"

सुरेश इस 'पडा' नाम पर खीज गया। झिझककर बोला—"बीबीजान, आपके साथ यह सवाल नहीं कि आप क्या चाहती हैं। आपके साथ तो सवाल यह है कि हम क्या चाहते हैं! हमारी चाह आपकी चाह की कुंजी है। हम आपमे जिस तसवीर को ढूँढते हैं, वही तसवीर आपकी जिन्दगी का लक्ष्य है, कोई दूसरी मनमानी तसवीर कभी मुमकिन नहीं। कोई ज़माना क्यों न हो, नारी के अस्तित्व की भित्ति यही रही है और यही रहेगी। जबतक हमारी निगाह मे औरत का ज़नान-पन रंग रखता है, तबतक आपमे मर्दानगी कभी पनप नहीं सकती। यही Psychology है। मर्द के हाथों मे चूड़ियाँ कभी आब नहीं देती, औरत के चेहरे पर मूंछें कभी ताव नहीं लेतीं। आपकी निगाह मे जो क़द्र हमारी चौड़ी छाती की है,

वही क़द्र हमारी निगाह मे आपकी उभरी हुई छाती की है। जो लुत्फ आपको जूड़ा बाँधने मे है, वह कभी परतला बाँधने मे नही मिल सकता। आप बन्दूक़ छतियाने से दूध-पीते बच्चे को छतियाये रखना ज्यादा पसन्द करती है। यही कुदरत का फ़रमान है। जीवन के रण मे चारो ओर झनकती तलवारो मे घुमकर मारना और मरना आपका काम नही। हाँ, उस जंग मे घायल बिस्मिल को सेवा का रस पिलाकर ज़िन्दा कर देना आपके बाएँ हाथ का खेल ज़रूर है। मैं समझता हूँ, आपके जीवन की प्यास हमारे दिल की तलाश है; और हमारी दिली तलाश औरत के भीतर नखडा है—नाज़ है—हुस्न है—अन्दाज़ है—सिगार है—साज है—शर्म है—लिहाज़ है।"

"बस-बस, मैं समझ गई। आप उसे अपनी लालसा की पुतली बनाकर रखना चाहते हैं। मगर उसे सिगार के माया-जाल मे—जेवरो की मनोहर जंजीर मे—बाँध रखना अब मुमकिन नही। अब औरत की प्रगति के लिए मद की अनुमोदन-दृष्टि की ज़रूरत रही नही। आज वह आज़ादी की दीवानी है। जीवन के मैदान मे अपना क्षेत्र वह आप चुन लेना चाहती है।"

"माफ़ कीजिये। आप हवा पर उड़ रही हैं। ये सब बहस की बाते हैं। यह आपकी बुद्धि की माँग है, आपके हृदय की नही। आप ज़बान से कुछ और चाहती हैं, दिल से कुछ और। जब इधर ज़बान से 'ना' निकलता है, तब उधर दिल से 'हाँ' उठता है। यह आपका निराला अन्दाज़ हम रोजमर्रा देखते

हैं। उधर भवें तनती है, इधर पलकें झिपती हैं। औरत की ईर्ष्या लाख प्रलयिनी क्यों न हो, उसका गुस्सा गुलाब का काँटेदार फूल है। आप नई रोशनी की तालीम पाकर आजादी का राग लाख अलापती रहें, मर्दों से मैदान लेने के लिए आप हजार आसमान सर पर उठा रखें; मगर यह तमाम झंकारेबाजी आपके दिल की बेकली नहीं—आपकी खलललदिमागी है। पुरुष की गुलामी का ज़िक्र होते ही आज औरत बल्लियों उछल जाती है। मगर, उसी गुलामी में, उसी सेवा में, उसके दिल की कली खिलती है—उसी जाँ-निसारी में उसके जीवन की सजीवनी है, इसीलिए आपका यह हवा बाँधना मुझपर कुछ रंग नहीं ला सकता, चूँकि हम जानते हैं कि आपकी प्रकृति क्या है, कुदरत ने आपको क्या दिया है—क्या नहीं दिया है—आपकी दिली आरजू क्या है—आपकी तलाश क्या है।"

"आखिर वह क्या है?"—बिजली ने तिनककर पूछा।

"स्त्री को न धन की तलाश है, न यश की, न पद की, न गौरव की, न मान की, न ज्ञान की। वह ढूँढ़ती है—पुरुष के प्रेम की छाँह, वह ढूँढती है पुरुष की निर्भरशील बाँह। वह हरगिज आजादी की दीवानी नहीं। यह महज ज़माने की लन्तरानी है।"

"मैं हरगिज़ इस तसलीम नहीं करती।"

"सच है, आप कभी इस तसलीम नहीं करेंगी; आपका

स्वभाव ही ऐसा है। स्त्री का कारोबार स्वप्न से है, सत्य से नहीं। स्वप्न मनोहर और कोमल है, सत्य कठोर। मनाने से औरत नहीं मानती—चूँकि इससे उसके मान पर आघात पहुँचता है। गुस्ताखी माफ हो, नारी को ज़नाना ही रहने में कुशल है—चूँकि उसके ज़नानपन की दौड़ मर्दों के दिल तक है। वह मर्द नहीं हो पाती, न सही, मगर पैदा तो करती है मर्द! यही क्या कम है? अगर वह पर बाँधकर पुरुषों की पाँति में उड़ा चाहती है, तो आधा मुर्गे आधी बटेर होकर कहीं की नहीं रहती। कहीं पर बदलने की जगह पर न निकल आवे! एक तो वह नारीत्व के गौरव से गिर जाती है, दूसरे इस शरीर से वह उस पौरुष की मंजिल तक पहुँच भी नहीं पाती। ज़मीन तो छूट ही जाती है, आसमान भी नहीं मिलता। आज वह जोश में आकर मैदान लेना जो चाहती हो मगर घर के आँगन की माया तो उससे छूट नहीं सकती। प्रकृति के पत्थर पर सर पीटकर क्या करेगी? दिल की दाल गलेगी, दिमाग की नहीं।"

"अगर गल गई तो?"—बिजली ने खीजकर पूछा।

"मुमकिन नहीं। मगर, हाँ, कहीं सचमुच उसकी प्रकृति की ऐसी विकृति हो गई—मीठे ज़नानपन को तर्क कर बेदर्द मर्दानगी पर चली गई, तो फिर इस सृष्टि के खेल की बाज़ी ज़िच्च हो जायगी। यौवन में न रस रहेगा, न जीवन में रहस्य।"

"रहस्य ?"

"हाँ, रहस्य। आपके चारों ओर एक रहस्य-तुषार का रे रहना ज़रूरी है, ताकि पुरुष का कुतूहल बराबर दूने पर रहे। इस माया-महल के इद-गिर्द उसकी कल्पना चक्कर काटती रहेगी। जभी तो आपके चेहरे पर कोई घूँघट का पट ज़रूरी है, ताकि मर्द की आँख पर पर्दा पडा रहे।"

"मैं देखती हूँ, आपकी समझ पर पर्दा है। जिस कमज़ोरी-जिस जनानपन—को आप नारी की प्रकृति समझते हैं, वह उसकी प्रकृति नहीं, उसकी प्रकृति की विकृति है—सदियों से गुलामी की बागडोर में बँधी हुई उसकी आत्मा की तबाही। आपने न उस तालीम की रौशनी दी, न दुनिया की जानकारी। अगर कहीं कुछ दी भी, तो अपने स्वार्थ के काटे पर नपी तुली हुई। वह घर के कोने के अँधेरे में पडी-पडी सडकर सिकुड गई। उसी सिकुडन को आपने उसका कुदरती गुन समझ लिया। उसका आचार रहा—अन्ध-परम्परा पर चलना, उसका धर्म रहा—पत्थर पर सर रखना और छाती पर पत्थर। खैरियत है, अब हवा पलटी है, उसकी आँखें खुल रही हैं—वह बेडा की एक-एक कडी को तोड रही है और दुनिया इस जीवट के तमाशे को देखकर दाँतों उँगली काटती है, मर्दों के पाँव-तले से जमीन सरक रही है। मगर, वे नित्य नई दलील खडी कर अपनी हुकूमत की खिसकती दीवार को थाम रहे हैं। यह प्रकृतिवाली दलील कोई नई नहीं है। आप

अपने इस मुल्क के मर्दों की कैफियत देखिये। उनका कहीं मर्दों में शुमार है भी? उनमें मर्दानगी की बू भी रह गई है? उनकी आत्मा का कहीं पता भी है? उनके खून में कहीं गर्मी भी बाकी है? जब चन्द सदियों की गुलामी की वजह से आदमी से गधे बन गये, फिर यहाँ तो हजारों सदियों की चपकलिश की मार है। भरसक आज औरत अपनी आत्मा खो बैठी है। आप आइने में अपनी सूरत क्यों नहीं देखते? आज सभ्य दुनिया ने आपको कुदरती जनखा समझ रखा है—क्यों, क्या यही आपकी प्रकृति है? कुछ ईश्वर के दरबार में हिन्दुस्तानियों के बाँट में गुलामी का तौक नहीं मिला। आप ईश्वर के अनन्य भक्त ठहरे—ऐसी ज़बरदस्त आपकी आस्तिकता चली आई, फिर अल्लाह के बन्दों के सर पर यह फिटकार क्यों? भाई-जान, आप ईश्वर के बल खड़े न होकर अपने पैरों के बल खड़े रहते--ईश्वर की ओर झुकी निगाह न रखकर अपनी ओर निगाह रखते—दुनिया से निगाह मिलाते रहते, तो शायद आप आज ऐसे कुदरती ज़लील नहीं समझे जाते।"

"यह भारतीयों की प्रकृति नहीं, उनकी प्रकृति की विकृति है। आज भी वे गर्द झाड़कर उठ खड़े हों—"

"जी हाँ, गधा धोने से बछड़ा हो सकेगा, क्यों? हाँ ठीक, आपकी गुलामी कुदरती नहीं, हमारी गुलामी कुदरती है, क्यों? हम आपकी चिलम भरने के लिए—आपकी दिलचस्पी के लिए ही बनी हैं, और आप हुकूमत के कोड़े फटकारने के

लिए, क्यों ? हम सनातन के शिकार है और आप सनातन के शिकारी—क्यों ?"

"आप किसी घर की लक्ष्मी रहती, तो फिर ऐसी गलतफ़हमी" "

"लक्ष्मी ? चरणों की चेरी--लक्ष्मी ? जेल की बन्दिनी—लक्ष्मी ? आप बांदी को लक्ष्मी की टाइटिल न देते, तो आसानी से उसकी छाती से कलेजा निकाल न पाते। जब आज़ादी न रही तो फिर पाकदामनी की खोखली मर्यादा उसकी आक़बत में काम देगी ? मुझे तो बाज़ार की रंडी कुबूल है, किसी घर की लक्ष्मी नहीं। उस कूचे में एक हद तक आज़ादी तो है। तावदारी भी है, तो अपनी मर्जी की। आपने औरतों के लिए स्वच्छन्द जीवन का और तो कोई रास्ता रख नहीं छोड़ा है।"

"चूँकि स्वच्छन्द जीवन उनके लिए रसातल का रास्ता है।"

"और आपके लिए वही स्वर्ग का सोपान है, क्यों ?"

"आप समझती नहीं, मनुष्य के भीतर जो पशु है, उसे शान्त-संयत रखने के लिए धर्म का अंकुश—समाज का नाग-पाश—ज़रूरी है चूँकि उसकी उद्दाम प्रवृत्ति केवल विवेक की बाग नहीं लेती। अगर वह पशु मर्यादा की गंडी के भीतर चरता-चुगता पोस मान गया, तो फिर कामधेनु बनकर वह जगत् को छाती का रस देता है। वही रस विश्व का पीयूष है—दिव्य प्रेम। जो सेक्स इंस्टिंक्ट—जो पशु-

वृत्ति—कठोर शासन के अधीन कल्याण का पुलक है, वही शासन के बाहर कामुकता का कलंक। एक ही कामना संयम के तले सदाचार बनती है और अबाध स्वच्छन्दता के तले व्यभिचार। इधर मन का प्रसार है, उधर मन का विकार। इसीलिए स्वच्छन्द जीवन "

"तो आखिर"—बिजली ने बात तराशकर पूछा—"आपका क्या मक़सद है? वह पशु औरत ही के भीतर है, पुरुष के भीतर नहीं?"

"नहीं, दोनों में बराबर है। मगर आपके लिए वह ऐसा भयंकर है· "

"बस, यही तो दाल की मक्खी है। बेदर्द समाज ने एक ओर तो रेशमी रास ढीली रख छोड़ी है और हमारी सहज प्रवृत्ति की गरदन में लोहे की जंजीर डाल दी है। इधर पंजरियाँ पिस गईं; उधर एक बाल भी बाँका न हुआ। आप दगे साँड की तरह हरी-हरी फसल चरा करें—कोई रोक टोक नहीं, और हमारे लिए जमाने भर की जिम्मेवारी है—पद-पद पर पाबन्दी, तिल-तिल पर पद्धति। क्या इन्साफ है! युग-युग मर्दों पर सब-कुछ निछावर करके भी आज स्त्री किरकिरी की किरकिरी ही रह गई—न पाया आदर, न पाया प्यार। आपने देवी, धर्म-पत्नी और लक्ष्मी की धाँधली में रखकर उसका सर्वस्व लूट लिया। वह बुरी तरह ठगी गई। इसीलिए आज वह नई क्रान्ति—नई संस्कृति—के लिए कमर में तलवार बाँधकर खड़ी

है। आज उसके आगे विवाह उसके जीवन का चरम लक्ष्य नहीं, जीवन का एक रहस्य है, ज़िन्दगी की एक अनूठी घडी नहीं, ज़िन्दगी के अनुभव की एक कडी है। आज उसकी निगाह मे शौहर उसका सर्वस्व नहीं—सरपरस्त नहीं, उसके सुख-दुख का एक दर्दशरीक पार्टनर है। वह न उसे पति मानती है, न देवता। शौहर अपनी बीवी से उसी हद तक पाने का हकदार है, जितना वह उसे खुद देता है। आज स्त्री के दृष्टि-पथ पर नया आसमान है—नई ज़मीन, उसके सामने घर नहीं, संसार है, सिंगार नहीं, अधिकार है, नजाकत नहीं, लयाकत है, परम्परा की पाबन्दी नहीं, आत्मा की आज़ादी है। इसलिए वह ऊँची ऍडी की जूती के तले तमाम अतीत को कुचलकर रंगीन भविष्य की ओर बढ रही है। वह आज आपके घर मे, आपके दिल मे जगह नहीं ढूँढती। वह नई-नई आशाओं से भरी हुई, विश्व के समाज मे—राष्ट्र मे, अपनी जगह ढूँढ रही है। उसे न आपके सहयोग की परवा है, न विरोध का डर—चूँकि वह जानती है कि आज भी आप वही हैं, जो बराबर थे। और, जबतक आप ही के अखाड़े मे आपकी पीठ मे धूल नहीं लगती · ··

"बस, मैं मान गया"—सुरेश ने ऊबकर बात का रुख़ बदल देना चाहा—"अब नारी की शक्ति मर्दानगी के अखाड़े मे ताल ठोकने चली है! हाँ, तो आँचल की पताका उड़नेवाली है, उड़े; वह भी दिलचस्प नज़ारा होगा! हमारी पगड़ियों

की धज्जियाँ उड़ेंगी, उड़ें, यह भी एक क़यामत का तमाशा होगा! अब मर्द के हाथों पर चूड़ियों की बहार होगी—खूब! यह भी एक निराला मजा होगा! अब हमें पुलाव पकाने की बारीकियाँ हल करनी पड़ेंगी; वल्लाह! यह भी जिन्दगी का एक तजरबा होगा! आख़िर दुनिया का काम तो बन्द होगा नहीं। जब आप हमारे कार्यक्षेत्र में उतरना चाहती हैं तो कुदरत के दरबार से हमें भी आपके सरहद के अन्दर जाने का पास-पोर्ट मिलना चाहिये! आप हमारा भार लेती हैं, आपका भार हमें लेना होगा। मैं तो सबसे पहले माशूकों में नाम लिखवा लूँगा। मेरी मर्दानगी सर पर कफन बाँधे तैयार बैठी है। मुझे तो शायरी की धारा पलटनी पड़ेगी। अबतक आपका शुमार कातिलों में था, अब आप कुश्तों में दाखिल होंगी। अबतक आपकी जादू-नज़री के हम शिकार थे; अब हमारी सुर्मई निगाहें आपके दिल पर चोट करेंगी। खूब हुआ! यही सही। हम मैदान छोड़ देने को तैयार हैं, आप शौक से मैदान लें।.... हाँ, तो बेला बाई! जरा मुझे आँख मटकाने—बिजली गिराने—सितम ढाने—की तालीम तो दें! मगर, वाह! एक बात तो भूल ही गया। आख़िर आपकी लहराती साड़ियाँ क़ायम रहेंगी या कोट-बूट का मिलिटरी ठाट होगा?"

"वाह! कहीं कटे बाल पर साड़ियों का गुज़र हो सकता है?"

"हाँ, ठीक तो ! कटे बाल तो चल ही चुके · इटन क्रॉप। अब जूड़ा बाँधने का रेयाज़ तो हमे सीखना होगा। अगर धोती का एक पल्ला सर पर खींचना पड़ा · · · "

"बस, आप तो ज़नानपन मे बेला बाई के कान तराश लेगे !"

"वल्लाह ! तो मै बिस्मिल के दर स कातिल की मंज़िल पर चला—अब तो वे हमारे साथ का तलबगार होंगी। मेरी पाँचो उँगलियाँ घी मे रही ! मै उनकी आशिक न रहा—न सही, माशूक तो रहूँगा !"

बेला और बिजली दोनो हँस पड़ी। उस हँसी की हवा मे तमाम तनातनी की बातें हवा हो गईं।

यकायक मोटर आने की आवाज़ कानो मे पड़ी। सभी उठ पड़े। बिजली तो दौड़कर नीचे उतर गई। कमरे मे रह गये बेला और सुरेश।

सुरेश खिसककर बला के निकट चला आया, और उसके कंधे पर हाथ रखकर अपनी ओर खींचना चाहा। वह नीची निगाह किये तनकर पत्थर हो गइ—निश्चल और निश्चेष्ट। उसने न 'ना' किया, न 'हाँ'; पर अपनी जगह स हिली नहा। शायद किसी कठोर कत्तेव्य ने उसके तमाम अस्तित्व को सचेत कर दिया और वह बुत की तरह कठोर हो गई। मगर, हाँ उस कठोरता मे भीषण तिरस्कार की कुलिशता नहीं थी।

"बेला! चलो, हम-तुम कलकत्ता चले चलें और दोनों मिलकर अपना नया घरौंदा बनायें!

बेला चुप सोचती रही। उसकी आँखों के सामने न वह कमरा रहा, न सुरेश। वह उड़कर गोविन्दपुर पहुँच चुकी थी और उसके दृष्टि-पथ पर दो पद्म-पलाश लोचन खड़े थे। कानों में एक सुरीली काकली थी—"बेला! चलो, हम-तुम दोनों वहाँ चले चलें, जहाँ कोई भी हमारा अपना न हो!"

बेला की आँखों के कोने तर हो गये। न जाने किस आवेग से वह काँप उठी।

सुरेश ने उसके कानों में फिर कूककर कहा—"अजी सुनो भी बेला रानी, तुम्हीं से कहता हूँ न!"

"आप अपना धर्म, समाज, परिवार, संसार—सबकुछ तक करने पर तैयार है?"—बेला ने पूछा।

"हाँ, तैयार हूँ।"

"क्यों, किसके लिए?"

"तुम्हारे लिए।"

"मेरे लिए? एक कुलटा के लिए? मुझमें क्या है? नहीं-नहीं, आप कविता कर रहे हैं!"—बेला ने जरा हँसकर कहा।

"बेला, मेरे हृदय की क्षुधा तो तुमसे छिपी नहीं है!"

"आप अपनी देह की भूख को दिल की भूख समझ रहे हैं, यही तो भूल है!"

"मैं अपना कलेजा निकालकर रख दूँ, तब तुम्हें यक़ीन होगा?"

यह कलेजा निकालनेवाली बात तो वह सैकड़ों बार मर्दों की ज़बान से सुन चुकी थी। इसमें न कोई नवीनता थी, न मधुरता। यही तो इस मायालोक की प्रचलित व्यवहार-भाषा थी। वह जानती थी कि बात-बात पर कलेजा निकालकर रखने-वाले कलेजा नहीं रखते।

ज़बान की फैयाज़ी कुछ दिल की दौलत नहीं लुटाती। जिस ज़बान पर आठों पहर दिल की चर्चा छिड़ी रहती है, उस ज़बान तक दर्द-दिल का कथा कभी पहुँच नहीं पाती।

वह ज़रा मुस्कुराती हुई बोली—'फिर वही कविता! मेरे लिए तो यहाँ-वहाँ—दोनों बराबर हैं। बेड़या न रही, खेवैली ही रही। मुझे पत्नी की मर्यादा तो मिलने की नहीं! फिर इस आज़ादी को भी ..."

"क्यों नहीं मिलने की? हिन्दूत्व में कुछ सुरख़ाब के पर नहीं लगे हैं! मैं कलकत्ता में ब्रह्म-समाज के रू से..."

"इधर मेरा राम भी छूटे, उधर कलङ्क का दाग भी न मिटे!"—बेला के चेहरे पर गम्भीर उदासीनता की रेखा खिंच गई। उसका सर झुक गया।

"तुम भी अजब शक्की हो! आखिर तुम चाहती क्या हो, साफ़ खुलती क्यों नहीं? प्रेम पहले है या विवाह?"

"हिन्दू समाज में विवाह। लेकिन विवाह का बलिवेदी पर चढ़ने के लिए न अब मेरे पास शरीर है, न हृदय। एक दिन था, जब शायद मेरे पास दोनों थे, अब तो दोनों में एक भी न रहा। और, वेश्या को विवाह या प्रेम से मतलब?"

"तुम्हें न हो, मुझे तो है! तुम्हारे प्रेम में मैंने दर्जनों कविताएँ लिख डालीं, और तुम····"

"आप कविता लिख सकते हैं, मुझपर धन लुटा सकते हैं, और किसी झोंक पर जान तक भी निछावर कर सकते हैं; मगर मेरे हाथ को अपने हाथ में नहीं रख सकते। आप अपनी चादर के खूँट में मेरे आँचल को बाँध पूजा की वेदी पर कदम नहीं रख सकते।"

"क्यों नहीं? प्रेम के बल पर मनुष्य क्या नहीं कर सकता?"

"सब कुछ कर सकता है। लेकिन, पुरुष और प्रेम! आप मज़ाक तो नहीं करते! उसे तो वह प्रेम चाहिये, जिसमें न बन्धन है, न दायित्व। माफ़ कीजिये, यह प्रेम है या उन्माद, इसे आप खुद नहीं समझ पाते। शायद पुरुष को इस विभेद का पता भी नहीं होता।··· खैर, उन्माद ही सही। मुझे तो वह भी नहीं है।"

सुरेश चुप हो गया। उसने दुबारा गिलास भरा, और सिगरेट जलाई। बला से धुआँ उड़ाने की इजाज़त ली।

"फिर पीने लगे ?"—बेला ने ज़रा आहत स्वर से कहा।

"देखता हूँ, यह दिल की लौ पर हावी होती है या नहीं !"—सुरेश ने चुस्की लेते हुए कहा।

"दिल के पहलू तक तो यह जाती नहीं ! यह कामना की लौ में आग लगा देगी। आपके लिए शराब और कबाब महज़ हराम ही नहीं, हलाल हैं।"

"बेला तुम्हारी ज़बान से ऐसी बेतुकी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। तुम तो आचार का आगार होकर वेश्या के रोज़गार को अपना रही हो ; फिर मैं ब्राह्मण होकर अगर दुनिया की न्यामतों का रस लेता हूँ, तो तुम्हीं कहो, मैंने किसकी जेब कतर ली ? आखिर खाने-पीने में रखा ही क्या है ? जब दिल साफ है, तो फिर ज़बान पर दूध की मिठास हो या कबाब की तिताई, दोनों बराबर हैं !"

"मैं तो लाचार हूँ—चूँकि मैं स्त्री हूँ, आप लाचार नहीं हैं—चूँकि आप पुरुष हैं। हिन्दू समाज में स्त्री की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं ! जो सत्ता है, वह पत्नी की है या माता की। फिर, जो न माता है, न पत्नी, वह कौड़ी की तीन है। अगर वह युवती है, फिर तो उसे और भी आफत है। उसे तो शरीर बेचने के सिवा पेट पालने का कोई दूसरा ज़रिया ही नहीं। जितने रोज़गार हैं, सभी पुरुषों के अधीन हैं और अगर हैं

भी, तो खासकर निपूती जवान बेवा के लिए वे ख़तरे से खाली नहीं है। मेरा रोआँ-रोआँ इस संकट को जानता है। मैंने कई जगह आँचल पसारा, चौका-बरतन करके भी रोटी तलाशने की कोशिश की; लेकिन कहीं भी पुरुषों की कामना की कमान से परित्राण न पा सकी। उनके मन की चाट उनके चेहरे पर साफ लिखी मिली। उनकी चितवन में लालसा की मशाल जलती न रहती, तो भूल होने की सम्भावना न होती। उनकी आत्मा की झलक उनकी दिखावटी हमदर्दी की आड़ से पूरी छिपती भी नहीं। जब हर हालत में हर जगह ऐसी युवती के शरीर का पानी उतरना ही है, तो कम-से-कम इस वेश्यागिरी में अपनी थोड़ी-सी खुदसरी तो है! मैं शरीफ न सही, स्वाधीन तो हूँ! और, अगर शरीर बेचकर भी आत्मा की रक्षा कर सकी, तो हमारा नुकसान ही क्या हुआ?"

"बेला! मगर मैं तो तुम्हें अपने दिल की रानी बनाने को तैयार हूँ!"

"ओ हो! दिल की रानी बनना कितना आसान है और चरणों की दासी बनाना कितना मुश्किल!"

सहसा बात रुक गई। जूतों की मचमचाहट नजदीक आ गई। चुन्नीलाल और अज़ीम कमरे में दाखिल हुए।

अज़ीम था अमीन का छोटा चचेरा भाई। उठती जवानी थी। बदन का रंग दूध के फेन की तरह साफ़। उभरे हुए

गालों पर तन्दुरुस्ती का पहला आलम गुलाब-सा खिल रहा है।

विधाता ने उसके चेहरे पर रंग ला दिया था, पर सौन्दर्य की बुकनी नहीं डाली थी। इसीलिये मुख पर रंग ला था, पर रूप नहीं, जवानी तो थी, पर पानी नहीं। न होठों के पुट में दाँत छिपते, न घनी मूछों के झुरमुट में चिपटी नाक। गोल-गोल चमकीली चुन्धी आँखों पर सुनहरी कमानी का चश्मा चढ़ा था।

टोपी नुकीली कटीली ज़रूर थी, पर उन्नत ललाट के अभाव के कारण चिलम सरपोश की शक्ल बनी थी। उसके पल्लों पर ज़री फूलों की तमाम नक्काशी—लट्टू की तरह गोल और संकीर्ण सर पर—कोई रंग न ला सकी।

मगर, फालसई फ्लैनेल के अलवर-कोट पर कत्थई मखमल के कॉलर और कफ, और गर्दन से कमर तक के सुनहले इनेमल बटन, उसके वैभव और बड़प्पन की सूचना ज़रूर दे रहे थे।

सबके पीछे बिजली आई— अमीन के कंधे पर थिरकती हुई। उसकी मस्तानी रफ्तार में विलास की रेशमी चपलता थी! झीनी साड़ी का आँचल सर से सरककर अमीन की नेकटाई से उलझ रहा था। चुस्त जैकेट सीने के लहू के तूफ़ान से डावाँडोल था—उस रक्त-चाञ्चल्य की बिजलियाँ अमीन की पसलियों में उन्माद भर रही थीं।

बिजली ने उसकी गर्दन मे हाथ डालकर एक ही पल मे उसके सीने से तमाम ग्लानि खीच ली। बीवी बिचारी गई तो गई; मगर माशूका तो गले का हार हो गई! बिजली की जादूनज़री जब दिल मे चुटकियाँ लेने लगी, तब अमीन की छाती की पोर-पोर मे इसरतो की टीस भर गई।

सोफे पर लेटते-लेटते, बिजली की ठुड्डी पकड़कर, अमीन बोला—"देखो, पहले तो चटपट कुछ खिलाओ, ऑते कलामल्लाह पढ़ रही हैं!"

"पहले वे वज़ू तो कर लें, फिर शौक़ से कलामल्लाह पढ़ें!"—गिलास मे ह्विस्की उँड़ेलकर बढ़ाते हुए सुरेश ने हँसते-हँसते कहा।

"वल्लाह! आप भी मौजूद है! शराब के रंग मे शायरी की बू है!"—अमीन जाम थामते हुए बोला।

"इधर भी एक जाम इनायत हो!"—अज़ीम ने भी हाथ बढ़ा दिया।

बिजली ने बेला को खाना मँगवाने के लिए इशारा किया। बेला बाहर गई।

"बिजली! तबतक तुम कोई चुटीली चीज़ तो सुनाओ! यह जाम का रंग जमता नहीं। लिल्लाह! इस गुलाबी सुरूर मे सुर का नूर भर दो!"—अमीन ने बिजली की ओर मुड़कर फ़रमाया।

"क्या बात है! मीने की मस्ती में आपके गले की मस्ती

रूह फूँक देगी !"—सुरेश ने भी दाद दी।

"जो इरशाद"—कहकर बिजली ने हारमोनियम छेड़ा। उसने झूम-झूमकर गाना शुरू किया—

साक़ी भी है, चमन भी है, ठंढी हवा भी है,
टूटे जो आज तौबा तो ऐ दिल मज़ा भी है।
रग-रग फड़क रही है नया रंग देखकर,
क़ातिल भी है, छुरी भी है, मेरा गला भी है।
ज़ाहिद की तरह ख़ुश्क मुसलमाँ नहीं हूँ मैं,
इश्क़े-बुताँ भी दिल में है, यादे-ख़ुदा भी है!

गाना ख़त्म हुआ। प्याले ख़ाली हुए। शराब के रंग में गाने का रंग मिल गया था। सब-के-सब रंग में आ गये।

ख़ानसामा हाज़िर हुआ। वहीं फ़र्श पर दस्तरख़ान बिछा। रिकाबियाँ सज गईं। ख़ानसामे ने बाज़ाब्ता खाने की चीज़ों को आनन-फानन दस्तरख़ान पर चुनकर ऊपर से तश्तपोश डाल दिया।

नये युग के अनुकूल सब-के-सब हम-नेवाले हम-प्याले थे। वहाँ न तकल्लुफ़ था, न तश्अम्मुल।

बेला अलग से सब देखती-भालती गिलास भर देती, खाना तक परस देती; मगर ख़ुद खाती या पीती नहीं। कहती—"आपलोग खाना शुरू करें; मैं बाद में कुछ खा लूँगी। फिर, मैं तो एक वक्त खाती हूँ—दिन में; रात में खाती नहीं।"

"बिस्मिल्लाह ! शुरू कीजिये।"—कहकर अमीन बैठ गया। बगल मे बिजली बैठी। और लोग भी चारों ओर क़रीने से बैठ गये।

बेला ने आकर तश्तपोश उठा दिया। तमाम कमरा केवड़े और केसर की गन्ध से मुअत्तर हो गया। कश्मीरी पुलाव और कलियो का फैन्सी मेला है।

सुरेश को तो घर मे कबाब और शराब नसीब न थी। यहाँ आकर वह छूटकर खाता-पीता रहा। मुर्ग और मुर्गाबियों का वह मुरीद हो गया। मटन न मिले—न सही; पर शीशे की लाल परी हो और परिन्दो की लाल पेटी। यही उसके जीवन की दो नेमते थी। इसी रस की मदमस्ती तो उसे यहाँ खींच लाती। हाँ, ज़बान की लगन के साथ-साथ दिल की लगन भी मिल गई। सोने मे सुगन्ध ! पोलाव भी, प्याला भी, प्यार भी—और ऐसे गुप-चुप कि किसी को कानो-कान खबर तक न हो।

बिजली ने सुरेश की ओर कनखियो से देखकर एक चुटकुला छोडा—"आखिर वैष्णवो के शिकम तक मुर्गियो का गुज़र हो ही गया !"

"जी हाँ, उन बिचारियो की क़िस्मत खुल गई ! मंजिले-मक़सूद तक पहुँच गईं ! आप ही कहे, उनकी आत्मा की सद्गति और कहाँ होती !"

"मैं तो समझती हूँ, आप ही की क़िस्मत पहले खुली;

वरना आप भी अपने बुजुर्गों की तरह चूड़ा-दही चाटते रह जाते, मुर्गों की मुरग्गन नेमतें कभी नसीब न होती !"

"खैर, किस्मत खुली या न खुली, हमारी आँखें तो जरूर खुल गईं। हम समझ गये कि मुर्ग का कबाब-कोफ्ता भी हलक़ के नीचे उतारकर हमारी ब्रह्मा की नस्ल का एक रोआँ भी न टूटा। न हमारी नाक ही कटी, न आँतें ही उचककर गले तक आईं; न हमारे जुन्नार की धाक ही एक तिल घटी, न हमारे ललाट के रक्तचन्दन का तिलक ही किसी तरह फीका पड सका।"

"यहाँ न आप मुर्ग-मुसल्लम पर टूटकर हाथ साफ कर रहे हैं, घर मे तो इसकी बू तक भी मुमकिन नहीं !"—चुन्नीलाल ने हँसकर फ़रमाया।

"यह क्यों ?"—अजीम ने ज़रा चौंककर पूछा।

"आप जानते नहीं, ब्राह्मणों के आँगन मे मुरग़ा ने छलाँग भरी कि घर पर आसमान थर्राकर फटा। उनके धर्म की मोर्चे-बन्दी को चकनाचूर कर देने के लिए मियाँ के घर की मुर्गी की एक टाँग काफ़ी है !"

"भाईजान !"—सुरेश ने जोश मे आकर कहा—"उन औंधी खोपड़ियों का ज़िक्र छोड़ो। देख लेना, अब ब्राह्मणों के घर भी मुर्गों की अठखेलियाँ बराबर होंगी। वह दिन करीब है, जब मुर्ग का कोफ्ता विश्रामघाट के पेड़े की जगह लेगा। मन्दिरों मे चूज़ों का रस पञ्चामृत होगा—फ़ाउल की बिरियानी

नैवेद्य को मिसरी होगी। वह 'छछिया-भर छाछ' पर नाचनेवाला सॉस-भरे माछ पर—चूज़ो के कुलॉच पर—नाच न उठे, तो मेरे नाम पर कुत्ता पाल देना! मैं तो मधुसूदन से दुआ मॉगता हूँ—

"वैष्णव बना के मुझको, मोहन मुरग खिला दे,
रसमय जगत हो जिससे, ह्विस्की सरस पिला दे।
अब दूध की, दही की, माखन-मलाइ-घी की—
जीवन से इन कलुष की छाया भी तू मिटा दे।"

"सुभानल्लाह! कमाल का कलाम है!"—बिजली ने हॅसकर दाद दी। सुरेश और भी चंग पर चढ़ गया। ह्विस्की इस उठान मे जोश भरने लगी। शायद जानीवाकर की मदद न होती, तो प्रतिभा की कोपले कहॉ तक खुलती, कहना मुश्किल है! शराब पीने से वाह-वाही की प्यास तेज़ ही होती है, कुछ मिटती नही।

"अजी, और सुनिये--

"हरि का प्रसाद कटलेट, मोहन का भोग अमलेट,
पंडों के मुख में अडे, भारत में तू चला दे।
गोकुल के कुज-वन में, नन्दन महल चमन में,
तीरथ में मन्दिरों में महिमा मुरग़ जगा दे!"

"कविजी! आपने तो मुरगो को वह रुतबा दे रखा है, जो शायद आपके बुजुर्गों को भी नसीब न था!"—बिजली ने फिर चुटकुला छोड़ा।

सुरेश अपनी धुन मे मस्त था। वह नशे मे झूमता रहा और हाथ फेंक-फेंककर गाता गया—

"राधा के घर हो पाली, मंजुल मुरग की अवली,
जमुना के तट प' बोली इसकी मधुर सुना दे!
चूज़ों का रस हो मुख में, कुक्कुट का पर मुकुट में,
ह्विस्की को पाते सुख में, माहन मूरति दिखा दे।"

जोरो के क़हक़हे पड़े। बेला ने भी हँसकर दाद दी। सुरेश की शायरी और कुशादादिली की तारीफ़ मे नारे बुलन्द हुए। वह तो फूलकर कुप्पा हो गया, मानो सातवें आसमान पर उड़ा जा रहा हो। कोट के बटन टूट चले।

चतुर्थ परिच्छेद

बरसाती रात है। सन्नाटे का आलम। रात आधी से अधिक जा चुकी है। निशीथ का नील अंचल जुगनुओं के जलवे से लहालोट है। खुली हुई खिड़कियों से हुस्नहिना की लपटें कमरे में बिखर रही हैं। बूंदों की मधुर रिमझिम थम-थमकर झङ्कार देती है।

नैश गुलशन का जशन खत्म हो चुका है। मनचले आनेवाले हँस-खेल कर जा चुके हैं। तिलक-कामोद का अन्तिम सुर अभी तक दीवारों पर लड़खड़ा रहा है।

बिजली के सामने नोटों का एक छोटा-सा पुलिन्दा पड़ा है। अगल-बगल खुली बोतलें बेतरतीबी से लुढकी हुई हैं। ह्विस्की की तीव्र बू अभी तक हवा में लुटी नहीं है। गंगा-जमनी तश्तरी में चन्द पान की गिलौरियाँ बासी फूल की तरह मुरझाई पड़ी हैं। इधर-उधर बिखरे हुए इलायची के छिलके, सिगरेट के खुले हुए खाली डिब्बे, जली हुई दियासलाइयों के

टुकडे, बेले के गजरे के टूटे हुए गुच्छे, फर्श के एक छोर पर छलके हुए शोरबे के जाफरानी धब्बे तथा किवाड पर पान की पीक के दो-चार ताजे छींटे—वगैरह-वगैरह—अभी पल भर पहले मिटे हुए जल्से के जुलूस की निशानियाँ मौजूद हैं।

जो कमरा दस मिनट पहले राग और रंग की झङ्कार से मुखरित था, वह अब सुनसान उजडे हुए फैमी मेले की तरह उदास बना है। उजले फर्श की सतह पर सैकडों शिकने किसी लीला-चंचल विलास की रंगरलिया की सूचना दे रही हैं।

बिजली के लोहित लोचनों मे सूर्यास्त की अन्तिम लालिमा की म्लान आभा थी। वह बेला के कंधे पर सर रखकर शमादान की बुझती हुई लौ को निरख रही है और पैर की उँगलियों मे लैम्प के इद-गिर्द जले हुए पतंगो के परों को बेवजह कुरेद रही है।

"बेला! देखती हो न, चिराग अपने दिल की सोजिश मे तिल-तिल जलता जा रहा है और उसके रूप की दमक पर परवाने आकर सोख्त हो रहे हैं! दोनों ओर जलन है। सुबह होते-होते इधर बुझी हुई शमा होगी, उधर बादे सबा मे उड़ते हुए शहीद परवानों के पर होगे। फर्राश आते ही बत्ती को उठा कर कोने मे फेक देगा और फर्श को झाडकर साफ कर देगा। इस जॉनिसारी के तमाशे का यही पहलाम है।"

"यही अंजाम है, बहन! इस जवानी के खेल का यही अंजाम है। यही कहानी तो फूल की पंखड़ियो पर हर सुबह

को लिखी मिलती है। इससे तो किसी को नजात नहीं। एक दिन हमारी आँखो की रोशनी भी सुबह के चिराग की ठंढी लौ होगी!"

"बेला, मैंने बनारस आकर लाखों मे मैदान लिया। सैकडो को फाँसा और लहू चूसा, मगर आज भी दिल की प्यास न मिटी—न मिटी!"

"लहू पीने से प्यास बुझती नहीं, तेज़ होती है! इस विलास के बवंडर से कहीं दिल का चिराग न बुझ जाय—यही अन्देशा है!"

"मैंने चुन-चुनकर ज़िन्दगी की सेज पर कलियाँ बिछाईं; मगर छाती की पंजरियो में न जाने कहाँ से काँटे चुभते ही रह गये! मुझे आज भी मालूम नहीं, मेरी आत्मा की तलाश क्या है—उसकी आरजू क्या है। इस ऐशो-इशरत के हुजूम मे भी ज़िन्दगी का सूनापन न मिटा। मुझे क्या नहीं है? सब-कुछ है, मगर सब हरा-भरा रहकर भी किसी सुनसान का हाहाकार दिल के पहलू मे अक्सर उठा करता है!"

"यह तुम्हारी आत्मा की आवाज़ है, जिसे तुम्हारे शरीर ने गला टीपकर दबा रखा है। आज तुम्हारे दिल के कान तक यह पहुँच सकी—यही बहुत है। अब भी तो तुम अपनेको पहचानो! तुम्हारा नारी-हृदय माता की ममता के लिए—पत्नी की जाँनिसारी के लिए—तुम्हारी शान के कपाट पर सर पीट रहा है। यह उसी की दर्दनाक फ़रियाद है, जो तुम्हे चैन

नहीं लेने देती। तुम जिस राह पर चल रही हो, उसकी कोई मंजिल नहीं! तुम्हारी उम्मीदों का—हौसलों का—कोई आधार नहीं! आजतक तुम्हारे हृदय का नैवेद्य—तुम्हारे अन्तर का अर्घ्य—प्रेम के चरणों के तले अर्पित नहीं हुआ। तुमने अपने-आपको न समर्पित किया, न किसी ने तुमको ग्रहण किया। तुम दूसरों के हाथों से की गई आरती लेती रहीं, अपने हाथों से किसी की आरती नहीं उतारी। स्त्री का संसार लेना नहीं, देना है। स्त्री के जीवन की सार्थकता भोग-विलास में नहीं, आत्मसमर्पण में है। जो बात तुम्हें भोग में नहीं मिली, वह तुम्हें त्याग में मिलेगी।"

"त्याग से तुम्हारा मतलब?"—बिजली ने ज़रा तुर्श होकर प्रश्न-भरी दृष्टि से पूछा।

"प्रेम—विवाह!"

"शादी—ताबेदारी! बेला! जो कुछ हो, मुझसे किसी की ताबेदारी नहीं होगी, न मैं किसी मर्द की मुरीद ही हो सकती। हूँ। मैं विवाह को जिन्दगी का रोज़गार नहीं बना सकती।"

"तो तुम इस दिल के आज़ार से भी कभी बच नहीं सकती। प्रेम ही तो नारी के जीवन-पथ का एकमात्र पाथेय है!"

"न बेला, पुरुषों ने अपने स्वार्थ के लिए ग़ुलामी का नाम बदलकर प्रेम रखा है। विवाह में मुझे इसी प्रेम का दम भरना होगा। मगर, मेरे हृदय की बीन पर यह सुर उठ नहीं सकता।"

"नारी की हृत्तंत्री पर दूसरा सुर तो उठता नहीं। तुमने आजतक उसे उठने नहीं दिया, शान से कुचलकर रखा, इसीलिए आज तुम्हारी चेतना की एक-एक कणा उस सुर की झङ्कार के लिए विकल है। उसी असीम अभिसार के लिए तुम्हारे नारी-जीवन की सारी सत्ता कमर मे आँचल लपेट तड़पती खड़ी है। अगर हृदय की इस मार्मिक पुकार को तुम कान देकर सुनती नहीं, तो एक दिन जब जवानी के ज्वार का ज्वर उतर चलेगा, तब फिर खाये हुए अवसर की वेदना हृदय के टूटे तारों मे हाहाकार करती फिरेगी। सुना बहन, जबतक तुम पत्नी और माता नहीं, तबतक तुम्हारे जीवन का यह सूनापन कभी भरता नहीं।"

"बेला! तुम जानती नहीं, इस देश मे बन्दी का नाम पत्नी है, क़ैद का नाम विवाह!"

"वही सही। इसी बन्धन में तुम्हारी मुक्ति है। आज की यह खोखली मुक्ति तुम्हारे नारीत्व का सूली है।"

"बेला! तुम्हीं सोचो, खुदसरी के बाद बराबरी तो एक बात थी, लेकिन ताबेदारी तो मुझसे कभी मुमकिन नहीं।"

"बहन! नारी का क्षेत्र घर है, पुरुष का क्षेत्र संसार। दोनों अपने-अपने क्षेत्र मे स्वतंत्र है। यहाँ एक दूसरे की ताबेदारी का सवाल नहीं; आपस की लेन-देन का इन्तज़ाम है। यह ताबेदारी का भूत तुम्हारी कोरी ख़ामख़याली है।"

"हरगिज़ नहीं। तुम एक मनमानी तसवीर खींच रही

हो, और मै दुनिया की असली नंगी सूरत देखती हूँ। मैं अपने घर मे अपनी माता की दशा देख चुकी हूँ। उसके हाथो की हीरा -जड़ी कँगनी उसकी कलाई पर हथकडी हो गई थी। वह दर्दनाक तसवीर आठों पहर मेरी निगाह मे फिरती है। जबतक स्त्री रोटी-दाल के लिए पुरुष के आगे आँचल पसारती ह—उसके आँचल का छोर पुरुष की चादर के खूँट मे बधा ही क्यो न हो, तबतक वह पुरुष के हाथ की कठपुतली—उसके पाँव-तले की चीटी—है। उसकी तमाम उम्र पापड़ बलने मे तबाह हो जायगी।"

"मगर, इस तूफानी खुदसरी स उस ताबेदारी मे भी तृप्ति मिलेगी, चूँकि स्त्री का हृदय सेवा का सुहाग ढूँढ़ता है। उसे विलासिता की तितली समझना उसको लांछना है, उसके सर पर हुकूमत का ताज रखना उसका मज़ाक करना है। तमाम उम्र वह किसी का लहू पी-पीकर जीती नही रह सकती, मगर किसी के पाँव धो-धोकर पाती हुई खुशी से जिन्दगी बसर कर लेगी—और ज़रूर कर लेगी।"

"मेरी समझ मे नहीं आती कि तुम मुझे जिस बात की तालीम दे रही हो, उसपर खुद क्यो नही अमल करती! सुरेश तो तुम पर जान देता है। तुम्हे सर और आँखो पर बिठाकर रखेगा, तुम्हे पत्नी और माता—दोनो का मतबा।"

"सो तो मै पत्नी और माता दोनो हो चुकी हूँ। लेकिन, सेहरा तो दुबारा सर पर नही बँधता। अब इस उजड़ी हुई

माँग पर सिन्दूर की बहार तो कभी मुमकिन नहीं !"

"क्यों ?"

"चूँकि मैं विधवा हूँ ·· और · ·"

"विधवा ही सही, औरत तो हो ? यही न हुआ कि तुम नारी न रहीं, तुम्हारी नसों का लहू ज़र्द हो गया ! क्या कहीं भी विधवा दुबारा शादी नहीं करती ? सिन्दूर रखकर न हो, रूमाल बदलकर हो सकता है। यह तो महज़ एक ज़रिया है।"

"है ज़रिया, लेकिन हिन्दू-समाज में तो मुमकिन नहीं !"

"लानत भेजो इस बेदर्द समाज पर ! समाज इनसान के लिए है कि इनसान समाज के लिए ? तुम जीती-जागती रहोगी, तभी समाज है - संसार है। सुरेश तो किसी भी उदार समाज के रू से शादी करने को तैयार हो जायगा।"

"ऊँहूँ ! मुझसे शादी करना खेल नहीं है। मैं तो विधवा ही नहीं, पतिता भी हूँ। विधवा का विवाह तो होता नहीं, फिर जो गिर गई है, उसका कहाँ निर्वाह है !"

"पतिता नहीं—पीड़िता हो ! तुम्हें जो पतिता कहता है, वह खुद पतित है। मैं जानती हूँ, तुम्हारे अन्धे समाज में पीड़िता और पतिता की एक ही गति है। दोनों को पतिता ही पुकारते हैं, क़सूर चाहे किसी का हो। मगर दुनिया में एक हिन्दू-समाज ही समाज नहीं !"

"अरे भाई, मुझसे कोई शादी करेगा ? किसका सर ऐसा

भारी हुआ है ? यह सोचना ही फ़िजूल है।"—बेला ने जरा रूखी हँसी हँसकर कहा।

"काश, शादी की कोई सूरत निकल आए! सुरेश ही कमर बाँधकर तैयार हो जाय!"

बेला चुप हो गई। पाँच मिनट तक फ़र्श पर निनिमेष देखती रही। उसकी आँखे भर आई थीं। वह न जाने किस अतीत को कुरेदती रही। आख़िर एक लम्बी साँस खींचकर धीमी आवाज़ से बोली—"बहन! मै तो मरघट की वह मुरझाई सूखी लता हूँ, जो फिर से पनप नहीं सकती। मेरी मुस्कान की दुनिया तो आँसुओं की धारा मे डूब चुकी है। अब तुम्हीं कहो, इस दिल के वीराने मे नई दुनिया बसाना कहाँ तक मुमकिन है!"

"बेला! जबतक तुम उसे वीराना समझती हो, तभी तक वह उजाड़-सुनसान है। मगर, जहाँ तुम्हारे मन की हवा पलटी और गुलशन की लपटे लगीं, फिर देख लेना, तुम्हारे दिल की तमाम सिकुड़ी हुई कोंपले उभरकर खुल पड़ेंगी। बस, केंचुल बदलने की देर है। आख़िर तुम इनसान हो, फ़िरश्ता नहीं। बवा हो या वेश्या, तुम्हे भी हाड़-मांस-लहू बराबर है। फिर तुम्हारे कलेजे मे जवानी का तकाज़ा न हो; उम्मीदें न हों, अरमानो की अठखेलियाँ न हो—कभी मुमकिन नही!"

"बहन!"—बेला ने उँगलियों में आँचल लपेटते हुए

कहा—"मैंने तो अरमानों पर तुलसी-दल रख दिया है। वे भगवान के चरणों में निछावर हैं।"

"क्या पागल की तरह बकती हो? तुम भी यमुना-तट की बावरी गोपी हो गई हो क्या!"—बिजली ने ज़रा तिनककर कहा।

"यमुना-तट की नहीं, सरयू-तट की कहो। तुम्हारी आँखें भी उस श्याम-सलोने की झाँकी देखतीं, तो सच कहती हूँ, तुम भी सब कुछ उस पर निछावर कर देतीं। मैं तो, बस, उसी रूप की प्यासी हूँ—'रूप रिझावनहार वह, ये नैना रिझवार'!"

"तुम्हारी आँखें रिझवार होंगी, मेरी ऐसी नहीं। फिर तुमने काम की बातों में राम की चर्चा छेड़ी। अब वेश्या से भगतिन बनोगी! शादी करके शरीफ़ों के तबक़े में नहीं आओगी, वैतरणी से एकाएक उचककर मन्दाकिनी में डुबकी मारोगी! भरसक हिन्दुस्तान की तबाही तरक्क़ी पर है—उसकी खोपड़ी के तमाम कील-काँटे ढीले पड़ गये हैं। हिन्दू-बेवा बाज़ार में कोठे पर बैठ सकती है या कंठी बाँधकर साधुओं के अखाड़े में रम सकती है, मगर शादी करके संसार नहीं बसा सकती! ख़ानगी होना मना नहीं, बीवी होना मना है! और, अभी घंटे-भर पत्नी की मर्यादा की गाथा सुनाकर मेरा मग़ज़ चाट गई!"

"मैंने तुम्हारे मज़े का नुस्ख़ा बतलाया था। मेरा रोग तो असाध्य हो गया है!"—बेला ने हँसकर जवाब दिया।

"कौन कहता है, असाध्य हो गया है? जिस वैद्य ने इसे असाध्य कहा है, उसका स्वार्थ तुम्हे मुर्दा बनाकर रखना है। तुम ज़िन्दा हुई कि उसकी नानी मरी। माफ करना, तुम्हारे दिमाग मे दकियानूसी कूड़ा कूट-कूटकर भरा है। पहले तुम्हारे दिमाग का इलाज ज़रूरी है। उसी का आबखरा उड़कर तुम्हारे दिल पर छाया हुआ है। यही खानदिमागा तो हिन्दुस्तान की औरतो को खा गई! मुझे क्या हुआ है? तबीयत ही है। यहाँ ऊबी है, तो विलायत चली जाऊँगी; फिर ताज़गी आ जायगी!"

बेला को फिटकार बताकर बिजली उठ ता गई, मगर बेला की बात उसके दिल के पहलू मे जगह ढूँढ़ने लगी। विलासिता की आज़ादी की बवंडरी हो चुकी, अब परिवार-बन्धन की ज़िम्मेवारी सर पर ढोनी पड़ेगी! ''बिजली हँस पड़ी।

बेला उसकी नब्ज पर हाथ रखकर जो नुस्खा तजवीज़ कर गई, वह पीने मे लाख क़ातिल क्यो न हो, पर वह उसके मर्ज़ को गिरफ्त कर सकेगी—यह धारणा बिजली के दिल मे कुलाँच भरने लगी; मगर वह इस मर्ज़ की बुनियाद को या बेला के निदान को सर झुकाकर मान लेने का तैयार नहीं थी—चूंकि उसकी निगाह में शादी उसकी आज़ादियो की कुर्बानी थी। उसे खुद पता न था कि तमाम विभूतियो के रहते हुए भी उसका हृदय भूत का डेरा क्यो बना था, और इस

फ़िज़ाँ के गुलशन मे श्मशान की गन्ध किस कोने से उपट रही थी !

इधर बिजली की बात पर बेला सिर धुन रही थी—

क्या वह फिर विवाह करेगी ? ··अब विवाह मे उछाह तो दर-किनार रहे, निर्वाह भी नही है, सिर्फ आह-ही-आह है ! पहले विवाह मे कौन सुख मिला था ? जवान होते-होते जान के लाले पड़ गये थे। · जो हो, वह धर्म का ब्याह तो था ! और अब ?·· तिस पर सुरेश से शादी ? मौत से क्यो नही ? वह तो सोचती थी कि कुछ ही दिनो मे उसके हाथ मे इतना काफी धन हो जायगा कि वह सरयू के तट पर एक आश्रम बनाकर अपने जीवन की गोधूली के दिन भगवद्भजन मे बसर कर सकेगी। मगर, जबतक उसकी उम्र ढलती नही, तबतक तो किसी आश्रम का आश्रय भी निरापद नही। वहाँ भी पुरुष होंगे और उनकी आँखो मे वहाँ भी लालसा की लपट होगी। गुरुवर ने भी एक दिन शरण दी थी। कहाँ ऐसा तपोवन है, जहाँ माया-मृग की माया न हो ! कहाँ ऐसा कमंडल है, जो किसी पनाले के जल मे डूबा न हो ! राम का नाम तो वह हरएक स्थिति मे हर जगह ले सकती है—वेश्यालय मे भी। इतमीनान चाहिये। यहाँ अपनी खुशी रही; किसी और की दाल गल न सकी।

"अब इस आश्रम को छोड़कर वह परिवार के दायरे मे क़दम रखेगी ? रख सकती है वह क़दम ? पतिता भी कहीं

किसी की सहधर्मिणी बन सकी है ? इस रंग के बाद तो कोई दूसरा रंग चढ़ नहीं सकता ! कम-से-कम हिन्दू-समाज - राम के साये—में तो मुमकिन नहीं। वह किसी के गले का हार भले ही हो, लेकिन किसी के कुल का आधार तो हो नहीं सकता। वह किसी बच्चे की माँ भले ही हो सके, मगर किसी शरीफ की माँ तो हो नहीं सकती। मगर, काश वह हो सकी तो फिर सुरेश से विवाह नहीं-नहीं, वह उसके लिए दर-दर का भिखारी होगा ? वह प्रेम कहाँ से बटोर लाएगी, जो उसे देकर उसकी क्षति की पूर्त्ति कर सकेगी ? आखिर कहाँ है उसके नारी-हृदय का प्रेम ?— सीतापति राम के चरणों में लवलीन है या अभी तक किसी के अभिशाप को सर पर रखकर मूर्च्छित पड़ा है ?"

बेला की आँखों के सामने एक गौर सुन्दर मुख, एक स्फीत वक्ष, दो ककुद कंधे, दो पद्म-पलाश लोचन महिमा खड़े हो गये और उसके अस्तित्व का ज़र्रा-ज़र्रा—उसकी चेतना की एक-एक कणा किसी निर्विकल्प सिहरन से काँप उठी। वह एक क्षण उसी मायामय अमूर्त्त रूप को देखती रही, फिर न जाने किस आवेग से विह्वल होकर नीचे आँगन में दौड़ गई और सयत्न-संचित राम की मूर्त्ति के आगे तिलमिलाती हुई पछाड़ खाकर गिर पड़ी—"नाथ ! मैं कहाँ भटक रही हूँ ! मुझे बल दो, बुद्धि दो, शान्ति दो। मैं निरी अबला हूँ। तुम्हारे ही लिए मैं यहाँ आई, अब मेरी लाज रखो !"

बेला घुटने टेककर उठ बैठी और अपने हृदय की धडकन को शान्त करने की गरज़ से रुँधे कंठ से भजन गाने लगी—

बिनती करत मरति हौं लाज ।
या देहिया नखसिख लौं मेरी पापन केरि जहाज ।
आगे भये न पाछे ह्वै हैं, मैं पतितन सिरताज ।
भागे नरक नाम सुनि मेरो, पीठ दई जमराज ।"

वह धीरे-धीरे गाने के प्रवाह मे लीन हो गई, और उसकी आँखो से मन्दाकिनी उमड़कर आँचल पर टूट पड़ी ।

पञ्चम परिच्छेद

सावनी झूलन का जशन। गोसाईं के वैष्णव-मन्दिर मे बेला का मुजरा है। मन्दिर का प्राङ्गण इन्द्र का अखाड़ा बना है। आइने और शीशे, झाड़ और फानूस से मन्दिर का प्रशस्त सायबान लक़दक़ है। दीवारो पर विविध दीवालगीर, चित्र-विचित्र तसवीरे और रंगीन रेशमी जंजीरे लटक रही हैं। मोहनभोग और मालपुए, मोतीचूर और मिहीदाने, लड्डू और खुरमे, बादाम और मुनक्के, अखरोट और पिस्ते, चाँदी के थालो मे, करीने से सजे हैं। अगर-बत्तियों की सुरभि जूही और बेले के गजरो की गमक पर अपनी धाक जमा रही है। महन्तजी के दोनो कान के नरगिस के फाहे खुशबू मे बाज़ी ले जाते, अगर उनकी लपट की दौड़ कानो तक घिरे हुए रेशमी जोगिया साफे से सीमित न हो जाती।

काशी मे गोसाईं-मन्दिर के सावनी पूर्णिमा के उत्सव की

छटा अपना सानी नहीं रखती। गोविन्द की न ऐसी कहीं मंजुल मूर्त्ति है, न मोर-मुकुट में कहीं ऐसी मरकत-मणि ही। कानों में मोतियों के कुंडल, गले में हीरे का हैकल, कमर में ज़रीं काछनी, पैरों में हेम-पैजनी—एक-से-एक मनोहारी हैं। राधा की सलमे-सितारे की चुनरी उनके अलङ्कारों की दीप्ति से सलामी लेती है।

मन्दिर की दिलपसन्द तड़क-भड़क और राधा-गोविन्द की युगल-छवि की नयनाभिराम चकमक तो दर्शकों की छाती के सोते में डोरी डालने के लिए यथेष्ट थी, मगर साथ-साथ महन्तजी के मिज़ाज की आजिज़ी और उनके भंडार की मशहूर फ़ैयाज़ी भी कुछ कम मददगार न थी। जब झूले के जल्से में घी और दूध की झड़ी बँधती—कारचोबी की चाँदनी के नीचे नृत्यशीला सुन्दरियों के लीलायित अंगों और आँखों की बिजलियाँ चमकती, तब रसिक भक्तों की मन-मयूरी इस सावनी मंजर को पाकर लहू के जोश पर ठुमुक-ठुमुककर नाचती, और सारंगी की रिनझिन से गला मिलाकर घुँघरू की रुनझुन—करतालियों और तबले की थाप पर आकाश चूमती हुई—विश्वनाथ के धाम में 'कुँअर-कन्हैया' की डौंडी पीटती।

यह वैष्णव-मन्दिर के रंगीन रंग-ढंग और भोग-राग की महत्ता थी, जिसने यहाँ के अधिष्ठित देवता को जाग्रत और जनप्रिय बना रखा था; नहीं तो शिवपुरी में त्रिशूल के दबदबे

के आगे बटी छाननेवालों के दिल पर गोपाल की मधुर मुरली कभी हावी हो पाती ?

क्या बात है कि हमारी गली के नुक्कड़वाले मन्दिर के शिव तो दूध और केसर के सोते में आठों पहर डुब-चुब होते रहते हैं और हमारे मकान के मुत्तसिल शिवालय के बिचारे भोलेबाबा एक चुल्लू पानी के लिए टापते रह जाते हैं ! एक के सैकड़ों रोमाञ्चप्रद चमत्कार की चर्चा मुहल्ले-भर की ज़बान पर चल रही है और दूसरे की कोई बात भी नहीं पूछता—यह क्यों ? दोनों त्रिपुरारि हैं, दोनों आशुतोष, मगर एक के नन्दी का सींग सोने से मढ़ा चमक रहा है और दूसरे का सर से अलग हो जमीन पर लुढ़क रहा है ! काशी में गली-गली शिवशंकर आसन मारे बैठे हैं, सभी भवानीपति हैं—सभी विश्वनाथ, मगर यह क्या रहस्य है कि जिसके सर पर सोने का छत्र है, उसी की बुलन्द इकबाली निखिल विश्व में गूँज रही है ? क्या यह सोने का प्रताप है या उस गली की मिट्टी का इकबाल है ? फिर, इतने गरीब बिचारे तो फटे कपड़े में आध पेट खाकर ही अपने आशुतोष और दिगम्बर नाम को साथक कर रहे हैं !

क्या देवताओं की यशो-रश्मि भी उनके मन्दिर की चूड़ा की दीप्ति पर निर्भर है ? क्या हमारे गिरधरनागर की साँवली सलोनी मूर्त्ति महज़ बैजन्ती की माला और मोर-मुकुट की चन्द्रिका पर काफ़ी हृदयग्राही नहीं होती ? क्या देवताओं को

भी लोगों में श्रद्धा या दबदबा जताने के लिए कुछ टीमटाम रखना ज़रूरी है ? जबतक वे लकदक और रौनक-अफरोज़ नहीं बन जाते, तबतक वे हमारी श्रद्धा और भक्ति के पात्र नहीं ? हम जगन्नाथ के मन्दिर में लाखों का अटका भेंट कर आते हैं और अपने पड़ोस के भिखारी बाबा की कुटिया के भोले-भाले गिरिधर के आगे एकधेला भी नहीं नज़र करते—इसकी वजह ? हमारी भक्ति वहाँ आसमान चूमती है, यहाँ छाती से उठती तक नहीं—इसका कारण ? क्या देवताओं को भी दिलचस्पी या चामचुम की तलाश है ? क्यों आज हम मन्दिरों को थियेटर बनाना चाहते हैं—भजन को गज़ल के साँचे में उतारते हैं—सीधी-सादी स्तुतियों को ठुमरियों के पिशवाज़ पिन्हाते हैं ?

क्या बात है कि आजकल हमारी स्तुतियों में दादरों की धुन तो यथेष्ट है; पर हृदय की ध्वनि का कहीं पता नहीं चलता ?

हम उनमें वसन्त का राग न भरकर अगर अन्तर का राग भरते, तो शायद पत्थर के देवता में भी दिल डाल पाते। आज राम और सीता हमारे रोजगार के लटके न होते, तो शायद मन्दिर को दूकान बनाने की ज़रूरत न पड़ती।

किया क्या जाय, यह विज्ञापन का युग है—फैशन-परस्ती का ज़माना; जबतक मन्दिरों के द्वार पर शानो-शौक़त की नौबत नहीं झड़ती, तबतक न भक्ति का बाज़ार गर्म होता है, न धर्म का सौदा ही चलता है।

शायद जहाँ लक्ष्मी का वास नहीं, वहाँ लक्ष्मी-वल्लभ की तलाश ही हमारी भूल है। तो हमारे देवताओं पर भी ज़माने का रंग चढ़ गया है क्या? जबतक हम उन्हें गंगा जमनी थाल में तर माल नहीं चखाते, चरण-चौकी पर अशर्फियों की डाली नहीं रखते तथा सैकड़ों घी की बत्तियों की आरता नहीं उतारते तबतक वे अपनी शक्ति और सत्ता सिकोड़े बुत बने बैठे रहते हैं। वे दरिद्रों और दलितों की फ़रियाद पर ख्वाब से बेदार नहीं होते। शायद उन्हें जगाने के लिए कनक-चित्तियों की काकली या कोकिल-कंठ की असावरी ज़रूरी है। तभी उनकी तूती बोलती है। गरीब बिचारे कहाँ से उनकी दिलचस्पी का सरंजाम मुहय्या करें? जिन्हें दुनिया में कहीं शरण नहीं, उन्हें क्या अशरण-शरण के चरणों की छाया भी मयस्सर नहीं?

क्या हम मन्दिरों में भी इन्द्रियों की खुराक ही जुगाने की नीयत से जाते हैं—कुछ इन्द्रियों के नाग-पाश से दम-भर परित्राण पाने की ग़रज़ से नहीं? वहाँ भी हमको विलास-निकुंज की रमणीयता की ही तलाश है! वहाँ भी हमको रूप और रंग, रस और गंध के लवाज़मात ही चाहिये! तभी तो हम भक्ति का दम भरने के लिए तीर्थों और मन्दिरों की सैर पर क़दम उठाते हैं; नहीं तो आत्मा की कोरी शान्ति के लिए आलीशान देवालयों की मरटगश्ती किसे सूझती है? इसी लिए आज मन्दिरों के वायुमंडल में हमको आत्मप्रसाद की

नेमत मुश्किल से मिलती है। तो, क्या इसीलिए आत्मतीर्थ का यात्री, देवालय के भगवान् के बदले, जंगल के सुनसान को ढूँढता है? नटनागर लीला-विहारी ने क्या इसीलिए मोर मुकुट और गुञ्जों की माला उतारकर कीमती मोतियों का टायरा और नेकलेस धारण किया—वृन्दावन के तमाल-निकुंजों को उजाड़कर वहाँ के सोने और संगमरमर के लक-दक महलों मे पत्थर की मूर्त्ति बनकर बैठ गये?

भगवान के मन्दिर मे भक्तों की भीड है भीड। यहाँ न होती, तो कहाँ होती? यहाँ क्या नहीं है? मादक खुशबू की लपट है, ज़बान की लज्जत है, रूप की बहार है और मीठे गले की झङ्कार है। मगर यह महज इन्हीं दिलफरेब सरंजामों की कशिश नहीं जो हमे यहाँ खींच लाती है। यहाँ के देवता के चमत्कारों की शुहरत भी आसमान चूमती है। इस मन्दिर के इकबाल से हजारों की मनचाही मुरादे पूरी हुईं। यहाँ के फूल और प्रसाद के बल पर कितनों के हाथ की हथकड़ियाँ खुल पड़ीं, बहुतों की सूनी गोद हरी-भरी हुई, सैकडों के सर के सरकश भूत सर हुए और हज़ारों ने दुराग्रही ग्रहों व दांत तोड डाले।

यह बात ज़रूर है कि हमारे देवता के आशीर्वाद की एजेन्सी महन्तजी के हाथ है, और इन न्यामतों को वे बडी चातुरी और बड़ी माधुरी से पूरी क़ीमत पर वितरण करते हैं। जिसे कोई मुराद होती या जिसकी मुराद बर आती है, वह भगवान् की सेवा के लिए तन-मन-धन से, दसों नख जोड़े,

एक पैर से खड़ा रहता है। और, दुनिया में न मुरादों की कमी है, न मुरादों की बाँदी भक्ति की। हमारे सहृदय भक्त-जन मन्दिर के तमाम पुनीत जल्सों में बड़ी श्रद्धा से हाथ बँटाते हैं।

तो क्या भक्ति हमारे अन्तर की स्वतःप्रसूत निर्झरणी नहीं है? यह भी हमारे स्वार्थ की चोटी से छूटी हुई प्रवृत्ति की धारा है, जो बाईं ओर गड्ढे में न जाकर दाहनी ओर मन्दिर की जानिब मुड़ गई है। यह जिस परिस्थिति की लपेट में पड़ी, उसी की होकर रही। जिस हवस के ज़ोर पर हम गाठ कतरते हैं, उसी हवस की उत्तेजना पर हम भक्ति का दम भी भरते हैं। साधुओं के साथ चिलम का दम हो या लम्पटों की जमात में ठर्रे का जाम—यह एक ही नशाखोरी की हवस है, जो एक ओर झुक कर सर पर जटा बँधाती है या दूसरी ओर सर को पनाले के प्रवाह में डुबो देती है।

हमारे ममत्व को खुल खेलने के लिए दुनिया में कोई एक मैदान ज़रूरी है। जिस मनोवृत्ति के ज़ोर पर एक सरकारी खिल्लत की कलँगी के लिए तूमार बाधता है, शायद उसी प्रवृत्ति की प्रेरणा पर दूसरा राष्ट्रपति की पगड़ी के लिए लोहे के चने चबाता है। इधर एक दरबार की दाढ़ लगाता है, उधर दूसरा जेल जाता है, इधर हज़ार मुश्किलों के भीतर बारीक खुशामद का रेवाज़ है, उधर तलवार की धार पर चलने का रेयाज़। एक को हम भोग कहते हैं, दूसरे को त्याग। इधर शान-शौक़त की तजल्ली है, उधर सादगी की बुलन्दी।

मगर, सूक्ष्म विश्लेषण के साथ यदि छान-बीन हो, तो अमूमन इन भोग और त्याग के परदो मे एक ही बुत का जलवा नजर आएगा—एक ही स्वार्थ का गोमुख, एक ही मान की आन मिलेगी। प्राणो की तड़प दोनो ओर बराबर होगी। इधर खिताब मारने मे नाम है, उधर नाम मारने मे नाम; इधर गवर्नमेंट हाउस का लक्ष्य है, उधर कांग्रेस का मक्ष; इधर ज़र है, उधर खद्दर। चन्द परिस्थितियो मे पड़कर एक राजा-बहादुर हो गया, चन्द परिस्थितियो मे पड़कर दूसरा मुँहज़ोर लीडर हो गया। दोनो का उठान एक होकर भी मैदान दो हो जाने से दोनो दो निशाने पर चले गये। दोनो को सर पर तुर्रे की तलाश बराबर है—वह कफन बाँध कर मिले या खिताबी कलँगी बाँधकर। समान बडाई की प्यास इधर भी है, उधर भी। मुमकिन है, एक मे रंग आया, दूसरे मे पराग, एक को दुनिया ने आँखो पर बिठा कर रखा, दूसरा दुनिया को आँखो पर खुद चढ़ा रहा। पर, बीज एक—चीज़ एक।

एक ही बीज अलग-अलग तबके की मिट्टी मे अलग-अलग रंग और बू पैदा करता है। प्रकृति नहीं बदलती, बदलता है पर। आज कितने राजाबहादुर बहादुरी के मैदान में जान पर खेलते और कितने जेल मे धूनी रमानेवाले लीडर कॉटो के ताज के बदले सितारों के ताज पहने दरबार मे पर मारते रहते। प्रवृत्ति एक है; बस, परिस्थिति दो हो गई।

एक ही सत्ता प्रवृत्ति के रूप में निखिल की 'लीला' करती है और फिर निवृत्ति के रूप में निखिल का लय करती है। जो एक ओर से अकर्त्ता और निर्लिप्त है, वह दूसरी ओर सर्वकर्त्ता और सर्वभोक्ता भी है।

हम नाहक कामना को बदनाम करते हैं। इसी के बल पर तो हमारे कितने सद्गुणों की स्फूर्त्ति है। हमें यश की कामना न होती, तो न हमारा सर ऊँचा होता, न हाथ। दस का अहसान लेना न रहता, तो शायद दान देना भी हमसे पार न लगता। अगर रोटी-दाल का सवाल न रहता, तो इस ज़माने में हमारे पुरोहितजी के सर पर इतनी बड़ी चुटिया होती, न हाथ में सुमिरनी। आज पूजापाठ और तिलक-फटाका हमारे व्यवसाय या सम्प्रदाय के इश्तहार की तख्ती न होते, तो शायद दुनिया को राम के नाम के भी लाले पड़ जाते। अगर राम काम का दम न भरते, तो उनके चरणों की छाप सर पर ढोनेवाल आज कहाँ और कितने मिलते!

क्या देवताओं की स्थिति भी हमारे स्वार्थ की भित्ति पर है? जब दिल में किसी बात की हवस होती है, तभी हम पत्थर को देवता समझकर उसके चरणों पर सर झुकाते हैं—नाक रगड़ते हैं। हम बेवजह घंटों बैठकर रुद्राक्ष के दाने गिनते या पौ फूटने के पहले उठकर कार्त्तिक-स्नान के जंजाल में पड़ते? बिना किसी आकांक्षा के ईश्वर की याचना भी बड़ी मुश्किल से होती है। आज हमारे तमाम धर्म का मर्म हमारा

स्वार्थ है। हम जब नीरोग और निश्चिन्त बने रहते है, तब विज्ञान की कमान लेकर भगवान् के अस्तित्व पर भी निशाने-बाज़ी से बाज़ नहीं आते। हम दुनिया के निखिल अंधविश्वास पर चुटकियाँ लेते है, पोपो की पोपबाज़ी पर फबतियाँ चुस्त-कर अपने विभाग का परिचय देत है, मगर जहाँ हम रोग या दुर्दिन की लपेट मे गिरफ्त हुए, फिर तो साईं बाबा के मुँह के लुआबदार फूँकवाले पानी मे भी हमे न जाने कहाँ का चमत्कार नज़र आता है और कोला कलवार की देवी के चौरे पर चुनरी चढ़ान के लिए भू परी जाने मे भी कोई द्विधा नही होती। जो शेखी और अकड़ मे ज़माने-भर के कान कतरता आया, उसे जब एक दिन राम का नाम लेकर अपना कान थामना पड़ता है, तभी शायद उसकी आँख और कान—दोनो खुलते है।

इस दुनिया मे बगैर किसी मुद्दआ के कोई दुआ नही होती। हमारे ललाट का रक्तचन्दन हमारे हृदय के राग की बाहरी छाप है। हमारी भक्ति की तमाम आडम्बरी निष्ठा कामना की मरीचिका है। साधारणत. हमारी तमाम कर-जोड़ प्रार्थना हमारे स्वार्थ का स्वर है—याचना का सुर है। जब हम गरज़मन्द हैं, तभी तो हमे लोक की, परलोक की, आदमी को या दैवी मदद की ज़रूरत है। जब गरज़ नही, तो किसी से ग़रज़ ?—आदमी हो या फिरिश्ता!

दुनिया के तमाम मज़हबों ने जिस बहिश्त का खाका खींच

रखा है, वह स्वर्ग तो बस, इन्द्रिय-लोलुपों का जहन्नुम है, वहाँ मधु की प्याली है, उर्वशी है, नन्दन चमन है, अनन्त यौवन है। अगर यह दिलफ़रेब तसवीर न रहती, तो न चटोरों को स्वर्ग की चाट होती, न इस लोक में परलोक का सौदा चलता। यहाँ न तीर्थों में स्वर्ग की एजेन्सियाँ खुलतीं, न विज्ञापनों के शोर पर पुण्य की गर्मबाज़ारी होती। कठोर सत्य को लेकर इस दुनिया में कब किसका काम चला है?

गँवारों में प्रचलित भूत-दूत की जिस ओझाई पर हम हँसते हैं, उस ओझाई से हम क्या बरी हैं? हमारी प्रकृति-गत हौलदिली के गलबे में किसी-न-किसी तबक़े की निरन्तर ओझाई ज़रूरी है। भला, निर्विकार निर्गुण ब्रह्म का दामन थामकर सौ में निन्नानबे कभी दो दिन भी इस पृथ्वी पर तसल्ली से टिक सकते हैं? उस निर्लिप्त निरंजन के साये में हमारे दिल को दिलासा मिलना कभी मुमकिन है?

बात यह है कि हम दुनिया के तरद्दुदों से इस कदर बेबस हैं कि बिना किसी सुगम दैवी सहारे के हमारे दम में दम नहीं पड़ता। जो हमें इस सहारे का विश्वास दिलाता है, वह फ़ौरन् हमारे दिल को थाम लेता है। हमें तो हर घड़ी एक ददेमन्द रहमान की ज़रूरत है—वह देव हो या देवी, सोखा हो या बन्दी, ग़ाज़ी मियाँ या शहीद नबी; जिसे हम झाड़-फूँक मन्तर-जन्तर, दुआ-तावीज़ के ज़रिये जब ढूढ़ें, तब पा सकें। वह सत्ता मक़ान में हो या मज़ार में; आसमान में हो या

पाताल मे—कहीं भी हो, कोई भी शक्ल रखती हो, या सब शक्लो मे पैवस्त हो; पर हमारी फरियाद सुनती है, यही यथेष्ट है। उसी के सामने हम सर झुकाते है, सुख-दुख मे उसे ही सबसे पहले पुकारते है, उसके हुजूर मे अपनी अर्ज-ग्ररज़ पेश करते है, उसके मुनीम की जेब गर्म करते है और उसके पसीने की जगह लहू बहाने का तैयार रहते हैं।

जब बच्चा रोता है, तब उसको चुप करने के लिए उसके सामने हम गुड़िया रखते है; और जब दुनिया की मुसीबतो मे पड़ सयाना रोता है, तब उसको चुप कराने के लिए उसके सामने हम मायाविनी मूर्त्तियाँ रखते हैं। बच्चा हो या सयाना, दोनो को बहलाने के लिए कोई एक मनमोदक जरूरी है। हमे हर हालत मे एक दिलफ़रेब सहारा—वह मूर्त्त हो या अमूर्त्त—अनिवार्य है, जिसके सामने हम रो-गा सके, जिसके चरणो मे हम अपनी आशा-आकांक्षा भेट कर सके, जिसका आसरा ढूँढ़ें और भरोसा रखे। हमारी हँसी-खुशी मे उसकी याद भले ही न हो; पर हमारे रोने के वक्त तो एक ग़ैबी खिलौने का भुलौना ज़रूरी है।

जबतक हमारी अन्तर्दृष्टि नहीं खुलती और उसके सामने मुसकान और आसू का विभेद नहीं मिटता, तबतक एक मायावी झुनझुने के बिना इस संसार मे निभना टेढ़ी खीर है। हम रोगी हैं, तो डाक्टर का सहारा है; भूत का ग़लबा है, तो गुनी की तलाश है; ग्रहो का फेर है, तो शान्तिका उपचार है; मुक़द्दमे

का चक्कर है, तो वकील का दिलासा है। मगर, हमारी हरएक चिन्ता मे, हरएक आरजू मे, इन सब मददो पर बाला एक चिन्ताहरण करुणा-निधान का शरण बराबर सामने रहती है।

मानव-प्रकृति तरह दो के झमेले मे कभी व्यवस्थित नहीं रह सकती। इसी लिए जबतक बाहर से सहारा ढूढनेवाली हमारे अन्तर की ये स्वाभाविक कमजोरियाँ आत्म-ज्ञान की ललकार पर भाग खड़ी नहीं होती, तबतक न चमत्कारों पर से हमारा विश्वास उठता है और न मन्दिर या मसजिद का—देवघर या मज़ार का—रोज़गार ही बन्द होता है।

आज गोसाईं के मन्दिर मे राधा-गोविन्द की अनोखी झाँकी है। आज सावनी उत्सव मे बसन्ती शृगार का रात है। कल बैगनी बहार थी, आज पीत की पारी है। हल्दी और रामरज, केसर और चन्दन छत से ज़मीन तक रंग ला रहे हैं। सर पर जर्द मखमल की ज़री फूलवाली चाँदनी है, ज़मीन पर जाफ़रानी जाज़िम। शहतीरों से शरबती झाड़ और कन्दील, चम्पई रग से पुती हुई दीवारों पर बसन्ती रेशमी परदे, पुजारियों की नारंजी धोती और चादर, कलाबत्तू मे पिरोये हुए पीले फूलों के तोरण और बन्दनवार आज सावन के मौसम मे सरसों की सरसई बिखेर रहे है।

बेला के तन पर भी बसन्ती छटा है। उसे भी आज रसिक-शेखर के दरबार के दस्तूर को तसलीम करना पड़ा है। उसके तपे सोने-जैसे अंगो पर सुनहला लचका-चढ़ी

सर्दई साड़ी थी और उसी रंग की रेशमी चोली। वह महफ़िल के बीचोबीच हज़ारों चुटीली चितवनों की चोट सहती हुई सर झुकाये बैठी है। आँचल को वह सर पर सरकाती रहती और हारमोनियम पर गाती जाती। कभी-कभी सर उठाकर सामने की युगल-मूर्त्ति की छवि को आँख-भर देखती और फिर न जाने किस लिहाज़ से नीची कर लेती। उसकी चेष्टा पर न हाव-भाव की लहर है, न किसी की चटुल चितवन का असर। वह मजलिस की परी होकर भी मजलिस की आबोहवा से निराली है।

उसके भजन गाने की शुहरत थी। उसके आचार-विचार की चर्चा थी। इसीलिए धार्मिक महफ़िलों में उसकी तलाश एक आम बात थी। उसकी ईश्वरी देन पर सैकड़ों ईर्ष्या करते। कमला-सा रूप, कमल-सी आँखें, सुकोमल बोलचाल और कमाल का गला। उसकी क़िस्मत फूटी न रहती, तो आज ये विभूतियाँ उसे वसन्त की रानी बनाती।

उसके गले में दर्द-भरा लोच है। जब गाती, एक-एक पद में रूह फूँक देती, गले में दिल डाल देती। आज वह 'मीरा' का मशहूर भजन गा रही है—

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई! मेरे तो०"

इस गाने को वह इस अन्दाज़ से अदा करती मानो वह सचमुच अपने हृदय की मार्मिक वेदना जता रही हो! गले से

आवाज़ क्या निकलती, गल-गलकर कलेजा निकल पड़ता। एक-एक तान मे प्राणो की मूर्च्छना लहरा रही है। तमाम महफ़िल सन्नाटे का आलम हो रही है।

'मीरा' के इस भजन मे उसने अपने हृदय का रहस्य—अपने जीवन का सुर—भर दिया। जभी तो उसके कंठ की ध्वनि उसके प्राणो की वाणी बन गई—

"तात-मात भ्रात-बन्धु आपनो न कोई।
छाँडि दई कुल की कानि होनी होय सो होई!'' मेरे तो०"

उसने इस अन्तिम छेड़ को जिस बेबसी—जिस मिठास—जिस करुणा से गया, उसका आनन्द तो उसी को नसीब हुआ, जिसने उसके मुख से यह पद सुना। ऐसा मालूम हुआ कि उसके सूने दिल की उसाँस कंठ तक आते-आते राग बनकर निकल गई। सूली की सेज पर गाती हुई 'मीरा' की तरह हृदय के आवेग से थर्राता हुआ—दिल के दर्द से भरा हुआ—उसके मुख का एक-एक शब्द मन्दिर की दरो-दीवार पर टकरा गया। उसके जीवन का सारा रुद्ध हाहाकार सुर के सुरूर में अन्तर को चीरता हुआ विश्व मे बिखर पड़ा।

भजन खत्म हुआ। वाह-वाह की ध्वनि मे उसके हृदय का वेदना-संगीत लीन हो गया। पाँच मिनट तक सन्नाटा रहा। फिर महन्तजी ने कोई राष्ट्रीय ग़जल गाने की फ़रमाइश की।

बेला ने दम-भर साँस ली ; फिर हारमोनियम छेड़ा और गाना शुरू किया—

क्या रंग ला रही हैं नैरंगियाँ तुम्हारी ,
घर को जला-जला के अच्छी रही दिवाली !

महफिल गर्म हो उठी । गाने का रंग चढ़ गया । उसने गाने मे रूह फूँक दी—

फ़ैशन तुम्हारा जीवन, लन्दन तुम्हारा नन्दन ,
नीले नयन की चितवन मिसरी-मिली कटारी !

सहसा उसने आँचल सर पर सरकाते वक्त आँखे ऊपर उठाईं, तो देखा कि उसकी आँखों पर दो पारचित आँखें खड़ी हैं । उसका कलेजा धक्-से कर गया ···भगवन ! मैं क्या देख रही हूँ ! ये आँखें कहाँ से आ टपकी ? ·ऐ ! यह तो श्रीधर है ! ····

भगवान् के झूले की रेशमी डोरी के निकट गले मे चम्पई चादर डाले श्रीधर खडा-खड़ा एक टक बेला की ओर देख रहा है ।

बेला का चेहरा ज़र्द पड़ गया । उसका गला रुँध आया ; गाना रुक गया, आँखे झिप गईं । छन-भर वह थर्राई और तिलमिलाकर वहीं फ़र्श पर ढेर हो गई !

महफ़िल मे कुहराम मच गया । श्रीधर ने दौड़कर उसे गोद मे उठा लिया । बात-की-बात मे भीड़ चीरता हुआ मन्दिर के पीछे अपनी कोठरी मे ले चला, भूल गया कि वह क्या कर

रहा है—किसे ले जा रहा है—देखनेवाले क्या कहेंगे ! किसी ने उसे पहचाना तक नहीं। किसी ने उस घड़ी इस रहस्य को समझा भी नहीं।

महन्तजी ने उठकर लोगों शान्त किया कि बेला बाई सहसा भीड़ और गर्मी से अस्वस्थ हो गईं। बात-की-बात में रासमंडली खड़ी कराई, पर महफिल का मजा किरकिरा हो गया। रासलीला का रंग जमना आसान न रहा।

उधर बेला चारपाई पर बेसुध पड़ी है। श्रीधर उसकी शुश्रूषा में व्यस्त है। ठंढे पानी के छींटे पाकर उसकी आँखें तो खुल गईं, मगर उसके अंगों की शिथिलता नहीं गई, न चेतना को बिजली ही दौड़ी। वह बार-बार थर्राकर काँप उठती है। कभी पलकें उठाकर श्रीधरको देखती. फिर बन्द कर लेती।

कुछ देर बाद श्रीधर ने उसके हाथों को उठाकर अपनी छाती पर रखा और उसके कानों में मीठे स्वर से पुकारा—"बेला ! बेलारानी !"

क्या वह पड़-पड़ी उस माधुरी को पीती रही, उस स्पर्श के सुख को लूटती रही ? क्या वह सोचती है—मुद्दतों पर यह बेहोशी नसीब हुई है—मुद्दतों पर यह मसीहा मिला है। दो-चार घंटे भी तो यह जड़ता छाई रहती; कुछ और देर तक तो इस उपचार का सिलसिला चलता !—क्या सचमुच वह अतीत की कुएँवाली घटना की रात का स्वप्न देख रही है

—वही रात, जो उसके जीवन की रात में एकमात्र दिन है! कौन कहे, यह बेहोशी की जड़ता है या सुखावेश की शिथिलता!

मगर, जब श्रीधर ने अपने होंठों को उसके कानो के आसपास से हटाकर कपोलों पर लाकर रखा, और वह मधुर ध्वनि निविड स्पर्श के रूप में परिणत हो गई, तब अचानक वह न जाने किस आवेग की ठोकर पर धडफड उठ बैठी और चारपाई टेककर कोने मे खडी हो गई। दीवालगीर की धुधली लौ ने उसके चेहरे की तरफ इशारा किया। श्रीधर ने देखा कि सघन पल्लवांतराल के जाल से बेला के लोचन किसी अपरूप ज्योति की लौ पर कॉप रहे हैं। कौन कहे, वह करुणा-भरी वेदना की ज्वाला है या किसी गंभीर प्रेम की शिखा!

बेला ने धीमी आवाज़ मे कहा—"आज आप फिर अपनी स्थिति को भूल गये। मेरी तो कुछ बिगड़ी-बिगड़ती नही; बिगड़ी-बिगड़ती है आपकी। आप ही की किरकिरी होती है।"

"होती है, तो हो! तुम्हे गिरते देखकर मेरे हाथ से बाग छूट पडी। तुम्हीं क्यों गिरने गई?"

"सो तो मैं खुद नही जानती। भीड़ और गर्मी की शिद्दत से एक तो मैं यों ही परीशान हो चली थी, उसपर आपको अचानक देखकर मेरे पैरों-तले से ज़मीन निकल गई।"

"बेला, मैं क्या जानता था कि तुम्हें यहाँ देखूँगा! मुझे

तो इस जीवन मे तुम्हें फिर देखने की आशा तक नही थी। तुम्हारे एकाएक गायब हो जाने के बाद मेरा रोआँ-रोआँ समझ गया कि तुम मेरे जीवन मे क्या थी। तुम जिस पहलू को सूना कर गई, वही पहलू तो इन प्राणो का पहलू है। तुमने तो समझा, मेरी शादी करा दी—और बस, घर बस गया! मैं पूछता हूँ दिल उजाड़कर कोई घर बसा पाया है? जब दिल ही वीरान हो गया, तब घर रहा या न रहा, दोनो बराबर है। 'सुधा' बिचारी इस वीराने मे रस की फुहार देने से बाज न आई; मगर ऊसर उर मे न वह हरियाली ला सकी, न सूखे डंठलो मे कोपल। और, इसी तमन्ना मे वह··"

श्रीधर का गला भर आया।

"सुधा उठ गई? हाय! यह क्या सुन रही हूँ मैं!"—बेला काँपती हुई बोली।

"अच्छा हुआ, चली गई! मरते दम तक भर-माँग सिन्दूर की तलाश रही। इससे ज्यादा उसने कभी न माँगा—न पाया। हाँ, तड़पकर जी ठंढा कर लेने को एक गोद का बच्चा छोड़ गई!"

"सच! लल्ला साथ आया है?"—बेला ने बड़े आग्रह से पूछा।

"नहीं! यहाँ कहाँ लाता!"

"तो आप यहाँ कैसे आये?"

"गर्दिश खीच लाई, बेला! मुझपर चार हजार की डिग्रियाँ

हैं। गिरफ्तारी का वारंट भी जारी है। रुपये के इन्तज़ाम में बाज़ार नापता फिरता हूँ। मगर, अभीतक किसी ने मेरी कमर नहीं पकड़ी। यहाँ भी दो-चार दोस्तों के दरवाजे खटखटाये, कोई भर-मुँह बात नहीं करता। महन्तजी से ज़माने से परिचय है, इसी से यहाँ ठहर गया।"

"मगर, आपको हाथ पसारने की ज़रूरत हुई, यही बात मेरी समझ में नहीं आती। आपका भरा घर· · ·"

"आज सूना है! अव्वल तो जो कुछ जेवर और नकद था, सब बाँध-चूँधकर चच्ची दामाद के घर चली गई!"

"सो कब?"

"तुम्हारे चले आने के कुछ ही दिनों बाद। मैं तो घर पर था नहीं। चार साल तक इधर-उधर तुम्हारी तलाश में भटकता रहा। बिलकुल परवा नहीं थी कि कहाँ क्या लुटा जा रहा है। न अपने रोज़गार में दिल था, न जायदाद की देख-रेख से मतलब। सर पर जैसे वहशत सवार थी। फिर घर से दूर—शहर के चक्कर में जा पड़ा। बस, ऐयाशी में बेहोशी और अंगूरी में बेखुदी ढूढ़ने लगा। मगर सब बेकार। दिल की लगी को शराब भी न बुझा सकी।"

बेला सन्न हो गई। काटो तो खून नहीं! उसका सिर चक्कर खाने लगा—या भगवन्, क्या मैं ही इस अनर्थ की जिम्मेवार हूँ? मैंने तो श्रीधर के हित के लिए ही कलेजे पर पत्थर रखा

था, और यह उलटा हो गया! मेरे भाग्य मे इन्हे भी गुलफुल देखना नहीं लिखा है!

श्रीधर ने फिर कहना शुरू किया—"बेला, तुम्हे जयदेवजी को याद होगी—वही, चचाजी की निगरानी मे घर का काम-धंधा देखा करते थे।"

बेला ने सर हिलाकर अपनी जानकारी जताई।

"वे ही मुझे पार साल कलकत्ता की सोनागाँछी से घर घसीट लाये। मेरी वह दोहरी देह विलायती बोतलो की गर्मी मे बताशे-सी घुल गई थी। अब तो कहीं अच्छा हूँ। जिस मुश्किल से वलकत्ता मे मेरे लटपटे दिन वटे, मैं ही जानता हूँ। अंधाधुंध कर्ज लेता और पैमाने के पनाले मे पानी की तरह बहाता गया। कुछ मायावी चितवनो की झावली मे उड़ गया। अगर जयदेवजी उस दोज़खी दुनिया से मुझे खींच न लाते, तो अबतक''' खैर, जाने दो यह बात! मैं तुम्हे खोकर भी जीता रह गया, यही ताज्जुब है। घर पर आकर जब लल्ला को देखा तो आँखो मे दम पड़ा दिल मे एक दिलासे की सूरत नज़र आई और घर सँभालने की फिक्र पडी। मगर रह-रहकर तुम्हारी याद काँटे की तरह चुभती रही। मै न मरा, न ज़िन्दा ही हुआ। रोटी-दाल से ज़रूर खुश हूँ; मगर दो-चार महाजनो की डिग्रियाँ सर पर मँड़रा रही हैं, और अब बिजलियाँ बनकर टूटा ही चाहती हैं। आज तुम्हे देखकर

मेरे अधभरे जख्म फिर ताज़ा हो गये। अब आगे क्या होगा, मै खुद नही जानता।"

"आपने फिर शादी नहीं की ?"

"क्या खूब ! शादी ! क्यो करता, बेला ! क्या एक स्त्री का लहू हाथ रँगने के लिए काफी नही है—दोनो हाथों के लिए दो चाहिए ?"—श्रीधर ने पागल की तरह बतीसी दिखा कर कहा।

बेला क्या जवाब देती ! पशोपेश मे पड़ी खड़ी रही।

"बेला, यहाँ आकर जब तुमने मोतियो से माँग भर ही डाली, तो उसे सिन्दूर से भरने से क्यो इनकार हुआ ? मैं तो तुम्हारे सर पर सिन्दूर रखने को तैयार ही था। मगर, शायद मै भूलता हूँ, मोतियो के आब को सिन्दूर तो पा नहीं सकता ! सिन्दूर के ज़रिये तो सदा-सोहागिनो की शौक़त नही मिलती !"

"माफ कीजिये, आप भी इस सूनी माँग को मोतियों ही से भरते, कुछ सिन्दूर से नहीं। इतनी ताक़त आपकी उँगलियों मे न थी।"

"तो क्या मरने के लिए तुम्हे कोई दूसरा रास्ता नहीं था ?"

"आपका शाप जो मेरे सर पर था ! मैं जाती, तो कहाँ जाती ! और, मरने के लिए दूसरा ज़रिया ही क्या था ? कफन पहना या पेशवाज़, कोई ख़ास फ़र्क नहीं।"

"सब-कुछ पहनोगी, मगर चूड़ी और चुनरी नहीं—क्यो !"

"मैं तैयार हूँ। चलिये, इसी मन्दिर मे भगवान् को साक्षी करके पहनाइये !"

बेला छन-भर चुप रही और श्रीधर के चेहरे का उतार-चढ़ाव देखती रही। श्रीधर पत्थर की मूर्ति-सा खड़ा-खड़ा सोचता रहा। फिर दबी ज़बान से बोला—"यहाँ एक क़िस्सा खड़ा करना चाहती हो ?"

"मै चाहती हूँ ! मुझे तो यह सौभाग्य मिलने का नहीं; फिर इस हिर्स से फायदा ? इसीलिए तो पहले भी मैने आपको इस आग मे कूदने से रोका था ! आपको गले लगाकर मैं आपकी सेज की सहचरी होती सही, मगर आपकी पूजा की सहधर्मिणी नहीं। आपके बच्चो की माँ हो सकती थी; मगर आपके उत्तराधिकारी की माता नहीं। और, फिर आपको तो कामिनी की कमी नहीं थी, कमी थी गृहिणी की।"

"अब समझा ! तुम्हे पत्नी को मर्यादा मयस्सर नही थी, इसीलिये तुम इनकार कर दिया।"

"सा बात नही थी ! मैं आपकी क्षति से हिचक गई, कुछ अपनी क्षति से नहीं। मेरी क्षति क्या थी ? आप मेरा हाथ थामकर उठा तो सकते नही, खुद ही गिर जाते। मैं जो थी, वही रह जाती और आप पॉक के पनाले मे जा पड़ते। मेरी तो मुराद पूरी होती; मगर आपका घर-बार, धन-धर्म, मान-मर्यादा—सब-कुछ लुट जाती।"

"जैसे लुटने को कुछ बाकी रहा! जाने कहाँ से कहाँ लुढ़क पड़ा। जान के भी लाले पड़ गये। घर लुट गया, सुधा उठ गई। मैं आज वैसाखी गुब्बारे की तरह मारा-मारा फिर रहा हूँ—क्यों? चूँकि तुम्हे न पा सका!"

"यह कहिये कि मुझे पा गये होते, तो गर्द-गुब्बार ही बने रहते। लोक-परलोक—दोनों छूट जाते।"

"हर्गिज नहीं। एक भी न छूटता। मैं जिन्दगी से नामुराद तो न होता। मैं तो समाज की आँखों मे उँगलियाँ देकर दिखा देता कि प्रेम के बलपर मनुष्य क्या कर सकता है। कठिनाइयों मे सीना भिडाकर लड़ता। नस-नस में आशा और आकांक्षा खेलती रहती। दावे से कहता हूँ कि पहाड़ तोड़कर भी अपना रास्ता जरूर निकाल लेता।"

बेला सोच मे पड़ गई। उसने क्या सोचा था, क्या हो गया! उसके मर्म के अन्तस्तल मे वेदना की एक लहर उठी और वह इसी लहर मे ऐंठ गई।

"आह! बेला, आज भी तुम मेरे सुख-दुख मे शरीक हो जाती! ··· बस, तुम्हे 'हाँ' कह देना है। फिर तुम देख लेना, कैसे मेरी नस-नस फड़क उठती है और मैं पहाड़ से टक्कर लेता हूँ! तुम्हारे हाथ मे मेरे नसीब की कुंजी है, खोलो या बन्द रखो!"

"मैं आपके पसीने की जगह लहू बहाने के लिए तैयार हूँ! कहिये, मुझे क्या करना होगा?"

"बस, चलो, हम-तुम बम्बई चले चले! नहीं, मै तुम्हे रखेली बनाकर नहीं रखूँगा, शादी कर लूँगा तुमसे और हम दोनो मिलकर एक हो जायँगे। यक़ीन मानो, मैं कुछ दाव पेच की बातें नहीं करता! सच पूछो तो तुम्हारा विवाह कभी हुआ नहीं था। जो हुआ था, वह ढोंग था। तुम तो नादान बच्ची थी। मेरा विवाह भी विवाह नहीं था—विवाह का सब्ज़बाग था। मेरे दिल को कभी स्वीकार नहीं था। किसी चादर के छोर से एक आँचल का खूँट बाँध देना विवाह नहीं है। प्रेम के सूत्र से हृदय को हृदय से बाँधना विवाह है। यह रीति न हो—पर नीति तो यही है। समाज हामी न भरे, न्याय की वाणी तो यही है।"

"आप भूलते है। मैं विधवा ही नहीं, वेश्या भी हूँ!"

"बेला! क्या हृदय के विधान से बढ़कर शास्त्र का विधान है? मान लो, तुम पत्नी नहीं हो सकती; लेकिन मेरे जीवन की संगिनी तो बन सकोगी! एक ब्राह्मण को जीवन-दान दे सकोगी, यही क्या कम है? और, बेला! इतमीनान रखो, ऐसा विवाह भले ही लोकाचार के विरुद्ध हो, कुछ शास्त्र से असगत नहीं है। जो इसे असंगत मानता है, वह ढोंगी है—आँख का अन्धा है। मेरी आँखे खुल गई है, मुझे कोई पट्टी नहीं पढ़ा सकता। शहरों मे अब ऐसे विवाह दो-चार हर साल हो रहे हैं। आँखवालो के समाज मे ऐसी कोई रुकावट नहीं। जो लकीर के फ़क़ीर हैं, वे तो सरासर कूप-मंडूक हैं; उन्हे विश्व

के परिसर का पता नहीं, न मानवता की प्रगति का परिचय है। गाँववाले अपनी अलग डफली कबतक बजाते रहेंगे? वह दिन क़रीब है, जब ज़माने का रंग देखकर उन्हें भी अपना रंग बदलना पड़ेगा।"

"लेकिन इस समय तो गोविन्दपुर में उन्हीं का दौर-दौरा है!"

"हुआ करे! मुझे तो गोविन्दपुर में रहना नहीं है, रहेगा वहाँ लल्ला। सयाना होकर बाप-दादा का रोज़गार गुलज़ार करेगा। ज़्यादा नहीं, तो जबतक निभ सके। जयदेवजी जाय-दाद की देख-रेख कर लेंगे। मैं उन्हीं को सब सुपुर्द कर दूँगा। पुराने रीतियों का दम भरनेवाले लाख लाम-काफ बकें, लेकिन वे मेरा एक बाल भी बाँका नहीं कर सकते। हम दोनों बम्बई चलकर अपना नया संसार बसा लेंगे। कहो बेला, तुम साथ दोगी? तुम्हारे 'हाँ-ना' पर मेरे जीने-मरने का सवाल टँगा हुआ है!"

श्रीधर ने बेला के सामने घुटने टेक दिये, उसके हाथों को अपने हाथों में थाम लिया और उँगलियों से उसकी हथेलियों को सहलाने लगा।

बेला पशोपेश में पड़ी तड़पती रही। क्या जवाब दे! 'हाँ' कहती है, तो श्रीधर सब-कुछ तिलांजलि देकर पथ का भिखारी बन जाता है; 'ना' कहती है, तो उसके पागल प्रेमी का कलेजा टूकटूक हो जाता है।

श्रीधर उसके दोनों हाथों को झकझोरता हुआ बोला—"बेला! कहो क्या सोचती हो? तुम्हारी कौन-सी मुश्किल आसान नहीं होती?"

बेला अधीर हो उठी। श्रीधर की उँगलियों का निविड़ स्पर्श उसके लहू में बिजलियाँ छोड़ रहा था। श्रीधर की बड़ी-बड़ी आँखों के करुण-प्रवण आवेदन ने उसके कलेजे की जड़ हिला दी। इस आँधी में संयम की कीलें उखड़ गईं।

बेला का कलेजा उछलकर उसके मुँह में आ गया और 'हाँ' बनकर ज़बान की सीमा तक पहुँचना ही चाहता था कि एका-एक दाहिनी ओर किवाड़ पर खट-खट आवाज़ हुई। इस शब्द के धक्के से धक्का खाकर वह सतर्क हो गई और हाथ छुड़ाकर घबराई-सी बोली—"मुझे दो-चार दिन का वक्त दीजिये। मैं फिर मिलूँगी, तब जवाब दूँगी।"

"मैं तो कल तड़के ही महन्तजी के साथ चुनार जा रहा हूँ। चौथे दिन लौटूँगा। कहो, तुम्हें कोई अड़चन है? कहीं बँध गई हो?"

"नहीं-नहीं, बँधने से क्या वास्ता?"—कहती हुई बला बाईं ओर का किवाड़ खोलकर तीर की तरह निकल गई।

षष्ठ परिच्छेद

बेला कमरे से निकलकर कोई दस क़दम आगे बढ़ी होगी कि सुरेश और चुन्नीलाल सामने नज़र आये। सुरेश ने बेला को देखा, तो मुड़कर चुन्नीलाल से कहा—"यह लो, बेला आ रही है, बेला! भला कौन इसे उठा ले जाता? कोई नन्ही बच्ची थोड़े ही है!"

सुरेश बेला के निकट चला आया और बड़े तपाक से बोला —"बेला, मै तो बदहवास दौडा आ रहा हूँ! कहो, खैरियत तो है? तुम्हारे दुश्मनो को गश आ गई थी।"

"क्या कहूँ, ऐसी भीड़ और ऊमस थी कि अचानक सर चकरा गया। मैंने बहुत ज़ब्त किया—बहुत ज़ब्त किया; मगर सँभाल न सकी।"

"मैं तो तुम्हारे घर पर बैठा तुम्हारी बाट जोह रहा था, कि चुन्नीलाल दौड़ा हुआ पहुँचा। बोला कि बेला महफ़िल मे

बेहोश हो गई और उसे न जाने कौन उठा ले गया ! मैं तो जानो हक्का-बक्का हो गया · किसी तरह यहाँ दौड़ा चला आ रहा हूँ। सच मानो, तुम्हें यहाँ न पाता, तो तड़प-तड़पकर मेरा दम निकल जाता !"

"मै बिलकुल चंगी हूँ। आपने फिजूल तकलीफ की। खैर, अब तो आप लौट जाइये !"

"तो तुम फिर महफिल मे जा रही हो क्या ?"

"नहीं तो, मै अब गा-बजा नहीं सकती। मेरा सर उड़ा जा रहा है, बदन थर्राता है।"

"चलो, तुम्हे घर पहुँचा दूँ। सवारी हाजिर है।"

"तांगे से चली जाऊँगी; कोई अन्देशा नहीं।"

"वाह ! यह भी कोई बात है ? ऐसी हालत मे तुम्हें अकेली जाने दूँ ? मेरी छाती पर हाथ रखकर देखो, अभी तक कैसी धड़कन है !"

सुरेश ने उसके हाथ को झट खीचकर अपनी छाती पर ला रखा। चुन्नीलाल से न रहा गया। उसने झटपट एक चुटकुला छोडा– "बेला बाई ! आप रास्ते-भर तो 'हनुमान-चालीसा' का पाठ करते आये—इस क़दर घबरा गये थे !"

"अजब उल्लू हो ! कील, कवच क्यो नहीं कहते ?"— सुरेश ने हँसकर जवाब दिया।

बेला बुत बनी थी। उसने न कुछ सुना, न समझा। वह किसी तरह घर वापस जाना चाहती है। जब वह मन्दिर के

अहाते से निकल कर बाहर सड़क पर आई, तब देखा कि सुरेश की फिटन के सिवा वहाँ कोई दूसरी सवारी मौजूद नहीं। लोगों की कुतूहली दृष्टि उसे चारों ओर से काँटे की तरह चुभने लगी। उसे सुरेश के साथ बगलगीर होकर जाना मंजूर न था; मगर वह परिस्थिति से मजबूर थी। आधी रात को वह अकेली किधर जाती? जो दो-एक आदमी उसके साथ आये भी थे, उनका पता न था; मन्दिर की चहल-पहल अलग उसका कलेजा दहला रही थी।

सुरेश सिर हो गया और बेला का सर चक्कर काट रहा था। आख़िर वह क्या करती? फ़िटन के एक कोने में सिट-पिटा कर बैठ गई। सुरेश भी साथ ही अकड़कर बैठा। कोचवान ने टप चढ़ा दिया।

चुन्नीलाल ने साथ जाना मुनासिब न समझा। वह मुस्कुराता हुआ मन्दिर की ओर लौट चला। दो क़दम भी आगे न बढ़ा होगा कि सहसा उसकी आँखें सामने सुरेश के पिता पर पड़ीं। आप एक मोटा-सा सोटा हाथ में लिये मन्दिर से झूमते हुए निकले आ रहे थे। चुन्नीलाल को देखा, तो रुक गये, और झल्लाकर पूछा—"क्यों चुन्नी! गाड़ी कहाँ गई?"

"सरकार, मुझे तो मालूम था नहीं कि आप अभी लौट रहे हैं। जानता, तो रोक रखता गाड़ी।"

"मैं तो अपने घोड़ों की टाप से ताड़ गया कि गाड़ी आ गई, इसीलिए उठ आया। आख़िर, गाड़ी गई कहाँ?"

"गाड़ी तो सुरेश को लेकर घर गई।"

"घर गई! मुझी से हवा बाँधते हो? मैंने कुछ धूप मे बाल नहीं पकाये! सुरेश की माँ बेला बाई का आँचल लेने के लिए बाट जोह रही है?"

अब तो चुन्नीलाल के हाथ के तोते उड़ गये। उसका माथा ठनका—'हो-न-हो, यह बुड्ढा यहीं कहीं आड़ मे खड़ा-खड़ा सब देख रहा था!' उसकी ज़बान तालू मे सट गई।

"सुनो, चुन्नी! मेरी आँखो मे धूल झोंकने से कोई फायदा नहीं। मै सब-कुछ देखता हूँ और समझता हूँ। मैं भी जवानी मे इस आग से खेल चुका हूँ। और, तारीफ यह कि कहीं लौ तक न लगी। सुरेश अभी कच्चा खिलाड़ी है। यह बेला को फिटन पर लेकर शहर मे वारे-आम चौकड़ी भरना अपनी भद्द करना है। मैं जानता हूँ, यह शौक़-सिगार का सिन है; मगर इसका यह मतलब नहीं कि दिलचस्पी के साथ-साथ दिल भी चस्पाँ हो जाय—कुल ही बह जाय। इश्कबाज़ी भी एक हद तक, एक अन्दाज़ से, होनी चाहिये। अगर प्याले से बोतल पर गये, तो याद रखो, पनाले मे पड़े। रंडी की सोहबत महज़ दो घड़ी की लज्ज़त है, कुछ बराबर की बहशत नहीं। अगर तफरीह है, तो यह फरहत लाएगी; नहीं तो, तबाही धरी रखी है। वेश्या वेश्या ही है, वह ग़ज़ल गाये या भजन सुनाये—कंठा पहने या कंठी बाँधे। उसे कंठहार बनाया, तो गये! इस कूचे मे तो आये; मगर यहाँ किधर की हवा है,

इसकी ख़बर भी रखते हो ? अजी, तुम्हारी बेला बाई का रुख किधर है, इसका पता भी तुम्हे है ? मैं तो कहता हूँ, वह उसी छोकरे को चाहती है।"

"किसको, सरकार ?"

"अजी वही, जो आज उसे भरी महफ़िल मे गोद उठा ले गया। मै तो वहीं बैठा सब तमाशा देख रहा था। दोनो ने पहले आँखो-आँखो मे सट्टी जमा ली—अपने-अपने पार्ट बाँट लिये, फिर बेहोशी का नाटक खेला गया। लोगो ने तो समझा कि बिचारी को तानो के उफान मे चक्कर आ गया और वह उसी का कोई होशियार नौकर है, जो चटपट उसे डेरे मे उठा ले गया !"

"मगर, हुजूर, वह है कौन शख्स ?"

"महन्तजी का ही कोई दोस्त है और बेला बाई का ख़ुफ़िया आशिक़ ! तुम्हे गरज़ है, तो छान-बीन करो। इतना ज़रूर है कि तुम्हारी बेला कुछ दूध की धोई नहीं है। तुम देखकर भी कुछ देख नहीं सकते। तुम्हारी अक्ल को तो पाला मार गया है। मैं तुम्हारी जगह पर होता, तो उसे दिल से दूध की मक्खी की तरह निकाल डालता, कुछ सर पर बिठाकर शहर की मटर-गश्ती नहीं करता !"

चुन्नीलाल जवाब क्या देता ? उसे चुप्पी साधनी पडी।

"ख़ैर, अब यहाँ खड़े होने से फायदा ! चलो, घर चलें। सवारी तो कोई मिलती नहीं।"

"आप दस मिनट यहीं ठहरें। मैं अभी सवारी लाता हूँ। गलीके नुक्कड पर और नहीं तो कोई पालकी-गाडी ज़रूर मिल जायगी !"

"रहने दो। पॉव-पयादे चलो। महज़ पाव-भर तो ज़मीन है। तुम-जैसे जवानों से मैं आज भी पंजा ले सकता हूँ ! मेरे इस सिन मे बिनौत के पैतरे देखते, तो दंग रह जाते !"

चुन्नीलाल ने निगाह उठाकर देखा, बूढ़ा सचमुच जवानों का चचा है ! उसकी चौड़ी छाती एक तिल भी कहीं से झुकी नहीं है, न अङ्गों मे झोल है, न कमर मे बल। उसके बाल सफेद ज़रूर हैं और आँखों-तले झुरियाँ भी ज़रूर हैं, पर इससे उसके चेहरे के आबोताब मे कोई कमी नहीं है। उसकी रँगीली तबीयत का चुलबुलापन मुख पर साफ लिखा है !

दोनों चल पड़े। चुन्नीलाल ने जेब से पान का डिब्बा निकाला और बूढ़े सरकार के सामने तपाक से पेश किया। सुरेश के पिता ने डिब्बे से दो खिल्लियाँ उठाईं और मुँह मे दबा लीं।

"सुनो, चुन्नी ! तुमसे एक ज़रूरी बात है। तुम सुरेश के दिली दोस्त हो, कुछ महज क्लबबाज़ दोस्त नहीं। सुरेश के सिर पर न जाने कैसी सनक सवार है। शादी के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ता है। माँ बिचारी दिन-रात सर धुनती है—मेरा घर भूत का डेरा बना है, न बहू है, न बच्चा। बिरादरी मे कितनी खासी लड़कियाँ हैं—रूप और गुण मे एक-से-एक ! उसे कोई

पसन्द ही नही पडती ! यह कैसी खब्त है, तुम्हीं कहो।

"भाडे की बीवियों से महज़ महफिल का चिराग जलता है, कुछ घर का चिराग नही जलता। घर के आँगन मे कल्याण के लिए तुलसी की लता रोपनी ज़रूरी है, बाहर चाहे तुम गमलो मे खुशबू और सजावट के लिए बेला और कामिनी लाख रखो। सिन्दूर से भरी माँग और है, मोतियो से भरी माँग और; एक घर की देवी है, दूसरी मजलिस की उर्वशी, एक से घर चलता है, दूसरी से दिल बहलता है; यह जीवन की सहचरी है, वह दो घडी की दिलचस्पी; इसे रखना जरूरी है, उसे रखना या न रखना तुम्हारी खुशी पर है।

"याद रखो, जब तुम्हारी जेब से सच्चे मोतियों की माला होगी, तभी तुम्हारे गले मे नकली मोतियो की लडी भी खुलेगी। उसके बगैर तुम्हारी कोई वकत नही, और यह तो महज सुबीते और आसानी के लिए छन-भर की शोभा है। खयाल रहे, भवन बनाकर ही चमन लगाया जाता है, पहले नहीं। अगर मकान ही गायब है, तो फिर गुलशन रहा या न रहा—दोनों बराबर है।"

"सरकार, आप इतमीनान रखे, मैं सुरेश को रास्ते पर ज़रूर लाऊँगा। मैं खुद भी समझता हूँ, बेला की जगह घर के बाहर ही है, घर के भीतर नही।"

"वह देवकन्या ही क्यों न हो, आखिर तो वह वेश्या है! उस पर भी तुर्रा यह कि बेवफा! मगर, मैं सर खपाकर ही

क्या करूँगा, तुम पर तो कोई असर नहीं ! आँख तो रखते नहीं और आशिकी करने चले हो !"

"सरकार, मै दस दिन मे सुरेश के ख़यालात पलट दूँगा।"

"सच ! तो देखो, चुन्नीलाल ! मै बूढ़ा हुआ और सुरेश अब सयाना है। मै उस पर सोटे तो फटकार नहीं सकता। मेरी बात टाल देगा तो मुझे सख्त चोट पहुँचेगी। तुम्हे बेला को ही टरका देना ज़रूरी है। मै तो समझता हूँ, वही किसी गौ से शादी के सवाल मे रोडे अँटका देती होगी। और सुनो, अगर तुमने मदद की और मेरा सूना घर भर गया, तो यकीन मानो, मैं भी तुम्हारा घर भर दूँगा। ज्यादा क्या कहूँ.."

चुन्नीलाल को ज़माने की रविश की पहचान थी। वह प्रत्येक परिस्थिति मे परिचित था। वह खूब समझता था कि बेला कभी सुरेश की नहीं हो सकती, न सुरेश ही कभी बेला का अपना हो सकता है। बेला तो महज़ दो घडी की ही मौज रहेगी।

आजतक जो छेड़-छाड चलती रही, उसका विधाता चुन्नीलाल ही था। अपना उल्लू सीधा करने की गरज़ से उसने सुरेश के काव्य-जनित उन्माद की आग को कुरेद-कुरेद-कर जीवित रखा। अब वह दो दिन मे धारा पलट देगा, और उसे पलट देने के लिए उसके हाथ मे काफ़ी मसाला मिल गया !

सप्तम परिच्छेद

जब बेला तिलमिलाकर फर्श पर लम्बी हो गई और श्रीधर ने चट दौड़कर उसे गोद उठा लिया, तब कहीं जयदेव मिश्र को पता चला कि यह बेला कौन बला है! उसकी सूरत परिचित-सी तो ज़रूर मालूम होती थी; पर आठ वर्ष के बाद एक ही निगाह में उसे ताड लेना उनके जैसे बूढ़े के लिए दुश्वार था। मगर, श्रीधर की तडप देखते ही उसके मानस-पट पर सारा अतीत बिजली की तरह तडप गया और वे एकाएक कमर थामकर ज़मीन पर बैठ गये। दिमाग पर बिजली तो चमकी ज़रूर, पर उनकी आँखो-तले अँधेरा छा गया। वे क्या समझते थे कि बेला कफन फाड़कर फिर उठ खड़ी होगी!

भगवन्! क्या इतने दिनों की तमाम कोशिश मिट्टी में मिल गई! यह पिशाचिनी फिर श्रीधर की छाती पर बैठ गई!

इन्हीं तिलस्मी चितवनों के फेर में श्रीधर की दीन-दुनिया लुट चली थी। ऐंड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर तो वे किसी तरह उसे राह पर ला रहे थे। आज अचानक आसमान से बिजली टूट पड़ी! क्या उनकी बोझी हुई नाव मँझधार में ही डूब जायगी?

जयदेव मिश्र परिवार के सच्चे भक्त थे। बूढ़े होकर भी जिस जाँ-फिसानी से गुरु-घराने की तिलमिलाती हुई धर्मध्वजा को अपने जर्जर कंधों से सँभाले खड़े थे, यह उनका दिल ही जानता था। श्रीधर को उन्होंने कञ्चन का कौर खिला-खिलाकर सयाना किया था। और, चूँकि श्रीधर बचपन से ही होनहार था, इसीलिए उनकी आशाओं का आधार भी था। उसके सर की वहशत उनसे कुछ छिपी न थी और उस वहशत का सर तोड़ने के लिए उन्होंने जी-जान से कोशिश भी की थी। थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली थी।

वही वख़्त आज जब बेला से आँख मिलते ही कब्र तोड़कर उठ खड़ी हुई, तब जयदेव मिश्र बिचारे हाथ मलकर रह गये। वे दौड़कर महन्तजी के पास पहुँचे और टूटे-फूटे शब्दों में अपनी सारी आशंकाओं को जताकर उनसे बेड़ा पार लगाने की मदद माँगी।

जब उस रॉड की आँखों का पानी ढल गया है, तब वह खुल्लमखुल्ला श्रीधर पर डोरे डालती फिरेगी और एक दिन साफ़ उड़ा ले जाकर मिश्रवंश की तमाम मर्यादा मिट्टी में मिला

देगी—यही आशंका उन्हें काँटे की तरह चुभने लगी। बेहोशी का ढोंग तो आज श्रीधर पर रंग जमाने के लिए उसने रचा था—इस बात पर वे हाथ में जनेऊ लेकर शपथ खाने को तैयार थे।

उनके दिल में बेला के लिए कोई जगह नहीं थी। उसे रसातल पहुँचा देने के लिए वे अपने सर की भी बाज़ी लगा देने को बद्धपरिकर थे। उनकी निगाह में श्रीधर के अभी दूध के दाँत भी नहीं टूटे थे, और बेला दम-ख़म में खिलाड़ियों में खिलाड़ी थी। उन्होंने महन्तजी के सामने बेला को शैतान की खाला करार देकर रूई के गाले की तरह तूम डाला।

महन्तजी को जयदेव मिश्र की बातों में बड़ी दिलचस्पी मिली। इस किसमिसी चटनी में कुत्सा का मिर्च भी था और रहस्य का पुदीना भी! फिर, मुँह में पानी भर आना ज़रूरी था। मगर उस पानी का उद्गम उनके हसद की जलन को बुझा न सका। उनके रेशमी जोगिया साफ़े की बहार पर—उनके कानों के हीरे के टाप पर—दिल न देकर बेला एक कलन्दर पर बेक़रार झुक पड़ेगी, यह उसका एक अक्षम्य अपराध था। वे नंगी तलवार की तरह चमक उठे और फ़ौरन् वार करने को तैयार हो गये।

इधर भरी महफ़िल में चपलनयना मानवती राधा के चरणों पर कृष्ण के लुंठित मुकुट का दिलफरेब मंज़र रंग ला रहा था, उधर महन्तजी अपनी दिव्य दृष्टि से मानवती बेला

के चरणों पर झुके हुए श्रीधर की मूर्त्ति को देखकर जामे से बाहर हो गये। वे भगवान् के दरबार की पतवार चँवर-चालक पुजारियों को सुपुर्द कर मन्दिर के पिछवाड़े श्रीधर की कोठरी की ओर बढ़े। किवाड़ खटखटाकर जब कमरे में दाख़िल हुए, तो मैदान ख़ाली पाया। बेला जा चुकी थी, और श्रीधर हुक्क की तरह मुँह बाये खड़ा था!

महन्तजी ने छूटते ही रंग बाँधा—"क्यों जी! तुम्हें आज इस साँप के बिल में हाथ देने की यह क्या सूझी? तुम्हारे मुँह में कालिख जो लगी, वह तो लगी ही, मुझे तो यही डर है कि कहीं हल्दी-चूना न लगाना पड़े!"

"आख़िर कौन-सी गलती हुई मुझसे?"

महन्तजी को देखते ही श्रीधर सिटपिटा गया था—वह आवेश का जोश बहुत-कुछ छँट चला।

"तुम्हें पता भी है, बेला सुरेशकुमार की दाश्ता है और सुरेश काशी का एक लखपती है! वह आज यहाँ के गुंडों को इशारा कर दे, तो हम दोनों महीनों खाट पर हल्दी-गुड़ पीते रहें!"

"बेला और दाश्ता! नहीं, यह मुमकिन नहीं महन्तजी!"

"सो क्यों?"—महन्तजी ने ज़रा तुर्श होकर पूछा।

"मैं उस ज़माने से जानता हूँ, वह उस कमाश की औरत नहीं। पेट के लिए गाती-बजाती जो हो; मगर..."

"तुम तो इस कूचे में कभी आये नहीं, न तुम्हें इसकी हवा

ही लगी है। तुम उस माया-परी की चाल को क्या समझोगे! वह आचार का ढोग रचती है—माला खटखटाती है, भजन गाती है और इसी पर तुम लट्टू हो रहे हो! यह स्वांग न भरती, तो फिर काशी मे उसकी तूती बोलती—पंडो और पंडितो की आँख की पुतली होती! उसी की बदौलत मन्दिरों मे जाम तक चल गया। उसने तो आते ही यहाँ की खिलकत की नब्ज़ पहचान ली, और तुम उसे आज भी न पहचान सके। तुम्हे खरे-खोटे की परख रहती, तो आज तुम्हारे सर पर खाक उड़ती? भाई, रंडी के हाथ की सुमिरनी और कायथ के गले का कंठी, दोनों एक ही चीज़ है—बस, वही बिल्ली की हज करनेवाली मशहूर बात है! खैरियत है कि तुम्हे यहाँ कोई जानता नहीं और मै उस वक्त वहाँ मौजूद था। नहीं तो, जनाब को आटा-दाल का भाव मालूम हो जाता! सुरेश कोई ऐसा-वैसा रक़ीब नहीं है—हाँ!"

"भाई, मैंने तो किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं! कोई ख्वाहमख्वाह नाक-भौ चढ़ाये, तो मेरी खता? एक औरत बेहोश होकर गिर पड़ी, उसे भीड़ से अलग यहाँ दवा-दारू के लिये उठा लाया। आखिर जिसके दिल मे ज़रा भी आदमीयत की बू होगी, वह ऐस मौक़े पर····"

"बड़े दिलवाले बने हो! और किसी के क्या दिल है! भरी महफिल मे टप-से लोक लिया! सुरेश को पता चल गया, तो तुम पर जो बीतेगी, वह तो बीतेगी ही, मेरी भी मरम्मत

अलग होगी—जौ के साथ घुन भी पिस जायगा !"

"वाह ! आपकी हानि क्यों होने लगी ?"

"अजी, हाथ से इतना बड़ा गाहक निकल जाय, और मेरी हानि नहीं ? हम दोनों हमपेशा है। यजमानों की दिल-जोई हमारा रोज़गार है और इसी रोज़गार से साल में हज़ारों की आमदनी खड़ी हो जाती है। वे दोनों बाप-बेटे इस वैष्णव-मन्दिर के स्तम्भ है। उनके यहाँ से नज़र-नयाज़ का सिलसिला चलता ही रहता है। आज के जशन में भी बूढ़ा यहाँ मौजूद था। देखता हूँ, तुम्हारी वजह से इस सनातन सम्बन्ध में खटाई पड़ जायगी !"

"सुरेश को जो रंज हो, मगर उसके बाप को··· ·"

"बाप की बिसात ही क्या है ? सत्तर के पड़ोस में पहुँच चुका है। पके आम के टपक जाने में कहाँ तक देर होगी ?"

"मगर आपको यह कैसे पता चला कि सुरेश बेला पर जान देता है और बेला सुरेश पर मरती है ?"

"यह लो ! शहर का बच्चा-बच्चा इस बात को जानता है। उसकी गदन में जो सतलरी तुमने देखी होगी, वह फूल-शय्या की रात की भेंट है। मुझे बात बनाने से फायदा ? अजी, बेला उसके पलंग की लौंड़ी है—लौंडी !"

श्रीधर के कलेजे में एक-एक बात गोली-सी लग रही थी। इस गोलेबारी से उसका मनोनीत माया-महल तिलमिलाकर टूट रहा था। महन्तजी की बात गलत हो सकती है; मुमकिन

है झूठी अफ़वाह उड़ गई हो—क्षीण आशा का यही एक स्तम्भ अभी तक टिका था।

"ओफ्! फिर तो बेला मेरी नहीं हो सकती! मैं तो उसके साथ विवाह करने को भी तैयार था!"—श्रीधर के मुख से अचानक यह आह आवाज़ बनकर निकली।

"विवाह!"—महन्तजी ने तिनककर ज़मीन पर हाथ का डंडा मारा और कहा—"पागल कहीं का! खोपड़ी औंधी हो गई है क्या? भला, रंडी से शादी! कलमा पढ़ने-पढ़ाने पर तैयार हो, तब इसे सोचना। जबतक तुम्हारे धड़ पर सर है और सर पर शिखा, तबतक तुम उस वेश्या की माँग में सिन्दूर नहीं भर सकते! तुम्हारी ही किस्मत में पंडित गिरिधारी लाल की गद्दी लिखी थी! उस कुल के गौरव को रंडी के उगलदान में गर्क करने के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है! हूँ-हूँ! बेला अब मिश्रजी के आँगन में कुलवधू बनकर पालकी से उतरेगी! पहले गाँव के दामन पर तुम ज़िन्दा कदम रख सकोगे? गाँववाले तुम्हें बोटी-बोटी न काट डालें, तो कहना! ऐसा ही दिल आ गया हो, तो यहीं पर रखेली बनाकर रख लो, किसी को उज्र नहीं। मगर, पहले सुरेश के मुँह का आहार छीन लेने की हिम्मत हो, तो शेर की माँद में हाथ डालना!"

श्रीधर की तो सिट्टी-पिट्टी गुम थी। बेला की बेवफ़ाई उसे पागल बना रही थी—"यही बात थी, तो उसने झूठ क्यों

कहा कि 'नहीं-नहीं, बँधने से क्या वास्ता ?' उसके चेहरे पर तो सदाक़त साफ़ लिखी थी। मेरी आँखों ने मुझे धोखा तो नहीं दिया ! क्या उसकी आँखों की मूक वाणी वेश्या की तरह दुरंगी हो गई है ? उसने इस दिल के उजड़े दयार में घर क्यों बनाया जब उसे यहाँ बसना मंजूर ही न था ? क्या सचमुच वह चालबाज़ हो गई है ? ·· चालबाज़ न होता तो वेश्या क्योंकर होती ? पेट पालने के लिए क्या दूसरा ज़रिया न था ?"—वह इसी हैस-बैस में डूब-उतरा रहा था।

"तुम्हें पता भी है कि वह कहाँ रहती है—किसके साथ ? वह बिजली के स्कूल में तालीम पा रही है !"

"बिजली कौन ?"

"वही, जिसकी तिलस्मी चितवनों ने शहर के कितने रईसों को भेड़ा बना रखा है ! जो बड़े दिल-दिमागवाले बनते थे, वे भी उसका लोहा मान गये !"

इतने में जयदेव मिश्र भी वहीं हाँफते हुए आ पहुँचे, और आते ही बम फेंका—"बेला तो अभी एक शौक़ीन जवान के साथ कहीं फिटन पर गई है।"

"हाँ-हाँ, वही सुरेश है। चुन्नीलाल उसे दौड़कर बुला लाया होगा। वह खुद तो यहाँ आया नहीं, चूँकि उसके पिता यहाँ मौजूद थे। इस कायस्थ के छोकरे को गुपचुप तैनात कर रखा था। सुरेश तो कोई कच्ची गोलियाँ खेलता नहीं !"

"तो सचमुच, बेला उसकी ताबेदारी में है ?"—श्रीधर ने फिर उसी तरह आह-भरी जबान से पूछा।

"उसके पास ज़र है, उसकी ताबेदारी न करेगी, तो तुम्हारी करेगी ? तुम्हें यक़ीन न होता हो, तो चलो, तुम्हें दूर से एक झलक दिखा दूँगा।"

"मगर वे तो फिटन पर हवा हो गये !"

"चलो, तुम्हें मोटर से ले चलता हूँ। पहले नहीं, तो साथ-साथ ज़रूर पहुँच जाओगे।"

श्रीधर तो यह चाहता ही था। आँखों से हक़ीक़त देख लेता तो उसे तस्कीन हो जाती।

महन्तजी ने तुरत मोटर निकलवाई। तीनों सवार हो गये। तीर की तरह गाड़ी चल पड़ी। श्रीधर के पेट में चूहे कूद रहे थे।

बिजली के मकान से कुछ दूर पर ही, गली के मोड़ पर, मोटर रुक गई। तीनों उतरकर एक पेड़ की आड़ में खड़े हो गये।

थोड़ी देर बाद ही टन-टन करती हुई फिटन भी आ पहुँची और मकान के सामने रोशनी में खड़ी हो गई। साईस ने उतर कर दरवाजा खोल दिया।

पहले सुरेश उतरा, उसके पीछे लटपटाती हुई बला ने पायदान पर क़दम रखा। सुरेश ने हाथ का काफी सहारा देकर उसे ज़मीन पर उतारा। बेला बुत बनी थी।

श्रीधर की निगाह ने बेला के चेहरे की परीक्षा लेनी चाही; पर उसके सर का लम्बा आँचल अन्तराल बना रहा।

सुरेश ने फिर उसकी कमर थामकर सीढ़ियों पर चढ़ाना चाहा, तबतक बिजली लहराती हुई उतर पड़ी। कोट-बूट में लैस अमीन भी आ धमका। बेला पर मिजाजपुर्सी और मुबारकबादी के मीठे अल्फाज़ बरस पड़े। बिजली ने उसे छाती से लगाकर मुँह चूम लिया। कहकहे पड़े। लोगों ने कहा —'महज़ ऊमस की शिद्दत से गशी आ गई होगी, और कोई बात नहीं। चलकर लेट जाओ।'

सबके साथ सिटपिटाती हुई बेला ऊपर चली।

श्रीधर को तो जैसे काठ मार गया। उसकी आँखों के आगे कभी अँधेरा छा जाता, कभी आँखों के तले लहू उतर आता। वह सिर से पैर तक थर-थर काँप उठा। जयदेवजी के कंधों पर हाथ रख दिया। वह भूल गया था कि बेला वेश्या है— और जो कुछ उसने देखा, वह एक साधारण परिचय पर भी सम्भव है।

जब लहू के जोश पर उन्मत्त झंझा उठती है, तब दिमाग की कीले सबसे पहले उखड़ जाती है। जहाँ उत्तेजना की आँधी हहास बाधती है, वहाँ विवेक का बाँध अनायास जगह छोड़ देता है।

इधर महन्तजी की बाँछें खिल रही थी। उन्होंने व्यंग्य-भरे स्वर में पूछा—"क्यों, अब भी आँखे खुली आपकी?

खुली हों, तो कान पकड़िये। जिस रूप के मोह पर आपने इतने दिनों तक अपनी मिट्टी पलीद की, उस रूप का असली रंग देख लिया न ? भाई साहब ! वेश्या की आँत में वफ़ा को तलाश साँप के दाँत में शहद की तलाश से कम नहीं।"

श्रीधर क्षण-भर चुप रहा; फिर अस्पष्ट शब्दों में बोला—"सच कहता हूँ, मेरे साथ महज़ आँखों का ही नशा नहीं था।"

"आँखों का नशा हो या दिल का; मुझे तो उतार से ग़रज़ है !"

"इतमीनान रखिये, नशा उतर चला ···।"

श्रीधर ने ज़बान से कह तो दिया कि नशा उतर चला, मगर उतरने के बदले तो वह और भड़क उठा। वह एक झोंके के साथ बिजली के कोठे की ओर लपका। महन्तजी घबराये; आगे बढ़कर उसका हाथ थाम लिया—"क्यों, चले कहाँ ?"—झटके देकर पूछा।

"अभी आता हूँ ! बस बेला से एक बात पूछनी है। उसने मुझसे झूठ क्यों कहा कि वह कहीं बँधी नहीं है ?"

"तुम भी अजब उल्लू हो ! वह और कहती क्या ? कहीं वेश्या भी अपने दिल की बात ज़बान के पहलू पर लाती है ? आख़िर यही मीठी ऐयारी तो उसकी रोटी है ! वह सचाई का रोज़गार करती, तो सदा-सुहागिनों में नाम लिखाती ! तुम्हारे पूछने पर वह फिर कोई बात बनाकर खड़ी कर देगी,

और तुम उसे मान लोगे! तुम समझते हो, तुम्हारी आँखों से भी सच्चा गवाह उसकी ज़बान है? अब तुम्हारे देखने या समझने को बाक़ी ही क्या रहा? फ़र्ज कर लो, वह बँधी न भी हो, तो इससे क्या हुआ? वह तुम्हारी तो कभी हो नहीं सकती! भला, इस वेश्या के तन से वह कभी पत्नी हो सकती है? बहुत होगी, तो बस, दाश्ता!"

"यह तो मैं समझता हूँ, मगर एक इतमीनान....."

"तो वहाँ जाने से क्या ख़ास इतमीनान होगा? बच्चू, और भी उलझ पडोगे! घर चलो, दो दिन मे आप ही भूत उतर पड़ेगा।"

बिजली के कोठे से एक सम्मिलित कहक़हे की आवाज़ आई। फिर हारमोनियम की झङ्कार हुई और तबले की थाप ठनकी।

जेब से रूमाल निकालकर श्रीधर ने मुँह पोछा, और चट मोटर पर सवार हो गया। फिर महन्तजी बैठे, जयदेवजी भी। गाड़ी जिधर से आई थी, उधर ही लौट चली।

उधर बेला की छाती की धडकन तबले की ठनक मे जगह ढूँढ़ रही थी; इधर श्रीधर के कलेजे की तड़पन मोटर की पहियों के घर्र-घर्र को चुनौती देने लगी।

अष्टम परिच्छेद

आकाश मे उषा की लाली फैल चुकी है। चिड़ियो की चहक से दिशाएँ मुखरित हैं।

इसब-मामूल बेला पौ फटते तुलसी-घाट से स्नान कर लौट रही है। वह आँखें उठाकर दिग्वधू के सिन्दूर-मंडित सीमन्त को देखती है—किरणों के सुनहले आँचल की कोर कैसी फब रही है! उसी क्षण भोर के आकाश मे वह शहनाई का मंगल सुर सुनती है। हैं! बात क्या है? क्या प्रकृति ने उषा की गद्दीनशीनी के उत्सव मे नया रंग—नया राग—भर दिया है! आज ये परिन्दे किसके अभिनन्दन के लिए वन्दी-गण बनकर मंगलाचरण सुना रहे हैं! उषा की सवारी तो प्रतिदिन इसी वक्त आती है; लेकिन उसके आँचल के सुहाग-सञ्चरण में आज यह अनोखी छटा कहाँ से खिच आई!

उसके नक़ीबों की आवाज़ में यह स्वर्गीय आनन्द की तान कहाँ से टूट पड़ी !

वह जन-विरल गलियों में सर झुकाये तेज़ी से चली जा रही है। उसके अन्तर की क्यारियों में गुलाब-कलियों की चिटख़ की ध्वनि है। उसके गले में आप-ही-आप किसी माया-मधुर मालकोश का सुर खेल रहा है। उसकी चितवन की कोर में सुहाग-चञ्चल नववधू की लज्जालोहित दृष्टि-सी एक लावण्य-लीला है और होठों के प्रान्त पर किसी अपरूप स्वप्न-लोक की किरणों की रेखा।

आखिर यह कहाँ की वासन्ती हवा है कि उसके अन्तर का कोना-कोना रसाल-मुकुलों की गंध से ओत-प्रोत है ! कल आधी रात को बेहोश होकर मन्दिर के फर्श पर लुढक गई थी, और सिर्फ चन्द घंटों में ही वह कौन-सी ऐसी सञ्जीवनी सुधा पी गई कि एक-एक कदम पर अब गुल कतर रही है।

गली के मोड़ पर आकर वह खड़ी हो गई। कहाँ वह खुश—गुलफुल—लौट रही थी, यह एकाएक उसका चेहरा उतर क्यों गया ? वह क्या सोचकर खुश थी, फिर क्या सोच कर खिन्न हो गई ? उसके चेहरे पर बारी-बारी एक रंग चढ़ रहा है, दूसरा उतर रहा है ! अचानक अपनी दाहनी ओर किवाड़ खुलने की आवाज़ से वह चौंक पड़ी और धीरे-धीरे आगे बढ़ी।

वह अपने मकान के नज़दीक आ गई। सडक पर काफी चहल-पहल हो चली थी। उसने देखा, रामू हलवाई दूकान पर बैठा चिलम पर आग फूँक रहा है और उसकी काली-कलूटी स्त्री कडाह पर जलेबियाँ छान रही है। अहा! जलेबियाँ कितनी मीठी होती हैं! सामने के शिव-मन्दिर का पट खुला है और किसी भक्त के गद्‌गद कंठ से निःसृत 'कर्पूरगौरं करुणावतारं' की छन्द-लहरी राह-चलतों के कानों मे सुधा ढाल रही है। भगवान शिव की प्रार्थना कैसी हृदयग्राहिणी है! सामने बाईं ओर के मकान की छत पर दो ब्राह्मण-बालक झूम-झूमकर ऊँची टीप से 'लघुकौमुदी' के सूत्रों की आवृत्ति कर रहे हैं और उनकी माता सगर्व नेत्रों से बच्चों के ध्यान-मग्न मुख को निरख रही है। माता की आँखों मे कैसी ममता झलक रही है! मोहन-बहू सोये हुए पति को जगाने के लिए पैर टीप रही है और अलसाए अंगों से अँगड़ाई लेती हुई मोहन के मुख से हँस-हँसकर दुपट्टा खींच रही है। बहू की चितवन मे सोहाग की कैसी मीठी लज्जा है। उसी मकान के नीचे गुदड़ी मे लिपटी हुई एक जर्जर-कलेवरा बुढ़िया—'भगवान् तुम्हारे मन की साध पूरी करे'—कहती हुई इधर-उधर चिथड़ों का आँचल पसार रही है! बिचारी के चेहरे पर करुणा की कैसी गंभीर छाया है!

बेला ने नज़दीक आकर बुढ़िया के फाँड़ में धीरे से एक रुपया फेंक दिया। बिचारी इस अप्रत्याशित दान से बिलकुल

चौक पड़ी। उसके चेहरे की झुर्रियों पर आनन्द का विद्युत्-प्रवाह दौड़ गया। मगर, क़बल इसके कि उसके संयत गद्गद कंठ से 'बेटी, तू राज रानी हो' निकल सके, बेला खुले दरवाजे से अपने मकान के आँगन मे दाखिल हो गई।

उसने देखा कि आँगन की दीवार पर चढ़ी हुई मालती-लता का गुच्छा गुलाबी धूप की गुलाबी रोशनी मे जैसे फूटकर हंस रहा है। फूलों से शबनम के मोती लुट चुके थे, फिर भी मुस्कान के मोती निरन्तर झड़ रहे हैं। उषा ने जैसे किरणों के आँचल से उनके आँसुओं की शिशिर-कणा को पोंछ डाला है।

आँगन को पार कर वह आगे बढ़ी, और धीरे-से अपनी पूजा की कोठरी का दरवाजा खोला। नौकरानी ने आँगन को झाड़-बुहारकर साफ कर दिया था और चौखट के निकट केले के पत्ते पर धूप-दीप-नैवेद्य रख दिये थे।

उसने आँचल को गले बाँधा, और आँखे बन्द कर हाथ जोड़ मूक प्रार्थना मे तन्मय हो गई। इतनी आवाज़ उसकी ज़बान से ज़रूर निकली—"भगवन! तुम तो अन्तर्यामी हो, तुमसे न तो आँख का ही काजल चुरा सकती हूँ, न दिल का ही! आजतक तो इस हृदय की वेदना की विभूति मे तुम्हारी अनुभूति रही, नाथ! अब क्या, वह सुहाग मुझसे छिन जाएगा?"

धीरे-धीरे उसके चेहरे पर एक गंभीर आवेग छा गया।

वह राम की मूर्त्ति के सामने ढेर हो गई। अचानक पैताने किसी के पैर की परिचित आवाज़ पाकर वह झेंपती हुई उठकर खडी हो गई और अकस्मात् बिजली को देखकर चौक पडी—कभी तो बिजली इस ओर झाँकती तक न थी, आज क्या है कि वह इतना सबेरे उठकर इधर आ पड़ी है!

"यह आँखें फाडकर क्या देख रही हो, बेला!"—बिजली ने मुस्कुराकर पूछा।

"देखती हूँ, आज सूरज पश्चिम तो नहीं उगे हैं!"—बेला सर पर आँचल सरकाती हुई बोली।

"हाँ, बेला, ठीक पश्चिम ही उगे हैं! नहीं तो, बिजली कभी शादी के लिए तैयार होती!"

"शादी!"

"मैं कल रात ही तुमसे कहनेवाली थी, मगर तुम्हारी बदहवासी की हालत देखकर जब्त कर गई। आज तो तुम बिलकुल गुलफुल नज़र आ रही हो! बात क्या है?"

"सच बहन! कब शादी होगी?"—बेला ने बात काटते हुए आनन्द-गद्गद कंठ से पूछा—"वह कौन खुशनसीब है? मुझे तो भगवान के सामने घुँघरू बाँधकर नाचने का जी चाहता है!"

"वाह! मेरे पैरों में बेड़ियाँ पड़ने जा रही हैं और तुम्हें घुँघरू बाँधने की सूझी है! खूब!"—बिजली हँसती हुई बोली।

"इसी बन्धन मे तुम्हारी मुक्ति है, बहन ! इन्ही बेड़ियो की झङ्कार से तो सुहाग का सुर उठेगा ! मगर, हाँ, यह तुमने कहा नहीं कि वह कौन खुशक़िस्मत है !"

"तुम्ही कहो !"

"सुरेश !"

"दुत् ! सुरेश मुझसे शादी करेगा ? मैं जीते-जी तुम्हारे घर मे सेध देने जाऊँगी ? अच्छा, बेला ! मेरी एक बिनती सुनोगी ?"—बिजली ने बेला का चिबुक थामकर कहा।

"एक नही, दो !"—बेला मुस्कराकर बोली।

"मजाक नही, पहले जबान दो !"

"भला, मैं तुम्हारी बात उठा दूँगी ?"

"तुम्हे एक भीख मुझे देनी होगी ! नही तो, मेरी शादी की तमाम खुशी खाक मे मिल जायगी। मैंने तुम्हे एक बार मौत के मुँह से बचाया है। तुम्हे आँखो मे पालती आई हूँ। आज तुम्हे बहन की एक मुराद पूरी करनी होगी !"

"तुम्हारी बात मेरे सिर पर है, मै जीते-जी कभी टाल नही सकती।"

"देखो, सामने भगवान् है !"

"हाँ, भगवान् सामने हैं।"

"तो तुम्हे भी विवाह करना होगा, और · · "

"विवाह ?"

"हाँ, तुम्हे भी विवाह करना होगा !"

"अच्छा, मगर किसके साथ ?--यह तुम मुझपर ही छोड़ दो।"—बेला झेंपती हुई बोली।

बेला को भय हुआ कि कहीं बिजली ने सुरेश के साथ शादी करने के लिए ज़बान पकड़ ली, तो फिर सारा गुड़ गोबर हुआ। उसे मजबूर होकर बगलें झाँकनी पड़ जायगी ? इसी से वह हाथ से रास छूटने के पहले ही बात छीनकर बोल उठी।

"सो तो तुम्हारे दिल की बात है। मैं क्यों दख़ल दूँगी ? मगर, हाँ इतना ज़रूर कहूँगी कि 'मीरा' की तरह पत्थर के पुतले से न लिपटना !"—बिजली ने हँसकर कहा।

"नहीं-नहीं ; प्रान के पुतले से करूँगी। तुम इतमीनान रखो। मैं ज़बान हार चुकी।"—बेला कुछ लजाकर मुस्कुराती हुई बोली।

बेला को ऐसा लगा, मानो भगवान् ने बिजली की रसना पर आसीन होकर उसकी पशोपेशी का निबटारा कर दिया ; नहीं तो, ठीक उसी वक्त—जब वह अपने इष्टदेव से श्रीधर के सवाल का जवाब ढूँढ़ रही थी—बिजली बिजली की तरह टूट पडती और उससे शादी की ज़बान लेकर ही दम लेती ! इसी क्षण बिजली का एकाएक प्रकट होना और उसे भगवान के सामने विवाह की बात पर वचन-बद्ध करा देना—कोई दैवी प्रेरणा के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

तबतक पास के मन्दिर से आरती की घंटा-ध्वनि गूँजती

हुई आँगन में भर उठी। बेला के हृदय-प्राङ्गण में वह मंगल-स्वर देवताओं की दुन्दुभी की आवाज़ बन गया। उसका मन एकबारगी हल्का हो गया। उसके सर का बोझ आप-ही-आप उतर गया।

पर, दूसरे ही क्षण, न जाने वह किस विरोधी आवेग में उदास हो गई और कैसी अनमनी-सी नख से ज़मीन कुरेदने लगी।

आख़िर वह इन्सान थी, फ़िरिश्ता नहीं। सहसा विवाह के नाम पर उसके कलेजे का लरज़ जाना स्वाभाविक है।

कफन फाड़कर उठती हुई कामना की झलक को देखकर वह तिलमिला-सी गई। निरन्तर पतझड़ की गर्म आह में पली हुई उसके हृदय की वृत्तियाँ अकस्मात् मलयानिल की लपट पा खुलकर निखरने के बदले सकुच गईं।

जिस खँड़हर में आठों पहर झींगुर का स्वर गूँज रहा है, वहाँ अचानक यह वसन्त की कोयल की कूक कहाँ से आ गई? उसके हृदय के टूटे तारों पर एक अभिनव वेदना का सुर गूँज गया—'भगवन्! अब यह सुहाग का राग क्योंकर उठेगा?'

कल रात ही से वह सोच में पड़ी थी—

"एक तो वह विधवा, दूसरे—दुनिया की निगाह में कुलटा! किस पुरुष के जीवन में उसका गुज़र मंगलप्रद होगा? जब वह किसी के जीवन-पथ पर पुनीत शान्ति की

छाया नहीं ला सकती, तो क्या वह एक कुलीन गुरु-कुल के दीपक की मान-मर्यादा की ज्योति को अपनी तमन्ना की आँधी में ठंढी होने देगी ? क्यों ? किस लिए ?

"श्रीधर का घर छूटता है, पुत्र स्नेह से हाथ धोना पड़ता है, पिता-पितामह के आचार से, परम्परा के रोज़गार से अलग होकर कहीं दूर झोपड़ी बाँधनी पड़ती है। ऐसी कड़ी सजा ! उफ !

" ...एक दिन श्रीधर ही के ख़याल से उसने दिल को उमंगों पर बुद्धि का सिल रख दिया और उसकी समीपता के वायुमंडल से भागकर यहाँ चली आई। यहाँ आई मरने—तिल-तिल, पल-पल मरने। मगर इतनी संकट-साधना पर भी श्रीधर की हालत सुधरी नहीं, बद से बदतर ही होती गई ! अगर आज वह अपनी प्रियतमा को निविड़ भाव से नहीं पाता है, तो वह किसी-न-किसी दिन पागलपन में गले में फाँसी डालकर झूल जायगा !

"उफ ! नहीं; अब तो जान देकर भी वह श्रीधर की जान बचायेगी। क़िस्मत की चित्ती चित पड़े या पट, चित्त की वृत्ति सत् हो या असत्, समाज आँख दिखाये या आँख मूँदे, शास्त्र रोड़े अटकाए या पाँवड़े डाले, श्रीधर की ख़ातिर वह घुंघुरू उतारकर पाज़ेब पहनेगी और उससे शादी करेगी ही—ज़रूर करेगी ! और यही तो दैवी आदेश भी है !

"श्रीधर भी तो विश्वास दिलाता है कि यह विवाह

लोकाचार के विरुद्ध जो हो, कुछ शास्त्र से असंगत नहीं ! तो, क्या वह पत्नी की मर्यादा पा सकती है ? यह असम्भव भी सम्भव हो सकता है ?"

बेला का हृदय अप्रत्याशित आनन्द से भर उठा। उस रसप्लावन से विवेक का बाँध आप-ही-आप शिथिल हो गया। जो हृदय आठ वर्ष पहले विवेक के अंकुश के आगे हार मान चुका था, इतने दिनों के बाद आज उसी ने देवता की मदद पाकर मैदान मार लिया। मगर, बेला की प्रकृति ने जयमाल हृदय को न देकर विवेक ही के गले में डाली, भोग का नाम न लेकर उसने त्याग ही का दम भरना चाहा। अपने-आपको उसने समझा लिया कि श्रीधर का सहवास वह कुछ सोहबत गर्म करने के लिए नहीं चाहती, वरञ्च उसकी मुसीबतों पर तरस खाकर अपना सत् और शरीर दोनों निछावर कर रही है। वह कुछ अबैध अरमानों के मोह में तो पड़ती नहीं ! बस, त्याग ही का पल्ला ऊँचा है—उसी के सर सेहरा है।

हमारे मन की गति कैसी विचित्र है ! वह जिधर चाहती है, उधर ही हमारी तमाम वृत्तियों का मुँह फेर देती है। बुद्धि बिचारी मनोऽनुकूल न चलती, तो सर पीटकर क्या करती !

शायद जब भोग ही त्याग का रूप धारण कर बेला की मानस-दृष्टि के सामने आया, तब वह धर्मप्राण विधवा उसे सर पर उठाने को तैयार हुई। जिस आत्मबलिदान की प्रेरणा पर उसने एक दिन वेश्या के जीवन को सर झुकाकर स्वीकार

किया था, वही त्याग—वही आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा आज उसे विवाह-वेदी पर भी ले जा रही है।

क्या इसी पहलू को उसके हृदय ने बुद्धि को समझाकर मंजूरी का दस्तख़त करा लिया? क्या यह उसी त्याग की उत्तेजना है, जिसपर स्त्री हँसकर चिता पर सवार होती है? या उसका तृषित नारीत्व आज अत्याचार के मरुमय प्रसार को चीरकर रसाल-नन्दन के मीठे रस के लिए सितारे तोड़ रहा है?

क्षण-भर बिजली, बेला की आँखों पर आँख रखकर, न जाने क्या ढूँढ़ती रही। फिर बेला से लिपटकर उसके दोनों लज्जा-लोहित कपोलों को चूम लिया, और बोली—"सच कहो, किसके गले में जयमाल डालोगी—वह कोई देवता है या किन्नर? तुम्हारे योग्य तो मुझे कोई हाड़-मांस का जीव नज़र नहीं आता!"

"मेरी बात पीछे होगी। पहले यह तो कहो कि तुम्हें यह शादी की क्योंकर सूझ गई? तुम तो शादी के नाम पर पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देती थी!"

"जानती हो कल शाम को जब तुम मन्दिर में गाने चली गई, तब जाने कैसे एकाएक मुझपर सिनेमा देखने की धुन सवार हो गई। इधर कई दिनों से मन में तूफ़ान चल रहा था; इसी लिए दिलबस्तगी की तलाश थी। वहाँ गहरी भीड़ थी। तिल रखने तक की जगह नहीं। महज़ दो-चार सीटें ख़ाली थीं और उनके एक दर्जन उम्मीदवार खड़े थे। मैंने चौगुना देकर

सीट रिज़र्व कराना चाहा। ज़र के जरिये मैनेजर को गाँठ तो लिया; मगर शहर के दो एक शौकीनो ने भरे हॉल मे वह कुहराम मचाया कि मैनेजर को कान थामना पड़ गया। एक ने कहा—'तुम रुपये की लालच पर टिकट की दर बढ़ाकर रंडियों को सीट दोगे और हम शरीफो का गुज़र न होगा!' दूसरा बोला—'हम यहाँ पहले से हाथ मे रुपये लिये खड़े है। अगर यहाँ इन्ही की कद्र है, तो कोई शरीफ़ यहाँ पेशाब करने भी नहीं आएगा।' मत पूछो, ख़ासी धमाचौकडी मच गई। कितने शरीफज़ादे उठ खड़े हुए, दो-चार ने इधर-उधर की धमकियाँ भी दी।

"मैनेजर दंगे के डर से सिटपिटा गया। उन लोगो ने सीटे दखल कर ली। मुझे बुरी तरह मुँह की खानी पडी। मारे गुस्से के आँखो से लहू उतर आया, मगर करती क्या? मैं भी किसी की बीवी रहती, तो इस तरह कौड़ो के मोल मेरी इज्ज़त नहीं लुटती। सच मानो, उसी वक्त मेरी आँखो का परदा उठ गया। बेला! मैंने धन कमाया, ऐशो इशरत का मज़ा चखा, राजाओ और रईसो की नाक का बाल बनी रही, अपनी शान मे उफान लेती रही, मगर फिर भी मै शरीफ न कहला सकी! वह शौकत की तमाम तजल्ली आज ओस का मोती होकर उड़ गई।

"इतना ही नहीं, मैंने न बीवी के सुहाग का सुख पाया, न सन्तान का मुख देखा। इस नारी-जीवन से वंचित ही रह

गई। अब तो मेरे उतार के दिन नज़दीक आ गये। मेरी निगाहों की धार मुड़ चली। मेरी मुस्कान के मोती झड़ चले। दो दिन मे यह जुलूस की चाँदनी अँधेरी रात हो जायगी। मैं इस ज़िन्दगी मे काफी तूफान उठा चुकी हूँ। अब मै ऊब चली। मैं क्या जानती थी कि तूफ़ान के परदे मे सुनसान भरा है—महफ़िल के पिछवाड़े मरघट ने सेध दे रखी है!

"लो, अब तो मेरी नाव किनारे की ओर मुड़ रही है। मैं अब समझ गई कि ज़र ही ज़िन्दगी मे सब-कुछ नही है, ज़र से बढ़कर इज्ज़त है। और, दुनिया मे मुझे सब कुछ है; एक इज्ज़त नही। मैंने मर्दों के दिल और दौलत को मिट्टी के मोल ख़रीदा, मगर इस ख़ज़ाने से तो ज़िन्दगी का सूनापन भरा नहीं।

"बेला, आज मेरे नारीत्व का एक-एक ज़र्रा मान ढूँढ़ रहा है। और मैं उसे पाऊँगी—वह राम के साये मे मिले या रहीम के। मेरे लिए तो राम और रहीम दोनो बराबर हैं। मेरा उसूल तुम जानती हो। जिस काम मे हाथ लगाती हूँ, उसे लगे हाथों निबटाकर ही दम लेती हूँ।"

"सो तो मुझे खूब मालूम है, बहन! तुम्हारे साथ वह बखेड़ा नही कि देवताओ के विसर्जन का मन्त्र तो याद नही और इधर गणेश का आवाहन कर दिया! मगर, बहन! आखिर तुम कहाँ शादी करती हो? सुरेश तो कोई ग़ैर नही!"

"मुझी से उड़ रही हो? सुरेश कभी मेरे कूचे मे आया

नहीं, न आ सकता है। तुम्हें तो वह अपनाये ! यह दरिया-दिली हिन्दुओं में होती, तो उनकी जायदाद गैर दखल करते ? क्या तुम दूध-पीती बच्ची हो, समझती नहीं ? मुझसे भला कोई हिन्दू शादी करेगा ?"

"क्यों नहीं ? अड़चन ही क्या है ? यहाँ सलीमवाली घटना का किसको पता है ? कभी शादी तो हुई नहीं, न तुमने कभी इस्लाम को ही तसलीम किया। फिर, हिन्दू के जुमरे में खप जाना कोई "

"तुम इतने दिनों तक राम को भजकर कौन पारस हो गई ?" बिजली भवों पर बल देकर बात काटती हुई बोली— "तुम तो पहले खपो जो मुझे खपाने चली हो ! पहले तुम्हारा गुज़र तो हो जाय कि मैं तुम्हारे राम के मन्दिर में घी के दीये जलाऊँ ! इतने दिनों तक मर-जीकर उनकी सेवा करती आई, तुम पर तो वे प्रसन्न हों कि मैं उनका यश गाऊँ !"

"क्यों नाहक राम पर गर्म हो रही हो ? बाप-दादे का धर्म है न। तुम्हारी नसों में भी वही ऋषियों का रक्त है। इसी पर तुम्हारा परलोक "

"बेला, पीछे मुड़कर बीती बात पर मैं हाथ नहीं मलती, न ज़िन्दगी के उस पार किसी बहिश्त की रंगीन तसवीर खींचने में वक्त ज़ाया करती हूँ। मेरा जो कुछ है, वह मेरे सामने है। मेरा यह शरीर ही मेरा सर्वस्व है; मेरा यह जीवन ही मेरा लक्ष्य है। जिस इन्तज़ाम से इस दुनिया में

मुझे आराम और नाम मिले, वही मेरा काम है। मैं तुम्हारी तरह किसी परलोक की उम्मीद पर अपनी ज़िन्दगी को नामुराद करने को तैयार नहीं हूँ। मैं हिन्दू के घर पैदा हुई हूँ, हिन्दू की मुहर सर पर ढोने मे मुझे कोई मुजायका नहीं—बशर्ते कि उस मुहर से मेरा कोई जरर न हो। मगर मेरी तरक्की की राह मे वह रोड़े अटकाता है, तो सच मानो, इसी जूते की नोक से उसकी खबर लेने मे मुझे ज़रा भी पशोपेश नहीं है।

"मेरी ज़िन्दगी सब पर बाला है—इसके बाद समाज है या मज़हब, पड़ोस है या देश। मै न खुदा-रसूल के कलाम का भक्त हूँ, न बुद्ध के संन्यास का उपासक। न मै तुम्हारी तरह हिन्दुओं के मायावी परलोक के घपले मे आनेवाली हूँ, न आत्मा-परमात्मावाली धाँधली मे पड़नेवाली हूँ और न मै क्राइस्ट की तरह क्षमा और त्याग का मुतालिक़ हूँ। मुझे सब क़बूल है या कुछ भी क़बूल नहीं। मैं सत्य के आग स्वप्न को नहीं अपना सकती; भोग के आगे त्याग को नहीं वरण कर सकती।

"अँगरेज़ों ने क्राइस्ट को महज़ चर्च मे इबादत के लिए रखा है, कुछ दुनियवी कामों के लिए नहीं। उनका सर आसमान पर जो हो, कम-से-कम पैर तो ज़मीन पर ज़रूर हैं। तुम्हारी तरह वे सरापा बादलो मे नहा उड़त फिरते। मै राम के साये में रहूँ, रहीम के साये मे रहूँ या क्राइस्ट के साये

मे रहूँ, मेरी ज़िन्दगी मे यह सवाल कोई सवाल नही है। इसे मै फ़िजूल का एक बखेड़ा समझती हूँ—चूँकि जो राम है, वही रहीम है। देश-काल, आचार विचार, ज़बान वगैरह के भेद से गँवार दुनिया इन्हे दो समझती रहे, मैंने कभी दो नही समझा, न आज समझूँगी।

"और, जब तक मैं इस रोज़गार मे हूँ, मुझे किसी मज़हब की मुहर सर पर रखने की ज़रूरत नही। काश मुझे इस रोज़गार से अलग होकर संसार बसाना पड़ा, तो मेरे सामने हिन्दू-मुसलमान का सवाल महज इसी लिहाज़ से होगा कि कहाँ मैं शरीफ़ बनकर सुख से रह सकूँगी—कहाँ मुझे इज्ज़त और राहत मिलेगी—कहाँ मेरे पेट के बच्चे सर उठाकर और सीना तानकर चल सकेंगे।"

"तो क्या हिन्दू रहकर तुम्हें यह मर्यादा नही मिल सकती ?"

"हरगिज़ नही। जीवन की सफलता मैं भोग मे मानती हूँ। कहाँ तक मान और शान के साथ मैंने दुनिया का सुख उठाया, यही मेरी कसौटी है। और, शायद तुम जीवन की सफलता त्याग मे ही मानती हो—कहाँ तक तुमने परलोक के लिए संसार को धता बताया !"

"बहन, तुमने अगर राम को पाया, तो फिर दुनियवी आराम न भी मिला, तो तुम्हारा··· "

"सुनो बेला, मैं राम के लिए ज़िन्दगी के आराम को नहीं

तर्क करूँगी। मैं राम के लिए तुम्हारी तरह कुलटा का नाम नहीं ढोती फिरूँगी। मैं राम का नाम लेकर मान नहीं पा सकती; मगर रहीम का नाम लेकर आज भी मान पा सकती हूँ। मैं बाप-दादा के मज़हब के लिए अपने भविष्य का गला नहीं घोट सकती, न एक पाखंड के लिए अपनी आत्मा की हत्या करूँगी। मैं मैदान की हवा खा चुकी, मुझे अब मकान की हवा लेनी है; भुवन देख चुकी, अब भवन की तलाश है। बस, मैं अब पत्नी की मर्यादा और माता की महिमा ढूँढ़ती हूँ। अगर हिन्दू-समाज के तंग दायरे में मुझे यह मर्त्तबा नहीं मिल सकता, तो मैं बेखटके इस्लाम की चौड़ी छाती में शरण लूँगी।

"बेला, अब मैं रोती हूँ। मैं समझ गई कि बगैर सत के किसी की शान नहीं निभ सकती। आँखों का पानी जब ढलता है, तब चेहरे के पानी को भी बहा ले जाता है। अब हिन्दू होकर न मुझे सत मिलेगा न शान मिलेगी। मैं कौड़ी की तीन बनी रहूँगी। मुसलमान होकर मेरे लिए पत्नी का सत और पत्नी की शान दोनों मुमकिन हैं। तुम्हीं कहो, तुम्हारे राम पतित-पावन होकर क्या हुए, जब उनके साये में किसी पतिता का उद्धार नहीं? तुम्हारे धर्म के दरिया में अगर दरियादिली रहती, तो तुम आज पनाले में पड़ी रहती—तुम्हारा बेड़ा पार नहीं हो जाता? मैं फिर भी कहती हूँ, मैं परलोक की लपेट में आनेवाली नहीं। मुझे इस लोक से मतलब है। जब मेरा लोक

ही नही बना, तो परलोक क्या खाक बनेगा ? मैं निश्चित को छोड़कर अनिश्चित के चकमे मे नहीं जा सकती। कोरे सेंटिमेंट के लिए मैं असलियत को नहीं तर्क करूँगी।

"और, मुझे तो अतीत को उस गहरे गर्त्त मे डाल देना है, जहाँ फिर उस पर किसी की नज़र न पड़े। यह तुम्हारे मन्दिर मे कहाँ मुमकिन है ? मेरे पेट के दुलाल उस आँगन मे कहाँ जगह पायँगे ? मैं गर्भवती हो चुकी हूँ, अब मेरे जीवन की गति पर सन्तान का भविष्य निर्भर है। मैं फौरन् पत्नी नही बनती, तो मेरी भावी सन्तान की मिट्टी पलीद हो जाती है। मैं यह राज़ तुम्हीं से कह रही हूँ, किसी और पर ज़ाहिर नही है। इस सनातन समाज मे जब तुम-जैसी धर्मात्मा का गुज़र नही, तो फिर मेरी क्या बिसात ? मेरे लिए पोंगापंथी समाज-सुधारकों के आगे आँचल पसारना मुमकिन नहीं। जहाँ विधवा-विवाह वर्जित है, वहाँ मुझ-जैसी औरत की शादी किसी भी शरीफ़ के साथ कभी हो सकती है ?"

"अगर हो सकी ?"—बेला के कानों मे श्रीधर का यह वाक्य गूँज रहा था कि 'ऐसा विवाह लोकाचार के विरुद्ध जो हो, कुछ शास्त्र से असंगत नहीं।'

"तुम स्वप्न देखती हो, मैं सत्य देखती हूँ।"

'बहन ! समाज का डर जो हो, शास्त्र को तो कुछ इनकार नहीं !"

"अजी, यहाँ समाज का सवाल है। शास्त्रों मे तो क्या

नहीं लिखा है ! वहाँ तो तारा और सती, मन्दोदरी और सीता का शायद बराबर ही रुतबा है ! खैर, शास्त्रों की तहरीर को ताक़ पर रखो, यही न देखो कि तुम्हारे समाज की क्या तक़रीर है ! मै तो समझती हूँ, इस बखेड़े मे पड़कर दो दिन भी और देर करती हूँ, तो कहीं की नहीं रहूँगी।

"और सुनो, बेला, दुनिया मे भूल-चूक किससे नहीं होती ? जब यह मुँहज़ोर मन लगाम तुड़ाकर चौकड़ी भरता है, तब कौन ऐसा सवार है, जो लुढ़ककर पीठ नहीं खाता ! मगर यह कहाँ का इन्साफ़ है कि वह फिर हमेशा के लिए घुड़सवारी से ख़ारिज कर दिया जाय और घास छीलकर पेट पालने के लिए मजबूर किया जाय ?

"जो समाज मनुष्य की कमज़ोरियों पर नज़र रखकर अपना कानून नहीं बनाता, वह पत्थर का समाज इस ज़माने मे दक़ियानूसी ही रह गया—समझो। फिर तुमसे तो कोई जान-बूझ कर भूल-चूक हुई भी नहीं; तब भी सती थी और आज भी हो। तुम्हारे लिए जब इस अंधे समाज के कलेजे मे दिल नहीं है, तब मेरे लिए कहाँ तक दर्द होगा ? मैं तो घर मे आग लगाकर निकल भागी थी--माँ-बाप के विश्वास की छाती मे छुरी भोंक कर चम्पत हुई थी। मै पतिता, तुम पीड़िता। मेरे लिए फाँसी की सज़ा हो तो हो, तुम्हारे लिए क्यों होगी ? अब तो जो बहादुर मुझे इस जिल्लत की तिकठी से उतारकर गले लगाता है, वही मेरा शौहर है। तुम्हीं समझो, बेला !

जब समाज के हाथों से तुम्हें क्षमा नहीं मिलती तब मुझे क्योंकर मिलेगी ? मैं तो अपने को बोर ही चुकी थी ! अगर अब इस्लाम की शरण नहीं लेती हूँ, तो तुम्हारी ही तरह डूब जाऊँगी।"

बेला सर झुकाये तसवीर बनी खड़ी थी। उसकी आँखों में आँसू छलछला रहे थे।

"बेला, तुम्हारी आँखों में आँसू उतर रहे हैं, लहू नहीं उतरते, बस यही इस देश का अभाग है। तुम्हारा समाज घाव करना जानता है—घाव भरना नहीं। यह सतयुगी समाज इस जमाने में पुराना हो गया। इञ्जील और इस्लाम इधर के बने हैं, इसीलिए वे युग के अनुकूल हैं। उनमें मनुष्य की कमजोरियों को जगह दी गई है। तुम्हारे सनातनी समाज का संगठन उस वक्त हुआ था, जब उसे किसी मुँहजोर समाज से मुकाबला न था। उसमें एक ओर महान् त्याग है, दूसरी ओर मरघट की आग। तुम्हारे धर्म की भित्ति त्याग है, भोग नहीं, संन्यास है, संसार नहीं। वह भित्ति जाने कब दब गई, उसमें हजारों विधि-निषेधों का झाड़-झंखाड़ भर गया। वह झाड-झंखाड़ जोर पकड़ता ही गया, वक्तन्-फवक्तन् कभी काट-छाँट भी नहीं हुई। हाँ यह बात है कि कुछ लोगों ने इधर जंगल काटकर उसमें नई जिन्दगी भरनी चाही, पर कट्टरता का बाँध इतना जबरदस्त है कि उनकी कोशिश कुछ कारगर न हो सकी ! तुम उस दक़ियानूसी समाज का शिकार होकर

भी उसके चंगुलों से नजात नहीं ढूँढती। जिस वायुमंडल में पलकर तुम गुरु और गुरु घंटालों की लम्बी-चौड़ी लन्तरानियों को सत्य समझती हो, उसी का यह असर है कि विचार रहते हुए भी तुम आचार के अत्याचार से पिस गई। तुम्हारे साथ शरीअत की पाबन्दी रही और मेरे साथ तबीयत की।"

"मगर, बहन, जिस समाज में और जिस धर्म में पलकर मैं सयानी हुई, वह बुरा हो या भला, उसके साथ भी तो मेरा कुछ कर्त्तव्य है!"

"जरूर है। मगर, पहला कर्त्तव्य तुम्हारा अपने जीवन के साथ है; उसके बाद समाज या धर्म के साथ।"

"तो क्या तुम किसी विधर्मी से शादी करोगी?"

"ज़रूर, चूँकि कोई स्वधर्मी तो मुझे धर्म-पत्नी नहीं बना सकता! सच पूछो, तो मेरे धर्म के रू से न कोई विधर्मी है, न काफ़िर। बस, जिससे दिल मिले और जिससे दिन निभे—उसके सिर पर चुन्दी हो या चेहरे पर चुक्की, उसके हाथ में सुमिरनी हो या तसबीह—मुझे बहस नहीं। मैं दिल के इस पहलू में राम या रहीम को कभी टाँग अड़ाने नहीं दूँगी। मैं बाप-दादे के धर्म के लिए अपने जीवन को विफल होने न दूँगी।"

"धर्म बड़ा है या जीवन?"

"तुम क्या समझती हो?"

"हज़ार बार धर्म!"

"नहीं-नहीं, लाख बार जीवन। मैंने तय कर लिया है कि

मैं अमीन से शादी करूँगी। कुछ इससे यह न समझो कि मै इस्लाम का गुलाम होने जा रही हूँ। मै महज़ अपने सुबीते के मौक़े का गुलाम हूँ। मैं इस वक्त इस्लाम को ढूँढ़ती हूँ, चूँकि इसी ज़रिये मेरा बेड़ा पार होता है। खुदा जाने, खुदा मियाँ किस मर्ज की दवा हैं—इस दुनिया मे उनकी कौन-सी सत्ता है! आज तक तो यह मसला हल नही हो सका कि खुदा के दिमाग से आदमी निकला या आदमी के दिमाग से खुदा, दोनो मे कौन किसकी औलाद है, पता नही! उनके नाम पर जो देश-देश मे पाखंड का रोजगार चल रहा है और जिसे तुम धर्म पुकारती हो, वह मेरी निगाह मे शैतान का मायाजाल है। उसमे आदमीयत की बू तो मिलती ही नही, देवत्व की बू ख़ाक मिलेगी? अगर सचमुच इस विश्व मे कोई ईश्वरीय सत्ता है! तो वह ज़रूर उसके परे होगी—उससे अलग होगी; उसके अन्दर तो कभी मुमकिन नही। यो तो, दुनिया के तमाम मजहब लगवियात के ज़खीरे हैं, मगर तुम्हारे धर्म और तुम्हारे विश्वास का क्या कहना!"

"तो आखिर तुम्हारा धर्म, तुम्हारा विश्वास क्या है?"

"मेरा! पहले अपने-आपको देखो, फिर आँखे उठाकर उसको देखो, जिसे दुनिया मे कोई देखनेवाला नही। यही युगधर्म है। मैं इस पर चल सकी या न चल सकी, यह बात अलग है। बेला, मेरी निगाह मे जो सच्चा धर्म है, वह कुछ मन्दिर या मसजिद आबे ज़मज़म या गङ्गा-जल, तसबीह या

सुमिरनी, नमाज़-रोज़ा या पाठ-पूजा नही हो सकता। भूखे के तन की तपन मिटाना मेरी क़ुरान की सुरा है; कङ्गाल के कङ्काल की आरती मेरी पूजा की पद्धति है। याद रखो, गरीब की अयादत से बढकर इस दुनिया मे दूसरी इबादत नही। तुम्हारे दिल मे मजहबी जोश से बढ़कर आँसुओ का सञ्चित कोष है। खैर, इन बातो को रखो; यह तो कहो, अज़ीम से शादी करोगी न ?"

"अज़ीम से !"

बेला लहू का घूँट पीकर रह गई। उसने सोचा—"बिजली क्या उसे भी अपनी तरह नकटी बनाना चाहती है ? वह अमीन से शादी करने चली है, तो क्या इसी लिए वह उसे अज़ीम के जिम्मे सौप रही है ? पहले तो सुरेश की चादर में बाँधने की लल्लो-चप्पो चल रही थी, वह किस हो गई। यही कारण है कि वह हिन्दू समाज पर जरूरत से ज्यादा लाल-पीली हो रही है और उसके छेदो मे उँगलियाँ देकर बुरी तरह फाड रही है।"

बेला बड़ी गम्भीरता से बोली—"बहन, तुमने मुझसे शादी की ज़बान चाही और मैंने ज़बान दी। इसका मतलब यह नही कि मैं एक मुसलमान से शादी करूँगी ! मुझे दुनिया मे सब-कुछ कबूल है ; लेकिन मैं उस अशरण-शरण राम से नाता नही तोड़ सकती।"

"यह लो ! यहाँ नाता तोड़ने का सवाल कहाँ है, पगली !

और फिर, राम और रहीम दो हैं ? वह तो एक है—और, सबका एक है। तुम मन्दिर की राह गई या मसजिद की, मंज़िल तो एक ही है, बल्कि मंज़िल ही एक नहीं, दोनों रास्ते भी एक ही तबके के हैं। जो सिलसिला मन्दिर के साये में चलता है, वही मसाजद के साये मे भी जारी है।

"बेला, हर धम के स्टेज पर एक ही सब्ज़बाग का तमाशा है, वेश-भूषा या सीन-सीनरी जो अलग हो। ताक पर चिराग़ रखा या गाछ-तले दीपक जलाया, पीर की क़ब्र पर चदरा रखा या देवी के चौरे पर चुनरी चढ़ाई, मसाजिद में जाकर घुटना टेका या मन्दिर का चौखट पर सर पटका, मौलूद-शरीफ की जलेबियाँ चखी या सत्यनारायण की पञ्जीरी पाई, तसबीह के मूँगे पर रहीम को पुकारा या सुमिरना के मनके पर राम को गुहराया, एक महीने तक रोज़मर्रं रोज़ा रखा या साल-भर एकादशी का उपवास करता रहा, बात तो एक ही रही। मन्दिर के झटके का ख़स्सी चखा या कुरबानी की जबही खाई। एक फूल का पतीली मे पका, दूसरा ताँबे के देग मे बना, यह कटोरे म परसा गया—वह प्याले मे पककर आया, लेकिन जब हलक के तबके मे आया, तब दोनों का मज़ा एक रहा - असर एक रहा।"

"तुम उसे राम कहकर भजो या रहमान कहकर सुमिरो, तुम्हारी ज़बान दा हुइ ; कुछ वह तो दो हुआ नही। तुम गीता के छन्दो म उसका यश गाओ या क़ुरान की आयतों मे उसे

याद करो, तुम्हारी किताब दो हुई ; कुछ वह तो दो हुआ नहीं। तुम उसे जॉनमाज़ पर पुकारो या कुशासन पर बैठकर उसका ध्यान करो, तुम्हार तरीक़े दो हुए ; कुछ वह तो दो हुआ नहीं। तुमने सर पर चुटिया रखी या ठुड्डी पर दाढ़ी—और इस तरह चेहरे के ऊपर-नीचे पुछल्ला लगाकर एक क़िस्सा खड़ा किया, तुम्हारी नज़र दो हुई, उसकी नज़र तो दो हुई नहीं!

"बेला, गौर करके देखो, जो राम है वही रहीम। हाँ, उसका मिलना न मिलना हमारे मन की लगन पर है, कुछ हिन्दू या मुसलमान की मुहर पर मौक़ूफ नहीं है। उसको यह तलाश नहीं कि तुम्हारे गले में हरी बद्धी है या तुलसी, तुम्हारी ज़बान अरबी है या हिन्दी, तुम्हारी कमर में लुंगी है या धोती। तुम फूल-चन्दन लेकर आओ या वज़ू-नमाज़ के ज़रिये, मगर दिल से आओ—उसके सामने महज़ इसी क़दर सवाल है। यह काबा और काशी, दैर और हरम, चोटी और दाढ़ी तो यहाँ ईजाद हुई है, पट्टीदारी की पताकाएँ है। बस, बेला, तुम हिन्दू-धर्म की राह चलो या इस्लाम की बाँह धरो, तुम्हारे सफ़र का रुख़ एक है, चूँकि तुम्हारा पर-लोक एक है।

"रह गया लोक। सो, तुम खुद समझ सकती हो कि हिन्दू रहकर लोक को कौन कहे, तुम्हे एक बालिश्त भी शराफत की जगह नहीं मिल सकती। तुम लाख राम का नाम लो ;

मगर तुम्हारा 'पतिता' नाम कभी छूटता नहीं। हाँ, रहीम का नाम लेते ही वह केचुल की तरह खिसक सकता है।

"बेला, तुम्हारे समाज की न छाती चौड़ी है, न उसकी छाती में दिल है। जिस समाज की आँख में न पानी है, न शर्म—न मुरव्वत है, न क्षमा—वह इस दुनिया के दायरे से जहाँ तक जल्द मिट सके, इसी में सबका कल्याण है। तुम्हारा धर्म अगर तुम्हें दुनिया की निगाह में ऊँचा नहीं उठा सकता, तो वह धर्म धर्म नहीं, शर्म है।

"बेला, मेरे दामन के दाग अगर गंगाजल से धुल जाते, तो तुम्हीं कहो, मुझे ज़मज़म के छींटों की तलाश क्यों होती? मैं अगर गंगा में नहाकर पवित्र हो सकती, तो मैं भूलकर भी कभी मुहम्मदी दरिया का नाम लेती?—उसमें डुबकी देना तो दूर रहा!"

"देखो, मैं इस्लाम के जादू पर जिन्दगी के तमाम गुनाहों को छू-फू कर अभी एक घर की लक्ष्मी होऊँगी, बेगम साहबा पुकारी जाऊँगी, मेरे बच्चे शरीफ बच्चे कहलायेंगे। और, तुम बे-गुनाह जिन्दगी-भर गंगा को पूज, राम को गुहरा, बहुत ऐंड़ी चोटी का ज़ोर मारोगी, तो रंडी से रखेली हो सकोगी! राम का नाम भजकर जब राम-जनों की माता तक ही तुम्हारी मंज़िल है, तो फिर तुम इस्लाम के घर क्यों नहीं आती, जहाँ तुम राम-लक्ष्मण की माता बन सकती हो? बेला,

माफ करना, अगर मेरी ज़बान की धार पैनी पड़ी हो।"

"सुनो बहन! तुम जो कुछ कहो, मुझे सब मंजूर है; मगर राम का भजन"—

"बेला!"—बिजली बात काटकर बोली—"तुम्हारा राम का भजना तो किसी हालत से छूटता नहीं। जिसे तुम संस्कृत ज़बान में राम कहती हो, उसे तुम अगर फारसी ज़बान में रहमान कहोगी, तो इससे क्या वह राम हराम हो गया? आखिर दोनों में से कोई भी तुम्हारी अपनी जबान नहीं। जो तकरार ज़बान लेकर है, उसे जाहिल दुनिया ईमान लेकर—राम-रहमान लेकर मान बैठी है। तुम अपने बाप को बाबा न कहकर अब्बा कहोगी, तो इससे तुम्हारे बाप कोई दूसरे हो गये, उनका रुतबा घट गया या तुम उनके प्यार का हकदार न रही? मैं अगर काशी को बनारस पुकारती हूँ तो इससे कोई नई ज़मीन—नया आसमान नहीं होता, न स्वर्ग को बहिश्त पुकारने से तुम्हारे परलोक की रंगीन तसवीर बदरंग हो जाती है। मैंने बराबर एक ही तत्त्व को कई पहलुओं से तुम्हें इसी लिए समझाया है कि बात तुम्हारे दिल में घर करे। मेरी यही विनती है कि तुम इस जहन्नुमी धर्म की आग में अपने दुर्लभ जीवन—अपनी अमूल्य आत्मा- की आहुति मत दो। बेला, मेरी एक-एक बात पर गौर करो! मैं तुम्हें चकमे नहीं देती, तुम्हें गुमराह नहीं करती। मेरा स्वार्थ महज़ इतना ही है कि जब मैं बीवी होने जा रही हूँ, तब तुम्हारे सर पर भी सुहाग

का सेहरा देखती। इतने दिनों तक दोनो साथ रही। यह साथ क़ब्र तक·····"

"बहन"—बेला ने एक लम्बी साँस खीचकर कहा—"मैं खुद समझती हूँ, जबतक वेश्या से पत्नी नही होती, इस दुनिया मे मेरी कोई गति नही। और परलोक की साधना के साथ-साथ इस लोक की साधना भी ज़रूरी है। धर्म और अर्थ, काम और मोक्ष—दोनो का अनुशीलन साथ-साथ चलना चाहिये। यह तो साफ़ बात है कि पत्नी के रुतबे को वेश्या लाख जन्म मे नही पा सकती, लेकिन इसका यह मतलब नही कि नारीत्व की चोटी पर पहुँचने के लिए मै अपनी आत्मा की बोटी-बोटी काटकर स्वार्थ के हवाले कर दूँ।"

बेला क्षण-भर चुप रही। फिर बोली—"मै यह जानती हूँ कि हिन्दू-समाज आज का नही, क़दीमी है। यह भी जानती हूँ कि इंजील और इस्लाम का वायुमंडल ज़माने की हवा रखता है। हिन्दुत्व की भित्ति त्याग है, उनकी भोग, इसका प्राण आत्मा है, उनका प्रकृति; इसका दृष्टि-कोण परलोक है, उनका लोक। मगर, यह महान् होते हुए भी अंध जल्लादो के हाथ मे पड़कर लोहे की चक्की बन गया है। कितने होनहार जीवन-मुकुल इसकी कानूनी तपिश मे पड़कर फूलने न पाये—झुलस गये। मुमकिन है, तुम्हारा कहना झूठ न हो कि आज यह समाज हृदयहीनता और अदूरदर्शिता मे अपना सानी नहीं रखता— यहाँ तक कि अपने हाथों अपनी नाक तराश

रहा है। मगर; इस बेदर्द समाज की भूल पर खीजकर मैं अपनी आत्मा की हत्या नहीं कर सकती। यह मुझे नई कोंपलों से पनपने नहीं देगा—मत दे। मैं इस रंजिश से अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी नहीं मार सकती। शरीफों में मेरा गुज़र न हो, न सही, मगर इस अनित्य संसार की क्षण-भंगुर मान-मर्यादा की शबनमी चमक के लिए मैं सर्वस्व नहीं खो सकती। यही धर्म तो मेरा शेष संबल है, जिस पर नज़र रखकर मैं समाज की लाञ्छना को सर झुका कर सहती चली आई—लहू के घूँट को शरबत की चुस्कियों-सी पीती रही। मुझे क्या मालूम नहीं कि वेश्या-जीवन नारीत्व का रौरव है? फिर अगर यह पूछो कि मैं वेश्या क्यों होने गई, तो एक तो लाचारी·····"

"मगर, बेला!"—बिजली ने बात काटकर कहा—"तुम तो इस नरक में रहकर भी नाबदान में गिरने से अपना दामन बचाती चली आई!"

"जहाँ तक बच सका, बचाती रही। मगर, कहाँ तक बचा पाती? जो हो, कुछ अपनी खुशी से मैं इस कूचे में नहीं आई थी। और, तुम्हारे स्नेह के साये से मैं कभी भाग गई होती; मगर मेरे लिए तो मन्दिरों के साये में भी इसी गली की हवा थी। तो फिर, कम-से-कम इस बाज़ार के चकले में मुझे जीने-मरने की आज़ादी तो रही। यह रोज़गार हज़ार नागवार है, अपने पसीने की रोटी-दाल तो है! भगवद्भजन के लिए

अवकाश तो मिल जाता है। बहन, एक तो यह शरीर नश्वर है, दूसरे इससे मेरा नाता भी चन्द दिनो के लिए ही है, एक दिन मरने पर इसे जलना ही है। ऐसे जीते-जी ही यह जलता है, जले, लेकिन मेरा धर्म मेरा अभिन्न सहचर है इस शरीर से कहीं ज्यादा अपना है, जन्म-जन्मान्तरों से पुष्ट संचित होता चला आया। फिर मै आज 'ओस का मोती' मान के मोह मे पड़कर इसे त्याग दूँ, यह कभी संभव नही। देह बदलती जाती है, आत्मा नही बदलती। मेरी आत्मा चंगी है, तो मेरा एक बाल भी बाँका न होगा।"

बेला का ज़बान मे अश्रुतपूर्व दृढ़ता का आभास पाकर बिजली हाथ मलकर रह गई। वह समझ गई कि बेला इस मम के मामले में टस-से-मस न होगी—यह चोली-दामन का साथ छूटना असम्भव है; बेला के हृदय-पटल पर बचपन ही से जो रंग जम चुका है, उसपर दूसरा रंग चढ़ाना नामुमकिन है।

बिजली निराश होकर बोली—"तो तुम विवाह नही करती, वेश्या ही रहोगी? मुझे अबतक सब्ज़बाग दिखा रही थी?"

"नही, मैं इस अभिशाप को काफी ढो चुकी। मै समझती हूँ, मेरी मुक्ति की पुण्य-तिथि अब आ गई। मुझे सीतापति राम का भरोसा है। मुझे विश्वास है, वह मुझे पत्नी की शौक़त भी दें और अपने चरणो की रहमत से अलग भी न

करें। मेरी ज़िन्दगी की मुराद उनके आशीर्वाद से पूरी हो सकेगी, यही उम्मीद है। नहीं तो बहन !·····"

न जाने किस भावावेश से बेला का गला भर आया और ज़बान काँपकर रुक गई। शायद उसका हृदय उमड़ रहा था—गला रुँध रहा था।

"बेला, बोलो न, तुम्हारे धर्म की दुनिया में भी दर्द-दिल का गुज़र है ? पत्थर में भी रस का सञ्चार मुमकिन है ? क्या तुम्हारी तरह दुखिया पर तुम्हारे देवता की पलकें पसीज सकेंगी ? तुम्हारे विवाह पर उनकी रहमत की निगाह होगी ? यह मैं सुन क्या रही हूँ ? क्या विधवा के हाहाकार से क्षीर-शयन की निद्रा टूट गई ? इन्द्रासन का तख्ता हिल गया ? त्रिलोचन की आँखें खुल गईं ? इस देश की मिट्टी भी अब पनपेगी ? बेला, तुम्हारे समाज में वह कौन वीर अभिमन्यु है, जो परम्परा के व्यूह को चीरकर सूनी माँग पर सिन्दूर रखने का साहस रखता है ? कहो, वह कौन है ? सुरे·· "

"नहीं, श्रीधर ! तुम उसे नहीं जानती। वह मेरे गुरु-कुल का एक कुलीन ब्राह्मण है।"

"कुलीन ब्राह्मण ! ऐसा, अचरज !"

"हाँ ! कल रात अचानक भेंट हो गई और पुराना भरता हुआ ज़ख्म फिर उभर पड़ा। तुम उसे देखती, तो कहती। लाख में एक है, बहन !"

बेला लजा गई। दिल की बात तालू में लटपटाकर रह

गई। उसके हृदय के निभृत कोने की संचित निधि आज अचानक, न जाने किस आवेग के धक्के पर शब्द बनकर बिखर गई!

"तो उसे तुम चाहती हो? फिर मुझसे हिजाब? तुमने आज-तक जीवन के इस पहलू पर पर्दा डाल रखा था! मैं तो तुम्हें हाड़-मांस की औरत नहीं समझती थी। आज जान गई, तुम्हारी नसों मे भी गर्म लहू की दौड़ मौजूद है, और इस संन्यास की भस्म के नीचे नारीत्व की आग बुझी नहीं है। मगर बेला! उस जवान ने तुम्हे क्या पिला दिया है कि बरसों गुज़र गये, वह नशा ज्यों-का-त्यों है। वह तुम्हारा न हो सका, न सही, पर अपना तो आज भी है। तुम भगतिन नहीं, अपने पिया की जोगिन बनी हो। मै यह जानती, तो अज़ीम का नाम लेती? मैं तो समझती थी, तुम्हे भी एक निमित्त चाहिये—जैसे मेरे लिए अमीन है, तुम्हे भी महज़ शराफत और राहत की तलाश होगी। मगर, मैं देखती हूँ, तुम्हारी उलझन और तुम्हारी आरजू ही निराली है। तुम्हारे दिल मे केवल आचार ही नहीं, मुहब्बत का आज़ार भी है। दुनिया मे शायद मुहब्बत पहले है; मज़हब, इज्ज़त या दौलत पीछे। तुम्हारे साथ मन है, मान नहीं। मेरे साथ मान है, मन नहीं। बस, तुम्हे अपनी पड़ी है, मुझे अपनी।"

बिजली ने बेला के दिल मे दिल डालकर उसके दिल की लगी की तपिश देख ली। उसकी निगाहो ने दिल ढूढ़कर बेला के मन

के विजन कोन मे छिपे हुए चोर को पकड लिया। मगर, बिजली ने जब चोर के कान उमेठने के बदले उसे गले से लगाकर गालों को चूम लिया, तब इस अप्रत्याशित स्नेह-निदर्शन से बेला बिलकुल घुल गई। दिल का काँटा निकल गया, और यह अन्तराल दूर होते ही बिजली बेला के दिल में घर कर गई।

बेला ने देखा कि बहन की विलास-प्रवण छाती के भीतर एक स्नेह-प्रवण दिल भी है, तो उसका हृदय विश्वास से भर उठा। उसे अपूर्व सान्त्वना मिली; डर छूटा ढाढस बँधा। उसे प्रतीति हो गई कि बिजली के दिल मे प्रगति के साथ-साथ अनुभूति भी है। अब वह अपनी बिखरी उलझनों को समेट सकेगी—कम-से-कम मुँह खोलकर उससे तो ले सकेगी। इस जीवन की विजनता मे उसे एक सच्ची सजनी मिल गई।

इस झंखाड़ जगत् मे सहृदय सुहृद् एक अनमोल सम्पत्ति है। इस नेमत के सामने आसमान के तले दूसरी कोई नेमत नही। हमे जन्नत की पैगम्बरी क़बूल नही, अगर वहाँ एक ददमन्द दिल न हो; हमे विश्व की प्रभुता भी मंजूर नही, अगर वहाँ कोई स्नेह-प्रवण हृदय न हो।

बेला की निगाह शर्म से झुक गई थी। उसके कपोलो पर उषा की लालिमा रंग भर चली। वह नख से धरती कुरेदती और बे-वजह सर पर आँचल सरकाती जाती।

"क्यों, बेला! श्रीधर समाज को अँगूठा दिखाकर तुमसे विवाह करने को तैयार है?"

बेला शरमाते-शरमाते धीमे स्वर से बोली—"सिर हो रहे हैं, बहन! क्या बताऊँ, समझ मे नही आता। ऐसे बरज़िद हैं कि तड़प कर जान दे देगे। खुद बड़े पंडित हैं। मुझे इतमीनान दिलाते हैं कि शास्त्र उनके साथ हैं। मैं तो खुद समझती हूँ, यह विवाह नही, खेल है। मगर, उनके लिए मैं देह नापने को तैयार हूँ। जानती हूँ, उनके घर का समाज नंगी तलवार बन जायगा। आखिर घर-बार छोड़कर बम्बई या कलकत्ता मे उन्हे अपना नया संसार बसाना पड़ेगा।"

"तो हर्ज़ ही क्या है—गर्चे यह चाल खतरे से खाली नहीं। शायद तुम्हे दुनिया की काफी हवा नही लगी है। खैर, जो हो, तुम्हारे नसीब तो जागे! तुम्हारे राम ने तुम्हे भर-नज़र देखा तो! श्रीधर तुम्हे बम्बई ले जाकर किसी तरीके से शादी तो करे! तुम्हारा शून्य जीवन, सोहाग और स्नेह—पति और पुत्र—दोनो बाजू से भर उठे, मेरी तो यही तमन्ना—यही दुआ है। तुम्हारा सच्चा रंग परिवार के ही मंडल मे खुलकर निखरेगा। तुम्हारे लिए महफिल की हवा मरघट की लपट थी। तुम घर की कल्याणी होनी है, चमन की रानी नही। डरो मत, तलवार की धार पर चलना हो, तो भी प्रेम के बल पर कोई मुश्किल नही। अगर तुम दोनो की मुहब्बत का बाँध मज़बूत है, तो तूफ़ान के धक्के भी बेकार

होगे। तुम्हारे हृदय की तमाम व्यथा प्रेम के होंठों के मधु में घुलकर प्याले की लाल परी बन जायगी। इसी शराब मे तो जिन्दगी की रूह खिच आती है।..."

"बहन, अभी इस बात को किसी पर जाहिर न करना। मैं खुद नही जानती, मुझे क्या करना चाहिये। मैं दुविधा मे पड़ी बेबस हो रही हूँ। कौन कहे, कहीं यह मन का प्यार जीवन का भार न हो जाय!"

"भार नही—यह जीवन का आधार है, बेला! तुम बेखटक उनके साथ बम्बई चली चलो। मैं भी अमीन के साथ कल या परसों ज रही हूँ। वहीं मेरी शादी होगी। फिर हम दोनो विलायत के लिए रवाना होंगे। मैं अमीन से कहकर श्रीधर के लिए किसी रोज़गार का इन्तज़ाम कर दूँगी, अमीन के लिए यह बायें हाथ का खेल है। उसके कारबार का सिलसिला वहाँ भी धुआँधार है।"

"सब तो है; लेकिन मुझे डर है, मेरा नसीब क्या गुल खिलायेगा!"

"तुम गुलफुल रहोगी, तो नसीब आप-ही-आप खुलता रहेगा। तुम्हारी चिर-दिन की संगिनी उसास आज भी तुम्हारे उल्लास की गर्दन थाम रही है। राम से नसीब माँगने के पहले अपनी आत्मा से बल माँगो। किसी देवता का आशीर्वाद ढूँढ़ने के पहले अपने दिल मे दिमाग ढूँढो। तुम्हारा सोया हुआ नारीत्व अगर प्रेम की ललकार पर जग उठा, तो वह

नसीब को ठोकर मारकर जगा देगा। तुम्हारे दिल मे काम ने ज़ोर मारा, तो राम की रहमत छप्पर फाड़कर बरस पड़ेगी। इस क्षुब्ध जीवन को ख़ामख़याली की रस्सियो से बाँधकर व्यर्थ न करो।

"लो, बस उठो! नसीब-नसीब मत रटो। आसमान भी बुजदिलो को सताता है, मर्दों को नही। भारत की छाती मे दाएँ-बाएँ दाँत गड़ाये दो पिशाच आठो पहर लहू चूस रहे हैं—दैव और परम्परा। इन दोनो ने देश को कङ्गाल बना डाला। फिर भी ये शैतान सीने मे नहीं उतरते, लहू नही मिलता, तो हड्डियाँ चाट रहे है। तुम भी इन्ही दोनो के फेर मे पड़कर तबाह हो गई। मैंने इन्हे धता तो बताया, मगर ज़रूरत से ज्यादा उचककर विलास के गड्ढे मे जा पड़ी। खैर, गिरी तो गिरी, मगर अब दामन झाड़कर उठ खड़ी हूँ, चूँकि मैं समझती हूँ कि हमारी भूल-चूक महज़ हमारी चेतावनी है, हमारी बरबादी नहीं।

"मैं फिर भी कहती हूँ, तुम्हारे लिए राम से ज्यादा जरूरी काम है। तुमने राम को लेकर काम को बिलकुल मार ही डालना चाहा था, यही तुम्हारी भूल है। तुम भूल गई कि काम रावण का चचा है। राम के वाण भी इस लहू के शैतान पर मुड़ जाते हैं। मैंने काम को लेकर राम को धता बताया, शायद यही मेरी भूल थी। आज मै समझ गई, जीवन मे राम और काम—दोनों ज़रूरी हैं; तभी जीवन सफल होगा।"

बेला ने बिजली की ओर कुतूहल की दृष्टि से देखा। बिजली फिर उसी सॉस मे बोलने लगी—"क्यो, मैं गलत कहती हूँ ? मैं लाखो मे पुकारकर कहूँगी कि तुम्हारे राम ने तुम्हे तबाह कर डाला। तुम राम के बदले अगर काम को अपनाती, तो तुम्हारी जिन्दगी तबाह न होती—न होती। कुदरत ने तुम्हे रूप दिया है, गला दिया है, दिल दिया है, मिज़ाज दिया है; अगर क़दरे-कलील तुम्हे हिम्मत और होसले भी देती, जरा दिलेर-दबंग बनाती तो बेला ! तुम आज यही बैठे-बैठे आसमान से फरिश्ते उतार लेती। याद रखो, तुम्हारा ध्येय काम है, राम नही !"

"मुझे तो डर है कि इस काम के उद्गम से कही मेरे राम खीज पड़े, तो मैं कही की न रहूँगी। वही तो मेरे जीवन-सर्वस्व हैं !"

"अजब उल्लू हो !"—बिजली ने तुर्श होकर कहा—"जब तुमने सदा-सुहागिनो मे नाम लिखाया, तब तो वे खीजे नही, और आज तुम सुहागिन होने चली, तब वे खीज जायँगे ? आखिर, तुम्हारे राम पत्थर ही हैं या उन्हे किसी क़दर दिल भी है ? वे भी लकीर के फ़कीर है क्या—उनके न आँख है, न दिल ? तुम उन्हे अंधा और बेदर्द समझो, मैं नही समझती ! और अगर ऐसी बात है, तो फिर राम-रहीम कहाँ के रहे ?"

"मैं विधवा हूँ न, दीदी! यही तो रह-रहकर खटक रहा है!"

"खटक तुम्हारे मिज़ाज की है। दिल से हौसले उठने नहीं पाते कि लाज और लिहाज़ उचककर गला टीप देते हैं। विधवा हो या जो हो, औरत तो हो! और, विधवा तो जब थी, तब थी। आज तो तुम दूसरे तबके मे आ गई हो! लो, उठो, दिल बाँधो! बस, सब तुम्हारे बस है। देखो, श्रीधर को थामकर रखना। पुरुषो का मन बरसाती झोका है, पछवा पर पुरवा चलते देर नही होती। एक ब्राह्मण के लाड़ले के लिए समाज को हवा बताना ज़रा टेढ़ी खीर है। मैं चली मुँह-हाथ धोने। तुम भी ऊपर आओ। मुझे बाँध-बूँधकर तैयार हो जाना है। कल बनारस को आख़िरी सलाम है। हाँ, तुम कब बम्बई चलती हो? बस—जहाज पर सवार होने के पहले—तुम्हारी फूल-शय्या की रात देख लेती—तुम्हे अपने हाथो से दुलहिन सँवारती!..... यह फिर तुमने मुँह बना लिया! देखती नही, वह तुम्हारे राम किस तरह मुस्कुरा रहे हैं—उनकी आँखों से नेह बरस रहा है!"

बिजली ने उँगली उठाकर राम की मूर्त्ति की ओर इशारा किया और बेला ने आँखे उठाकर राम की मूर्त्ति पर रखीं।

वह पीतल की सुन्दर मूर्त्ति उषा की किरणो मे जगमगा रही है। बेला ने देखा, मूर्त्ति के चेहरे पर आनन्द की झलक

है। उसका हृदय उमड़ आया और आँखो से कृतज्ञता के आँसू छलक पड़े। उसके अन्तर की पुञ्जीभूत वेदना कंठ तक आते-आते प्रार्थना के छन्द बनकर प्रातःकालीन वायु मे लहराने लगी—

"लगन मै का सों लगाऊँ राम !"

नवम परिच्छेद

"बेला रानी! बिजली तो चली। जीने कि मरने, कौन जाने! रह गई उसकी चर्चा, रख गई एक कहानी। वह भी सुबह की हरी दूब पर उगी हुई शबनम की जवानी की तरह दो पल मे मिट जायगी। बस·· किसी की आँख मे दो बूँद आँसू भी होगे ?···· ओफ़! जाने कितने घरो को खंडहर कर चली।"

"और कितने वीरान को नन्दन बना डाला, यह क्यो भूलती हो! काशी सिसक-सिसक तुम्हे याद करेगी!"

"ऐसा ?"

"और क्या! तुम्हारी बात तुम्हारे साथ जायगी। तुमने अमीरों को जो लूटा हो, मगर गरीबो के लिए तुम्हारे दिल मे आँख थी और आँख मे दिल था! आज कितने अनाथ बच्चे तुम्हारे हाथ की मैल पर पनप उठे।"

"पनपे होंगे, मगर मैंने कितने बेगुनाहो का खून चूस जो हाथ लाल किये, वह लहू तो आस्तीन से मिटनेवाला नही ! सिर पर शैतान सवार था, और क्या कहूँ ? मॉ-बाप की याद, कितने कुश्तो की फरियाद, आज अंगारो की सेज बनी है। जिस मन के कोने मे बुद्धि की कील न हो, उस पर जब हौसलो की—हसरतो की—आँधी उठती है, तब दिमाग के पुर्जे बगैर उखड़े कभी टिक नही सकते। खैरियत हुई कि उस आँधी के तूफान से दिल ही बुझ चला, नही तो, शायद न महफिल की हवस छूटती, न मंज़िल की तलाश होती। ·· मगर, बेला ! ऐसी तलाश भी क्या है ! कही हवस भी किसी की मिटती है ? न तन की तपन जाती है, न दिल की तड़पन। लो, आज विलायत का सुर बँधा है। मुझे ज़िन्दा रखने के लिए रोज़ एक नई धुन ज़रूरी है। मजलिस की मौजों से ऊब भी गई हूँ, फिरभी उसी मे डूबकर दिल की तरावट ढूँढ़ती हूँ। तो शायद इस ज़िन्दगी मे अंजुमन की रौनक के भीतर खँडहर की साँस जीती है और मरघट की खाक के नीचे चमन की रूह जलती है !"

"बहन, आज ईद के दिन मुहर्रम का ज़िक्र छोड़ो। कल-परसों तुम्हारी शादी है और ·"

"शादी ! पेट मे बच्चा लिए शादी ! यहाँ क्या नई दुलहिन के व्याह का उछाह है ? इस उछाह मे तो दिल की आह भी पिरोई है। बेला, अब क्या इन आँखों में नव सुहाग की लज्जा

होगी ?—होगी इस ज़िन्दगी मे पहली रात की फूल-शय्या ? यही कहो कि बिजली एकाएक मातृत्व के बन्धन मे गिरफ्त न होती, तो शायद ज़िन्दगी से लाख ऊबकर भी शादी की मंज़िल न ढूँढ़ती। वह तड़पकर मर जाती, मगर मर्द की जूतियाँ सर पर न ढोती। आजतक अमीन मेरा मुँह जोहता रहा। अब शायद मुझे उसका मुँह टटोलना होगा। यह क्या मेरे लिए मामूली मलाल है ? तुम इस आज़ाद दिल की तड़प को क्या समझोगी ! मैं यहाँ नर-मेध करके दिग्विजय करने चली थी और आज अपने ही वार से आप शिकार हो गई ! ..... ओफ् ! कुदरत ने मातृत्व के जहन्नुम मे डालकर औरत को इस क़दर लाचार कर रखा है। उसी के मत्थे सृष्टि की गोटी लाल करनी है। वह माता न होती, तो अबला न होती।"

बिजली के मन की हवा ज़रा बदली हुई है। कल कुछ और थी आज कुछ और है। बेला को हँसी-सी आ गई कि कल तो बिजली पत्नी की मर्य्यादा और माता की ममता के लिए घुटनों मे सर दे रही थी, और आज उस मंज़िल मे कदम रखने के वक्त यह क्या बात है कि कदम रुक-रुककर उठ रहे हैं !

बिजली बहार की तितली थी, और आज उस महफ़िल से—जीवन के उस पहलू से—हमेशा के लिए जुदा हो रही है। फिर जुदाई की एन घड़ी पर हास से उसास का उलझना—ज़बान मे दिल का सिसकना—कुछ अचरज नही।

बिजली के लिए सुहाग की चुनरी महज़ दुकूल पलटना नहीं, दिल पलटना भी है। उसे जीवन की गति को विरति की रेती मे बहाना पड़ेगा ; मैदान की हवा से मकान की उसासो में रखना होगा। उसकी प्रकृति कभी दायित्व के बन्धन मे मुक्ति नही देख सकती थी। उसे इन्द्रियो की बागडोर थामने की आदत न थी। मगर नियति-नटी आज चमन की बुलबुल को मान के दाने पर लुभाकर सोने के पिजडे मे लिये जा रही है बेबस !

यह मान का सवाल न उठता, तो बिजली कभी इस परिधि मे पैर देती ? सिनेमा-हॉल मे उस दिन उसके चेहरे का पानी न उतरता, तो वह अपनी आँखो से अपनी सूरत का असली रंग देख पाती ? आज उसे पत्नी की मर्यादा की तलाश सूझी, और कलही वह पत्नी की ताबेदारी की खिल्लियाँ उड़ा रही थी ! समय जो न कराये ! बचपन से ही उसे विलायत की सैर का शौक़ था, और इस शौक की कशिश आज उसके छोह और बिछोह के निःश्वास मे भी उल्लास भर रही है।

बेला मुस्कुराती हुई बोली—"बहन, आज तुम इस चमन से अलग हो रही हो, इसी से तुम्हारी निगाहो मे हसरत भरी है। कुछ दिनों बाद, जब घरनी बनकर लाल को गोद मे लोगी, तब समझोगी माता के गौरव के आगे दुनिया की तमाम महफ़िलों की रौनक़ कानी चित्ती का मोल रखती है।"

"अलहमदोलिल्लाह"—बिजली ने हँसकर कहा, और चुप

हो गई। फिर ठहरकर बोली—"बेला! अब तो मुझे भी भगवान् का नाम लेना पड़ा। और, वह भी एक अनजान अरबी ज़बान मे। आज हिन्दुओं की आँखें खुली रहतीं, तो हिन्दुस्तान मे यह ग़ैर ज़बान चलती—राम के राज्य मे रहीम की डौड़ी पिटती? आख़िर, यह कैसी विडम्बना है! राम और रहीम एक होकर भी हमारे आपस की पट्टीदारी की लड़ाई से दो विरोधी देवत्व की सत्ता हो रहे हैं। शायद, मज़हब से बढ़कर आदमीयत की जड़ में कोई दूसरा घुन नहीं है।"

"ख़ैर, किसी ज़बान में सही, भगवान् का नाम तो लो! शादी से इतना तो नफ़ा हो!"

"रहो भी! इस शादीवाली बेड़ी की पहली कड़ी तो यही है। मगर, तुम तो इस उसूल को तसलीम नहीं करती! तुम तो भगवान् से बढ़कर ज़बान को समझती हो—राम से बढ़कर नाम को मानती हो! नहीं तो, आज तुम बिजली का साथ न देती?"

"मैं तो, बहन! उस श्याम सलोने के रूप की दीवानी हूँ। मेरी आँखो मे, मेरी आत्मा मे वह मूर्त्ति खुद चुकी है। वही मेरा सनातन धर्म—मेरा मर्म—है।"

"मुझी से उड़ती हो, बेला! आज श्रीधर का सवाल न उठता, तो तुम श्याम सलोने की झाँकी भूल जाती और ज़ीनत की तलाश मे इस्लाम और इंजील का दम भरती!"

"सुनो बहन, तुम इस लगन को नहीं जानती। श्रीधर मिले या न मिले, मैं राम की छाया छोड़ नहीं सकती। एक नहीं, हज़ार श्रीधर मुझे उसके चरणों से अलग नहीं कर सकते!" —बेला ने ज़ोर देकर ताव से कहा।

"आज तुम अज़ीम को ब्याहती, तो मेरे साथ विलायत की सैर करती! ख़ैर, तुम यहीं फूलो-फलो, मेरी यही तमन्ना है।"

बिजली ने स्नेह से बेला के दोनों गुलाबी गालों में ठुनकियाँ दीं—उनकी सुर्ख़ी और घनी हो गई।

बिजली कल रात में ही सामान बाँधकर तैयार हो चुकी थी, ख़ानसामा ट्रंक वग़ैरह लेकर स्टेशन रवाना हो चुका था। बस, अमीन के आने की देर थी। आज तड़के ही वह अपनी कितनी चीज़ें लोगों को नज़र कर चुकी थी—किसी को जैकेट, किसी को साड़ी; किसी को कार्पेट, किसी को कुर्सी; किसी को टेबुल, किसी को आलमारी; किसी को प्लेट, किसी को रिकाबी—जिसने आकर हाथ फैलाया, वह ख़ाली हाथ न लौटा। नौकरों और बाँदियों की तो पाँचों उँगलियाँ घी में रहीं।

'बूँदी' सिल्क की एक रतनारी साड़ी पाकर पौ फटते मुहल्ले में दस बार झमक आई, और ज़री आँचल की बहार कितने मनचलों के दिल में एक हल्का तूफ़ान उठा गई। उस हलवाई के लौंडे की ओर आज उसने निगाह तक न उठाई।

आज उस बिचारे मे हिम्मत कहाँ की सिल्क की आबेताब के रू-ब-रू वह दो पैसे को रोज़मर्रेवाली टिकरी पेश करे या रेशमी घूँघट के साये में इतराती हुई आँखों से आँख मिलाये! आख़िर जब उसने बूँदी के आठवे चक्कर के वक्त पिता की आँख बचाकर बादाम की कीमती बर्फियो का दोना आगे बढ़ाया, तब कही जाकर बूँदी राह पर आई। मगर फिर भी उस नज़र को हसब-दस्तूर आँचल के खूँट मे न बाँध मुँह मे भर लिया और आधी चितवन से मुस्कान का दान देती हुई तीर की तरह मकान के भीतर दाखिल हो गई। आख़िर तो वह बिजली के साये मे पली है! आज न वह तितली-सी इधर-उधर फुदक रही है, एक दिन जब वह बिजली बनकर बिजली गिरायेगी, तब मुहल्ला थर्रा जायगा!

बिजली की निगाह तीसरी बार रिस्ट-वाच पर पड़ी होगी कि अमान आ धमका। वह उतावली-सी फ़ारन् उठी और चुपचाप मोटर मे जा बैठा। उसने एक बार हसरत-भरी नज़र दरोदीवार पर रखी, फिर, न जाने क्या, एकाएक ठठाकर हँस पड़ी, और मोटर चलाने का आर्डर दिया।

अमीन ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा, तो उँगली से इशारा करती हुई बोली—"वह ऊपर बरामदे पर देखो! सब लोग तो नीचे हाथ बाँधे खड़े हैं, बूँदी मेरी कुर्सी पर किस शान से जा बैठी है! इसी सिन से उड़ने लगी है! शायद

समझती है, वह मेरी जगह लेगी। दुनिया मे कभी किसी की जगह ख़ाली रही है, अमीन !"

बेला बाक़ी असबाब के साथ दूसरी गाड़ी पर सवार हुई। और अगर दस मिनट भी वह देर कर देती, तो उसे स्टेशन पर टका-सा मुँह लिये रह जाना पड़ता।

अमीन और बिजली के लिए फर्स्ट-क्लास का एक डब्बा रिजर्व था। स्टेशन पर कोई परिचित नहीं था, चूँकि बिजली ने इस प्रोग्राम को बेला के सिवा और किसी पर ज़ाहिर नहीं किया था।

कोट-बूट डाटे अमीन रिफ्रेशमेंट-रूम के सामने खड़ा होकर जानीवाकर का प्रसाद जामे रुख़सत पी रहा था। बेला, बिजली के पास उसके डब्बे में बैठ गई। उसका दिल उमड़ आया। आज इतने दिनों का दिल व जिगर का साथ छूट रहा है!

बिजली चाहे कुछ भी हो, उसकी आँख मे—ज़बान मे—दिल न भी हो; मगर उसकी छाती में दिल ज़रूर है। मुमकिन है, कभी हौसले के वलवले पर उसके हाथ की तलवार बेगुनाह की गर्दन पर बहक पड़ी हो; मगर दीदा-दानिस्ता उसने किसी दुखिया के लहू से हाथ नहीं रँगे। वही अकेली तो बेला के संसार के खँडहर में एक टिमटिमाती दीपशिखा थी। और, जब वह भी तिरोहित हो जाती है, तब अँधेरे में उसे कौन पथ दिखायेगा!

बेला की आँखें तर हो गईं। बिजली ने बड़े स्नेह से अपने रेशमी रूमाल से उसके आँसू पोंछे, और उसकी ठुड्डी हिलाती हुई बोली—

"तुम कब आती हो बेला? भरसक आज ही रात को चल दो। दो दिन बम्बई मे साथ रहेगा। गिरह बाँध रखो, आज सातवीं तारीख है, दस को मेरा जहाज़ खुल जाता है।"

"कहाँ ठहरोगी वहाँ?"

"ताजमहल होटल मे। तार देना, मैं तुम्हे स्टेशन पर मिलूँगी।··· 'अच्छा, तुम फिर श्रीधर से मिल चुकी?"

"वे चुनार से आज लौट आये होगे। अभी जाकर उनसे मिलती हूँ। आज नही, तो कल तक ज़रूर हम दोनो भी चल देंगे।"

"देखना, कही श्रीधर किसी की बातो मे न पड़े। मुझे रह-रहकर डर उठता है कि कही तुम धूल मे रस्सी न बटती हो! वह कुलीन ब्राह्मण होकर तुम्हे व्याहता है, यह बात अबतक मेरे दिमाग मे नहीं आती। कही यह सारा किस्सा पानी का बुलबुला न हो!"

"बहन, तुम जानती नही। वे तो हवा के घोड़े पर सवार हैं। बस, मुझे 'हाँ' कह देना है। सच कहती हूँ; मै ही टालती रही हूँ। मेरा ही जी उठ उठकर बैठ जाता है!"

"तुम इतने दिनो तक मेरे साथ रही, साथ गाया-बजाया, मगर कभी मैने तुम्हारे चेहरे पर न आत्मा की झलक देखी,

न यौवन का पुलक पाया। तुम आँसुओं को पी-पीकर हँसती न रहती, तो मैं इस हँसी मे न आती। मुझसे भी चुराकर तुम उन आँसुओ के प्रवाह को दिल के पहलू मे जमा करती आई। यही वजह है कि आज उछाह की राह मे भी तुम्हारी वह संचित आह रोड़े अटका रही है।"

"क्या बताऊँ, बहन, दिल धड़क रहा है। जानती हो न, कामना की मदिरा से इस जीवन की प्याली कभी भरती नहीं!"

"दुर पगली! तो क्या वेदना के हलाहल से भरती है?"

"नही. राम-भक्ति की माधुरी से, और—'या गोविन्दरस-प्रमोद-मधुरा सा माधुरी माधुरी।' यह भक्ति की लौ कामना की चिता ही पर जलती है, यों नहीं।"

"न न. तुम भूलती हो। अरमानो के ईन्धन से तुम्हारी यह लौ और भी तेज़ होगी। जब तुम सुहाग से भरी बाल-बच्चेवाली हो जाओगी, तब दिन-रात राम के दर पर सर तोड़ती रहोगी। जब ग़रज़ होती है, तभी राम के दरबार मे अर्ज़ियाँ गुज़रती हैं, भक्ति उपटती है।"

"भला आज तक मुझे कौन-सी ग़रज़ रही?"

"यह तो तुम्हारे राम जानते होंगे, मुझे तुम क्यों जताती? अगर कोई ग़रज़ न थी, तो फिर तुम्हारी भक्ति रेती की सूखी धार रही होगी। कामना के कछार में तो वह बरसाती धार-

सी बढ़ती है। खैर, तुम्हारा जी भुरभुराया, यही राम का शुक्र है।"

गाड़ी छूटने का घंटा बजा। बिजली बेला से हँसती हुई लिपट गई। उसके गले मे सोने का एक स्वस्तिका-लॉकेट डाल दिया, और बोली—"परसों फिर मिलोगी, तो मिलजुलकर बम्बई की सैर होगी।"

अमीन ने दौड़कर बाक़ायदा हाथ मिलाया, मुस्कुराकर विदा माँगी, और गाड़ी मे दाख़िल हो गया। घंटा पड़ा, सीटी बजी, भक् भक् करती हुई गाड़ी चल पड़ी।

बेला प्लैटफ़ार्म पर तसवीर बन गई। उसकी आँखें डबडबा आईं। बिजली खिड़की पर झुककर रूमाल हिलाती गई, मगर उस रूमाल के छोर की पहुँच अब बेला के लोचनों के आँसू तक क्योंकर मुमकिन थी!

दशम परिच्छेद

बेला ने झिझककर आँचल से आँसू को पोछ डाला। वह इस करुणा के क्षणिक उद्रेक पर हँस पड़ी। बिजली से तो फिर भेंट होगी; आज क्या आँसू बहाने का दिन है? आँसू के मोती सँजोने के दिन लद चुके, अब तो मुस्कान के मोती निखरने के दिन आये!

उधर गाड़ी दृष्टि से ओझल हुई, इधर वह चटपट मकान पर लौट आई। उसने सीतापति राम की मूर्त्ति के आगे हाथ जोड़कर श्रीधर के निकट जाने की इजाज़त माँगी। प्रभु के निःशब्द आदेश को श्रीधर तक पहुँचा देना ज़रूरी था।

उसने बड़ी श्रद्धा से प्रसाद के फूल को सर पर रखा, और फिर गुलफुल अपने कमरे मे चली गई। झट हाथ-मुँह धोये, बाल सँवारा, ज़री-किनारे की कासनी साड़ी पहनी, बन्द गले का जैकेट बदला, गले मे वही स्वस्तिका-लॉकेट

दिया, भवों के बीच पूजा की रोली जगाई, और ज़रा शरमाती हुई आइने के पास खड़ी होकर मालती की लहलहाती बेल-सी अपनी छवि देखने लगी।

उसका चेहरा गुलाब का फूल बना था। अङ्ग-अङ्ग से रंग निखर रहा था। चितवन मे रस-भरी अंगूरी थी; चेहरे पर मुस्कान की माधुरी। आज वह मरने और जिलाने का समा बाँध सकती थी—'आँखों मे हलाहल था, लबों पै मसीहाई।'

हाय री नारी! आखिर तो नारी! तो क्या किस्मत के वार से तबीयत नहीं कटती? विपत्ति की वेदी पर प्रकृति नहीं चढ़ती? क्या दिल की आग से लहू नहीं जलता? सुहाग के अभाव से स्वभाव नहीं बदलता?

क्या आज बेला का तृषित नारीत्व—उसका वंचित सुहाग—आँसुओं के अन्तराल को ठेलकर किसी अभिसार के लिये उमड़ चला है? आज किस तिलस्म के तेवर पर वह बर्फ का सिल गलकर दिल बन गया है? इस कूचे मे आकर भी जिस पर नया रंग न चढ़ा, न उमंग भरी, आज यहाँ से जाने के दिन एकाएक उसकी काया-पलट हो गई! अबतक यह मोहिनी माया कहाँ सोई थी? आज वह किस जादू की फूँक पर कफन फाड़कर उठ खड़ी हुई?

यही तो नारी-प्रकृति का चिरन्तन रहस्य है। इसका पता तो वही दे सकता है, जिसे जीवन मे नारी-हृदय का एकान्त समर्पण नसीब हुआ हो। आज त्याग की नहीं, सुहाग की

चरम आत्माहुति के भीतर बेला अपने जीवन की सार्थकता ढूँढ़ने चली है। इसी आत्मनिवेदन मे शायद नारी-जीवन का चूडान्त उत्कर्ष है; नही तो, आज उसके चेहरे पर यह अपरूप लावण्य कहाँ से टपक पडता—अरमानो की मुरझाई अमराई मे यह मलय की लपट कहाँ से आती!

जब वह बिलकुल दुधमुँही थी, उसके धर्मप्राण पिता ने—परम्परा की पाबन्दी के ख़याल से—उसे एक दुबले-पतले अधेड़ कुलीन के निर्वाणप्राय जीवन के साये मे बिठा दिया था, और जब वह उभरकर भरने पर आई, तब उसके सर से सुहाग का सिन्दूर धुल गया! शोख़ अरमान अभी सर भी न उठा पाये थे कि सर थामकर बैठ गये। फिर तो उसकी धर्मप्रवण आत्मा ने उसकी छाती पर कठोर शुचिता की कील गाड़ दी।

उसके यौवन की सूखती डाल पर सर रखकर पहले-पहल फ़सले-गुल का राग श्रीधर ने छेड़ा, पर विवेक ने अन्तराय होकर उस राग की ध्वनि को प्रतिध्वनित न होने दिया। आज शायद उसी संगीत सुधा को छक कर पीने के लिए उसके अंग-अंग मे यौवन ने अँगड़ाइयाँ ली।

उसने आँखें उठाकर ऊपर देखा, आकाश गान से चहचह है, गन्ध से महमह। जो रस-हिल्लोल बरामदे पर चढ़ी मालती-लता के वैभव पर—गली के मोड़ पर मदमाते अशोक और कचनार के पल्लव पर—सर के ऊपर नीलिमा के प्रसार पर—

मुहल्ले के गहगह मकानों की दीवार पर तरंगित है, वही पुलक-प्लावन आज उसके अङ्ग-अङ्ग पर, कबरी के बंधन पर, कपोलों के शतदल पर तथा ज़री साड़ी के आँचल पर लहरा रहा है।

वह बन-सँवरकर अभिसार के लिए तैयार तो हो गई, पर बनारस की—तीसरे पहर की—जनसंकुल गली कुछ तमाल-निकुंजों की अँधेरी वीथिका न हो सकी। वह कुतूहली निगाहों बचकर कहाँ जाती!

जो हज़ारों में गला खोलकर गाती-बजाती रही, वही आज शर्म से घर के बाहर क़दम नहीं उठा सकती है। आज कामना के किलोल के साथ-साथ लज्जा का निविड अवगुंठन भी आया। आज का निखार वह रोज़मर्रे का मुजरेवाला शृङ्गार नहीं है। आज वेश्या के रूप के भीतर नारीत्व की आत्मा जग उठी है।

उसने आलमारी खोलकर एक बन्द लिफाफा निकाला। उसे इतमीनान से आँचल के खूँट में बाँध लिया। उसी वक्त, बिजली की बाँदी, न जाने किधर से, टपक पड़ी और बेला के सिगार-पटार की बहार देखकर आँखें फाड़ खड़ी हो गई।

"आज इस वक्त, कहाँ, बेला दीदी!"—उसने ज़रा मुस्कुराकर पूछा।

शर्म से बेला जैसे छुई-मुई हो गई। झेंपती हुई बोली—"अभी आ रही हूँ। गोस मन्दिर जा रही हूँ!"

"फिर वहीं जाती हो ? अभी उसी दिन न जान जाने से बची !"

"वक्त है, बूँदी ! डरने की कोई बात नहीं।"—बेला ने हँसकर कहा—"अच्छा, एक बन्द गाड़ी तो मँगाना।"

"वह क्या नुक्कड़ पर खड़ी है, अभी पुकारती हूँ।"

बेला ऊपर से आँगन में उतर आई। मुहल्ले के एक वृद्ध ब्राह्मण को बुलाकर सायंकाल की पूजा का भार सौंपा। उनकी गोद मे एक छोटा बच्चा था। उसके हाथ मे दो रुपये दिए। फिर सामनेवाली हलवाई की दूकान से एक थाल गुलाब-रेवड़ी मँगवाकर मुहल्ले-भर की छोटी-छोटी लड़कियों मे वितरण कर दी। मन-ही-मन इष्टदेव के चरणों पर सर रख-कर गाड़ी पर सवार हो गई।

चलती गाड़ी मे उसकी आँखों के सामने बम्बई की झाँकी थी। उसके दिमाग मे परिस्थिति जाल बुन रही थी—"आज नही तो कलतक यह विश्वनाथ का धाम छूटना ही है। श्रीधर के सर से डिग्री का बोझ उतार देना है। जयदेव मिश्र को सब समझाकर घर लौटा देना है। श्रीधर घर होते हुए भी किसी आगे के स्टेशन पर मिल सकते हैं। भगवान् के नियमित पूजन के लिए इस पूज्य ब्राह्मण को साथ लेना जरूरी होगा। यह जायगा कि नही ?..... जायगा क्यों नहीं ! यह बिचारा तो यहाँ किवाड़ तोड़-तोड़कर खा रहा है। वहाँ बिजली

सनीचर तक मौजूद है ही। फिर तो भगवत् इच्छा! भर-हाथ चूड़ियाँ ....."

गाड़ी एकाएक रुक गई। मन्दिर का गगन-चुम्बी स्वर्ण-कलश आँखों मे चमका। वह उतरी। किराया देकर गाड़ी लौटा दी।

गाड़ी से वह उतर तो पड़ी, पर मन्दिर की चहारदीवारी के साये मे आते-आते उसके क़दम आप-ही-आप ठिठक गये। न जाने उसपर कहाँ का पहाड़ टूट पड़ा! चेहरा किसी अज्ञात आशङ्का से सूख गया, पेड़ की छाँह में उगी हुई जौ की पतली डंटी-सी वह पीली पड़ गई। मन्दिर के दरवाजे पर ठिठककर खड़ी हो गई—'कौड़ी चित पड़ेगी या पट! ओफ! यह क्या सूझी है मुझे!"

ख़ैरियत हुई, दरवाजा सूना था। न आँख, न कान। नहीं तो, वह पानी-पानी हो जाती।

तबतक एक बूढ़ा वैष्णव भिखारी गाता हुआ उस राह से आ पड़ा -"प्रेम की मुरली बजी कुंज मे, दौड़ चलो, सखि, दौड़ चलो!"

कान देकर वह एक-एक शब्द को पीने लगी। कैसा मीठा गला है! कैसी मीठी पुकार!

सकुची हुई लालसा की बेल फिर लहलहा उठी। उसके पैर की बेड़ियाँ अकस्मात् खुल गईं। मन्दिर मे वह दाखिल हो

गई। सामने ही जयदेव मिश्र पर नज़र पड़ी; उधर से वे निकले चले आ रहे थे।

बेला ने हाथ जोड़कर सर झुकाया। फिर ज़रा सिटपिटाती-सी आगे बढ़ी। जयदेवजी तो उसे देखते ही सन्न हो गये। उलटे पाँव महन्तजी के कमरे की ओर दौड़े।

बेला सर झुकाये बाईं ओर मुड़ गई। जयदेवजी के चाञ्चल्य से ज़रा भी हिचकी नहीं। मंदिर की प्रदक्षिणा करती हुई वह श्रीधर के कमरे के नज़दीक चली आई।

श्रीधर मायबान मे चौकी पर करवटें बदल रहा था। पैरो की आहट पाकर ज़रा अँगड़ाई ली, और उठ बैठा। एक क्षण बेला को देखा, ज़रा चौंका, एक लम्बी साँस ली; फिर निगाह फेरकर कराहते हुए पूछा—"क्या है ?"

बेला को जैसे काठ मार गया। क्या कहे कि क्या है! उसके देवता कूच कर गये। मुँह फीका पड़ गया। हास के साये मे उसास चली आई। चितवन की चाह मे आह भर गई। श्रीधर पागल तो नहीं हो गया! आखिर बात क्या है ?

बेला ने दिल से बल तलब किया, और ज़रा हँसकर बोली —"आप ने बम्बई जाने की · · "

लाज की बागडोर ने ज़बान को थाम लिया। वह रुक गई।

श्रीधर ने फिर आँखें उठाकर बेला पर रखी। एक क्षण सन्नाटे का आलम रहा। उसके कान मे किसी के पैर की

आवाज़ पड़ी। अचानक ज़बान खुल गई—"ओहो! गले में जयमाल डालने आई हो? तुम्हारे हाथ तो सुरेश के मोतियों की लड़ी से बँधे पड़े है, फिर उठते हैं कैसे?"

महन्तजी बिलकुल क़रीब आ गये। श्रीधर ने फिर हँसकर नमक छिड़की—"भला रंडी किसकी जोरू, भड़ुआ किसका साला? कहीं वाराङ्गना भी कुलाङ्गना हो सकी है! मेरा दिल तो बोर ही चुकी, अब कुल भी बोरने पर तुली हो क्या? लोक तो छूट ही चुका, परलोक पर भी धावा है?"

श्रीधर के तार क्षोभ और क्रोध के विष मे बुझे थे।

दुनिया के आघात को जिस दीनता के साथ गूँगी बनकर पृथ्वी सह लेती है, उसकी तुलना विधवा का कलेजा ही होगा, दूसरा नहीं। पर, वही पृथ्वी एक दिन सीता को गोद मे लेने के लिए फट भी पड़ी थी।

आज उसी पृथ्वी की ओर बेला एक टक देखती रह गई; मगर ज़मीन न कँपी, न फटी। उसके कलेजे से लहू उठकर आँखो मे उतर आया, मगर न भवे फड़की, न पलकें भीगी। सिर्फ एक आह की टीस ने मधुर यौवन-स्वप्न के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर डाला—'हाय! वह हृदय की क्षणिक मोहमयी उत्तेजना मे पड़कर विवेक की तीती वाणी को अनसुनी न करती तो आज उसकी ऐसी किरकिरी न होती।'

महन्तजी ने भी व्यंग्य-भरी चुटकी ली—"बीवीजान! मेरी शोखी माफ़ हो, श्रीधर कुछ बाज़ार का सौदा नहीं है! यह

एक कुलीन कुल की आशा है। इसके हाथ सैकड़ो की सद्गति की पतवार है। इसके जीवन पर कितनों का दार-मदार है। आपके आँचल के साये मे इसे निर्वाण-पद जो मिले, लेकिन इस दुनिया मे इस बिचारे की क्या वक़त रहेगी—यह आपसे ज्यादा कौन अन्दाज़ कर सकता है ?"

आघात पर आघात। बेला भारत की नारी थी, भारत की नारी बनी रही।

उसी वक्त जयदेवजी भी आ धमके। मौक़ा मौज़ूँ समझकर हाथ जोड़ते हुए गिड़गिड़ाकर बोले—"बेला—बेला! गुरु महाराज ने तुम्हे दूध पिलाकर आँखो मे पाला था—उन दिनों, जब तुम्हें कहीं तिल-भर भी शरण नही थी। आज तुम छत्र पसारकर उसी घर के लाड़ले को डँसने चली हो! छिः! राम-राम !!"

जयदेवजी की निगाह मे श्रीधर की तमाम व्याधियो की बुनियाद बेला है—नारियो के प्रति हमारा वही चिरन्तन दृष्टि-कोण!

हमारे बच्चे के मुँह से तो दूध टपकता है, वह छल-छन्द क्या जाने! इसी जादूगरनी ने डोरे डालकर उसका मत मार लिया है—यही सनातन दलील है!

भारत के कितने ज्ञानी-मानियों ने भी नरक की नाली नारी की मरम्मत जी खोलकर की है। हम अपनी प्रवृत्ति के थपेड़ों पर तो कुलाँच भरते हैं और इलज़ाम मढ़ते हैं नारी की

चितवन की जादूनज़री के सर। हम अपने हाथो से दोज़ख का दरवाज़ा तोड़ते है, मगर 'नरकस्य द्वारं' नारी को ही बतलाते हैं। उसके दोनो हाथ में रज्जु बँधी है, हमारे दोनो हाथ मे लड्डू धरा है!

इस वायुमंडल मे बेला ख़ाक अपनी सफ़ाई पेश करती? और वह भी किसके सामने? यहाँ हाले-दिल सुनने के लिए दिल कहाँ था!

वह एक मिनट तक निश्चेष्ट खड़ी रही। हाथ का लिफाफ़ा चौकी पर चू गया। तबतक महन्तजी का एक हाथ उसके कंधे पर पड़का। वह बिजली-सी तडपकर दालान के बाहर निकल गई।

वह पॉव-प्यादे बड़ी तेज़ी से लौट चली। हाय! वह चेहरे पर सुहाग के पानी की तलाश मे आई थी, मगर जो पानी था भी—उसे बहा डाला ....

.. वह निगाह नीची किये, सर झुकाए, जा रही है। पर उसे लगता है, जैसे सड़क पर दो-तरफ़ी निगाहे उसकी लज्जा की धज्जियाँ उड़ा रही हैं—दोनों ओर से सैकड़ो गले की आवाज़ उसकी शर्म का नक्क़ारा बजा रही है—उसके चारो ओर विद्रूप के बादल छाये हुए हैं और हरएक की उँगली उसी पर उठ रही है।

मगर यह लज्जा की आँधी तो मन की ऊपरी तह पर है, मन के अन्दर जो प्रलय का आँधी-पानी और श्मशान का शून्य

हाहाकार बारी-बारी से गूँज रहा है, उसका शतांश आभास भी किसी पर सम्भव नहीं।

जब श्रीधर की जड़ता छूटी, तब उसकी निगाह सामने के लिफ़ाफे पर पड़ी। उसने चट उसे उठा लिया और फ़ौरन् एक झटके से खोल डाला। देखा, कई नोटों के साथ बेला के हाथ का लिखा एक रुक्क़ा भी है! वह पुर्ज़े को पढ़ने लगा—"महाराज! मैं नहीं जानती कि यह छोटी-सी रक़म आपको डिग्रियों के सङ्कट मे कहाँ तक मदद देगी। आखिर मेरी बिसात ही क्या है? इतमीनान रखिये, यह जो कुछ है, मेरे पसीने की कमाई है, कुछ शरीर की कमाई नहीं। इसकी स्वीकृति मेरे लिए एक दया का दान होगी।"

पूरे तीन हज़ार हैं! श्रीधर को जैसे गाय मारने का पाप हुआ। उसने दिल-ही-दिल मे कहा--"उफ! मैंने यह क्या किया? चाँद पर थूकने चला था, चुल्लू-भर पानी मे डूब क्यो न मरा?"

वह फ़ौरन् उठ खड़ा हुआ। उसका बैठा हुआ दिल बाँसों उछल गया। वह कंधे पर चादर रखकर आगे बढ़ना ही चाहता था कि सामने महन्तजी और जयदेव मिश्र आ गये।

"क्यों भैया, कहाँ चले!"—महन्तजी ने पूछा।

"कुछ न पूछो, भूल हो गई—भूल!"—श्रीधर नोट और रुक्क़ा दिखाकर बोला—"बातों मे पड़कर मैंने नाहक उसका जी जलाया!"

"बातों में पड़कर ?"—महन्तजी एक सरसरी निगाह नोट और रुक्के पर डालकर तमाम परिस्थिति ताड़ गये और बोले—"अजी, तुमने तो खुद उस रात को वहाँ जाकर अपनी आँखों देखा था कि सुरेश से कैसी गहरी छनती है। बस, इन चन्द नोटों पर ही आ गये ! इतनी रक़म तो आज उसके हाथ की मैल है। उसने बरसों तुम्हारी नमक खायी—तुम्हारी रोटियाँ तोड़ी, आज सुरेश की बदौलत वह नमक अदा कर सकी है। मुमकिन है, चन्द दिनों तक वह तुम्हारे तलवे भी सहला दे। मगर, कबतक ? कहीं वेश्या भी सूने घर में ठहरी है ? तुम जो उसे गंगा में धुली पारिजात-पुष्पाञ्जलि समझ रहे थे, यही तुम्हारी भूल है। उसकी तहरीर की तदबीर पर गये, तो लुटे ! मेरी जवानी इसी कूचे में कटी है, बाबू ! उसके एक-एक रग-रेशे को पहचानता हूँ। कुछ तुम्हें पट्टी नहीं पढ़ाता। वह कुछ भी हो, तुम्हें तो उसे देखना नहीं है, देखना है अपने को। तुम उस दामन के साये में गये, तो कहीं के न रहोगे। महज़ तुम्हारी ही नाक नहीं कटती—तुम्हारी ही लुटिया नहीं डूबती; हमारा समाज भी रसातल चला जायगा !"

"सो तो ठीक है; मगर बेवजह जो मैंने उसका दिल दुखा दिया है, कम-से-कम उसे तो भर दूँ !"—श्रीधर ने आहत स्वर से कहा।

"यह भी एक ही रही ! वह कुछ दिल खोई थोड़े बैठी है। देखा नहीं, किस शान से चौकड़ी भरती निकल गई !"

"जो हो भाई, एक बार चलकर देख तो लूँ !"

श्रीधर ने चट बेला के घर का रास्ता लिया। महन्तजी और जयदेवजी भी झख मारकर साथ हुए। महन्तजी तो— खैर, जयदेव मिश्र तो दाँत पीस रहे थे। उनका जो वश चलता, तो बेला को पीसकर पी जाते !

एकादश परिच्छेद

जब बेला बदहवास मकान के पास पहुँची, तब गली के मोड़ पर सुरेश की फ़िटन देखकर ज़रा चौंक पड़ी। उसे सन्देह होने लगा—इसी के गुप्तचरों ने तो कहीं श्रीधर के कान नहीं फूँके—उसके मन में खटाई डालकर अपना रास्ता साफ़ करना चाहा! और क्या मतलब हो सकता है! यह भी मीठी छुरी निकला! इसकी चहचही चुहलबाज़ी के भीतर चालबाज़ी भरी है! या, मुमकिन है, चुन्नीलाल की कारसाज़ी होगी। चट्टे-बट्टे लड़ाने में वह एक ही उस्ताद है। मगर, श्रीधर भी तो बिना सोचे-विचारे—बिना पूछे-ताछे—इस चंग पर चढ़ गया! बिजली ने ठीक ही कहा था—पुरुषों के मिज़ाज का अन्दाज़ नहीं, पछवा पर पुरवैया फिरते देर नहीं होती!·····मगर नहीं, श्रीधर·····।

बेला दरवाज़े पर आकर ठमक गई। आँगन में सुरेश की

आवाज़ मिली। चुन्नीलाल तो सर पर आसमान उठाये था।

वह कन्नी कटाकर ऊपर कमरे मे निकल जाना चाहती थी। इस वक्त वह किसी से क्या मिलती या सलीक़े की मिज़ाजपुर्सी करती! उसके दिल का धुआँ उठकर दिमाग पर छा चुका था, दिमाग़ उड़ा जा रहा था।

वह निर्जनता ढूँढ रही थी कि घडी-भर भगवान् के चरणो मे रोकर दिल का बोझ हल्का करे और फौरन् बनारस छोड़कर कही गुम हो जाय—दुनिया से दूर जाकर अलग कुटिया बाँधे।

कि हठात् उसके कान खड़े हो गये। सुरेश बूँदी की माँ से बाते कर रहा है—"सच! बिजली महारानी अन्तर्धान हो गईं! कहाँ—बम्बई? मुझे खबर तक नहीं! मैं तो उनके लिए आशीर्वादी फूल-नारियल लाया था। अब पूरब का सूर्य पश्चिम मे उगेगा। क्या हुआ, काशी उजाड़कर बम्बई बसायेंगी। अभी रामू से सुना, आज बिजली देवी इस कूचे से कूच कर रही हैं—आते-आते रफूचक्कर!"

"आज ही दोपहर को गई हैं, सरकार!"

"और बेला देवी कहाँ तशरीफ़ रखती हैं?"

"गुसाईं के मन्दिर मे गई हैं।"

"वल्लाह! बेहोशी का रेयाज़ करने! रंग लाई है गिलहरी!"

"आप बड़े लट्टू हो रहे थे! आख़िर बेला बाई की पोल

खुली न !"—यह चुन्नीलाल की आवाज़ थी।

"तुम भी मुझे ऐसा निखट्टू समझते हो ? अजी, एक तफरीह थी - आँख का नशा, बस ! कुछ भाँवरी तो देनी नहीं थी !"

"वह उस झानली में भी तो नहीं आई ! खैर, अब बैरॅग वापस चलिये, चिड़िया उड गई !"

दोनों मुडकर दरवाजे तक आये ही थे कि सामने बेला नज़र आ गई। बेला तो चुपके से आँख बचाकर ऊपर सरक जाना चाहती थी, मगर सुरेश चट एक विनोदपूर्ण अङ्गभङ्गी के साथ वह नारियल का गोला बेला की ओर बढ़ाते हुए बोल उठा—"अहा ! महामाया यहीं आ गईं ! यह उपहार स्वीकृत हो--

"या देवी सर्वभूतेषु मायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः॥"

सुरेश के मुख से निःसृत ह्विस्की-सुरभित स्तोत्र बेला के कानों में उपहास का अट्टहास बनकर पडा। वह लहू के घूँट पीती हुई किसी हालत से नारियल थामकर आगे बढी, तो सुरेश ने फिर चुटकी ली—"आज आप मन्दिर से बहुत सबेरे लौट आईं ! मैं तो समझता था कि विहाग और भैरवी वहीं होगी !"

बेला की खोपड़ी भन्ना उठी थी, सिर की शिराएँ फूल रही थी, ललाट पर नसें उभरी हुई थी। पर, वह लहू के इस

उद्दाम आवेग को जी जॉतकर रोकती हुई सामने से सरककर सीढ़ियों की ओर मुड़ी। उसका दाहना पैर पहली सीढ़ी पर पड़ा होगा कि सुरेश ने दॉत दिखा, 'ज़रा एक नज़र इधर भी' कह, बेला के कंधे पर हाथ रखकर अपनी छाती की ओर खींचा। व्यंग्य पर यह रंग; जले पर नमक!

आज शायद बेला की सयत्न-मंडित कबरी—उसकी खुली गर्दन पर स्वस्तिका-लॉकेट की दीप्ति—सुरेश की मायल ऑखो मे बेतरह चुभ गई।

कंधे पर सुरेश का हाथ पड़ना था कि बेला के हाथ से छूट कर वह नारियल का गोला सुरेश की कनपटी पर तड़ाक-से पडा। चश्मा चन्न-से चकनाचूर हो गया। शीशे के टुकड़े उड़-कर बिचारे के पुटपुर मे धॅस गये। ऑख बाल-बाल बची। कड़ाके की चोट थी। खून का फ़व्वारा छूट पड़ा। बेला के ऑचल का कोना भीग गया, सुरेश के कोट का कंधा तर हो गया। कुहराम मच गया।

चुन्नीलाल ने एक तेज़ चीख़ के साथ लपककर बेला का ऑचल फाड़ डाला और उसकी पीठ पर तावड़तोड़ दुलत्तियॉ झाड़कर दिल का बुख़ार निकाला। भीड़ जम गई। एक तमाशा हो गया। पुलिस आ धमकी। मुजरिम गिरफ़्तार कर ली गई।

बेला के सर पर तो आसमान फट पड़ा। वह तो बिलकुल सन्न हो गई। काटो तो खून नहीं।

लोग उसकी ओर आँखें फाड-फाडकर देख रहे हैं। वह पागल की तरह एक टक सुरेश के खून को बौछार को देख रही है। घर के नौकर-चाकर तो हैरत मे हैं ही, मुहल्लेवाले भी फक् हैं।

जो पाँव-तले की चीटी का भी ख़याल रखती थी, जो लाख जल-भुनकर भी कभी उफ़ तक न करती थी, जो किसी मार्मिक आघात पर भी प्रतिघात देना नहीं जानती थी, वह बेवजह एक बेकसूर ब्राह्मण के सर के लहू से आँचल तर करेगी—यह अनहोनी बात क्योकर हो गई!

दरवाज़े पर भीड देखकर मकान के सामने, गली के मोड़ पर, श्रीधर खडा है। वह भीड़ चीरकर घुस गया होता, अगर जयदेवजी और महन्तजी जोक की तरह उसकी देह मे चिपक न गये होते!

सहसा भीड़ छँटी, क़ाफला चला। सिपाहियो के बीच मे बेला, अगल-बगल सुरेश और चुन्नीलाल!

श्रीधर ने पहले लहू से तर-ब-तर सुरेश को देखा, बाद मे लहू से रँगी बेला को। साड़ी वही है; पर चिथड़ो मे फटी। सूरत वही है; पर खाक मे सिमटी!

वह हैरत मे था— आखिर यह हो क्या गया? या भगवन्! यह माजरा क्या है! यह खून! बेला पुलिस मे गिरफ्त!

उसने लपककर एक बीड़ीवाले से पूछा—"भाई, बात क्या है?"

"बात ! बात तो साफ़ है। बस, रडी की यारी का अंजाम ! अबतक दोनों फूल की सेज पर गुँथने रहे, आज काँटों मे गुँथ गये !"

बीडीवाले का पड़ोसी तम्बाकूवाला कब चुप रहता ! उसने भी एक फिकरा चुस्त किया—"वल्लाह ! खूब हुआ ! हज़रत रोज जोडी दनदनाते आते थे ! घोडो की टाप से नाक मे दम था। आज तमाम चौकडी भूल गई, हाँ !"

तीसरे ने कहा—"अजी ! बेला बाई को खूब तर माल चखाता रहा। पा गया आज चखाने का फल !"

"मैं कहता हूँ यहाँ ठहरना काल हो जायगा"—जयदेव मिश्र ने श्रीधर से कहा और महन्तजी की ओर देखा।

"हाँ भैया ! चलो, निकल चले। कही किसी बला मे न फँस पडे !"- महन्तजी ने झुककर श्रीधर के कान मे कहा, उसका हाथ पकड़ जरा घसीटते हुए धीरे से गुम हो गये।

इधर बेला का कारवाँ अपनी मंजिल पर चला। मुहल्ले-वाले खडे तमाशा देखते रहे। दस मिनट तक गली मे सनसनी-सी रही। फिर नुक्कड के मन्दिर मे सन्ध्यारती का घंटा-घडियाल गूँजा। रामू हलवाई ने दूकान पर आकर कचौरी की लोई कड़ाही मे छोडी, कल्लू ने बीडी जलाकर ठुमरी की तान छेड़ी, मोहन की बहू ने धुली धोती बदलकर तुलसी-तले घी का चिराग रखा और सर झुकाकर अक्षय्य सिन्दूर की दुआ माँगी।वही प्रतिदिनवाली गोधूलिलग्न लीला गली मे हर जगह

जारी हो गई। केवल बूँदी की नई गुलेनार सिल्क-साड़ी का आँचल सूने मकान के बरामदे में उड-उडकर हलवाई के लौंडे के दिल में सोये हुए शैतान को जगाने लगा।

क्या नियति-नटी की यही नीयत है कि बेला का डोला जेल में चले? कहाँ प्रेम में लय हो जाने के लिए हृदय का वह मंगल आयोजन, और कहाँ यह नौ मास का एकान्त कठिन कारागार-जीवन! इतने दिनों तक तो उसके ललाट पर कलङ्क का, कुंकुम रहा, आज उसपर दंड का मणि-मौर देकर विधि ने उसकी रौनक़ को दोबाला कर दिया! क्या उसकी लांछना की शृंखला में यही कडी बाकी थी—वह भी जुट गई? क्या उसकी वेदना के उठान में यही मुराद बाकी थी—वह भी पूरी हो गई? उसके जीवन के नव अभिसार का क्षेत्र यही जेल-मन्दिर था? वह कहाँ भटककर सुहाग-सेज की सत्यानाशी ज्वाला ढूँढ़ रही थी!

जीवन का पैमाना लबरेज हो गया। बेला ने इजलास पर खुशी से सर झुकाकर अपराध स्वीकार कर लिया। वह सज़ा न पाती, तो तड़पकर जान दे डालती। इस प्रायश्चित्त के बिना उसकी आत्मा को हरगिज़ तस्कीन न होती।

उधर बिजली अमीन की कमर में हाथ लपेटे लन्दन के रिटज़ होटल में इतराती हुई उतरी, इधर बेला जीवन के भार से झुकी हुई कमर पर हाथ रखे जेल के फाटक में दाखिल हुई।

जेल में जाकर बेला ने फिर सीतापति राम को रुँधे गले

से पुकारा—"नाथ! तो मोहवश तुम्हारी ओर से मुँह मोड़ चुकी थी; पर तुम्हीं ने करुणार्द्र होकर मुझे फिर जीवन के निर्दिष्ट पथ पर बरबस फेर दिया, मेरी करुणा का चिर-परिचित संसार मुझे लौटा दिया। यह तुम्हारा ही काम था जो तुमने सर उठाते हुए काम-पिशाच को मारकर हृदय-सिंहासन पर फिर से वेदना को—आत्मचिन्तन को—प्रतिष्ठित कर दिया, उसके सिर तिलक दे दिया। तुम्हारी मदद के बिना यह अभिषेक भला कहाँ सम्भव था! मेरे आँसुओं से धुले हुए श्रद्धा के फूल आज नवीन व्यथा के पराग से रञ्जित तुम्हारे चरणों में अर्पित हैं!"

उपसंहार

गङ्गा का पुण्य प्रवाह शान्त है—किसी तपस्वी के अन्तर की तरह प्रसन्न। प्रवाह मे न गति है, न कलकल-ध्वनि। झिर-झिर रेशमी समीर प्राणवायु की तरह गुपचुप चल रहा है। शाम की मीठी किरण गङ्गा की गोद मे सुनहली चादर तानकर सो रही है। आज नदी की प्रशान्त आत्मा समाधि मे लीन है। तो गंगा योगीश्वर के धाम में योग-साधन सीख रही है क्या?

एक छोटी डोंगी मराल-गति से पश्चिम से आ रही है। डोंगी मे दो स्त्रियाँ है। एक की गोद मे एक नन्हा-सा बच्चा है, मानो बर्फ का टुकड़ा हो। दूसरी के कलेवरपर—जो आराम-कुर्सी पर लेटी है—बड़ी भड़कीली साड़ी है, आँचल का किनारा सायंकाल की गुलाबी को पीकर आसमान पर उड़ रहा है।

डोंगी जब राजघाट में लगी, तब वह आरामकुर्सीवाली ज़रा मुस्कुराकर बच्चेवाली से बोली—"क्यों, आया ! देख ली बनारस की गंगा ?"

आया जवाब में मुस्कुराकर कुछ कहना ही चाहती थी कि एक ओर से आती हुई एक दर्द-भरी संगीत-लहरी पर उसकी मालकिन के कान खड़े हो गये। इधर-उधर ताक-झाँक करने पर देखा, कोई सफेदपोश औरत एक सुनसान झोपड़ी के सामने बैठी गा रही है—

'राम विश्व हैं, राम जीव हैं, रामहि जगदाधार !
रामहि चाकी, रामहि माटी, रामहि कुशल कुम्हार !'

वह दो मिनट तक अपनी डोंगी पर बुत की तरह खड़ी रही, मानो गानेवाली के सुर का जादू उसके सर चढ़कर बोल रहा हो ! फिर वह तीर की तरह उस ओर बढ़ चली। झोपड़ी पर पहुँचते-पहुँचते वह छाती पर हाथ रखती हुई बोली—

"अरे ! बेला !!"

"बहन !"

दोनों आपस में लिपट गईं। फिर बेला के सर पर हाथ फेरते हुए बिजली ने आश्चर्य-भरे स्वर में पूछा—"हाय, बेला ! यह क्या देख रही हूँ मैं ?··· "

"जो कुछ सामने आये, वह देखना ही है, बहन ! तुम तो सब ·· सुन ही चुकी होगी !"

"याद है, कहा था न ! ··· खैर, जाने दो ; अब ठंढी राख

को कुरेदकर क्या होगा ? अच्छा, रात कहाँ थी—आसमान के तले ? तो हवा फाँककर जी रही हो !"

बेला चुप रही। आया की गोद में फुदकते हुए बच्चे को वह देखने लगी। कलेजा उमड़ आया; आँखें भर आईं। उसे याद हो आया कि ऐसा ही गुलाब के फूल-सा हँसता उसे भी एक बच्चा था। नर्स ने उसे गोद मे लेकर अस्पताल मे खाट पर पड़ी बेला के रू-ब-रू पेश किया था। नर्स हँस रही थी; बच्चा इस खौफनाक दुनिया की तसवीर देखकर रो रहा था। पर, कलेजे के टुकड़े को कलेजे से लगाना नसीब न हुआ! एक समाज के कानून से वह आँख का तारा आँख की किरकिरी बन गया था, दूसरे समाज के कानून से यह आँख का तारा आँख का नूर है।

बच्चे को पुकारती हुई बेला बोली—"चाँद का टुकड़ा है, बहन !"

"पेरिस मे पैदा हुआ, शायद इसीलिए विलायती रंग आ गया है !"—बिजली ने सगर्व दृष्टि से बच्चे की ओर देखकर कहा—"आया! तुम बच्चे को लेकर ऊपर चलो। मोटर आती ही होगी। मैं अभी आती हूँ।"

बिजली एक क्षण बेला को एक टक देखती रही। उसकी आँखों मे आँसू भर आये। बेला तो गंगा के प्रवाह की ओर, निगाह नीची किये, देख रही थी। उसकी आँखो में भी करुणा की छाया है।

पीपल के एक पेड़ के साये मे बेला और बिजली खड़ी हैं। पल्लवों के अन्तराल से छनती हुई गोधूली की अपरूप रक्तिमा उनके ललाट-पटल पर सोने का रंग भर रही है।

बिजली ने एक सर्द आह खींची, और बोली—"बेला!"

बेला ने मुँह फेरकर आँख के आँसू चुराये और दर्द-भरी आवाज़ मे कहा—"हाँ!"

"उस दिन के बाद तो आज ही तुम्हे देख रही हूँ! वह उठती हुई गंगा का लहर अचानक बालू की रेती मे गुम हो गई। मैं यह जानती, तो कभी विलायत का सफर करती? बेला! आखिर तुम्हारे राम ने तुम्हे तबाह कर ही दम लिया। तुम्हे पत्थर मे दिल ढूँढ़ने का नतीजा मिल गया! भला, बुत से वफ़ा की उम्मीद?"

बिजली छन-भर रुकने के बाद फिर बोली—"बेला! आज तुम्हे देखकर मुझे जिन्दगी के तमाम पहलू नज़र आ रहे हैं। तुम पर्दे का शिकार थी, मैं बेपर्दगी का; तुम समाज से मजबूर थी, मैं मिज़ाज से; तुम्हारी चादर जल्लादों ने हाथ ऐंठकर उतार ली थी, मैंने अपनी चादर अपने हाथों से फेंक उसे चाक कर दिया था, तुम्हारी गर्दन की बागडोर बिलकुल जकड़ी कड़ी थी और मैंने मुँह मे लगाम लेना सीखा ही न था। आखिर ठोकरें खाते एक दिन हम-तुम दोनों जहन्नुम के एक ही कूचे में जा पड़ीं। फिर दोनों ने उस दोज़खी दुनिया से निकलने की कोशिश की। मुझे रास्ता मिल गया—

तुम्हे रास्ता मिल न सका। तुम राम-राम रटते रसातल को चली गई—मै इस्लाम को छूकर पारस हो गई। तुम सर हिलाती हो ?—नहीं ! मै फिर भी कहती हूँ—तुम हिन्दू रह कर डूब गई, मैं मुस्लिम होकर उबर गई। तुम्हे दुनिया की ज़िल्लत मिली, मुझे ज़िन्दगी की लज्ज़त।"

"बहन ! तुम दुनिया की लज्ज़त मे डूबना उबरना समझती हो क्या ?"—बेला ने सूखी हँसी हँसकर पूछा।

"यह लो ! तो क्या दुनिया की मुसीबतो मे डूबना उबरना समझूँ ?"

"नहीं, दोनो को एक समझना ही उबार है, न लज्ज़त मे रस है, न ज़िल्लत मे विष। मैने तो इस जीवन मे जो कुछ सँजोने योग्य पाया है, वह मुसीबत के हाथो ही पाया। हमारी मुसीबत की रात की अँधियारी ज्यो-ज्यो बढ़ती जाती है, त्यो-त्यो सत्य का उजेला निकट होता चला आता है।"

"मैं बाज़ आई इस ख़मख़याली से ! भरसक तुम्हारी यह दशा हो रही है ! तुम दुनिया मे रूप और शील—मिज़ाज और दिल—जैसी बड़ी न्यामते पाकर भी जीवन की बाज़ी हार गई, और वह भी महज़ एक समझ की कमी से। मै तो समझती हूँ, दुनिया मे भलाई और बुराई की छान-बीन से कही ज्यादा जरूरी ज़िन्दगी मे ज़रूरी और बेज़रूरी बातो की तमीज़ है। तुमने फिजूल एक मज़हबी झोक मे पड़कर अपनी ज़िन्दगी के अमृत को रेती मे बहा दिया; एक बेदर्द

दकियानूसी समाज के फेर मे पड़कर दुनिया की ज़ीनत और लज्ज़त को जी मसोसकर ठुकरा दिया। आज तुम किसी की आँख की पुतली—बाल-बच्चेवाली—घर की देवी रहती। अज़ीम तुम्हें आँखो पर बिठाकर रखता। मगर तुमने तो एक न सुनी। राम-राम रटती रह गई; मगर राम तुम्हारा रहीम नही हुआ!"

"तो क्या राम और रहीम दो है? तुम अपनी कही भूल गई?"—बेला ने मुस्कुराकर पूछा।

सो कौन कहता है कि दोनो दो हैं? यहाँ असलियत—तत्त्व का सवाल नही है, दुनिया का सवाल है। आदमी ने तो उन्हे दो कर दिया है! और, बुरा न मानना, बेला! आज वे दो न रहते, तो तुम्हारे चेहरे पर ख़ाक उड़ती···और मेरे चेहरे पर ···"

"कंचन बरसता! क्यो?"—बेला ने ज़रा हँसकर कहा।

"बात तो यही है, मगर मैं लिहाज़ से ज़बान पर नही लाती थी। क्या कहूँ आज मैं तुम्हारे दुश्मनो के चेहरे पर ख़ाक देखती, मगर··"

"बहन! तुम जिसे ख़ाक समझती हो, वह ख़ाक नहीं, कञ्चन है!"

"सो कैसे?"

"चूंकि दोनो एक हैं—समझ के फेर से दो भले ही नज़र आयें। अगर तुम्हारी आँखें कञ्चन को ख़ाक समझें और ख़ाक

को कञ्चन, तभी समझो, आँखों ने आँख पाई दुनिया की हक़ीक़त समझी। उन आखों मे न फिर आँसू होगे न हविस !"

"यही कञ्चन को ख़ाक समझनेवाली आँख तो तुम्हारी आँख की फूली है। इसी समझ से तो तुम लुट गई। एक तो तुम्हारी निगाह मे कञ्चन की दुनिया की वकत ही नहीं; बस जो कुछ है, वह ख्वाब की—परलोक को—है। परलोक के बराबर भी तुम इस लोक को समझतो—इस ज़िन्दगी को मानती, तो यो बुरी तरह तबाह न होती। इसी त्याग और क्षमा के सिड़ीपन ने तो हिन्दुस्तान को ग़ारत किया! तुम त्याग लिये टापती रहो, भीख की झोली गले मे डालकर कंचन पर थूकती रहो और संन्यास को सातवें तबक़ पर चढ़ाकर अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनी रहो! तुम्हारे दिल और दिमाग़ की तारीफ़ तो हुई; मगर दाँत गड़ाकर चूमनेवालो ने तो बदन की एक-एक बूँद चूस डाली !"

"सच पूछो तो, इस ज़िन्दगी की ज़ीनत त्याग ही है, भोग नही ! · · खुद ही देखो न · · · ·"

"यह तो हमारी-तुम्हारी सूरत ही साफ बतला रही है कि कौन ज़ीनत है!"—बिजली ने झल्लाकर कहा—"बेला! विलायत जाकर मेरी आँखे खुल गईं। हमलोग यहाँ ख़ब्त के ढकोसलों पर किस क़दर लँगोट बाँधकर पिले पड़ते हैं; मगर जिन पर दुनिया मे बनना और बिगड़ना निर्भर है, उन्हें ज़रूरी समझते

ही नहीं। जब कमाल ने टर्की के आलमगीर धर्म को जीवन के हर पहलू से ढकेलकर एक अलग कोने मे दे मारा तब कहीं उस घर में लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति—तीनो आ सकीं। हमारे यहां जीवन के तमाम अंगों पर मज़हब छा गया है—वह भी, बाहरी अंगों पर; दिल पर नहीं! मज़हब ने हमारे घर मे फूट और हमारे सर पर विलायती बूट तो लाद ही दिया, मगर फिर भी न हमारी आँखे खुलीं, न कान ही खड़े हुए। आज भी हमारी नसों मे वह कूट-कूटकर भरा है।

"यहाँ इस्लाम मे मज़हबी जनून जो हो, मज़हबी खुराफ़ात तो वैसी ही है, जैसी दुनिया के तमाम मज़हबों मे भरी है; मगर समाज की थोड़ी-बहुत उदारता ने उसके पैर ज़रूर थाम रखे है। इस भेद-भरी अंध-कट्टरता के मुल्क मे इसी कुशादा-दिली से वह बुलन्दी पर आ गया। नहीं तो, रोज़े-नमाज़ की ललकार या मुगलों की तलवार—एक नहीं कारगर होती।

"हिन्दू बिचारे तो कहीं के न रहे! मज़हब ने उन्हे त्याग की शिक्षा दी है, समाज उनके घर को फोड़ता चला आया है। इधर वे 'सोल-फोर्स' की गाथा गा रहे हैं, उधर उनकी आत्मा की तमाम शक्ति वैराग्य मे खर्च हो रही है। ऐसी समाधि है कि दुनिया उनके कान तराशती है और उनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। इधर मोक्ष की धुन सवार है, उधर मूँछ का एक-एक बाल चुना जा रहा है! कहीं तुम विलायत

जाती, तो तुम्हे मालूम हो जाता कि दुनिया मे आजकल धर्म की क्या वकत है। इस धर्म की धाँधली मे न हमे ईश्वर ही मिला, न दुनिया ही मिली !"

"तुम्हारी आँखे विलायत जाकर खुली, मेरी आँखे जेल जाकर खुली है। मैं तो समझती हूँ, दौलत की रँगरलियाँ इस जिन्दगी की शाख पर शबनम के मोती हैं। इस ओस चाटने से कभी जीवन की प्यास नहीं मिट सकती। यह विष-भरी मिठाई ज़बान पर लज्ज़त तो देगी, मगर सेहत नहीं। रूप और यौवन, धन और मान, परिवार और संसार—ये सब किसके होकर रहे हैं और किसके होकर रहेंगे ? ये आग जगाने आते हैं, और आग लगाकर जाते है। तुम इनकी चमक देखकर इन्हे गले लगाती हो, लगाओ। मगर तुम यहाँ क्या करने आई हो और कर क्या रही हो—इस पर दो पल सोचो भी तो ! बहन ! त्याग ही जीवन का चरम सञ्चय है, विराग ही जीवन का अमिट पराग है ! आज इस शून्यता के वैभव से मेरे हृदय का कोना-कोना भर उठा है—मेरी आत्मा प्रसन्नता से नाच उठी है। आँखो मे न मोह का स्वप्न-अंजन है, न मन में कामना का कुहुक-कूजन। मुझे अब न स्वर्ग की चाट है, न श्रीधर की तलाश। मुझे राम के प्रेम का मज़ा मिल गया—मैं असीम की पुकार सुनती हूँ—दिल मे रस का दरिया उमड़ चला है।"

"बेला, तुम लाख कहो, मगर इस मन के लड्डू से किसी के

पेट की—छाती की—भूख नहीं मिटती। सच मानो, यह तुम्हारे अन्तर का हाहाकार है, कुछ असीम की पुकार नहीं। तुम उसे गलत सुन रही हो, चूँकि तुम खुद अपने को नहीं जानती। तुम तो ज़िन्दगी-भर आँसू पीती चली आई। वही बूँद-बूँद जमा होकर आज तुम्हारी छाती में दरिया-सा उमड़ पड़ा है। यह विष है - रस नहीं। विष भी पीते-पीते एक दिन रस हो जाता है। जब दर्द दिल के रेशे-रेशे में भर जाता है, तब वह दर्ददिल नहीं रहता—दिल हो जाता है। उसकी टीस भी मीठी पड़ जाती है—वह वेदना ही आखिर तुम्हारी चेतना बन जाती है। बेला! तुम क्या कर रही हो, कहाँ बही जा रही हो, जरा मुड़कर गौर तो करो! आखिर तुम्हारी ज़िन्दगी कैसे निभेगी?"

"क्यों? राम की सेवा—लोक की सेवा। आज तो मेरी निगाह में जन और जनार्दन दो नहीं ठहरे!"

"दुर पगली! स्त्री के जीवन की किल्ली तो प्रेम है।"

"सच! तुम्हारी ज़बान पर भी प्रेम आया! भूलकर आया है या दिल से पूछकर?···"

"दिल की पुकार है, बेला! मैं बँध गई, बुरी तरह बँध गई। जाने कहाँ-से-कहाँ आ गई!"

"घर आई हो, बहन! और कहाँ···वन से··ठोकरें खाकर···"

"वन की चिड़िया घर में पोस मानेगी?"

"मान गई। तुम चिड़िया नहीं, आदमी हो। आदमी के लिए घर है—वन नहीं।"

"तो तुम क्यों वन मे भटक रही हो? तुम भी तो आदमी—हाड़-मांस का शरीर रखती हो!"

"नहीं! हिन्दू की विधवा आदमी नहीं—आदमी से परे है! उसे शरीर कहाँ! वह तो आत्मा ठहरी! मुझे तो जंगल ही मे घर करना है। मै काफी भुगत-भटक चुकी। अब रास्ते पर आई हूँ।"

"तो इस मरु मे तुम्हे प्रेम की बूँद तो मिलती नही। प्यासी मरोगी?"

"राम के साये मे कोई प्यासा मरा है, बहन? तुम बूँद कहती हो, मुझे तो सोता मिल गया—मुझे तो प्रेम से भी बड़ा प्रेम मिल गया—सेवा। यह हृदय का उत्स एक के लिए क्यो हो—प्रत्येक के लिए क्यो नहीं?"

"तो वह कही का न रहेगा! जब वह एक पर नहीं ठहरा, तो प्रत्येक पर खाक ठहरेगा? जब तुम एक की नहीं रह सकती, तो फिर दुनिया की तुम कहाँ तक रहोगी? मेरी समझ मे तो·····"

"यह समझ की बात नही—दिल की बात है। यो तो प्रेम भी सेवा है; सेवा भी प्रेम है। मगर, प्रेम मे उपभोग की आग है—सेवा मे त्याग का सुहाग। प्रेम हृदय का अभिसार है—सेवा उसके सौरभ का प्रसार। प्रेम का दौर लोक है—

सेवा का दौर लोक और परलोक। प्रेम मनुष्यत्व का प्राण है—सेवा अमरत्व का सोपान।"

"पहले तुम आदमी तो हुई नहीं, अब देवता बनने चली! लोक तो सँभाल न सकी, अब परलोक सँवारने उठी हो! लिल्लाह! पैर जमीन पर रखो—आसमान पर नहीं! मेरी निगाह में देवता होने से कहीं ज्यादा जरूरी आदमी होना है। बेला! बोलो, तो तुम फिर दुनिया में नहीं पलटोगी?"

बेला दो मिनट चुप रही। फिर सर झुकाकर सॉमी से बोली—"ईश्वर जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है।"

"ईश्वर कुछ नहीं करता-कराता, सब हम करते हैं और ईश्वर के सर मढ़ते हैं। कहती न हूँ कि तुम यूरप जाती, तो तुम्हें असलियत का पता मिलता। तुम्हें पता भी है कि वहाँ साइंस ने सत्य को प्रतिष्ठित कर संसार के कई क्षेत्रों से भाव और अभाव को मार भगाया, अन्धविश्वास के दाँत तोड़े और दैव का सर मूँडकर जलावतन कर दिया!"

"यूरप ने, जड़ की जड़ में जो जादू के खजाने हैं, उनके ही दो-चार तिलस्मी चमत्कार दिखाकर तुम्हारी आँखों को चौंधिया दिया है; लेकिन सच पूछो तो, अभी चेतन के मृत्युञ्जयी प्रकाश का उसे पता नहीं चला है।"

"उसे पता नहीं चला है, तो तुम्हें पता चला है?"—बिजली तुर्श होकर बोली—"कहीं सिर मुँड़ाकर ललाट रँग लिया और बस, पता पा लिया! माला फेरने से कहीं दिल

फिरता है—कोपीन बाँधने से किसी का मन बँधा है ? दिल के पहलू से अरमानों को उलीचना इन हाथों से समुद्र उलीचना है बेला ! और तुमने समझ लिया कि महासागर तुम्हारे कमंडल मे आ गया ! तुम्हारे गुरु ने चेतन की तजल्ली देखी थी जो तुम देखने चली हो ?"

"बहन, तुम नाहक लाल-पीली होती हो ! सुनो, बूँद-बूँद तालाब भरता है। आज तक तुम शरीर की पुकार सुनती चली आई; आत्मा की पुकार कभी सुनी नहीं। तुम्हारी देह जगी रही—आत्मा सोई चली आई। जब वह उठ खडी होती है, तो फिर शरीर की माँग आप ही दब जाती है। जब तुम इस रंग मे आओगी, तभी तुम्हे "

"लिल्लाह ! रहो भी !"—बिजली ऊबकर बात तराशती हुई बोली—"तुम्हारी यह दुर्गति न होती, तो कभी तुम्हारी यह मति भी न होती। ऐसी गर्दिशों में पडकर आदमी का दिमाग खब्त हो जाना कोई ताज्जुब नहीं। फर्क इतना ही है कि धार्मिक छींटों की ज्यादती से तुम्हारे पागलपन में भी एक निराला ढंग है ! तुम्हारी दसों दिशाएँ सूनी न होतीं, तो कभी तुम्हे सुनसान में भगवान् न सूझता। आखिर जीने के लिए कोई तो रंग चाहिये ! अब और कोई राग-रंग तो तुम्हे नसीब नहीं, तो तुम्हारे मन ने दिल बहलाने को इस सुनसान मे एक मायावी परलोक का झुनझुना दे दिया ! बस, त्याग का राग अलापती रहो; इसी धुन मे सुबह की शाम करो ! और किसी

को यह ख़ब्त क्यों सवार होगी ? मैं बाज़ आई इस विराग के सुहाग से—इस मुफ़लिसी के जुलूस से। अगर हिन्दू-जीवन की सार्थकता यही त्याग की महत्ता है, तो अल्लाह का शुक्र है, मैं इस अज़ाब से बच गई !"

बेला ने हँस दिया। भगवान जाने, उस हँसी का क्या मर्म है ! क्या ऐसी ही हँसी हँसकर विधवा चिता की चिनगियों को गले लगाती है ? क्या ऐसी ही हँसी हँसकर योगी जंगल मे मंगल-राग छेड़ता है ? बुझते हुए दिल का यह धुआँ उठकर होठों को हिला गया—या अन्तर की प्रसन्नता की झलक चेहरे पर उठ आई ? यह बेबसी-मायूसी की रेखा है—किसी भ्रम की मुसकान—या मन की महज़ एक स्पर्द्धा की लहर है ? कौन कहे, इसमे वेदना का विष है या चेतना का पीयूष ? क्या है—क्या नहीं, इसे बेला ही जानती होगी या उसका अन्तर्यामी।

"खैर, तुम्हारे बुझते हुए दिल को एक लौ तो मिली। बेशगली का शगल अक्सर परलोक की ख़ब्त है—यही सही ! मगर बुढापे के बदले तुम्हे जवानी मे यह शौक़ चर्राया, यही आफ़त है !"

"शौक नहीं, यह शौक़ की समाधि है बहन !"

"वाह री समाधि !"—बिजली की कुञ्चित नासिका पर एक और रेखा खिंच गई—"इस पर तो आसमान से फ़िरिश्ते आयेंगे फूल चढ़ाने ! क्यों गज़ब करती हो, बेला ! तमाम जीवन की प्यास बटोरे अब चली हो परलोक का जामे-कौसर

पीने ! उस चश्मे पर यह प्यास बुझती है ? मैं तो समझती हूँ, यह कफन मे भी लिपटी रहती है—चिता पर भी नही बुझती—साथ जाती है !"

"बहन ! यहाँ प्यास ही नही रही जो बुझने का सवाल उठे।"

बिजली स्तम्भित हो गई। फिर बोली—"क्यो, इस प्यास को पी गई ? या तुम्हारी रगो मे लहू नही—पानी है जो प्यास ही नही उठती ! सच कहो, तुम आदमी हो या देवता ? जेल क्या था, तपोवन था ! तुम्हारी काया पलट गई !"

बेला के होठो पर फिर वही रहस्यपूर्ण रेखा की झलक है; फिर वही तर्ज, वही अन्दाज़ ! बिजली कुछ और कहा चाहती थी कि मोटर की पो-पो सुन पड़ी।

घाट के ऊपर, सड़क के किनारे, एक कत्थई रंग की प्रकांड मोटर आकर खडी हो गई। अमीन ने गाड़ी की खिड़की से सर निकालकर पुकारा—"बिजली ! टेनिस का वक्त टला जा रहा है। क्लब मे तुम्हारी इन्तज़ारी है।"

"तुम्ही ने तो देर की—अब आते हो !"—बिजली ज़रा बुलन्द आवाज से बोली।

"मैं क्या समझता था कि तुम यहाँ मिलोगी ? कभी का चक्कर काट रहा था !"

"अच्छा, ठहरो ; आती हूँ !"

बिजली की कंठध्वनि मे एक क्षीण प्रभुता की रेखा है।

वह बेला की ओर मुडी—"बेला! तो मैं चली! कही-सुनी माफ करना।"

"बहन! तुम्ही समझो, मुझे अब करुणामय की शरण छोडकर इस जगत् मे कहाँ शान्ति मिल सकती है!"

"खैर, दिल सताती हो, तो सताओ; मगर दिल का बुखार देह पर मत निकालो। ···लो, इसे रखो।"

बिजली बेला के हाथ मे कुछ रुपये देने लगी; मगर बेला—"नही बहन, मुझे जरूरत नही"—कहती हुई अलग सरक गई।

बिजली ने रुपये वही ज़मीन पर फेक दिये, और झल्लाती हुई खट-खट ऊपर चढ़ गई। उसने नज़दीक जाकर अमीन के कंधे पर हाथ रखा, और एक लीलायित भंगी से उचककर मोटर मे सवार हो गई। पुलकित अमीन ने बगल मे बैठकर दरवाजा बन्द कर दिया। बच्चे को गोद मे लिये आया ड्राइवर के साथ बैठी। ड्राइवर ने स्टार्टर पर हाथ रखा। मोटर बौखलाई और बात-की-बात मे आँखो से ओझल हो गई।

··· काशी के घाट पर अन्धे और अपाहिज, लूले और लँगड़े भिखमंगो की कमी नही। रुपये की ठनक कान मे पड़ी और चट टूट पड़े।

बेला उनकी चटोरी चेष्टा देख हँसकर बोली—"भाई, तुम तो मुझसे भी गये-गुज़रे हो! मुझे तो बहुत-कुछ है—चारों ओर प्राण और गान से भरा आकाश है, सूरज की मीठी रोशनी

है, चन्द्र की किरण है, तारों की झिलमिल है, वायु की किलोल है, सामने गंगा का कल-कल है। प्रकृति की तमाम न्यामतें हाथ बाँधे खड़ी है। मैं मुक्त हूँ—स्वच्छन्द विचरती हूँ; तुम तो बिलकुल मजबूर—बँधे पड़े—हो! तुम्हारा जीवन तुम्हें भार होगा, तुम्हीं इन रुपयों को उठा लो!"

'रकम रतन-रासि जनु लूटी!'—सब-के-सब टूट पड़े चाँदी के चन्द टुकड़ों पर! खूब छीना-झपटी चली।

बेला एक क्षण इस तमाशे को देखती रही। फिर राम का यश गाती हुई गंगा के किनारे पर जा बैठी। उसके मीठे गले की मीठी आवाज़ ने आसन्न सन्ध्या की मौन माया में माधुरी बिखेर दी। सुर का सौरभ विश्व में भर गया। प्राणों के आवेग से काँपती हुई वह ध्वनि ज़र्रे-ज़र्रे पर प्रतिध्वनित हो चली—

राम जानकी, रामहि रावण, रामहि पवनकुमार।
राम राधिका, रामहि मुरली, रामहि नन्ददुलार॥
राम खेवैया, रामहि नैया, रामहि पारावार।
राम बजैया, रामहि बाजा, रामहि सुर-सचार॥